गुरुकुल-पत्रिका Mar.—2006 Feb.—2007

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

मार्च, अप्रैल, मई २००६

सम्पादक

डॉ. महावीर

अध्यक्ष, प्राच्य विद्या संकाय

रुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४

रजि० पंजीकरण सं० : एल - 1277

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

मार्च - अप्रैल - मई

2006

सम्पादक

डॉ. महावीर

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

अध्यक्ष, प्राच्य विद्या संकाय

ुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डल

श्री सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा
परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. स्वतन्त्र कुमार
कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आचार्य रामनाथ जी
भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

निदेशक

प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री
आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सम्पादक

डॉ. महावीर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

सह सम्पादक

1. डॉ0 दिनेशचन्द्र-रीडर वेद विभाग
2. डॉ0 सत्यदेव निगमालंकार, रीडर श्रद्धानन्द वैदिक शोध केन्द्र

व्यवसाय-प्रबन्धक

डॉ. जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रकाशक

प्रो. अशोक कुमार चोपड़ा
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वित्त प्रबंधक

श्री एन. के. ग्रोवर
वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
1. सम्पादकीय	आचार्य रामनाथ वेदालंकार	1
2. वेदमञ्जरी	डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	2-8
3. यास्क और उनका निरुक्त	आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार	9-13
4. यम के अनुष्ठान का फल	डॉ0 लता गर्ग	14-19
5. वैदिक वाङ्मय में विश्वामित्र का अवदान		
6. ''यज्ञीय पशुहिंसाप्रसङ्गे ''आलभन-'' ''संज्ञापन''-''विशसन''-शब्दानां विवेचनम्''।	डॉ0 श्रीमती कृष्णा आचार्य	20-24
7. 'ध्वनि तत्त्व' - आचार्य मम्मट के मत में	डॉ0 उमा जैन	25-30
8. ''ऋग्वेद में प्राप्त कतिपय वनस्पतियाँ तथा उनके उपयोग''	डॉ0 सत्यदेव निगमालङ्कार	31-37
9. वेदों में राष्ट्रिय भावना	डॉ0 उमा कान्त यादव	38-45
10. वैदिकाध्ययनस्य अनुसन्धानस्य च क्षेत्रे पञ्चाम्बुप्रदेशान्तर्गतस्य होशियारपुरस्य योगदानम्	डॉ. राजेन्द्र कुमार	46-52
11. संस्कृतसंरक्षायै संस्थानाम् समन्वयात्मकं योगदानम्	डॉ0 शिवशंकर मिश्र	53-56
12. सांख्यदर्शने सत्कार्यवाद:	डा0 लेखराज: शर्मा	57-58
13. बौद्ध दर्शन एवं अज्ञेय की 'असाध्य वीणा': शाश्वत सत्य के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन	डॉ0 मृदुला जोशी	59-66
14. 'यशस्तिलक' चम्पू महाकाव्य में अन्तर्निहित स्वास्थ्य परिचर्चा	डॉ0 राधा श्रीवास्तव	67-74
15. डॉक्टर हरिनारायण दीक्षित प्रणीत 'भारतमाता ब्रूते'	डॉ0 किरण टण्डन	75-88
16. वैदिक सभ्यता और उसके प्रभाव	डॉ0 सुचित्रा मलिक	89-93
17. कविवर: लोकरत्नपन्त: 'गुमानी' व्यक्तित्वम्	डॉ0 प्रकाश चन्द्र पन्त:	94-98
18. आजादी का दीवाना ''आजाद''	स्व0 चन्द्रकेतु शर्मा	99-105
19. महाभारत में पुरोहित वर्ग (ब्राह्मणों) का महत्व महावीर	'नीर' विद्यालंकार	106-114

सम्पादकीय

'आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना: पशुभि: समाना:।'

अर्थात् आहार, शयन, भय और सन्तानोत्पत्ति की प्रक्रिया पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से प्राप्त है, केवल धर्म के कारण मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाता है, यही कारण है कि धर्म रहित मानव पशु तुल्य माना गया है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह धर्म क्या है? जो मनुष्य को सर्वश्रेष्ठत्व प्रदान करता है। धर्म की व्याख्या करते हुए तथाकथित धार्मिकों ने विचित्र प्रकार की वेशभूषा, यज्ञादि में पशुबलि, अन्यों की उपासना पद्धति को स्वीकार न करते हुए हिंसा और बलपूर्वक अपनी ही पूजा पद्धति को सर्वोपरि स्थापित करना, करोड़ों मानवों को अछूत या अपने से छोटा मानते हुए उनके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजनादि ग्रहण न करना, बलात् दूसरों की उपासना पद्धति एवं जीवन शैली को परिवर्तित कराकर उन्हें अपने पन्थ का अनुगामी बनाना आदि धर्म बनाया। धर्म और ईश्वर के नाम पर विश्व के इतिहास में बड़े-बड़े युद्ध हुए, मानव रक्त से धरा लाल हुई और घृणा का ऐसा बीज धर्म के नाम पर बोया गया कि आज भी संसार के मानव धर्म के आधार पर विभक्त हैं और एक दूसरे का रक्तपान करने के लिये लालायित हैं। धर्म की कोख से उत्पन्न होने वाले आतंक, हिंसा और भय ने विश्वशान्ति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

जिस धर्म की स्थापना मानव को देवता बनाने के लिए हुई, जो धर्म सबको प्रेम, भ्रातृत्व एवं विश्वबन्धुत्व की भावना से रहना सिखाता है, जिसे हमारे प्रात: स्मरणीय ऋषियों ने साधना, तपस्या, समर्पण के द्वारा जाना, वह धर्म हमें आपस में वैर करना नहीं सिखा सकता, वह घृणा का सन्देश नहीं दे सकता। संभवत: मानव से ही कहीं भूल हुई है, जो उसने अधर्म को धर्म, असत्य को सत्य, अन्धकार को प्रकाश और विष को अमृत समझ लिया। अमृत का धर्म है जीवन देना, प्रकाश का स्वभाव है अन्धकार दूर करना। जैसे प्रात: काल पूर्व दिशा में भगवान् भास्कर के उदित होते ही अन्धकार दूर होता है, प्रवृति का कण-कण प्रफुल्लित हो उठता है, हृदय कमल खिल जाता है, मन शिव संकल्प के दिव्य भावों से परिपूर्ण हो जाता है, वैसे धर्म दिवाकर के उदित हो जाने पर संपूर्ण वसुधा में नव चैतन्य का संचार हो जाता है, प्रेम की निर्मल वारिधारा से सिञ्चित सबके हृदय एक दूसरे से जुड़ जाते हैं।

धर्म के नाम पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों ने दुनियाँ को नाना प्रकार से बहकाया, लड़ाया, धरती को बार-बार उजाड़ा और धर्म का सत्य-स्वरूप जानने नहीं दिया।

हमारे ऋषियों ने कहा था, ‘धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः’ अर्थात् जिसे श्रद्धा पूर्वक धारण किया जाये वह धर्म है, धर्म से ही प्रजाओं का धारण होता है। अग्नि का धर्म है दाहकत्व, जल का धर्म है शीतलता, सूर्य का धर्म है अन्धकार दूर करना। यदि अग्नि में दाहकत्व न रहे, जल शीतलता का परित्याग कर दे, सूर्य अन्धकार दूर करने का काम न करे, हंस नीरक्षीर विवेकित्व छोड़ दें, तो इन्हें अग्नि, जल, सूर्य और हंस कौन कहेगा? जिस तत्त्व के कारण हम मानव हैं यदि हमने उसी का परित्याग कर दिया तो हम मानव कहलाने के अधिकारी नहीं रहेंगे।

अयि प्रबुद्ध पाठकवृन्द। परमात्मा ने हमें नीरक्षीर विवेक करने में समर्थ ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रदान की है, सत्य और असत्य, नित्य और अनित्य, अच्छा और बुरा, हित और अहित, करणीय और अकरणीय का निर्णय करने में सक्षम मेधाबुद्धि प्रदान की है। सृष्टि के प्रभात काल से ही महामन्त्र गायत्री का जाप करते हुए ‘धियो यो नः प्रचोदयात्’ की प्रार्थना के साथ जिस निर्मल बुद्धि की हम कामना करते आ रहे हैं, उसी विमल बुद्धि से धर्म का स्वरूप जानकर अपने मानव जीवन को नन्दन वन और इस सृष्टि को सुख का धाम बनायें। धर्म का सामान्य अर्थ है कर्त्तव्य। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मार्ग में आने वाले पर्वत के समान कष्ट को हंसते-हंसते सहना, मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख में समभाव से कर्त्तव्य का आचरण करते रहना धर्म है। परिवार के सदस्य स्व-स्व धर्म (कर्त्तव्य) का पालन करते हुए परिवार को स्वर्ग बना देते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, राजाभोज, सम्राट्वीरविक्रमादित्य सदृश राजा, राजधर्म का पालन करते हुए इतिहास में अमर हो जाते हैं। महर्षि गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, दयानन्द प्रभृति ऋषिगण संन्यास धर्म का पालन करते हुए संपूर्ण धराधाम को ज्ञानामृत एवं प्रेमामृत से सींचकर हराभरा कर देते हैं और मानवता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अपना नाम अंकित करा जाते हैं।

धर्म का वास्तविक स्वरूप या तो हमें परमात्मा की अमरवाणी वेद में और वेदानुकूल आर्षग्रन्थों में प्राप्त होता है अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, जगदगुरुशंकराचार्य, महर्षि दयानन्द, राणाप्रताप, छत्रपति शिवाजी, स्वामी श्रद्धानन्द आदि प्रातः स्मरणीय महापुरुषों के महनीय चरित्रों के अध्ययन से प्राप्त होता है।

हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमें पवित्र भारतवर्ष में जन्म प्राप्त हुआ। इसके कण-कण में धर्म, प्रेम और मैत्री का वास है। जिस देश की रक्षा हिममण्डित देवतात्मा हिमालय प्रहरी के समान करता हो, गंगा जैसी नदियां अपने अमृत जल से जिसको युगों-युगों से सींचती हों, सागर जिसके चरण पखारता हो, जो विश्वगुरु के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित होकर संपूर्ण संसार को ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म और चरित्र की शिक्षा देता रहा हो, जिसकी धूलि को अपने माथे का चन्दन बनाने में अन्य देशवासी गौरव अनुभव करते हों, जहाँ ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, कला कौशल का अपार भण्डार हो

हम उस भारतमाता के अमर पुत्र-पुत्रियाँ हैं।

आइये! पुनः अपने ज्ञान, चिन्तन एवं आचरण की विमलवारिधारा से संसार रूपी मरुस्थल को हरा-भरा नन्दन वन बनायें, अपने ज्ञान, भक्ति एवं संकल्प दीप को प्रज्वलित कर वसुधा का अन्धकार मिटायें।

युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' और 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' 'समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः' का वैदिक उद्घोष करते हुए आर्यसमाज की स्थापना की थी, एवं उनके महान् शिष्य अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द ने गौरवशाली भारत के निर्माण के लिए गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की थी। आज अपने-अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए लज्जास्पद स्वरूप धारण कर परस्पर लड़ते हुए उच्च आदर्शों की होली जलाने वाले आर्यसमाज के कर्णधार यदि वेद, धर्म, आर्यसमाज एवं गुरुकुल के सत्यस्वरूप को अपने पवित्र हृदय में धारण करते हुए त्याग और समर्पण का उदाहरण प्रस्तुत कर सकें तो यह गुरुकुल और आर्यसमाज की सच्ची सेवा होगी।

मेरी आपके श्री चरणों में यही विनम्र प्रार्थना है कि अपने व्यक्तिगत अहंकार मानापमान को त्यागकर आर्यसमाज एवं गुरुकुल रूपी वट वृक्ष को प्रेमजल से सींचकर हरा भरा रखें। इस वृक्ष पर जो स्वादिष्ट फल लगेंगे और सुरभित पुष्प खिलेंगे उनका आस्वादन कर और शीतल छाया पाकर मानवता सजीव हो उठेगी।

प्रो० महावीर

वेदमञ्जरी

अन्धेऽपि तमसि ज्योतिष्प्रदाता

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥

ऋग् 1.100.8

ऋषयः वार्षागिरः ऋज्राश्व, अम्बरीष सहदेव भयमान-सुराधसः। **देवता** इन्द्रः। **छन्द** : त्रिष्टुप्।

(**नरः**) पुरुषार्थिनो मनुष्याः (**शवसः उत्सवेषु**) बलस्य समारोहेषु (**तं नरं**) तं नेतारम् इन्द्रम् (**अवसे**) रक्षणाय, (**तं**) तमेव नेतारं (**धनाय**) ऐश्वर्याय (**अप्सन्त**) प्राप्नुवन्ति। (**सः**) असौ नेता इन्द्रः (**अन्धे चित्**) घोरेऽपि (**तमसि**) अन्धकारे (**ज्योतिः**) प्रकाशं (**विदद्**) प्रापयति। सः (**मरुत्वान्**) प्राणवान् (**इन्द्रः**) परमेश्वरः (**नः**) अस्माकम् (**ऊती**) ऊत्यै रक्षायै (**भवतु**) जायताम्।

शूराणां क्षत्रियाणां कृते संग्रामा बलस्योत्सवा भवन्ति, यतस्तेषु तैः स्वबलप्रदर्शनाय स्ववसरः प्राप्यते। यदा यदा संसारे अधर्मस्य व्याप्तिर्धर्मस्य च ग्लानिर्जायते, यदा यदा च अधार्मिका जनाः स्वकीयराज्यविस्तारे संलग्ना भवन्ति, तदा तदा शूराः क्षत्रियजना धर्मस्य रक्षायै संग्रामस्य घोषणां कुर्वन्ति, बलस्य उत्सवांश्च आयोजयन्ति। परमेश्वरः स्वयमेव अधर्मस्य विनाशाय धर्मस्य च रक्षायै कटिबद्धोऽस्ति, अतो वीरजना अधर्मसंहारस्य संग्रामेषु तमेव स्वनेतारं कुर्वन्ति, रक्षणाय च तमेव आह्वयन्ति । यान्यैश्वर्याणि धार्मिकजनसकाशाद् आच्छिद्य अधार्मिकैः शत्रुभिः स्वहस्तगतानि कृतानि भवन्ति, तानि तत्सकाशात् प्रत्यावर्तयितुमपि ते परमप्रभोरेव शरणं व्रजन्ति। यत्सत्यं प्रभुरिन्द्रो बलस्योत्सवेषु तान् विजयिनः करोति, विपुलमैश्वर्यं चापि प्रापयति। एतादृशा एव संग्रामा अस्माकं हृदयेष्वपि चलन्ति। तत्रापि असुरसेनाया देवसेनायाश्च मध्ये घोरं युद्धं प्रवर्तते, विजयप्राप्त्यै च तीव्रं बलप्रदर्शनमपेक्ष्यते। तदापि स्मृतिपथमानीतः इन्द्रः परमेश्वरो देवसेनामेव सदा रक्षति, आध्यात्मिकान्यैश्वर्याणि च प्रयच्छति।

इन्द्रः प्रभुः अन्धेऽपि तमसि ज्योतिः प्रापयति। यदा मनः एतादृशा विकटतमसा आच्छन्नं भवति, यत् कर्तव्यस्य दिक् सर्वथा चक्षुषोरगोचरा जायते, तदापि परमेश्वरो ज्योतिषः रेखां प्रकटीकृत्य दिक्प्रदर्शनं करोति। इन्द्रः प्रभुः 'मरुत्वान्' वर्तते, प्राणवान्, समर्थः, भक्तस्य रक्षायै उत्साहवान् जागरूकश्च विद्यते। तमेव वयं प्रार्थयामहे यद् यदा यदास्माकमुपरि संकटस्य मेघा आप्लुता भवेयुः, अस्माकं तरणिश्च मध्येधारं मज्जितुकामा भवेत्, वयं विपत्पर्वतैराक्रान्ता जायेमहि, वयमसहाया भवेम, तदा तदा स आगत्य अस्मान् रक्षंत्, स्वशरणे गृह्णीयाद् विपदोऽस्मान् उद्धरेत्, अस्मान् पादयोश्च स्थापयेत्। अयि प्रभो इन्द्र। अस्माकं प्रार्थनां शृणु, निःसहायानामस्माकं सहायो भूत्वा रक्षार्थं धाव, रक्षाया वरदानं च अस्मभ्यं प्रदाय निश्चिन्तान् नः कुरु।

यास्क और उनका निरुक्त

डॉ० रामनाथ वेदालंकार,
पूर्व-आचार्य एवं उपकुलपति
वेदमन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

वैदिक निर्वचन एवं वेदार्थ के क्षेत्र में कार्य करने वाले पुरातन मनीषियों में महर्षि यास्क अग्रगण्य हैं। उनका निरुक्त क्रमबद्ध वेदभाष्य न होते हुए भी वेदभाष्यकारों के लिए परम सहायक रहा है। वेदों पर अनुसन्धान करने वालों के लिए आज भी उसकी उपयोगिता अक्षुण्ण है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष के साथ निरुक्त को भी वेदांग कहलाने का गौरव प्राप्त है। वस्तुत: वेदार्थ की दृष्टि से विचार करें तो व्याकरण और निरुक्त ही प्रमुख वेदांग हैं।

यों तो यास्काचार्य के पूर्व भी कई निरुक्तकार हो चुके थे। स्वयं यास्क ने निर्वचन-प्रसंगों में आग्रायण, औदुम्बरायण,और्णवाभ, औपमन्यव, कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गार्ग्य, गालव, चर्मशिरस्, तैटीकि, शतवलाक्ष, शाकपूणि; शाकपूणिपुत्र तथा स्थौलाष्ठीवि इन चौदह आचार्यों के मतों का उल्लेख किया है। इससे अनुमान होता है कि इन आचार्यों को प्रमाण माना जाता था। संभवत: इन सबने या इनमें से कुछ ने अपने-अपने निरुक्त भी रचे थे। परन्तु सम्प्रति केवल यास्क का ही निरुक्त उपलब्ध है।

निघण्टु कोष - यास्क का निरुक्त वैदिक कोष निघण्टु की व्याख्या है। निघण्टु विश्व के उपलब्ध कोषसाहित्य में संभवत: सबसे प्राचीन कोष है। कलेवर में बहुत छोटा होते हुए भी यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह पांच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में 17 खण्ड, द्वितीय में 22 खण्ड, तृतीय में 30 खण्ड, चतुर्थ में 3 खण्ड और पंचम में 6 खण्ड हैं। प्रथम तीन अध्यायों के खण्डों में किसी पदार्थ के या किसी क्रिया के पर्यायवाची शब्दों का परिगणन है। यथा प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड में पृथिवीवाची 21 नाम परिगणित हैं और 16 वें खण्ड में ज्वलनार्थक 11 धातुरूप पठित हैं। इस प्रकार पृथिवी, सुवर्ण, रात्रि, उषा, दिन, मनुष्य, कर्म, संग्राम आदि नामों के तथा चमकना, गति करना, स्तुति करना आदि क्रियाओं के कुल लगभग 1350 पर्यायवाची शब्द प्रथम तीन अध्यायों में संकलित है।[1] चतुर्थ अध्याय में ऐसे 278 शब्दों का संग्रह है, जिनमें प्रकृति प्रत्यय आदि का विभाग स्पष्ट नहीं है तथा जो परस्पर पर्यायवाची न होकर अपने में स्वतंत्र हैं। इनमें एक अर्थ वाले शब्द भी हैं, एक से अधिक अर्थों वाले शब्द भी। पंचम अध्याय में 151 देवताओं के नाम पठित हैं, जिनमें पुंलिंगी और स्त्रीलिंगी दोनों प्रकार के देवता हैं।

इस विषय में मतैक्य नहीं है कि यह निघण्टु कोष स्वयं यास्क ने रचा था, या उनसे प्राचीन किसी अन्य आचार्य ने। दुर्ग, स्कन्द स्वामी, जर्मन विद्वान् रॉथ, पं0 सत्यव्रत सामश्रमी, प्रो0

कर्मकर, प्रो0 सिद्धेश्वर वर्मा, प्रो0 बेल्वेल्कर आदि विद्वान् निघण्टु को यास्क से भिन्न किसी पूर्ववर्ती आचार्य द्वारा रचित मानते हैं। किन्तु वेंकट माधव, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं0 मधुसूदन आदि विद्वानों के मत में निघण्टु कोष यास्काचार्य द्वारा ही रचित है।[2] स्वयं यास्क ने इस बात का उल्लेख किया है कि कतिपय आचार्य देवताओं की गणना करते हुए उनके पर्यायवाचियों तथा विशेषणों को भी अलग-अलग गिनाते हैं, परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया है।[3] इससे प्रकट होता है कि यास्क इस निघण्टु के प्रणेता न भी रहे हों और यह ग्रन्थ किसी प्राचीनतर व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा रचित हुआ हो तथा रचियता के नाम के बिना ही परम्परा से उन्हें प्राप्त हुआ हो, तो भी निश्चय ही यास्क ने निघण्टु की व्याख्या आरम्भ करने से पूर्व उसमें अपनी मान्यता के अनुरूप कुछ संशोधन करके उसे वर्तमान रूप दिया होगा।

यास्ककृत व्याख्या - निघण्टु के पाँच अध्यायों की व्याख्या यास्क ने निरुक्त के बारह अध्यायों में की है। निरुक्त में यद्यपि निघण्टु के चौथे और पांचवें अध्यायों के समस्त शब्द व्याख्यात हो गये हैं, तथापि प्रथम तीन अध्यायों में पठित 1350 शब्दों में से कुल 230 पर ही विचार हो पाया है। बात यह है कि जो शैली यास्क ने अपनायी है, उससे यदि वे निघण्टु के सभी शब्दों की व्याख्या करते, तो निरुक्त अपने वर्तमान कलेवर से शायद सौ गुना बड़ा होता।

निरुक्त के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध में नैघण्टुक तथा नैगम काण्ड और उत्तरार्द्ध में देवत काण्ड आते हैं। नैघण्टुक काण्ड तक निघण्टु के प्रथम तीन अध्यायों की व्याख्या हुई है। नैगम काण्ड में निघण्टु के चतुर्थ अध्याय की तथा दैवत काण्ड में निघण्टु के पंचम अध्याय की व्याख्या है। पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दोनों भागों के आरम्भ में विस्तृत भूमिकाएं है। दैवत काण्ड के अन्त में दो अध्यायों का एक परिशिष्ट भी जुड़ा हुआ है।

यास्क की व्याख्या - शैली प्रायः यह है कि वे निघण्टु के एक शब्द को लेकर पहले उसका निर्वचन करते हैं, फिर वह शब्द जिसमें प्रयुक्त हुआ हो ऐसे किसी मंत्र को उदाहरणस्वरूप उद्धृत करके उसका व्याख्यान करते हैं। उस मंत्र में आये नवीन शब्दों का भी निर्वचन दर्शा देते हैं। कहीं-कहीं तो शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए जो पर्याय देना पड़े, उसका भी निर्वचन दिखा देते हैं। उदाहरणार्थ, निघण्टु के चतुर्थ अध्याय में पठित जालवाची 'निधा' शब्द की व्याख्या में वे लिखते हैं- **'निधा पाश्या भवति, यन्निधीयते। पाश्या पाशसमूहः। पाशः पाशयतेः विपाशनात्।** यहाँ पर 'निधा' के साथ उसके पर्यायवाची 'पाश्या' और उससे संबद्ध 'पाश' शब्दों का भी निर्वचन हो गया। फिर उदाहरणस्वरूप **'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्** (ऋ0 10,76,11) मंत्र उद्धृत करके उसमें प्रयुक्त सुपर्ण, ध्वान्त तथा चक्षु शब्दों का भी निर्वचन कर देते हैं तथा 'नाधृ' और 'पृ' धातु के अर्थों पर भी प्रकाश डालते हैं।[4]

निर्वचन में सतर्कता - यास्क ने निर्वचनों में सतर्कता बरतने का तथा हर शब्द में मूल धातु तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न किया है। निरुक्त पूर्वार्द्ध की भूमिका में उन्होंने इसका भी विस्तार से निरुपण किया है कि निर्वचनकर्ता को किन नियमों का ध्यान रखना चाहिए तथा क्या सावधानी बरतनी चाहिए। वे कहते हैं कि ऐसे शब्द स्वल्प ही हैं, जिनमें प्रकृति-प्रत्यय स्पष्ट हो तथा जिनका निर्वचन आसानी से हो सकता हो। अतः वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविकार, गुण-वृद्धि एवं सम्प्रसारण आदि के नियमों से अभिज्ञ होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, वर्णविकार के नियम से अपरिचित मनुष्य 'ज्योति' शब्द के निर्वचन के लिए जकार से आरम्भ होने वाली कोई धातु खोजने का यत्न करेगा, जबकि यह शब्द चमकना अर्थ वाली 'द्युत्' धातु से बना है। संभव है 'वधू' शब्द को मारना अर्थ वाली वध् (हन्) धातु से निकला हुआ मानकर कोई यह कल्पना करने लगे कि पुराने समय में बहुओं को इतना कष्ट दिया जाता था कि वे मर ही जाती थीं, या उनकी हत्या कर दी जाती थी, इसी कारण उनका 'वधू' नाम पड़ा। परन्तु असलियत यह है कि यह शब्द **'लाना'** अर्थ वाली **'वह्'** धातु से बना है। विवाहोपरान्त पतिगृह में लायी जाने के कारण वह वधू (बहू) कहलाती है। इसी कारण ऊति, मृदु, पृथु आदि शब्दों को क्रमशः अव्, म्रद्, प्रथ् आदि धातुओं से बनाने के लिए सम्प्रसारण के नियम का परिज्ञान आवश्यक है।

निर्वचन के लिए प्रादेशिक भाषाओं के ज्ञान का महत्व भी यास्क खूब समझते थे। उदाहरण के तौर पर उन्होंने 'शव' और 'दात्र' शब्दों को लिया है। उनके समय में जाने के अर्थ में 'शव' धातु कम्बोज प्रदेशों में ही बोली जाती थी, जबकि उससे बना 'शव' शब्द, जिसका अर्थ 'मुर्दा' होता है, आर्यावर्त में भी प्रचलित था। इसी प्रकार काटने के अर्थ में 'दा' धातु पूर्वी प्रदेशों में ही प्रचलित थी, परन्तु उससे बना दराती-वाची 'दात्र' शब्द उत्तरी प्रदेशों में भी प्रयोग में आता था। निर्वचन कर्ता को यदि कम्बोज तथा पूर्वी प्रदेशों की भाषा का ज्ञान न होता तो निश्चय ही वह 'शव' एवं 'दात्र' शब्दों की सही निरुक्त नहीं कर सकता था।[5]

आज का भाषाविज्ञानी भी प्रादेशिक भाषाओं तथा अपने वर्ग की विदेशी भाषाओं के ज्ञान को सर्वथा अनिवार्य मानता है। आज पंजाबी, गुजराती, मराठी, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन, अतालयी आदि के तुलनात्मक अध्ययन से भारत-यूरोपीय भाषावर्ग की भाषाओं के विकास के विषय में अनेक तथ्य सामने आये हैं।

सब नाम-पद धातुज - महर्षि यास्क ने शब्दों के चार विभाग किये हैं - नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। वे प्रत्येक नाम शब्द को धातुज मानते थे। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि जितनी धातुएँ सम्प्रति हमारे पास धातुकोष में विद्यमान हैं, उनमें से ही किसी न किसी से प्रत्येक शब्द की उत्पत्ति हुई है। अब तक हमें जितनी वैदिक एवं लौकिक धातुएँ ज्ञात हैं, उनके अतिरिक्त भी अनेक नवीन धातुएँ शोध से पता लगायी जा सकती हैं। सभी नाम शब्द धातुज है। या नहीं, इस

विषय में यास्क से पूर्व दो मत प्रचलित थे। महान् वैयाकरण शाकटायन ने सभी नाम शब्दों को धातु निष्पन्न माना था। परन्तु आचार्य गार्ग्य का कथन था कि उन्हीं शब्दों को धातुज मानना चाहिए, जिनमें प्रकृति प्रत्यय आदि का विभाग स्पष्ट पता चलता हो तथा जो व्याकरण से सिद्ध हो सकते हों, शेष को उनके अर्थों में रूढ़ मानना चाहिए। यास्क ने गार्ग्य पक्ष की सब युक्तियों को तर्क से निरस्त करके अपने-अपने पक्ष की सत्यता प्रमाणित की है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि किसी शब्द में धातु समझ में न आती हों, तो भी हार न मानकर अनुसंधान में सतत् प्रवृत्त रहना चाहिए। शब्द का वर्तमान संस्कार कैसे हुआ, यह पता न भी चलता हो उसकी परवाह नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शब्दों की वृत्तियाँ बड़ी पेचीदा होती है।[9]

सूक्ष्म दृष्टि - भाषाविज्ञान सम्मत अनेक बातें यास्क ने अपने निरुक्त में तभी लिख दी थीं, जब आधुनिक भाषाविज्ञान की नींव भी नहीं पड़ी थी। ये इस सिद्धान्त से परिचित थे कि कुछ शब्द ध्वनिमूलक (ओनोमेटोपेइक) होते हैं। उनके मतानुसार 'काक' शब्द 'काओ-काओ' ध्वनि के तथा 'दुन्दुभि' शब्द 'दुन्-दुन्' ध्वनि के अनुकरण पर ही बने हैं।

वज्रवाचक 'कुत्स' शब्द को वे छेदनार्थक 'कृत्' धातु से निष्पन्न करते हैं, 'पुलुकाम'[10] को 'पुरु-काम' से और 'पुल्वध'[11] को 'पुरु-अध' से बनाते हैं। इससे प्रकट है कि ऋवर्ण के कहीं-कहीं 'उ' हो जाने और र तथा ल के परस्पर रूपान्तर के नियमों से वे अवगत थे। अनेक शब्दों में आद्यन्त-विपर्यय हो जाने की बात भी उन्हें ज्ञात थी, तभी तो उन्होंने सिंह[12] को हिंस् से, पृश्नि[13] को स्पर्श से एवं स्तोक, रज्जु, सिकता तथा तर्कु[14] को क्रमशः श्चुत्, सृज कस् और कृत् धातुओं से बनाया है।

वे जानते थे कि बहुत से शब्दों में नवीन वर्ण का आगम हो जाने से धातु का रूप अस्पष्ट हो जाता है। इसके लिए उन्होंने 'द्वार[15] शब्द का उदाहरण दिया है। वेद में दरवाजे के अर्थ में 'वार'[16] और 'द्वार' दोनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं। द्वार में 'द्' का आगम हो जाने से 'वृ' धातु का स्वरूप छिप गया है। यह भी उनके ध्यान में था कहीं-कहीं मूल धातु का एक भी अक्षर अवशिष्ट न रहकर सर्वथा नवीन सा ही शब्द बन जाता है, जैसे 'वह्' धातु से बना 'ओध'[17] शब्द।

निर्वचनों की अर्थानुसारिता - यास्क निर्वचन में अर्थ को विशेष महत्व देते हैं।[18] यदि किसी शब्द के अनेक अर्थ हैं और एक ही निर्वचन सब अर्थों में संगत नहीं होता, तो भिन्न-भिन्न निर्वचन दर्शाते हैं। यथा, नैगम काण्ड में 'निचुम्पुण' शब्द के तीन अर्थ बतलाये हैं- सोम, समुद्र और यज्ञ। तीनों पक्षों में भिन्न निर्वचन किया है।[19] 'वृक' शब्द सात अर्थों का वाचक है- 'वज्र, चोर, चन्द्रमा, आदित्य, कुत्ता, भेड़िया और हल। चन्द्रमा अर्थ में भिन्न निर्वचन है; शेष अर्थों में 'वृजी' वर्जने या वि पूर्वक 'कृती' छेदने धातु संगत हो सकती है।[20] 'अकूपार' शब्द के तीन वाच्यार्थ हैं- इन्द्र,

समुद्र और कछुआ। तीनों अर्थों में यास्क ने भिन्न निर्वचन दर्शाये हैं।[21]

एकाधिक निर्वचनों का रहस्य - यास्क ने बहुत से शब्दों के एकाधिक निर्वचन किये हैं ओर उन्हें 'वा' शब्द से जोड़ा है। 'वा का विकल्प अर्थ लेकर कई आलोचकों का कथन है कि यास्क स्वयं दुविधा की स्थिति में हैं और वे कई निर्वचन देकर पाठकों पर छोड़ देते हैं कि इनमें से जो अच्छा लगे वह स्वीकार कर लो। किन्तु 'वा' शब्द के विकल्प और समुच्चय दोनों अर्थ होते हैं।[22] निर्वचनों में प्रयुक्त 'वा' शब्द समुच्चयार्थक लेना उचित है। अनेक निर्वचन उस-उस पदार्थ के वेदवर्णित या शब्द की आकृति से सूचित होने वाले अनेक गुण-कर्मों को सूचित करते हैं। **उदाहरणार्थ** - मरुतो मितराविणो वा, मितरोचनो वा, महद् द्रवन्तीति वा,[23] मरुतों के इन निर्वचनों से सूचित होने वाले तीनों गुण अतिशय शब्द करना, अतिशय चमकना और महागतिशील होना वेद के मरुत्सूक्त में कई स्थलों पर वर्णित हुए हैं। **पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्यः, परो जेता वा, परो जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्,**[२४] 'पर्जन्य' शब्द के इन निर्वचनों से सूचित गुण उसका तृप्तिकर्ता एवं जनिहेतु होना, परमजेता होना, परम जनयिता होना और रसों का प्रकृष्ट अर्जयिता होना भी प्रसिद्ध है। तथा वेदों में भी वर्णित है। वृक्ष शब्द से पेड़ के दो गुण सूचित होते हैं। पहला यह कि वह काटा जाता है (व्रश्च् छेदने)। शाखाएँ काट देने पर पुनः वृक्ष में नवीन शाखाएँ निकल आती है, यह विशेषता वृक्ष में ही है, अन्य जीवों में नहीं। दूसरे, वृक्ष 'क्षा' अर्थात् भूमि को वरण करके (वृ) खड़ा रहता है, अन्य जीवों के समान स्थानान्तरगति नहीं करता। इन्हीं विशेषताओं के कारण यास्क ने 'वृक्ष' शब्द का निर्वचन किया है- **वृक्षों व्रश्चनात्, वृत्वा क्षां तिष्ठतीति वा।**[२५] इस दृष्टि से किसी शब्द के यास्ककृत एकाधिक निर्वचनों पर विचार करें तो अधिकांश निर्वचनों का औचित्य गृहीत हो सकता है।

क्या यास्ककृत निर्वचन अन्तिम हैं? - आधुनिक भाषा विज्ञान की कसौटी पर यास्क के निर्वचनों में से आधे से अधिक निर्वचन खरे उतरे हैं। तथापि यास्क के प्रत्येक निर्वचन को अन्तिम रूप से प्रामाणिक या एकमात्र वही ग्राह्य है ऐसा नहीं माना जा सकता। स्वयं वैदिक संहिताओं में निर्वचन की दिशाओं का संकेत मिलता है, और ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक आदि साहित्य में भी शब्द-निर्वचन किये गए हैं। 'रुद्र' शब्द का यास्ककृत निर्वचन है - **'रुद्रो रौतीति सतः, रोरूयमाणो द्रवतीति वा, रोदयते र्वा।**[२६] इस निर्वचन पर प्रश्नचिन्ह न लगाते हुए भी स्वामीदयानन्द संरस्वती के **(रुद्रं) यो रुत् रोगं द्रावयति तम्**[२८] इस निर्वचन को अतिरिक्त मान्यता क्यों न दी जाए, जबकि रुद्र-सूक्त में रुद्र का भेषजधारी तथा रोग निवारक होना वर्णित भी किया गया है?[28] यास्क इस दृष्टि से हमारे वन्दनीय हैं कि उन्होंने वैदिक निर्वचन-शास्त्र एकविज्ञान के रूप में विस्तृत तथा विशद रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। उसका चरम विकास अभी प्रतीक्षित हैं। भूत, वर्तमान तथा भविष्य के निर्वचनशास्त्रियों के योगदान से वह सम्पन्न होना है। षड् वेदांगों में जो निरुक्त की गणना की गयी

है, वह यास्कीय निरुक्त की नहीं, अपितु निरुक्तशास्त्र या निर्वचन-विज्ञान की है।

संदर्भ संकेत :

1. इस गणना में पाठान्तर में अधिक पठित शब्द सम्मिलित नहीं है।
2. द्र0 भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग 2 1976,पृ0 182-191
3. द्र0 निरुक्त, अध्याय 7 खण्ड 13।
4. द्र0 निरुक्त, अध्याय 4, खण्ड 3, शब्द 2, सुपर्णाः सुपतना आदित्यरश्मयः। (नाधमाना) याचमानाः। अपोर्णुहि आध्वस्तं चक्षु। चक्षुः ख्यातेर्वा चष्टेर्वा। पूर्धि-पूरय देहीति वा।
5. अथापि प्रकृतय एवैकेषु भाष्यन्ते विकृतय एकेषु। शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते, विकारमस्यार्येषु भाषन्ते शव इति। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु। निरुक्त अध्याय 2, खण्ड 2।
6. न त्वेव न निर्ब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियेत; विषयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। निरुक्त, अध्याय 2, खण्ड 1।
7. काक इति शब्दानुकृतिस्तदिदं शकुनिषु बहुलम्। निरुक्त 3.18
8. दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणम्। निरुक्त 1.12
9. कुत्स इत्येतत् कृन्ततेः। निरुक्त 2.11
10. पुलुकामः पुरुकामः। निरुक्त 9.4
11. क्व स्य पुल्वधो मृगः, क्व स बह्वादी मृगः। निरुक्त 13.3
12. सिंहः सहनात्, हिंसेर्वा स्याद् विपरीतस्य। निरुक्त 3.17
13. पृश्निः आदित्यो भवति - संस्प्रष्टा रसान्, संस्प्रष्टा भासं ज्योतिषां, संस्पृष्टो भासेति वा। अथ द्यौः संस्पृष्टा ज्योतिर्भिः पुण्यकृद्भिश्च निरुक्त 2.14
14. अथाप्याद्यन्तविपर्ययो भवति, स्तोका रज्जुः सिकतास्तर्क्विति। निरुक्त 2.1
15. अथापि वर्णोपजन - आस्थद्, द्वारो, भरूजेति। निरुक्त 2.2
16. नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्र संसर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्। ऋ0 5.85.3
17. अथाप्यन्तव्यापत्तिर्भवति - आघो मेघो नाघो वधूर्मध्विति। निरुक्त 2.1.2
18. अर्थनित्यः परीक्षेत। वही
19. निचुम्पुणः सोमो निचान्तपृणो निचमनेन प्रीणाति।- समुद्रोऽपि निचुम्पुण उच्यते, निचमनेन पूर्यते। अवभृथोऽपि निचुम्पुण उच्यते, नीचैरस्मिन् क्वणन्ति, नीचैर्दधतीति वा। निरुक्त 5.17.18।

20. वृक वज्र, निघं0 2.20; स्तेन निघं 3.24। वृश्चन्द्रमा भवति विवृतज्योतिष्को वा, विकृतज्योतिष्को वा, विक्रान्तज्योतिष्को वा। - आदित्योऽपि वृक उच्यते यदावृङ्क्ते। - श्वापि वृक उच्यते, विकर्तनात्। निरुक्त 5.20.21। - वृको लाङ्गलं भवति, विकर्तनात्। निरुक्त 6.26।

21. विद्याम तस्य ते वयम् अ-कु-परणस्य दानस्य। आदित्योऽप्यकूपार उच्यते, अकूपारो भवति दूरपार:। समुद्रोऽप्यकूपार उच्यते, अकूपारो भवति, महापार:। कच्छपोऽप्यकूपार उच्यते, अकूपारो न कूपम् ऋच्छतीति। निरुक्त 4.18

22. वेति विचारणार्थे - अथापि समुच्चयार्थे भवति। निरुक्त 1.4।

23. निरुक्त 11.11.। 24. निरुक्त 10.11। 25. निरुक्त 2.6। 26. निरुक्त 10.6। 27. ऋ0 6. 49.10 दयानन्दभाष्य।

28. त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभि: शतं हिमा अशीय भेषजेभि:। व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूची:।। ऋ0 2.33

यम के अनुष्ठान का फल

आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
पूर्व-आचार्य एवं उपकुलपति
गु0 का0वि0वि0हरिद्वार

अहिंसा-अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।।

योग0 2।35।।

अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर, अहिंसा की दृढ़ स्थिति होने पर, अहिंसा की सिद्धि हो जाने पर उस के समीपवर्ती प्राणियों में भी वैर का त्याग हो जाता है।

जब कोई योगी जाति, देश, काल और समय (प्रसंग विशेष) की सीमाओं तो तोड़ कर सब प्रकार से, सब समयों में, सब प्राणियों के प्रति मन, वचन और कर्म से अहिंसा पूर्वक व्यवहार करता है तो फिर शनैः शनैः वह इस अहिंसा के पालन में सुप्रतिष्ठित हो जाता है। इस अहिंसा में सुप्रतिष्ठित हो जाने पर जहाँ फिर संसार के किसी भी प्राणी के प्रति किञ्चित् भी, कहीं भी, कुछ भी वैर भाव उस योगी में नही रह पाता तो फिर वहाँ उस के संग के रंग से अन्यों में भी वैरभाव का अभाव हो जाता है। यहाँ तक कि उसके प्रभाव से हिंस्र स्वभाव वाले प्राणी भी अपने हिंस्र स्वभाव को छोड़ देते हैं। मन, वचन, कर्म से सच्चे अहिंसक योगियों की यह पहचान होती है।

यों तो एक व्यक्ति अपने हण्टर के आतंक से सर्कस में बकरी और शेर को भी एक पात्र में पानी पिला देता है, पर योगी के अपने आन्तरिक अहिंसक जीवन का एक ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है जिससे प्रभावित हुए-हुए ये हिंस्र प्राणी भी अपना वैरभाव छोड़कर सहज ही उसके समीप विचरने लगते हैं। महात्मा नारायण स्वामी जी योगरहस्य[१] में इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि-''छोटे बालक सर्वथा निर्दोष होते हैं। उनकी भीतरी अहिंसा आदि (निर्दोषता) की झलक, उन बच्चों की भोली आंखों, उन के भोले चेहरे की आकृति आदि से देखने वालों को आ जाया करती है। कई बार देखा और सुना गया है कि इस प्रकार के बालकों को भेड़िया उठा ले गया, परन्तु उनकी अहिंसा पूर्ण आंखों को देखते ही भेड़ियों के भीतर से हिंसावृत्ति जाती रही और ऐसे बच्चों को मारने के बजाए, उन भेड़ियों ने उनकी रक्षा की, और उन्हें पाल, पोस कर बड़ा किया। ऐसे ही भेड़ियों के द्वारा पाला हुआ एक 13-14 वर्ष का बालक इटावा के कलेक्टर द्वारा आर्यसमाज बरेली के अनाथालय में लाया गया था। उस में अधिकतर बातें भेड़ियों की, जैसे चबड़-चबड़ कर पानी पीना आदि उस समय भी बाकी थीं। मनुष्य का हृदय भी अहिंसा के अभ्यास से जब ऐसा ही निर्दोष हो जाता है तो तब उसके साथ भी कोई वैर नहीं कर सकता।

[१]अमेरिका के एक तपस्वी थोरियौ के लिए किसी ने लिखा है कि जब वह वाल्डन नामक झील के किनारे रहता हुआ अहिंसा का अभ्यास करता था तो उसके शरीर से शहद की मक्खियां लिपट जाती थीं, परन्तु कोई भी मक्खी उसे डसती नहीं थी, बिच्छू पांव से लिपट जाते थे, परन्तु

---

१. योगरहस्य पृष्ठ ९ (लेखक महात्मा नारायण स्वामी)

२. Walden by thoreau

वे उसे डंक नहीं मारते थे[१]।'' इसी प्रकार की बात महाकवि बाण ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''हर्षचरित'' में लिखी है। आपने एक जगह लिखा है कि एक बार राजा हर्षवर्धन एक तपोभूमि में गया, जहाँ का आचार्य दिवाकर था और जहाँ अनेक ब्रह्मचारी शिक्षा पाते थे। वहाँ राजा ने देखा कि उन अहिंसक गुरु-शिष्यों के प्रभाव से सिंहों ने उनके लिए हिंसावृत्ति को त्याग दिया था और वे उनकी तपोभूमि में उसी प्रकार रहते थे जैसे पाले हुए घरेलू कुत्ते।

सत्य-सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।। योग0 ।। 2।36

सत्य में प्रतिष्ठित हो जाने पर, सत्य के पूर्णतया स्थित हो जाने पर, योगी की वाणी में क्रिया और फल का आश्रयत्व हो जाता है। अर्थात् योगी जब मन, वचन और कर्म से सतत सत्य का आचरण करता है तो फिर उसकी वाणी अमोघ हो जाती है, अर्थात् फिर वह वाणी फिर कभी व्यर्थ नहीं जाती है। ऐसी स्थिति में फिर वह जो कुछ भी कहता है वह पूर्ण होता है। यदि वह किसी को कहता है कि- (धार्मिको भूया इति भवति धार्मिकः।) तू धार्मिक हो जा तो फिर वह धार्मिक हो जाता है। और अगर वह किसी को यह कहता है कि -(स्वर्गं प्राप्नुहीति स्वर्गं प्राप्नोति।) तू स्वर्ग को, सुख विशेष को प्राप्त हो जा तो फिर वह व्यक्ति स्वर्ग अर्थात् सुखविशेष को ही प्राप्त हो जाता है। ऋषिवर दयानन्द के शब्दों में कहा जाए तो यह कहा जा सकता है कि-''सत्याचरण का ठीक-ठीक फल यह है कि जब मनुष्य निश्चय करके केवल सत्य ही मानता, (सत्य ही) बोलता और (सत्य ही) करता है, तब वह जो-जो योग्य काम करता और करना चाहता है, वे-वे सब (काम उसके) सफल हो जाते हैं।'' जैसे महात्मा गांधी जी यदि किसी को खादी पहनने का उपदेश करते थे तो वह व्यक्ति बड़ी श्रद्धा से खादी पहनना आरम्भ कर देता था। अगर वे किसी को देश की स्वतन्त्रता के लिए कार्य करने का उपदेश देते थे तो फिर वह व्यक्ति अपने सब कार्यों को छोड़ कर उस कार्य में ही लग जाता था। पर यदि उसी खादी पहनने की बात वा देश पर बलिदान हो जाने की बात कोई हमारे जैसा व्यक्ति करता था, तो उसको उत्तर मिलता था कि-''बकवास बन्द करो, हमें जो अच्छा लगेगा हम वही पहनेंगे, और जो अच्छा लगेगा हम वही करेंगे।'' तभी कहा गया है कि सत्य के अभ्यासी की वाणी अमोघ होती है, अप्रतिहत फल वाली होती है, सदा सफल और सुफल होती है।

अस्तेय-अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।। योग0 2।37

अस्तेय में प्रतिष्ठित होने पर, चोरी के त्यागने में अर्थात् चोरी न करने में मन, वचन और कर्म से निश्छल हो जाने पर सब रत्न प्राप्त होने लगते हैं।

मनुष्य की जब नीयत शुद्ध हो जाती है तो फिर वह मन से भी, कभी भी, किसी दूसरे की वस्तु की स्पृहा नहीं करता, चाहना नहीं करता। ऐसे निर्लोभी, ऐसे निःस्पृह व्यक्ति को फिर

जीवन में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहती। सभी वस्तुएं उसे तब सहज ही स्वयमेव प्राप्त होने लगती हैं। चहुं ओर के लोगों में उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास बढ़ने लगता है। यही अस्तेय का फल है।

वेद में साधक को इस स्थिति तक पहुंचाने के लिए अपने ढंग से बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया गया है, वह यह कि-"मा गृध:" हे साधक! तू बाहर से किसी की वस्तु को उठने वा चुराने की बात तो दूर रही, तू तो मन से भी किसी की वस्तु वा स्थान आदि को अभिलाषा भरी दृष्टि से न देख। सचमुच जिस दिन साधक मन की इस लालसा पर, इस स्पृहा वृत्ति पर विजय पा लेता है. उसी दिन से वह अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है। और जिस दिन वह अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसी दिन से ही चहुं ओर से उसके प्रति श्रद्धा बढ़ने लगती है और हर एक फिर अपना धन-वैभव उसको समर्पण करने में सुख अनुभव करता है।

ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ 2।38

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाने पर, ब्रह्मचर्य में दृढ़ स्थिति हो जाने पर वीर्य का लाभ होता है।

जो योगी निश्चय से ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता है (ब्रह्म में विचरण करता हुआ उसका चिन्तन भी करता है, उसको जानने के लिए ब्रह्म-वेद में भी विचरण करता है। अर्थात् वह उसका भी स्वाध्याय करता है तो) उसको उस अभ्यास के सुदृढ़ हो जाने पर अतिशय वीर्य का लाभ होता है। अर्थात् उसकी सामर्थ्य बहुत बढ़ जाती है। भोजवृत्ति के अनुसार-"वीर्यनिरोधो हि ब्रह्मचर्यम्।" वीर्य का रोकना ही ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार उस योगी के शरीर में वीर्य बढ़ने से शरीर, इन्द्रिय और मन अधिक बलवान् हो जाते हैं। अर्थात् उसका देहबल, मनोबल और ऐन्द्रियिक बल खूब बढ़ जाता है। इससे उसकी विचार-शक्ति जो योग के मार्ग में अत्यन्त सहायक होती है, वह भी बढ़ जाती है। अत: साधक-योगी को चाहिए कि वह अपनी सफलता के लिए जी-जान से ब्रह्मचर्य का पालन करे।

अपरिग्रह-अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ योग0 2।39

अपरिग्रह के स्थिर हो जाने पर, अपरिग्रह के संसिद्ध हो जाने पर जन्म क्यों हुआ, कैसे हुआ इत्यादि का सम्यक् बोध हो जाता है।

साधक को यह ध्यान रखना चाहिए कि केवल बाह्य पदार्थों का, कवल भोग के साधनों का संग्रह न करना ही अपरिग्रह नहीं कहलाता, केवल संसार के विषयों के ग्रहण करने की इच्छा का परित्याग करना ही अपरिग्रह नहीं कहलाता, जैसे कि प्राय: समझा जाता है, वरन् अपने शरीर में ममत्व का परित्याग भी अपरिग्रह कहलाता है। क्योंकि जब साधक की अपने शरीर में ममता

नहीं रहती तो तभी उसका उस में राग भी छूट जाता है, जो आगे चलकर उसके तत्त्वबोध का हेतु-कारण बन जाता है।

अतः साधक-योगी को चाहिए कि वह पहले बाहरी पदार्थों के परिग्रह करने, संग्रह करने की वृत्ति का परित्याग करे, फिर स्त्री-पुत्र आदि-आदि का ममत्व छोड़े। पुनः अपने शरीर में भी ममत्व करने से बचे तो इस क्रम से शनैःशनैः उसकी वृत्ति अन्तर्मुख होती जायेगी, और अन्त में उसके अपरिग्रह के पूर्ण सिद्ध हो जाने पर उस को यह बोध हो जायेगा कि "मैं कौन था, कैसा था, क्यों था, अब क्या हूँ, कैसा हूँ, क्यों हूँ, आगे क्या हूंगा, कैसा हूंगा, क्यों हूंगा इत्यादि।"

वास्तव में जब तक यह मानव अपने चहुं ओर के नानाविध पदार्थों से-धन-धान्य, सोने-चांदी, कार-कोठी, जमीन-जायदादों आदि से घिरा हुआ है, अपने स्त्री-पुत्रों से, [१]पोते-पोतियों से, दोहते-दोहतियों आदि-आदि से घिरा हुआ है, अपने शरीर आदि की ममता से घिरा हुआ है, तब तो यह इन सब से आगे बढ़ कर कुछ सोच ही नहीं सकता। यों तो यह प्रभु का ही नाम जपता रहता है, यों तो यह पीले और गेरुए वस्त्र पहन कर वानप्रस्थ और संन्यास का ही प्रदर्शन कर रहा होता है, पर भीतर से इसे इन सब पदार्थों की टूट-फूट को देखने और उसकी मरम्मत करवाने वा उसको [१]चोर-डाकू आदि से बचाए रखने की चिन्ता से ही फुरसत नहीं मिलती, अवकाश नहीं मिलता। इन पदार्थों से यदि वह सौभाग्यवश कुछ आगे बढ़ भी गया तो फिर इसका स्त्री-पुत्र, पुत्र-पौत्र, दुहितृ-दौहित्र आदि में अत्यन्त ममत्व होने से उनकी देखभाल से ही इसे फुरसत नहीं होती, उनकी चिन्ता से ही इसे मुक्ति नहीं मिलती। फिर अपने शरीर में अत्यन्त ममत्व होने से तो उसके खान-पान, उसके रहन-सहन, उसके दवा दारु की ही चिन्ता से जब इसके मन को मुक्ति नहीं मिलती तो फिर भला ऐसा व्यक्ति किस प्रकार अन्तर्मुख होकर अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर हो सकता है? तभी ही तो शनैः शनैः ब्रह्म सर्वविध पदार्थों से, स्थानों से, व्यक्तियों से पुनः अपने शरीर आदि से मन से भी पृथक् हट-हट कर भीतर की ओर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया गया है।

ये सब सिद्धियां, ये सब फल अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि यमों की स्थिरता से प्राप्त होते हैं।

---

१. जैसे आर्य विरक्त वानप्रस्थ-आश्रम में एक वानप्रस्थी महानुभाव थे, ९५ के होने के उपरान्त भी पोते-पोतियों, दोहते-दोहतियों में मोहवश इतने फंसे हुए थे कि उन्होंने एक ऐसी निधि बनाई थी कि जिसमें से उसके मरणोपरान्त भी सभी पोते-पोतियों, दोहते-दोहतियों के विवाहों में इतने-इतने वस्त्र रुपया आदि दिया जाए इत्यादि।

२. चन्दौसी में एक व्यक्ति जिसकी आयु ९०-१०० के मध्य थी, उसकी अपनी तो कोई सन्तान नहीं थी, हां भाई का एक बेटा ही उसने गोद लिया हुआ था। वह और उसके भाई का सब परिवर एक मकान

में रहता था। साथ वाले मकान में भाई का जामाता सपरिवार रहता था। सामने वाले दोनों मकानों में से एक में उसके भाई के जामाता के भांजे रहते थे। दूसरे में भाई के जामाता की पहली शादी की ससुराल रहती थी। इन चारों मकानों का एक ही मुख्य द्वार था, छत भी ऐसी थी कि चारों पर आसानी से घूमा जा सकता था। अत: यह ९०-१०१ वर्ष का बूढ़ा सज्जन रात-रात को जब-जब भी उसकी आंख खुलती थी, चारों छतों पर घूम-घूम कर देखता रहता था, यह विचार कर कि-''ये सब तो बेहोश सोए रहते हैं, कहीं इन्हें चोर, डाकू लूट न ले जाएं इत्यादि।'' अब जिसके ममत्व का क्षेत्र ऐसा है, वह भला रात को इन एकान्त वेलाओं में अपने इस ममत्व के क्षेत्र को बींध कर कैसे अन्तर्मुख हो सकता है? इसलिए आत्मविवेक के लिए अपरिग्रह की बहुत आवश्यकता है।

वैदिक वाङ्मय में विश्वामित्र का अवदान

डॉ० लता गर्ग
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
मु०ला०एण्ड जय ना०खे० गर्ल्स कॉलिज, सहारनपुर

विश्वामित्र के नाम की सार्थकता सम्पूर्ण विश्व का मित्र होने से है- **''विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्रं आस विश्वं ह्यस्मै मित्रं भवति य एवं वेद''**[1] ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 33वें तथा 53वें सूक्त में इनका परिचय कुशिक गोत्रोत्पन्न होने से कौशिक कहकर दिया गया है। ये कौशिक लोग महान् ज्ञानी थे, संसार के रहस्यों के ज्ञाता थे (3/29/15)। ये अत्यन्त सामर्थ्यशाली तेजों के जनयिता, अध्वर्यु आदि के उपदेष्टा तथा अतीन्द्रियार्थ द्रष्टा थे।[2] महाभारत तथा पुराणों में गाधिपुत्र के रूप में इनके आविर्भाव की कथा वर्णित हैं। ये गोत्रकार ऋषियों में परिगणित किये जाते हैं तथा सप्त ऋषियों में स्थित होकर आज भी विश्व के कल्याण में संलग्न हैं। महाभारत के आदि पर्व अ0 62/36 में महर्षि विश्वामित्र का चरित्र तेजस्वी, महातपस्वी, जितेन्द्रिय रूप में व्यक्त किया गया है।[3]

सायणाचार्य तैत्तिरीय आरण्यक के सूत्र का भाष्य करते हुए स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि अपौरुषेय वेद का कोई कर्त्ता नहीं है तथापि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की कृपा से मंत्रों को पाने वाले ऋषियों को ही मंत्रकृत् कहा गया है। ऋषि कहे जाने वाले तप:पूत तेजस्वी पात्र, धर्म और संस्कृति के मूर्त रूप कहे जा सकते हैं। धर्मशास्त्रों में धर्म का जो सूक्ष्म विवेचन है उसको साकार करने वाले ऋषि ही हैं। दशममण्डलात्मक ऋग्वेद के मण्डलों का संगठन ऋषियों की दृष्टि से किया गया हैं।

विश्वामित्र का वैदिक वाङ्मय के लिये महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विश्वामित्र का ऋषित्व चारों वेदों में परिलक्षित होता है। विश्वामित्र ने अपनी समाधि से उत्पन्न प्रज्ञा द्वारा अनेक मंत्र रूपों का साक्षात्कार किया। इसलिये ये मंत्रद्रष्टा ऋषि रूप में प्रसिद्ध हुए। ऋग्वेद के दस मण्डलों में से तृतीय मण्डल (जिसमें 62 सूक्त हैं) के द्रष्टा विश्वामित्र हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम, नवम तथा दशम मण्डल के कतिपय ऋचाओं के द्रष्टा विश्वामित्र के मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्र हैं। सामवेद के आग्नेय काण्ड के 1-6 अध्याय के मंत्रों के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं। इसी प्रकार सामवेद के उत्तरार्चिका के प्रथम, द्वितीय, त्रयोदश, पञ्चदश, षोडश तथा एकोनविंश अध्याय के कतिपय मंत्रों के द्रष्टा ऋषि विश्वामित्र हैं। जिनके देवता, सोम, इन्द्र, सविता आदि हैं। इन मंत्रों में विश्वामित्र के द्वारा सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक तथा आचारगत पर्याप्त पुष्ट ज्ञान प्रस्तुत किया गया हैं।

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न हैं। संस्कृति उन गुणों का समन्वय है, जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। इसमें संस्कृति के अर्थचिंतन

तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं सम्मिलित हैं जो सहज रूप से मानव व्यक्तित्व और जीवन को समृद्ध बनाती हैं। विश्वामित्र द्वारा जो भी मन्त्रों के माध्यम से सांस्कृतिक ज्ञान प्रस्तुत किया गया वह मानव जीवन और व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों को समझने तथा उन्नत बनाने में पूर्णतया सक्षम है जिसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है..........

आर्यो का दार्शनिक चिन्तन ऋग्वेद से ही प्रारम्भ होता है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, उत्पत्ति, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि दार्शनिक विषयों का ऋग्वेद में गहन चिन्तन किया गया हैं। अग्नि के आश्रय से कार्यों को सिद्ध करने का विवेचन किया गया हैं।[4] ऋग्वेद के 3/11/8 सूक्त में विद्वान् सृष्टि ओर आत्मविद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं। ऋग्वेद के 3/31/9 सूक्त में कहा गया है कि मोक्ष की इच्छा करने वाले लोग मोक्ष की इच्छा करें तथा विद्वानों के संग रहकर धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करके शीघ्र ही अन्तःकरण और आत्मा की शुद्धि करें। ऋग्वेद के 3/31/1 सूक्त में मनुष्यों के नित्य कर्म तथा 3/62/9 सूक्त में परमात्मा के विषय को स्पष्ट किया गया है।

यजुर्वेद के 36/3 सूक्त में कहा गया है- जो मनुष्यकर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर परमात्मा के साथ अपनी आत्मा युक्त करते हैं वे धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं। इन विभिन्न स्थलों पर ऋत और सत्य, नित्यता और अनित्यता, परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, ज्ञान, कर्म, उपासना, सृष्टि क्रम, मन, प्राण शरीर, जन्म, बन्ध, परलोक, स्वर्ग, नरक, योग मोक्ष आदि विषयों का व्यापक चिन्तन किया गया है। इस दृष्टि से संकेत मात्र के लिये कुछ उदाहरण दिये जा सकते हैं। सत्य के पालन पर बल दिया गया है।[5] ऋग्वेद के 3/4/7 सूक्त में ऋत की प्रशंसा की गई है। ऋग्वेद के 3/3/8 सूक्त में केवल परमात्मा की उपासना पर बल दिया गया हैं। आत्मा को परमात्मा में लगाकर समर्पित करने से मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया हैं।[6] यह विषय परवर्त्ती वेदान्त दर्शन में विस्तृत रूप से वर्णित है। वेदान्त में आत्मा परमात्मा का ही अंग है। **''एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा कर्माध्यक्षः सर्वभूताधि वासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च''** (श्वेताश्वतर 6/11-12) कहते हुए तत्व प्रदीपिका में साक्षी रूप आत्मा को विशुद्ध रूप में प्रतिपादित किया गया है। यह विचार श्रृंखला आस्तिकता की घोषणा करती हुई सभी दर्शनों यथा शंकराचार्य के अद्वैतवाद में, रामानुज के विशिष्टाद्वैत वाद में वल्लभाचार्य के शुद्ध द्वैतवाद में तथा पुष्टि मार्गीय भक्त समुदाय में व्याप्त दिखाई देती है। ऋग्वेद में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन भी हुआ हैं। ऋग्वेद के 3/9/05 सूक्त में ब्रह्मचर्य विद्या, योगाभ्यास, धर्मपालन तथा सत्पुरुषों के संग से आत्मा द्वारा परमात्मा को पाने का प्रयत्न परिलक्षित होता हैं। ऋग्वेद के 3/8/3 सूक्त में मनुष्य के कार्य बताते हुए वैदिक युग की सामाजिक परिस्थितियों के विषय पर प्रकाश डाला गया हैं।

स्त्री, पुरुष, सन्तान, विद्यार्थी, विद्वान्, अध्यापक आदि के कर्त्तव्य, स्वभाव तथा गुणादि को वर्णित किया गया हैं। यजुर्वेद के 11/69 सूक्त में कहा गया है कि स्त्री अच्छी बुद्धि से सुख के लिये प्रयत्न करें, खाद्य पदार्थ रुचिकारक बनाये, किसी को दुःख न दे तथा किसी के साथ बैर बुद्धि न रखे। अन्यत्र यजुर्वेद के 11/65 सूक्त में स्त्री को पतिव्रता होने तथा पति के साथ मिलकर चलने की शिक्षा दी गई हैं। महाभारत से ज्ञात होता है कि ऋषि देवकर्म और पितृकर्म के प्रति श्रद्धा रखने वाले थे तथा धैर्य और सहिष्णुता से युक्त थे।[16]

ऋषि ने मनुष्य के कर्त्तव्यों का निर्देश भी किया है जैसे बड़ आदि वृक्ष जड़, स्कन्ध आदि से बढ़ते है वैसे ही पुरुषार्थ के साथ विद्याओं का प्रचार कर मनुष्यों को बढ़ना चाहिये।[17] ऋग्वेद के 3/12/3 सूक्त में कहा गया है कि मनुष्यों को मूर्ख लोगों का संग त्याग कर और विद्वानों के संग से अच्छा आचरण कर ऐश्वर्य का संग्रह करना चाहिये।

वैदिक वाङ्मय प्रधानतया धर्मपरक हैं, अतः इस युग के धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में बहुत विशद रूप से परिचय मिलता हैं। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में धर्म से सम्बन्धित अनेक तथ्य उपलब्ध हैं। प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति आदि से धर्म सुखें को प्राप्त करने[17] तथा ऋग्वेद के 3/9/12 सूक्त में अहिंसा धर्म का संग्रह करने का उपदेश दिया गया हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद के 3/12/7 सूक्त में ऋषि कहते हैं कि जिस प्रकार सृष्टि में सूर्य आदि पदार्थ नियम के साथ अपने मार्ग पर चलते हैं, उसी प्रकार मनुष्यों को भी धर्मयुक्त मार्ग पर चलना चाहिये। ऋग्वेद के 3/33/7 सूक्त में ऋषि कहते हैं कि धर्म सम्बन्धी काम करके दुष्ट पुरुषों के निवारण के लिये अपना पराक्रम दिखाना चाहिये। ऋग्वेद के 3/58/7 सूक्त में हिंसादि अधर्म व्यवहार के त्यागने का विषय प्रकट किया है। यजुर्वेद के 18/63 सूक्त में कहा है कि मनुष्य यज्ञ को धर्म से प्राप्त हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से सांगोपांग रूप से सिद्ध करें। इस प्रकार किये गए कर्म ही प्राणियों के लिये उपकारी होते हैं। अथर्ववेद के 5/15/1-11 सूक्त में विघ्नों के हटाने का उपदेश देते हुए पुरुषार्थ पूर्वक परमेश्वर का आश्रय लेने का आग्रह निहित हैं।

वैदिक युग की शासन व्यवस्था और राजनीतिक चिन्तन का विस्तृत परिचय विश्वामित्र के विचारों से प्राप्त होता हैं। वैदिक युग में बड़े-बड़े राज्य नहीं थे अपितु आर्य अनेक कबीलों में बंटे हुए थे। वैदिक युग की शासन व्यवस्था के संचालन के लिये राजा नियुक्त होता था। यजुर्वेद के 7/35 सूक्त से ज्ञात होता है कि राजा का कर्त्तव्य राज्य की रक्षा करना था। ऋग्वेद के 3/7/3 सूक्त में कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य सब प्रजाओं को अच्छी प्रकार से वास कराता है उसी प्रकार राजा भी सुशिक्षित तथा रक्षा की हुई प्रजाओं को बसाकर सुखी करता हैं। सम्पूर्ण प्रजा और राजाओं के कर्तव्यों को स्पष्ट करते हुए कहा गया कि लोगों को स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए और स्वामी को भी चाहिये कि धर्मयुक्त कर्मों से निरन्तर प्रजाओं का पालन करे।[18] इसी

प्रकार ऋग्वेद के 3/34/61 सूक्त में राजा और प्रजाजनों को अनिष्ट आचरण को स्वीकार न करने का उपदेश दिया हैं। परवर्ती धर्म ग्रन्थों में इन्हीं विचारों की छाया दृष्टिगत होती है। मनुस्मति में कहा गया है कि शासक निरकुंश नहीं हो सकता।[19] राज्य और राजा के अस्तित्व का आधार धर्म है और धर्म पालन तथा धर्म की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। राजा को जितेन्द्रिय होना चाहिए तथा कामजन्य, क्रोधजन्य, व्यसनों से दूर रहना चाहिये।[20] इसी प्रकार आलस्यरहित हो प्रजा का पालन करने का उपदेश भी दिया गया हैं।[21] ऋग्वेद के 3/34/9 सूक्त में सेनापति और सभाध्यक्ष द्वारा निरन्तर अभ्यास द्वारा सेना को बलवान् बनाने का आग्रह परिलक्षित होता हैं। यजुर्वेद के 7/38 सूक्त में सेनापति और सभाध्यक्ष को उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट करने और शत्रु को जीत कर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन करने का परामर्श दिया गया हैं।

ऋषि विश्वामित्र शिल्पज्ञान से भी परिचित थे। मन्त्रों के द्वारा इन्होंने तत्कालीन आर्यों के शिल्प का जो परिचय दिया है वह अनुपम है। ऋग्वैदिक आर्य सम्भवत: आकाशगामी विमानों से परिचित थे। ऋग्वेद के आख्यानों में विमानों के प्रयोग का वर्णन आता हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि लोग विमानयानों को अग्नि आदि से रचते हैं वे अभीष्ट को प्राप्त करते हैं (ऋग्वेद 3/58/8)। ऋग्वेद के 3/58/9 सूक्त में शिल्पजनों के विषय में कहा गया हैं कि जो मनुष्य शिल्पविद्या से कलायन्त्रों का निर्माण करके वाहनादि को रचते हैं वे अपने गृहकुल और देश में पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद के 3/58/8 सूक्त में शिल्पविद्यासिद्ध यान से आने जाने के विषय का वर्णन, ऋग्वेद के 3/58/1 सूक्त में शिल्पजन के कार्य का विवेचन है। ऋग्वेद के 3/58/6 सूक्त में शिल्पिजनों के साथ मित्रता पर भी बल दिया गया है।

आर्थिक दृष्टि से चिन्तन करते हुए ज्ञात होता है कि ऋषि विश्वामित्र ने कृषि एवं पशुपालन पर बल दिया। धातु, वस्त्र, वास्तु, शस्त्रादि उद्योगों का वर्णन भी किया। अश्व यान, वाहन, नौका, नदी और समुद्र व्यापार कर संकेत दिया गया है। शिल्पविद्या के ज्ञाता लोगों के द्वारा पदार्थों के क्रय विक्रय से धनी होने की बात भी स्वीकार की गई हैं। चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान पर भी विचार किया गया है। अथर्ववेद में 3/17/1-9 सूक्त में खेती की विद्या का उपदेश स्पष्ट करते हुए कहा कि मनुष्य खेती को मन लगाकर करने से तथा अन्नवान् और धनवान् बनकर आनन्दित होता है। उत्तम अश्व विद्या का उल्लेख ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 45वें सूक्त के प्रथम मंत्र में किया गया है। जल, पृथ्वी, गौ, धान्य, तृण, जल स्थान और कुल्या आदि साधनों से ऐश्वर्य की वृद्धि का कथन इनके आर्थिक दृष्टिकोण को प्रकट करता हैं।[22] शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में भी ऋषि ने पर्याप्त विचार किया हैं। ऋग्वेद के 3/1/15 सूक्त में विद्वान् ब्राह्मण को ही पढ़ाने का उत्तरदायित्व देने का आग्रह दिखाई देता है। तभी प्रजा को अच्छी शिक्षा की प्राप्ति हो सकती हैं।

इसके साथ ही अधिक ज्ञानी, अहिंसक, जितेन्द्रिय विद्वान् का चयन श्रेयस्कर कहा गया (ऋग्वेद 3/2/8)। विद्यार्थी को कुछ प्रताड़ना देकर विद्या ग्रहण कराने की आवश्यकता पर बल दिया गया (3/2/1)। ऋषि विश्वामित्र स्त्री शिक्षा के भी पक्षपाती दिखाई देते हैं। विदूषी स्त्रियों द्वारा कन्याओं की शिक्षा का कथन किया गया हैं। ये शिक्षाएं नैतिक सदाचार और भौतिक सम्बन्धी कोई भी हो सकती हैं।23 ऋग्वेद के 3/9/2 सूक्त में तीन अग्नियों विद्युत्, भूमिगत और सूर्य ज्योति का ज्ञान प्राप्त कर अध्यापन करने के लिये कहा गया।

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण के बालकाण्ड में वर्णन मिलता है कि महर्षि विश्वामित्र ने राम को बला व अतिबला नामक विद्यायें तथा सभी शास्त्रों का ज्ञान प्रदान किया तथा ये राम की चिन्मय लीलाओं के साक्षी रहे। महर्षि वसिष्ठ के साथ विश्वामित्र का विवाद लोक शिक्षा का ही एक रूप है। जिसमें गो महिमा, त्याग, क्षमा, तपस्या, उद्यम आदि गुणों को अपनाने की प्रेरणा दी गई है। जिसमें इनका अलौकिक दिव्यरूप (रा. बाल.27/1-26) योद्धा तथा याज्ञिक रूप (रा. बाल. 28/1-22) प्रकट किया गया है। रामायण के प्रसंगों से इनका क्रोधी (59/16-22), तपस्वी (रा. बला. 16/1-24), कल्याणकारी, रक्षक स्वभाव (72/1-27) द्योतित होता है।

साहित्यिक दृष्टि से भी ऋषि के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। अपने भावों को व्यक्त करने के लिये सुन्दर कल्पनाओं का सहारा लिया है। यथा उषस् सूक्त। उषस् सूक्त इसका सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। उषा समस्त विश्व द्वारा वरणीय है, दिव्य गुणों से युक्त पुरातनी युवती है। यह सदा नवीन रहने वाली तथा सूर्य की ध्वजा है। (3/61/3), वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती है, स्वर्ग को सजीव करती हुई द्युलोक से पृथ्वी लोक तक व्याप्त हो जाती है।24 सूक्तियों का प्रयोग भी ऋग्वेद के 3/10/4 सूक्त में द्रष्टव्य हैं। यथा सुमति शसि वस्वः (धन के साथ उत्तम बुद्धि की आवश्यकता (3/4/01), ऋतं..... अनुव्रत (सत्य के अनुसार चलना (3/4/07), **स यन्ता विप्रः एषां** (ज्ञानी ही मनुष्यों का शासक हो सकता हैं (3/14/3), **व्रतं ऋतमिव न आहुरनुव्रतं** (नियमसे चलने वाला पुरुष ही सत्यभाषण कर सकता है (3/7/8) आदि सूक्तियाँ सार्वकालिक सत्य को प्रकाशित करती हुई जन कल्याण में उपयोगी है। अलंकारों में उपमा अलंकार का अधिक प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास और रूपक की छटा भी दर्शनीय है।

राष्ट्रीय एकता पर भी बल दिया गया है। क्योंकि एकता से ही शत्रु को परास्त किया जा सकता है - पुरुमायः सहसे सं जिहिते (3/51/4) अर्थात् बहुत कुशलता वाले मनुष्य शत्रुओं को हराने के लिये मिलकर यत्न करते हैं। इसके लिये आवश्यकता है विचार तथा ज्ञान की एकता की। इसलिये ऋषि कहते हैं.....**भारती भारतीभिः सजोषाः, सरस्वती सारस्वतेभिः** (3/4/8)।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है ऋषि विश्वामित्र ने जो भी विषय प्रतिपादित किये हैं वे मानव मात्र का कल्याण करने वाले हैं। परमज्ञान की प्राप्ति का विषय हो अथवा आचरण की शुद्धता का, सत्कर्म का विषय हो, अथवा कामक्रोधादि विकारों के साहित्य का अथवा राजनीति का - सभी प्रकार का ज्ञान ऋषि ने प्रस्तुत किया है। आवश्यकता है इस ज्ञान को समझने और अपनाने की, तभी मनुष्य सच्चे अर्थों में मानव कहलाने का अधिकारी हो सकता है और दुष्कर्मों से दूर रहकर सत्य को प्राप्त कर सकता है। वेद स्वयं कहता है-

''ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृत:'':

संदर्भ-संकेत

1. क. ऐतरेय ब्राह्मण 6/20
   ख. विश्व मित्रमस्येति विश्वामित्र, सायण ऋग्, 3/1824
2. ऋग्वेद 3/33/5, 3/53
3. महाभातर 62/36
4. ऋग्वेद 3/9/9
5. वहीं. 3/30/6
6. वही, 3/10/3
7. गीता 2/47
8. ऋग्वेद 3/2/1
9. वहीं 9/6
10. महा. शान्तिपर्व, अध्याय 41/96, 97.99
11. ऋग्वेद 3/8/3
12. वही 7/6
13. वही 7/3
14. मनु0 7/43
15. ऋग्वेद 3/7 44-46
16. वही 7/53
17. ऋग्वेद 3/45/3
18. वही 33/1
19. वही 6124

''यज्ञीय पशुहिंसाप्रसङ्गे ''आलभन-'' ''संज्ञापन''-''विशसन''-शब्दानां विवेचनम्''।

डॉ० श्रीमती कृष्णा आचार्य
संस्कृत-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा।

वैदिक संस्कृतेराधारत्वेनस्वीक्रियमाणेषुतत्त्वेषु यज्ञोऽन्यतमं स्थानं विभर्ति। यज्ञस्यमहत्त्वमधिकृत्य शास्त्रेष्वनल्पमुल्लेखं वर्तते। तद्यथा-यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म[1]। यज्ञोहिश्रेष्ठतमं कर्म[2]। एदत् वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञ:[3]। देवरथो वाएष यद्यज्ञ:[4]। यज्ञो वै सुतर्मा नौ:[5]। सैषा त्रयी विद्या यज्ञ:[6]। प्रजापतिर्यज्ञ:[7]। सर्वेषां वाऽएष भूतानां सर्वेषां देवानामात्मायद्यज्ञ:[8]। एवंयज्ञो लोकेऽस्मिन् साक्षादैश्वर्यरूप:, सुखसम्पादक:, पापादिरोगाणां शोधको वर्तते। यज् धातुना ''नङ्'' प्रत्ययकृते सति ''यज्ञ:'' शब्द: सिद्धयति[9]। यज् धातुर्देवपूजासङ्गतिकरण-दानाद्यर्थेषु प्रसिद्धा:। देवपूजा'' इत्यस्मिन्पदे देव शब्दो दिवु धातुना निष्पद्यते[10]। धातुरेष: निम्नलिखितेषु दश अर्थेषु विद्यते[11]।

(1) क्रीड़ा (2) विजिगीषा (3) व्यवहार: (4) द्युति: (5) स्तुति: (6) मोद (7) मद (8) स्वप्न (9) कान्ति: (10) गति:।

गते: पुनस्त्रयोऽर्था भवन्ति। ज्ञानगमनप्राप्तिश्चेति।

पूजा-सत्कार:-यथायोग्य व्यवहार:।

अनेकार्था हि धातव: इति नियमाद् देवशब्दोऽपि अनेकार्थक:। आलोच्यप्रसङ्गे देवपूजा पदेन अधोलिखिता त्रयोऽर्थासंसूच्यन्ते।

(1) परमेश्वरस्य पूजा=उपासना
(2) प्राकृतानामग्न्यादीनां तत्त्वानां पूजा = एषां गुण-संवर्धनेन प्राणिनां कल्याणाय उपयोग करणम्।
(3) विदुषां परोपकारिणां जनानां पूजा = तेषां- सर्वतोभावेन सेवाशुश्रुषा।

संगतिकरणम्-प्राकृतानां पदार्थानां उपयोग-दृष्ट्या संयोजनं = संगतिकरणं भवति। यथा वैज्ञानिका विविधान् पदार्थान् संयोज्य विविधं शिल्पविज्ञानम् आविश्ष्कुर्वन्ति। एतत्सर्वं यज्ञमेवास्ति।

दानम् - परोपकारााययत्किञ्चिदद्दीयते तद् दानम्

एवं देवपूजासंगति करणदानात्मकस्ययज्ञ शब्दस्य प्रयोगक्षेत्रमितिविशालमस्ति। यजुर्वेदभाष्ये महर्षिणा दयानन्देन यज्ञ शब्दम् इत्थं व्याख्यातम्।

''धात्वर्थाद्यज्ञार्थस्त्रिविधो भवति-विद्या ज्ञान धर्मानुष्ठान वृद्धानांदेवानां विदुषामैहिकपार लौकिक सुखसम्पादनाय सत्करणम् सम्यक् पदार्थ गुण संमेलविरोधज्ञान संगत्याशिल्पविद्या प्रत्यक्षीकरणं। नित्य विद्वत्समागमानुष्ठानं च विद्यासुख धर्मादि शुभ गुणानां नित्यं दानकरणम्।''[12]

उपर्युक्तं विवेचनंयज्ञस्य व्यापकात्वं स्पष्टयति।

वस्तुतस्तु यज्ञस्य सम्बन्धं मूलरूपेण सतत क्रियाशील सृष्टेरुत्पत्ति: प्रक्रियया सह वर्तते।

विविधा वैदिकयज्ञा ब्रह्माण्डस्य पिण्डस्य च रचनाकृतिं प्रतीकात्मक शैल्यां प्रकटयन्ति। अतएव ऋग्वेदे वर्णनमस्ति यद्-''यज्ञेन- यज्ञमयजन्त: देवा: तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्''[13] यज्ञवेदे: पृथिव्या: पराेऽन्त: निर्दिष्टा यज्ञोऽयं विश्वस्य भुवनस्य नाभिरूपेण - उल्लिखितोऽस्ति।[14] मैत्रायणीय संहितायामुल्लेखोवर्तते-ऋतं वै सत्यं यज्ञ:[15]। इत्थंसृष्टेशाश्वत नियमै: सह यज्ञस्य अन्विति वर्तते। शाश्वतान् नियमान् विज्ञापयितुं तथा च आध्यात्मिकस्य आधिदैविकस्य च वेदार्थस्य ज्ञानाय लौकिकयज्ञानां कल्पना अकारिसाक्षात्कृत धर्मभि: ऋषिभि:। आदौ यज्ञानां कल्पनामूले सात्विका भावावैज्ञानिका च दृष्टिरासीत्। एषां यज्ञानांसम्बन्ध आधिदैविक सृष्ट्या सह आसीत्। यथा-अहोरात्रेण सह अग्निहोत्र यज्ञस्य सम्बन्ध:। मासस्य कृष्णपक्षेण सह ''दर्शेष्टि:'' यज्ञस्य, शुक्लपक्षेण सह-चातुर्मास्य यज्ञानाम्।[16]

तेषु यज्ञेषु अवैदिकाचरणानां ऐन्द्रुजालिकादि कृत्यानां सुरामांसादितामसिकपदार्थानां च लेशमात्रमपि सम्बन्धो नासीत्। परन्तु उत्तरकाले यज्ञेषु अवैदिकाचरणानां सुरामांसादिपदार्थानां प्रयोगोऽभूत्।

प्रश्नोऽयं समुदेति यत् वैदिकसाहित्ये यज्ञस्य विशेषणम् ''अध्वर'' शब्दो वर्तते। अयं शब्द: सर्वत्र हिंसांप्रतिषेधयति[17]।

गो शब्दस्य विशेषणम् ''अध्न्या''-हन्तुमयोग्या वर्तते[18]। महदाश्चर्यस्य अयं विषयो यत् ''अध्वर'' विशेषेण विशिष्टे यज्ञे ''अध्न्या'' विशेषेण विशिष्टा गावो हन्यन्ते स्म। हननक्रियायां ''आलभन्'' ''संज्ञपन'' ''विशसन'' एतेत्रय: शब्दा: एव प्राधान्येन गृहीता सन्ति।

मूलत: एषां अर्थोहिंसायां न विद्यते। परं सायण उब्बट, महीधर, प्रभृतिभिर्भारतीय विद्वद्भिश्च एते शब्दा: हिंसार्थे स्वीकृता:/एषामर्थ विषयकं विवेचनमेव अस्य शोधपत्रस्य विषयोऽस्ति्।

वैदिकसाहित्येसहस्राधिकाहिंसार्थका: शब्दा: सन्ति। परं तेषां प्रयोगोयज्ञीय पशुहिंसाप्रसङ्गेषु न कृत: भाष्यकारै: परमाश्चार्यस्यायं विषयोयद् ''आलभते''- 'संज्ञपयति' इत्यादिनाम् अहिंसार्थकानां पदानांहिंसार्थके विनियोग: कृत:। अत्रेदमप्यवधेयं यद्येषु येषु स्थलेषु आलभन संज्ञपयादिशब्दानां साहाय्येन संहितासु पशुहिंसाया विधानं कृतंभाष्यकारै:, तेषु तेषु स्थलेषु उत्तरकालीनं सूत्र साहित्यमेव प्रमाणत्वेनोद्धृतम्।

अस्मिन् शोधलेखे ''आलभनम्'' ''संज्ञपनम्'' ''विशसनम्'' शब्दा अनयादृष्ट्या समालोचिता यच्चेत् संहिताकारैर्यज्ञेषुहिंसा अपेक्षिता आसीत्। तर्हिसहस्राधिक हिंसार्थकप्रतिपादकेषु शब्देषु विद्यमानेषु सति ईदृशा: शब्दा: कथं प्रयुक्ता ये खलुसन्ति अहिंसार्थका:?

आलभनम् -:

पाणिनीय धातुपाठे लभ् धातु:प्राप्तेऽर्थेऽस्ति[19]। आङ् उपसर्गपूर्वकं लभ् धातो: प्रयोग: स्पर्शार्थेऽपि भवति। वस्तुन: प्राप्त्या सह स्पर्शार्थसम्बन्धोऽनन्य एवास्ति। विनास्पर्शं वस्तुन: प्रापणं असंभवम्। अत: हस्तेन हस्ताभ्यां वा वस्तुन: प्राप्तिरेव स्पर्शार्थस्य अभिप्रायोऽस्ति इत्थं स्पर्शपूर्विका प्राप्तरेव ''आलभनम्'' पदस्य अर्थो भवति।

वैदिक वाङ्मये बहव: सन्दर्भास्तादृशा: सन्ति येषु आलभनपदस्य प्रयोग: स्फुटेन

स्पर्शपूर्विकाप्राप्तिरेवास्ति। तद्यथा-''अक्षान्यद् बभूनालभे'' सायणाचार्यो भाष्यं कुर्वन् लिखत्यत्र बभून्बभ्रूवर्णान्-अक्षान् देवनम् (क्रीडनम्) साधनभ्रूतान् आलभे देवितुं स्पृशामीतियत्। आङ्पूर्वो लभि: स्पर्शार्थ:[20]। अत्र आलभे इत्यनया क्रियाया: प्रयोग: अर्थश्च स्पष्टरूपेण स्पर्शार्थे एव अस्ति। एवमेव अन्येषु स्थलेषु-अपि अयमेवार्थो विद्यते। तद्यथा ''अथैतानष्टौ विरूपानालभते''[21]। द्रष्टव्मत्र स्वामिदयानन्दभाष्यम्-आलभते समन्तात् प्राप्नोति। पारस्कर गृह्यसूत्रे-''दक्षिणमसंमधि हृदयालभते''[22]। अर्थात् वरो वध्वा: दक्षिणतो हृदयं स्पृशति। उपनयन संस्कारे च ''आचार्योऽस्य दक्षिणसंमधि हृदयमालभते''[23]। अत्रापि हृदयस्यस्पर्शनिर्देशो विद्यते।

''कुमारं जातं पुरान्यैरालम्भात् सर्पिमधुनी हिरण्येन प्राशयेत्'' अत्रपारस्कर गृह्यसूत्रे जातकर्मप्रकरणेऽपि ''अन्यैरालम्भात्'' इत्यस्य पदस्य अर्थोऽस्ति अन्यै: स्पर्शात् पूर्वंजातं शिशुंस्वर्णशलाकया घृतं मधुं वा प्राशयेत्। अत्र सर्वत्र ''आलभन'' शब्दस्यार्थ स्पर्शपूर्विका प्राप्तिरेवास्ति् इदमेव हृदयालभनम् वर्तते।

उपर्युक्तैरुद्धरणै: स्पष्टं यत् आङ् पूर्वको लभ् धातु: प्राप्ताद्यर्थेषु विद्यते। परन्तु याज्ञिका यज्ञप्रसङ्गे धातोरस्य प्रयोगं हिंसार्थेप्राणापहरणे च स्वीकुर्वन्ति। ''आलभन'' इत्यनेन शब्देन सह मारणार्थ: कथं युक्त:? इति विचारार्ह:। पाणिनीय धातुपाठे तथा च वैदिक शब्दकोशे निघष्टौ नास्ति लभ् धातु हिंसार्थक:। काशकृत्स्नीय धातुपाठेऽपि लभ् धातोरर्थ: प्राप्तिरेवास्ति[24]। काशिकायामुद्घृते ''अग्निष्टोम आलभ्य'' अस्मिन्नुद्धरणेऽपि ''आलभ''-शब्दस्यार्थ: प्राप्तिरेवास्ति। सु श्रुतसंहितायां कल्पस्थाने ''आलभेतासकृद्दीन: करेण च शिरोरूहान[25]'' अस्मिन् वाक्येऽपि ''आलभन'' पदस्यार्थ: स्पर्श एवास्ति। महीधरेणयजुर्वेदभाष्ये ''आलभ'' शब्दस्य नियोजनार्थोऽपि प्रतिपादित:[26]।

संज्ञपनम् -

शब्दोऽयं सम् पूर्वकेण ज्ञा धातुनासह ल्युट् प्रत्यय कृते सति निष्पन्नो भवति। पाणिनिना धातुरयं-''मारणतोषण निशामनावबोधन नियोगेष्वर्थेषु पठित[27]''। वैदिक संहितासु-संज्ञपनम् संज्ञपयति, संज्ञपयाति इत्यादय: विरला: प्रयोगा एव दृश्यन्तें तेषामपि च प्रकरणानुकूलं हिंसार्थो नास्तिं संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृद:। अथोभगस्य यच्छ्रान्तं तेन संज्ञपयामि व:[28]।।

अथर्ववेदीयेऽस्मिन्मन्त्रे ''संज्ञपनम्'' तथा संज्ञपयामि शब्दयोरर्थो हिंसायां नास्ति। प्रमाणरूपेण सायणभाष्यमत्र अवलोकनीयम् -

हे सामनस्यकामा: (व:) युष्माकम् (मनस:) ज्ञान साधनस्य इन्द्रियस्य (संज्ञपनम्) सम्यक् ज्ञान जननं येन कर्मणा भवति तत्कर्म करोमीत्यर्थ:।

संजानान् प्रयुङ्क्ते इत्यस्मिन्नर्थे ''हेतुमति च'' (पा0 3.1.26) इति निच्। तत: पुकि ''मारणतोषण निशामनेषु ज्ञा'' इति मित्त्वात् मितां हृस्व:पाठ 6.4.92 इति हृस्वत्वम्। नैन्दिग्रहिपचादिभ्य: पा0 3. 1.134 इति ''ल्यु'' प्रत्यय:। (अथो) अपिच (हृद:) हृदयस्य मनसोऽपि आधारभूतस्य (संज्ञपनम्)

समानज्ञानजननं करोमि। (अथो) अपिच (भगस्य) एतत् संज्ञस्य सौभाग्यकरस्य देवस्य (यच्छ्रान्तम्) श्रमजनितं तपोऽस्ति। (श्राम्यत्वस्मिन्निति श्रान्तम्) (तेन) श्रमजनित तपसा (व:) युष्मान् सांमनस्यकामान् (संज्ञपयामि) समानज्ञानान् करोमि।

अत्र भाष्ये सायणेन संज्ञपनादिशब्दा: मारणार्थे वर्तमानेन ज्ञा धातुनैव साधितास्तथापि हिंसार्थे न व्याख्याता:। यतो हि प्रकरणानुसारमत्र हिंसार्थो न विद्यते।।

ऋग्वेदे, शुक्लयजुर्वेदे, सामवेदे च संज्ञपनादय: शब्दा: प्राप्यन्त एव न। अनेन अनुमीयते यत् संहिताकाले ज्ञा धातु: हिंसार्थे (मारणार्थे) नासीत् ब्राह्मणग्रंथेषु ज्ञा धातुर्हिंसार्थं प्रकटयति। पुनरपि केचन प्रसङ्गेषु धातुरयं अवबोधनार्थेऽपिप्रयुक्ता:।

विशसनम् - वि उपसर्गपूर्वकं शसुहिंसायाम् इत्यस्माद्धातोर्निष्पन्नो “विशसनम्” इत्ययं शब्दो हिंसासार्थक एव ऋग्वेदादिसंहितासु वर्तते। परन्तु तत्तत्स्थलेषु यज्ञीय पशुहिंसाया: प्रसङ्गो नास्ति संहितेतरवैदिक वाङ्मये तु यज्ञीयपशु हिंसाप्रसङ्गे एव प्रयुक्तोऽयं शब्द।

---

(1) - शत0 ब्रा0= 1.7.1.5

(2) - तैत्ति0 ब्रा0= 3.2.1.4

(3) - तदेव = 3.3.7.7

(4) - ऐत ब्रा= 2.37, कौ0 ब्रा0= 77

(5) - ऐत0 ब्रा0= 1.13

(6) - शत0 ब्रा0= 1.1.4.3

(7) - ऐत0 ब्रा0= 2.17, तैत्ति0 ब्रा0= 3.2.3.1, शत0 ब्रा0 1.1.1.13

(8) - शत0 ब्रा0= 14.3.2.1

(9) - यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्। अष्टा0= 3.3.90

(10) - यजदेवपूजासङ्गतिकरणदानेषुंभ्वादि0- 728

(11) - दिवु क्रीडाविजिगीषा व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। पा0 धातु0 दिवादिगण प्रथमोधातु:।

(12) - यजुर्वेदभाष्य-महर्षिदयानन्द: 1.2

(13) - ऋग्वेद-10.90.16 देवा सूर्यरश्मयोयज्ञेनाग्निनासौरेण तेजसा यज्ञमग्निं पार्थिवमाग्निमयजन्तो वर्धयन्त। द्र0 नि0-12.41 ब्रह्ममुनिभाष्यम्।

(14) - इयं वेदि: परोऽन्त: पृथिव्या अयं सोमोवृष्णो अश्वस्यरेत:। अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:। अथर्ववेद- 9.10.14

(15) - मैत्र0 सं0 = 1.10.12

(16) - भैषज्य यज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्मादतुसन्धिषु प्रयुजयन्तें ऋतु सन्धिषु हि व्याधिर्जायते। कौ0 ब्रा0 = 5.1

(17) - द्र0 निरुक्त।

(18) - शुक्ल यजु0 - 1.1 द्र0 स्वामी दयानन्द भाष्य

(19) - डुलष् प्राप्तौ। पा0 धातुपाठ भ्वा0 694

(20) - द्र0 सायण भाष्य अथर्ववेद0 7.114.7.

(21) - शुक्ल यजु0 30.22। द्र0 सायंणभाष्यं अथर्व0 2.9.4 अविदन्- लम्भयन्तु=प्रापयन्तु। तदेव 11.1.15-लम्भयिता प्रापयिता। सायणभाष्य काण्वसंहिताअन्वालेभिरे=अन्वालभन्ते=संस्पृशन्ति। सायण भाष्यम् तैत्तिरीय संहिता-आलभेत-संस्पृशेत।

(22) - पारस्करगृह्यसुत्र - 1.5.8.

(23) - तदेव - 2.2.16.

(24) - काशकृत्स्न धातु व्याख्यानम् पृ0= 94

(25) - सुश्रुतसंहिता कल्पस्थान 1.22

(26) - द्र0 महीधर भाष्यंम्-यजुर्वेद= 24.11.

(27) - पा0 धातुपाठ भ्वादि0 553 क्रमा0 40 चुरा0। 75

(28) - अथर्ववेद - 6.74.2

'ध्वनि तत्त्व' - आचार्य मम्मट के मत में

डॉ० उमा जैन
मु0ला0एण्ड जय ना0खे0 गर्ल्स कॉलिज
सहारनपुर

भारतीय काव्यशास्त्र के चिन्तन की यात्रा में ध्वनि एक ऐसा प्रकाश स्तम्भ है जो काव्य कुंज में ललित लावण्य के मधुर भाव भर रहा है। आनन्दवर्धन इस चिन्तनमाला के मध्यवर्ती सुमन हैं, ध्वनिसम्प्रदाय उनकी प्रतिभा का एक सुन्दर उपवन है। अभिनवगुप्त ने अपनी प्रखर प्रज्ञा एवं विशद विवेचन के द्वारा ध्वनि विषयक समस्त भ्रान्तियों एवं आक्षेपों को निर्मूल सिद्ध कर दिया, साथ ही भरत के रस सूत्र की व्यञ्जना परक व्याख्या कर ध्वनि सम्प्रदाय को सुदृढ़ सम्बल भी दिया। ध्वनि सिद्धान्त यदि मम्मट की प्रतिभा का पीयूष न पाता तो बाल्यावस्था में ही काल कलवित हो जाता। न ललना में लावण्य रहता, न सौन्दर्य का निर्झर बहता। आचार्य मम्मट ने अपनी प्रौढ़ प्रतिभा के बल पर ध्वनि विरोधियों के प्रबल प्रहारों को उचित उत्तर भी दिया साथ ही प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत कर ध्वनि मार्ग का परिमार्जन भी किया। पुनः विश्वनाथ जगन्नाथ आदि प्रमुख आचार्यों ने ध्वनि मार्ग को प्रशस्त किया।

आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि की स्थापना काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक स्वर्णिम उपलब्धि है। व्यञ्जना वृत्ति द्वारा प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति ध्वनि है। प्रतीयमान अर्थ ललना में लावण्य के समान काव्य की निराली वस्तु है[1], जो सहृदय संवेद्य होने के कारण केवल महाकवियों की वाणी का ही विषय है।[2] सर्वप्रथम ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि के स्वरूप की विशद विवेचना करते हुए कहा है कि जहाँ शब्द और अर्थ अपने वाच्यार्थ को गौण बनाकर उस व्यंग्य रूप विशेष अर्थ को व्यक्त करते हैं, उस काव्य विशेष को काव्य-कोविदों ने ध्वनि कहा है।[3] इस प्रकार ध्वनि एक विशेष प्रकार का काव्य है जिसमें वाचक शब्द अपने वाच्यार्थ को एवं वाच्य अर्थ स्वयं अपने स्वरूप को गौण करके व्यंग्य अर्थ को प्रधान रूप से अभिव्यक्त करते हैं। अतः प्रतीयमान अर्थ का प्रधान रूप से व्यञ्जक काव्य विशेष ध्वनि कहलाता है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में ध्वनि शब्द का प्रयोग सर्वत्र प्रतीयमान प्रधान काव्य विशेष के ही अर्थ में किया है।[4] यदि वाच्यार्थ की अपेक्षा प्रतीयमान अर्थ अतिशयित होता है तो उस काव्य को गुणीभूत व्यंग्य काव्य कहा जाता है।[5]

गुणीभूत व्यंग्य भी ध्वनि निष्यन्द रूप परम रमणीय होता है।[6] रस आदि की दृष्टि से तो वह पुनः ध्वनि रूपता को प्राप्त हो जाता हैं।[7] इस प्रकार ध्वनिकार के अनुसार व्यंग्य अर्थ के गौण एवं प्रधान रूप से व्यवस्थित होने पर गुणीभूत व्यंग्य एवं ध्वनि केवल दो ही प्रकार के काव्य होते है, उनसे भिन्न काव्य, चित्रकाव्य कहलाता है।[8] ध्वनिकार आनन्दवर्धन का अभिमत है कि

चित्रकाव्य, काव्य नही होता, वह तो केवल क़ाव्य का अनुकरण मात्र होता है।[9]

आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वनि के इस स्वरूप विवेचन को उत्तरवर्ती सभी ध्वनिवादी आचार्यों ने स्वीकार किया है। आचार्य मम्मट ने आनन्दवर्धन के आधार पर वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अतिशयित होने पर उत्तम काव्य को ध्वनि काव्य की संज्ञा दी है।[10] इस प्रकार विद्वानों ने वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कार पूर्ण होने को ध्वनि काव्य की संज्ञा प्रदान की है। ध्वनि सम्प्रदाय के आदि प्रणेता आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिपादित किया है- **काव्यस्यात्मा ध्वनिः**।[11] आनन्दवर्धन की ध्वनि सम्बन्धी मान्यता अद्यावधि काव्य मर्मज्ञों को आन्दानुभूत कर देती है। ध्वन्यालोक की 'लोचन' टीकाकार ने 'ध्वनि' पद के पांच अर्थ निरूपित किये हैं-

1. **ध्वनति यः सः इति व्यञ्जकः शब्दः ध्वनिः** अर्थात् जो ध्वनित होता है वह व्यञ्जक शब्द ध्वनि है।
2. **ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनिः** अर्थात् जो ध्वनित कराता है या करे वह व्यञ्जक अर्थ ध्वनि है। ऊध्वन्यते इति ध्वनिः अर्थात् जो ध्वनित किया जाये, वह ध्वनि है। इसमें रस अलंकार और वस्तु - व्यंग्य अर्थ के तीनों रूप आ जाते है।
4. **ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः** अर्थात् जिसके द्वारा ध्वनित किया जाए, वह ध्वनि है। इसमें शब्द अर्थ के व्यापार व्यञ्जना आदि शक्तियों का बोध होता है।
5. **ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः** अर्थात् जिसमें वस्तु, अलंकार, रसादि ध्वनित हो उस काव्य को ध्वनि कहते हैं।[12]

इस प्रकार ध्वनि की व्युत्पत्ति परक व्याख्या से व्यञ्जक शब्द, व्यञ्जक अर्थ, व्यंग्य अर्थ, व्यञ्जना व्यापार एवं व्यंग्य प्रधान काव्य रूप पांच भिन्न-भिन्न परन्तु परस्पर सम्बद्ध अर्थों का बोध होता है, जिन्हें ध्वनि बोध के पांच सोपान कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

कविराज विश्वनाथ ने भी ध्वनिकार का अनुकरण कर प्रतीयमान की प्रधानता को ही ध्वनि का मापदण्ड बनाया उन्होंने ध्वनि एवं गुणीभूत व्यंग्य नाम से काव्य के दो भेद किये जिनमें वाच्यातिशायी व्यंग्य ही उत्तम काव्य रूप ध्वनि काव्य कहलाता है।13 वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य के अधिक चमत्कारी न होने पर वह मध्यम काव्य रूपी गुणभूत व्यंग्य काव्य के अन्तर्गत आता है।14 इस प्रकार विश्वनाथ ने ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य के रूप में काव्य के उत्तम और मध्यम दो भेद स्वीकार कर आनन्दवर्धन को ही समर्थन दिया है।

पण्डित जगन्नाथ ने ध्वनि को उत्तमोत्तम कोटि का काव्य स्वीकार किया और प्रतीयमान प्रधान काव्य विशेष को ही ध्वनि नाम दिया।[15] और कहा कि जहाँ शब्द और अर्थ अपने आपको गुणीभूत करके व्यंग्यार्थ को अभिव्यक्त करते हैं, वह ध्वनि काव्य होता है। जहाँ व्यंग्यार्थ अप्रधान रहकर ही चमत्कार उत्पन्न करता है वह गुणीभूत व्यंग्य नामक उत्तम काव्य कहलाता है। जहाँ व्यंग्यार्थ के चमत्कार का समाधिकरण न होकर वाच्यार्थ चमत्कृति का हेतु होता है वह अर्थ चित्र नाम का मध्यम काव्य होता है। जहाँ अर्थ चमत्कार से उपस्कृत शब्द चमत्कार प्रधान होता है वह शब्द चित्र नामक अधम काव्य कहलाता है।[16] इस प्रकार आचार्य जगन्नाथ ने काव्य को उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम नाम से चार प्रकार का माना है।[17]

व्यंग्यार्थ के वाच्यार्थ की अपेक्षा चमत्कार जनक न होने पर मध्यम को गुणीभूत व्यंग्य के नाम से अभिहित किया है।[18] जिस काव्य में व्यंग्यार्थ होता ही नही, उस अधम काव्य को शब्द चित्र एवं अर्थ चित्र दो प्रकार का बताकर अवर काव्य नाम दिया।[19] इस प्रकार आचार्य मम्मट ने उत्तम, मध्यम एवं अधम रूप में काव्य के तीन भेद किये। आचार्य मम्मट ने 'ध्वनि' को ऐसी स्थिरता प्रदान की, कि वह आज भी अविकल रूप से काव्य में प्रकट हो रही है। आनन्दवर्धन और मम्मट ने सर्वप्रथम ध्वनि के दो भेद किये है[20] -

१. लक्षणामूलध्वनि (अविवक्षितवाच्यध्वनि)

२. अभिधामूलध्वनि (विवक्षितवाच्य ध्वनि)

1. अविवक्षितवाच्य ध्वनि में वाच्य अर्थ अविवक्षित होता है इसे लक्षणामूल ध्वनि भी कहते हैं। यह पद एवं वाक्य से प्रकाशित होती है।[21] ध्वनिकार ने इसके अर्थान्तर संक्रमित एवं अत्पन्त तिरस्कृत नामक दो भेद किये है।[22] आचार्य मम्मट ने -

अविवक्षिवाच्यो यस्तत्र वाच्यं भवेद् ध्वनौ।

अर्थान्तरे संक्रमितमत्पन्तं वा तिरस्कृतम्॥ कहकर अविवक्षितवाच्य अर्थात् लक्षणामूल ध्वनि के दो भेद किए -

अ. अर्थान्तर संक्रमितवाच्य ध्वनि अत्पन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि

अ. अर्थान्तर संक्रामितवाच्यध्वनि में अर्थान्तर का तात्पर्य है दूसरे अर्थ में। संक्रमित का अर्थ है - संक्रान्त होना। अर्थात् शब्द अपने वाच्यार्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ में बदल जाता है। तात्पर्य है कि जहाँ वाच्यार्थ की सीधी संगति नहीं बनती, वहाँ शब्द अपने सामान्य अर्थ को छोड़कर अपने से सम्बन्धित किसी विशिष्ट अर्थ का बोध कराता है, तो वह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य

ध्वनि होता है। इसके अन्तर्गत उपादान लक्षणा आती है। उदाहरणार्थ -

त्वामस्मि वच्मि विदुषां समवायोऽत्र तिष्ठति।
आत्मीयां मतिमास्थाय स्थितिमत्र विधेहि तत्॥२३

यहाँ पर 'त्वामस्मि वच्मि' का मैं तुमसे कहता हूँ, यह वाच्यार्थ बाधित होकर 'तुम विशेष कृपा के पात्र हो, मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ और उपदेश देता हूँ, अर्थान्तर में संक्रमित हो गए है। यहाँ पर शिष्य की 'हितसाधनता' व्यंग्य है।

ब. अत्पन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि में वाच्य अर्थ अत्पन्त तिरस्कृत होकर के अपने से विपरीत अर्थ में परिणत हो जाते हैं। इसके अन्तर्गत लक्षण लक्षणा आती है। उदाहरणार्थ -

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता भवता प्रथिता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे सुखितमास्व ततः शरदां शतम्॥२४

यहाँ पर 'उपकृतम्', 'सुजनता', 'सखे तथा सुखितम्' आदि शब्द अपने मुख्य अर्थ का तिरस्कार करके क्रमशः 'अपकृतम्', दुर्जनता, शत्रु, दुःखितम् के बोधक बन जाते हैं।

2. विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि में वाच्यार्थ विवक्षित होता हुआ भी व्यंग्यनिष्ठ होता है अर्थात् वाच्यार्थ बोध के पश्चात् ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। इसको अभिधामूल ध्वनि भी कहते हैं। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने इसके भी असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य और संलक्ष्यक्रमव्यंग्य नामक दो भेद किये हैं।[25] आचार्य मम्मट के अनुसार- विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः। अर्थात् वाच्यार्थ अपने स्वरूप को बतलाने में तत्पर न होकर रमणीय व्यंग्यार्थ को ही प्रकट करता है। वह 'कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्योलक्ष्यङ्ग्यक्रमः परः' रूप में दो प्रकार का होता है।[26]

(क) असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि में वाच्य एवं व्यंग्य की प्रतीति में क्रम तो रहता है, किन्तु अतिशीघ्रता के कारण 'सूची शतपत्रबेधन्याय' से वह लक्षित नहीं होता। यह वर्ण, पदादि, वाक्य, संघटना एवं प्रबन्ध से प्रकाशित होती है।[26] आचार्य मम्मट ने वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के परस्पर पूर्व एवं अपर भाव के क्रम ज्ञान को लक्षित न होने को असंलक्ष्य क्रमव्यंग्य ध्वनि कहा है। इसके अन्तर्गत रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति भावसन्धि एवं भाव शबलता का समावेश किया है।[28] जो अंगगत एवं स्वगत भेदों के परस्पर सम्बन्ध की परिकल्पना से अनन्त हो जाते हैं।[29]

(ख) **संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि** में वाच्य एवं व्यंग्य की प्रतीति का क्रम अनुस्वान सदृश परिलक्षित होता है। यह पद एवं वाक्य30 तथा कभी-कभी प्रबन्ध से भी प्रकाशित होता है।

शब्दशक्तिमूलक एवं अर्थशक्ति मूलक भेद से यह दो प्रकार की होती है।[31]

1. **शब्दशक्तिमूलक ध्वनि** में शब्द शक्ति के सामर्थ्य से वाच्य से भिन्न अलंकार रूप अर्थ व्यञ्जित होता है। ध्वनिकार ने उसे केवल अलंकार रूप ही माना है, वस्तु रूप नहीं। वस्तु द्वय के शब्द शक्ति से प्रकाशित होने को वे श्लेष अलंकार का विषय मानते हैं।[32]
2. **अर्थशक्तिमूल ध्वनि** में वाच्यार्थ शब्द के व्यापार के बिना ही अपने सामर्थ्य से प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करता है। आचार्य आनन्दवर्धन ने इसे कविप्रौढ़ोक्ति मात्र निष्पन्न शरीर एवं स्वत: सम्भवी भेद से दो प्रकार का माना है।[33] परन्तुवृत्ति भाग में उन्होंने कविनिबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति मात्र निष्पन्न शरीर की ओर भी संकेत किया है। **कविप्रौढ़ोक्ति मात्र निष्पन्नशरीर ध्वनि** का अस्तित्व केवल कवियों की ही उक्तियों से सम्पन्न होता है। कवि के कल्पना लोक से बाहर लौकिक जगत् में सम्भव नहीं होता है।

स्वत: सम्भवी ध्वनि का अस्तित्व केवल कवियों की उक्तियों से ही सम्पन्न नहीं होता, अपितु कवि के कल्पना लोक के बाहर लौकिक जगत् में भी सम्भव होता है।

आचार्य मम्मट ने ध्वनिकार के ध्वनि विवेचन का आश्रय लिया और ध्वनि भेद निरूपण को यथावत् स्वीकार करते हुए भी उसमें तीन प्रमुख संशोधन किये। प्रथम शब्दशक्तिमूलक, द्वितीय उभयशक्तिमूलक और तृतीय कविप्रौढ़ोक्ति के साथ कवि-निबद्ध वक्तृ प्रौढ़ोक्ति नाम भी जोड़कर किया।

शब्दशक्त्युद्भवध्वनि - आनन्दवर्धन ने शब्दशक्तिमूलक ध्वनि को अलंकार रूप ही माना है, जबकि मम्मट ने उसके वस्तु एवं अलंकार रूप में दो भेद किये। आनन्दवर्धन का युग ध्वनि उद्भव का युग था। उन्हें ध्वनि की स्थापना भी करनी थी, साथ ही अलंकार वादियों की विशाल वाहिनी के साथ संघर्ष भी करना था। अलंकार वादियों का तर्क था कि यदि शब्द की शक्ति से प्रकाशित अर्थान्तर को ध्वनि नाम दिया जायेगा, तो श्लेष के विषय का ही अपहरण हो जाएगा। ध्वनिकार ने इस आशंका का समाधान करते हुये कहा कि नहीं, ऐसा नहीं होगा। जिस काव्य में अलंकार शब्द से उक्त नही होता अपितु शब्द शक्ति द्वारा आक्षिप्त होकर प्रतीयमान होता है, वह शब्द शक्त्युद्भव ध्वनि है।[34] अवसर पाकर मम्मट ने अलंकार वादियों की उस अनधिकार चेष्टा को ध्वस्त कर दिया और शब्द शक्त्युद्भव अलंकार ध्वनि के साथ ही शब्दशक्त्युद्भव वस्तु ध्वनि को भी ध्वनि के अधिकार क्षेत्र में कर दिया। उभदशक्त्युद्भवध्वनि-ध्वनिकार ने संलक्ष्यक्रम व्यंगय के दो भेद शब्दशक्त्युद्भव और अर्थशक्त्युद्भव मानकर भी ध्वन्यालोक में उभय शक्त्युद्भव ध्वनि का संकेत कर दिया था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि शब्द अर्थ या शब्दार्थ की शक्ति से आक्षिप्त किया गया भी व्यंग्यार्थ यदि कवि के द्वारा अपनी उक्ति से प्रकाशित कर दिया जाता है। तो वह ध्वनि का विषय नहीं होता।[35] इतना ही नहीं उन्होंने शब्दशक्त्युद्भव, अर्थशक्त्युद्भव और उभयशक्त्युद्भव व्यंग्यार्थ के कवि की उक्ति से प्रकाशित होने के पृथक्-पृथक् उदाहरण भी प्रस्तुत किये।[36] इसी परिकल्पना को आधार मानकर मम्मट ने उभयशक्त्युद्भव ध्वनि की उद्भावना की।

कविनिबद्धवक्तृप्रौढ़ोक्तिसिद्ध अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि - ध्वनिकार ने कारिका में अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि के कवि प्रौढ़ोक्तिमात्र निष्पन्न शरीर एवं स्वत: सम्भवी दो भेद स्वीकार करके भी36 कवि निबद्धवक्तृप्रौढ़ोक्तिमात्रनिष्पन्न शरीर की ओर वृत्ति भाग में स्पष्ट संकेत किया था, साथ ही दोनों प्रकार की ध्वनियों के लिए पृथक्-पृथक् उदाहरणों को दिया था।38 वस्तुत: ध्वनिकार ने इन दोनों को एक ही माना था। परन्तु मम्मट ने थोड़ा विस्तार दिया और दोनों प्रकार की ध्वनियों का पृथक्-पृथक् स्वरूप निर्धारित किया, परन्तु इतना सब होने पर भी मम्मट आदर के पात्र है, उन्हें ध्वनि प्रस्थापक परमाचार्य का परम पद प्राप्त है। उन्होंने ध्वनि सम्प्रदाय को पुनर्जीवन प्रदान किया, साथ ही ध्वनिकार की आत्मा की ध्वनि को सुन ध्वनि का प्रौढ़, प्रमाणिक एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। इस प्रकार ध्वनि भेदों का रमणीय विवेचन प्रस्तुत कर आचार्य मम्मट ने ध्वनि तत्व को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठापित किया है।

संदर्भ संकेत :

1. ध्वन्यालोक 1/4
2. वही 1/8
3. वही 1/13
4. वही 1/13, 1/14, 3/1,3/33 की वृत्ति 3/43
5. वही 1/34, 4/6
6. ध्वन्या0 3/36 की वृत्ति
7. वही 3/40
8. वही 3/41
9. 7. वही 3/42 की वृत्ति
10. काव्यप्रकाश 1/4
11. ध्वन्या0 1/1
12. डा0 नगेन्द्र द्वारा सम्पादित ध्वन्यालोक की भूमिका पृ0 3
13. साहित्यदर्पण 4/1
14. वही 4/13
15. रसगंगाधर 1/2
16. वही प्रथम आनन
17. वही
18. काव्यप्रकाश 1/5
19. वही
20. ध्वन्या0 1/13 की वृत्ति
21. वही 3/1
22. वही 2/1
23. काव्य0 4/23
24. वही 4/23
25. ध्वन्या0 2/2
26. काव्य0 4/25
27. ध्वन्या0 3/2
28. काव्य0 4/26, ध्वन्या0 2/3
29. ध्वन्या0 2/12
30. वही 3/1
31. वही 3/15
32. ध्वन्या0 2/21
33. वही 2/24
34. वही 2/21
35. वही 2/23
36. वही 2/23 की वृत्ति
37. वही 2/24
38. वही 2/24 की वृत्ति

''ऋग्वेद में प्राप्त कतिपय वनस्पतियाँ तथा उनके उपयोग''

डॉ० सत्यदेव निगमालङ्कार
रीडर, श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रत्येक जीवधारणकर्ता के लिये वनस्पतियों की महती उपयोगिता है। इनके बिना किसी भी जीवधारी का अस्तित्व सम्भव नहीं है। वेदसंहिताओं में वृक्ष-वनस्पतियों के महत्व का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान की तों ये पूर्ति करती ही हैं, इनका प्रयोग रक्षा, चिकित्सा और श्रृंगार प्रसाधन के लिये भी प्रचुर मात्रा में किया जाता है। अपने काष्ठ, फल, फूल आदि के द्वारा ये मानव को विविध सुख प्रदान करती हैं। प्राणवायु प्रदान करने से ये मानवमात्र की माता, पिता, रक्षक और पोषक हैं। मनीषियों ने इनके महत्व को जानकर इनकी सुरक्षा हेतु मानवों को प्रेरित किया। वनस्पतियों को पानी से सींचना न केवल कर्त्तव्य माना जाता है, किन्तु सहोदर का स्नेह इनके साथ समझा जाता रहा है[1]। वेदों में जहाँ भौतिकी, रसायन विज्ञान, जन्तु विज्ञान शिल्पविज्ञान, कृषि विज्ञान, गणितशास्त्र, ज्योतिष, वृष्टि विज्ञान, पर्यावरण, भूगर्भ विज्ञान, आदि का ज्ञान निहित है, वहीं वनस्पतिशास्त्र की चर्चा विस्तृत रूप से प्राप्त होती है। मात्र ऋग्वेद में ही 67 वनस्पतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 96 वें सूक्त के 23 मन्त्र औषधिसूक्त के नाम से ही जाने जाते हैं। इन मन्त्रों में वनस्पतियों की महिमा का वर्णन है। यही सूक्त थोड़े क्रम परिवर्तन के साथ यजुर्वेद के ऋषि ने भी गाया है[2]। सूक्त में वनस्पतियों की उत्पत्ति मानवों से बहुत पूर्व तथा देवों से तीन युग पहले मानी गयी है। विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न होकर ये वनस्पतियाँ दुःखों को दूर करती हैं, माता की तरह रक्षा करती हैं, प्रदूषण को नष्ट करती हैं, रोगों का निवारण करती हैं, रोग, शोक, शाप और मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर देती हैं, शरीर में ऊर्जा, शक्ति और उत्साह भरती हैं - इत्यादि बातों का वर्णन है। ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में वनस्पतियों को प्राण कहा गया है[3]। वेदों में औषधियों के वनस्पति और औषधि - ये दो भेद प्राप्त होते हैं, वृक्षों के लिये वनस्पति शब्द का प्रयोग तथा छोटे पौधों के लिये औषधि शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वृक्ष और वनस्पति के लिये वनिन् पद भी प्रयुक्त हुआ है[4]। ऋग्वेद में प्राप्त कतिपय विभिन्न वनस्पतियों के नाम तथा उनके उपयोगों का वर्णन हम कर रहे हैं।

१. **अक्ष**- बहेड़ा अथवा बहेरा को अक्ष कहते हैं। संस्कृत में इसके बिभीतक,अक्ष, कर्षफल, कलिद्रुम, भूतवास, कलियुगालय - ये नाम हैं[5]। ऋग्वेद में इसका दो स्थानों पर वर्णन आता है[6]। जहाँ इसे अक्ष का संकेतक माना गया है। भारतीय जन सामान्य में यह बहेड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। त्रिफला में प्रयुक्त आंवला और हरड़ के साथ इसका उपयोग होता है। यह उदर

शोधक तथा रेचक हैं। इसलिये इसे विभीदक, विभेदक अथवा विभीतक कहा जाता है। इसका चूर्ण अतिसार, शोथ, अर्श, कुष्ठ, प्लीहावृद्धि, खांसी, कफरोग स्वरभेद, गलक्षत आदि में प्रयोग किया जाता है। इससे बने पासों से जुआ खेला जाता है। द्यूत में उपयोगी होने से इसका नाम अक्ष है। जुआ में व्यक्ति कभी हारता है कभी विजय पाता है। कहा जाता है कि इसी गुण के कारण बहेड़ा पर कलि और भूत निवास हैं, अत: इसे कलिद्रुम, भूतावास, कलियुगालय नामों से भी जाना गया है। इसको पवित्र माना जाता है, अत: विद्वानों ने इसकी समिधाओं का उपयोग यज्ञ में करने का विधान किया है[7]। इसकी छाया शीतलकारी एवं सुखदायक है, लकड़ियों का ईंधन हेतु भी उपयोग होताहै। अक्ष की गुठली की गिरी स्वादिष्ट होती है तथा इसका तेल भी निकाला जाता है। गुठली का उपयोग रंगाई और चमड़ा उद्योग में भी किया जाता है। गुठली की गिरी नेत्रज्योति और बुद्धिवर्धक दर्शायी गई है।

२. **अतस, अतसी** - ऋग्वेद में तीन स्थलों पर इस वनस्पति का नाम आया है[8]। वेदभाष्यकारों ने अतस का अर्थ **'बहुत ऊँचा वृक्ष'** तथा निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाला किया है। इसके फल का उपयोग मेधाशक्तिवर्धक एवं लकड़ियों का उपयोग यज्ञ समिधा हेतु किया जाता है।

३. **अरटु** - इस वृक्ष का नाम ऋग्वेद में एक स्थल पर प्रयुक्त हुआ है। इसकी लकड़ी से रथ की धुरी बनायी जाती थी। इसको अरदु भी कहा जाता है।

४. **अवघ्नती** - ऋग्वेद में **'अथो अवघ्नती हन्ति'** कह कर दर्शाया गया है कि जो काटने वाले कीड़े हैं उनके विष का निवारण इस वनस्पति की गन्ध से किया जाता है[10]।

५. **अश्वावती** - इस वनस्पति का वर्णन ऋग्वेद में एक स्थान पर हुआ है[11]। इससे अरिष्ट का नाश और मानव को सुरक्षा प्राप्त होती है तथा यह शक्तिवर्धक एवं श्रीवर्धक रसायन मानी जाती है।

६. **आञ्जन** - इस वनस्पति का नाम ऋग्वेद में एक स्थल पर प्राप्त है[12]। त्रिककुद पर्वत पर प्राप्त होने से इसे **त्रैककुद** तथा यमुना के आसपास होने से **यामुन** नाम से भी जाना जाता है। इससे पीलिया, धातुरोग, ज्वर, कफरोग, हृदयरोग, अंगभेद, छूतरोग तथा आनुवांशिक रोग दूर होते हैं। यह दु:स्वप्ननाशक तथा नेत्रज्योति वर्धक वनस्पति है। ऋग्वेद में कहा गया है कि इसकी सुगन्ध से सम्पूर्ण वन सुगन्धित हो उठता है।

७. **उत्तानपर्णा** - इसको पाठा या पाढ़ा भी कहते हैं। ऋग्वेद में इसका एक स्थल पर नामोल्लेख हुआ है[13]। इस वनस्पति का उपयोग वात, कफ, ज्वर, शूल, वमन, कोढ़, अतिसार, हृदयरोग, दाह, खुजली, विष, श्वास, कृमि, गुल्म तथा विषैला घाव आदि रोगों में होता है। साथ ही यह वीर्यवर्धक, वशीकरण, रक्षोनाशक में मेधावर्धक एवं गर्भस्थापक भी कही गयी है[14]।

.. **उर्वारूक** - इसका वर्णन ऋग्वेद में एक स्थान पर प्राप्त हुआ है[15]। हिन्दी भाषाभाषी जन इसे **खरबूजे** के नाम से जानते हैं। वेदमन्त्र में कहा गया है कि जैसे पका हुआ **खरबूजा** अपने मूल स्थान से अलग हो जाता है वैसे ही मुझे त्र्यम्बकभगवान् मृत्यु के बन्धन से मुक्त कर दें। निघण्टुकार ने उर्वारुक को मूत्रकारक, बलदायक, कोष्ठशोधक, स्वादिष्ट, शीतकारी, वीर्यवर्धक, वात एवं पित्त का नाशक माना है[16]

९. **उलप** - दशम मण्डल के 142वें सूक्त के तृतीय मन्त्र में ऋग्वेद का ऋषि इसका गुण दर्शाता है। इसे हिन्दी में **उलू** तथा **वीरण** भी कहते हैं। यह एक विशेष प्रकार की सुगन्धित घास है। यह उष्ण जलीय प्रदेशों में अधिक पायी जाती है। यह कुटिया के निर्माण तथा आसन के बनाने में काम आती है। इसे पशु भी आनन्द से खाते हैं। इसकी जड़ों में अति सुगन्ध होती है।

१०. **काकम्बीर** - मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिम्। अशस्तीर्वि हि नीनशः।।ऋ. 6,48,17, यह मंत्र कह रहा है कि काकम्बीर वृक्ष वातावरण को शुद्ध करते हैं और दूषित वायु को समाप्त कर देते हैं। वेद में काकम्बीर को एक विशाल वृक्ष बताया गया है। जिसके फल कौओं को विशेष रुचिकर होते हैं एवं यह वृक्ष वायुशोधक के रूप में प्रसिद्ध है।

११. **किंशुक** - ऋग्वेद के विवाह प्रकरण में इस वनस्पति का उल्लेख हुआ है[17]। हिन्दी भाषी जन इसे **ढाक, पलाश** अथवा **टेसू** के नाम से तथा संस्कृतभाषी लोग इसे पलाश,पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्पक, क्षारश्रेष्ठ, वातपोथ, ब्रह्मवृक्ष और समिद्वर के नाम से पहचानते हैं[18]। इसके लाल फूल विवाह का रथ सजाने में प्रयुक्त होते हैं तथा इनसे वासन्ती रंग भी बनाया जाता है। ये पुष्प अग्निकणों के समान चककीले होते हैं, इनमें मधु प्रचुर मात्रा में भरा होता है। इसके फूल मूत्रकारक हैं तथा बस्तिदेश पर इन्हें विछाकर बांधने से मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात के रोग दूर होते हैं[19]। किंशुक के तीन पत्ते एक शाखा पर लगते हैं। लोक में प्रसिद्ध है - **''ढाक के तीन पात''**। किन्तु ये पत्ते अतिगुणकारी तथा उपयोगी हैं। इनसे रसायन बनाया जाता है, जो अतिसार, रक्तप्रदर, कृमिशूल तथा शूल रोगों में प्रयुक्त होता है। इसके पत्तों से वर्षा से बचाव के लिये छाता भी बनाया जाता है तथा पत्तलें भी तैयार की जाती हैं। इस वृक्ष के बीजों से पीले रंग का तेलीय द्रव्य निकलता है, जिससे उदरक्रमियों का नाश होता है। किंशुक की छाल के तन्तुओं से रस्सी बनाई जाती है। इस वृक्ष का गोंद गहरे लाल रंग का पाया जाता है। जिसे स्तम्भक, अम्लपित्तनाशक, वृष्य और बलवर्धक माना गया है। साथ ही इस वृक्ष का क्षार भेदक भी है और लकड़ियों का प्रयोग ईंधन तथा यज्ञसमिधाओं के रूप में किया जाता है एवं किंशुक अर्थात् पलाश का प्रत्येक अंग चिकित्सा तथा अन्य व्यवहार में उपयोग किया जाता है।

१२. **कियाम्बू** - अथर्ववेद में इस वनस्पति का नाम **क्याम्बू** है किन्तु ऋग्वेद में **कियाम्बू** के नाम से इसका उल्लेख है[20]। यह वनस्पति जल में उत्पन्न होती है तथा यह शीतवीर्य और दाहशामक माना गया है।

१३. **खदिर** - ऋग्वेद में इसका एक स्थान पर उल्लेख हुआ है[21]। हिन्दी में इसे खैर अथवा कत्था तथा संस्कृत में खदिर, रक्तसार, दन्तभावन, गायत्री, बालपत्र, बहुशल्य एवं यज्ञीय नाम से जाना जाता है[22]। ये सब संस्कृत नाम इसके गुणों के कारण हैं। यह वृक्ष अति उपयोगी है। पुराना होने पर इसमें दरारें पड़ जाती हैं, तथा उनमें खेदार कृष्णाभ पदार्थ जम जाता है जिसे खदिरसार के नाम से जानते हैं। इसका उपयोग गले के विकारों और खांसी में किया जाता है। यह बहुत मंहगा पदार्थ होता है। खदिर की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े करके काढ़ा बनाकर गाढ़ा कर लिया जाता है। यह कत्था बन जाता है जो लालिमा लिये हुए गहरा कत्थई रंग का होता है। कत्थे का उपयोग पान के साथ किया जाता है तथा इससे रंगाई का कार्य भी किया जाता है। खांसी, अतिसार, मुख के छालों को दूर करने में एवं कण्ठस्वर को मधुर बनाने के लिये कत्था प्रयुक्त होता है। कई लोग बाह्य फोड़ों एवं फुंसियों पर भी इसका उपयोग करते हैं। इस वृक्ष को लकड़ी का सारभाग अस्थिवत् मजबूत होता है, जिससे गाड़ियों के पहियें, औजारों के हत्थें एवं स्तम्भ भी बनते हैं। दीमक इस लकड़ी का स्पर्श नहीं कर पाती है। इसकी लकड़ी के चूर्ण का दन्तमंजन भी बनाया जाता है, जिससे दातों की सुरक्षा तथा दृढ़ता दोनों होती हैं। निघण्टुकार ने यह वनस्पति खुजली, खांसी, कृमि, प्रमेह, ज्वर, व्रण, श्वेतकुष्ठ, सूजन, आम, पित्त, रुधिरविकार, पीलिया, कुष्ठ तथा कफ का नाशकर्ता माना है[23]। मेटिरिया मेडिकाज के भाग 2, पृष्ठ 184 पर डॉ0 आर.एन. खोरी ने इसे बलप्रद तथा रसायन माना है तथा इससे बच्चों के आमातिसार (आंव आना), रक्तातिसार (खूनी पेचिश), विषमज्वर (फ्लू) तथा स्नायुदुर्बलता में सेवन करने का विधान किया है। साथ ही इसे मसूड़ों में दर्द, प्रदर तथा रक्तस्राव में हितकारक माना है। जहाँ अथर्ववेद में इसके सारभाग को मणिवत् ओजस्विता प्राप्ति हेतु हाथ में बांधने का विधान है[24] वहीं पैप्पलाद संहिता में इससे कुष्ठ रोग और विष के नाश की चर्चा प्राप्त होती है[25]।

१४. **घृताची** - राजनिघण्टुकार ने 'घृताची' बड़ी इलाइची को कहा है[26]। ऋग्वेद में इसका एक स्थान पर उल्लेख है, जहां इसका घृतपूर्ण अर्थ है[27]। लौकिक संस्कृत में इसे एला, स्कूला, पृथ्वीका, त्रिपुटा, भद्रैला, बृहदेला, चन्द्रवाला, निष्कुटि, स्थूलिका ये नाम रूप तथा गुणानुसार गिनाये गये है[28]। बड़ी इलायची दीपक, पाचक तथा उत्तेजक है एवं यह वायुनाशक भी बतायी गयी है। खरबूजों के बीजों के साथ सेवन करने पर यह मूत्ररोग को दूर करती है। यह सर्पविषनाशक औषधि होने के साथ-साथ भोजन में मसाले के रूप में प्रयोग की जाती है।

१५. **तेजन** - ऋग्वेद में 'तेजन' वनस्पति का प्रयोग एक स्थान पर हुआ है[29]। तेजन वनस्पति से तीन प्रकार के वनस्पतियों का ग्रहण किया जाता है। यथा कतिपय विद्वान् 'तेजन' पद से **मूंज** अर्थ मानते हैं। भावप्रकाशकार ने इसके इस अर्थ में भद्रमुञ्ज, शर, बाण, वेष्टन, तेजन मुञ्ज, मुञ्जातका, स्थूलदर्भ, सुमेखल - ये नाम गिनाये हैं[30]। मूञ्ज का उपयोग भारतवर्ष में अधिक

रूप से होता है। इसके रेशे रस्सियों के उपयोग में लाये जाते हैं। जिनसे खाट आदि शय्याओं का निर्माण होता है। कुटियां बनायी जाती हैं, जो वर्षा, सर्दी और गरमी से बचाती हैं। इससे गत्ता तथा कागज भी बनाया जाता है। मूंज की जड़ें प्यास को शान्त करती हैं, इसके सेवन से पेशाब खुलकर आता है, और यह जड़ वीर्यवर्धक भी है। प्रसूता को मूंज की जड़ की धूनी दी जाती है, जो शारीरिक दुर्बलता का नाश कर देती है। इसकी पत्तियों से आसन भी बनते हैं। कुछ विद्वानों के विचार से 'तेजन' **सरकण्डा** कहा गया है। जिसे संस्कृत में शर, बाण- इन नामों से जाना जाता है। प्राचीन भारत में इससे बाण बनाये जाते थे, जिनका उपयोग युद्धकाल अथवा शिकार के समय किया जाता था। 'शृ हिंसायाम्' धातु से शर बना है, जिसका अर्थ हिंसा करना है। इससे निशाना लगाना सीखा जाता रहा है अतः इसका नाम तेजन है, संस्कृत में **'तिज निशाने'** - धातु से यह पद बना है। शर की डण्डियों और पत्तियों से झोपड़ियाँ तथा उनकी दीवारें बनायी जाती हैं। प्रसूता को इसकी जड़ पिलाने से दूध बढ़ता है। इसकी जड़ें प्यास को शान्त करती हैं तथा लघुशंका की मात्रा को बढ़ाती हैं। इसके पत्तों से खून रोका जाता है। इसकी गांठों का क्वाथ योनिमार्ग से निकलने वाले प्रदर को रोकता है। कुछ विद्वानों के विचार से तेजन **'बांस'** का नाम है। संस्कृत में इसके गुणानुसार अनेक नाम हैं। बांस का मूल तथा पत्ते गर्भाशय को स्वच्छ कर सन्तानोत्पत्ति में सहायक होते हैं अतः इसका नाम वंश है। वंशलोचन बलवर्धक है, जो श्वास में लाभदायक है। च्यवनप्राश का यह मुख्य घटक माना जाता है। मादा पशुओं को प्रसवोपरान्त बांस के पत्ते खिलाने से उनमें नूतन ऊर्जा का संचार होता है। बांस से बांसुरी बनायी जाती है, टोकरियों, बक्सों, आसनों, चारपाइयों, सीढ़ियों, कुर्सियों, स्तम्भों, बल्लियों आदि के निर्माण में भी इसका उपयोग किया जाता है। बांस की कोंपलों का आचार बनाया जाता है तथा कोंपलों को खाया भी जाता है।

ऋग्वेद में इन सबके अतिरिक्त आल, आलक, उदोजस, ऊर्जयन्ती, कुशर, घृताची, जलाषभेषज, दर्श, दूर्वा, नड, पर्ण (पलाश), पाकदूर्वा (दूर्वा), पाटा, पाठा, पिंषती, पिप्पल, पुण्डरीक, पुष्कर, बल्बज, बिभीतक, (बहेड़ा) यव (जौं), लिबुजा, (बेल) वंश, विश्वभेषजी, वीरिण (घास), वेतस (बेंत), शिंशपा (शीशम), शल्मलि (सेमर), शिग्रु (सहजन), शीपाला (सेवार), सहस्वती (पाठा), सैर्य (कास घास, सोम, सोमवती, स्पन्दन (शीशम), स्वधिति (विशाल वृक्ष), हारिद्रव (हरताल) इत्यादि वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। जिनसे विविध उपयोग चिकित्सा तथा मानवीय जीवन में लिये जाते हैं।

वनस्पतियाँ हमारे जीवन के वे अभिन्न अंग हैं, जिनसे रहित होकर हमारा जीवन समाप्त प्रायः है। ये वनस्पतियाँ प्राण हैं[31]। इनसे हमें निवास, वस्त्र, आहार, आयुध, चिकित्सा, शृंगार-प्रसाधन तो मिलते ही हैं इनसे हम अपनी धार्मिक भावनाओं को भी आदृत करते हैं। संस्कृत साहित्य में तो इन वनस्पतियों के लिये मातृभाव की कल्पना की गयी है। आमलकी को धात्री नाम से इसलिये

जाना जाता है कि वह पालन करने वाली धात्री के समान मानव समाज का कल्याण करती है[32]। ये वनस्पतियाँ हमारे मित्र, पुत्र, पुत्री, शिष्य, गुरु, कुटुम्बीजन हैं जिनसे हमें स्नेह, सुख, वात्सल्य, आदर, उपदेश तथा जन्म मरण का सम्बन्ध प्राप्त होता है। मालती हमें देवता का सामीप्य प्राप्त कराती है, करवीर स्वास्थ्य तथा अतुल सम्पत्ति देती है, मल्लिका से सभी प्रकार का आनन्द मिलता है, वनमाला से घबराहट दूर होती है, मन्दार कुष्ठरोग नाशक है, बिल्व धन-धान्य से घट को भर देता है, गुग्गुल स्वास्थ्य प्रदान करता है तथा अशोक इष्टदेव सफलता प्रदान करते हैं। इस प्रकार ऋषियों ने मानव समाज के लिये जिस किसी भी वनस्पति को उपयोगी पाया उसी को धर्म, विज्ञान, ज्ञान, जीवन तथा नित्य व्यवहार के साथ संलग्न कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ऋग्वेद में वनस्पतियों की महती उपयोगिता दिखायी गयी है। इसके बिना मानव का अस्तित्व भी सम्भव नहीं है। इसीलिये ऋग्वेद में कहा गया है कि इनकी उत्पत्ति मानव सृष्टि से ही नहीं अपितु देवों से भी तीन युग पूर्व हुई [33]। **'वनस्पतयः शान्तिः'** का भाव यही है कि हम यदि इनकी सुरक्षा करेंगे तो ये हमें शान्ति प्रदान करेंगी।

प्रमाण तथा टिप्पणीयां -

1. न केवलं तातनियोग एव, अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु।। अभिज्ञान शा0 पृ0 303
2. अध्याय 12, 75 से 101 तक
3. प्राणो वै वनस्पतिः। ऐत0 2,4,10, प्राणो वनस्पतिः। कौषी0 12,7
4. ऋग् 7,4,5
5. बिभीतकस्त्रिलिङ्गस्यादक्षः कर्षफलस्तु सः। कलिद्रुमो भूतवासस्तथा कलियुगालयः।। भाव हरीतक्यादि0 35
6. ऋग् 7,86,6 - 10,34,1
7. हनुमान0 12-18
8. ऋग्0 4,4,4; 7.10; 8.3.13
9. ऋग्0 8,46,27
10. ऋग्0 1,91,2
11. ऋग्0 1,91,7
12. ऋग्0 10,146,6
13. ऋग्0 10,145,2
14. भाव प्रकाश0 गूडूच्यादि0 182 से 184
15. ऋग्0 7,59,12
16. भाव प्रकाश0 60-61; फलादि0 42-43
17. ऋग्0 10,85,20

18. पलाश: किंशुक: पर्णो यज्ञियो रक्तपुष्पक:। क्षारश्रेष्ठो वातपोथो ब्रह्मवृक्ष: समिद्वर:।।भाव0वटादि049
19. भावप्र0 वटादि 49-53
20. अथर्व0 18,3,6; ऋग् 10,16,13
21. ऋग्0 3,53,19
22. खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावन:। कण्टकी बालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञीय:।। भाव0 वटादि0 30
23. भावप्र0 वटादि0 30-32
24. अथर्व0 10,6,7
25. पैप्लाद0 2,58,1 से 6 तथा 16,42,6 से 8
26. राजनिघण्टु 12
27. ऋग्0 1,167,3
28. एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च। भद्रैला बृहदेला च चन्द्रबाला च निष्कुटि:।। स्थूलिका.............।। भाव0 कर्पूर0 60-61
29. ऋग्0 1,110,5
30. भद्रमुञ्ज: शरो बाणस्तेजनश्वेक्षुवेष्टन:। मुञ्जो मुञ्जातको बाण: स्थूलदर्भ: सुमेखल:।। भावप्रकाश0 गुडू0 158-159
31. प्राणो वै वनस्पति: - ऐ0 ब्रा0 24
32. नैषध - 1,98
33. ऋ010,97,1-23

वेदों में राष्ट्रिय भावना

डॉ० उमा कान्त यादव
रीडर, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद-विश्वविद्यालय-इलाहाबाद

वेदों को भारतवर्ष की अति महनीय निधि माना जाता है क्योंकि इनमें भारतीय मनीषा का श्लाघ्यतम स्वरूप प्रतिफलित हुआ है। इन्हें भारोपीय परिवार का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण माना गया है।[1] वस्तुतः विश्व को संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। ये मानवमात्र के लिए प्रकाश-स्तम्भ है। मनु ने वेद को पितरों, देवों एवं मनुष्यों का सनातन चक्षु कहा है।[2] यहाँ चक्षु से ज्ञान का ही अभिप्राय लिया जा सकता है क्योंकि ज्ञान ही जीवन का मार्ग दिखाता है। डॉ0 बलदेव उपाध्याय वेद को ज्ञान का मानसरोवर स्वीकार करते हैं जिससे निःसृत ज्ञान की विमल धाराएँ विभिन्न मार्गो से प्रवाहित होती हुई भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के प्रदेशों को उर्वर बनाती हैं।[3] वस्तुतः वेद आर्यजाति के प्राण है इसी कारण अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने इनमें विविध प्रकार के मौलिक ज्ञान-विज्ञान की सत्ता स्वीकार की और इन्हें विश्व-बन्धुत्व, विश्व कल्याण और विश्वशान्ति के प्रथम उद्‌घोषक के रूप में स्वीकार किया। वेदों का स्वाध्याय करते समय मैने इनमें राष्ट्रिय भावना की जो छवि देखी है, उसकी हृदयावर्जकता तथा अपने भारतदेश तथा विश्व के लिए उसकी अपरिहार्य उपादेयता पर एक दृष्टि डालना ही हमारा लक्ष्य है।

वैदिक ऋषियों ने आर्यभूमि की अनेक आकर्षक विशेषताओं को उद्‌घाटित करते हुए उत्कृष्ट राष्ट्रिय भावना का प्रणयन किया है। अथर्ववेद का भूमिसूक्त समस्त वैदिक साहित्य में प्रतिष्ठा का विषय है। भारतीय जनमानस में मातृभूमि के प्रति प्रेम के उत्स को प्रकट करने वाला वैदिक राष्ट्रगीत के रूप में प्रतिष्ठित यह सूक्त काल की अनन्त सीमाओं को पार कर आज भी राष्ट्रप्रेम की अक्षुणण धारा को प्रवाहित करने में समर्थ है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रथम सूक्त के रूप में प्रतिष्ठित इस सूक्त के अन्तर्गत कुल 63 मंत्र हैं, जिनमें मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा को प्रकट किया गया है। सूक्त के अन्तर्गत **"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"**[4] के द्वारा मातृभूमि की कल्पना ऋषियों ने की है जिससे यह स्पष्ट होता है कि हम जिस धरती पर

---

(1) डॉ0 एस0 एन0 दास गुप्ता : द हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी वाल्यूम-1 पृ.10। मैक्डानल वैदिक रीडर : इण्ट्रोडक्शन, पृ.11.

(2) पितृदेव मनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्। मनु0 12.94.

(3) डॉ0 बलदेव उपाध्याय : वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 8.

(4) अथर्ववेद, 12.1.12.

उत्पन्न होते हैं उसे हम मातृस्वरूपा मानकर उसकी रक्षा एवं सेवा में रत होते हैं। ऋग्वेद में भी यह कल्पना विद्यमान है कि पृथ्वी को माता रूप में स्वीकार करने वाले सभी लोग शोभन जन्म वाले हैं और उनमें न कोई बड़ा है और न छोटा है एवं भ्रातृस्वरूप ये सभी लोग अपने-अपने सौभाग्य के संवर्धन का मिलकर प्रयत्न करते हैं।[1] वेदों की यह शिक्षा निश्चय ही राष्ट्रिय भावनामूलक है क्योंकि वैदिक ऋषियों को यह तथ्य ज्ञात था कि प्रत्येक पुत्र अपनी माता की रक्षा अवश्य करता है। अतएव सभी जन अपनी मातृभूमि को अपनी माँ समझें और माँ की तरह कभी राष्ट्र पर आँच न आने दें। जनसामान्य के हृदय में मातृभूमि के प्रति मातृभावना को उद्बुद्ध करके वैदिक ऋषियों ने सभी भारतीयों में भ्रातृभावना को भरने की कोशिश की है ताकि यहाँ के सभी वर्ग के सभी लोग परस्पर बन्धुत्व के बन्धन से बँधकर संगठित रह सकें और मिल-जुलकर अपनी माता के समान ही भारत माता की रक्षा करने में संलग्न रह सकें। अथर्ववेदीय भूमि सूक्त के एक मन्त्र में भूमि के लिए कहा गया है कि वह हमारे उत्तम राष्ट्र में तेजस्विता एवं बल का आधान करे।[2] एक अन्य मन्त्र में भी राष्ट्र को सौभाग्यशाली बनाने की प्रार्थना की गयी है कि हे ईश हमारे राष्ट्र को सौभाग्यशाली बनाओ-**इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय।**[3]

राष्ट्र को सुसंगठित करने के लिए समाज में एकता और संगठन की भावना होनी चाहिए। वेदों में अनेक मन्त्रों में संगठन की उपयोगिता वर्णित है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं तैत्तिरीय संहिता में संगठन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि परमात्मा सबका पिता है, वह सबको मिलाने वाला है, अत: सबको मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहिए।[4] यहाँ परमात्मा समन्वय सूत्र है। वह सबको मिलाता है। समस्त विश्व में परमात्मा वैश्वानर अग्नि के रूप में विद्यमान है। सभी परमात्मा की सन्तान है। अत: सभी में एकत्व की भावना उदय होती है। जैसे-अग्नि दो लोहे को तपाकर मिला देती है उसी प्रकार वैश्वानर अग्नि समाज में एकता की भावना उत्पन्न करती है। इसका आधार विधाता या परमात्मा है।

संगठन के लिए मिलकर चलना और समान भावों को प्रकट करना आवश्यक है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में ऋषि निर्देश करता है कि हम साथ-साथ चलें, साथ-साथ बोलें तथा हम सबके मन समान हों।[5] हमारी मन्त्रणाए समान हों, हमारी सभा समान चित्तवाली हो, हमारे संकल्प समान

---

(1) सु जातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन। अज्येष्ठासो अकनिष्ठा स एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।। ऋ0- 5.59.6, 5.60.5.

(2) सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। अथर्व0 12.1.43.

(3) अथर्व0 - 9.35.1

(4) संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे, स नो वसून्या भर।। ऋ0 10.151.1,
यजु0- 15.30. अथर्व0 6.63.4, तैत्ति0 सं. 2.6.11.4

(5) ऋ0- 10.191.2

हो तथा वे समान प्राप्तव्य विषयों के लिए हों-**'समानो मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषां'**।[1] आगे कहा गया है कि तुम्हारे संकल्प तथा अभिप्राय एक समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों जिससे तुम्हारा परस्पर का कार्य उत्तम रीति से चल सके- **समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।**[2] अथर्ववेद[3] में भी समान विचार बनाने का निर्देश है। वस्तुतः समाज की एकता के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता है। प्रथम समान विचार, द्वितीय समान कार्य एवं तृतीय समान लक्ष्य। जब मन एक होगें तो विचार भी एक होगें। ऐसी स्थिति में हम समान कर्म एवं समान लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होगें। इसी कारण ऋषियों ने राष्ट्र की अखण्ड रक्षा हेतु लोगों में परस्पर एकता, संगठन और समानता की भावना प्रदर्शित की। इसके अभाव में राष्ट्र का पतन अवश्यम्भावी है। इस राष्ट्रोपयोगी एकता के लिए वेदों में ईश-वन्दना भी की गयी है।[4] और सभी नागरिक जनों से एकता लाने और उसे बनाये रखने की जोरदार अपील भी की गयी है।

वैदिक ऋचाओं में राष्ट्रहित के लिए विविध भाषा-विवाद और धर्म-विवाद से मुक्त होने का निर्देश है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त[5] में वर्णित है कि पृथ्वी पर नाना भाषाएं बोलने वाले लोग हैं साथ ही साथ विभिन्न धर्मो वाले लोग भी रहते हैं। पृथिवी भाषा-भेद और धर्म-भेद से किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं करती है। इसी तरह पृथिवी पर रहने वाले नागरिक भाषा-भेद और धर्म-भेद के आधार पर कोई भेदभाव न करें। हम सबको एक परिवार का सदस्य समझें। वस्तुतः भाषा और धर्म व्यष्टिनिष्ठ होते हैं और राष्ट्र समष्टिनिष्ठ। समष्टि के हित के लिए व्यष्टि के आग्रहों की उपेक्षा श्रेयस्कर मात्र ही नहीं है, बल्कि राष्ट्रिय भावना के तहत अनिवार्य है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रहित को सर्वोपरि माने। राष्ट्रहित के साथ ही देश की स्वतन्त्रता की रक्षा करें तथा विश्वबन्धुत्व का भी ध्यान रखे। देवताओं से भी ऋषियों ने ऐसी बुद्धि एवं सम्पदा की कामना की है जो सार्वजनिक हित का सम्पादन करने वाली हो। अग्नि से कहा गया है कि हे जातवेद आप हमें विश्व कल्याणकारिणी बुद्धि और कल्याणकारक धन प्रदान करो।[6] राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि समाज के सभी वर्गो में सौमनस्य हो। समाज का कोई भी वर्ग उच्च या निम्न की पूर्वाग्रह पूर्ण भावना से ग्रस्त होकर अपने को अलग-थलग न रखें, सभी

---

(1) ऋ0- 10.191.3

(2) ऋ0- 10.191.4

(3) अथर्व0- 3.8.5

(4) यजु0- 6.31, 3.86, ऋ0- 10.141.4, अथर्व0- 3.20.6

(5) जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।
अथर्व0- 12.1.45.

(6) तामस्मभ्यं प्रमति जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम्। ऋ0- 3.57.6

में परस्पर सद्भाव एवं समन्वय हो क्योंकि समन्वय की भावना परस्पर सद्भाव, दूसरों से एकात्मकता आदि से ही सुदृढ़ समाज एवं संगठन का निर्माण होता है। साथ ही ऊँच-नीच के भेदभाव से रहित और भ्रातृभाव-युक्त राष्ट्र ही सौभाग्य शाली होता है।[1] वैदिक ऋषियों ने अनेक स्थलों पर देवों से सद्भाव एवं सौमनस्य के लिए प्रार्थनायें की हैं।[2]

ऋषियों ने स्वराज्य की स्थापना, वर्धना एवं रक्षा के प्रति भी असीम उत्साह दिखाया है। वर्तमान में प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रों के जनमानस में विद्यमान स्वराज्य शब्द भी वेदों का अवदान है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि चाहे कोई देवता हो या कोई बलवान हो वह स्वराज्य की भावना को दबा नहीं सकता है।[3] प्रिय स्वराज्य कोई नष्ट नहीं कर सकता।[4] भक्तगण स्वराज्य की उपासना करते हैं।[5] सुखों के वर्षक स्वराज्य को नमस्कार है।[6] हम स्वराज्य का आदर करते हैं[7] आदि वचन स्वराज्य की महिमा को प्रतिष्ठित करते हैं। ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में स्वराज्य के लिए यत्नशील रहने का निर्देश दिया गया हैं। यजुर्वेद में भी देवों से महान् गौरव एवं महान् जनराज्य के लिए प्रार्थना की गयी है।[8] राष्ट्र की रक्षा के लिए वैदिक ऋषियों ने विभ्रन्ति सन्देश दिया है कि राष्ट्रहित के लिए शत्रुसेना का सदा संहार करना चाहिए। इसके लिए इन्द्र को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि उसने शत्रुओं की सौ सेनाओं को अकेले ही नष्ट कर दिया।[9] ऋषियों की कामना है कि देश के सैनिकों का बल और तेज उत्कृष्ट हो। वे जहाँ भी युद्ध में जायें सदैव विजय श्री को प्राप्त करें।[10] सभी सैनिक वीर, योद्धा, अस्त्र-शस्त्र-वेत्ता, अजेय हों और शत्रुओं की सेना को समूल नष्ट कर दें। इस तरह ऋषियों ने नागरिकों के हृदय में राष्ट्र-प्रेम की भावना का संचार करते हुए उन्हें राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं बलिदान का पाठ पढ़ाया। यही नहीं बल्कि वेदों ने काव्य कला कुशल व्यक्तियों को राष्ट्र की रक्षा में संलग्न मातृभूमि के सपूतों की प्रशंसा में गीत निर्माण करने तथा गायक कला में प्रवीण जनों को उन गीतों को गा-गा कर जनता में प्रचार करने की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

---

(1) ऋ0- 5.60.5
(2) अथर्व. 7.52.1-2, 3.30.5-6, ऋ0- 10.117.4
(3) यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यम्।
न देवो नाधिगुर्जन।। ऋ0- 8.93।।
(4) कच्चन प्रियम्, न मिनन्ति स्वराज्यम्। ऋ0- 5.82.2
(5) तं घेमित्था नमस्विन उपस्वराजमासते। ऋ0- 1.36.7
(6) इदं नमो वृषभाय स्वराजे। ऋ0- 1.15.15.
(7) अर्चन्ननु स्वराज्यम्। ऋ0- 1.80.1.
(8) इमं देवा असपत्न ꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय।
महते-ज्येष्ठ्याय महते जनराज्याय इन्द्रस्येन्द्रियाय।। यजु0 9.40.
(9) आशुः शिशानो वृषशो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोऽनिमिष एक वीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः।। ऋ0- 10.103
(10) ऋ0- 10.103.13, साम. 1862, यजु. 1746, अथर्व.- 3.19.7
तैति. सं.- 4.6.4.4

वेदों में मातृभूमि की शत्रुओं से रक्षा करने के लिए सुदृढ़ राष्ट्रिय भावना और सुदृढ़ राष्ट्रनायक की भी कल्पना की गयी है क्योंकि इसके अभाव में सम्मानपूर्वक जीना सम्भव नहीं है। यजुर्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हम सदा जागरूक रहें और सदा अग्रगण्य रहें।[1] और राष्ट्र के लिए आवश्यकता पड़ने पर बलिदान होने के लिए उद्यत रहें।[2] ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं तैत्तिरीय आरण्यक में उपलब्ध एक मन्त्र में वीरों का गुणगान करते हुए कहा गया है कि हे वीरो! जो शूरवीर संग्रामों में युद्ध करते हैं, जो युद्धों में अपने प्राण देते हैं अथवा जो यज्ञों में सहस्रो रुपये दान देते हैं, उनके पास तुम जाओ।[3] यहाँ रणवीर एवं दानवीर दो प्रकार के वीरों का उल्लेख है। देश के लिए इन दोनों प्रकार के वीरों की आवश्यकता है। ये दोनों प्रकार के वीर समाज और राष्ट्र के लिए आदर्श हैं। यहाँ आर्ष का मन्तव्य है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध में वीर पुरुषों के तुल्य जावें और रणभूमि में देश के लिए मर मिटें अथवा राष्ट्र के लिए धन का दान करके देश-रक्षा के पवित्र कार्यो में महत्त्वपूर्ण योगदान दें।

यजुर्वेद में राष्ट्र के विषय में वैदिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि उसमें तीन गुण होने चाहिए-(1) स्वराजस्थ अर्थात् राष्ट्र स्वतन्त्र हो।

(2) जनभूतस्थ अर्थात् वह जनहितकारी हो।

(3) विश्वभूतस्थ अर्थात् वह विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो। इन गुणों से युक्त राष्ट्र हमें प्राप्त हो, ऐसी परिकल्पना की गयी है।[4] उत्तम राष्ट्र वही है जो परतन्त्र न होकर उसकी सत्ता स्वतन्त्र हो, जिसमें जनता का भरण-पोषण या कल्याण सुनिश्चित हो तथा वहाँ के नागरिक स्वहित के साथ विश्वहित के लिए तत्पर हों।

राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि समाज के सभी वर्ग तेजस्वी हों। चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र श्रीवृद्धि से युक्त हो, पशुधन हृष्ट-पुष्ट हो, युवावर्ग शिष्ट, सभ्य और वीर हो; समय पर वर्षा हो, धन धान्य की समृद्धि हो और राष्ट्र में योग-क्षेम हो; इस तरह वैदिक ऋषियों ने राष्ट्र के अभ्युदय के लिए अपेक्षित इन सभी तथ्यों का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ

---

(1) शूरग्राम: सर्ववीर: सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुध: क्षिप्रधन्वा समस्वषाळ्ह: साह्वान् पृतनासु शत्रून।
ऋ0- 9.90.3

(2) वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहित: स्वाहा। यजु0 9.23

(3) वयं तुभ्यं बलिहृत: स्याम। अथर्व0- 12.1.62

(4) ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज:।
ये वा सहस्रदक्षिणा:, तांश्पिदेवापि गच्छतात्।। ऋ0- 10.154.3
अथर्व0- 18.2.17, त्रैति. सं.- 6.3.2

वेदों में मातृभूमि की शत्रुओं से रक्षा करने के लिए सुदृढ़ राष्ट्रिय भावना और सुदृढ़ राष्ट्रनायक की भी कल्पना की गयी है क्योंकि इसके अभाव में सम्मानपूर्वक जीना सम्भव नहीं है। यजुर्वेद के एक मंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हम सदा जागरूक रहें और सदा अग्रगण्य रहें।[1] और राष्ट्र के लिए आवश्यकता पड़ने पर बलिदान होने के लिए उद्यत रहें।[2] ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं तैत्तिरीय आरण्यक में उपलब्ध एक मन्त्र में वीरों का गुणगान करते हुए कहा गया है कि हे वीरो! जो शूरवीर संग्रामों में युद्ध करते हैं, जो युद्धों में अपने प्राण देते हैं अथवा जो यज्ञों में सहस्रो रुपये दान देते हैं, उनके पास तुम जाओ।[3] यहाँ रणवीर एवं दानवीर दो प्रकार के वीरों का उल्लेख है। देश के लिए इन दोनों प्रकार के वीरों की आवश्यकता है। ये दोनों प्रकार के वीर समाज और राष्ट्र के लिए आदर्श हैं। यहाँ आर्ष का मन्तव्य है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध में वीर पुरुषों के तुल्य जावें और रणभूमि में देश के लिए मर मिटें अथवा राष्ट्र के लिए धन का दान करके देश-रक्षा के पवित्र कार्यो में महत्त्वपूर्ण योगदान दें।

यजुर्वेद में राष्ट्र के विषय में वैदिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि उसमें तीन गुण होने चाहिए-(1) स्वराजस्थ अर्थात् राष्ट्र स्वतन्त्र हो।

(2) जनभूतस्थ अर्थात् वह जनहितकारी हो।

(3) विश्वभूतस्थ अर्थात् वह विश्व के कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो। इन गुणों से युक्त राष्ट्र हमें प्राप्त हो, ऐसी परिकल्पना की गयी है।[4] उत्तम राष्ट्र वही है जो परतन्त्र न होकर उसकी सत्ता स्वतन्त्र हो, जिसमें जनता का भरण-पोषण या कल्याण सुनिश्चित हो तथा वहाँ के नागरिक स्वहित के साथ विश्वहित के लिए तत्पर हों।

राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि समाज के सभी वर्ग तेजस्वी हों। चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र श्रीवृद्धि से युक्त हो, पशुधन हृष्ट-पुष्ट हो, युवावर्ग शिष्ट, सभ्य और वीर हो; समय पर वर्षा हो, धन धान्य की समृद्धि हो और राष्ट्र में योग-क्षेम हो; इस तरह वैदिक ऋषियों ने राष्ट्र के अभ्युदय के लिए अपेक्षित इन सभी तथ्यों का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ

---

(1) शूरग्राम: सर्ववीर: सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुध: क्षिप्रधन्वा समस्वषाळ्ह: साह्वान् पृतनासु शत्रून।
ऋ0- 9.90.3

(2) वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहित: स्वाहा। यजु0 9.23

(3) वयं तुभ्यं बलिहृत: स्याम। अथर्व0- 12.1.62

(4) ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज:।
ये वा सहस्रदक्षिणा:, तांश्पिदेवापि गच्छतात्।। ऋ0- 10.154.3
अथर्व0- 18.2.17, त्रैति. सं.- 6.3.2

में यजुर्वेद में वर्णित राष्ट्रिय प्रार्थना में कहा गया है कि हे परमात्मा हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्व से युक्त हो। क्षत्रिय, शूर, धनुर्धर, शत्रुनाशक और महारथी हों। गायें अधिक दूध देने वाली हों। बैल अधिक भारवहन में समर्थ हों। घोड़े तीव्रगामी हो। स्त्रियाँ कुटुम्बभरण में दक्ष हों। रथी सैनिक विजयी हो। इस यजमान का युवा पुत्र वीर एवं सभ्य हो। हमारे विशिष्ट प्रार्थनाओं पर मेघ बरसे। औषधियाँ फलवती होकर पकें। हमारे लिए योगक्षेम हों।[1] इस तरह राष्ट्र के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए वेदों में प्रभावपूर्ण उपदेश परिलक्षित होता है। हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र सुखी हो, समृद्ध हो, यशस्वी हो, शान्त हो, नीरोग हो, स्वस्थ हो, चिरायु हो, स्वाभिमानी हो, सुशिक्षित हो, और सम्पूर्ण विश्व का शुभचिन्तक हो इसके लिए भी वैदिक ऋचाओं में आकाङ्क्षाएं दृष्टिगत होती हैं।[2]

किसी भी राष्ट्र की एकता, अखण्डता, समृद्धि एवं शान्ति आदि के बाधक के रूप में देशद्रोहियों की अहम् भूमिका स्वीकार की जाती है। वैदिक ऋषि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने समाज में कोई भी देशद्रोही या विश्वासघाती न रहने पाये इसका निर्देश किया है।[3] उनकी दृष्टि में देशद्रोह अक्षम्य अपराध है। देशद्रोही को आश्रय देना सर्वथा निन्दनीय है। समाज में यदि कोई मायावी छली या प्रपञ्ची है तो उसको जैसे भी हो नष्ट कर देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति समाज के हित के घातक है।[4]

राष्ट्र के विकास के बाधक के रूप में जनशोषकों की भूमिका भी अग्रगण्य है। जिस देश में जनशोषक वर्ग को प्रश्रय मिलता है उस देश का विनाश अवश्यम्भावी है। अतएव, वैदिक ऋषियों की धारणा है कि जनशोषकों को राष्ट्रहित के लिए नष्ट कर देना चाहिए।[5]

---

(1) स्वराजस्थ, जनभृतस्थ, विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम् मे दत्त। यजु0 10.4

(2) आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्,
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां,
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वान् आशुः सप्तिः,
पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः,
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां,
'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु,
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां,
योगक्षेमो नः कल्पताम्।। यजु0 22.22

(3) यजु0- 9.22, अथर्व0 18.29, 6.10.15, ऋ0- 9.101.9,
साम0 820, यजु0 11.8 आदि।

(4) ऋ0- 10.57.1, अथर्व0 13.1.59

(5) ऋ0- 1.11.7, अथर्व0- 2.19.1, यजु0 1.8 आदि।

इस तरह स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं में भारतभूमि के प्रति मातृबुद्धि-विकसित कर भारतीयों में राष्ट्रप्रेम के प्रति निष्ठा व्यक्त की गयी है। राष्ट्र की रक्षा एवं समृद्धि के लिए एकता एवं संगठन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही अवयवों से युक्त मातृभूमि के प्रति रागात्मक सम्बद्धों को दर्शाया गया है। स्वराज्य की भावना की अभिव्यक्ति जहाँ एक ओर परिलक्षित होती है वहीं राष्ट्र के शत्रुओं के समूल नाश करने की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। राष्ट्र-रक्षा हेतु सुदृढ़ सैन्य व्यवस्था की आवश्यकता को रेखाङ्कित करते हुए राष्ट्र के शत्रुओं के साथ **''शठे शाठ्यं समाचरेत्''** की नीति को कार्यान्वित करने की प्रेरणा दी गयी है। वैदिक ऋचाओं में जहाँ राष्ट्र हित के लिए विविध भाषा-विवाद और धर्म-विवाद से मुक्त होने का निर्देश है वहीं ऊँच-नीच के भेद-भावों से रहित होकर भ्रातृभाव से व्यवहृत होने का संदेश है। ऋचाओं में राष्ट्रमङ्गल कामना के साथ ही साथ विश्व-बन्धुत्व की भावना का भी निदेर्शन है।

वैदिकाध्ययनस्य अनुसन्धानस्य च क्षेत्रे पञ्चाम्बुप्रदेशान्तर्गतस्य होशियारपुरस्य योगदानम्

डॉ. राजेन्द्रकुमारः शर्मा, रीडरः,
पञ्जाबविश्वविद्यालयः वी. वी. बी आई. एस.एण्ड आई. एस.
होशियारपुरम् (पञ्जाब) 146205

वर्तमानः पञ्चाम्बुप्रदेशः भौगोलिकदृष्ट्या वैदिकयुगस्य 'सप्तसिन्धुप्रदेश' आसीत्, यस्य विस्तारः पश्चिमे सिन्धुनदीमारभ्य पूर्वे सरस्वतीनदीं यावत् आसीत्। प्रदेशोऽयं भारतीयसाहित्यस्य, सभ्यतायाः, संस्कृतेश्च प्रमुखं स्थलमासीत् अस्ति च। अयमेव स प्रदेशः यत्र विश्वसाहित्यस्य प्राचीनतमो ग्रन्थः 'ऋग्वेदः' सर्वप्रथमम् निर्मितोऽभवत्। अस्मिन्नेव सप्तसिन्धुप्रदेशे वैदिकवाङ्मयस्य भूयान्भागः निर्मितो जातः। अत्रैव च दर्शनस्य, व्याकरणस्य, काव्यशास्त्रस्य, प्राचीनस्य इतिहासस्य, संस्कृतेः सन्दर्भसाहित्यस्य च रचनाभवत्। यस्यां भाषायां ऋषिभिः अन्तःकरणेन वेदमन्त्राणां दर्शनं विहितम्, सा भाषा वैदिकमेव संस्कृतम्, यस्याविच्छिन्नः प्रवाह इदानीमपि वर्तते। ऋग्वेदस्य इन्द्रसूक्तस्थोऽयं मन्त्रः उक्ततथ्यं पोषयति -

''अजयो गा अजयः शूर सोममवासृज सर्तवे सप्तसिन्धून्।'' (ऋ. 1.32.12)

अस्मिन् मन्त्रे यासां सप्तनदीनाम् उल्लेखो वर्तते ताः सप्तसिन्धुप्रदेशस्यैव नद्यो विद्यन्ते। प्राचीनकाले पञ्चाम्बुप्रदेशस्य क्षेत्रं विस्तृतं आसीत् परं च स्वतन्त्रताप्राप्तेरनन्तरं तत् क्षेत्रं अत्यधिकं न्यूनं जातम्। अस्यैव पञ्चाम्बुप्रदेशस्य उत्तरस्यां दिशि होशियारपुरम् स्थितं वर्तते। अस्मात् कियत् दूरमेव हिमालये धौलाधारनामधेय हिमधवलाः पर्वतशृंखला विद्यन्ते, येन आसां सौन्दर्यं अनुपमेयं जायते। हिमाचलप्रदेशेन सह सम्बद्धतया होशियारपुरमण्डलं पञ्चाम्बुप्रदेशस्य पर्वतीय-मण्डलमपि कथ्यते।

इदानीं होशियारपुरे वेदविद्याया संस्थानद्वयं विद्यते। तत्रैकं विश्वेश्वरानन्दवैदिकशोधसंस्थानम् (वी. बी. आर. आई.) अस्ति अपरं च पञ्जाबविश्वविद्यालीयं विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत-भारती अनुशीलसंस्थानं (वी. वी. बी. आई.एस.एण्ड आई. एस) च विद्यते। तत्र मूलभूतं संस्थानं विश्वेश्वरान्दवैदिकशोधसंस्थानमेव विद्यते। अस्य संस्थानस्य सर्वप्रथमं स्थापना 1903 तमे वर्ष शिमलानगर्यामभवत्। अस्य संस्थानस्य संस्थापकौ पूजनीयौ विद्वांसौ स्वामी विश्वेश्वरानन्दः स्वामी नित्यान्दश्चास्ताम्। संस्थानमिदं क्रमशः 1918 तमे वर्षे इन्दौर नगरे 1924 तमे वर्षे च लाहौर नगरे स्थानन्तरितमभवत्। अस्य संस्थानस्य मूलभूतं कार्यं वैदिकशब्दकोषस्य निर्माणमासीत्। आभ्यामेव आदिसंस्थापकाभ्यां वैदिककोषनिर्मनणस्य प्रथमचरणरूपेण अथर्ववेदस्य पदानामनुक्रमणिका निर्मिता या लाहौरतः प्रकाश्यं गता।

को न जानाति आचार्यं विश्वबन्धुम्? अयं महानुभावो वेदविद्यापारंगतासीत्। अस्य जीवनस्य एकमात्रलक्ष्यं वेदानां संस्कृतस्य च संरक्षणं परिवर्धनं चासीत् आचार्यविश्वबन्धोर्नाम वेदविद्या क्षेत्रे संस्कृतजगति च न केवलं भारते अपि तु समस्ते विश्वे पारंगतेषु विद्वत्सु स्मर्यते। अस्य महानुभावस्य जीवनं कार्यं च एतस्य प्रत्यक्षं प्रमाणम्।

लाहौर नगरस्थितस्य वैदिकशोधसंस्थानमाध्यमेन अनेन महानुभावेन वेदविद्यायाः संरक्षणे स्वकीयं जीवनम् अर्पितम्। तत्रैव च 1924 तमे वर्षे संस्थानगतं समग्रं वैदिककार्यं स्वहस्ते अधिगृहीतम्। अत्रैव अनेन विदुषा निम्नलिखितग्रन्थरत्नानि सम्पादितानि-

1. अथर्ववेदप्रातिशाख्यसूत्रम्, भूमिकया परिशिष्टेन च सहितं (1923)
2. तैत्तिरीयप्रातिशाख्यम् (1924)
3. वैदिकशब्दार्थपारिजातम् (1929)
4. वेदसन्देशः चतुर्षु भागेषु (1925-1931)
5. ऋग्वेदीयोद्गीथभाष्यम् (1935)
6. चारायणीयमन्त्रार्षाध्यायः (1936)

भारतविभाजनानन्तरं संस्थानमिदं अनेनैव विदुषा महता प्रयासेन लाहौरनगरतः 1947 तमे वर्षे होशियारपुरस्य 'साध्वाश्रमे' समानीतम्। पाकिस्तानगताद्-लाहौर नगराद् उद्धृत्यसंस्थानस्य शोधपत्रकाणि, शोधप्रकाशनानि, हस्तलिखितानि मुद्रितानि च सहस्रशः पुस्तकानि प्रबन्धकीय-पत्र पञ्जिकाश्च इति सकला सामग्री यथा कथञ्चित् स्वतन्त्रभारतदेशं प्रापिता। सर्वमेतद् अतिसाहसिकवृत्त-बहुलम्, अत्यन्त रोमाञ्चकरं च समपद्यत। पञ्चाम्बुप्रदेशेऽस्य वैदिकशोधसंस्थानस्य स्थापना एका क्रान्तिकारिणी घटना विद्यते।

अस्य विदुषः महत्त्वपूर्णासु सारस्वतीयासु उपलब्धिषु विश्वप्रसिद्धस्य 'वैदिकपदानुक्रमकोषस्य' षोडशखण्डानां निर्माणं विद्यते। अस्य कोषस्य एकादशसहस्राणि पृष्ठानि विद्यन्ते। कोषेऽस्मिन् उपचतुः शतानि वैदिकग्रन्थानां उपयोगो जातः। कोषेऽस्मिन् अकारादिक्रमेण ग्रन्थसङ्केतः, आवश्यकतानुसारं ध्वनिविज्ञानं, उदात्तादि स्वराणां निर्देशः, परम्परागतं नवीनं च भाषाविज्ञानमाधरीकृत्य प्राग्-ऐतिहासिकानां शब्दानां निर्वचनं, व्याकरणं, छन्दः एवं पाठमीमांसादि विषयाः सन्निविष्टाः सन्ति। वैदिकवाङ्मयस्य अनुसन्धानार्थं अध्ययनार्थं च कोषोऽयं विशेषोपयोगी वर्तते। कोषस्य निर्माणे प्रो. भीमदेव पण्डित अमरनाथ-पंडित रामानन्दादि विदुषां महत्त्वपूर्णं योगदानम् विद्यते। अस्य निर्माणं 1935 ईसवीतः आरभ्य 1965 ईसवी पर्यन्तं त्रिंशत्-वर्षेषु जातम्। जर्मनदेशस्य प्रायः समस्तैर्विश्वविद्यालयैरयं कोषः वैदिकशोधकार्यार्थं अनिवार्यग्रन्थरूपेण स्वीकृतः। पाश्चात्यविद्वत्सु ग्रन्थोऽयं 'विश्वबन्धुकोषः' इति नाम्नाऽपि विख्यातः। ख्यातिप्राप्तैः डॉ. सुनीतिकुमारचट्टोपाध्याय-डॉ. सिद्धेश्वरवर्मन्-सर आर. एल. टर्नर प्रभृतिभिर्विद्वद्भिर्मुक्तकण्ठेन इदं स्वीकृतम् यत् कोषोऽयं भारतीयानां वैदुषस्य अद्भुतं निदर्शनम्।

अनेकेषां विदुषां सहयोगेन आचर्येण विश्वबन्धुना अधोलिखिता वैदिका: ग्रन्था: सम्पादिता:

1. कैटलोग ओफ वी. वी. आर. आई. मैनुस्क्रिप्टस् (Vol. i. ii. 1951)
2. ऋग्वेदवैयाकरणपदसूची (1963)ी
3. अथर्ववेदवैयाकरणपदसूची (1963)
4. चतुर्वेदवैयाकरणपदसूची (1963)
5. तैत्तिरीयसंहितावैयाकरणपदसूची (1963)
6. उपनिषद्वैयाकरणपदसूची (1966)
7. अथर्ववेदस्य शौनकशाखा-सायणभाष्यसहिता, आलोचनात्मक संस्करणयुता, पंचसु खण्डेषु विभक्ता (1960-64)
8. ऋग्वेदसंहिताया: स्कन्दस्वामिन् उद्गीथ-वेङ्कटमाधव भाष्याणि एवं सायणभाष्यसारयुता मुद्गल वृत्तिश्च (अष्टसु खण्डेषु-1963-66)
9. अथर्ववेद ऋषि छन्दो अनुक्रमणिका (1970)
10. ऋग्वेद ऋषि देवता छन्दोऽनुक्रमणिका (1966 पुनश्च 1975)
11. ऋग्वेदमन्त्रानुक्रमणी (1966)
12. ऋग्वेदपदपाठानुक्रमणी (1966)
13. अथर्ववेदपदपाठानुक्रमणी (1954)
14. अथर्ववेदीयबृहत्सर्वानुक्रमणिका (1966)
15. ब्राह्मणोद्धारकोष: (1966)
16. उपनिषदुद्धारकोष: (1972)
17. वैतानश्रौतसूत्रस्य सोमादित्यकृतमोक्षेपानुविधिभाष्यसहितं संस्करणम् (1967)
18. वेदशास्त्रसंग्रह: (1966)
19. ए कम्परेटिव एंड एटिमोलजिकल डिक्शनरी आफ वैदिकइन्टरप्रटेशन च (ए. स्पेसिमन् 1966)
20. द वेदास् एन्ड शास्त्रास् (1966)

विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोधसंस्थानस्यैव कैश्चित् प्रमुखैर्विद्वाद्भिर्निम्नलिखिता आलोचनात्मका ग्रन्था: सम्पादिता निर्मिताश्च यथा-

1. पंडितेन भीमदेवेन शांखायानस्यारण्यकस्य आलोचनात्मकं संपादनं कृतम् (1980)
2. पंडितेन अमरनाथेन शास्त्रिणा वैदिकस्वरसमीक्षा निर्मिता (1964)

3. प्रो के. वी. शर्मणा भास्कराचार्यकृताया लीलावत्या: संपादनं (क्रियाक्रमकारी भाष्यसहितं) एवं आचार्य विश्वबन्धुना लिखितस्य वैदिक् टेस्टियोलिंगस्टिवक्स नामक ग्रन्थस्य संपादनम् कृतम् (1975)।
4. प्रो. वी. आर. शर्मणा वरदराजकृतटीकादिसहितं आर्षेय कल्पस्य संपादनं कृतम् (1976)
5. डॉ. मुनीश्वरदेवेन ऐतरेयस्यारण्यकस्य सायणभाष्य सहितं आलोचनात्मकं सम्पादनं कृतम्।
6. प्रो. कुन्दनलालेन शर्मणा सप्तखण्डात्मको वैदिकवाङ्मयस्य बृहत् इतिहास: निर्मित:। तत्र चतुर्थ-षष्ठ-सप्त खण्डानि क्रमश: 1985, 1983,1981 तमेषु वर्षेषु प्राकाश्यं नीतानि। तस्य चतुर्थं खण्डं यजुर्वेदसंहितासामवेदसंहिता चेति नाम्ना ख्यातं, षष्ठं खण्डं वेदाङ्ग नाम्ना प्रसिद्धं, सप्तमं खण्डं च कल्पसूत्रम् इति नाम्ना। अन्यानि प्रथम-द्वितीय-तृतीय-पंचमखण्डानि अप्रकाशितानि सन्ति। इमानि आरण्यकानि उपनिषच्च, ब्राह्मणग्रन्था: अथर्ववेद: ऋग्वेदश्च इति नाम्ना सन्ति।

शोधात्मकदृशा सम्पादितान् समीक्षात्मकदृशा च रचितान् अनेकान् वैदिकलौकिकसंस्कृत वाङ्मयपरकान् ग्रन्थान्, भाषाविज्ञान-परकांश्चाऽपि शोधग्रन्थान् संस्थानमिदं प्राकाशयत्। सामान्य पाठकानां बालानां च हिताय हिन्दीभाषया लोकप्रियग्रन्था अपि प्रकाशिता अभूवन्। हस्तलिखितैमुद्रितैश्च ग्रन्थै: देशीय विदेशीय नानाभाषासु प्रकाशिताभि: पत्रपत्रिकाभिश्च सुसज्जित: सर्वजनहिताय पुस्तकालयोऽपि सततम् अवर्धत।

आङ्गलभाषया 'विश्वेश्वरानन्द-इण्डालोजिकल-जर्नल' (vii) नामिका षाण्मासिकी भारत भारती शोधपत्रिका (सम्प्रति विश्वविद्यालय विभागाधीन) हिन्दी भाषया 'विश्वज्योति:' इति नाम्ना सांस्कृतिकी साहित्यकी च मासिकी पत्रिका, संस्कृतभाषया च 'विश्वसंस्कृतम्' इति नाम्ना शोधपरका च त्रैमासिकी पत्रिका इत्येता: तिस्र: पत्रिका: संस्थानेन प्रारब्धा:। आसां प्रकाशनं संस्थानस्य निजे मुद्रणालये सम्पद्यते।

1965 तमे वर्षे विश्वेश्वरानन्द-वैदिकशोधसंस्थानस्य इमे चत्वारो विभागा चण्डीगढ़स्थेन पञ्जाबविश्वविद्यालयेन अधिगृहीता:-शिक्षण विभाग:, शोधविभाग:, हस्तलिखित ग्रन्थविभाग: पुस्तकालयविभागाश्च। पञ्जाबविश्वविद्यालयेन अधिगृहीत विभाग: विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत-भारती अनुशीलनसंस्थानम् (वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस.) इति नाम्ना ख्यातो जात:। प्राचीन-परिपाट्या संस्कृत शिक्षण श्रेण्या: प्राक्शास्त्री, शास्त्री आचार्य:) आधुनिक पद्धत्या एम. ए. (संस्कृत) श्रेणीनाम अध्यापनं भवति। संस्थानमिदं विदुषां दिग्दर्शने शोधच्छात्रा: पी-एच. डी. इत्युपाधि प्राप्तये शोधकार्यमपि विदधति।

पञ्जाबविश्वविद्यालयस्य अस्य विभागस्य वैदिकाध्ययनस्य-अनुसन्धानस्य क्षेत्रे महत्त्वपूर्णं योगदानं विद्यते। संस्थानस्य निम्नलिखिता: सम्पादिता: प्रकाशिताश्च ग्रन्था: सन्ति-

1. मशकमार्गविरचितं क्षुद्रकल्पसूत्रम् श्रीनिवासकृतभाष्यसहितम् (1974)
2. कात्यायनविरचितं भाषिकसूत्रम् (भाष्यद्वयसहितम् 1975)
3. आश्वलायनश्रौतसूत्रम् देवत्रातभाष्यसहितं प्रथम: द्वितीय: तृतीयश्च भागा: क्रमश: 1986, 1990, 1996 तमेषु वर्षेषु।
4. आश्वलायनश्रौतसूत्रम् सिद्धान्तिभाष्य सहितम् (2001)
5. डिस्क्रिप्टीव केटलोग ओफ मैनुस्क्रिप्ट प्रथमो-द्वितीयश्च भाग: (1975.1999)

अस्यैव संस्थानस्य विद्वद्भि: निर्मिता: सम्पादिताश्च ग्रन्था निम्नलिखिता: सन्ति:-

1. प्रो. वी. आर. शर्मणा महोदयेन शुङ्गरचित गायत्रविधानसूत्रस्य (सटीकं 1971), कात्यायनरचित प्रतिहारसूत्रस्य (वरदराज कृत दशतीयटीकासहितं, भट्टभास्करध्ववरीन्द्रविरचितसामवेदीय आर्षदीपिकस्य एवं पञ्चविधसूत्रस्य तथा मात्रालक्षणस्य च सम्पादनं विहितम्।)
2. प्रो. एस. भास्करन् नायर् महोदयेन ए वेन्कटसुवैया विरचितं सत्यलोक इन ऋग्वेद इति नाम्न: संपादनं कृतम् (1974)।
3. प्रो. व्रजबिहारी चौबे महोदयेन लिखिता/सम्पादिता च प्रमुख ग्रन्था:-

(क) लिखिता ग्रन्था:

1. दि न्यू वैदिक सलैक्शन् पार्ट, I,II (1965 पुनश्च 1972)
2. ट्रीटमैन्ट ओफ नेचर इन द ऋग्वेद (शोध प्रबन्ध: 1970)
3. वैदिकवाङ्मय एक अनुशीलन (1972)
4. वैदिक स्वरित मीमांसा (1972)
5. वैदिक स्वरबोध (1972पुनश्च 2004)
6. ऋग्वेदप्रातिशाख्य (1-4 पटल हिन्दी व्याख्यासहित-1984)
7. वैदिक कन्सेप्ट (2002)
8. वेदाङ्ग लिटरेचर (2004)
9. लेक्चर्स ओन मैनुस्क्रिप्टोलोजी (2004)
10. वैदिक लैंग्विज (2005)
11. वेदविज्ञान-चिन्तन (2005)
12. वेद व्याख्या की दिशाएं (2005)
13. शुक्लयजुर्वेदसंहिता (एष्टिक भाग अध्याय 1-3) (2005)

14. ऋङ्गमन्त्र-निर्वचनभाष्यम् (मुद्रणाधीन)

(ख) सम्पादिता ग्रन्था:-

1. वाधूलश्रौतसूत्रम् (1983)
2. वाधूलस्मृति (हिन्दी अनुवाद सहित-2001)
3. वाधूल-अन्वाख्यानम् (2001)
4. वाधूल यज्ञप्रायश्चित्तम् (2001)
5. वाधूल श्रौतसूत्रम् (आर्यदास भाष्यसहितम्) मुद्रणाधीन
6. आश्वलायनसंहिता (मुद्रणाधीन)
7. काठक आरण्यक (मुद्रणाधीन)
8. वाधूलगृह्या गमवृत्तिरहस्यम् (मुद्रणाधीन)
9. वाधूल प्रयोगक्लृप्ति (मुद्रणाधीन:)
10. वाधूलगृह्यगमकल्पवृत्ति (मुद्रणाधीन:)
11. भाषिक सूत्रम् (कात्यायन विरचित) महास्वामी एवं अनन्तभट्ट भाष्यसहितम्
12. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास प्रथम खण्ड (लखनऊ 1996)

प्रोफेसर चौबे महोदयैर्विंशत्युत्तरैकशतानि वेदविषयकशोधपत्राणि अद्यावधि लिखितानि सन्ति।

4. प्रो. दामोदर झा महोदयेन लिखिता/सम्पादिता ग्रन्था:-

1. भगण समीक्षा (1973)
2. आपस्तम्ब शुल्बसूत्रम् (1988)
3. मैत्रायणीय-शुल्बसूत्रम् (मौढ़मैत्र-शङ्करकृतभाष्येण सहितम्) (2001)
4. शुल्बसूत्र का इतिहास (लखनऊ 1997)

5. आचार्य भद्रसेनेन वेदविषयमधिकृत्य विंशत्यधिकानि पुस्तकानि लिखितानि। तेषु वेद का जीवन दर्शन, वेद की कुञ्जी, वेद-उद्यान और वैदिक वाङ्मयस्य परिशीलनम् इत्यादीनि मुख्यानि सन्ति। अस्मादिव विभागात् 'विश्वेश्वरानन्द इन्डोलोजिकल जर्नल' (VIJ) इति नाम्नी शोधपत्रिका आङ्गलभाषायां प्रकाशिता भवति। यस्यां वैदिकानुसन्धानां आधारीकृत्य शोधपत्राणि लिख्यन्ते। 1965 ईस्वित: इदानीं पर्यन्तं अस्य पत्रिकाया: एकोनचत्वारिंशत् भागा: प्रकाशिता: अभवन्। विभागोऽयं, डिक्शनरी ऑफ वैदिक इन्टरप्रेटेशन इति नामक कोशग्रन्थनिर्माणे निरतोऽस्ति।

अस्य संस्थानस्य शोधार्थिभि:/विद्वद्‌भिर्वा निम्नलिखिता वैदिकवाङ्मयसम्बन्धिता: शोधप्रबन्धा: "पी-एच. डी." इति उपाधये लिखिता:।

1. विजय कुमारः - सोसियोलोजीकल स्ट्डी ऑफ श्रौत रिटूयलज विद स्पैशल रैफरैन्स टू कात्यायन श्रौत सूत्रः (1980)
2. सूरजभानः - असुराज इन वैदिक लिट्रेंचर (1981)
3. पंकज माला - सामगान का औद्भाविक, व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक विवेचन (1984)
4. राधेश्यामः शर्मा - ट्रीटमेन्ट आफ वैदिक डिटीज इन द निरुक्त ऑफ यास्क (1981)
5. भक्तवत्सलशर्मा - ऋग्वैदिक काव्य समीक्षा के सिद्धान्त (1986)
6. गणेशदत्तो भारद्वाजः - वैदिक वाङ्मय में मनस्तत्व (1983)
7. देवराजशर्मा - वैदिक साहित्य में चातुर्वर्ण्य मीमांसा (1986)
8. प्रवीणसिंहः राणा - एंन्शियेन्ट इंडियन इकोनिमी विद स्पैशल रैफरैंस टू वैदिक लिट्रेचर (1985)
9. कृष्णमुरारिः शर्मा - क्रिटिकल स्टडी ऑफ द ऋग्वेद मिस्टीसिजम (1988)
10. अमरनाथ राणा - वैदिक साहित्य में अर्थ पुरुषार्थ (1983)
11. राजबलीप्रसाद - ऋग्वेद शाकल संहिता के दशवें मण्डल में काव्यतत्त्व (2001)
12. जगन्नाथः शर्मा - वाजपेय याग का समीक्षात्मक अनुशीलन (2002)

अत्रत्याः प्राध्यापका न केवलं वैदिकाध्ययनशोधकार्ये निरता आसन् सन्ति च अपितु संस्कृतवाङ्मयस्य अन्यासामपि विधानां साहित्य. दर्शन-व्याकरणादीनां निर्माणे संलग्नाः सन्ति। एतेषु नामानि अधस्तात् निर्दिश्यते-

प्रो. बी.आर. शर्मा, प्रो. के. बी. शर्मा, प्रो. शिवप्रसाद भारद्वाजः, प्रो. वीरेन्द्रशर्मा, प्रो व्रज बिहारी चौबे, प्रो. जयनारायण शर्मा, डॉ. देवराजशर्मा, श्री एस. भास्करन् नायरः, डॉ. मुनीश्वर देवः, प्रो. टी. एस. बिन्द्राः, श्री इन्द्रदत्त उनियालः, श्री राजकुमारः, प्रो. घनश्याम उनियालः, आचार्य भद्रसेन, डा. कन्हैया लाल पराशरः. प्रो. गिरीशचन्द्रः ओझा, प्रो. जगदीशप्रसाद सेमवालः (सर्वेव सेवानिवृत्तः), प्रो. दामोदर झा, प्रो. गणेशदत्त भारद्वाजः, डॉ. रघुवीर सिंहः, डॉ. राजेन्द्रः शर्मा, डॉ. प्रेमलालः शर्मा, डॉ. प्रभात सिंहः. डॉ. श्रीमती कृष्णा सैनी, डॉ. कृष्णमुरारिः शर्मा। एतेषां संस्कृतसाहित्यस्य संरक्षणे परिवर्धने च प्रंशसनीयं योगदानं विद्यते।

इत्थं पूर्वोक्तं संस्थानद्वयं लौकिकवैदिकस्य च संस्कृतस्य संरक्षणे परिवर्धने च सततं तत्परम्। अस्य योगदानं न कदापि केनापि विस्मर्तुं शक्यते। आशास्यते यदिदं पञ्चाम्बुप्रदेशीयं तीर्थरूपं संस्थानद्वयं सुरभारती सेवा तत्परो भविष्यति।

संस्कृतसंरक्षायै संस्थानाम् समन्वयात्मकं योगदानम्

डॉ० शिवशंकर मिश्र

उत्तरांचल संस्कृत वि()वि(), हरिद्वार

दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभमिति धिया भारतीयसंस्कृतसंस्थानां समन्वयात्मकरूपेण प्रचार-प्रसारस्य उपाया:कीदृशा: भवेयु: यैरद्यापि तादृशमेव संस्कृतम् प्रतिष्ठायां सर्वोच्चाशिखरं आसीनं स्याद्यादृशं पुराभारते आसीदिति चिन्त्यम्।

इदन्तावद् ध्यातव्यं यत् संस्कृतं नहि केवलं हानोपादानादिव्यवहारप्रतिपादकमेव अपितु संस्कृतध्वनीनां मानवजीवने आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक इत्येतत्त्रयसमुन्नत्यै महद्योगदानमनुभूयते। अत धियौ सर्वजनहिताय सुखाय चा नूनं संस्कृतम् विशदीकरणीयं प्रसारमुखेन प्रसृतव्यंच।

सम्प्रति भारते सन्ति नैकानि संस्कृतसंस्थानानि यत्र प्राचीनपरम्परामाश्रित्य व्याकरण-दर्शन-साहित्येतिहास-पुराण-धर्मशास्त्रागमादीनां विविधविषयाणं अध्ययनाध्यापनं सम्पाद्यते तेष्विमानि प्रामुख्येन परिगणितानि-

1- सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय: (वाराणसी, उ0 प्र0)
2- दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय: (दरभंगा, बिहार)
3- श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठम् (मानितविश्वविद्यालय: नई दिल्ली)
4- तिरुपति-संस्कृत विद्यापीठम् (मानित विश्वविद्यालय:, तिरुपति)
5- श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय: (पुरी, उड़ीसा)
6- राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय:, (जयपुर, राजस्थान)
7- महर्षि सान्दीपनि वेदविद्याप्रतिष्ठानम् (उज्जैन-म. प्र.)
8- राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानम् (मानित विश्वविद्यालय:, नई दिल्ली)
9- उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय:, (हरिद्वारम् उत्तरांचल)
10- राष्ट्रीय संस्कृत संस्थानस्य देशस्य विभिन्नेष भागेषु स्थितानि दश परिसर संस्थानानि।
11- गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय: (हरिद्वारम् उत्तरांचल)
12- श्री पराङ्कुश संस्कृत-संस्कृति संरक्षा परिषद् (गया, बिहार)

अध्ययनाध्यापनपक्षमनवलम्ब्य संस्कृतं प्रचारयन्ति प्रसारयन्ति सन्ति बहूनि सर्वकारस्य संस्थानानि-

1- दिल्ली संस्कृत अकादमी (दिल्ली)
2- उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थानम् (लखनऊ)

3- उत्तरांचल संस्कृत अकादमी (हरिद्वार)
4- मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी (भोपाल)
5- बिहार-संस्कृत-अकादमी (पटना)
6- राजस्थान संस्कृत अकादमी (जयपुर)
7- गुजरात संस्कृत अकादमी (गुजरात)

एवमेव भवन्ति बहवः संस्कृतमहाविद्यालयाः आदर्श संस्कृतमहाविद्यालयाश्च येषु व्याकरण-दर्शन-ज्योतिष प्रभृति विद्यानां साचार शिक्षणंसम्पाद्यते विद्वदिभः गुरुभिः। नहि एतावदेवापितु दृश्यते नैकं संस्कृतसंस्थानम् येषां संस्कृतभाषणं, संस्कृत प्रचार-प्रसारमेवानन्यभूतमुदेश्यम् यत्प्रभावात् संस्कृतस्य भवति नूनमन्यूनमुन्नयनम्-

1- संस्कृत भारती (नव देहली)
2- सार्वभौम-संस्कृत संस्थानम् (वाराणसी)

संस्कृत-संस्थानेषु समन्वयस्थापने हेतुभूता अधोनिर्दिष्टाः केचन् पक्षाः प्रस्तूयन्ते-

सम्प्रति विज्ञानयुगीनेऽस्मिन् काले बहुशः प्रयुक्तानां नूतनातिनूतनवैज्ञानिकशब्दानां प्रयोगसम्पादने काठिन्यं दरीदृश्यते तत्समाधये संस्कृतशब्दानामपि तादृशं किमपि प्रातिभं शब्दाविष्करणीयं कोशश्च तदनुरोधात्, प्रकाशनीयः। एतत्प्रसंगे संस्कृतसंस्थाभिः परिभाषावली ग्रन्थः यत्र काव्यनाटकेतिहासपुराणदर्शनज्योतिषायुर्वेदादीनां विशेषशब्दानां लक्षणं परिभाषा वा समुच्चयेन कात्स्र्येन वा संग्रहः कर्तव्यः। संस्कृतसंस्था निर्माणाय अभिनवः प्रतिभाशालिनः योग्याः शिष्याः आनेतव्याः, विज्ञान-चिकित्सा-प्राविधिक शिक्षाक्षेत्रेषु यादृशाः अध्ययनशालिनः जिग्मिषवः सन्ति तादृशाः एव निपुणाः संस्कृतेऽपि विद्यारसरुचिराः जायेरन् एतदर्थ संस्कृतवाङ्मयस्य विविधेषु निकायेषु संचयितव्याः अध्येतारः।

साम्प्रतं भारतीय-संस्कृत-शिक्षण-संस्थानेषु पाठ्यक्रमविषयिणी अस्त्येका महती विसंगतिः, एकत्र यानि पुस्तकानि पाठ्यन्ते अन्यत्र न तेषां पाठ्यक्रमे प्रवेशः। कुत्रचिद् संस्थाने मूलग्रन्थाः पाठ्यन्ते कुत्रचित् टीका-तट्टीका-भाष्य क्रोडपत्रपादटिप्पण्यश्चाध्याप्यन्ते। एवमध्याप्यविषयाणां दृश्यते न किमपि साम्यं संस्थानेषु।

विशेषतोऽत्रेदमवधेयं यद् प्रायशः संस्कृत विश्वविद्यालये पठन्तो येऽध्येतारस्ते केवल एकमेव विषयं सनिष्ठं पठंन्ति तद्भवतु नाम व्याकरणं दर्शनं, ज्योतिषं, काव्यशास्त्रं वा। यो काव्यशास्त्रं वेत्ति स दर्शनं न जानाति, यो दर्शनज्ञः सं ज्योतिषं परिहसति, यो ज्योतिषी स व्याकरणमाक्षिपति, यो

वैयाकरण: स सर्वानज्ञो मनुते न केवलं एतावदेपापितु न पठेत् म्लेक्षमयीं भाषां इत्येवं वदन्त: संस्कृतज्ञा: आंग्लादिभाषावबोधने नोत्सुका: दृश्यन्ते सर्वं संस्कृते प्रतिष्ठितम् इति मत्वा तत्रैव रमन्ते। पाठ्यक्रमेऽपि संस्कृताध्ययेन सह आंग्लादिभाषाध्ययनस्य नास्ति काचिद् व्यवस्थिता विधि: अतएव अद्यतन संस्कृताध्येतारो ज्ञानस्यैकां विधामुपासयन्तो न तावल्लभन्ते यदर्थं तेऽर्हा:। अतोऽद्य सर्वेषु संस्कृत-संस्थानेषु संस्थाचार्यै: सम्मिल्य समन्वयात्मकरूपेण पाठ्यक्रममवश्यं विचारणीयम् यत्र न केवलं एकैकस्य व्याकरणस्य, दर्शनस्य, ज्योतिषस्य, काव्यस्य वा समावेशोऽपितु कश्चन तादृश: पाठ्यक्रमो निर्मेय: यत्रोक्तविषयाणां न भवेदंशमात्रं योगदानमपितु समेषां विषयाणां भवेत् विधिवत्समावेश:। शिक्षणमपि पंक्तिपाण्डित्यमयं सत् उपयोगयोग्यं समीक्षणपूर्वकं हानोपादानजनकं यथा स्यात् तथाचरणीयम्। नालं एतावता संस्कृत विद्याया: कस्यचिदपि विभागस्य भवतु नाम दर्शनस्य, व्याकरणस्य, न्यायस्य, ज्योतिषविभागस्य, वेदविभागस्य वा स्यात् समेषां कृते आंग्लभाषा भाषारूपेणानिवार्यतया अध्यापनीया/शिक्षणीया यदि सर्वासु संस्कृतसंस्थाषु पाठ्यक्रमस्य साम्यं स्यात्तर्हि नूनं तासु संस्थाषु सिद्धयति समन्वयसिद्धि:।

एवमेव तत्तच्छास्त्र तत्तट्टीकानिर्मातृणां, काव्यदर्शनज्योतिर्विदादीनां, दिगदिगन्तप्रथितयशोगानकीर्तीणां, महतां विदुषां जन्मादिकमधिकृत्य सर्वसंस्थानै: तत्तदध्यक्षैश्चाभिनव: शास्त्रोत्सव: पूर्वकलित-तिथ्यादिक: आयोजनीय: अभिनन्दनीयश्च। एतादृश सम्मेलनादिषु तत्तत्कक्षासु विद्यारसरुचीनामध्येतृणां यथाविषयं काव्यपाठ, नाटक, प्रहेलिका, वाद-विवाद, शास्त्रार्थ, भाषण प्रतियोगितेत्यादयोऽपि संस्थां संस्कृतच्चाभिवर्धयन्ति। क्रमेऽस्मिन् यथा महाकालभूमौ उज्जैयिन्यां नगर्यां प्रतिवर्ष महाकवि-कालिदास सम्मेलनमायोज्यते तथैव सर्वत्र संस्कृतसंस्थानेषु प्रतिवर्ष वर्षान्तरं वा कुत्रचिद् आचार्यभगवत्पादशंकर-सम्मेलनम्, कुत्रचिद न्यायप्रवर्तको महामुनिगौतमसम्मेलनम् कुत्रचिद्महर्षिकणाद सम्मेलनम् कुत्रचिद् जैमिनि सम्मेलनम, कुत्रचित्पाणिनि सम्मेलनम, कुत्रचित्पतंजलि सम्मेलनम्, कुत्रचित् वराहमिहिर सम्मेलनम्, कुत्रचित् सायणसम्मेलनं कुत्रचिच्च चरकसम्मेलनमायोजनीयम्। सम्मेलनमिदं महता उत्साहेन विभिन्नाभिस्संस्थाभिस्साहाय्येन चावश्यमायोजनीयं येन संस्थासु समन्वय: संस्थाप्येत्।

संस्कृत भाषायां: व्यवहारदृष्ट्या लोकोपकारकत्वसम्पादने प्रत्यहमवेक्ष्यते नूतनातिनूतनमन्यूनमनुसन्धानम्। एतदर्थं संस्कृतविश्वविद्यालया:, सर्वा: संस्कृत-अकादम्य: सर्वाण्यपि संस्कृत संस्थानानि चैकीभूय प्रयतेरन्। सर्वत्र विश्वविद्यालये, अकादमीषु च शोधार्थिनां कृते पुस्तकालयेषु ग्रन्थानामनुक्रमं विषयानुरूपं व्यवस्थापनं भवितव्यं येन अनुसन्धातृणां भवेद् महदुपकार:। अनुसन्धनार्थं शोधार्थिन: संस्थानात् संस्थानान्तरं गच्छेयु: संस्थानान्तरेषु विषयविशेषज्ञमुपगच्छेयु: एतेनापि संस्थासु समन्वयबुद्धेर्भविष्यति जागरणम्।

प्रसंगेऽस्मिन्निदमपि तथ्यं विचारणीयं यद् संस्कृतसंस्थानेषु सुरक्षिता: सन्ति यावत्य: पाण्डुलिप्य: तासां अध्ययनं, सम्पादनं, प्रकाशनंच संस्थाभिरवश्यं करणीयं यत: पाण्डुलिपीनां संरक्षणमात्रं नास्त्यस्माकमुद्देश्यम् तासां संरक्षणपूर्वकं प्रकाशनं सम्पादनंच भवेदित्यस्माकं मति:। अतो यासु संस्थासु विद्यते पाण्डुलिपीनां प्राचुर्यं तत्र गत्वा काच्चिन्नियमपद्धतिमाश्रित्य तासां प्रकाशनार्थं संस्थाभिरवश्यं विचारणीयम्।

आधुनिके वित्तप्रधानयुगे संस्कृतमधीयान ये जनास्तेषां जीविकायै सर्वसंस्कृतसंस्थाभिर्नूनं चिन्तनीयम्। संस्कृतस्नातका: परास्नातकाश्च कथं जीविकां प्राप्नुयुरिति नैकस्या: संस्थाया: समस्या, इमाम् समाधातुं सर्वसंस्कृतसंस्थानै: तत्तदधिकारिभिश्चैकीभूय भूयो भूयो चिन्तनीयम्।

अस्मिन्नव क्रमे समेषां संस्कृत-संस्थानां साहाय्येन कश्मिश्चित्संस्थाने एकं साप्ताहिकं, पाक्षिकं वा समाचारपत्रं प्रकाशनीयं यत्र संस्कृतसम्बद्धसूचनानां समन्वय: स्यात् सहैवायोज्यामानं यत्किमपि सम्मेलनं समारोहादिकं वा स्यात्तत्सर्वं तत्र निवेशनीयम्। एतस्मिनेव पत्रे समेषां संस्थानां प्रवेशविधि: परीक्षाविधि:, पाठ्क्रमविधि: अन्याश्च यावत्यो योजना: ता: अवश्यं योजनीया:। पत्रस्यास्य साफल्याय प्रचाराय च सर्वै: संस्कृतज्ञै: सकमंचीया: भवेयु: अनेनापि संस्थानेषु मिथ: सामीप्यं समुदेष्यति इति संक्षेप:।

सांख्यदर्शने सत्कार्यवादः

डा० लेखराजः शर्मा व्याख्याता दर्शनशास्त्रः
केन्द्रीय आर्दश संस्कृत कालेज
डोहगी डाकघर-डोहगी
तहसील बंगाणा,जिला ऊना, हिमाचल प्रदेशः

भारते आस्तिक-नास्तिक-भेदेन परस्परं भेदमापन्नानि तानि दर्शनानि सन्ति द्वादशविधानीति तेषु सन्ति षडास्तिकदर्शनानि, षट् च नास्तिक दर्शनानीति।

तत्र सांख्यदर्शने प्रकृतिरेव व्यक्तानां कारणं मन्यते, अतः प्रश्नः समुदेति यत् महदादि व्यक्तं विद्यते तत् प्रधानभूते कारणे उत्पत्तेः प्राक् कारणे विद्यते न वा। तत्र सन्ति अनेकानि मतानि।

नासतः सदुत्पत्तिः न च सतोऽसज्जायते।

यथा-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वत्तोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

यथा-

इह कारणवादे चतुर्धा विप्रतिपत्तयः सम्भवन्ति।
बौद्धाः असतः सदुत्पत्तिः वेदान्तिनः सतोऽसदुत्पत्तिं
सांख्याः पुनः सतः सदुत्पत्तिः नैयायिकाश्च असदुत्पत्तिमामनन्ति॥

बौद्धाः-

बौद्धाः, असत्कार्यवादिनः सन्ति तेषां 'असत्' शब्दस्य अर्थः विनाशः अथवा कार्य क्षणिकं विद्यते। बीजस्य विनाशाद्. अनन्तरम्, वृक्षस्य कारणम्। तच्च बीजम् प्रतिक्षणं परिणमनशीलं विद्यते।

वेदान्तिनः-

वेदान्तिनः विवर्तवादिनः सन्ति, तेषां मते ब्रह्मणः, अनिर्वचनीयस्य जगतः, उत्पत्तिः जायते। सूक्तौ राजतस्य रज्जौ सर्पस्य भ्रान्ति अनिर्वचनीया।

नैयायिकाः-

नैयायिकाः असत्कार्य वादिनः अर्थात् उत्पत्तिवादिनः सन्ति। असत्कार्यस्य अर्थः उत्पत्तेः प्राक् कारणे कार्यम्, असत् अविद्यमानम्, अस्ति इति ते असत्कार्यवादिनः मन्यन्ते।

सत्कार्यवादः-

सांख्याः सत्कार्यवादिनः सन्तिः, अर्थात् ते उत्पत्तेः प्राक् अपि कारणे कार्यं सत् विद्यमानम्, अस्ति इति मन्यन्ते। वस्तुतः तेषांमते कारणमेव परिणाममेव कार्यं. भवतिः पूर्वावस्थायाम् यत् कारणं

भवति तदेव परिणामानन्तरम् कार्यं भवति। न तत्र कारणकार्ययोः पार्थक्यम्, अव्यक्तावस्थायाम् कारणं व्यक्तावस्थायां कार्यम् भवति। यथा-दुग्धमेव परिणामनन्तरं दधि, मृतिका एव घटः, तन्तवः, एव वस्त्रं भवति इति।

अतः, उत्पत्तेः प्राक् अपि, कारणे कार्यम् सत् अस्ति अत एवं एतत् प्रतिपादयितुं सांख्याः तत्र कथयन्ति यत् यदि कारणे कार्यम् उत्पतेः प्राक् अपि विद्यमानं न स्यात् तदा तस्य उत्पत्तिरेव न जायते तत्र ते पञ्च हेतून् स्थापयन्ति। यथा-

(१) असदकरणादिति- असतः, अकरणाद् या उत्पत्तेः प्राक् कारणे नास्ति तस्य उव्पत्तिः कर्तुं न शक्यते। अन्यथा सिकताभ्यः तैलं जायते परं न तथा भवति। अतः न तैलं सिकतासु उत्पत्तेः प्राक् अपि विद्यामानं भवति। तिलेषु भवति उत्पत्तेः प्राक्, अपि तैलम्। अतः तिलेभ्य एव तैलम् जायते इति। एवम् उत्पत्तेः प्राक् अपि व्यक्तम् अव्यक्ते प्रधाने विद्यते।

(२) उपादानग्रहणात्ः- लोके दृश्यते यः यद् इच्छति स तस्यैव कारणम् अन्वेषयति-यथा-दध्यर्थी क्षीरस्यैव ग्रहणं करोति पटार्थी तन्तूनाम् एव ग्रहणं करोति, अनेन स्पष्टं विद्यते यत् चणकस्य वृक्षः चणकबीजेषु, पटश्च तन्तुषु उत्पत्तेः प्राक् अपि विद्यते। तेन कार्यं सत् विद्यते।

(३) सर्वसम्भवाभावात्ः- सर्वस्य सर्वत्र संभवो नास्ति अर्थात् प्रत्येकं वस्तुनः -यत्र कुत्रापि यस्मिन् कस्मिन् अपि कारणे स्थितिः न भवति, न हि यस्माद् अपि यस्य कस्यापि कार्यस्य उत्पतिः जायते यदि एवं स्यात् तदा रजतः सुवर्णस्य जलाद् एवं तैलस्य, दध्नः, उत्पतिर्जायेत् परं न तथा अतः सत् कार्यम् विद्यते। .

(४) शक्तत्त्य शक्यकरणात् - यस्मिन् कारणे यस्य वस्तुनः, उत्पादस्य शक्तिः विद्यते तत् वस्तु तदेव कार्यं उत्पादयति, अशक्यकार्यं न उत्पादयितुं शक्नोति। अतः शक्तमेव कारणम् शक्यं कार्यमुत्पादयितुं शक्नोति। न तु यत् किमपि।

(५) कारणभावाच्च- कारणस्य सद् भावाद् एव कार्यम् उत्पद्यते। यादृशं कारणं भवति तादृशमेव कार्यं जायते यदि कारणस्य सद् भाव न अपेक्षेत् तदा यस्माद् कस्मादपि कारणाद् यत् किञ्चिदपि कार्यं जायेत्, परन्न तथा। यवेभ्यः यवाः ब्रीहिभ्यः ब्रीह्य एव उत्पद्यन्ते न तु ब्रीहिभ्यः यवाः यवेभ्यश्च ब्रीहयः उत्पद्यन्ते। तेन स्पष्टमेव यत् उत्पतेः प्राक् यवेषु यवाः ब्रीहिषु ब्रीहयः विद्यमानाः सन्ति। एतै पञ्चभिः हेतुभिः स्पष्टं विद्यते यत् उत्पतेः प्राक् अपि कारणे कार्यं सत् विद्यते न तु उत्पतेः, अनन्तरमेव-

अत एवोक्तम्-

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्-कार्यम्।। २

---

1. गीता 2.16.

2. सां. का. 9.

बौद्ध दर्शन एवं अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' : शाश्वत सत्य के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन

डॉ० मृदुला जोशी

प्रवक्ता हिन्दी कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

''बौद्ध दर्शन एवं अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' : शाश्वत सत्य के परिप्रेक्ष्य में एक अध्ययन'' - जैसा की शीर्षक से ही ध्वनित है कि प्रस्तुत अध्ययन में अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' में बौद्ध दर्शन के प्रभाव को अन्वेषित करने की चेष्टा की गई है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की 'असाध्य वीणा' उनके एक काव्य संग्रह 'आंगन के पार द्वार' की सर्वाधिक चर्चित, लम्बी और महत्वपूर्ण कविता है। इसका आधार एक जापानी कथा है। आकोकुरा की '*Taming of the Harp*' शीर्षक से यह कविता *'The Book of Tree'* में संग्रहीत है। इस कथा में वर्णित है 'किरी' नामक एक विशाल पवित्र वृक्ष से एक जादूगर ने वीणा बनाई। चीन के सम्राट् ने इस वाद्ययंत्र को संभाल कर रखा था और वह चाहता था कि कोई उसे बजाए पर कोई उसकी इच्छा की प्रतिपूर्ति नहीं कर सका। अन्त में वीणाकारों के राजकुमार 'पीवो' ने अपनी साधना द्वारा उसे बजाया। सम्राट् ने उसे वीणा बजाने का रहस्य पूछा तो उसने उत्तर दिया की औरों को वीणा बजाने में सफलता इसलिए नहीं मिली कि वे सब अपनी बात करते थे। मैंने स्वयं को भुलाकर वीणा में सोए संगीत को जगाया।

'असाध्य वीणा' में इस छोटी सी कथा को एक विशिष्ट अवधारणा की अभिव्यक्ति हेतु आधार बनाया गया है। वज्रकीर्ति नामक एक महान् साधक ने एक प्राचीन 'किरीटी तरु' से एक वीणा का निर्माण किया था। इस वीणा को कोई भी नहीं बजा सका। फलतः यह 'असाध्य वीणा' के नाम से प्रख्यात हो गई। लेकिन प्रियंवद नामक सत्यान्वेषी साधक इसे बजा लेता है। वस्तुतः यह समूची कविता प्रतीकात्मक है। 'वीणा' व्यक्ति के भौतिक अस्तित्व का प्रतीक है। उसमें वही संगीत की सृष्टि कर सकता है जो महामौन, महाशून्य, सत्य का साधक हो। 'संगीत' शाश्वत सत्य का प्रतीक है। 'किरीटी तरु' समष्टि का प्रतीक है और वज्रकीर्ति उन अग्रेता साधकों का प्रतीक है, जो सत्य को जान चुके हैं। राजा-रानी और सभासद सामान्य जन का बोध कराते हैं। सत्य का साधक तब तक सच का साक्षात्कार नहीं कर पाता-जब तक वह स्वयं को पूर्णतः साधना में समर्पित नहीं कर देता। सर्वव्याप्त सत्य का स्वर मुखरित होते ही साधक स्वतः मौन हो जाता है। यह सत्य महाशून्य है। इस कविता के नायक प्रियंवद की साधना-प्रणाली, बौद्ध-साधना-प्रक्रिया के सन्निकट प्रतीत होती है और यही नहीं : स्थान स्थान पर हमें शून्यवाद और तथता दर्शन की भी झलक दिखाई पड़ती है।

बौद्ध-दर्शन के अनुसार भौतिक प्रतीति की पृष्ठभूमि में शाश्वत सत्य अन्तर्निहित है। उस

सत्य का साक्षात्कार इस शरीर के माध्यम से ही किया जा सकता है। साधारण व्यक्ति इस सच को नहीं जान सकते। केवल सत्य की खोज में लगा सच्चा साधक अन्ततः उस सत्य को जान लेता है।

बौद्धदर्शन के अनुसार हम **'तन्हाजटा'** (तृष्णापाश) में जकड़े हुए हैं और इससे मुक्ति का एक मात्र साधन है जीवन में उचित (शील) और समाधि ज्ञान (प्रज्ञा) को स्थान दें। बौद्ध-चिन्तन में शील का तात्पर्य है - सात्विक अनुशासित चेतना, सदेच्छा और मनः संयम (संवर)। **'समाधानम् उपधारणम् पतिट्ठा'** (विसुद्धि मग्ग, सीलनिद्देसो, पृष्ठ सं 7) अर्थात् शील के धारण करने से मन, वाणी और शरीर तीनों का नियमन होकर स्थिरता प्राप्त होती है। प्रियंवद भी एक सच्चे बौद्ध भिक्षु की तरह शील का अभ्यासी है-

''पर उस स्पन्दित सन्नाटे में, प्रियंवद साध रहा था वीणा-/नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।....... भूल गया था केशकम्बली राज-सभा को/कम्बल पर अभिमंत्रित एक अकेले पन में डूब गया था।''।[१]

मनःकायिक एवं वाचिक इतनी स्थिरता, शान्तावस्था बिना सम्वर (संयम) के किसी को भी अधिगत नहीं हो सकती। बौद्ध चिन्तन में संवर के पांच प्रकार परिगणित हैं-

1. पाहिमोक्ख सम्बर 2. सतिसम्वर 3. ज्ञान सम्वर 4. खांति (क्षान्ति) सम्वर 5. विरिय सम्वर। जो क्रमशः संयमित कृत्य, संयमित मार्ग, ज्ञान, धैर्य और आत्मसंयम का द्योतक है। प्रियंवद के क्रिया-कलापों में हमें उक्त चारों संयम दृष्टिगत होते हैं। बाह्य परिस्थितियों में विचलित हुए बिना असीमित धैर्य का परिचय देते हुय वह अन्तःसाधना में डूब जाता है।

शील के अभ्यास के लिए मनःनियंत्रण का अभ्यास आवश्यक है। मन की चंचलता पर संयम पा लेने पर ज्ञान में एकाग्रता की सिद्धि होती है। ध्यान के लिए बौद्ध दर्शन में प्राकृत शब्द **'ज्यान'** या **'ज्ञान'** का प्रयोग है। इन प्रारम्भिक साधन क्रियाओं को जो मनः संयम के हेतु की जाती हैं, 'उपचार समाधि' कहते हैं, इसके पश्चात् की अवस्था 'अप्पना समाधि'' है। (विसुद्धि मग्ग, पृष्ठ 85) एकाग्रता की शुद्धि के लिए आवश्यक है कि साधक एक शान्त स्थान में आसन ग्रहण कर श्वास की प्रक्रियाओं में अपना ध्यान एकाग्र करें। प्रियंवद भी कुछ इसी प्रकार एकाग्रता स्थापित करने की चेष्टारत है-

''केश कम्बली गुफागेह ने खोला कम्बल/धरती पर चुपचाप बिछाया/वीणा उस पर रख/पलक मूंद कर, प्राण खींच, करके प्रणाम''[2]

यहाँ प्रियंवद **'विसुद्धि मग्ग'** में वर्णित **'आनपानसति'** (पृष्ठ 292-296) की मुद्रा में दिखाई पड़ता है।

श्वास-नियंत्रण के पश्चात् दूसरी अवस्था ब्रह्म विहार की है। इस अवस्था में चार प्रकार के तत्वों का मनन और ध्यान किया जाता है। वे है - मेत्ता (मेत्री भाव), करुणा, मुदिता, उपेखा (औदासीन्य भाव)। ध्यान और चिन्तन करते समय साधक को चाहिए कि वह संसार के सारे प्राणियों के साथ आत्मसात् हो जाए और सबको आत्मवत् देखने लगे। प्रियंवद भी सघन एकाग्रता के क्षणों में **'किरीटी तरु'** अर्थात् समिष्टि में अनादि काल से प्रवहणमान पशु--पक्षी, मनुष्य व इतर ध्वनियों और रूपों से एकाकार हो उठता है।

झान (ध्यान) की जिस अवस्था में साधक को भौतिक वस्तुओं पर चित्त एकाग्र करने की साधना करनी पड़ती है 'पथमम्झानम्' की अवस्था है। इसमें जिस वस्तु पर चित्त एकाग्र करते हैं उसके सम्पूर्ण रूप, नाम एवं उसकी उपादेयता के बारे में चिन्तन करते हैं। ऐसी एकाग्रता को 'वितक्क' कहते हैं। इस कविता में भिक्षु प्रियंवद भी स्वयं को साधक स्वीकारता हुआ **(राजन्/पर मैं तो/कलावंत हूँ नहीं/शिष्य, साधक हूँ)**³ साधना में लीन **'पथमम्झानम्'** की अवस्था में **'किरीटी तरु'** अर्थात् समिष्टि के रूप में भौतिक पदार्थ पर समग्र रूप से ध्यान करता दृष्टिगोचर हो रहा है-

''जिस में साक्षी के आगे था/जीवित वही किरीटी-तरु/जिस की जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित/जिस के कन्धों पर बादल सोते थे/ और कान में जिसके हिमगिरी कहते थे अपने रहस्य/सम्बोधित कर उस तरु को, करता था/नीरव एकालाप प्रियंवद''४

अग्रिम पंक्तियों में **'किरीटी-तरु'** के नाम एवं उसकी उपादेयता पर प्रियंवद का अविरल चिंतन चलता जा रहा है। उसे दीर्घकाय, झारखंड के अग्रज, पावन वृक्ष, तात, सखा, गुरु, आश्रय, त्राता, महाच्छाय मानते हुए अनिमेष, स्तब्ध, संयत, निर्वाक् रूप से वह अपने समूची चेतना को एकाग्र करता हुआ तन्मयता को प्राप्त है। झान को निर्माण करने वाले पंच तत्व **वितक्क** (वितर्क), **विचार**, **पीति** (प्रीति), **सुखम्** और **एकागता** (एकाग्रता) है। एकाग्रता के घनीभूत क्षणों में प्रियंवद **'किरीटी-तरु'** ससम्बद्ध हुआ काल के सतत् प्रवाह भूत, भविष्य और वर्तमान को आत्मसात कर लेता है। झान के पांचों तत्व **वितक्क, विचार, पीति, सुखम् और एकागता** उसमें एक साथ मूर्तिमान हो उठते हैं-

''तेरी गोद मैं बैठा मोद-भरा बालक हूँ/ओ तरु-तात! संभाल मुझे/मेरी हर किलक/पुलक में डूब जाय:/मैं सुनूँ/गुनूँ/विस्मय से भर आँ कूँ/तेरे अनुभव का एक-एक अन्तः स्वर/तेरे

दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय/गा तू:/तेरी लय पर मेरी साँसें/भरें, पूरें, रीतें, विश्रान्ति पाएं।''[5]

ध्यान की द्वितीयावस्था बौद्ध चिन्तन के अनुसार **'एकोदिभवम्'** नाम से अभिहित है। **वित्तक्कविचारक्खोभाविरहेण अतिविया अचलता सुप्पसन्नता च**- इसमें चित्त एकाग्र, स्थिर, शांत एवं निर्विषय हो जाता है। प्रियंवद को भी वह अवस्था प्राप्त है। ध्यान की तृतीय अवस्था **उपेखा** की है जिसमें आते योगी के सारे **आसव** (मन की विकृतियाँ) नष्ट हो जाते हैं। ज्ञान (ध्यान) की चतुर्थ अवस्था में सुख-दुख का लोप हो जाता है। साथ ही राग-द्वेष समूल नष्ट हो जाते हैं। इस अवस्था में योगी जीवन के राग-विराग, द्वंद्व आदि से उपरत होकर सुख-दुख आदि से उपेक्षा वृत्ति धारण कर लेता है। जिसे [illegible]क भाषा में **'चेतोविमुत्ति'** कहा गया है। प्रियंवद में यह अवस्था अन्ततः दिखाई पड़ती है।

सैंइगुहृय के पुत्र अश्वघोष का सिद्धान्त था कि आत्मा के दो लक्षण है - **भूततथता** (तथात्व) एवं **जन्म-मरण का चक्र** (संसार)। भूततथता लक्षण का अर्थ है समस्त पदार्थों के तथात्व की समानता (धर्म धातु)। व्यक्तियों के विभिन्न रूपों में, पूर्व जन्मों की स्मृतियों की अन्तर्निहित और अचेतन वासनाओं के अनादि संस्कारों के कारण भिन्नता भासित होती है। यदि इस स्मृति पर विजय पाई जा सके तो व्यक्तियों के लक्षण अन्तर्हित हो जाएंगे तथा पदार्थ जगत् का कोई चिन्ह बाकी न बचेगा। समस्त पदार्थ प्रकृत्या अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय है। किसी भी भाषा में उनका पूर्णतः वर्णन नहीं किया जा सकता। उन सबमें पूर्ण समानता होती है। वे न तो परिवर्तन और न विनाश के ,विषय है। वे सभी एक ही आत्मा के अंश हैं, यही भूततथता है। इस तथात्व का कोई लक्षण नही है। शब्दों में इसे तथात्व के रूप में ही समझा जा सकता है। इस ज्ञान के साथ ही कि सत्ता का समग्र रूप बतलाते समय न तो कोई वक्ता है न कोई वाच्य, न कोई विचारक है न विचार्य, तथता की स्थिति शुरू होती है। यह भूततथता न तो सत्ता है न असत्ता, न एक साथ सत्ता और असत्ता का समवाय है। यह न तो एकत्व है और न बहुत्व, और न बहुत्व एकत्व का समवाय और बहुत्व का असमवाय। इन्द्रियगम्य वस्तुओं के ज्ञान की सीमा में बद्ध ज्ञेय पदार्थों की परिधि से ऊपर उठकर ही इसका आभास किया जा सकता है। साधक प्रियंवद साधना द्वारा इतना ऊपर उठ चुका है कि अनादि, अनन्त, अभेद्य, अपरिवर्ती, सर्वव्यापक समग्रता से एकीकृत हो कह उठता है -

''सुना आपने जो वह मेरा नहीं/न वीणा का था:/वह तो सब कुछ की तथता थी. ..अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय/जो शब्दहीन/सबमें गाता है''।[6]

प्रियंवद की वीणा के संगीत से जिस सत्य की झंकृति है उसका दिक्काल से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि वह स्वतः सत्तात्मक है ही नहीं। यहाँ **वाणी** (शब्दहीन), **वक्ता** (वह मेरा नहीं), **विचार** (न वीणा का था)-यहां तीनों का ही विलय हो गया है। जब अज्ञान का नाश हो जाता है तो जागृत मनोवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं, ज्ञान का तत्व अक्षुण्ण रहता है। सत्य अथा संबोध किन्हीं भी आपेक्ष वृत्तियों अथवा ज्ञान के किसी बाह्य साधन से अप्राप्य है। दृश्य जगत् की सभी घटनाएं ज्ञान में इस प्रकार भासित होती है कि वे न तो उसके बाहर जाती है न उसके अन्दर, वे न तो विलीन होती है, न नष्ट। स्वरूप में ज्ञान शुद्ध, स्वच्छ, अनादि, शांत और अविनाशी है। दृश्य जगत् के सभी पदार्थ और सभी स्थितियाँ अविद्या के कारण ही स्मृति में पदार्थीकृत एवं अवस्थित होती है, अतः उनका अस्तित्व नहीं है। ठीक उसी प्रकार जैसे दर्पण में प्रतिफलित प्रतिबिम्बों का कोई अस्तित्व नहीं है। जब बुद्धि विचलित होती है तो पदार्थों का वैविध्य प्रकट हो जाता है। किन्तु जब बुद्धि शांत होती है तो वह वैविध्य विलीन हो जाता है। प्रियंवद पूर्णतः शांत है अतः उसे वैविध्य पूर्ण दृश्यमान जगत् के स्थान पर-समस्त पदार्थ एकही है, सम ही है, पूर्ण शांत एवं अविकारी है और उनमें सत्ता का चिन्ह नहीं है इस सत्य का भान है। इसीलिए वह कह उठता है-

''मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में/वीणा के माध्यम से अपने को मैंने/सबकुछ को सौंप दिया था-/..... महाशून्य/वह महामौन/अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय/जो शब्दहीन/सबमें गाता है''।[७]

'अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय,जो शब्दहीन सबमें गाता है'- वाक्य इस ओर संकेत करता है कि समस्त पदार्थों में ''तथात्व'' की समानता है। रानी, राजा और सभासद को वह बोध क्यों नहीं हो रहा है? कारण केवल यह कि अनेकानेक जन्म की अन्तर्निहित और अचेतन वासनाएँ तथा संस्कार उन्हें भिन्नता का बोध करा रही हैं। दृष्टव्य है ये पक्तियाँ-

''सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे-/ हो रहे वशंवद, स्तब्धः/इयत्ता सबकी अलग-अलग जागी,/संधीत हुई,/पा गई विलग।''[८]

अज्ञान का प्रकटीकरण तीन प्रकार से होता बताया गया है- 1. मन के विक्षोभ के रूप में (आलय विज्ञान) अविद्या कर्म (अज्ञानात्मक कर्म) द्वारा दुखजनक स्थिति 2. अहम् की सृष्टि अथव द्रष्टा के द्वारा 3. बाह्य जगत् की सृष्टि द्वारा जिसका द्रष्टा से परे अपने आप में कोई अस्तित्व नहीं है। असत् बाह्य जगत् के कारण छः प्रकार की स्थितियाँ एक-एक करके पैदा होती हैं - 1. बुद्धि (सम्वेद), बाह्य जगत् के प्रभाव से बुद्धि में अनुकूल और प्रतिकूल संवेदनाओं को विषयगत स्थितियों के एक अनुक्रम में धारण करती है। 3. संश्लेषण, अनुकूल और प्रतिकूल संवेदनाओं के धारण और अनुक्रम द्वारा संश्लेषण (चिपकने) की इच्छा उद्भूत होती है। 4.

अभिधानों और संज्ञाओं से सम्बद्ध होना। इसमें मन विभिन्न संज्ञाओं का पदार्थीकरण करता है। 5. कर्मो का आचरण। संज्ञाओं से सम्बद्ध होने के कारण विभिन्न प्रकार के कर्मों का उद्‌भव होता है। 6. कर्मों के बंधन के कारण वेदना, जिसके कारण मन अपने आप को बंधन में पाता है और उसकी स्वतंत्रता जकड़ जाती है। इस प्रकार ये सभी स्थितियाँ अविद्या से जन्मी हैं। प्रियंवद के अतिरिक्त राजा, रानी और समस्त प्रजा अज्ञानी हैं। अविद्या के सम्पर्क में ही, एकमात्र सत्य सत्ता सृष्टि के विविध दृश्य प्रपंच के स्वरूप ग्रहण कर लेती है अविद्या में निरंतर विशेषीकरण करने वाला ज्ञानभास जन्म लेता है इसे ही **'मनस'** का नाम दियागया है। जो क्रमशः कर्म विज्ञान (जिससे अप्रकाशित बुद्धिमें जागृति होती है), प्रवृत्ति विज्ञान जिससे जागृत बुद्धि में बाह्य जगत् का प्रत्यक्ष करने वाला द्रष्टा उद्‌गत होता है, प्रतिभास विज्ञान (जिससे बाह्य जगत् का प्रतिबिम्ब प्रतिफलित होता है), विशेषीकरणविज्ञान (जिसके द्वारा विविध पदार्थों में भेद संभव है।), आनुपूर्वी का विज्ञान (जिसके द्वारा मन प्रेरित होता है और सभी कर्मानुभवों को क्रमिक रूप से धारण करता है) के नाम से जाना जाता है। पूर्व में आचरित कर्मों की स्मृति के रूप में धारण करता हुआ भविष्य में होने वाले कर्मों का संस्कार भी बीज रूप में निहित रहता है। ये मन का ही स्वतः प्रकटीकृत स्वरूप है, यही आलय विज्ञान है और यही भूततथता है। राजा-रानी और अन्य सभासदों में अविद्या के कारण ही मन के ही स्वतः प्रकटीकृत विभिन्न स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वीणा के स्वर को वे अपने-अपने संस्कारों के कारण अनुकूल और प्रतिकूल पा रहे हैं। सभी लोगों की पूर्व में आचरित कर्मों की स्मृतियाँ ही स्वबुद्धि की अनुगामिनी होकर वीणा के निनादित स्वर को अनुकूल ओर प्रतिकूल संवेदनाओं के अनुक्रम में ला रही हैं। इसीलिए तो किसी को वह ध्वनि विकराल काल के महाजृम्भ-सी भयंकर, किसी को जीवन की पहली अंगड़ाई केसमान सुखद, किसी को युद्ध के ढोल-सी, किसी को प्रलयकालीन डमरू-नाद-सी, किसी को यशःकाय जयदेवी का मंगल गीत-सी, किसी को आतंक मुक्ति के आश्वासन-सी, किसी को तिजोरी की खनक-सी, किसी को बहुत दिनों के बाद के अन्न की सौंधी खुशबू-सी, किसी को नवोढ़ा की पायल की ध्वनि-सी आदि अनेक जागतिक दृश्य-प्रपंच का स्वरूप ग्रहण करा रही है।

सत्य अपने परिवर्तमान स्वरूप में उचित अवसर पर तथागत के रूप में या अन्य स्वरूपों में प्रकट होता है, जिससे कि अन्य जीवों को भी यह प्रेरणा मिल सके कि वे अपने गुणों की चरम परिणति द्वारा उस ऊँचाई तक उठ सकें। क्योंकि वीणा का स्वर भी **'शाश्वत सत्य'** का प्रतीक है। इसीलिए यह स्वर राजा और रानी को उदात्त भावों से प्रपूरित करने में सक्षम है -

''राजा ने अलग सुनाः/....ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता/सभी पुराने लुगड़े - से झर गए, निखर आया था जीवन-कांचन/धर्म-भाव से जिसे निछावर वह क्रर देगा।''[९] तथा-

''रानी ने अलग सुनाः / छँटती बदली में एक कौंध कह गई-/तुम्हारे ये मणि-माणिक, कंठहार, पट-वस्त्र/मेखला-किंकिण/सब अंधकार के कण हैं ये। आलोक एक है/प्यार अनन्य! उसी की/विद्युल्लता घेरती रहती है/रस-भार मेघ को/थिरक उसी की छाती पर, उसमें छिपकर सो जाती है/आश्वस्त, सहज विश्वास-भरी।/रानी/उसी एक प्यार को साधेगी।''[१०]

स्वयं की सत्ता में यह संस्कारक तत्व इस प्रकार निहित होता है कि जब उसमें बुद्ध और बोधिसत्व की मैत्री और करुणा सम्पृक्त हो जाती है तो जन्म-मरण के कष्टों से घृणा हो जाती है और धर्मविहित कार्यों का आचरण करने की इच्छा जागती है, निर्वाण में विश्वास होता है, कुशलमूल की प्राप्ति की कामना होती है तथा उसका अभ्यास और परिपाक होताहै। राजा और रानी में भी मैत्री, करुणा और प्रेम के संस्कारक भावों का संचार होने लगा है और वे भी धर्मविहित कृत्यों को करने हेतु समुत्सुक दिखाई देते हैं। वहाँ वीणा का स्वर बुद्ध का अथवा सत्य का स्वर है।

नागार्जुन की माध्यमिक कारिकाओं के टीकाकार **चन्द्रकीर्ति** हैं। उनके अनुसार **प्रतीत्य समुत्पाद** और **शून्यवाद** का वास्तविक अर्थ है - घटनाएं जो प्रतीत होती हैं, सत्य नहीं हैं। जब वे सत्य नहीं है तो न उत्पन्न होती हैं, न नष्ट होती हैं, न आती हैं, न जाती हैं, वे माया की प्रतीतियाँ है। शून्य का मतलब शुद्ध आभाव से नहीं, क्योंकि वह किसी वस्तु या स्थिति से जुड़ा होता है। उसका तो अर्थ है- **निःस्वभावत्वम्** (माध्यमिक वृत्ति,पृ0 56)। उनके अनुसार निर्वाण समस्त घटनाओं के सार का आभाव है। उसे किसी वस्तु की समाप्ति या निरोध के रूप में या किसी वस्तु की उत्पत्ति के रूप में नहीं माना जा सकता है। वह **'अनिरुद्धम् अनुत्पन्नम्'** है। निर्वाण में सब घटनाएं समाप्त हो जाती है। वैसे वस्तुतः रज्जु में सर्प की भांति वह रहती ही नही हैं। (माध्यमिक वृत्ति, पृ0 162 तथा 201)। प्रियंवद को भी सत्य साधना में ध्यान की अवस्था में समष्टि के अनेक चित्र, अनेक घटनाएँ एक के बाद एक दृष्टि पटल पर उभरती दिखाई पड़ती हैं, लेकिन शनैःशनैः समाधि के सन्निकट पहुँचते-पहुँचते वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो रहा है। निर्वाण का तात्पर्य है इस प्रतीत होने वाली प्रपंच-प्रवृत्ति की समाप्ति। वही प्रियंवद अनुभव कर रहा है-

''मुझे स्मरण है/और चित्र प्रत्येक/स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझको।/सुनता हूँ मै।/पर हर स्वर-कंपन लेता हैं मुझको मुझको सोख/वायु सा नाद भरा में उड़ जाता हूँ।/. ...मुझे स्मरण है-/पर मुझको में भूल गया हूँ सुनता हूँ मैं-/पर मैं मुझमें परे।''[११]

इसे भाव या अभाव नहीं कहा जा सकता, ये शब्द प्रपंचों के लिए ही प्रयुक्त हो सकते हैं। **(न चाप्रवृत्तिमात्रं भावाभावेति परिकल्पितुं पार्यते एवं न भावाभावनिर्वाणम्)**, (माध्यमिक वृत्ति पृ0 197) **'पर मुझको मैं भूल गया हूँ', 'हर स्वर-कंपन लेता है मुझको सोख'**[१२]- ये ध्यान की वह स्थिति है जहाँ कोई ज्ञान नहीं होता; यह ज्ञान भी नहीं कि प्रपंच की समाप्ति हो गई है। सत्ता और असत्ता में केवल एक सापेक्ष सत्य है। बोध की स्थिति में वह कहीं भी नहीं है- **''मैं नहीं, नहीं! मै कहीं नही''**।

शून्यवादियों के सिद्धान्त के प्रति यह आपत्ति उठती रही है कि जब कोई वस्तु सत्य नहीं है तो उनका समुत्पाद और समाप्ति भी नहीं है, सत्य न होगा। इसके उत्तर में चन्द्रकीर्ति कहते है कि सत्य चरम् शान्ति है। इस चरम् शान्ति का अनुभव भिक्षु प्रियंवद भी कर रहा है उसे **'महाशून्य'** और **'महामौन'** शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने की चेष्टा भी करता दृष्टिगत हो रहाहै। इस प्रकार **'असाध्य वीणा'** का सांगोपांग अध्ययन करते हुए हम पाते हैं कि कवि अज्ञेय बौद्ध दर्शन से अत्यन्त प्रभावित हैं और गहन अन्त:साधना में लीन सत्यान्वेषण के पलों में बौद्ध-दर्शन के अनेक सिद्धान्तों से सहमति रखता हुआ विश्रांति पा रहा है।

संदर्भ-संकेत

आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा, अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन-18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदीरोड, नई दिल्ली-110003, नवम् संस्करण: 1995

1. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 69-70
2. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 68-69
3. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 70
4. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 71
5. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 78
6. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 78
7. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 77
8. आंगन के पार श्द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 76
9. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 76
10. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 74
11. आंगन के पार द्वार, असाध्य वीणा अज्ञेय, पृ0 74

'यशस्तिलक' चम्पू महाकाव्य में अन्तर्निहित स्वास्थ्य परिचर्चा

डॉ० राधा श्रीवास्तव
राजा श्री कृष्णदत्त इन्टर कॉलेज
जौनपुर

'यशस्तिलक' चम्पू श्री सोमदेव सूरि द्वारा रचित महाराज यशोधर के जीवन चरित्र को आधार बनाकर गद्य और पद्य में लिखा गया एक महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थ है। श्री सोमदेवसूरि दशमी शती के एक बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। अपने ग्रन्थ के विषय में स्वयं उन्होंने लिखा है कि - जीवन भर तर्क की सूखी' घास खाने वाली मेरी प्रज्ञा सुरभि ने यह 'यशस्तिलक चम्पू' महाकाव्य रूपी दुग्ध दिया जो सुकृति जनों के पुण्य का फल है-

आजन्म समभ्यताच्छुकात्तर्कातृणदिव ममास्य।
मतिसुरभेरभवदिदं सूक्तिपय; सुकृतिनां पुण्यैः॥[१]

उत्कृष्ट काव्य के विशेष गुणों के अतिरिक्त यशस्तिलक में ऐसी प्रचुर सामग्री है, जिसका विस्तार से विश्लेषण किया जाए तो प्रत्येक विषय का एक लघुकाय स्वतंत्र ग्रन्थ तैयार हो सकता है। इसके विषय हैं- छन्द, अलंकार, कला, सिद्धान्त, सामुद्रिक ज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, नाट्य, मंत्र, वनस्पति, पुराण आदि।[२]

इनके अतिरिक्त खान-पान सम्बन्धी बहुविध जानकारी और स्वास्थ्य के नियम वर्णित हैं। उपनिषदों में वर्णित है कि अन्न से ही व्यक्ति दृष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता और विज्ञाता बनता हैं-

अथान्नस्यै दृष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बौद्धा भवति, कर्ता भवति, विज्ञाता भवति।[३]
अहार शुद्धि पर विचार शुद्धि आधारित है, विचार शुद्धि से स्मृति और स्मृति से मोक्ष होता है-
आहार शुद्धौ, सत्व शुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भः सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।[४]
अन्न से ही प्रज्ञा उत्पन्न होती है- **अन्नाद्वै प्रज्ञा प्रजायन्ते।**[५]

यशस्तिलक में ऋतुओं के अनुसार संतुलित एवं स्वास्थ्यकर भोजन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसमें षड्रसों का सर्वदा व्यवहार करते रहने को सुखावह बताया है-

षड्रसाभ्यवहारस्तु सदा नृणां सुखावहः।[६]

मधुर अम्ल तिक्त, तीक्ष्ण, कषाय तथा क्षार - इन छः रसों का शुद्ध और संसर्गपूर्वक उपयोग 63 प्रकार के व्यजंन तैयार हो सकते हैं-

रसानां शुद्ध संसर्गभेदेन त्रिपष्टिव्यंजनोपदेश भाजः।[७]

भोजन बनाने के अनेक तरीके थे- घी में तलकर पकाना (सर्पिषिस्नाता)[८] पूरा नहीं सेंकना (असमस्तद्धि)[9] अंगारों पर सेंक लेना (अंगार पाचितः)[10] राधना (राद्धम्)[11] कच्चे ही रहने देना। (अपक्व)[12]

यशस्तिलक के अनुसार घृत, दधि, दुग्ध, मट्ठा आदि के गुण - दोष तथा उपयोग की विधि इस प्रकार हैं-

घृत - घृत के गुणों का वर्णन करते हुए सोमदेव ने लिखा है कि वेद तथा आगमों के जानकारों ने घृत को साक्षात् आयु कहा है वैद्य लोगों ने वृद्धत्व नाशक होने से रसायन के लिए इसका विधान किया है, सारस्वतकल्प से निर्मल हुई बुद्धि वालों ने बुद्धि की सिद्धि के लिए बताया हैं, ऐसा घृत द्रवस्वर्ण तथा केतकी के समान रस और छाया वाला उत्तम होता है अर्थात् घृत आयुवर्द्धक, वृद्धतानिवारक तथा बुद्धि को निर्मल बनाता है।[13]

दधि - दधि स्थूलता तथा वायु को दूर करता है। इसका सेवन बसन्त, शरद तथा ग्रीष्म को छोड़कर अन्य ऋतुओं में घृत, सिता (शक्कर), आमला तथा मूँग के पानी के साथ करना चाहिए। दही जब तक उज्ज्वल, सुगन्धित तथा रसयुक्त हो (रूपामोदरसाढ्यं) हो, तभी तक भोज्य है।[14]

तक्र - दधि को मथकर तुरन्त जिसका नवनीत निकाल लिया गया है, ऐसा तक्र समगुण वाला होता है, बहुत देर तक मथा गया किसी भी दोष को उत्पन्न नहीं करता।[15]

दुग्ध - दुग्ध साक्षात् जीवन ही है। दूध प्रातः सायंकाल तथा भोजन के बाद उपयुक्त मात्रा में पीना चाहिए। बिना उबाला गया दूध दस घड़ी तक तथा उबाला गया बीस घड़ी तक पथ्य है।[16]

जल - भोजन के प्रारम्भ में जल पीने से जठराग्नि नष्ट हो जाती है तथा कृशता आती है, अन्त में पीने से कफ बढ़ता है, मध्य में पीने से समता तथा सुख करता है। एक साथ ही अधिक मात्रा में जल नहीं पीना चाहिए[17]। जल को अमृत भी कहते हैं और विष भी, इसका तात्पर्य यही है कि युक्तिपूर्वक पिया गया जल अमृत तथा अव्यवस्था पूर्वक पिया गया जल विष के समान होता है।

अमृतं विषमिति चेतत सलिलं निगदन्तिविदिततत्वार्थः।
युक्त्या सेवितममृतं विषमेतदयुक्तितः पीतम्।।[१८]

जल बसन्त और ग्रीष्म ऋतु में कुआँ तथा झरने का, वर्षा में कुआँ या कुण्ड का, ठंड में तालाब का तथा शरद ऋतु में सूर्य चन्द्रमा की किरणों तथा वायु के झकोरों से शुद्ध हुए जल

को पीना चाहिए[19]।

हवा तथा धूप से स्वच्छ हुआ, रस तथा गन्ध रहित जल, स्वभावतः पथ्य है, यदि ऐसा न मिले तो उबालकर पीना चाहिये[20]।

स्वास्थ्य के लिये खान - पान में संतुलन एवं व्यवस्था आवश्यक है। मनुष्यों की प्रकृति विभिन्न प्रकार की होती है। ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति में भी परिवर्तन होता रहता है। इसलिए सोमदेव ने विभिन्न प्रवृत्ति तथा ऋतुओं के अनुसार खान-पान की जानकारी दी है।

जठराग्नि (भूख) चार प्रकार की होती है - मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम। मन्द अग्नि वाले को लघु तीक्ष्ण अग्नि वाले को गुरु (भारी), विषम अग्नि वाले को स्निग्ध तथा सम अग्नि वाले को सम पदार्थ खाना चाहिए।

मनुष्य के अन्दर वात, पित्त तथा कफ कभी संचित, कभी जाग्रत तथा कभी प्रशान्त होते हैं। इसलिए ऋतुओं के अनुसार ही भोजन करना चाहिए। वात आदि के संचय, प्रकोप तथा प्रशमन का क्रम निम्न प्रकार है-

शिशिर सुरभिधर्मेष्वातपाम्भः शरत्सु क्षितिप जलशरद्धेमन्त कालेंषु चैते।
कफपवनहुताशाः संचयं च प्रकोपं प्रशममिह भजन्ते जन्मभाजां क्रमेण॥[21]

दोष	**संचय**	**प्रकोप**	**प्रशमन**
कफ	शिशिर	बसन्त	ग्रीष्म
वात	ग्रीष्म	वर्षा	शरद्
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त

उपर्युक्त सभी से प्रकृति परिवर्तन को ध्यान में रखकर भोजन पान की व्यवस्था बनाना चाहिए। यशस्तिलक में विभिन्न ऋतुओं के भोजन-पान के लिए निम्न प्रकार की जानकारी दी है[22]।

ऋतु	**खाद्यपेय**
शरद् -	स्वाद (मधुर), तिक्त, काषाय
वर्षा -	मधुर, नमकीन, अम्ल (खट्टा)
बसन्त -	तीक्ष्ण, तिल, काषाय
ग्रीष्म -	प्रशम, रस वाले अन्न

इस प्रकार के भोजन पान के लिए सोमदेव ने ऋतुओं के अनुसार खान-पान तथा उपभोग्य सामग्री का विवरण इस प्रकार किया है[23]-

ऋतु	खाद्यपेय तथा उपभोग्य सामग्री
शिशिर -	ताजा भोजन, क्षीर (दुग्ध), उड़द, दक्षु, दधि घृत और तेल के बने पदार्थ, पुरन्ध्री।
बसन्त -	जौ और गेहूँ का बना प्राय: रूक्ष भोजन।
ग्रीष्म -	सुगन्धित चावलों का भात, घी डली हुई मूँग की दाँल, कमल नाल, किसलय (मधुर पल्लव कन्द, सत्तू, पानक (ठंडाई) आम नारियल का पानी तथा चीनी डला पानी या दूध।
वर्षा -	पुराने चावल, जौ तथा गेंहूँ के बने पदार्थ।
शरद्-	घृत, मूंग, लप्सी, दूध से बने पदार्थ (खीर आदि) परवल, दाख (अंगूर), आंवला, ठंडी छाया, मधुर रस वाले पदार्थ, कन्द, कोंपल, रात्रि में चन्द्रकिरणें।

भोजन समय के विषय में सोमदेव ने लिखा है कि चारायण के अनुसार रात्रि में भोजन करना चाहिए निमि के अनुसार सूर्यास्त होने पर, धिषण के अनुसार दोपहर को तथा चरक के अनुसार प्रात: काल, किन्तु मेरे विचार से तो भोजन का समय वही है जब भूख लगी हो। भूख के बिना ही जो लालचवश आकंठ भोजन करता है, वह व्याधियों को सोए हुए सर्पों की तरह जगाता है[24]।

भोजन करने की विधि के विषय में सोमदेव ने लिखा है - भोजन में स्वाद (मधुर) तथा स्निग्ध पदार्थ प्रारम्भ में, भारी, नमकीन तथा अम्ल (खट्टा) मध्यम में, रूक्ष और द्रव पदार्थ बाद (अन्त) में खाना चाहिए। खाने के तुरन्त बाद कुछ भी नहीं खाना चाहिए[25]। छोटा बैंगन, कुम्हड़ा, करेला, चिल्ली, जीवन्ती (डोडी), वास्तूल, तण्डुलीय (चौलाई), तुरन्त सेंका गया पापड़, में खाद्य सामग्री के अंग हैं, यदि अदरक की फाँके मिल जाएँ तब तो कहना ही क्या[26]।

भोजन में सर्वदा चतुर्थांश साग - सब्जी खाना चाहिए। दही में तैरते हुए तथा तले हुए पदार्थ नहीं खाना चाहिए[27]। विवर्ण, अपक्व, सड़ा गला, विगन्ध, विरस अतिजीर्ण, अहितकर तथा अशुद्ध अन्न नहीं खाना चाहिए[28]।

हितकारी परिमित, पक्व नेत्र - नासा तथा रसना इन्द्रिय को प्रिय लगने वाला सुपरीक्षित भोजन न जल्दी जल्दी और न धीरे-धीरे अर्थात् मध्यम गति से करना चाहिए[29]।

अत्यशन, लध्वशन, समशन तथा अध्यशन नहीं करना चाहिए। प्रत्युत बल और जीवन प्रदान करने वाला उचित भोजन करें।

अत्यशन - भूख से अधिक खाना।
लध्वशन - भूख से कम खाना
समशन - पथ्य तथा अपथ्य दोनों खाना
अध्यशन - अजीर्ण होने पर भी खाना।
इन सबका त्याग करो[30]।

भोजन के तत्काल बाद काम, कोप, आतप, यान, वाहन तथा अग्नि का सेंक नहीं करना चाहिए[31]। स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त नींद लेना आवश्यक है। सुख की नींद सोकर जागने पर मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती है, पेट हल्का हो जाता है तथा पाचन क्रिया ठीक रहती है।

अधिगत सुखनिद्र : सुप्रसन्नेन्द्रियात्मा, सुलघुजठरवृत्तिर्भुक्त पंक्ति दधानः[३२]।

तेल मालिश के लिए प्राचीन शब्द अभ्यंग था। अभ्यंग श्रम तथा वायु को दूर करता है, शक्ति का संचार करता है तथा शरीर को दृढ़ बनाता है[33]। उद्धर्तन या उबटन शरीर में कान्ति लाता है। चर्बी, कफ तथा आलस को दूर करता है।

अभ्यंगः श्रमवातहः बलकरः कायस्य दाढर्यावहः।
स्यादुद्‌वर्तनमंगकानितकरणं मेदः कफालस्यजित्[३४]।।

ऋतु के अनुसार ठंडे या गरम जल से किया गया स्नान आयु को बढ़ाता है, हृदय को प्रसन्न करता है तथा शरीर की खुजली और परिश्रम को दूर करता है[35]।

स्नानोपरान्त विधिपूर्वक देवपूजा आदि कार्य करके स्वच्छ वेष धारण करे तथा प्रसन्न मन से अतिथि सत्कार करके आप्त (विश्वस्त) व्यक्तियों के साथ उतना भोजन करें, जिससे सायंकाल फिर से भूख लग जाए।

स्नानं विधाय विधिवत्कृतदेवकार्यः संतर्पितातिथि जनः सुमनाः सुवेषः।
आप्तैवृत्तौ रहसि भोजनकृत्तथा स्मात् सायं यथा भवति भुक्तिकरोऽभिलाषः[३६]।।

परिश्रम करने तथा धूप में से आने के तत्काल बाद तथा इन्द्रियों और चित्त में जिस समय व्याकुलता हो उस समय स्नान तथा खानपान नहीं करना चाहिए।

श्रमधर्मार्तदेहानामाकुलेन्द्रिय चेतसाम्।
तव देव द्विषां सन्तु स्नानपानादन क्रियाः[३७]।।

भोजन के विषय में अन्य नियम भी बताए गए हैं-

पुनः गर्म किया हुआ भोजन, अंकुर निकले हुए अन्न तथा दस दिन तक कांसे के बर्तन में रखा हुआ घी नहीं खाना चाहिए। दही और छाछ के साथ केला, दूध के साथ नमक, गुड़, पीपल, मधु तथा मिर्च के साथ काकमाची (मकोय) तथा मूली के साथ उड़द की दाल, दही की तरह गाढ़ा सत्तू तथा रात्रि में कोई भी तिल विकार (तिल के बने पदार्थ) नहीं खाना चाहिए। घृत तथा जल छोड़कर रात्रि में बने हुए सभी पदार्थ, केश या कीटयुक्त पदार्थ तथा फिर से गरम किया गया भोजन नहीं करना चाहिए[३८]।

रोग और उनकी परिचर्या -

अजीर्ण - अजीर्ण का मुख्य कारण उचित नींद न लेना तथा व्यायाम न करना है। जिस तरह खुली हुई बटलोई में बिना चलाए अन्न ठीक से नहीं पकता ठीक उसी तरह निद्रा न लेने से तथा व्यायाम न करने से पाचन क्रिया भी ठीक नहीं होती -

स्थाल्यां यथानावरणाननायाम घट्टितायां च न साधुपाकः।
अनाप्तनिद्रस्य तथा नरेन्द्र व्यायामहीनस्य च नान्नापाकः[३९]॥

अजीर्ण चार प्रकार का बताया गया है-[40].

1. जौ इत्यादि हल्के पदार्थों को खाने से उत्पन्न।
2. गेहूँ इत्यादि पदार्थों के खाने से उत्पन्न।
3. दाल इत्यादि दो दल वाले पदार्थों को खाने से।
4. घृत आदि स्निग्ध पदार्थों को खाने से उत्पन्न।

इन चार प्रकार के अजीर्ण को दूर करने के लिए यशस्तिलक के क्रम से चार साधन बताए गए हैं-

1. जौ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए ठंडा पानी पीना चाहिए।
2. गेहूँ आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए गर्म पानी पीना चाहिए।
3. दाल आदि के अजीर्ण को दूर करने के लिए अवन्ति सोम (काँजी) पिए।
4. घृत आदि से उत्पन्न अजीर्ण के लिए कालसेय (तक्र) पियें।

यवर्सामथविदाहिष्वम्बुशीतं निषेव्यं, क्वथितमिदभुपास्यं दुर्जरेअन्ने च पिष्टे।
भवति विदलकालेअवन्तिसोमस्य पानं घृतविकृतिषु पेयं कालसेयं सदैव[४१]॥

दृग्मांध - यशस्तिलक में दृग्मान्ध के दो कारण बताए हैं- नमक या नमकीन पदार्थ अधिक खाना

तथा धूप में आकर तुरन्त पानी पी लेना[42]।

वमन- सोमदेव ने लिखा है कि यदि थका हुआ व्यक्ति यदि तुरन्त भोजन करले तो वमन होने लगता है। श्रान्तः कृताशो वमनज्वरार्हः[43]।

भगन्दर- भगन्दर का कारण सोमदेव ने 'स्यन्दविबन्ध' अर्थात् मल के वेग को रोकना बताया है। भगन्दरी स्यन्दविबन्धकाले[44]।

गुल्म- यशस्तिलक में गुल्म का कारण शौच की बाधा होने पर भी भोजन करना बताया है। गुल्मी जिहत्सुविहिताशनश्व[45]।

औषधियाँ- यशस्तिलक में अनेक प्रकार की औषधियों के उल्लेख हैं-

मागधी- छोटी पीपल, **अमृता**- गुरूचि, सोम, विजया हरड़, जम्बूका, सुदर्शना, मरूदभ्व, अर्जुन **अभीरू**- शतावरी, **लक्ष्मी**- मरूण्डश्रंगी, वृती, तपस्विनी, **अर्क**- आक, **शिवप्रिय**- धतूरा आदि।

पाश्चात्य वैद्यक में भगन्दर को फिस्चुला इन एनो कहते हैं तथा गुल्म को अवडामिलन ट्यूमर कहते हैं। आजकल अधिकांश मनुष्य जिह्वा के स्वाद मात्र पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं, खानपान के नियमों की उपेक्षा कर देते हैं जो शारीरिक व्याधियों का कारण बनता है। शारीरिक कष्टों को सहते-सहते मनुष्य मानसिक रोगों से भी ग्रस्त हो जाता है। अतः इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि खानपान और स्वास्थ्य का अनन्य सम्बन्ध है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सोमदेवसूरि कृत यशस्तिलक चम्पू में दी गई स्वास्थ्य एवं खानपान विवेचना पर आज भी ध्यान देने की आवश्यकता है। जिससे सभी निरोगी एवं स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुख भाग भवेत॥

संदर्भ संकेत -

1. सोमदेवसूरि - यशस्तिलक चम्पू - आश्वास प्रथम, श्लोक 17
2. वही श्लोक 2
3. छान्दोग्योपनिषद् - 7, 9, 1
4. छान्दोग्योपनिषद् - 7, 26, 3
5. तैत्तरीयोपनिषद् - 2, 2
6. यशस्तिलक चम्पू पृ0 516
7. वही पृ0 521
8. वही पृ0 517
9. वही पृ0 404
10. वही पृ0 517
11. वही पृ0 513

12. वही पृ0 405
13. वही पृ0 517
14. वही पृ0 517/360
15. वही पृ0 वही, श्लोक 360
16. वही पृ0 वही, श्लोक 363
17. वही पृ0 वही, श्लोक 367
18. वही पृ0 वही, श्लोक 368
19. वही पृ0 वही, श्लोक 369
20. वही पृ0 वही, श्लोक 370
21. वही पृ0 514, श्लोक 348
22. वही पृ0 514, श्लोक 349
23. वही पृ0 514, श्लोक 350/354
24. वही पृ0 509, श्लोक 346
25. वही पृ0 513, श्लोक 355
26. वही पृ0 516, श्लोक 356
27. वही पृ0 516, श्लोक 357
28. वही पृ0 510, श्लोक 336
29. वही पृ0 510, श्लोक 337
30. यशस्तिलक पृ0 513, श्लोक 345
31. यशस्तिलक पृ0 517, श्लोक 373
32. यशस्तिलक पृ0 507
33. यशस्तिलक पृ0 508
34. यशस्तिलक पृ0 508
35. यशस्तिलक पृ0 508
36. यशस्तिलक पृ0 509
37. यशस्तिलक पृ0 508
38. यशस्तिलक पृ0 510, 338 से 344 तक
39. यशस्तिलक पृ0 507
40. यशस्तिलक पृ0 519
41. यशस्तिलक पृ0 519
42. समधिकलवणान्नप्राशनाद्दृष्टिमान्धम्। यशस्तिलक पृ0 518
    दग्मान्धभागात्तपितोअम्बु सेवी। वही पृ0 509
43. यशस्तिलक पृ0 509
44. यशस्तिलक पृ0 509
45. यशस्तिलक पृ0 509

डॉक्टर हरिनारायण दीक्षित प्रणीत 'भारतमाता ब्रूते'

डॉ० किरण टण्डन

संस्कृत विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल (उत्तरांचल)

हम भारतवासियों के लिए बड़े हर्ष एवं गौरव का विषय है कि पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता को सरंक्षण देने वाले इस भोगवादी कलियुग में देववाणी संस्कृत में अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से बहुत से विद्वान् कवि अपनी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की रक्षा-सुरक्षा करने में प्रयत्नशील हैं। डॉ0 हरिनारायण दीक्षित (प्राक्तन प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग तथा प्राक्तन अधिष्ठता, कला संकाय, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल) भी ऐसे ही कवि हैं। प्राच्य एवं नव्य पद्धति से शिक्षाप्राप्त, लब्धप्रतिष्ठ संस्कृत विद्वान् डॉ0 दीक्षित की रचनाधर्मिता से आज के प्रायः सभी सहृदय विद्वान् एवं समीक्षक सुपरिचित हैं। उत्तर प्रदेश की वीरभूमि बुन्देलखण्ड के जनपद जालौन में जन्म लेने वाले डॉ0 दीक्षित नवम्बर 1970 से कुमाऊँ विश्वविद्यालय (जो उस समय ठाकुर देवसिंह बिष्ट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्याल, नैनीताल के रूप में प्रतिष्ठित था) के संस्कृत विभाग में सीनियर लेक्चरर् के रूप में आये थे। तब से ही देवभूमि उत्तरांचल का जनपद नैनीताल उनकी कर्मस्थली रहा है। अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान, विश्वविद्यालय से सम्बद्ध प्रशासकीय कार्यों के समानान्तर ग्रन्थलेखन में भी संलग्न रहते हुए डॉ0 दीक्षित ने अपनी रचनाधर्मिता से माँ भारती की अनन्य उपासना की और अपनी जिन तेईस कृतियों से संस्कृत-साहित्य-संसार एवं समीक्षाजगत् की प्रशंसनीय श्रीवृद्धि. की, वे क्रमशः इस प्रकार हैं -

1. संस्कृतानुवादकलिका 2. संस्कृतनिबन्धरशिमः 3. श्रीमदप्पयदीक्षितरितम् 4. तिलकमञ्जरीः एक समीक्षात्मक अध्ययन 5. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना 6. मेनकाविश्वामित्रम् (नाटक) 7. संस्कृत निबन्धावली 8. राष्ट्रियसूक्तसंग्रहः 9. श्रीहनुमद्दूतम् (सन्देशकाव्य) 10. गोपालबन्धुः (गद्यकाव्य) 11. शोधलेखावली 12. गद्यकाव्यसमीक्षा 13. भीष्मचरितम् (महाकाव्य) 14. देशोऽयं कुरुते प्रोन्नतिम् (मुक्तककाव्य) 15. उपदेशशती (शतककाव्य) 16. भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा (सहसम्पादन) 17. पण्डितराजजगन्नाथकाव्यग्रन्थावली (सम्पादन एवं अनुवाद) 18. गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयीम् (खण्डकाव्य) 19. भारतमाता ब्रूते (महाकाव्य) 20. राधाचरितम् (महाकाव्य) 21. बुन्देलखण्डी कवि पण्डित राजाराममिश्रकाव्यसंग्रह (सम्पादन) 22. श्रीबल्लभदेवचरितम् (प्रकाशनाधीन महाकाव्य) 23. पशुपक्षिविचिन्तनम् (खण्डकाव्य अभी अप्रकाशित है)।

अपनी स्वाध्यायशीलता एवं परिश्रमशीलता के फलस्वरुप अध्ययनकाल में ही अनेक पुरस्कार प्राप्त करने वाले डॉ0 दीक्षित की काव्यकृतियों को अपने शोधकार्य का विषय बनाकर शोधार्थियों ने इनके प्रति अपना सम्मान व्यक्त किया है; तथा भारतवर्ष की विभिन्न प्रतिष्ठित प्रादेशिक एवं राष्ट्रिय संस्थाओं ने इनके उपयोगी कर्तृत्त्व के आधार पर इनको पुरस्कृत एवं सम्मानित भी किया

है। इनको मिलने वाले प्रान्तीय तथा राष्ट्रिय स्तर के प्रमुख पुरस्कार एवं सम्मान इस प्रकार हैं-

'श्रीहनुमद्दूतम्' नामक सन्देशकाव्यकृति पर उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदत्त 'विशेष पुरस्कार','गोपाबन्धुः' नामक गद्यकाव्यकृति पर भी उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदत्त 'बाणभट्ट पुरस्कार', 'भीष्मचरितम्' नामक महाकाव्य पर भी पुनः उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा प्रदत्त 'विशेष पुरस्कार', 'भीष्मचरितम्' पर ही साहित्य अकादमी, दिल्ली का 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', समग्र साहित्य के आधार पर भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता द्वारा प्रदत्त 'संस्कृत साहित्य सम्मान', संस्कृत साहित्य में विशेषयोगदान के लिए भारतसरकार द्वारा सन् 2003 में 'राष्ट्रपति पुरस्कार सम्मान, संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हेतु लोक संस्कृति सेवानिधि, उरई द्वारा सन् 2006 में पं0 गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' अलंकरण सम्मान आदि। इस प्रकार विगत छत्तीस वर्षों से नैनीताल जनपद में रहकर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले तथा संस्कृति संरक्षण के प्रति चिन्ता करने वाले कविवर डॉ0 दीक्षित विरचित 'भारतमाता ब्रूते' महाकाव्य की समीक्षा प्रस्तुत हैं-

क. भारतमाता ब्रूते का कथासार

'भारतमाता ब्रूते' महाकाव्य का कथानक भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर आधारित है। कविवर दीक्षित ने अपने काव्य की कथावस्तु को 22 सर्गों तथा 1669 (सोलह सौ उनहत्तर) श्लोकों में उपनिबद्ध किया है। इसके प्रथम सर्ग में कवि ने भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुरूप तथा काव्य की निर्विघ्न समाप्ति की इच्छा से श्रीगणेश, श्रीसरस्वती, गुरुदेव, कवि की माता, भारतमाता, बल्लभदेव एवं अन्य दिव्य विभूतियों के प्रति प्रणाम निवेदन किया है; द्वितीय सर्ग में विष्णु तथा लक्ष्मी की भारत एवं भारतवासियों के प्रति जिज्ञासा, जिज्ञासा शान्त करने के लिए भारतभूमि के कश्मीर प्रान्त पहुँचकर वहाँ विद्यमान एवं व्याप्त आतंकवाद से दुःखी होकर हरिद्वार पहुँचने की उनकी इच्छा का वर्णन किया है; तृतीय सर्ग में हरिद्वार के अन्य नामों की व्याख्या के बाद उसके प्रमुख स्थलों - हर की पैड़ी, ब्रह्मकुण्ड, गोघाट, कुशावर्तघाट, श्रवणनाथ मन्दिर, रामघाट, विष्णुघाट, मायादेवी घाट, मायादेवी मन्दिर, तीन मस्तकों वाली दुर्गा, भगवान् शंकर, भैरव, गणेशघाट, ज्वालापुर में नारायणी शिला, दक्ष प्रजापति एवं सती की कथा, सतीकुण्ड, सतीकुण्ड में देवी जगदम्बा की पूजा, दक्षेश्वर, शिवमन्दिर, वेदमण्डप, पवित्र शिवलिंग, दश महाविद्याएं, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, शीतला माता की मठी आदि का वर्णन किया है; चतुर्थ सर्ग में हरिद्वार एवं उसकी गंगानदी के दोनों तटों पर सायंकाल के समय जलते हुए बिजली के बल्वों की शोभा, मन्दिरों में होने वाली आरती, हर की पैड़ी पर गंगा मैया की आरती एवं स्तुति का वर्णन करके स्वयं भी गंगा की स्तुति की है, और बाद में विष्णु के द्वारा लक्ष्मी के समक्ष उनके सहोदर चन्द्रमा के सौन्दर्य का वर्णन करवाया है; पंचम सर्ग में चन्द्रास्त, सूर्योदय, हर की पैड़ी में गंगा स्नान, वेदपाठ, व्याकरण पाठ आदि का वर्णन किया है; षष्ठ सर्ग में श्रीलक्ष्मी-विष्णु द्वारा कृषक

वेष धारण करके हरिद्वार एवं ऋषिकेश के प्रमुख पवित्र स्थलों का दर्शन करके हरिद्वार में विद्यमान अपने प्रवासगृह लौट आने का वर्णन किया है; सप्तम सर्ग में विष्णु का स्वप्न में मनसा देवी को देखना, मनसा देवी द्वारा विष्णु के दश प्रमुख तथा अन्य चौबीस अवतरों का स्मरण करना, भगवान् विष्णु की लोककल्याणकारिता की प्रशंसा करना तथा उनकी स्तुति करना, स्वप्न में ही भगवान् विष्णु का मनसादेवी मन्दिर जाने का निर्णय आदि बातों को प्रस्तुत किया है; अष्टम सर्ग में भगवान विष्णु और भगवती लक्ष्मी का, हर की पैड़ी में गंगाजी का दर्शन करने के बाद उड़न खटोले में चढ़कर मनसादेवी के मन्दिर पहुँचना, मनसादेवी के साथ-साथ वहाँ अन्य देवी-देवताओं का भी दर्शन करना, उड़नखटोले के द्वारा ही मन्दिर से उतरकर अपने विश्राम स्थल में लौट आने का वर्णन किया है; नवम सर्ग में विष्णु एवं लक्ष्मी द्वारा हरिद्वार में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये किए गए सफल प्रयत्नों के साथ-साथ इस विश्वविद्यालय एवं इसके अधिकारियों, विद्वान् शिक्षकों, कर्मचारियों का परिचय प्राप्त करने का वर्णन किया है; दशम सर्ग में हरिद्वार में स्वामी सत्यमित्रानन्द द्वारा स्थापित भारतमाता मन्दिर के आठ तलों में विद्यमान, राष्ट्रप्रेम को जगाने में समर्थ, भारतमाता सहित दिव्यविभूतियों, सतिशिरोमणियों सन्तमहापुरुषों, भक्तकवियों, भक्तों, देशभक्तों की मूत्तियों को देखने से उत्पन्न हुई भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी की प्रसन्नता को व्यक्त किया है; एकादश सर्ग में भगवान् विष्णु एवं देवी लक्ष्मी द्वारा हर की पैड़ी के मार्ग में घुमते हुए एक वृक्ष की जड़ का सहारा लेकर बैठी हुई दुःखी भारतमाता एवं उनकी बेटियों-संस्कृति-सभ्यता को देखना, भारतमाता द्वारा विष्णु-लक्ष्मी को पहिचानकर उनसे भारतवासियों का भारतीय सभ्यता को अपनाना आदि बातों की सार्थक चर्चा करते हुए, भगवान् से अपने गौरव की रक्षा करनै एवं अपने दुःख की कहानी पूरी तरह सुनने की प्रार्थना करने का वर्णन किया है; द्वादश सर्ग में भगवान् विष्णु एवं लक्ष्मी के समक्ष, भारतमाता द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संस्कृति एवं सभ्यता की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए, वर्तमान में इन दोनों के ह्रास से उत्पन्न दुःख को व्यक्त करने का वर्णन किया है; त्रयोदश सर्ग में अच्छे बहू-बेटों की कमी, दुष्ट बहू-बेटों की बहुतायत, इनके द्वारा माता-पिता का अपमान, भोगविलास के आधिक्य पर प्रकाश डाला है; चतुर्दश सर्ग में दहेज के लोभ से ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा बहुओं के साथ दुर्व्यवहार, कन्याभ्रूण हत्या, बहुओं के साथ दुर्व्यवहार करने वाली सास तथा सास के साथ बुरा बर्ताव करने वाली बहुओं का वर्णन किया है; पञ्चदश सर्ग में भारतमाता के द्वारा विष्णु-लक्ष्मी के समक्ष कही गई समाज की दुर्दशा, संस्कृति सभ्यता का ह्रास, लोगों का गाँव छोड़कर शहर की ओर पलायन, गाँव में भी बुराइयों का प्रवेश, व्यक्तियों में आने वाली धन सम्बन्धित बुराइयों, अच्छाइयों का अभाव आदि बातों का वर्णन किया है; षोडश सर्ग में नारियों की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण किया है; सप्तदश सर्ग में लक्ष्मी द्वारा विष्णु एवं भारतमाता को भोजन कराने, दुःखी भारतमाता के हृदय में आशा-विश्वास का संचार करने तथा कहने योग्य अवशिष्ट बातों को कहने के लिए प्रेरित करने का वर्णन किया है; अष्टादश सर्ग में भगवान् विष्णु के प्रेरित करने पर भारतमाता का नारियों की

दुर्दशा के लिए नारियों को ही जिम्मेदार मानना, नारियों का कर्त्तव्यनिष्ठा से दूर होना, अच्छाइयों को छोड़ना आदि बातों के वर्णन द्वारा नारियों की विकृत मानसिकता को प्रस्तुत किया है; एकोनविंश सर्ग में भारतमाता के माध्यम से, भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के प्रचार-प्रसार के लिए प्रारम्भ किए गए किन्तु इन दोनों को नुकसान पहुँचाने वाले दूरदर्शन के दोषों को प्रस्तुत किया है; विंश सर्ग में विद्या की अवमानना, शिक्षा का अवमूल्यन, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों का अपने कर्त्तव्यों का पालन न करना आदि बातों का परिचय दिया गया है; एकविंश सर्ग में अच्छे ईमानदार निर्लोभ नेताओं की संख्या कम होने फलस्वरूप संस्कृति, सभ्यता एवं प्रजा की रक्षा न हो पाने, नेताओं का स्वार्थ सिद्धि में लगे रहने, राजनीति को व्यापार बनाने तथा भारत की कीर्ति, संस्कृति, सभ्यता की रक्षा के लिए विष्णु से प्रार्थना करने का वर्णन है; द्वाविंश सर्ग में भगवान् विष्णु द्वारा भारतमाता द्वारा कही गई उपर्युक्त भारतदुर्दशा को कलियुग का प्रभाव बताते हुए भविष्य में अपने अवतार द्वारा भारत की संस्कृति-सभ्यता की सुरक्षा एवं दुष्टों के विनाश का आश्वासन देकर, भारतमाता से धैर्यपूर्वक उनके अवतार की प्रतीक्षा करने के लिए कहकर वैकुण्ठधाम को लौट जाने का वर्णन किया है; इसके बाद पांच पद्यों में अपना संक्षिप्त परिचय देकर काव्य की इतिश्री कर दी है।,

भारतमाता ब्रूते की काव्यविधा

डॉक्टर हरिनारायण दीक्षित विरचित **'भारतमाता ब्रूते'** भारतीय काव्यशास्त्र मानदण्डों की कसौटी पर परीक्षित किए जाने पर उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य की श्रेणी में आता है[1]। ईस्टर्न बुक लिंक़र्स दिल्ली-7 से ईशवीय सन् 2003 में प्रथम बार प्रकाशित यह आठ सर्गों से अधिक अर्थात् 22 सर्गों वाला, महाकाव्य है। इसका प्रारम्भ गणेश, सरस्वती, कवि के गुरु एवं अन्य दिव्यविभूतियों को प्रणामपूर्वक हुआ है, इसके कथानक का स्रोत भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति, भारतीय संस्कृति-सभ्यता के ह्रास एवं गिरते हुए मानवमूल्यों से उत्पन्न कवि के अन्तःकरण की करुणा एवं चिन्ता है; इसमें राष्ट्ररक्षारूप धर्मपुरुषार्थ की सिद्धि का वर्णन है; इसकी नायिका राष्ट्रदेवतास्वरूपिणी हमारी भारत माता है जो सौ करोड़ से ऊपर आबादी के रूप में अपनी मनोव्यथा बतलाने वाली है; इसमें भारतवर्ष, हरिद्वार, ऋषिकेश, हर की पैड़ी, मनसादेवी मन्दिर, भारत माता मन्दिर, गंगानदी, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि प्राकृतिक एवं वैकृतिक पदार्थों का वर्णन है; दयावीर, वत्सल, देवभक्तिरस आदि अंगरसों से परिपुष्ट देशप्रेमरूपी राष्ट्रभक्तिरस प्रधान रस के रूप में अभिव्यक्त हुआ है; भारत एवं भारतवासियो के प्रति जिज्ञासा मुखसन्धि, नारद की सूचना तथा कश्मीर में व्याप्त आतंकवाद प्रतिमुख सन्धि, हरिद्वार से हर की पैड़ी, गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयवर्णन, भारतमातामन्दिरदर्शन, भारतमाता से मिलकर देश की दुर्दशा के विषय में जानना आदि गर्भसन्धि से सम्बद्ध स्थल हैं; भारतमाता द्वारा अपनी कीर्ति एवं संस्कृति सभ्यता की रक्षा-सुरक्षा हेतु विष्णु से प्रार्थना करना, भगवान् विष्णु का भारतदुर्दशा को कलियुगजनित बताना, पाप का घड़ा भरने के बाद अवतार लेकर भारतदुर्दशा को दूर करने का आश्वासन देना आदि घटनाएँ विमर्श सन्धि के अन्तर्गत हैं; विष्णु के

समझाने पर भारतमाता का आशान्वित हो जाना एवं भगवान् के नए अवतार के द्वारा भारतवासियों के उद्धार हो जाने की प्रतीक्षा करना निर्वहण सन्धि है; वर्ण्यविषय के अनुरूप प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप, उपजाति, आर्या, द्रुतविलम्बित आदि छन्द प्रयुक्त किये गए हैं; तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल भी दिये गए हैं; काव्य को रसानुरूप ही अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्पेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों से सुसज्जित किया गया है।; काव्य के माध्यम से दुष्टों की निन्दा एवं सज्जनों की प्रशंसा की गई है; काव्य का नाम 'भारतमाता ब्रूते' रखा गया है, जो काव्य की प्रमुख पात्र एवं वक्ता भारतमाता के द्वारा फैलती हुई अपसंस्कृति एवं अपसभ्यता के वर्णन करने के साथ मानवता की रक्षा के लिए अपनाए जाने योग्य आवश्यक गुणों का उल्लेख करने के कारण सर्वथा सार्थक है। इस प्रकार यह महाकाव्य अपने भारतराष्ट्र के प्रति भक्ति को जगाने वाला तथा धर्म को जगाने वाला, मानवता की रक्षा करने के लिए तथा धर्म को हानि से बचाने के लिए समय-समय अवतार लेने वाले भगवान् विष्णु एवं माता लक्ष्मी के नाम संकीर्तन से सहृदय, आस्तिक, विद्वान् पाठकों एवं श्रोता के मन को आनन्दित करने में समर्थ है।

भारतमाता ब्रूते की पात्र-योजना

प्रस्तुत महाकाव्य भगवद्वर्ग, देववर्ग, ऋषिवर्ग, मानववर्ग आदि अनेक प्रकार के पात्रों से सम्पन्न है। किन्तु लक्ष्मी, विष्णु, भारतमाता, मनसादेवी, कलियुग, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी सत्यमित्रानन्द आदि इसके प्रमुख पात्र हैं। अपने देश भारतवर्ष एवं भारतभूमि की अधिष्ठात्री देवी भारतमाता इस महाकाव्य की नायिका हैं। जिनका दर्शन हम सबसे पहले हरिद्वार के भारतमाता मन्दिर वर्णन के अवसर पर करते हैं।

> **विलोकमानेन जनानुपागतान्**
> **स्वं वक्तुकामेव मनोरथं च तान्।**
> **पीठस्थिता निर्मलकाचरक्षिता**
> **विराजते भारतमातृदेवता॥ -१०/१०**

हमारे इतिहास पुराणग्रन्थों की तरह कवि की भी मान्यता है कि हमारी भारतभूमि में देवगण आने की इच्छा सदैव ही किया करते हैं। भगवान् विष्णु तो इसमें रहने वाले लोगों की रक्षा-सुरक्षा के लिए यहाँ साक्षात् अथवा अवतार रूप में आते रहते हैं। इस बार भी यहाँ के लोगों के विषय में जानने की जिज्ञासा ही उन्हें यहाँ खींच लाई है। फलस्वरूप लक्ष्मीसहित विष्णु जब भारत आते हैं तो उन्हें भारतमाता अपनी संस्कृति एवं सभ्यता नामक दीन-हीन बेटियों सहित मिलती हैं। वह अपने गौरवपूर्ण अतीत का वर्णन करते हुए अपना परिचय देती हैं-

तस्यैव देशस्य यशस्विनः प्रभो।
भूरस्म्यहं भारतमातृनायिका।

एते उभे संस्कृति-सभ्यताभिधे
सुते च मे स्तः परिचायिके मे॥११/२३

किन्तु आज वह एक मानवी माता की तरह अपनी संस्कृति सभ्यता के ह्रास से दुखी हैं; अच्छे लोगों की कमी तथा दुष्ट लोगों की बहुतायत से चिन्तित हैं; समाज की बुराईयों, दूषित पर्यावरण, शिक्षा की बिगड़ती स्थिति, दूरदर्शन का व्यसन, राजनीति का व्यापारीकरण देखकर मर्माहत है; और सामान्य वात्सल्यमयी, ईश्वर के प्रति आस्थावती माता की तरह विष्णु से अपने गौरव एवं सन्ततियों की रक्षा की प्रार्थना करने वाली हैं; और उनपर भरोसा करके भविष्य में सब कुछ ठीक हो जाने की आशा से सन्तोष का भी अनुभव करती हैं। इस प्रकार इस काव्य में भारतमाता सन्तान के योगक्षेम की चिन्ता करने वाली उसके उज्ज्वल चरित्र का निर्माण करने में लगी रहने वाली और ईश्वर के प्रति आस्था रखने वाली संस्कृति सभ्यता की रक्षा सुरक्षा के प्रति उपाय सोचने वाली माता के रूप में चित्रित की गई हैं।

इस महाकाव्य के दूसरे प्रमुख पात्र भगवान् विष्णु हैं। भारतमाता को अपनी माँ की तरह प्यार करते हैं और लोगों को **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'** की शिक्षा देने में समर्थ हैं। यह अपनी पत्नी लक्ष्मी को सदैव अपने साथ रखकर आज के पतियों को पत्नी के प्रति अनुकूल रहने की शिक्षा देते हैं; उन्हें देशाटन तीर्थाटन एवं मन्दिर दर्शन का भी बहुत चाव है, जिसे वह अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ ही पूरा करते हैं-

आवां च वैकुण्ठपुरीं विहाय।
चिरान्न कुत्राप्यटनाय यातौ।

अतोऽप्यहं भारतभूमिभागे
स्वेच्छाविहारं वरमेव मन्ये॥ २/१४

वह अच्छे वक्ता होने के साथ ही एक अच्छे श्रोता भी हैं तभी तो वह भारतमाता की दुर्दशा की कहानी बड़े धैर्य एवं ध्यान से सुनते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुरूप गंगास्नान, देवदर्शन के प्रति आस्था रखते हैं। वह शरणागत वत्सल एवं भक्तवत्सल हैं, भारतमाता के दुःख, अपने प्रति उनके अटूट विश्वास के फलस्वरूप पुनः अवतार लेकर उने दुःखों को दूर करने का वचन दे देते हैं-

सुसभ्यतायाश्च सुसंस्कृतेस्तथा
मनुष्यतायाश्च विनाशकानमून्।

दुष्टानशेषान् कलिदूतसन्निभान्

विनाशयिष्यामि वचो ददामि ते॥ २२/६९

विष्णुप्रिया लक्ष्मी भी अपने पति की तरह भक्तों के दुःख से दुःख का अनुभव करने वाली, पति की आज्ञा का पालन करने वाली एवं भ्रमणप्रिया हैं।

ऋषि कश्यप की मानसी पुत्री एवं जरत्कारुमुनि की पत्नी मनसा देवी भी इस महाकाव्य की प्रमुख ऐसी सत्पात्र हैं, जो विष्णु भक्त हैं, और उनके सभी अवतारों से परिचित हैं; और लोगों के मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ हैं (सप्तम सर्ग)।

गुरुकुलकांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द (नवम सर्ग) तथा भारतमाता मन्दिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानन्द भी (दशम सर्ग) महाकाव्य के सत्पात्र हैं।

भारतमाता, विष्णु, लक्ष्मी, मनसा देवी, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी सत्यमित्रानन्द, भगवान् शंकर, पार्वती आदि दिव्य तथा सत्पात्रों के अतिरिक्त कलियुग को खलनायक एवं असत्यपात्र माना जा सकता है (2)। कलियुग के कुशासन के कारण ही संस्कृति एवं सभ्यता की हानि हो रही है। उसके ही कुप्रभाव के कारण समाज में गुण नष्ट हो रहे हैं तथा दुर्गुण बढ़ रहे हैं धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ की ओर कोई भी उन्मुख नहीं हो पा रहा है; काम एवं धन का भी पुरुषार्थ रूप नहीं दिखलाई पड़ता है (द्वाविंश सर्ग)।

'भारतमाता ब्रूते' में वर्णन-कौशल

भारतमाता ब्रूते महाकाव्य में कवि ने प्रातःकाल (5/6, 19-45), सूर्योदय (5/7-10, 15-21), सायंकाल (4/1-6), चन्द्रवर्णन (4/40-58), चन्द्रास्त (5/1-13), गंगानदी (3/17,18,4/22-38) आदि प्राकृतिक पदार्थों के साथ ही साथ हरिद्वार (सर्ग तीन एवं चार, 6/1-38), ऋषिकेश (6/39-83), हर की पैड़ी (3/30-42,4/7) मनसा देवी मन्दिर (अष्टम सर्ग), लक्ष्मण झूला (6/65), रामझूला (6/65), भारतमाता मन्दिर (दशम सर्ग) आदि तीर्थस्थलों का अपनी कथावस्तु के अनुरूप ही वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त हरिद्वार में विद्यमान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (नवम सर्ग) का साङ्गोपाङ्ग वर्णन भी कवि के वर्णन कौशल का परिचायक है। भारत माता मन्दिर वर्णन का एक पद्य उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है -

राष्ट्रानुरागजनकं नवकल्पनं च
स्वाधीनता न सुलभेति सुबोधकं च।

श्रीसत्यमित्रकृतभारतमन्दिरं तत्
चित्ते द्वयोरपि दृढं स्वगृहं चकार॥ १०/१०५

भारतमाता ब्रूते में भाव पक्ष

वत्सल रस, दयावीर रस, भगवद्विषयक भक्तिरस, देवविषयक भक्तिरस से संवर्धित, काव्यशास्त्रीय संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि के प्रमुख भेद कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध अर्थध्वनि (3) से अभिव्यक्त, भारतराष्ट्र के प्रति प्रेमरूप भक्तिरस इस महाकाव्य का अंगीरस है। इस रस का आलम्बन विभाव भारतभूमि की अधिष्ठात्री देवी भारतमाता है; भारतवर्ष के गौरवमय अतीत की मधुरस्मृति भारत का भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश तथा वर्तमान समय में इसकी संस्कृति सभ्यता का ह्रास होना, गुणों का ह्रास होना, दुर्गुणों की वृद्धि होना आदि उद्दीपन विभाव हैं; रोमांच, विवर्णता, कम्प, स्वरविकृति आदि सात्विक अनुभाव हैं; तथा निर्वेद, ग्लानि, शंका, जड़ता, हर्ष, उग्रता, चिन्ता, स्मृति, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। एक श्लोक उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है-

अशक्तिमालोक्य सुनायकानां
संवीक्ष्य शक्तिं च कुनायकानाम्।
स्वसंस्कृतिं च प्रति सभ्यतां स्वां
भवाम्यहं श्रीश! भृशं निराशा।। २१/५४

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही श्रीगणेश (1/1-8), सरस्वती (1/9-25), कवि के गुरुदेव (1/26-35), कवि की माता (1/36-47) को प्रणामपूर्वक इस रस को अभिव्यक्ति दे दी गई है; भगवान् विष्णु एवं उनके अवतारों की स्थान-स्थान पर चर्चा, नामसंकीर्तन तथा स्तुतियों से विष्णुभगवद्विषयक भक्तिरस की अभिव्यक्ति की गई है। (7/10-39; 22/76-77)। इसके अतिरिक्त भगवान् शंकर (6/15-36), मनसा देवी (अष्टम सर्ग), नैना देवी (1/76) ग्वलदेवता (1/75) आदि भी भक्तिरस के आलम्बन हैं; मेरी दृष्टि में गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालय वर्णन (नवम सर्ग) विद्यामन्दिर के रूप विद्यादेवी सरस्वती विषयक भक्तिरस का उद्दीपन विभाग है; भारतमातामन्दिरवर्णन (दशमसर्ग) भी भारतमातृविषयक भक्तिरस का उद्दीपन विभाव है। ग्वलदेवता के प्रति कवि की भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत है-

कुमायूँक्षेत्रविख्यातं, भक्तानामभयंकरम्।
ग्वलदेवमहं वन्दे, सर्वबाधाप्रशान्तये।। १/७५

मनसा देवी के प्रति श्रीविष्णु के उद्गार वत्सल रस के उदाहरण हैं 96/40-43); भारतमाता की अपनी सन्ततियों के प्रति चिन्ता भी वत्सल रस की अभिव्यञ्जिका है (एकादश सर्ग से एकविंश सर्ग तक।) लक्ष्मी की भारत के प्रति चिन्ता भी वत्सल रस की प्रतीक हैं (2/3-11)

श्रीविष्णु के हृदय की करुणा, वारम्बार, अवतार लेकर पृथ्वी की रक्षा करना एवं भारतमाता की रक्षा-सुरक्षा के लिए आश्वासन देना, दुष्टों के विनाश की प्रतिज्ञा करना (2/13, 26-39;

7/16-39; 22/67, 69) आदि स्थल दयावीर रस के अभिव्यञ्जक हैं।

विष्णु लक्ष्मी संवाद (4/52-59) अपरिपुष्ट रतिस्थायि भाव का उदाहरण है; तथा भारतमाता के प्रति श्रीविष्णु का आदर (11/38-39; 22/3-5) भक्तिरसाभास का उदाहरण हैं।

भारतमाता ब्रूते में कलापक्ष

भावपक्ष के अनुरूप ही कलापक्ष के प्रयोग ने 'भारतमाता ब्रूते' को आधुनिक महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है। कवि द्वारा प्रयुक्त अलंकार, छन्द, भाषा-शैली, वाग्वैदग्ध्य, संवादादि तत्व राष्ट्रभक्तिरस के उपकारक हैं। इस काव्य में इन तत्वों की संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत है -

अलंकार -

आलोच्य महाकाव्य को कवि ने अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यासादि अलंकारों से सुसज्जित किया है। भगवान् विष्णु के लोकोपरक रूप को प्रस्तुत करने में उपकारक अन्त्यानुप्रास से सज्जित पद्य द्रष्टव्य है -

स्वभक्तदु:खानि निराकरिष्णु:, लोके च तत्पुण्यमलङ्करिष्णु:।
निशम्य तस्या वचनानि विष्णु:, पुत्रीं पितेवाशु जगाद जिष्णु:॥ ७/४०

अधोलिखित पद्य में विद्यमान यमक, गंगा के भक्तों की महत्ता बताने में समर्थ है -

सुवदना वदनाहिततेजसा, सुवचना वचनामृतवर्षिण:।
सुवसना वसनावृतमूर्धजा:, सुकुलजा कुलजातितपोधना:॥ ४/२०

शिलष्टोपमा के माध्यम से अपनी कविता के विषय में कवि की इच्छा है -

आकर्षेज्जनचेतांसि, रसभाव गुणान्विता।
सालङ्कारा च सद्वृत्ता, कान्तेव कवितापि मे॥ १/१९

अधोलिखित पद्य में अपह्नुति अलंकार के प्रयोग ने गंगा नदी वर्णन को चमत्कारयुक्त बना दिया है-

इदमिहास्ति न देवनदीजलं, गगनखण्डमिदं वसुधागतम्।
न चलदीपगणश्च जलेऽप्ययं, भगण एष समं नभसागत:॥ ४/१६

अपनी बात को सुस्पष्ट करने की इच्छा से कवि ने स्थान-स्थान पर अर्थान्तरन्यास अलंकार को प्रयुक्त किया है। प्राय: इनके द्वारा प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास भक्तिरस को परिपुष्ट करता

है; इनके द्वारा काव्य में प्रयुक्त पात्रों की सहृदयता का परिचायक है। यथा -

ततस्ततस्तावतिमात्रतृप्तौ, नीलेश्वरं नीलगिरावुमेशम्।
सम्मेलितुं तत्र गतौ सुचित्तौ, उपेक्षते नैव महान् महान्तम्॥ ६/६

उपर्युक्त अनुप्रास एवं अर्थान्तरन्यास की संसृष्टि के अतिरिक्त रूपक एवं दृष्टान्त की संसृष्टि का भी एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

हरिरयं भवरोगचिकित्सको
भवरुजां वद तन्निखिलां निजाम्।

निजरुजो मतिमान् किल रोगवान्
जगति गूहति नात्मचिकित्सकात्॥ १७/१४

भारतमाता ब्रूते में छन्दोयोजना

आदरणीय कवि डॉ0 दीक्षित ने अपने इस महाकाव्य को काव्यशास्त्र के नियमानुसार एवं विषय को सहृदयहृदयगम्य बनाने की दृष्टि से, इसके सर्गों के पद्यों को विभिन्न परिचित छन्दों में निबद्ध किया है। यथा अनुष्टुप, उपजाति, द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, आर्या आदि तथा सर्ग के अन्तिम पद्यों को मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित छन्दों में निबद्ध किया है। छन्दों के इस सुरुचिपूर्ण प्रयोग ने काव्य में अद्भुत प्रवाह उत्पन्न कर दिया है।

भाषा-शैली

भारतमाता ब्रूते में कविवर डॉ0 दीक्षित की भाषा शैली इसके अंगीरस के अनुरूप है। अर्थात् सम्पूर्ण काव्य माधुर्य-प्रसादगुणोपेता वैदर्भी शैली में प्रस्तुत हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

अयि रमे ! गगने कुरुलोचने, अयमुदेति विभाति च चन्द्रमाः।
इयमनेन निशापि च शोभते, नभसि लब्धपदास्ति च चारुता॥ ४/४१

कवि ने अपनी भाषा को सूक्तिमुक्ताओं से सर्वग्राह्य बनाने के साथ ही साथ, इसके प्रवाह को अक्षुण्ण बनाने के लिए आंग्लभाषा के शब्दों, जो हिन्दी में भी यथावत् प्रयुक्त हो जाते हैं, को भी अपने काव्य में स्थान दे दिया है। यथा - टीवी, फ्रिज, फर्नीचर, मॉडल, क्लब आदि।

वाग्वैदग्ध्य

यह तथ्य इस लेख में पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि कविवर डॉ0 दीक्षित ने दृष्टान्त एवं अर्थान्तरन्यास अलंकारों के माध्यम से अपनी भाषा शैली को सुभाषित मुक्तावली से इस प्रकार सुसज्जित कर दिया है कि वह एक वाग्विदग्ध उपदेष्टा के रूप में प्रतिष्ठित हो गये

हैं। भारतमाता ब्रूते में प्रयुक्त कुछ स्मरणीय सूक्तिमुक्ताएँ प्रस्तुत हैं-

(क) गच्छन्त्यमरतां लोके गुणवन्तस्तपस्विनः। १/२९

(ख) ईश्वरः पूरयत्येव प्रार्थनां निर्मलात्मनाम्। १/४५

(ग) स्वापेऽपि दत्तं वचनं स्वकीयं
जना महान्तः परिपालयन्ति। ७/४५

(घ) स्वां जन्मभूमिं जननीं च सज्जनाः
सदाद्रियन्ते सुखितां च कुर्वते॥ ११/३८

(ड) सदा सती स्त्री पतिवाक्यवर्त्तिनी। ११/४६

(च) स्वकार्यसिद्धेर्न सुधीः प्रमाद्यति। १४/१

(छ) मातृष्वसेया हि भवन्ति तस्कराः। १४/३५

(ज) न समये विरमन्ति मनीषिणः। १७/१६

(झ) आचारे च विचारे च शुचिता सार्वकालिकी। १९/५

(ञ) श्रद्धाश्रमाभाववतां न सिद्धयः। २०/११

(ट) सर्वे समाना न भवन्ति वासराः। २२/१५

संवादयोजना

लक्ष्मी-विष्णु-संवाद, अम्बा-लक्ष्मी-विष्णु संवाद, मनसा देवी-विष्णुसंवाद, भारतमाता-विष्णु-संवाद, लक्ष्मी-भारतमाता संवाद आदि इस महाकाव्य के प्रमुख संवाद है जो इसके कथानक को रोचक बनाने वाले हैं।

भारतमाता ब्रूते में जीवनदर्शन

भारतमाता ब्रूते महाकाव्य का अनुशीलन करने से समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म एवं दर्शन के विषय में भी कविवर डॉ0 दीक्षित का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है और हमें उनके जीवनदर्शन की सुन्दर तथा शिक्षाप्रद झलक देखने को मिल जाती है।

काव्य के उन्नीसवें सर्ग में कवि ने दूरदर्शन के विषय में चर्चा की है। तदनुसार भारत सरकार ने दूरदर्शन को घर-घर में इसलिए पहुँचाया था, ताकि हमारी प्राचीन संस्कृति सभ्यता की शिक्षा प्रत्येक नागरिक को मिलती रहे। दूरदर्शन के माध्यम से भारतभूमि के अधोलिखित गुणों की सुगन्धि का प्रचार-प्रसार होना चाहिए-

अहिंसा, करुणा, मैत्री, संयम, नियम, यम, दया, क्षमा, कृपा, धैर्य, तप, त्याग, तपोवन, आध्यात्मिक ज्ञान, विश्वविख्यात दर्शन, संसार में प्रतिष्ठित साहित्य, विश्वकल्याण कामना, पुण्य के

प्रति प्रेम, पाप के प्रति घृणा, सत्य के प्रति आसक्ति, असत्य के प्रति क्रोध, आचार-विचार में पवित्रता, माता-पिता-गुरुजन एवं अतिथियों को देवता मानना उनकी सेवा करना, परिवार के सभी सदस्यों के साथ अच्छा व्यवहार करना, समाज में सभी के लिए सुख की कामना करना, सदाचार के प्रति निष्ठा रखना, दूसरे की सम्पत्ति को मिट्टी का ढेला समझना, नारियों का आदर करना, पंचमहाभूतों -पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश को भी देवता मानना, कृषियोग्य भूमि के प्रति मातृत्व भाव रखना, शिष्यों के प्रति स्नेह रखना, गुरु के प्रति श्रद्धा रखना, शत्रु पर भी अन्याय न होने देना, स्वाभिमान की रक्षा के लिए अपनी जान की बाजी लगा देना आदि(19/3-10)। वस्तुतः एक ही स्थान पर भारतीय संस्कृति की इतनी विशिष्टताओं को प्रयुक्त करके कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि अच्छे परिवार और समाज का रूप कैसा होना चाहिए। सचमुच जिस परिवार और समाज में उपर्युक्त गुण होंगे, वह अपने देश को उन्नत करने में परम सहायक हो सकता है।

कवि ने संस्कृति एवं सभ्यता को भारतमाता की बेटियाँ माना है, और उसकी पहचान माना है (11/23)। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसत्ता के लिए इन दोनों को परम अनिवार्य माना है (12/5-9)। स्पष्ट है कि जिस प्रकार परिवार में बेटियों को रक्षा-सुरक्षा, प्यार-दुलार की आवश्यकता होती है, उसी तरह देश के कल्याणार्थ संस्कृति एवं सभ्यता भी रक्षणीय, सुरक्षणीय एवं व्यवहारणीय हैं।

इस महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र 'अतिथि देवो भव' के द्वारा अतिथि सत्कार की परम्परा का निर्वाह करने की प्रेरणा दी गई है। यथा-

सत्कारमर्हन्ति जना अशेषा
गृहागता भारतभूमि भागे॥ ७/४ का उत्तरार्ध।

कविवर डॉ0 दीक्षित एक ओर तो प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का बड़े गौरव से स्मरण करते हैं; उसकी प्रशंसा करते हैं तो दूसरी ओर वर्तमान समय में संस्कृति एवं सभ्यता के ह्रास से उत्पन्न पीड़ा को व्यक्त करते हैं। उन्हें दुःख है कि लोग अपने मार्ग से भटक गए हैं। दूरदर्शन के माध्यम से भी उपर्युक्त अच्छे गुणों (19/3-10) का प्रदर्शन नहीं हो पा रहा है -

इत्येतेऽन्येऽपि चानेके, गुणास्सन्ति ममावने:।
प्रकाशं किन्तु नैतेषु, क्षिपते दूरदर्शनम्॥ १९/११

आज भाषा और वेशभूषा में भारतीयता दृष्टिगोचर नहीं हो रही है(12/11); दहेज का दानव कन्या एवं पुत्रवधू से दुश्मनी निभा रहा है (14/27-30); आर्थिक दृष्टि से अपने पैर पर खड़ी होने की चेष्टा करने वाली पत्नी को उसका ही पति बाधा पहुँचा रहा है (16/30); माता-पिता की वह इज्जत नहीं रह गई है, जो प्राचीन भारत में थी (त्रयोदश सर्ग); समाज में धार्मिकता का अभाव हो गया है; अधर्म, व्यभिचार, दुर्व्यसनों का बोलवाला हो गया है (पंञ्चदश सर्ग); स्त्रियों का अपमान और उपेक्षा हो रही है (षोडश सर्ग); स्त्रियाँ भी कर्त्तव्यच्युत हो रही हैं;

अपनी त्रुटियों के फलस्वरूप अपनी शत्रु स्वयं बन रही हैं; विलासोन्मुख हो रही है (अष्टादश सर्ग), घर-घर में पहुँचा हुआ दूरदर्शन अपनी कुशिक्षा से बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों को गुमराह कर रहा है; लोगों का समय नष्ट कर रहा है (एकोनविंश सर्ग); शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों में उत्सुकता समाप्त हो रही है; शिक्षक भी पढ़ाने के प्रति लापरवाह हो गये हैं (विंश सर्ग); देश की भलाई करने वाले, निस्वार्थ भाव से जनसेवा करने वाले राजनेता भी धीरे-धीरे कम हो गए हैं (एकविंश सर्ग)।

भारतीय संस्कृति के अनुरूप कवि की मान्यता है कि पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि एवं सेवन व्यक्ति के जीवन को उन्नत करने वाला है। आज व्यक्ति के जीवन में असन्तुलन का कारण यह है कि वह धर्म और मोक्ष नामक परमपुरुषार्थों की उपेक्षा कर रहा है और अर्थ तथा काम के ही सेवन में लगा हुआ है (12/18;15/73;22/30,31)। वस्तुतः अपने कथन द्वारा कविने सचेत किया है कि धर्म के बिना, अर्थ तथा काम, पुरुषार्थ का रूप धारण ही नहीं कर सकते।

स्पष्ट है कि कवि कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त दोषों के हटने पर ही हमारा परिवार, समाज, देश उन्नति कर सकता है। अर्थात् उनकी स्पष्ट मान्यता है कि दहेज प्रथा समाप्त होनी चाहिए; आर्थिक सुदृढ़ीकरण के लिए परिवार में स्त्री-पुरुष को कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना चाहिए; माता-पिता एवं सास-ससुर को यथेष्ट सम्मान मिलना चाहिए; पुरुषार्थ चतुष्टय का सेवन करना चाहिए; दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए; स्त्रियों को सम्मान देना चाहिए; स्त्रियों को भी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही मर्यादित आचरण करना चाहिए; दूरदर्शन के शिक्षाप्रद चैनलों का ही उपयोग होना चाहिए; शिक्षक में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा एवं शिष्यों के प्रति कल्याण की भावना होनी चाहिए; शिष्यों को भी गुरु के प्रति आदर की भावना होनी चाहि; शिष्यों को भी गुरु के प्रति आदर की भावना के साथ स्वाध्यायशीलता होनी चाहिए; गुरु-शिष्य को शिक्षा में सुचिता का पूरा ध्यान रखना चाहिए; तथा राजनेताओं को स्वार्थ सिद्धि को छोड़कर राष्ट्र की भलाई के विषय में सोचना चाहिए (इस महाकाव्य में कवि को पसन्द इन मान्यताओं को स्पष्ट करने का प्रमाण स्वरूप अनेक पद्य यत्र-तत्र उपलब्ध हैं।)।

'भारतमाता ब्रूते' काव्य को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कविवर डॉ0 दीक्षित की भगवान् विष्णु एवं वैष्णव धर्म पर परम आस्था है। काव्य में स्थान-स्थान पर उनके पात्रों ने भगवान् विष्णु की स्तुति गाई है। (7/10-39;22/76-77)। किन्तु उने विष्णु शिवजी को अपने साथ ही लेकर चलते हैं; उनकी स्तुति करते हैं; तथा लोककल्याण के विषय में उनसे वार्ता करते हैं (6/19-38)। कवि का यह वर्णन उनके सर्वधर्मसमभाव एवं समन्वयवाद का प्रतीक है। गणेश, सरस्वती, पार्वती, मनसादेवी आदि देवताओं पर भी कवि की आस्था है। पञ्चमहाभूतों को भी देवता मानते हुए कवि ने इनको दूषित करने का अथवा इनके दुरुपयोग करने का विरोध किया हैं; और इस प्रकार स्वच्छ

पर्यावरण की प्रेरणा दी है(15/53;17/12-13)

'भारतमाता ब्रूते' महाकाव्य मूर्तिपूजा एवं मन्दिरों के प्रति कवि की आस्था को व्यक्त करने वाला है। कविवर दीक्षित जी इस तथ्य से भलीभांति परिचित हैं कि हमारे तीर्थस्थान, हमारे मन्दिर एवं उनमें विद्यमान हमारे धर्म तथा संस्कृति में मान्य देवताओं के विग्रह सगुणोपासना द्वारा भक्त को ईश्वर के समीप ले जाने वाले हैं (तृतीय सर्ग, चतुर्थ सर्ग, षष्ठ सर्ग, सप्तम सर्ग, अष्टम सर्ग, दशम सर्ग)।

स्वप्रदर्शन पर भी डॉ0 दीक्षित को विश्वास है। भगवान् विष्णु का स्वप्न में मनसा देवी को देखना, मनसा देवी द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए उनके अवतारों का वर्णन करना आदि वर्णन कवि के विश्वास का ही प्रमाण है (सप्तम सर्ग)।

महाकवि डॉ0 दीक्षित की अवतारवाद पर भी गहन आस्था है। अपने इस महाकाव्य में उन्होंने भगवान् विष्णु के सभी अवतारों का वर्णन किया है; और उनके अभिनव अवतार की सम्भावना की भी चर्चा की है (7/17-39; द्वाविंशसर्ग)। अवतारवाद के प्रति उनकी यह आस्था गीतादर्शन (यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।) का ही समर्थन नहीं करती, अपितु इस घोर कलियुग में एक ऐसे लोकनायक का आवाहन करने वाली है, जो हमारे परिवार, समाज, आर्थिक व्यवस्था, राजनीति, धर्म आदि में समाविष्ट हो चुकी बुराइयों का, कलियुग रूप दानव का, आतंकवादरूप आसुरी प्रवृत्तियों का उन्नमूलन करने वाला हो; हमारी विश्ववन्द्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की प्रतिष्ठा करने वाला हो; तथा भारतमाता की रक्षा-सुरक्षा, पूजा-अर्चना आदि की प्रेरणा देने वाला हो।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि डॉ0 हरिनारायण दीक्षित आधुनिक संस्कृत महाकाव्यकारों के मध्य सर्वोत्कृष्ट स्थान के अधिकारी हैं; संस्कृत के परम्परागत काव्यशास्त्रीय मानकों को पूरा करने वाला उनका यह महाकाव्य 'भारतमाता ब्रूते' भी आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों में अग्रगण्य है; पाठकों एवं श्रोताओं को सद्व्यवहार की प्रेरणा देना वाला है; भारतमातृवन्दना द्वारा कवि एवं पाठकों का कल्याण करने वाला है; भक्तिरस के परिपोष से अलौकिक आनन्द को देने वाला है; और भारतमाता को वक्त्री बनाकर भारतवर्ष का गौरवगान करने वाले एवं उसका हित चिन्तन करने वाले कवि को भी निश्चय ही यशप्रदान करने वाला हैं। अन्त में अपने इस लेख के माध्यम से डॉ0 दीक्षित के महाकाव्य 'भारतमाता ब्रूते' का अभिनन्दन करते हुए कवि के ही शब्दों में भारत राष्ट्र के लिए शुभकामना व्यक्त करती हूँ-

सुसभ्यता चात्र सुसंस्कृतिः पुनर्-नूनं स्वराष्ट्रे प्रथिते भविष्यतः।
तवापि कीर्तिस्सुतरां प्रथिष्यते भविष्यतीदं सुखितं च भारतम्॥

-भारतमाता ब्रूते', 22/71

वैदिक सभ्यता और उसके प्रभाव

डॉ० सुचित्रा मलिक
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय,
हरिद्वार

संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में वैदिक सभ्यता-संस्कृति सबसे प्राचीन मानी गयी है। **(सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। यजु० ७.१४)** जबकि यूनान मिस्र रोम आदि की संस्कृतियाँ काल कवलित हो चुकी हैं। वैदिक संस्कृति वह सदानीरा है जो अपने संसर्ग में आने वाले सभी नदी नालों को समेट कर अनवरत बहती चली आ रही है। भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यताओं में राक्षस, वानर, मुण्डा, कोल, किरात, द्रविड़, गन्धर्व, यक्ष, असुर, शक, पल्लव और हूण आदि का इसमें समय-समय पर या तो समागम होता रहा या सम्पर्क। यह किसी को स्वयं में लीन करके किसी के साथ चलकर अपने साम्राज्य का विस्तार करती रही। मुस्लिम संस्कृति ने इससे घात प्रतिघात करके साथ रहना कुबूल किया। सुमेरियन ओर यूनानी इससे बहुत कुछ ले गयी अनेक संकटों की मार झेलती यह वैदिक संस्कृति आज भी अपनी पूर्ण ऊर्जा से समन्वित और सुगठित है तो इसका कारण इसकी वह गुणवत्ता है जो अन्य संस्कृतियों में दुर्लभ है। वैदिक संस्कृति के मूलाधार थे उसका लचीलापन, आघात और अवशोषण की क्षमता, बाह्य वातावरण को प्रभावित करने की क्षमता, उदारता और अध्यात्म।

निष्काम कर्म करते हुए मानवता का हित साधन इस संस्कृति की महती आकांक्षा है। स्वामी दयानन्द ने इस वेदवाक्य 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' को बार-बार दोहराया है यही एक सत्य ईश्वर स्वरूप सब संस्कृतियों में प्राप्त होता है परन्तु - **अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥** यह विचार संसार की किसी भी सभ्यता का मूलाधार नहीं है। यही भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। इसी के परिणाम स्वरूप विश्व की अनेक सभ्यताओं पर भारत की अमिट छाप है। (करुणा से आप्लावित इस सभ्यता के आदि कवि वाल्मीकि का प्रथम श्लोक **'मा निषाद प्रतिष्ठाम त्वमगमः शाश्वती समाः। यत्क्रौञ्च मिथुनादेकम्वधी काममोहितम'** शोक विह्वल अवस्था की परिणति है। जो आगे चलकर बौद्धों के दर्शन और जैनियों के धर्म में परिलक्षित होती है। इसी सभ्यता ने 'महाजनो येन गतः सः पन्था' के अनुसार सुमार्ग पर चलते हुए श्रेष्ठ मानव बनने का सन्देश दिया है। असतो मा सद्गमय..... ..... की किसी संस्कृति से तुलना असम्भव है। वहीं उसके **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** भी उसकी महती विशेषता हैं। **'अद्वैषे द्यावा पृथिवि हुवेम'** यजुर्वेद का यह मैत्री सन्देश समस्त विश्व के लिए है।

वैदिक सभ्यता संस्कृति के आधार वेद हैं। वेद का अर्थ है ज्ञान। प्राचीन ऋषि मुनियों ने जो ज्ञान अपनी अन्तर्दृष्टि से प्राप्त किया उसी का संग्रह वेदों में है। श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नया, स्वाध्याय शब्द वेद के पर्याय हैं। वेद अथवा वैदिक सभ्यता का प्रभाव हमारे जीवन के अनेक सन्दर्भों में देखा जा सकता है।

आर्य धर्म की आधारशिला ही वेद हैं। हमारे जीवन के सभी धार्मिक अनुष्ठान, 16 संस्कार वैदिक श्लोकों से ही सम्पन्न होते हैं। आज का बहुदेववाद ऋग्वैदिक प्रभाव का ही परिणाम है। प्रकृति के सभी प्रधान कार्यों के प्रतीक देवता द्यौः, पृथिवी, वरूण, इन्द्र, सूर्य, रुद्र, वायु, पर्जन्य और देवी उषा ऋग्वेद के सूक्तों से आज तक चले आ रहे हैं। वैदिक सभ्यता में यज्ञ प्रधान धार्मिक कर्म था और बहुत जटिल भी था। परन्तु दसवें मण्डल में आकर बहुदेववाद और कर्मकाण्ड प्रधान धर्म की परिणति उस गहन चिन्तन में होती है जहाँ एक अद्वितीय ब्रह्म की ही रचना समस्त विश्व को माना गया है, उसे विश्वकर्मा, प्रजापति, हिरण्यगर्भ और अदिति नामों से पुकारा गया है। कर्म फल पर विश्वास करने वाली आज की विचारधारा पर भी वैदिक प्रभाव है। ऋग्वेद में मृत्युपरान्त होने वाले उस जीवन का उल्लेख है जो यम से अनुशासित होता है।

'सर्वज्ञानमयो हि सः' सूक्त में मनु ने वेद को सभी विद्याओं और शिक्षाओं का आदि स्रोत कहा है। समाज, राजनीति, विज्ञान, चिकित्सा, गणित, भौतिकी, रसायन, वनस्पति, जन्तु, वृष्टि, भूगर्भ, अर्थ, नाट्य, काव्य और काम आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में सम्बन्धित मन्त्रों की रचना वेदों में हुई। जहाँ तक शिक्षण का प्रश्न है शिक्षा का स्थान आचार्य का घर था। आज के गुरुकुल उस परम्परा के प्रतीक हैं तथा आवासीय विद्यालयों पर उसी पुरातन व्यवस्था का प्रभाव है।

आज के सामाजिक सन्दर्भों में पुनः वेद प्रासंगिक हो गये हैं। **'ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यम्, मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं।'** यजुर्वेद के अनुसार वैदिक युग में ब्राह्मण का कर्तव्य ज्ञानार्जन, क्षत्रिय का रक्षाकार्य, वैश्य का व्यापार और शूद्र का शिल्प और श्रम साध्य कर्तव्य था। आज के बदलते सामाजिक समीकरणों में प्राचीनतम गौरवमयी वैदिक संस्कृति का पुनरागमन है, जिसमें कर्मप्रधान वर्णव्यवस्था रहा। आज किसी भी जाति का शिक्षक, किसी का भी सैनिक (क्षत्रिय), किसी का भी व्यापारी तथा किसी भी जाति का व्यक्ति शिल्पी और श्रमिक हो सकता है। वैदिक युग में पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था थी। आज भी वही स्थिति है।

वेदों का अपना ऐतिहासिक महत्व इस बात में है कि उन्हीं से हमें आर्यजन की भौगोलिक स्थिति, प्राचीनतम नदियों (यथा सरस्वती या दृषद्वती) वनप्रदेशों, वनस्पतियों भारत के प्राचीन गणों और युद्धों (दाशराज्ञ युद्ध) उल्लेख प्राप्त होता है। सरस्वती की चर्चा यदि वेदों में न होती तो यह काल कवलित नदी आज स्मरण के लिए भी न रहती वेदों का स्मृति नाम यहाँ अधिक सार्थक है।

वेद विश्व वाङ्मय की प्राचीनतम सृष्टि है। भाषा के विद्वानों ने यह मान लिया है। वैदिक भाषा के अध्ययन ने ही ग्रीक लैटिन अवेस्ता से तुलना करके तुलनात्मक भाषा विज्ञान का आधार बनाया है। 1870 में अस्कोली ने विश्व के सबसे बड़े भाषा परिवार भारत यूरोपीय भाषा परिवार के दो वर्ग केन्तुम और सतम् सिद्ध किये उसमें इरानी सतम् और भारतीय शत ग्रहण किया गया है। डा. रामविलास शर्मा के अनुसार वैदिक संस्कृत पर अपनी निकटवर्ती जनपदीय बोली मागधी का स्वाभाविक प्रभाव है है कि दन्त्य 'स' का उच्चारण तालव्य 'श' के समान होता है। मागधी की यह विशेषता आज भी बंगला में सुरक्षित है (रसगुल्ला-रशोगुल्ला) मृच्छकटिक में शकार अपने श प्रेम के लिये प्रसिद्ध है। वह स को श ही बोलता है। फारसी में संस्कृत शत् के लिए सद है रूसी में सोत। फारसी और रूसी दोनों में स और श दोनों का व्यवहार होता है। वे संस्कृत के शत का तालव्य श के साथ ग्रहण कर सकती थी। परन्तु वहाँ दन्त्य स है। इससे अनुमान होता है कि शत पहले सत ही था आज भी हिन्दी के सौ में मूल दन्त्य ध्वनि सुरक्षित है। वैदिक भाषा के निर्माण काल में उस पर आसपास की जनपदीय बोलियों का स्वाभाविक प्रभाव रहा। ऋग्वेद के एक रूप कृष्टीनाम का दूसरा रूप है चर्षणीनाम (अर्थ-कृषक) कृष् के समानान्तर चष क्रिया प्रचलित थी। ऋग्वेद में शब्द है युगम्। इसी से सम्बद्ध क्रिया रूप है युज्यते। एक में कण्ठ्य ध्वनि दूसरे में तालव्य है। यह दो जनपदीय भाषाओं की ध्वनि प्रकृति का सामञ्जस्य है। ठीक इसी प्रकार अवेस्ता की भाषा पर वैदिक प्रभाव देखा जा सकता है। आज के सन्दर्भ में देखा जाये तो ऋग्वेद में प्रचलित पुर शब्द नगरवाची हो अथवा ग्रामवाची, इन पुरों में द्रविड़ रहते हों या आर्य बार-बार आया है आज की नगर और ग्राम नामावलियों में इसका प्रयोग आर्य सभ्यता की अक्षुण धारा को आभासित करता है। यथा जयपुर, जोधपुर, नागपुर और परतापुर आदि। आर्यजन आपसी युद्धों को जीतकर उनके पुरों को तोड़ दिया करते थे। दानु शब्द नदी वाचक है। दानु के पुत्र ही दानव कहलाये। वृत्र दानव की माता उसे ऐसे ढक लेती है जैसे गाय अपने बछड़े के ऊपर सो जाती है। जल ऊपर है और वृत्र नीचे इन्द्र उस पर जल में प्रहार करते हैं। **(अहीनां प्रथमजां एनं अहन्)** सम्भवत: इन्द्र ने वृत्र को उसके निन्यानवे पुरों के लिए ही मारा होगा।

वरुण को असुर कहा गया है। ईरान के एकदेवता अहुर भी है। वहाँ स ध्वनि की परिणति सिन्धु से हिन्दु की भांति फारसी प्रवृत्ति के अनुरूप है। सुमेरी सभ्यता के विशेष क्रैमर ने हड़प्पा को सुमेरी सभ्यता से जन्मता दिखाया है। क्योंकि दोनों सभ्यताओं में जल को पवित्र माना गया है। परन्तु हड़प्पा से पूर्व ऋग्वेद में जल को पावन माना गया है। वास्तविकता यह है कि वैदिक शब्द अप्सु सिंधु पार कर सुमेर पहुँचा तथा जल वाचक बना। मिस्र, क्रेत और भारत की सभ्यताओं के आदि पुरुष मनेस, मिनोस और मनु हैं, अवश्य इन तीनों शब्दों में आपसी तालमेल है और इन सभ्यताओं पर वैदिक प्रभाव है।

संस्कृत किसी समय लोक व्यवहार की भाषा थी यह पूर्ण सत्य है। क्योंकि ऋग्वेद की भाषा का अध्ययन उसे मानक भाषा नहीं ठहराता है। प्रयोगों की जितनी विविधता ऋग्वैदिक भाषा में है उतनी बोलचाल में ही सम्भव होती है। लोक भाषा की यही परम्परा अक्षुण रूप में परवर्ती महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) आयी। पाणिनि ने अपने व्याकरण में जनपदीय प्रयोगों को ध्यान में रखा तथापि उसने जो नियम बनाये उनकी निरन्तर अवहेलना इन महाकव्यों में हुई। स्वयं वाल्मीकि ने अपने प्रथम श्लोक में शोकाकुल हृदय का उद्‌गार कहा जो स्वत: बिना किसी भाषायी संस्कार के निकल पड़ता है। महाकव्यों में सन्धि के नियम तिरस्कृत होते रहे क्योंकि ये गेय काव्य थे। कथावाचकों (कुशीलवों) द्वारा गाये गये थे। वास्तव में बोलचाल की भाषा में सन्धि नियमों का ध्यान नहीं होता। यही विशेषता ऋग्वेद की भाषा में है और तदुपरान्त रचित महाकाव्यों में भी। उत्तम पुरुष सर्वनाम का अधिकाधिक व्यवहार भी ऋग्वेद की भाषा को बोलचाल की भाषा ठहराता है। ऋग्वेद के ऋषि सीधे देवताओं से बातें करते है। देव प्रशंसाओं से पूर्व ऋग्वेद में मनुष्यों की प्रशस्ति भी हुई है। नाराशंस शब्द का अर्थ मनुष्यों की प्रशंसा में गाया गया काव्य है। रामायण के गायक कुशीलवों का रूप ही परवर्ती साहित्य के चारण, गायक और अभिनेताओं में देखा जा सकता है। करुण रस का काव्य वैदिक युग से ही मेघदूत, नागमती वियोग और सूर के विरह पदों में रहता रहा।

वैदिक सभ्यता और संस्कृति की विरासत आज भी विश्व के बहुत से राष्ट्रों में वर्तमान है।

भारत और सुमेर - क्रैमर ने सुमेरियनों को विश्व सभ्यता का मार्गदर्शक बताया है। साथ ही यह भी बताया है कि उनके विचारक और दार्शनिक सतही धारणाओं से काम ले रहे थे। असल में सुमेरियों ने भारत से कई धारणाएँ प्राप्त की थी पर वे उन्हें सही व्याख्यायित नहीं कर पाये। सुमेरी विचारक पृथ्वी और आकाश को युगल मानकर उसे एन्की नाम देते थे जो वैदिक द्यावापृथिवी का ही रूप है। भारत ने पंचतत्वों (पृथ्वी, आकाश आदि) से संसार की उत्पत्ति मानी पर सुमेरियों ने विश्व को सागर से उत्पन्न कहा। वेदों में जल को आदि तत्व माना गया था। इसका इन्होंने यही अर्थ लिया कि संसार की उत्पत्ति ही समुद्र से तय कर दी। इसी तरह यूनान ने भी बहुत सी धारणायें भारत से ली पर वहाँ स्थिति भिन्न रही। सुमेरी देवता नैतिक मूल्यों (सत्य, शान्ति और पुण्य) के प्रतिनिधि हैं साथ ही वे भय, विलाप, झगड़े और झूठ की भी सृष्टि करते हैं।

क्रैमर कहते हैं कि महाकाव्यों की रचना पहले सुमेरियों ने की। वस्तुत: जब सुमेरियन अपने काव्य में कुछ शब्द बन्ध दोहरा रहे थे वहीं ऋग्वेद में छन्द शास्त्र का विकास हो चुका था और कथा गठन में भी भारतीय महाकाव्य उनसे बहुत आगे थे। आर्य और द्रविड़ संस्कृति से सम्पृक्त होती ऋग्वेद की भाषा बहुत समृद्ध होती गयी थी।

भारत और यूनान – लघु एशिया (तुर्की) के समुद्र तट पर रहने वाले जन भारतवासियों के सम्पर्क में थे। प्राचीन भारतीय दर्शन में किसी एक तत्व को सृष्टि का मूल कारण माना गया है। वैसे ही इन यूनानियों ने भी जल, वायु आदि को सृष्टि का मूल तत्व मानकर संसार का रहस्य समझने की कोशिश की है। इन्हीं प्राचीन यूनानियों की ओर तब तब यूरोप ने देखा जब जब वहाँ कोई सांस्कृतिक आन्दोलन पुरानी रूढ़ियों के विरुद्ध हुआ। ईरान के आक्रमण ने यूनानी दर्शन को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। ये यूनानी इटली में जाकर बस गये और दर्शन के केन्द्र एशिया से हटकर यूरोप में स्थापित होते गये। होमर के प्रसिद्ध काव्य एशिया की भूमि पर रचे गये थे। यूरोप के जन भी सुमेरियों की तरह आपस में लड़ते रहते थे, जिससे इनकी प्राचीन धरोहर भी खत्म होती चली गयी।

भारतीय मनीषियों ने जिस मानवीय सभ्यता का विकास किया। जिसकी रचना में मानव के लिए तीन ऋणों की व्यवस्था कर उसे भविष्य के लिए कल्याणमयी बना उसने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म साधना की उत्तम वस्तुएँ प्रदान कीं। चीन और तिब्बत, अरब, अफगानिस्तान आदि आज के मुस्लिम देश भारतीय संस्कृति और सभ्यता के कहीं न कहीं ऋणी हैं। अपने आर्थिक सम्बन्धों, सामाजिक सरोकारों, भाषा और परम्परा के अनेक स्तरों पर यह सभ्यता पृथ्वी के अनेक भूखण्डों में पसरी और पल्लवित हुई।

कविवरः लोकरत्नपन्तः 'गुमानी' व्यक्तित्वम्

डॉ० प्रकाश चन्द्र पन्तः
एम०ए०,पी०-एच०डी०, संस्कृत विभाग
गु०का०वि०वि०, हरिद्वार

गुमानिकवेर्जन्म कूर्माञ्चले अल्मोड़ात उदीच्यां सप्तकोशदूरस्थ 'उपराड़ाग्रामे' महाराष्ट्रीयपन्तब्राह्मणान्वये पौषकृष्णद्वादश्यां बुधे सं०- 1847 बैक्रमेऽभवत्, अस्य पिता पण्डितदेवनिधिपन्तः माता च देवमञ्जरी। अस्य नाम 'लोकरत्न पन्त आसीत् किन्तु पित्रा प्रेम्णा गुमानिरित्याहूतो तथैवाभिख्या प्रसिद्धिमभजत्। स्वपितृव्यश्रीराधाकृष्णपन्ततः प्रारम्भिकीं शिक्षामादायं तदानीन्तनप्रसिद्धविदुषः कलौनग्रामाभिजनश्रीहरिदत्तजोशीतो विविधशास्त्राण्यधिजगाम। तस्य च हरिदत्तस्य कृते तदा कूर्माचंले प्रसिद्धिरासीत् यत्- **स्वर्गे इन्द्रः पातालेः शेषः, भूलोके चाहं हरिदत्त** :- इति आचतुर्विंशति वयसानेन तत्राधीतम्, एतन्मध्यएवं कालेऽस्य परिणयोऽप्यभवत् अनन्तरं यावदयं गार्हस्थे प्रविशति तावदेवैकया घटनया अस्य जीवनधारादिशान्तरं परिमोटिता। उच्यते चैकदा पाकक्रियां सम्पादयतोऽस्य यज्ञोपवीतं सहसा दग्धं तत्प्रायश्चित्तार्थमसौ गृहान्नेरगच्छत् प्रतिजज्ञे च यावत्व्रत समार्प्तिन स्यात् तावन्नाग्निपक्वंमत्स्यामीति। द्वादशवर्षाण्येवं फलमूलानि जक्षन् तीर्थेषु परिब्रभाम्, वर्षचतुष्टयं तीर्थराज प्रयागमुषित्वा चतुर्विंशति लक्ष्यं गायत्री जपं - श्रीमद्भागवतस्य पारायणं च व्यदधात्, ततः पुनः खलु सप्तवर्षाणि तीर्थान्तरेषु पर्यटन् द्वादशे वर्षे केवलं दूर्वारसं पीत्वा देवप्रयागेऽवसत्। एटामण्डलान्तः शूकरक्षेत्रे (सोरों) गङ्गातटे "गुमानिगुफा" अद्यापि वर्तते। यत्रानेन कतिचिन्मासानूषे। एतद्व्रतसमाप्यनन्तरमेवायं गृहंप्रतिनिवृत्य पुनः मातुः निवेदनेन गृहस्थाश्रमं प्रविवेश।

बहुकालं यावदयं टिहरी नरेशस्य श्रीसुदर्शनशाहस्य राज्यसभामलङ्चकार, कियन्तं चित् कालं च काशीपुराधिपतेः श्रीगुमानसिंहदेवस्य राजसभां चालंचक्रे। तत्रैवास्य निज सगोत्रेण श्री सुखानन्दपन्तेन कस्मिश्चिच्छास्त्रीये विषये विवादः समजनि। विवादेचात्र मुरादाबादस्थाः पण्डितप्रवरटीकारामशास्त्रिणो मध्यस्था आसन् तैश्च सुखानन्दपक्षः समर्थितः। गुमानिना दृष्टं यत् साग्रहमेभिरस्य पक्षपोषणं क्रियते अतस्तत्कालमेव श्रीशास्त्रिणमुद्दिश्योक्तम्-

चन्दनकर्दमकलहे भेको मध्यस्थतापन्नः।
ब्रूते पङ्कनिमग्नः कर्दमसाम्यं न चन्दनं लभते॥

श्रीगुमानी नैसर्गिकः कविरासीत् किन्त्वस्य स्वाभाविकं चाञ्चल्यमेवमासीत् यत् कस्यापि विषयस्य विस्तारोस्मै न रोचते स्म। यदा कदापि यः कोऽपि विचारोऽस्य मनसि प्रादुरभवत् तमेव सरसैः पद्यैर्निरबध्नात् लिलेख च। संस्कृते-हिन्दी-नेपाली-कूमाऊनी भाषासु च शतशः स्फुटपद्यानि गुमानिप्रणीतानि प्राप्यन्ते। एतादृशस्याशुकवेः कृते स्वकीयसर्वरचनानां संकलनं न सुशकम् यतोहि तेषां जीवनमेव काव्यमयं भवति। अतो नानेनापि स्वकीयया रचनाः संकलिताः आसन्। या कापि रचना येन

केनाप्युपलब्धा सा तेनैव गृहीता। तथापि गुमानिकविप्राणितानि सुबहूनि लघुमुक्तककाव्यानि प्राप्यन्ते।

यद्यप्यनेन न कोपि महान् ग्रन्थो रचित: तथापि विनोदिस्वभावतया मधुरव्यंग्यानं सजीव वर्णनक्षमतया चायं कुमाऊमण्डले इयतीं सिद्धिमवाप। यदद्यापि तत्र कश्चित् शिक्षितोऽशिक्षितो वा जन: गुमानि कवेर्द्वित्रानिपद्यान्यवश्यं जानाति। श्रूयते यत् पटियालानरेशस्य श्री कर्णसिंहस्य प्रशस्तौ सप्तसर्गात्मकं अलवराधीशस्य श्री विनेसिंहदेवस्य नीतिप्रियतायां पञ्चसर्गात्मकं नाहनपते: श्री फतेहशास्य सुप्रबन्धविषये सर्गत्रयात्मकं काव्यमनेन व्यरचीति। किन्तु कानिचित्स्फुटपद्यानि विहाय नास्माभि अन्वेषणमाणैरपि तत्काव्यत्रय मुपलब्धम्। परन्तु काव्यानि विरचितानीति तु सुनिश्चितमेव।

विविधभाषाज्ञानम्-गुमानिकवि: न केवलं संस्कृतस्य कवि: विद्वान् वासीत् परं हिन्दी-कुमाऊनी-नेपाली-ब्रज-अवधी-ऊर्दू-फारसीत्यादीनां भाषानां वेत्ताऽपि। यथा चतुर्षु हिन्दी-कुमाऊनी-नेपाली-फारसी-संस्कृतभाषासु रचना कवे: -

''बाजे लोग: त्रिलोकि नाथशिव की पूजा करें तो करें (हिन्दुयाम क्वे क्वे भक्त गणेश का जगत् में बाजा हुनीत हुन् (कुमाऊनी भाषायाम्, राम्रोध्यान भवानिका चरणमा गर्दन् कसैले गरन् नेपाली भाषायाम् धन्यात्मातुलधामनीह रमते रामे गुमानी कवि:'' संस्कृते -

कृतित्वम् -

गुमानिकवि प्रणीतानि विविधानि काव्यानि स्फुटकानि सन्ति साम्प्रतं तेषां क्रमेण नातिविस्तरेण वर्णनं क्रियते मया।

1. रामनाम पञ्चाशिका - अत्र 55 पद्यैरकारादिरामनाम्नी संग्रहो वर्तते यथा-

रामो रावणमर्दने रघुवरो रुद्रप्रिय: राघव:
राजेन्द्रोरणकर्कशो रविकुलोत्तंसो रामनायक:
रत्नालङ्करणो रहस्य चतुरो रच्याकृति रूपवान्
रोचिष्णु रुचिराम्बरो रुचिकरो रज्यत्प्रजोराज्यद: इति।

2. रामनाम विज्ञप्ति सार: -

त्रिंशत् (30) पद्यैर्भगवत्समक्षं कृपायाचनाऽत्र कृता वर्तते यथा -

परस्य परमेशितुस्तव निसृष्टलोकस्थिते -
र्न सन्ति कति मादृशा जगति दीनदासेरका:।
मम त्वमभिमतो भवान् प्रभुरनन्यसाधारणे
विधो: कुमुदकोटयो न कुमुदस्य नैको विधु:॥

3. भक्ति विज्ञप्ति सार : -

अस्मिन् प्रबन्धे १०१ पद्यै: भगवच्चरणारविन्दयोर्भक्तस्यात्मनिवेदनं प्रस्तुतमस्ति यथा - देहं विदेहतनयाधिपते मदीयं सा सं ब्रयिष्यति यदा तु जरावराकी।

हा हन्त हन्त मम जर्जरितेन्द्रियस्य त्वत्तः परमः शरणदो भवितातयाकः।

4. पञ्चपञ्चाशिका –

अत्र पञ्चपञ्चाशत् (55) पद्यैरुपनिषदां सारः विवेचितः उपसंहारे स्वयमेवोक्तं कविना यत्-

समिधि विधिमन्तरा त्वरित मात्मबोधैषिणां
नितान्तमुपकारिणी कृतधियां मनोहारिणी।
महोपनिषदर्थ संजनिततत्व विद्योतिनी
गुमानि रचिता चिरं जयति पञ्चपञ्चाशिका॥

5. रामाष्टपदी – अष्टपदीगाने रामस्तुतिरिय यस्याश्चध्रुवपदम्

6. दण्डकानि –

पृथक्-पृथक् एकेनद्वाभ्यां वा दण्डकाभ्यां विभिन्नदेवानां स्तुतयः सन्ति, सरस्वती दण्डकं यथा –

या पराह्लादनं गीत सम्पादनं वल्लकीवादनं कल्पयन्तीजवात
भक्तहृच्चारिणी भव्यविस्तारिणी भूयसी हारिणी मण्डलादैन्दवात
यत्तनुध्यानतो नाधिगम्यानतोज्ञानमज्ञानतोमुच्यतेऽन्तर्गतात्।
सा निसर्गत्वरंजिह्विकाचत्वरं प्राप्य नः सत्वरंभारती नृत्यतात्।

7. हितोपदेशशतकम् –

100 आर्यापद्येषु शतोपदेशाः प्रत्युपदेशं च दृष्टान्तयैकान्तः कथा इतिहासप्रसिद्धोपनिबद्धा वर्तते यथा –

मृगयारतः प्रसेनो विघटितसेनोऽटवीमटन्नेकः
केसरिणा विभिजघ्ने नेकाकी संचरेद्विपिनम् ।
शिवलिङ्गान्तमलब्धं लब्धं विधिनेतिकामधुक् प्राह
अथ निन्द्यमाप शापं न विदध्यात् कूट साक्षित्वम् ॥

8. दुर्जनदूषणम् –

विभिन्नैच्छन्दोभिर्दुजनस्य प्रताडनाऽत्र क्रियते खलु।

9. ज्ञान भैषज्य मञ्जरी –

अशीति पद्यैः प्रति पद्यं पूर्वार्द्धे तत्वज्ञानमुपवर्ण्योत्तरार्ध दृष्टान्तयैका रोग **शमनन्योषधीरूपवर्णिताऽस्ति॥**

आहो दुःष्कृत् दुःखाद् धर्मः सन्त्रायते द्वयोपेतः।
द्रुतमूत्रकृच्छाद् द्राक्षा ससिता यवक्षारः॥
अनुचितमिदं शमादयो हृतसन्तोषो न शोक हरः।[४]
इदमंप्यनर्हमाद्रास्वरसो मुद्रादयो न शोधहरः

अत्रेदं विशेषेणावधेयं यद् भिषक्त्वमस्य कवेः परम्पराप्राप्तमासीत्। अतएवानेकात्र कठिनतरानामपि रूजां सरलाः सुलभाश्चौषध्यो निर्दिष्टाः, प्रार्थिताश्चान्ते पाठकाः यदेतासामवश्यं परीक्षा कर्तव्येति।

10. समस्या पूर्त्तयः -

अयमत्यन्तं विनोदप्रिय आसीत् चमत्कारिण्योस्य व्यङ्ग्योक्तयः उपलभ्यन्ते संस्कृत-हिन्दी-नेपाल-कुमाऊनी-भाषासु प्रायः 150 समस्यापूत्तर्योऽस्य लभ्यन्ते या अतीव उपदेश प्रदा- **मनोरञ्जिन्यश्च सन्ति-यथा-**

यस्मिन् देशे निगुर्णे निर्विबेके, न क्वापि स्याद्वेदशास्त्रचर्चा
प्राज्ञः प्रज्ञाहीनवत्तत्र तिष्ठेद् 'कीजै कागे देशमें आँख काणी,
रणडाबालियुवतिरश्रीका सुग्रीवोत्सुकयाऽभीका।
तारा वेषमकृतनिह्लीका ''नकटी नाक चन्दन को टीका'॥
समस्या - ३ 'झखमारी फिर खिचड़ी खायी'

पूर्ति -

नादात्कन्यां वाणो दायी कृष्णध्वजस्तो युद्धस्थाई।
पश्चादासीकन्यादायी 'झखमारी फिर खिचड़ी खाई॥ एवमेव सनस्युदासिनांनकपन्थीनाथ साँई मौलादीनां साम्प्रदायिक साधूनां स्वरूप वर्णनम्, पर्वतीय प्राकृतिकदृश्यवर्णनं चास्य प्रचुरविनोद प्रियत्वं स्फुटयति

एतदतिरिक्तमनेन - तिथिनिर्णयः, काल निर्णयः, अशौचनिर्णयः धर्मशास्त्रीयं ग्रन्थत्रयं, जगन्नाथाष्टं, देवतास्तोत्राणि, सज्ञानां सर्गबद्धजीवनचरितं, मनोविनोद क्रीड़ासम्बन्धी स्फुटपदानि, तमाखुपत्रवर्णनं, गंगार्याशतकं, कालिकाष्टकं, आदि स्त्रोत्रादीनां स्तुतिपरकाव्यानां रचना कृता। आंग्लानां कृते फिरंगीशब्दप्रयोगेन तेषां शास्त्रज्ञानशून्यत्वं प्रदर्शितमस्ति। तद्यथा-

नवेदकुशलं न च स्मृतिविदं न तन्त्रोद्धुरम।
न शास्त्र विहितश्रम न समधीत साहित्यकम्।
लिखन् पठति यावनीमपि न आगरेजी लिपिम्।
तमेव वत मन्यते बुधजनं फिरंगी जनः॥

कुमाऊनी भाषायामपि कवेः प्रावीष्यं पश्यामः -

हल्या हाथ पडो बड़ा कठिन ले है गेछ दिन दोफरी
बायो बल्द मिल्यो छ एक जुबको काजू मैं देवा हुणी।
माणो एक गुरुस को खिचड़ि सू पैचो लगे नी मिलो
मैं ढोला सु हाय काल हराणों का जूँ क्या धन्धा करूँ॥

अपरंच -

खाणा लायक इन्द्र का हम छिया भूलोक आई पड़ा।
पृथिवी मैं लग यो पहाड़ हमरी थाती रची देव ले।
ऐसो चित्त बिचारे काफल सबै राता भया क्रोध लै॥

कोई और बुड़ा खुड़ा शरम ले नीला धुमैला भया।।

गुमानी कवि विषये श्री वरदराजाचारी महोदय इदं कथनं तस्य रचना बैशिष्ट्यं स्फुटयति -

The Upadesasatak and sudhasita kaustudha seek to instruct people in good aspects of like and were cokposed respectively by gumani and Venkatadhvarin. (1)

कविवर लोकरत्न गुमानी महोदय प्रसिद्धिविषये डॉ0 ग्रियर्सन महोदय लिलेख यत्-

Gumani was a pralific author both in sanskrit and in hindi his works were still greatly admired in the land of his birth but his reputation in the plains of india, which as we have seen extends to terhut some five hundreedmiles away. (2)

एवमेव सद्रञ्जाष्टकम् गंजीफा विधि:, चतु:सारिका वर्णनम्, इत्यादि स्फुटरचनाभि: शतरञ्जादिक्रीडा विधि: संस्कृतपद्यै: सम्यगुपबर्णित: उपरिप्रदत्तोदहरणानुसारमेवास्य कवे: पर्वतीय भाषायोर्निभितानि सुबहूनि पद्यानि विद्यन्ते।

एवं सततसारस्वतसाधनारतोऽयं महाकवि: 56 वर्ष व्यस्क: सं0 1903 तमे बैक्रमे दिवं जगाम्। साम्प्रतं चास्य पञ्चममपत्यं विद्यते तत्र पैत्रके स्थाने। कुमाऊँ मण्डलस्थकविकुल कमलदिवाकर: लोकरत्नोपाधिधारी 'पन्त' गुमानी कवि: अस्माकं सर्वेषां कृते प्रेरणाप्रद: वर्तते।

"इति शम्"

---

1. राम नामपञ्चाशिकात: उद्वृत:
2. पञ्चपञ्चाशिकाया उपसंहारे
3. कुर्माञ्चल में संस्कृत का विकास पृष्ठ 66-67
4. A History of Sanskrit literature P.g. - 62
5. **इण्डियन एंटीक्वेरी वाल्यूम ३८पृ० १७७**

आजादी का दीवाना ''आजाद''

स्व० चन्द्रकेतु शर्मा
भू0 पू0 अधि0 विद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

अमर शहीद ''चन्द्रशेखर'' आजाद के विषय में जितना भी लिखा जाए बहुत थोड़ा है। आतंकवाद के जमाने में आपका काम सराहनीय और सम्मान के योग्य रहा और आदि से अन्त तक अपने उद्देश्य को सफल बनाने की योजना में ही प्राण त्यागे।

सन् 1921 ई0 में चलने वाले असहयोग आन्दोलन में आपका नाम सर्वप्रथम चमका, उस समय आप बनारस के संस्कृत कॉलेज जिसका नाम उस समय (क्विंस कॉलेज था) अब वह संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है, पर धरना देते हुए गिरफ्तार किये गए थे। अदालत के सामने पहुँचने पर मजिस्ट्रेट ने आपका नाम पूछा?

''**आजाद**'' आपका उत्तर था।

पिता का नाम? - **स्वतंत्र** आपका उत्तर था।

कहाँ रहते हो? - **जेल खाने में**...... बस यहीं से आप ''**आजाद**'' नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय आपकी आयु केवल 14 वर्ष की थी। आदालत की तरफ से आपको 15 बैंत की सजा दी गई। यह बैंत जेल में नग्न करके विशेष प्रकार की टिकटिकी पर बांधकर मारे जाते थे। बैंत लगते समय आपका साहस सराहनीय था। कोमल मांस पर पड़ने वाले बैंत आपका चमड़ा तक खींचे ले रहे थे, रक्त की धार बह रही थी। किन्तु आपके मुँह से एक बार भी कायरतापूर्ण शब्द नहीं निकला, जब तक आप होश में रहे आप बार-बार ''वन्दे मातरम्'' महात्मा गांधी की जय इत्यादि के नारे लगाते रहे, इसके बाद मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जेल से बाहर उनको हॉस्पिटल ले जाने के लिए एम्बुलैन्स कार खड़ी थी परन्तु आपने उस पर बैठने से भी इन्कार कर दिया और पैदल ही अपने घर पहुंचे।

उस दिन काशी नगरी में आजाद की ही चर्चा थी। अब काँग्रेसी नेताओं के प्रयास से आप का नाम ''काशीविद्यापीठ'' की चौथी कक्षा में लिखाया गया। परन्तु वहाँ तो दूसरी ही आग सुलग रही थी- पाठक! आप ही सोचिये, ''आजाद'' उसे बुझाने की कोशिश करते, या संस्कृत पढ़ने की? जेल में पड़ने वाले बैतों के प्रभाव ने आपको विद्रोही बना दिया था, अस्तु विद्रोह का ही पाठ याद करने लगे। उन दिनों श्री मन्मथनाथ गुप्त और प्रवेश चटर्जी भी यहीं पढ़ते थे, वह दोनों विद्यार्थी पहले से ही विद्रोह के सफल पुजारी बने बैठे थे, और फिर इस पर ''आजाद'' से भेंट होना सोने में सुगन्ध का काम कर गया।

काशी के क्रान्तिकारी दल में शामिल होने के बाद आजाद का परिचय उत्तर प्रदेश के अन्य विद्रोहियों से भी हो गया और आप स्वयं भी एक अनुभवी कार्यकर्ता बन गये। दल की संख्या बढ़ाने के लिए अन्य किशोरों को आप अपने दल में भर्ती करने लगे। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में यात्रा करते समय कानपुर में श्री रामप्रसाद बिस्मिल से परिचय गया। 1924 में जो क्रान्तिकारी परचे भारत भर में बांटे गये, उनको उत्तर प्रदेश में प्रसारित करने में आजाद ने बहुत मेहनत की थी। 1925 में पड़ने वाली काकोरी डकैती में भी आप सक्रिय थे परन्तु अपने नाम के अनुसार वे पुलिस की पकड़ में न आ सके थे। इसके अलावा आप का प्रण भी यही था, कि जीते जी मुझे कोई नहीं पकड़ सकता।

इसके उपरान्त आप काशी से हटकर झांसी में आये ओर यहाँ पर भी आपको एक महान क्रान्तिकारी विचारों के, गांधी जी के परम भक्त श्री मास्टर रुद्रनारायण सिंह जी का आश्रय मिला। यद्यपि मास्टर जी पूरे अहिंसक कट्टर कांग्रेसी थे, तथापि वे क्रान्तिकारी दल में नवयुवक किशोरों की बड़े उत्साह से भरती कराते थे। आजाद तो उनका छोटा भाई बनकर उनके ही घर में सर्वथा सुरक्षित रहता था।

घर के अन्दर माता जी के पास आजाद बैठे हैं, और बैठक में मास्टर साहब के पास सी. आई.डी. के इंसपैक्टर चन्द्र शेखर आजाद को पकड़वाने की सलाह मशवरा कर रहे हैं। मास्टर साहब से कहा इन्सपैक्टर साहब! आने तो दो आजाद को तुरन्त पकड़वा दूंगा और आजाद की सुरक्षा के लिए मास्टर साहब ने ओरछा के एक हनुमान मन्दिर में बैरागी साधु के छद्मवेश में आजाद को भेज दिया था।

सरकार तो उनके पकड़ने के लिये इनाम की राशि बढ़ाती ही जा रही थी, काशी, कानपुर, झांसी, इलाहाबाद जैसे शहरों में पुलिस अत्यन्त सतर्कता से आजाद को पकड़ने के प्रयत्न कर रही थी- एक दिन ओरछा से बाहर एक गांव से लौटते हुए दो तीन हृष्ट-पुष्ट, बैरागी साधुओं को आता देखकर गस्त के सिपाहियों ने आ घेरा, और पूछा तुम आजाद तो नहीं हो? आजाद बोला हाँ हमारा नाम आजाद है- क्योंकि हम सदा आजाद ही रहते है, और आजाद ही रहेंगे, तुमको हम से क्या लेना देना?। पुलिस का मुखिया बोला तब तुम को थाने चलना होगा। छद्मवेशधारी साधु आजाद गरजकर बोले चलो आज थाने में ही भांग छनेगी हम आजाद जो ठहरे क्या मन्दिर में क्या थाने में सब जगह आजाद तो आजाद ही है। यहाँ तक कि पुलिस को उनको असंबद्ध बातों से यकीन हो गया कि हो न हो चन्द्रशेखर आजाद नहीं है- यह तो कोई मुस्टंडा आवारा बैरागी साधु है, परन्तु पुलिस को उस साधु से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया, अन्त में कुछ रु0 देकर ही पुलिस ने आजाद से पीछा छुड़ाया, इस प्रकार आजाद सर्वथा सुरक्षित मन्दिर में रहते थे। उन्होंने ड्राइविंग भी सीखी ओर वहीं पर मास्टर साहब की सिफारिश से पुलिस अफसरों की कारें भी चलाई।

काकोरी केस में गिरफ्तार अपने साथियों के कारण इनका दल छिन्नभिन्न हो गया था। और तभी कानपुर में ही ''प्रताप'' पत्र के सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी के घर पर ही सरदार भगतसिंह से परिचय हुआ जो ''बलवन्तसिंह'' नाम से काम करते व रहते भी वहीं थे।

आजाद कितने निर्भीक थे उनकी दूसरी घटना पढ़िये। वे जिस दिन जाने की बात करते उस दिन वे कभी सफर नहीं करते थे। प्राय: देखा गया था कि जिसदिन आपने जाने की बात कही उस दिन कानपुर, दिल्ली, वा टूंडला में गाड़ी रोककर भली भांति तलाशी ली जाती थी। एक दिन वे दिल्ली से चले और वही दिन उन्होंने सफर करने का बताया था। (वीरभद्र तिवारी) के होते फिर भला कमी किस बात की थी? दूसरे दिन प्रात: सात बजे गाड़ी कानुपर पहुँची। एकाएक गाड़ी वहीं रोक दी गई, सशस्त्र पुलिस ने गाड़ी को दोनों ओर से घेर लिया। आजाद को पहिचानने वाले दो आदमी गेट पर खड़े थे। और वहीं पर इन्सपेक्टर शंभुनाथ और टीकाराम हाथों में पिस्तौल लिए हुए खड़े थे। उस दिन आजाद ने निकर कोट, जुराब व जूते पहने हुए थे। सर पर हैट था- अच्छे खासे पुलिस इस्पेक्टर मालूम होते थे, वे गाड़ी से उतरे और सूटकेस कुली को पकड़ाकर उसके साथ गेट की तरफ चले। एक हाथ जेब में था- क्योंकि उनका पूरा विश्वास था कि आज प्लेटफार्म पर खून की होली खेलनी होगी, इतने में कुली की गफलत से सूटकेस फर्श पर गिर गया, और खुल गया। प्लेटफार्म पर आग्नेय सामान बिखर गया, तुरन्त आजाद ने कुली को डपटकर कहा देखते नहीं सरकारी सामान की इतनी बेपरवाही करते हो- इतने में एक पुलिस इंस्पैक्टर जो ड्यूटी पर वहीं तैनात था दौड़ता हुआ आया और कुली को बूट का ठुड्डा लगाकर डांटने लगा देखकर क्यों नहीं चलता? और स्वयं सामान जो बहुत खतरनाक था, सूटकेश में भरने में सहायता दी, साहब से क्षमा याचना की- आजाद ने भी आश्वासन देकर कुली को माफ कर दिया, और गेट की तरफ चले, एक हाथ बराबर जेब में था गेटकीपर को टिकट दिया और बड़े इत्मीनान से बाहर चले गये, क्योंकि दोनों पहिचानने वालों की आंखे नीचे की ओर झुकी हुई थी आजाद के जेब का हाथ दोनों को भयभीत करा रहा था। यदि उस दिन आजाद जरा भी घबराते तो गोली वर्षा अवश्य हो जाती। अब आजाद की निर्भयता का तीसरा किस्सा सुनिये एक दिन आजाद अपने एक साथी के साथ कानपुर में घूमने निकले। कानपुर के जनरल पोस्ट ऑफिस के पास, एक सज्जन अचकन और पैंट डाटे बड़ी तेजी से आजाद के पास से गुजर गये और घूर कर आजाद को देखते जाते थे, साथी से आजाद ने कहा विश्वेश्वर सिंह सी.आई.डी. के इंस्पैक्टर ने शायद हमें पहचान लिया है, अच्छा तुम तैयार रहो, अबकी आने पर देखा जायेगा, बात समाप्त भी नहीं हुई थी वही सज्जन फिर सामने आये और खड़े होकर आजाद को घूरने लगे, आजाद ने तुरन्त जेब में हाथ डाला 'कट' की आवाज हुई और साथ ही आजाद की मुद्रा भयंकर हो गई, सौम्यता का कहीं पता भी न था कट की आवाज से ही वे सज्जन उलटे लौट पड़े ओर आजाद के मुख से निकला 'ठहर'! शब्द सुनकर उस सज्जन ने दौड़ लगा दी, ठाकुर विश्वेश्वर सिंह अपने जीवन में पहली बार ही इतनी तेजी से दौड़े होंगे,

सामने डाकघर की दीवार भी कूदकर नौ दो ग्यारह हो गये।

सरदार भगतसिंह से मिलकर छिन्न-भिन्न अपने दल का पुनः संगठन, तथा शस्त्रादि जमा करने का काम नए ढंग से प्रारम्भ कर दिया। आजाद के इस नये संगठन ने इतना विकराल रूप धारण किया कि भारत सरकार की रूह तक कांपने लगी थी। दल की आवश्यकता पर धनसंग्रह के लिए पड़ने वाले डाके, सौंडर्स हत्या असैंबली में बम, दमन करने वाले अधिकारियों का अन्त करने की चेष्टा में. सन् 1875 की तरह फौजी विद्रोह खड़ा करके ब्रिटिश हकूमत का अन्त करने का उद्योग यह सब आपके दल के कार्य थे। परन्तु बाद में कुछ एक साथियों को छोड़कर आपके सब साथी जेल या फांसी के तख्ते पर पहुँच चुके थे। साथियों के जेल चले जाने से श्री आजाद को बहुत दुःख हुआ, बल्कि उनके सोचे गये बहुत से कार्य असफल हो गए। उन्होंने इस पर भी हिम्मत न हारी, बचे हुए कुछ साथियों को लेकर ही वह कई महीने तक लाहौर केस के बन्दियों को छुड़ाने का यत्न करते रहे इसकी तैयारी में भी आपको परिश्रम करना पड़ा। परन्तु आखिर में यह काम भी पूरा न हो सका। इन दिनों आपके जीवित या मृत पकड़ने वालों को सरकार की ओर से इनाम की राशि चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी और वीर भद्र तिवारी की वजह से कानपुर के प्रधान अड्डे को छोड़कर आप प्रयाग चले गये थे क्योंकि उनके दल में काम करने वाला वीरभद्र तिवारी पुलिस से मिले हुए थे, और सभी बातों का भेद पुलिस तक पहुँचा देना इसका मुख्य काम था।

सौंडर्स हत्याकांड में गिरफ्तारी से पहले मेरा छोटा भाई किशोरी लाल रत्न दो सूटकेसों में बम के 50 खोल, दत्त व भगतसिंह के फोटो व नैगिटिव बम बनाने की विधि और उसके नुक्से की डायरी तथा अन्य आग्नेय सामान लाहौर से लाकर गुरुकुल मुलतान ताराकुंड में मेरे पास रख गया था। कुछ,मास के उपरान्त आजाद व दुर्गाभाभी (श्री भगवती चरण की पत्नी) उक्त सामान लेने गुरुकुल मुल्तान में मेरे पास पधारे, क्योंकि सामान जमीन में गाड़ रखा था अतः रात्रि के समय ही निकाला जा सकता था, हम दोनों को उचित निर्देश व आदेश देकर श्री आजाद (उन दिनों उनका हाल का नाम 'पण्डित जी' ही प्रसिद्ध था) चले गये, और दुर्गा भाभी को मेरे पास छोड़ गए। अगले दिन खोदकर सामान निकालकर उसे दो नगों में पैक किया गया। एक बिस्तरे में दूसरा एक बड़े टीन के सूटकेस में। रेल द्वारा दूसरे दिन हम दोनों ने भाई बहन के रूप में मुलतान से लाहौर तक रेल यात्रा की लाहौर स्टेशन तक तो कोई बाधा न पड़ी, परन्तु लाहौर स्टेशन के प्लेटफार्म पर सैकड़ों नहीं हजारों वर्दी व बेवर्दी वाले छोटे बड़े पुलिस के देशी व गोरे अधिकारी सतर्क खड़े थे प्रत्येक यात्री की रवाना तलाशी ली जा रही थी, कहाँ से आए कहाँ जाओगे? क्यों लाहौर में आए? इत्यादि बिस्तार से सी.आई.डी. वाले लिख रहे थे। परन्तु वह आजाद से ट्रेनिंग पाई वीर महिला "दुर्गा भाभी" सर्वथा निर्भीक भारी सूटकेस हाथ में फूल के समान उठाए निश्चिन्तता से गेट की ओर चल पड़ी मैं भी बिस्तरा बगल में दबाए भयभीत कांपते हुए उस

बहादुर बाला के पीछे-पीछे चल पड़ा इतने में ज्यों ही ड्यूटी पर तैनात एक सिपाही ने दुर्गा भाभी का हाथ पकड़ा और डपट कर कहा सूटकेस दिखाओं इमसें क्या है? त्योंकि दुर्गा भाभी निर्भीकता से गरजकर बोली बत्तमीज! एक भद्र महिला को हाथ लगाता है? और उसी समय एका-एक जबरदस्त चाँटा उस सिपाही के गाल पर धर जमाया सिपाही का माथा चकराया आंखों के आगे अंधेरा हो गया।

एक पुलिस इन्स्पैक्टर दूर खड़ा यह सब तमाशा देख रहा था, दौड़ा-दौड़ा आया सिपाही को डांटा और सिपाही के अभद्र व्यवहार के लिए खेद प्रकट किया, और हम दोनों को गेट से बाहर तक छोड़ने स्वयं आया उस समय मेरा हाल न पूछिये जान बची तो लाखों पाये सम्पूर्ण सामान सुरक्षित यथा स्थान पहुँचाकर में मुलतान दूसरे दिन लौट आया।

आजाद के जीवन का अन्तिम दिन 27 फरवरी 1931 ई0 दिन लगभग प्रात: 10 बजे उस दिन इलाहाबाद में ही आजाद अपने साथी सुखदेव राज के साथ कम्पनी बाग में घूम रहे थे। सहसा उनकी नजर बाग के बाहर सड़क पर जाते हुए वीरभद्र तिवारी पर पड़ी परन्तु यह अनुमान लगाकर कि वीरभद्र ने हमें नहीं देखा है, सुखदेव राज के साथ एक पेड़ के नीचे बैठ बातें करने लगे-परन्तु उस देशद्रोही तिवारी ने ही तुरन्त पुलिस में सूचना दी कि आजाद कम्पनी बाग में पेड़ तले बैठे हैं। देखते ही देखते पुलिस ने आजाद को आ घेरा, समय की यथार्थता को देख आजाद ने सुखदेव राज को धकेलकर दूर भाग जाने को कहा अब आजाद अकेले थे सर्वप्रथम खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिडेंट ठाकुर विश्वेश्वर सिंह तथा डालचन्द वहाँ पर आ धमके मिस्टर डालचन्द जो आजाद को पहिचानते थे उन्होंने तुरन्त आजाद को पहिचान लिया और तभी उसकी सूचना पुलिस सुपरिडैंट 'नाट' को पहुँचाई और वे तुरन्त वहाँ पहुँच गये नाट की कार आजाद से कोई 15-20 हाथ की दूरी पर ही रुकी और आते ही नाट ने गोली दागदी उत्तर में आजाद भी गोली चलाने लगे, नाट की गोली आजाद की जांघ पर लगी जांघ की हड्डी चूर-चूर हो गई उधर दूसरी तरफ से एक गोली आजाद की दाई बाहं को चीरती हुई, उनके फेफड़े में जा घुसी परन्तु आजाद ने बांए हाथ से ही नाट की कलाई तोड़ दी दर्द से कराहते हुए नाट के हाथ से पिस्तौल छूट गई और वह मोटर के इंजन को ध्वस्तकर गई। अब लाचार नाट ने दौड़कर एक पेड़ की आड़ ली उधर आजाद ने भी खिसक कर दूसरे पेड़ की आड़ से नाट पर वार करना शुरू किया। दांए-बाएं सामने पीछे सभी तरफ से आजाद पर गोलियों की बौछार सी पड़ रही थी शरीर छलनी हो गया था तथापि आजाद इसकी कुछ भी चिन्ता न कर नाट वाले पेड़ पर ही वार करता रहा इधर दाहिनी ओर की झाड़ी में ही विश्वेश्वर सिंह गोलियां बरसा रहे थे और गालियां बक रहे थे, ज्योंहि बिश्वेश्वर सिंह का सिर झाड़ी से जरा ऊपर निकला त्योंहि ही आजाद की एक ही गोली से उसका गाली देने वाला जबड़ा ही चूर-चूर हो गया और शरीर जमीन पर ढुलक गया, शत्रु भी इस चमत्कार को देखकर वाह-वाह कर उठे यह सी.आई.डी. के आई.जी. का बोल था, बंडर फुल शॉट! और अन्तिम गोली-

आजाद का शरीर छलनी हो चुका था अब उनके पास केवल एक गोली शेष थी- उनकी वीरता देखिये? वीरता की दाद दीजिये, जांघ टूटी हुई है, दाहिनी बांह को फाड़कर गोली निकल गई। फिर भी निशाने बाजी के अद्‌भुत और आश्चर्य जनक प्रदर्शन करता रहा। और साथ ही यह भी गिनता रहा कि कितनी गोलियां खर्च हो चुकी हैं। इब केवल एक गोली शेष है यह क्यों किया? क्योंकि आजाद ने प्रण कर रखा था कि वह बंधन में नही पड़ेगा, क्योंकि वह प्राय: कहा करते थे कि आजाद तो आजाद ही है, और सदा आजाद ही रहेगा। पुलिस की रिपोर्ट है कि आजाद बांया हाथ उठा पिस्तौल कनपटी के पास गई और गोली मस्तक में समा गई, शरीर भूमि पर लेट गया - अब भी पुलिस की हिम्मत उस मृत लाश के पास जाने का साहस न कर सकी, और उसके पैर में एक गोली और दागी गयी, जब पूर्ण विश्वास हो गया कि आजाद का शरीर मृत है, तब पुलिस उसे उठाकर ले गई।

उपसंहार - आजाद की महत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उनके नेतृत्व में क्रान्तिकारी दल सभी दिशाओं में उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा और उनकी मृत्यु के उपरान्त समाप्त भी हो गया।

उत्सुक जनता उनके पार्थिव शरीर का दर्शन भी न कर सकी। अत: जनता ने उस पेड़ पर ही फूल बताशे चढ़ाकर शहीद को श्रद्धांजलि देनी शुरू कर दी परन्तु भारत सरकार एक वीर का सम्मान नहीं कर सकी। आज गोलियों से भूना जाने वाला आजाद नहीं हैं, गोलियों का निशान रखने वाला पेड़ भी नहीं है, परन्तु उस वीर का शौर्य पूर्ण गाथाओं से परिपूर्ण रक्त रंजित इतिहास आज भी चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है कि सन् 1921 में 15 बैंतों की मार खाने वाला बालक 'आजाद' निरन्तर दस वर्ष तक आजादी के लिए लड़कर अन्त में भी 'आजाद' होकर ही मरा। उसके जीतेजी ब्रिटिश सरकार उसकी छाया तक न पकड़ सकी।

आजाद की महानता -

क्रान्ति आन्दोलन ने एक से एक बढ़कर महान् व्यक्ति उत्पन्न किये हैं -

1. वीर सावरकर जैसा वक्ता 2. योगिराज अरविन्द जैसा मनीषी 3. हरदयाल जैसा प्रचारक 4. सरकार भगतसिंह जैसा बलिदानी 5. सूर्य सेन जैसा संगठन कर्ता 6. भगवती चरण जैसा त्यागी 7. मानवेन्द्र जैसा विद्वान् परन्तु आजाद की महानता तो अद्‌भुत थी वे विद्वान् न थे किन्तु विद्वान् उनकी सूझ-बूझ के कायल थे। वे दार्शनिक नहीं थे, परन्तु हमारी क्रान्ति की विचारधारा क्या हो, इसे आजाद से बढ़कर कोई भी समझ नहीं पाया था। वे प्रचारक नहीं थे फिर भी गांधी जी के प्रचार के बावजूद "तरुण" आजाद के ही पीछे थे। वे संगठन कर्ता न थे परन्तु उनके आधीन क्रान्तिकारी दल अपने चरम विस्तार पर पहुँचा था और आजाद के त्याग की बात तो अब सर्व विदित ही है। रही वीरत्व और बलिदान की भावना उसके सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त

है कि आजाद युग प्रमुख क्रान्तिकारी किसी भीकुछ एक साहसिक कार्यों में सम्मिलित दिखाई देते हैं परन्तु क्रान्तिकारी दल की कौन सी दुर्घटना ऐसी है, जिसमें आजाद का अदम्य व्यक्तित्व नहीं चमक रहा है।

यथा -

1. काकोरी में ट्रेन लूटी गयी तिजोरी को तोड़ने में पराक्रम इसी वीर ने दिखाया था।
2. योगेशचटर्जी को छुड़ाने का प्रयास हुआ तो उसका नेतृत्व भी आजाद ने ही किया।
3. सरदार भगतसिंह और राजगुरु सौंडर्स का वध किया तो जब चननसिंह, भगतसिंह को दबोच ही लेने वाला था, उस दानवाकार को पछाड़ कर भगतसिंह आदि को ''आजाद'' बचाकर ले आये थे।
4. दत्त और भगतसिंह ने असैम्बली में बम फैंककर गिरफ्तार होना ही उचित समझा किन्तु उन्हें अपने साथ सुरक्षित निकाल लाने का बीड़ा आजाद ही उठाने को उद्यत था।
5. पुलिस की छावनियों के बीच घुस जेल से लाहौर षड्यंत्र के बन्दियों को लड़ाकर निकाल लाने की योजना चली तो उन आक्रमणकारियों के परिचालक आजाद ही थे।
6. भाई भगवती चरण बम विस्फोट से शहीद हो गये, तब भी पुण्य सलिला नदी के तट पर उन्हें समाधि भी आजाद ने ही अपने हाथों से दी थी।
7. पुलिस और सी.आई.डी. से भरे उस लाहौर के बहावलपुर रोड़ पर स्थित बंगले में दो-दो बम फूटे उस समय साथियों को ही नहीं साज सामान को भी सुरक्षित निकाल लाने वाले भी आजाद ही थे।
8. दिल्ली के चांदनी चौक में गाडोरिया स्टोर से सटी हुयी कच्छी की दुकान से रुपया छीन लिया गया यह कठिन कार्य भी आजाद के नेतृत्व में हुए।
9. धन्य है शालिग्राम को जिसने अमानवीय शौर्य और कष्ट सहन करने का उदाहरण पेश किया परन्तु पुलिस के दल और सहायक सेना के हैड क्वाटर के सामने सबकी आंखों में धूल झोकता हुआ साथियों समेत सबको आजाद ही निकाल लाया था।
10. जगह जगह बम फैक्ट्रियाँ और बमों के खोल बनाने वाले कारखाने चल रहे थे, शत्रु के जासूस भी इस दक्षता को देखकर चकित थे। इस के पीछे उस जादूगर आजाद का ही हाथ था।

और अन्त में उस अमर हुतात्मा चन्द्रशेखर ''आजाद'' को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये मैं लेखनी को विराम देता हुआ अत्यन्त प्रसन्नता कर रहा हूँ,

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले इत्यादि...।

महाभारत में पुरोहित वर्ग (ब्राह्मणों) का महत्व

महावीर 'नीर' विद्यालंकार
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

वेदों से लेकर आज तक का जितना भी साहित्य है, सबमें ब्रह्मणत्व की प्रतिष्ठा प्रतिपादित है। हमारा आज का पारिवारिक व सामाजिक ढाँचा भी पुरोहित या ब्राह्मण को नकार नहीं सकता, क्योंकि परिवार या समाज के अनेक ऐसे धार्मिक या मांगलिक क्रिया-कलाप हैं जो इनके वर्चस्व के बिना पूर्ण नहीं होते। आज हमारे सामाजिक विकृत ढाँचे में जो भी यज्ञ याग के कार्य वैदिक पद्धति अथवा पौराणिक पद्धति से होते हैं, उनका यत् किञ्चिद् भी रूप दिखाई देता है, वह इस ब्राह्मण वर्ग के कारण ही है।

रामायण और महाभारत हमारे दो ऐसे महानतम ग्रन्थ है, जिनमें कुल पुरोहितों या ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा अबाधित रूप से प्रतिपादित है। यद्यपि महाभारत दो परिवारों की युद्धगाथा है, जिसमें दूर-दूर देशस्थ राजाओं ने जो कौरवों या पाण्डवों से स्नेह या शत्रुता रखते थे भाग लिया। केवल दो ही योद्धा ऐसे थे जो विशेष कारणों से किसी ओर से नहीं लड़े वे थे रुक्मी और बलराम जी। यह युद्ध अठारह दिन चला और इसमें ग्यारह अक्षौहिणी सेना कौरवों की ओर थी तथा सात अक्षौहिणी सेना पाण्ड़वों की ओर थी। हिरण्यवती नदी के किनारे कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने स्वत्व को पाने के लिए पाण्डव सेना पूर्वाभिमुख और कौरव सेना पश्चिमाभिमुख होकर लड़ी। जैसे रामायण सूर्यवंशी राजाओं की जय गाथा है, वैसे ही महाभारत भी चन्द्रवंशी राजाओं की युद्ध कथा है। जिसे आयु, नहुष, सत्यवादी महाराजा ययाति, पुरु, दुष्यन्त, भरत, कुरु, विख्यातकीर्ति प्रतीप ओर प्रतीप के पुत्र शान्तनु और शान्तनु के पुत्र बाल ब्रह्मचारी देवव्रत भीष्म जैसे वीर विद्वान् प्रजावत्सल राजाओं ने अलंकृत कियाऔर जिसे दुर्योधन की लोभ व अहंकारी तथा धृतराष्ट्र की द्वेषपूर्ण बुद्धि ने विनाश के कगार पर लाकर खड़ा किया। किन्तु ब्राह्मणों या पुरोहितों की जागरूक बुद्धि ने इन राजाओं को सदा धर्म और न्याय तथा प्रजापालनार्थ उत्तम उपदेशों से अलंकृत किया। ऐसे भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रतिनिधि, धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, शूरता-वीरता तथा मानव धर्म के प्रेरक महानतम ग्रन्थ महाभारत से पुरोहित या ब्राह्मण वर्ग के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

यदि हम वैदिक साहित्य का अवलकन करें तो वहाँ हमें ब्राह्मण वर्ग या पुरोहित वर्ग की महिमा में अनेक मंत्र दृष्टिगोचर होते हैं। वेद पुरोहितों की महिमा का गान निम्न रूप में करता है-

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु वसवोधिया।
विश्वेदेवा पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा॥

ऋ० ६/६७/२७

त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे॥
त्वं पोता विश्ववारा प्रचेतायक्षिवेषि च वार्यम्॥

ऋ० ७/१६/५

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजमस्तु विष्णुर्येषां पुरोहितः॥

अथर्व० ३/१९

एषामहमायुधा संख्यामेषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवे इषां चितं
विश्वेऽवन्तुदेवाः। सत्यासन्तु यजमानस्य कामाः॥

ऋ० १०/११५/८

अब एक वेद मंत्र के अर्थ पर दृष्टि डालिए - पुरोहित कहता है कि मेरा यह वेद ज्ञान तीक्ष्ण किया हुआ है अर्थात् मेरा ब्राह्मणत्व कार्य करने में समर्थ है, मेरा वीर्य, पराक्रम और बल भी तीक्ष्ण है और जिनका मैं पुरोहित हूँ वे क्षत्रिय लोग भी तीक्ष्ण हैं। वे क्षत्रिय जीर्ण न होने वाले हो जावें, विजय दिलाने वाला जिनका मैं पुरोहित हूँ। (अथर्व0 काण्ड3, सूक्त19, मंत्र1)। अथर्ववेद के 5/10 ब्रह्मगवी सूक्त में तो सच्चे ब्राह्मण की वाणी के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। वहाँ कहा है कि जो राजा सच्चे ब्राह्मण की वाणी का निरादर करता है, ब्राह्मण को कष्ट देता है उस राजा की सैकड़ों प्रकार से दुर्गति होती है और जो उसका आदर करता है, उसके बताये श्रेष्ठ नीति परक पथ पर चलता है वह राजाओं का भी राजा बन जाता है। पुराणों का अध्ययन करने पर भी ब्राह्मणों या पुरोहितों की प्रधानता स्पष्ट झलकती है। श्रीमद् भागवत पुराण के 2/10 में राजा रहूगण जड़भरत से कहते हैं, हे ब्राह्मण ! मैं किसी से नहीं डरता किन्तु ब्रह्मकुल के अपमान से मुझे बहुत डर लगता है। ज्ञात होने पर रहूगण उस जड़ भरत के पैरों पर पड़ता है और क्षमा याचना करता है। वस्तुतः सभी शास्त्रों में ब्राह्मण को उच्च दर्जा दिया गया हैं।

इस प्रकार महाभारत में पुरोहित की महिमा बताते हुए गंधर्व अर्जुन से कहता है-

वेदे षडङ्गे निरताः शुचयः सत्यवादिनः।
धर्मात्मानः कृतात्मानः स्युर्नृपाणां पुरोहिताः॥

आदिपर्व० १६९/७५

जयश्चनियतो राज्ञः स्वर्गश्च तदनन्तरम्।
यस्य स्वादधर्मवद् वाग्मीपुरोधाः शीलवान् शुचिः॥

१६९/७६

लाभ लब्धुमलब्धं वा लब्धं वा परिरक्षितुम्।
पुरोहितं प्रकुर्वीत राजा गुणसमन्वितम्।।

१६९/७७

अर्थात् वेद वेदांग जाने वाले, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारी, अन्दर-बाहर से पवित्र, व्याख्यान देने में कुशल ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होने चाहिए। इस प्रकार अनेक गुणों से युक्त राजा पुरोहित बनायें। राजा को सदा पुरोहित की सम्मति से व्यवहार करना योग्य है।

न हि केवलशौर्येण तापत्याभिजनेन च।
जयेद् ब्राह्मणः कश्चिद् भूमिं भूमिपतिः क्वचित्।।

१६९/७९

ब्राह्मणः प्रमुखं राज्यं शक्यं पालयितुं चिरम्।। १६९/८०

हे पाण्डुपुत्र! कोई राजा केवल शूरता तथा मनुष्यों के बल से पृथ्वी को नहीं जीत सकता, जब तक ब्राह्मण बल साथ न हो। ब्राह्मणों की सहायता से राज्य चिरकाल तक बढ़ता रहता है। गन्धर्व का वचन सुन पाण्डुपुत्र ने ऐसे पुरोहित का पता पूछा- तब गन्धर्व ने गंगातीर पर उत्कोचक नाम के स्थान पर देवल ऋषि के बड़े भाई धौम्य ऋषि का पता बताया। वहाँ से युधिष्ठिर उस सर्ववेदवेत्ता धौम्य के पास गए और विधिपूर्वक धौम्य ऋषि को पुरोहित रूप से वरा तथा पुरोहित ने भी पाण्डवों को यजमान या शिष्यरूप से स्वीकारा। तब से पुरोहित ने पाण्डुपुत्रों को यज्ञादि कर्म और स्वधर्म से स्वराज्य प्राप्त करने का साधन बताना आरम्भ किया और पाण्डव गुरु की आज्ञा में स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ करने लगे। (आदि पर्व 182/1,2,5,6,7)

तदनन्तर धौम्य पुरोहित के साथ पाण्डव तथा कुन्ती पांचाल की राजधानी में द्रौपदी का स्वयम्बर देखने गये। वहाँ भी सबसे पहले द्रुपदराज के पुरोहित ने यज्ञवेदि में हवन, स्वस्तिवाचन और शान्तिपाठ किया फिर मंगल बाजे बजे। जब अर्जुन ने लक्ष्य भेद कर द्रोपदी का स्वयम्बर जीता, तब द्रुपद ने अपने पुरोहित का कुम्भकार के घर यह जानने के लिए भेजा कि कौन द्रौपदी का भर्त्ता बना है। इसके बाद पुष्य नक्षत्र में वेद विधि से पाण्डवपुरोहित ऋषि धौम्य ने अर्जुन से द्रौपदी का विवाह कराया। राजसूय-यज्ञ-विचार के समय अन्य विद्वानों की राय के साथ धौम्य पुरोहित की राय भी मान्य हुई। यज्ञ में धौम्य पुरोहित होता के रूप में विराजमान हुए।

जब द्यूत (जूअें) में हारने के पश्चात् पाण्डवों को बारह वर्ष का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास मिलता हैं तब पाण्डव धौम्य पुरोहित को आगे रखकर वन-यात्रा आरम्भ करते हैं। तब धौम्य किस रूप में जाते हैं, विदुर की वाणी में पढ़िए-

धौम्यो रौद्राणि सामानि याम्यानि च विशाम्यते।
गायन् गच्छति मार्गेषु कुशानादाय पाणिना॥

सभा पर्व ८०/८

क्यों कुश हाथ में ले तथा रौद्ररूप में सामगान करते जा रहे है, यह भी देखें-

कृत्वा तु नैर्ऋतान् दर्भान् धीरो धौम्यः पुरोहितः।
सामानि गायन् याम्यानि पुरतो याति भारत॥

८०/२२

वन में भी यज्ञादि क्रियाओं का भार धौम्य पुरोहित पर ही रहता है। धौम्य वन में रहते हुए पाण्डवों को अनेक प्रकार की आचार, धर्म और नीति से सम्बन्धित कथायें और तीर्थस्थानों के वर्णन भी सुनाते हैं। यथा-

बाह्मणनुमतान् पुण्यानाश्रमान् भरतर्षभ।
दिशस्तीर्थानि शैलाश्च शृणु मे वदतोऽनघ।

वन ८७/२

पूर्वं प्राचीं दिशं राजन् राजर्षिगणसेविताम्।
रम्यां ते कथयिष्यामि युधिष्ठिर यथास्मृति॥

वन ८७/५

दक्षिणस्यां तु पुण्यानि शृणु तीर्थानि भारत।
विस्तरेण यथा बुद्धि कीर्त्यमानानि तानि वै॥

वन ८८/१

आनर्तेषु प्रतीच्यां वै कीर्तयिष्यामि ते दिशि।
यानि तत्र पवित्राणि पुण्यान्यातानि च॥

वन ८९/१

उदीच्यां राजशार्दूलदिशि पुण्यानि यानि वै।
तानिते कीर्तियिष्यामि पुण्यान्यायतनानि च॥

वन ९०/१

जिस समय पाण्डव विराट नगरी में अज्ञातवास के लिए जाते हैं, तब वे धौम्य पुरोहित से सलाह करते हैं तथा धौम्य आदि को राजा द्रुपद के पास भेज देते हैं तथा अपने यज्ञादि कर्मों का

अनुष्ठान करने को कहते हैं। धौम्य भी उनके अज्ञातवास को गुप्त रखते हैं। यहीं धौम्य पुरोहित पांडवों को उपदेश भी करते हैं। वह उपदेश या मन्त्रणा विराट पर्व में लगभग छयालीस श्लोकों में बद्ध है, जिसका सार संक्षेप में निम्न है-

अमानितैर्मानितैर्वा अज्ञातैः परिवत्सरम्।
ततश्चतुर्दशे वर्षे चरिष्यथ यथा सुखम्।। ४/१२
यो न यानं न पर्यङ्कं न पीठं गजं रथम्।
आरोहेत् सम्मतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत्।। ४/१६
नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कदाचन।
अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये।।१८
नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा सेवेत पण्डितः।
अप्रमत्तश्च सततं हितं कुर्यात् प्रियं च यत्।।२६।।
राजानं राजपुत्रं वा संवार्णयति यः सदा।
अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठते प्रियः।।३९
समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः संनिहितो वसेत्।
न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत्।।४८

अर्थात् हे कुन्तीपुत्र! अज्ञातवास में तुम्हें किस प्रकार रहना है यह बताता हूँ- तुम्हें और अर्जुन को (कृष्णायाः रक्षा विधातव्या) द्रौपदी की रक्षा सब प्रकार से करनी चाहिए। प्रमाद और क्रोध आदि को छोड़ कर जिस कार्य में स्वामी नियुक्त करें उसको करें। राजा जो वाहन, वस्त्र, अलंकार आदि देता है उसे ही धारण करें, इसप्रकार करने से राजा का प्रिय होता है। उस आसन पर बैठे जिस पर दूसरा न हो। कभी राजकर्मचारियों पर विश्वास न करे। जो राजा के रथ पर, पलंग पर, आसन.पर व रथ आदि पर नहीं बैठता वह राज दरबार में बैठता है। न पूछने वाले राजा को कभी शिष्य न बनावे चुपचाप होकर रहे। किन्तु समय पर भली प्रकार आदर की बात कहे। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह स्त्रियों में, अन्तःपुर के नौकर चाकरों में, द्वेष करने वाले और अहित करने वालों में मित्रता न करे। मैं इसका प्यारा नहीं हूँ, यह समझकर बुद्धिमान् सेवा करे किन्तु सावधान होकर सदा राजा का प्रिय और हित करता रहे। राजा का वह प्रिय होता हैं और भोग भोगता है जो यह समझता है कि वह शूर नहीं पंडित नहीं। न होठों से, न भुजाओं से और न पैरों से किसी प्रकार की चेष्टा करे, किन्तु जैसे वायु धीरे-धीरे चलती है ऐसी ही वाणी का धीरे-धीरे प्रयोग करे। जो राजा और राजपुत्र की सदा प्रशंसा करता है वह बुद्धिमान मन्त्री राजा का प्रिय होकर सदा सुखपूर्वक निवास करता है। गुप्त रूप से रहने वाले राजा को चाहिए कि वह राज दरबार में रहते हुए राजा जैसा वेश धारण न करे, न ऊंचे तथा समान आसन पर बैठे, कदम कदम

पर सलाह न दे, इस प्रकार करने से वह राजा का प्रिय हो जाता है।'' ''धौम्य से यह समयोचित मन्त्रणा प्राप्त कर विविध नाम और कार्य-विचार कर पांडव और द्रौपदी भिन्न-भिन्न दिशाओं से विराट नगरी में गुप्त निवासार्थ प्रविष्ट हुए और-

धौम्य पुरोहितोऽहमस्माकं अग्निहोत्राणि रक्षतु।
सूद पौरोगवैः सार्द्धं द्रुपदस्य निवेशने।। विराट।।४/२

इसी प्रकार जयद्रथ द्वारा द्रौपदीहरण के प्रसंग में जयद्रथ आश्रम-द्वार पर खड़ी हुई द्रौपदी को देखकर अपने अनुचरों के साथ जाकर अभद्र व्यवहार करता है और द्रौपदी को बलात् रथ में डालकर चलता है, यहाँ धौम्य पुरोहित जो वहाँ है, वे जयद्रथ को ललकारते हैं- यथा-

नेयं शक्या त्वया नेतुमविजित्य महारथान्।
धर्मं क्षत्रस्य पौराणमवेक्षस्व जयद्रथः।।

वनपर्व २६८/२६

क्षुद्रं कृत्वा फलं पापं त्वं प्राप्स्यसि न संशयः।
आसाद्य पाण्डवान् वीरान् धर्मराजपुरोगमान्।।

वन पर्व २६८/२७

इत्युक्त्वा ह्रियमाणं तां राजपुत्रीं यशस्विनीम्।
अन्वगच्छत् तदा धौम्यः पदाति गणमध्यगेः।।

२६८/२८

यही नहीं जब कृष्ण वन में अर्जुन के अस्त्रप्राप्ति उपरान्त काम्यक वन में आते हैं तब वे झटपट रथ से उतर कर सबसे पूर्व धौम्य पुरोहित तदनन्तर युधिष्ठिर को प्रणाम करते हैं। पुरोहित की उस समय कितनी मान्यता थी, इसका एक उदाहरण यह भी है कि जब विराट राज्य में महाराज द्रुपद की अध्यक्षता में यह तय होता है कि एक दूत धृतराष्ट्र के पास भेजना चाहिए जो पाण्डवों के हित और शान्ति के लिए बात कहे तब द्रुपद के पुरोहित को दूत बनाकर हस्तिनापुर भेजा गया। इसी प्रकार श्री कृष्ण जी भी जब दौत्य कर्म के लिए हस्तिनापुर जाने को तैयार हुए तब, स्नान, संध्या, अग्निहोत्र, गायत्री जाप कर और ब्राह्मणों के वैदिक आशीर्वादों को लेकर मित्रमंडल से अनुमोदित हो शान्ति स्थापनार्थ हस्तिनापुर की ओर चले।

कर्ण को कूटनीति के द्वारा अपनी ओर मिलाने के लिए जब कृष्ण कर्ण से यह कहते हैं कि तुम कुन्तीपुत्र हो, पाँडव तुम्हारी सेवा कर प्रसन्न होंगे तब वहीं वह यह भी कहते हैं कि धौम्य तुम्हारे लिए यज्ञाग्नि जलायेंगे-

अग्नि जुहोति वै धौम्यः संशितात्मा द्विजोत्तमः।
अद्य त्वामभिषिञ्चिन्तुचातुर्वैद्याः द्विजातयः॥ उद्यो.पर्व. १४०/१६

आगे युद्धप्रसंग में भी जब दुर्योधन भीष्म को सेनापति बनाता है तब श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया और दुर्योधन ने गौवों व स्वर्णमुद्राओं का दान दिया-

ततः सेनापतिं कृत्वा भीष्मं परबलार्दनम्।
वाचयित्वा द्विजश्रेष्ठान् गोभिर्निष्कैश्च भूरिशाः॥ १५६/३२

कौरव सेना के प्रस्थान के पूर्व भी ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया-

आप्लाव्य शुचयः सर्वे स्त्रग्विरणः शुक्लवाससः।
गृहीत शस्त्रा ध्वजिनः स्वस्तिवाचा हुताग्नयः॥ १९५/३२

इसी प्रकार पाँडव पक्ष की सेना के युद्ध-प्रयाण के समय धौम्य पाण्डवों को विजयी आशीर्वाद प्रदान करते हैं-

पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम्।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधिभिः समन्ततः स्वस्त्यनं ब्रुवन्तः॥ पर्व २२/७

धर्म और न्याय के लिए युद्ध में जाने वाले वीरो! तुम्हारे रथ-रथांग सुद्दढ़ और काम करने वाले हों तुम्हारी सेना धर्मवीर और विजयिनी हो। परमेश्वर कृपा करें और बल दें ताकि आपकी भुजाएं न थकने वाली, शत्रुदलनाशक और सुख देने वाली हों! वीरों, सदा सत्य पर विश्वास रखो। ईश्वर करें हम शीघ्र विजय प्राप्त कर सत्य की पताका फहरायें।

युद्ध के अनन्तर धृतराष्ट्र के कहने तथा अपने कर्त्तव्य से युधिष्ठिर ने सुधर्मा धौम्य पुरोहित, संजय, महाबुद्धिमान् विदुर तथा युयुत्सु को आज्ञा दी की सब रणमेध में आहुति देने वाले नरवीरों के देहों को वेद-विधि से पूर्ण सामग्री से दाहू संस्कार करो। तब सबने उनका दाह संस्कार विधिवत् किया।

तदनन्तर जब राजधानी में विजयी युधिष्ठिर प्रवेश करते है तब राजभवन में उनका ब्राह्मणों और वृद्ध पुरोहितों द्वारा स्वागत व पूजा की जाती है। असाधारण स्वागत के पीछे मुख्य-मुख्य राजाओं तथा देश के प्रतिनिधियों का एक भारी दरबार किया गया। तथा धौम्य पुरोहित ने अग्निहोत्र कराया फिर पूर्वाभिमुख बनाए गए एक श्रेष्ठ आसन पर धर्मराज विराजमान हुए। युधिष्ठिर ने राज्यभार सम्भालते हुए सबको विविध काम सौंपे तो वहाँ पुरोहित धौम्य को अग्निहोत्र, वेदपाठ, धर्मोपदेश, यज्ञादि व ब्राह्मणपूजन का कार्य दिया तथा विश्राम हेतु भवन दिए।

यही नहीं उस समय पुरोहित को राजा इतना महत्त्व देते थे कि समस्त राजकाज का भार उन्हें सौंप कर वन की राह लेते थे। इसका एक उदाहरण देखिए-वर्षों तक राज्य करते हुए एक दिन माता कुन्ती से वन में भेंट करने की तीव्र इच्छा से प्रेरित हो राजकाज का समस्त भार धौम्य पुरोहित और भाई युयुत्सु को सौंपकर-युधिष्ठर सपरिवार गंगातट पर शतयूप नामक ऋषि के आश्रम में जहाँ कुन्ती, धृतराष्ट्र व गांधारी आदि वनी हो ठहरे थे वहाँ जाकर कुछ दिन तक वनवासी व्रत से रहे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पाण्डवों ने जिस उद्देश्य से पुरोहित का वरण किया था, वह मनोकामना उनकी पूर्ण हुई। यथा-

पुरोहितमते तिष्ठेद् य इच्छेद् भूतिमात्मनः।
प्राप्त वसुमती सर्वां सर्वशः सागराम्बराम्॥

आदि पर्व १६९/७८

वस्तुतः महाभारत काल में पुरोहित या ब्राह्मण वर्ग की अत्यधिक मान्यता थी। इन्हीं से हमारे परिवार व समाज सदा मर्यादित थे। इनके बिना परिवार का, समाज का या राष्ट्र का कोई भी कार्य अपूर्ण ही है। इन मर्यादाओं का निर्वाह आज भी तीर्थ पुरोहितों या ब्राह्मण वर्ग के सामिप्य मे देखा जा सकता है। जैसे 'अग्नि' स्तुत्य है, पूज्य है, ऐसे ही सच्चा ब्राह्मण या पुरोहित भी पूजनीय हैं, अर्चनीय है। इसीलिए कृष्ण जैसे युग पुरुष भी महाभारत के वन पर्व में जहाँ अन्य पाण्डवों का अपने ढंग से अभिवादन करते हैं, वहाँ धौम्य पुरोहित को श्रद्धा से प्रणाम करते हैं। यह थी हमारे समाज में पुरोहितों के प्रति परम आदर की भावना। वास्तव में जो सच्चा ब्राह्मण होता है वह अपने सब कार्य ब्रह्मार्पित होकर करता है, राष्ट्र के लिए करता है। राष्ट्र नेताओं आदि को निःस्वार्थ कार्य करने की प्रेरणा देता है। वह राज्य से बाहर कुटिया बनाकर भी समाज या राष्ट्र का संचालन करता है।

जो ब्राह्मण ब्रह्मशक्ति के अपार बल से युक्त हो कर जो राष्ट्र को, समाज को या परिवार को ऊँचे शिखर पर पहुँचाना चाहता है उसके संकल्प को कौन मिटा सकता हैं ब्रह्म के सन्निकट होने से ब्राह्मण भी उसका प्रतिनिधि ही समझो। इसीलिए तो वह ज्येष्ठ है। यदि ब्राह्मण अपने कर्तव्य-कर्मों को भूल जाएं तो फिर ज्येष्ठ कैसे रह पायेगा? प्रभु ज़्येष्ठ इसलिए तो हैं कि उनके कर्त्तव्य-कर्मों में कहीं विक्षेप नहीं पड़ता। समाज में भी ब्राह्मण को इसीलिए तो (ज्येष्ठ) ऊँचा स्थान प्राप्त है। वेद भी कहता है- **''ब्राह्मणोऽस्य मुखं आसीत्''** अर्थात् समाज का मुख ब्राह्मण है। मुँह की प्रतिष्ठा सर्वविदित है। वेद का राष्ट्रगीत भी कहता है- **''आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्''** हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी, तेजस्वी, आचारवान, सर्वविद्याविशारद् ब्राह्मण पैदा हों। इसीलिए परिवार, समाज और राष्ट्र सभी का ढाँचा श्रेष्ठ पुरोहित (ब्राह्मण) पर ही टिका है। पुरोहित

श्रेष्ठ है, दिव्य है। पुरोहित का दिव्य-बल उसका आचार विचार है, जिससे समाज पर उसका विलक्षण प्रभाव पड़ता है।

जिस प्रकार 'अग्नि' में गुण होते है, उसी प्रकार उन्हीं गुर्णों का प्राधान्य पुरोहित या ब्राह्मण में बताया गया है। अग्नि प्रकाशमान है, प्रकाशित करती है- वैसे ही पुरोहित दिव्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होकर हमारे परिवार, समाज राष्ट्र को प्रकाशित करता है। जैसे अग्नि घृत एवं अन्य पौष्टिक सामग्रियों के द्वारा आहूत की जाती है, वैसे ही पुरोहित भी दान-दक्षिणा आदि के द्वारा संस्कृत किया जाता है। अग्नि ज्योतिस्वरूप है, मार्ग दिखाती है इसी प्रकार पुरोहित भी सत्पथ दिखाता है- **''अग्ने नय सुपथा राये''**। अग्नि के बिना यज्ञ नहीं, ऐसे ही पुरोहित के बिना यह जीवनयज्ञ नहीं। जिस प्रकार यज्ञाग्नि दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुखों का संहार करती है उसी प्रकार पुरोहित भी अपने परमोत्तम गुणों से, अपनी ओजस्वी वाणी और जीवनादर्श से परिवार, समाज व राष्ट्र के भीतर व्याप्त दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और दुःखों को परिशान्त करता है। जो इस परम तपस्वी, आदरणीय ब्राह्मण वर्ग के उत्तम बताये मार्ग पर चलता है, वह वरदान प्राप्त करता है और जो उसके उत्तम बताये मार्ग को छोड़ कुमार्ग पर चलता है वह अभिशप्त हो जाता है। यही ब्राह्मण का वरदान है, यही शाप है।

वास्तव में जैसे अग्नि और वायु का साथ है। उसी प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रिय का साथ है। जिस शरीर में अग्नि नहीं, वायु क्या कर लेगी। अग्नि के बिना जैसे शरीर ठण्डा हो जाता है ऐसे ही ब्रह्मवर्चस्वी, तेजस्वी ब्राह्मणों के बिना राष्ट्र ठण्डा हो जाता है। पुरोहित या ब्राह्मण राष्ट्र की अग्नि है। वें पुरोहित ही इसलिए हैं कि पहले ही हितकारी बात को बताते हैं। मानव को मानव-धर्म का पाठ पढ़ा आगे ले जाते हैं।

वास्तव में जिस परिवार या समाज तथा राष्ट्र में सच्चे ब्राह्मण या पुरोहित नहीं होंगे व धीरें-धीरे अधोगति को प्राप्त होता है। वहाँ धर्म और कर्म का ह्रास होता जाता हैं इसीलिए ब्रह्म-बल और क्षत्र-बल पर ही राष्ट्र टिके होते हैं। यह वर्ग ही राष्ट्र को अण्ड-बण्ड में न फंसाकर आचारवान् और सुदृढ़ बनाता हैं राष्ट्र को सुराष्ट्र बनाता है। स्वराज्य को सुराज्य बनाता है, और राजा को सुराजा बनाता है। अतः जिस राष्ट्र में सच्चे ब्राह्मण पुरोधा (पुरोहित) जागते रहेंगे तो वहाँ कोई भी सत्यवाणी का पराभव नहीं कर सकेगा, तिरस्कार नहीं कर सकेगा। कहा भी है-

''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।''

रजि0 पंजीकरण सं0 : एल - 1277

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

जून - अक्टूबर
2006

वेद और वाल्मीकि रामायण

सम्पादक

डॉ. महावीर
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
अध्यक्ष, प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डल	**श्री सुदर्शन शर्मा** कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार **पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा** परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार **प्रो. स्वतन्त्र कुमार** कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार **आचार्य रामनाथ जी** भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
निदेशक	**प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री** आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
सम्पादक एवं संयोजक	**डॉ. महावीर** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
व्यवसाय-प्रबन्धक	**डॉ. जगदीश विद्यालंकार** पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रकाशक	**प्रो. आर. डी. शर्मा** कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वित्त प्रबंधक	**श्री एन. के. ग्रोवर** वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार। फोन : 01334-245975

विषयानुक्रमणिका

1. सम्पाकीय — प्रो0 महावीर — i
2. वेदमञ्जरी — आचार्य रामनाथवेदालंकार — iv
3. रामायणे औपनिषद्तत्त्वविमर्शः — डॉ0 उमा रानी त्रिपाठी — 1
4. वाल्मीकिरामायणे वैदिकी संस्कृतिः — डॉ0 जयदत्त उप्रेती — 9
5. रामायणे वृष्टिनिबन्धनं प्रकृतिचित्रणम् — डॉ0 भारतेन्दु पाण्डेयः — 22
6. सीतापति राम — डॉ0 बीना अग्रवाल — 29
7. रामायणोक्त ऋषिसंस्कृति — डॉ0 वीरेन्द्र कुमार अलंकार — 33
8. रामायण में चित्रित दाम्पत्य मर्यादा (वैदिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में) — डॉ0 सविता भट्ट — 41
9. वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना — डॉ0 भारतेन्दु द्विवेदी — 51
10. वाल्मीकि रामायण में वर्णित वास्तु विज्ञान — डॉ0 मंजु नारंग — 64
11. वाल्मीकि रामायणे प्रकृति चित्रणम् — डॉ0 श्रीमती पुष्पा यादव — 74
12. वाल्मीकि रामायण में प्रकृति चित्रण — डॉ0 अर्चना श्रीवास्तव — 84
13. वाल्मीकि रामायण में वैदिक नारी — डॉ0 सुनीता जायसवाल — 89
14. वाल्मीकि रामायण में पर्यावरणीय चेतनाः वैज्ञानिक दृष्टि — डॉ0 नन्दन भार्गव — 94
15. वाल्मीकि रामायण में वर्णित यज्ञ — डॉ0 डोली जैन — 98
16. रामायण में ध्वनि-तत्त्व — डॉ0 अर्चना कुमारी दुबे — 111
17. वाल्मीकि रामायण में निहित कतिपय वैदिक तत्व — डॉ0 रेखा शुक्ला — 121
18. वाल्मीकि-रामायणे वेदानां प्रभावः — डॉ0 सुभाष वेदालंकार — 129
19. वाल्मीकिरामायणे वैदिककर्मकाण्डः — डॉ0 भगवत शरण शुक्ल — 144
20. वाल्मीकिरामायणे प्रकृतिचित्रणम् — डॉ0 चाँद कौर मान — 156
21. वाल्मीकि रामायण में वर्णित औषधि और वनस्पतियाँ — डॉ0 नन्दिता सिंघवी — 162

सम्पादकीय

आदि कवि वाल्मीकि और महर्षि वेदव्यास आर्यावर्त्त के परम पवित्र नाम है। आदिकवि की अमर कृति रामायण एवं महर्षि वेदव्यास विरचित महाभारत में इस देश की समग्र संस्कृति, समस्त जीवन मूल्य, सारे वैदिक आदर्श एवं उदात्त परम्पराएं प्रतिबिम्बित हैं। रामायण और महाभारत में प्रवाहित होने वाली धर्म एवं संस्कृति की पावन काव्यगंगा मानव मात्र को पवित्र करती है। इन दोनों स्वनामधन्य महाकवियों ने आदिकाव्य रामायण एवं महाभारत में विश्ववन्द्य भगवान् श्रीराम् एवं भगवान श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्र का चारूचित्रण करके संसार को जीवन का श्रेष्ठतम मार्ग दिखाया है।

आदिकवि वाल्मीकि से प्रेरणा पाकर केवल संस्कृत भाषा में ही नहीं अपितु राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं अन्यान्य भारतीय भाषाओं में अनेक उत्तमोत्तम नाटकों एवं महाकाव्यों का निर्माण हुआ है। इन समस्त कालजयी अमर रचनाओं का केन्द्र बिन्दु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का आदर्श एवं अनुकरणीय जीवन है। प्रत्येक आर्य, हिन्दू अथवा भारतीय जब आदर्श पिता की परिकल्पना करता है, तो उसके सामने चरित्र उभरता है श्रीराम का, जब वह आदर्श पुत्र के सम्बन्ध में चिन्तन करता है तो सहसा ही स्मरण हो आता है अपने पिता की आज्ञा पालन करने हेतु अयोध्या के राजसिंहासन को प्रसन्नता पूर्वक त्यागकर चौदह वर्ष के लिए वनवास की राह पकड़ने वाले श्रीराम का, जब आदर्श राजा और उत्तम राज्य का विचार करते है तो, राजा श्रीराम और रामराज्य का चित्र आंखों के सामने उभर आता है क्या श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से बढ़कर संसार के इतिहास में आदर्श भाईयों का स्वरूप अन्यत्र दृष्टिगोचर हो सकता हैं? आदर्श पत्नी के रूप में वैदेही सीता से उत्तम चरित्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

महाकवि वाल्मीकि ने नारद से पूंछा-'' चारित्रेण च को युक्त:'' इस प्रश्न का उत्तर है- श्रीराम। रामकथा भारत की आत्मा है, भारत की संस्कृति है, भारतीय जीवन मूल्य है, भारत की महान् परम्परा है भारतीय आदर्श हैं, भारत का इतिहास है। श्रीराम का आदर्श जीवन सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। वह प्रत्येक काल में प्रत्येक मानव के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत हैं। हमारे जीवन का उदय और अस्त श्रीराम के पवित्र नाम का स्मरण करते हुए होता है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने काव्य का प्रयोजन निरूपित करते हुए कहा- 'रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत् अर्थात् हमें श्रीराम आदि के समान आचरण करना चाहिए न कि रावण के समान यही कारण है कि आज न केवल भारतवर्ष में अपितु विश्व में जहाँ कहीं भी भारतीय हैं, वे रामायण को श्रद्धा

पूर्वक पढ़ते हैं, रामकथा के प्रति अगाध आस्था रखते हैं और राम, लक्ष्मण, भरत, और जानकी के परम पवित्र चरित्र से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इसीलिए रामायण को भारतीयों की अक्षयनिधि कहना सर्वथा उपयुक्त है। विण्टर निट्ज ने ठीक ही कहा है-

"It has become the property of the whole Indian People and scarely any other poem in the entire literature of the world, has influenced the thought and poetry of the nation for centuries."

रामकथा को यदि वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बित समस्त जीवन मूल्यों एवं उच्चादर्शों का जीवन्त स्वरुप कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। भारतीय मनीषा चारों वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानकर उसके प्रति अगाध आस्था रखती है। महर्षि मनु का कथन 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' तथा 'सर्वं वेदात् प्रसिध्यति' हमारे रोम-रोम में व्याप्त है। वेद मन्त्रों में ऐसे उत्तमोत्तम उपदेश, निर्देश और शिक्षाएं हैं, जिनसे मानव अमृतत्त्व का अधिकारी बन जाता है। परिवार, सुख का धाम बन जाता है और सम्पूर्ण वसुधा आनन्द वन का रूप धारण कर लेती है किन्तु वेदाध्ययन में सभी समर्थ नहीं हो सकते, अत: वेदानुकूल सरस साहित्य का अध्ययन जन-जन के लिये कल्याणकारी होता है। ऐसे लौकिक साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि की श्रेष्ठतम रचना रामायण ही सबको सुख का मार्ग दिखाने वाली है, यही विचार कर हमने 3,4,5, मार्च 2006 को गुरूकुल कांगड़ी वि.वि. में एक विशाल राष्ट्रीय विद्वत् सम्मेलन का आयोजन किया और हम विबुध वृन्द के आत्मीय स्नेह से गदगद को गये। सम्मेलन की सफलता के लिए भारतीय गणराज्य के महामहिम उपराष्ट्रपति मदोहय से लेकर, उत्तरांचल के महामहिम राज्यपाल श्रीमान् सुदर्शन जी अग्रवाल, दिल्ली राज्य की मुख्यमन्त्री माननीया श्रीमती शीला दीक्षित, उत्तराचंल के मुख्य सचिव माननीय श्री एम. रामचन्द्रन् एवं उत्तर भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के माननीय कुलपतियों की हार्दिक शुभकामनाएं प्राप्त हुई। बहुत बड़ी संख्या में वेद और रामायण के विद्वान् इस सारस्वत महायज्ञ में सम्मिलित हुए। आशा और कल्पना से अधिक विद्वानों के आगमन से जहाँ मन-मयूर हर्षित हो रहा था, वहाँ भय भी व्याप्त हो रहा था कि क्या हम अतिथि-देवताओं की व्यवस्था, सेवा ठीक से कर पायेंगे? किन्तु उस दयानिधान, कृपालु परमेश्वर की महती कृपा, कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द की साधना, तपस्या और वेद मनीषियों का ऐसा स्नेहिल आशीर्वाद जोकि सम्मेलन सफल हुआ और सफलता से हम प्रेम रस में अन्दर तक भीग गये। उद्घाटन सत्र में परम पूज्य निवृत्तमान शंकराचार्य स्वामी सत्यमित्रानन्दजी की अमृत वाणी से प्रत्येक श्रोता की आँख भक्तिरस की जलधारा प्रवाहित कर रही थी तो समापन सत्र में विदाई की कोमल अनुभूति सबके नयनों में अश्रु बिन्दु बनकर चमक

रही थी। परम पिता परमात्मा की कृपा से पूरे समारोह में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो तीन दिन साथ रहते-रहते हमारा अपना न बन गया हो। कुलमाता के यशस्वी पुत्रों माननीय डॉ. सुभाष वेदालङ्कार एवं डॉ. वेदप्रकाश वेदालङ्कार की भावविह्लता तो देखने योग्य थी।

शोध संगोष्ठी में लगभग 300 शोधपत्र प्रस्तुत किये गये। उनमें से कतिपय शोध लेखों का प्रकाशन गुरुकुल पत्रिका एवं गुरुकुल शोध भारती के विशेषाङ्कों के माध्यम से आप सुधी जनों के करकमलों में स्नेह पूर्वक समर्पित है। अभी हमारे पास अप्रकाशित शोध लेख पर्याप्त संख्या में है। यथा समय इनमें से चुने हुए लेखों के प्रकाशन का हम प्रयत्न करेंगे।

रामायण से सम्बन्धित इन लेखों को एक साथ पुस्तकाकार देखकर मुझे अतिशय आनन्द की अनुभूति हो रही है। आपको भी होगी।

इसमें कुछ अशुद्धियां भी आपको अवश्य दिखेंगी, किन्तु आप तो विद्यारूपी मानसरोवर में क्रीड़ा करने वाले राजहंस हैं। आपका स्वभाव ''हंसो ही क्षीर मादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यप: ''वाला है। विश्वविद्यालय के मान्य अधिकारियों ने प्रतिपल और प्रत्येक अवस्था में हमें उदारता पूर्वक सहयोग दिया है, मैं मान्य कुलपति प्रो. स्वतन्त्र कुमार जी एवं आचार्य तथा उपकुलपति प्रो. वेद प्रकाश जी के प्रति कृतज्ञता पूर्वक नमन करना अपना धर्म समझता हूँ।

हमारा यह सारस्वत यज्ञ निरन्तर चल रहा है। राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी की पूर्ण सफलता से उत्साहित होकर एक वर्ष से भी कम अवधि मे पुन: 9,10,11 फरवरी 2007 में 'अन्तराष्ट्रिय वेद- वेदाङ्ग विद्वत्-सम्मेलन' में पुन: वेदमनीषियों एवं युवा शोधच्छात्रों को सादर सस्नेह निमन्त्रित करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

हे शारदा पुत्रों! अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द की तपस्थली गुरुकुल कांगड़ी वि. वि. की पावन भूमि, हरिद्वार में गंगा के पावन तट पर सरस्वती पुत्रों को वैदिक ज्ञानधारा से मानव मात्र को शीतलता प्रदान करने के लिये पुन: निमन्त्रित कर रही है। आइये! सब मिलकर ज्ञानालोक से धरती को आलोकित कर दें।

विदुषां वशंवदः

प्रो० महावीर

वेदमञ्जरी

किं नः इन्द्र जिघांससि?

आचार्यः रामनाथ वेदालंकारः

किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः।। ऋग् १/१७०/२

ऋषिः अगस्त्यः। देवता इन्द्रः। छन्दः अनुष्टुप्।

(इन्द्र) हे परमात्मन् **(किम्)** किमर्थं **(नः)** अस्मान् **(जिघांससि)** हन्तुमिच्छसि? **(मरुतः)** मनुष्याः **(तव)** त्वदीयाः, **(भ्रातरः)** बन्धवः सन्ति **(तेभिः)** तैः **(साधुया)** साधुप्रकारेण **(कल्पस्व)** व्यवहर। **(नः)** अस्मान् **(समरणे)** संग्रामे **(मा वधीः)** न जहि।।

अयि इन्द्र! हे परमात्मन्! त्वम् ऐश्चर्यशाली असि, वीरोऽसि, ब्रह्माण्डस्य राजासि। निःसन्देहं त्वं महान् असि, महतां महनीयोऽसि। किन्तु त्वमस्माकम् उपरि निरन्तरं प्रहारं किमर्थं करोषि? वयम् एकेन प्रहारेण प्रहृता उत्थातुमपि न शक्नुमः तदैव त्वं द्वितीयं प्रहारं करोषि। अस्माकं पृष्ठे निरन्तरं दण्डान् किमर्थं वर्षयसि? पश्य, त्वदीयेन दण्डप्रहारेण अस्माकं शरीरं क्षतविक्षतं जातम्। अस्माकमिन्द्रियाणि जर्जराणि जातानि। अस्माकं मनः चीत्करोति। अस्माकं बुद्धिः विकृता जाता! अस्माकं प्राणाः क्रन्दन्ति। अस्माकम् आत्मा व्रणैर्विचेताः सन् रोदिति। कदाचित् त्वं स्वकीयैर्ज्वरातिसारकुष्ठविषूचिकाराजयक्ष्मादिशस्त्रैः अस्मान् आक्रामसि, कदाचित् अस्मान् दुर्भिक्षभूकम्पातिवृष्ट्यनावृष्ट्यादिभिः सन्त्रासयसि। कदाचिद् अस्मान् भीषणदुर्घटनानां पात्रं करोषि। कदाचिद् अस्मान् आन्तराणां शस्त्रूणां प्रहारेण व्याकुलयसि। वयं क्षुद्रा जीवास्त्वया आनीता इमा विपदः कथं सोढुं शक्ष्यामः।

हे भगवन्! अस्मासु दयां कुरु। वयं तव भ्रातरः स्मः, त्वदीयाः सबन्धवः स्मः, तव सखायः स्मः, त्वं च वयं च एकस्मिन्नेव जगद्वृक्षे स्थिताः स्मः। अन्तरमेतदेव वर्तते यद् वयम् एतद्वृक्षस्य फलानि भुञ्ज्महे, त्वं च भोगात् स्वतन्त्रो भूत्वा साक्षिमात्रं वर्तसे। त्वं सच्चिदनाद्यनन्त रूपोऽसि, वयमपि सच्चिदनाद्यनन्तरूपाः स्मः। त्वम् आनन्दस्वरूपोऽसि, वयमानन्दमया भवितुम् अभिलषामः। भ्रातृत्वाद् वयं तव सहायतायाः पात्राणि स्मः। त्वम् अस्मान् प्रति साधुतायाः सहानुभूतेः सहृदयतायाश्च व्यवहारं कुरु। संसारस्यास्मिन् विकटे संग्रामे त्वमस्मान् जिघांसितुं किमर्थमिच्छसि? यद्यपि सत्यमिदं वर्तते यद् यदपि वयं भुञ्ज्महे, तदस्माकं स्वकीयकर्मणामेव फलं वर्तते, परं तव दयया किम् असंभवम्? त्वमिच्छसि चेत् तर्हि अस्माकं जीवनस्य दिशमेव परिवर्तयितुं शक्नोषि, अस्मान् असत्कर्मतः सत्कर्मपरायणान् कर्तुं शक्नोषि, असुरतां परित्याज्य देवान् कर्तुं शक्नोषि। अतः कृपस्व, ज्येष्ठो भ्राता सन् लघु भ्रातृन् अस्मान् स्व शरणे गृहाण। अस्मान् उद्धर।

संस्थापक
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
The Founder of
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya

स्वामी श्रद्धानन्द जी

Swami Shraddhanand Ji

(1856 – 1926)

रामायणे औपनिषदतत्त्वविमर्शः

डॉ० उमा रानी त्रिपाठी
आचार्या- संस्कृत विभाग
मा. गाँ. काशीविद्यापीठम्, वाराणसी (उ0प्र0)

संस्कृत वाङ्मये महर्षिवाल्मीकिविरचितं रामायणमेकं विलक्षणं महाकाव्यं यदादिकाव्यत्वेन स्वीकृतं सर्वैः विद्वद्वरैः। तत्र आर्षकवेः ऋतम्भरा प्रतिभा प्रकाशिता। महर्षिवाल्मीकिना वस्तूनां नित्यरूपेण निर्मलं दर्शनमेव कवितामुखेनोपन्यस्तम् मानवजीवनस्य शश्वन्मूल्यवद्भिस्तत्त्वैर्विनिर्मितं रामायणं सिद्धरसाख्यं काव्यमित्यप्यङ्गीकृतम्। तत्र श्रीसीतारामयोर्निर्मलं जीवन दशर्न महर्षिवाल्मीकेः क्रान्तदर्शिन्याः प्रज्ञायाः विमलनिदर्शनमिति स्वीक्रियते सर्वैरेव मनीषिभिः। वस्तुतः रामायणस्य वेदमूलकता तु रामायणे फलश्रुतिप्रसङ्गे स्वयमेव निगदितमादिकविना-

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (वा. रा. बाल. 1/1/98)

प्रायेण रमायणव्याख्याकृद्भिः श्लोकोऽयं बहुशः समुद्धृतम् यत्-

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेद प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना॥[1]

श्रीमद्रामायणस्य समालोचनकृते सति तत्र क्रान्तद्रष्टुः दार्शनिकं चिन्तनं सूत्रे मणिरिवानुस्यूतं दृश्यते। अतएव रामायणगतानामौपनिषद्तत्त्वानां विमर्श एव शोधपत्रस्यास्य प्रतिपाद्यविषयः।

अत्र केवलं श्रीरामस्य तत्त्वात्मकं स्वरूपमेवाश्रित्य प्रस्तूयते मया शोधपत्रमिदम्।

रामायणस्य युद्धकाण्डे सीताया अग्निपरीक्षाऽवसरे सकलदिक्पालसहितो महादेवो हिरण्यगर्भश्च तत्र समागतौ। तदा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः ब्रह्मा, यो सर्वस्य लोकस्य कर्ता, रामं परमौपनिषद् पुरुषत्वेन स्तुवन् तत्त्वात्मकस्वरूपं न्यरूपयत्। उल्लेखनीयमिदं यत् विधातुः स्रष्टृत्वं तु सद्वारकं भवति यतो हि ब्रह्मलोकपर्यन्तं सकलंलोकवर्तिपदार्थानां सर्जनमेवास्य सामर्थ्यम्। हिरण्यभर्गः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' इतिश्रुतेः सिद्धम्।[2] किन्तु ब्रह्मणः पूर्वं कर्तृत्वमद्वारकं भवति'' यो वै ब्रह्माणं

विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'' इतिश्रुतेः प्रामाण्यम्।[3] अतएव रामः सर्वस्य लोकस्य कर्ता जगद्योनित्वात्। स ज्ञानवतां वेदान्ततत्त्वविदां ज्येष्ठः। अत्र मनुष्यशरीरे राघवे सर्वलोकर्त्तृत्वं परमकारणाभिप्रायेणैव। तत्र रामस्य आत्मस्वरूपख्यापनार्थ श्लोकत्रयमेकं वाक्यम्।[4] एषां श्लोकानामभिप्रायोऽयम् यत्- श्रीराम एव ऋतधामाख्यो वसुः विभूति रूपेण तत्र सन्निहित इत्यर्थः। स एव प्रजापतिः प्रजास्वामी इत्यर्थः। स आदिकर्ता अण्डाधपतिपर्यन्ताद्वारकसृष्टिकर्तेति।[5] स्वयं प्रभवतीति स्वयम्प्रभुः अनियाम्य ईश्वरेत्यर्थः। अस्य जगतः प्रलयकाले सृष्टेः प्राक् च सद्रूपेण अवस्थितो वर्तते। सदेव सोम्य इदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् इति श्रुतेः सिद्धम्।[6] अनेन रामस्योत्पत्तिविनाशशून्यमविनाशिस्वरूपं प्रकाशितं भवति। उपनिषत्सु परमेश्वरस्य जगत्कारणत्वं वारम्वारं प्रतिपादितं दृश्यते।[7] रामस्य विराङ्रूपं वर्णयन् विभिन्नेषु देवेषु रामस्यैवानुवृत्तिः प्रचक्षते। रामएव अष्टमः रुद्रः महादेवाख्यो शङ्करः रुद्राणां शङ्करश्चास्मि' (गी0 10/23) इति स्मृतेः सिद्धत्वात्।[8] अश्विनौ तु रामस्य कर्णौ चन्द्रसूर्यो च चक्षुषी'' इत्यत्र दिग्देवतानामिवाश्विनोरप्यभिमानदियमुक्तिः उल्लेखनीयमेतत् यत् विविधेषु देवेषु तदात्मकत्वेन रामस्य एव सत्ता वरीवर्तते तस्मादेव कारणात् राम विश्वरूपः प्रकल्पितः अतः रामः सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वशक्तिः देवानाभधिपः वर्तते।[10]

पुनश्च, रामावतारं गृहणन् परत्वापेक्षया मानुषत्वाभिनय एव स्वाभिमतं विचिन्त्य तथापि स्वस्य विष्णववतारवत्वं सुग्रीवादिभिरनवगतमिति तत्प्रतिपत्त्यर्थं स्वस्वरूपं श्रीरामेण स्वयमेव पृष्टम्-योऽहमिति स्वरूप प्रश्नः। यस्येति सम्बन्धिप्रश्नः। यत इति प्रयोजनप्रश्नः? अत्र यद्यपि रामावतारत्वेन चक्रवर्तिपुत्रत्वभेवात्यन्तमभीष्टं परन्तु स्वयं सर्वज्ञतया ममानभिमतमपि परत्वं लोकानुग्रहाय प्रकटयत्वित्यर्थः।[11] एवमुपक्रम्य आदिकविना प्रतिपादितम् श्रीरामस्य तत्त्वात्मकं स्वरूपम्-

रामः नारायणः- नारा अयनं यस्यासौ नारायणः ''आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः। ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।। इति मनुवचनात्। अनेन जगत्कारणत्वमपि प्रतिपादितम्- एको ह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशोनो नेमे द्यावापृथिवी' इति श्रुतेः।[12] अवाप्तसमस्त कामस्य परमेश्वरस्य जगद्व्यापारानुपपत्तिं प्रदर्शयति- देव इति दीव्यतीति देवः क्रीडाप्रवृत्तः। लीलायाः प्रयोजनत्वात् परिपूर्णस्यापि व्यापारः सम्भवति।[13] एदनन्तरं सम्प्रदायोदाहरणं प्रस्तूयते यत् श्रीमानिति नित्यं श्रीरस्यास्तीति श्रीमान्। असाधारणमायुधं वक्ति चक्रायुधो अनेन तु रामस्य विष्णोरवतारत्वमपि सूचितं भवति। ततश्च स्वरूपवैलक्षण्यं प्रतिपाद्यते- त्वं विभुरिति सर्वव्यापक इत्यर्थः। श्रुतिषु परमात्मा सर्वज्ञः सर्वव्यापक इति निगद्यते।[14]

श्रीरामस्य फलितं रक्षकत्वं वर्णयन् कविनोच्यते एकशृङ्गयो वराह इति। प्रलयोदधिसंप्लवे

वराहरूपं धृत्वा भूमेरुद्रधारक इत्यर्थः उद्धृतासि वराहेण इतिश्रुतेः पुनश्च, रामस्याभिष्टनिवर्तकत्वं प्रतिपाद्यते भूतभव्यसपत्नजित्। अस्यार्थः तिलकव्याख्याकारेण प्रतिपादितः - भूतभव्यकालरूपा यः सपत्नः जनिमृतिहेतुत्वात्। तं जयति सः भूतभव्यसपत्नजित् आद्यन्तशून्यः नित्य इति यावत्।'' गोविन्द राजीय व्याख्यानुसारेण भूताः सपत्नाः मधुकैटभादयः भव्याः सपत्नाः शिशुपालादय तान् जयतीति भूतभव्यसपत्नजित्।[15]

राम एव अक्षरब्रह्म न क्षरतीति अक्षरम्। अश्नोति व्याप्नोतीति वा अक्षरं। ''एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति'' इतिश्रुतेः सिद्धम् ।[16] अनेन रामस्य अव्ययत्वमविनाशित्वमपि सूचितम्। पुनश्च तत्रैव रामस्यपरब्रह्म स्वरूपत्वं प्रदर्शितम्। बृहति बृंहयतीति च ब्रह्म। 'बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति (मु.उ. 3/1/17) इतिश्रुतेः सिद्धम्। स एव सत्यम् अविपर्यस्तम् षड्भावविकार शून्यमित्यर्थः।[17] उपनिषत्सु ब्रह्मणः सत्यत्वमद्वितीयत्वं स्फुटत्वेन निगदितं वर्तते यथा सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' तै0 उ0 2/1/1, ब्रह्मैवेदं सर्व सच्चिदानन्दरूपम् बृ. उ0 7/5/ वस्तुतः देशकालवस्त्वपरिच्छिन्नं स्वगतसजातीयविजातीयभेदत्रयशून्यं सद्वस्तु एव त्रिकालाबाधितं नित्यं भवति नान्य इति। राम एव सर्वलोकश्रेयः साधनीभूतः सिद्धरूपो धर्म न तु साध्यरूपः यतोहि स एव परिपूर्णमनाद्यन्तमप्रमेयभविक्रियं चिद्घनं नित्यमानन्दघनं सद्वस्तु वर्तते।[18] रामः विष्वक्सेनः सर्वस्वामीत्यर्थः। चतुर्भुजः युगपच्चतुर्विध पुरुषार्थप्रदः हृषीकेशः हृषीकारणां इन्द्रियाणाम् ईशः नियन्ता। सर्वेन्द्रियाकर्षक दिव्यविग्रहत्वात्।[19] राम एव पुरुषः 'पुरुष' इत्यस्यार्थः गोविन्दराजीयव्याख्यायामुक्तम्-पुरु सनोतीति पुरुषः। षणुदाने इत्यस्माद् घातोर्ड प्रत्ययः। बहुप्रद इत्यर्थः। यद्वा पुरि हृदयगुहायां शेत- इति पुरुषः। पुरिशयं पुरुषमीक्षते इति निर्वचनश्रुतेः। यद्वा येन जगत्पूर्ण स पुरुषः। तेनेदं पूर्ण पुरुषेण सर्वम् इति श्रुतेः। यद्वा पुरातनत्वात् पुरुषः ' पूर्वमेवाहमितिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम् इतिश्रुतेः।[20]

परमात्मनः पुरुषोत्तमत्वं गीतायामुक्तम् :-

पुरुषेभ्यः क्षराक्षरेभ्य उत्तमः पुरुषोत्तमः।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।[21]

रामः अजितः गुणैरैश्वर्येण च केनाप्यजितः। सर्वातिशायीत्यर्थः। नन्दकाख्यं खङ्गं धरतीति खङ्गधृक् विष्णुः व्यापनशील इत्यर्थः। स एव कृष्णः भूनिर्वृतिहेतुः कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः' इति निर्वचनात्। रामः सेनानी इनेन पत्या सहिताः सेनाः हिरण्यगर्भमारभ्य

यवसावसानाजीवास्तान् आसमन्तान्नयतीति सेनानीः। ग्रामणी ग्रामं नयनीति ग्रामणी दिव्यजनपदादि पालक इत्यर्थः।[22] बुद्धि सत्त्वं क्षमा दम इति बुद्धलादि प्रवर्तकः श्रुतिसिद्धत्वात्।[23]

पुनश्च रामस्य जगत्कारणत्वमपीष्यते-- प्रभवश्चाप्ययश्च- प्रभवत्यस्माज्जगदिति प्रभवः उत्पत्ति स्थानं। सर्वोपादानमित्यर्थः। अप्ययः सर्वजगल्लयस्थानमपि स एव। यतो वा इमानि जायन्ते। येन जातानि जीविन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।'' इति श्रुतेः सिद्धम्।[24] रामः इन्द्रकर्मा इन्द्रस्य कर्म इव कर्म यस्य स इन्द्रकर्मा। प्रजापतिरिन्द्रमसृजत् इति श्रुतेः इन्द्रः कर्म सृष्टिर्यस्य स इन्द्रकर्मावा महेन्द्रः निरतिशयैश्वर्य सम्पन्नः। पद्मं नाभौयस्य स पद्मनाभः ब्रह्मणोऽपि जनकः।[25] दिव्यामहर्षयः अलौकिकतत्त्वसाक्षात्कारसमर्थाः तत्रापि दिव्या अवतार रहस्यादि विशेषज्ञानवन्तो वाल्मीकि प्रभृतयः। यद्वा नित्यसूरयः तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाँसः इति श्रुतेः।[26] राम एव शरण्यः तदुचितज्ञानशक्तिदयादिसम्पन्नः शरणं रक्षणोपायं वदन्ति सनकादयः दिव्या महर्षयः सर्वस्य शरणं सुहृत्'' इतिश्रुतेः।[27]

पुनश्च, रामस्य शास्त्रयोनिता प्रतिपाद्यते- सहस्रशृङ्ग इति।[28] सहस्रशाखारूपः शृङ्गः सहस्रशाख सामवेद स्वरूपः ''सहस्रं सामवर्त्म'' इति प्रसिद्धेः। वेदानां सामवेदोऽस्मि इति स्मृतेः सिद्धम्।[29] शतजिह्वः अनेकविध चोदना रूपजिह्वः वेदात्मा वेदपुरुषान्तर्यामी पूर्वजः पूर्वमेवाहममिहासम् इतिश्रुतेः।[30] ऋषभः कर्मणामालोचयिता। ऋष आलोचने धातुः महांश्चासौ ऋषभश्च महर्षभः। एवंभूतो वेदात्मा राम इति। स एव आदिकर्ता समष्टिकर्ता अनेन व्यष्टिकर्तुः स्वस्य व्यावृत्तिः स्वयम्प्रभुः अनन्यप्रेर्यः 'न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिताचैव न च तस्य लिङ्गम्' (श्वे0 30) इतिश्रुतेः। रामः सिद्धानां मुक्तानां साध्यानां च आरुक्षूणामित्यर्थः '' यत्र पूर्वे साध्या सन्ति देवा। इत्युक्तानां नित्यानामाश्रयः साम्यभोगप्रद इति। स पूर्वजः आश्रितापेक्षायाः पूर्व ''अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य इत्यादि श्रुतेः। सर्व--कर्म समाराध्यस्त्वमेव इत्याह त्वं यज्ञः।[31] यज्ञो वै विष्णु 'इति श्रुतेः'।[32] गीतायामुक्तमिदम्-

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।[३३]

पुनश्च, रामस्य ओङ्काररूपत्वं प्रतिपाद्यते।

श्रुतिषु बहुशः ओङ्कारात्मैक्यं प्रथितम्।[३४]

रामः परन्तपः उत्कृष्टतपः समाराध्यइति यावत्। परमात्मनः रामस्य प्रभवः निधनं वा नैव ज्ञातुं शक्यते अनाद्यनन्तत्वात्। वेदाअपि रामस्य स्वरूपं प्रतिपादयितुं नैव समर्थाः यतोहि स अपरिच्छिन्नमहिमा सम्पन्न वर्तते।[35] क इत्था वेद यत्र सः इति श्रुतेः। रामः सर्वान्तर्यामी सर्वभूतेषु

निगूढ: सर्वसाक्षी इति रूपेणानुभूयते सर्वयोगिभि:।[36] दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च सर्वत्र राम एव सर्वात्मतयाऽनुस्यूतत्वात्।[37] श्लोकेऽस्मिन् स्थावरजङ्गमात्मके जगति राम एव अधिष्ठानत्वेन अवस्थित: प्रतिपाद्यते। पुनश्च रामस्य परमपुरुषत्वं प्रतिपादयन् पुरुषसूक्त स्मर्यते- 'सहस्रचरण: श्रीमाञ्शतशीर्ष: सहस्रदृक्''[38] गोविन्दराजीयव्याख्यायामुक्तम्- अत्र शत शब्द: सहस्रवाचक:'' सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् इतिश्रुते: सिद्धम्। राम एव पञ्चभूतानामाधार: अत्र आधाराधेय भावसम्बन्ध: वर्णित:।

दैनन्दिनप्रलयवृत्तान्तमापादयन् निगद्यते यत्-अन्ते पृथिव्या: सलिले दृश्यसे त्वं महोरग:।

त्रील्लँलोकान्धरयन्नाम देवगन्धर्वदानवान्।।[39]

पृथिव्या: विनाशे महानुरग: शेषो यस्य स शेषशायी सन् सर्वं कुक्षौ धारयन् दृश्यसे मार्कण्डेयादि ऋषिभि:। परमात्मन: रामस्य गात्रेषु रोमाणीव देवानामवस्थिति: विद्यते। अनेन महाकाशे घटाकाश स्थिति: सूच्यते।[40] तस्य परमात्मन: निमेषोन्मेषौ हि रात्रिर्न्दिवत्वेनाभिव्यज्यते। पुनश्चोच्यते-

संस्कारास्तेऽभवन्वेदा न तदस्ति त्वया विना।[41]

परमेश्वरस्य नि:श्वसितभूता: वेदा: एतस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतदृग्वेदोयजुर्वेद:[42] किं बहुना, संक्षेपेणोच्यते त्वया विना त्वदन्तर्यामिकं विना किमपिसत्तात्वं नैवोपगच्छति। इत्थं निषेध श्रुत्यर्थमभिधाय ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' तत्त्वमसि इत्यादि सामानाधिकरण्य श्रुत्यर्थमपि वर्ण्यते- जगत्सर्वं शरीरं ते।[43] सर्वं जगत् ते शरीरं वर्तते तव आधेयं विधेयं शेषभूतं चेत्यर्थ जगतस्त्वच्छरीरत्वाच्छरीरगत विशेषणानि त्वद्विशेषणानि इति। यथा- वसुधातलस्थैर्यं काठिन्यवान्यो विभर्ति तस्मै भूम्यात्मने नम: इति विष्णुपुराणोक्ते:। अग्नितापः ते कोप: सोमगत प्रसादस्तु तव प्रसाद एव। पुराणे पूर्वकाले त्वया रामेण विक्रमै: पादविन्यासस्त्रिभि: क्रान्ता इति त्रिविक्रमावतार: कथित:। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम्'' इतिश्रुते:।[44] भगवदवतारेषु लक्ष्म्या अनुवृत्तिर्निगद्यते- सीतेति। कृष्ण: भविष्यत्कृष्णावतारत्वमेव सूच्यते।

प्रजापति: सर्वप्रजा पालक:। कृष्ण प्रलये सर्वं जगत्स्वस्मिन् कर्षतीति तन्नामको विष्णुर्देवो राम एव। परमात्मन: रामस्य मनुष्यशरीर धारणस्य प्रयोजनमपि प्रतिपाद्यते- रावणस्य वधार्थम्। अतएव कृतकार्यो प्रहृष्ट: वैकुण्ठाख्यं दिवं ब्रह्मलोकमाक्रम प्राप्नुहि।[45]

पुनश्च, श्रीरामस्य परमेश्वरत्वेन सर्वोपास्यतवं सर्वाभीष्टसिद्धिप्रदत्वं वर्णयन् निरूप्यते यत् अमोघा: अप्रतिवद्धफला: त्वयि भक्तिमन्त: जना अविलम्बेनैव स्वाभिमतं फलं लभन्ते। इदमपि

रामावतारस्यैकं प्रयोजनम्। ये त्वन्निष्ठाः त्वत्परायणाः त्वामुद्दिश्य तपः कुर्वन्ति यजन्ति च। ते कामाः भोगोपकरणानि इह लोके परत्र च प्राप्नुवन्ति। सदा इत्यनेन पदेन यावच्छरीरपातमत्र भोगान्भुक्त्वा शरीरावसाने सर्वान् कामान् लभन्ते सायुज्यलाभात्।[46]

इत्थं श्रीरामस्य पारमैश्वर्यं निरूप्य आदि कविना तस्य वेदान्तवेद्यत्वप्रतिपत्तये स्तवमिदमार्षं निगद्यते। यो परमात्मा वेदेषु "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"[47] इत्यादि वाक्यैर्प्रतिपाद्यते स परमात्मा एव रामाभिधानो दाशरथि इति सम्यगालोच्य महर्षिणा श्रीरामस्य भव्यं जीवनवृत्तमवलम्ब्य यद्दिव्यं महाकाव्यं विरचितं तत्तु औपनिषद्पुरुषस्यैव सगुणत्वेन व्याख्यानं वर्तते।

शोध सन्दर्भसङ्ग्रहः

1- द्रष्टव्यम् अगस्त्यसंहिता धीरेन्द्र वर्मा कृत हिन्दी साहित्यकोश वाल्मीकि रामायणम् गी.प्रे. गोरखपुर भूमिका- जानकीनाथशर्मा''

2- ऋ. 10/121/1

3- श्वे. उ0 6/18

4- द्रष्टव्यम्- वा. रा. युद्धकाण्डे 120/6,7,8,9

5- द्र0 ततस्तेजो हिरण्यमयमण्डम्। तत्र ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायत। (महा. नारा.1/18)
य: सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः।।
तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते।। मु0 उ0 1/1/9

6- छान्दो0 उ0 6/2/1
तथा-आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीत्. ऐ0उ0 1/1/1

7- तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। तै0 उ0 2/1/1
तस्माद्वा एतस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोका सर्वे वेदाः सर्वे देवाः सर्वाणि च भूतान्युच्चरन्ति। मै0 उ0 6/32

8- स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परम स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः च चान्द्रमा।। कैव0 उ0 8

9- द्रष्टव्यम्- मैत्रा0 उ0 6/8- एष हि खल्वात्मेशानः शम्भुर्भवो रुद्रः प्रजापतिर्विश्वसृग्धिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंसः शास्ता विष्णुर्नारायणोऽर्कः सविता धाता विधाता सम्राडिन्द्रः इति।।
मै0 उ0 6/8

10- एष सर्वेश्वरः। एष सर्वज्ञः एषोऽन्तर्यामी। एष योनिः सर्वस्य। प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्। रामोत्तरतापिन्युपनिषद् 2/13

11- द्रष्टव्यम् वाल्मीकिरामायणस्य गोविन्दराजीय व्याख्या पृ0 451

12- तत्रैव पृ. 451

13- एष सर्वेश्वर:। एष भूताधिपति:। बृ0 उ0 4/4/22

तथा च।

द्रष्टव्यम्- एको देव: सर्वभूतेषु: गूढ: सर्वव्यापी सर्वभ्तान्तरात्मा कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। श्वेता0 3/6/11

14- मु0 का0 उ0 1/1/9

15- भवान्नारायणो देव: श्रीमांश्चक्रायुधो विभु:।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्।। वा. रा. युद्ध. 120/13

16- बृ0 उ0 3/8/8

17- अविनाशीवाऽऽरेऽयमात्मानुच्छित्ति धर्मा।' बृ0 उ0 4/5/14

18- अध्यात्म उपनिषद् 61

19- वा0 रा0 युद्धकाण्डे 120/15 तथा गीता 11/36 द्रष्टव्यम्।

20- वा0 रा0 युद्धकाण्डे 120/15 पर गोविन्दराजीया व्याख्या पृ0 452।

21- श्रीमद्भगवद्गीता 15/18

22- वा0 रा0 युद्धकाण्डे 120/16 गोविन्दराजीयटीका पृ0 452

23- देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षि:।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।। श्वे0 उ0 3/4

24- तैत्ति उ0 3/1 यतो वा इमानि0

25- महानारा उ0 1/8

26- सुबालोपनिषद्-6

27- वा0 रा0 युद्धकाण्डे 120/17

28- सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभ:।
त्वां त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयमप्रभु:।। वा0 रा0 युद्ध0 120/18

29- श्रीमद्भगवद्गीता 10/22

30- वा0 रा0 युद्ध0 गोविन्दराजीयव्याख्या 120/18 पृ0 453

31- त्वां यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कार: परन्तप:।
प्रभवं निधनं व न विदु: को भवानिति।। वा0 रा0 युद्ध 120/19

32- यज्ञो वैविष्णु पर निरुक्त 7/1/14 की विवृति

33- श्रीमद्भगवद्गीता 4/24

34- ओमिति ब्रह्म। ओमितीद ॅं सर्वम्। तैत्ति0 उ0 1/8/1
छा0 उ0 1/5/1, मै0 उ0 6/37, मा0 उ0 5

35- छा0 उ0 3/12/6, श्वे0 उ0 2/17, 3/19, 20, का0 उ0 2/20

36- यो देवोऽग्नौ ऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतीषु तस्मै देवाय नमो नमः ।। श्वे उ0 2/17
यो देवानामधिपो यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः। श्वे0 उ0 4/13 तथा श्वे0 उ0 6/11, 13

37- वा0 रा0 युद्धकाण्डे 120/20

38- तत्रैव 120/21

39- तत्रैव 120/22

40- घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि - अध्यात्मोपनिषद्-7

41- वा0 रा0 युद्ध0 120 /124

42- बृ0 30 2/4/10 तथा ब्र0 सू0 शास्त्रायोनित्वात्। 1/1/3

43- वा0 रा0 युद्ध0 120/25 गोविन्दराजीयटीका पृ0 454

44- ऋ0 1/22/17 तथा ऋ0 1/154/1

45- वा0 रा0 युद्ध 120/27, 28

46- परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते स उत्तमः पुरुषः। छा0 उ0 8/12/3
अपिच 'तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।' छा0 उ0 7/25/2
तथा - 'न च पुनरावर्तते' छा0 उ0 8/15/1 , 'तेषां न पुनरावृत्तिः' बृः उ0 6/2/5

47- बृ0 उ0 3/9/26

शोध सन्दर्भग्रन्थाः-

1. वाल्मीकि रामायणम् गी0 प्रे0 गोरखपुर
2. वाल्मीकि रामायणम् गोविन्दराजीयव्याख्या समलङ्कृतम्
   उ0 प्र0 संस्कृत संस्थानम् लखनऊ

3- ईशादिदशोपनिषदः गी0 प्रे0 गोरखपुर।

4- ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्यम्

5. श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्योपेता। गी0 प्रे0 गोरखपुर

वाल्मीकिरामायणे वैदिकी संस्कृतिः

डॉ० जयदत्त उप्रेती,
भूतपूर्वः - संस्कृतविभागाध्यक्षः
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा (उत्तरांचल)

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्यकविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् ।।

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला। नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ।।

वाल्मीकिगिरि सम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता। श्रीमद्रामायणी गंगा पुनाति भुवनत्रयम्।।

इत्यादिरूपेणाऽनल्पयशसो महर्षेर्वाल्मीकेः कैश्चित् पूर्वैः सूरिभिः सुष्टुतिं वन्दनां च सुललितैः श्लोकैः कृतां संस्मृत्य अद्येह गुरुकुलकांगड़ीविश्विविद्यालयेन समायोजिते राष्ट्रियसंस्कृतसम्मेलने वाल्मीकिरामायणम् समवलम्ब्य तत्र विद्यमानानि वैदिकसंस्कृतेर्निदर्शनानि कानिचित् प्रस्तूयन्ते शोधपत्रेऽस्मिन्।

संस्कृतसाहित्यकानने वाल्मीकिरामायणस्य महाकाव्यस्य मूर्धन्यं स्थानं वरीवर्ति। मर्यादा पुरुषोत्तमो दाशरथी रामस्तस्य महाकाव्यस्य धीरोदात्तगुणशीलसम्पन्नो नायको विद्यते। तस्यैव महापुरुषस्य नाम्नामहाकविना महर्षिणा वाल्मीकिना महाकाव्यस्यास्याभिधानं रामायणमित्यकारि। रामायणे हि रामस्य चरितचित्रणं प्रामुख्येन कृतः कविना। महाकविरसौ लोके विशेषतः संस्कृतकाव्यकानने आदिकविरिति नाम्नापि सुप्रसिद्धः।

तदस्मिन् आदिकविना वाल्मीकिना विरचिते रामायणाख्ये महाकाव्ये वैदिक्याः संस्कृतेर्दर्शनं पदे पदे बोभवीति। चतुर्षु वेदेषु मानवानां कल्याणाय ये ये श्रेष्ठा उपदेशा आचारा विचाराश्च उपदिष्टाः सन्ति, यानि कर्त्तव्यानि कर्म्मणि विहितानि सन्ति, यानि च गर्हितानि कर्माणि प्रतिषिद्धानि सन्ति, तेषां समासव्यासशैल्या सन्निवेश उच्चावचपात्राणां प्रसंगे यथास्थानं समवलोक्यतेऽस्मिन् महाकाव्ये। आर्याणां वर्णाश्रमधर्माश्च वेदादिधर्मशास्त्रानुसारमेव अत्रापि द्रष्टुं शक्यन्ते। तदिह मुख्यप्रतिपाद्यविषयात् पूर्वं रामायणसम्बन्धे किंचिद् निवेदनमुचितंप्रतिभाति।

रामायणं नामेदं महाकाव्यं भारतीयसंस्कृतेः धर्मस्य विविधलौकिकपारमार्थिकाध्यात्मिकज्ञानविज्ञानानामाकरभूतम् सदपि रम्यरामकथायाः हेतोर्लोकानामतीव हृदयावर्जकं शान्तिदायकमानन्दवर्धनं चास्ति। मन्यामहे, रामवनगमनप्रसंग एवात्र चमत्काराधायकः। यदि दृढप्रतिज्ञेन रामेण चतुर्दशवर्षाणि यावद्

वनवासस्य कृते राज्याभिषेककाले महाराजस्य दशरथस्य कैकेयीवरदानप्रतिफलिताज्ञा सहर्ष स्वीकृता नाभविष्यत् तदा न दाक्षिणात्ये रावणकुम्भकर्णखरदूषणादीनां लोकत्रासकानां नैकराक्षसानां वधोऽभविष्यत् नैव चेयं रामायणी कथा सुरम्या सुमनोहरा चाभविष्यत्। यद्यपि रामादीनां वनगमने केचिद् राज्ञ्याः मातुः कैकेय्याः दोषं केचिद् भाग्यविडम्बनां रामादीनाम् आदशरथात् समेषामयोध्यावासिनां च, केचिद् दण्डकारण्यवासिनामनेकेषां मुन्यृषीणां तपस्विनां सौभाग्यं हिंसकराक्षसविघातजनितपरित्राणरूपम् च समुचितानुचिततया वर्णयन्ति, तथापि समग्रदृष्ट्या यदि विचारितं स्यात्तदा महाकाव्यस्यास्य ऐतिहासिकत्वमुभाभ्यां भावकलापक्षाभ्यां परिपूर्णत्वं प्राचीनभारतीयसंस्कृतेः सन्दर्शकत्वं च निर्विवादम्। यद्यपि च कानिचिदाख्यानानि केचित् प्रसंगाश्च सृष्टिनियमविरुद्धा वेदादिशास्त्रविरुद्धाश्च सन्तः प्रक्षिप्ता इवेहापि अन्यस्मृत्यादिग्रन्थवत् प्रतिभान्ति तथापि रामकथाव्याजेन भूयानंशो वैदिकधर्मसंस्कृतेः रामायणे समुपवर्धितो महर्षिणा वाल्मीकिना। अतः रामायणसम्बन्धे साधु खलु निगदितमेतत् स्वयमेव तेनादिकविना-

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्। यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।
पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात् स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वामीयाज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्।। इति।

अथेदानीं वैदिकतत्वानां वैदिकसंस्कृतेश्च विषये वाल्मीकीये रामायणे यद्यद् निगद्यते, तस्यानुक्रमेण विवरणं संक्षेपतः प्रस्तूयते। तत्र प्रथमं पुत्रेष्टिप्रसंगः।

१- राज्ञो दशरथस्य पुत्रेष्टियज्ञः-

वेदप्रभवा यज्ञा इति नाविदितं वेदविदुषाम्। तेषामेव यज्ञानां बहवो भेदा भवन्ति, तद्यथा यागाः, होमाः, इष्टय इत्यादयः। तेष्वन्यतमास्ति पुत्रेष्टिरपि। अर्थात् पुत्रप्राप्तये क्रियमाणा इष्टिः पुत्रेष्टिरुच्यते। महाराजस्यायोध्याधिपतेर्दशरथस्य तिस्रो धर्मपत्न्य आसन्। किन्तु दीर्घकालान्तरमपि तासामेकापि सुतं न सुषुवे। अतो दशरथो नृपः सन्तानावाप्तये पुत्रेष्टिं चिकीर्षुरभूत्। एतस्मिन् प्रसंगे रामायणे वर्णितमस्ति-

तस्य चैवं प्रभावस्यधर्मज्ञस्य महात्मनः। सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकरः सुतः।।
चिंतयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः। सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम्।।
स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान्। मंत्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः।।[1]

इत्यादि ततः सरय्वा नद्या उत्तरे तीरे यज्ञभूमिं विधाय तत्र ब्रह्मवादिनो वेदपारगान् सुयज्ञ-वामदेव जाबालि काश्यप पुरोहितवसिष्ठप्रभृतीन् ऋत्विज ऋष्यशृंगसहितान् सम्पूज्य अश्वमेधयज्ञं पुत्रेष्टिं च सम्पादितवान् सपत्नीको राजा दशरथः। इत्येतत् रामायणेबालकाण्डे आसप्तमादष्टादशसर्गपर्यन्तं वर्णितमस्ति। परं तत्र अश्वमेधयज्ञे यज्ञभूमौ अश्वस्व विशसनं, तद्वपाहोमः, राज्ञ्याः कौशल्यायाश्च तेनाश्वेन सहैका' रजनीं' निवासः इत्यादिकथानकांशो ऽवैदिकोऽतएव च प्रक्षेपको ऽस्तीति निश्चप्रचम्। कुतः[2] वेदसंहितासु तादृशस्य कर्मणोऽभावात् प्रतिषेधाच्च[2]। एवमेव दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमिम्। एवं दत्त्वां देवो देवानां विष्णुरात्मवान्। मनुष्ये चिंतयामास-जन्मभूमिमथात्मनः।। ततः पझपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम्।। पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्।।

वा.रा.1-15-29-32, **इत्यादिकथात्मकाःबालकाण्डस्य** 15,16,17, **सर्गाः प्रक्षिप्ताः प्रतीयन्ते। अथवा अतिशयोक्तिपूर्णाणि एतादृशवर्णनानि।**

२- सन्तानानां संस्काराः, शिक्षा, विद्याध्ययनं च :-

पुत्रेष्ट्यनन्तरं द्वादशे मासि राज्ञो दशरथस्य तिसृभ्यः पत्नीभ्यश्चत्वारः पुत्राः समुत्पन्नाः। तत्र कौसल्या रामं , कैकेयी भरतं सुमित्रा च लक्ष्मणशत्रुघ्नौ अजनयन्। एतेषु पुत्रेषु रामस्य जन्म चैत्रमासे शुक्लपक्षे नवम्यां तिथौ अभूत्, यथाह्युच्यते - ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ .... कौसल्या ऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्।[3] इति। वैदिकविधानानुसारं च एकादशे अहनि राज्ञा तेषां पुत्राणां नामकरणसंस्कारः गुरोः वसिष्ठस्य पौरोहित्ये कृतः। यथाकालमन्यान् चाग्रेतनान् तेषां संस्कारान् निष्क्रमणान्नप्राशनचूडाकर्मकर्णवेधोपनयनवेदारम्भादीन् स कारयामास। तत्र च काले सम्प्राप्ते ते सर्वे राजकुमारा बेदेषु, धनुर्वेदे, गजाश्वरथचर्यायु च नैपुण्यं लेभिरे तथा चात्र वर्णितं वाल्मीकिना-

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत्। ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकेयीसुतम्॥
सौमित्रिलक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा। वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥
तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्। तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः॥
बभूव भूयो भूतानां स्वयम्भूरिव संमतः। सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः॥
सर्वे ज्ञानोपसम्पन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः। तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः॥
गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु सम्मतः। धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः॥

ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः। पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः॥

अत्र राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति चिंतयामास धर्मात्मा सोपाध्यायः सबान्धवः॥[4]

विद्याध्ययनानन्तरं विश्वामित्रो महामुनिः दशरथसमीपमागत्य तं रामलक्ष्मणौ पुत्रौ तत्पार्श्वे यज्ञविघ्नकारिभ्यो राक्षसेभ्यो रक्षार्थं प्रेषयितुं ययाचे। पूर्वं तु राज्ञा मुनिप्रस्तावोऽस्वीकृतः, किन्तु विश्वमित्रेण पुनः पुनः तयोः कुमारयोः रक्षाभारं स्वस्योपरि ग्रहीतुं यदा प्रतिज्ञा कृता, प्रार्थना च कृता, तदा राजा दशरथः सहर्षं मुनये रामलक्ष्मणौ यज्ञरक्षार्थं दत्तवान्। अथ विश्वामित्राश्रमस्थौ रामलक्ष्मणौ ताटकां मारीचसुबाहुप्रभृतींश्च राक्षसान् युद्धे निजघ्नतुः। तत्रैव च विश्वामित्रादृषेः सकाशात् पुनः धनुर्वेदे सविशेषकौशलं तौ भ्रातरौ लब्धवन्तौ। इत्थं वसिष्ठविश्वामित्रादिभ्यो गुरुभ्यो विविधासु विद्यासु वेदोपवेदशास्त्रेषु च पारंगतत्वं ताभ्यां भ्रातृभ्यां भरतशत्रुघ्नाभ्यां चावाप्तम्।

३- तपोबलेन विश्वामित्रस्य राजर्षित्वाद्ब्रह्मर्षित्वावाप्तिः-

क्षत्रियकुलभूषणः सन्नपि गाधिनन्दनो विश्वामित्रो मुनिः तीव्रतपसा ब्राह्मणत्वं ब्रह्मर्षित्वं वा प्राप्तवान्। तथा चोक्तं रामायणे-

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः। विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन्॥

ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः। ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक॥

कृत्वा प्रणामं मुदितो व्याजहार महामुनिः। ब्रह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च॥

ओंकारोऽथ वषट्कारो वेदाश्च वरयन्तु माम्। क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि॥

विश्वमित्रौऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मयण्मुत्तमम्। पूजयामास ब्रह्मर्षि वसिष्ठं जपतां वरम्॥

एवं त्वनेन ब्राह्मण्यं प्राप्तं राम महात्मना। एवमुक्त्वा महातेजा विरराम द्विजोत्तमः॥

शतानन्दवचः श्रुत्वा रामलक्ष्मणसन्निधौ। जनकः प्रांजलिर्वाक्यमुवाच कुशिकात्मजम्॥[5]

इत्यनेन प्रसंगेन विज्ञायते यद् वेदानुसारिणी गुणकर्म स्वभावानुसारिणी वर्णानां व्यवस्था त्रेतायुगे लब्धप्रचारा आसीदिति। व्याकरणमहाभाष्येऽपि स्मर्यते- विश्वामित्रस्तपस्तेपे नानृर्षिः स्यां, नाब्राह्मणः स्यामिति स ऋषिर्बभूव, स ब्राह्मणो बभूवेति।

४- स्वयंवरेण विधिना रामादीनां विवाहः-

वैदिकमन्तव्यानुसारं मनुस्मृतौ अष्टौ प्रकारा विवाहा: ये वर्णिता: सन्ति तेषां स्वयंवरो विधिरप्यन्यतम:। पूर्वस्मिन् युगे क्षत्रिया: प्रायेण स्वयंवरविधिनैव विवासंस्कारं चक्रु:। तदनुसारेण रामायणेऽपि रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नानां इक्ष्वाकुवंशीय राजकुमाराणां विवाहा अप्यभूवन्। तत्र जनकपुत्र्या सीतया सह रामस्य, माण्डव्या सह भरतस्य, उर्मिलया सह लक्ष्मणस्य, श्रुतकीर्त्या च सह शत्रुघ्नस्य विवाह: सम्बभूव। शिवदत्तं महद्धनु: महाराजस्य जनकस्यपूर्वजानां पार्श्वे समागतमासीत्। तस्यैव धनुषउत्थापने तोलने च यो वीर: समर्थ: स्यात् तस्मा एव सीता देयेति सासुता जनकेन वीर्यशुल्कात्वेन प्रतिज्ञाता आसीत्। विश्वामित्रेण मुनिनाहूतो रामस्तद्धनुरुद्यमने सर्वथा समर्थ इति निश्चित्य जनकेन वैदिकेन पाणिग्रहणादि विधिना सीतया विवाहसंस्कारो रामेण सह सम्पादित: तथा चात्र रामायणे वर्णनं विद्यते-

तदेतद्देवदेवस्य धनूरत्नं महात्मन:। न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माकं पूर्वजे विभौ।।

अथ मे कृषत: क्षेत्रं लागलादुत्थिता तत:। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।।

भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धतमानां ममात्मजा। वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा।।

यद्यस्य धनुषो राम: कुर्यादारोपणं मुने। सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम्।।

जनकस्य वच: श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनि:। धनुर्दर्शय रामाय इति होवाच पार्थिवम्।।

तत: स राजा जनक: सचिवान् व्यादिदेश ह। धनुरानीयतां दिव्यं गन्धमाल्यानुलेपितम्।।

नृणां शतानि पंचाशद् व्यायतानां महात्मनाम्। मंजूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन।।

महर्षेर्वचनाद् रामो यत्र तिष्ठति तद्धनु:। मंजूषां तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत्।।

आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनु:। आरोपयित्वा मौर्वां च पूरयामास तदधनु:।।

तद्बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशा:। प्रत्याश्वस्ते जने तस्मिन् राजा विगतसाध्वस:।।

उचाव प्रांज्जलिर्वाक्यं वाक्यज्ञो मुनिपुंगवम्। भगवन् दृष्टीवीर्यो मे रामो दशरथात्मज:।।

अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया। मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक।।

सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता। .... ततो राजा विदेहानां वसिष्ठमिदमब्रवीत्।।

कारयस्व ऋषे सर्वामृषिभि: सह धार्मिक। रामस्य लोकरामस्य क्रियां वैवाहिकीं प्रभो।।

अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमंत्रपुरस्कृतम्। जुहावाग्नौ महातेजा वसिष्ठो मुनिनपुंगव:।।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणमूषिताम्। समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखे तदा।।

अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्। इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।।

प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना। पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा।।[३]

एवमेव लक्ष्मणादीनां विवाहस्य वैदिको विधिर्महाकविना सूपवर्णित उल्लेखनीयोऽस्ति- एवं दत्वा सुतां सीतां मन्त्रोदकपुरस्कृताम्। अब्रवीज्जनको राजा हर्षेणाभिपरिप्लुत। लक्ष्मणागच्छ भद्रं ते ऊर्मिलामुद्यतांमया। प्रतीच्छ पाणिं गृह्णीष्व मा भूत्कालस्य पर्ययः। तमेवमुक्त्वा जनको भरतं चाभ्यभाषत:।। गृहाण पाणिं माण्डव्याः पाणिना रघुनन्दनः। शत्रुघ्नं चापि धर्मात्मा अब्रवीनिमथलेष्वरः।। श्रुतकीर्तेर्महाबाहो पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।..... चत्वारस्ते चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः। अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा वेदिं राजानमेव च।। ऋषींश्चापि महात्मानः सहभार्या रघूद्वहाः। यथोक्तेन ततश्चक्रुर्विवाहं विधिपूर्वकम्।। इदृशे वर्तमाने तु तुर्योद्घुष्टनिनादिते। त्रिरग्निं ते परिक्रम्य ऊहुर्भार्या महौजसः।

५- सन्ध्योपासनाग्निहोत्रादि-पंच महायाज्ञानामनुष्ठानं, गृहे कुटुम्बिनां परस्परं स्नहेपूर्णो गुरुशुश्रूषाभावश्चः-

अथ वेदानुसारं मनुस्मृत्यादौ शतपथब्राह्मणे च यद् ब्रह्मदेवर्षिपितृवैश्वदेवातिथिनामका पंच महायज्ञाः गृहस्थानामार्याणां कृते विहिताः सन्ति तेषां स्थाने स्थाने समुल्लेखो रामायणेपिद्रष्टुं शक्यते। अत्र विषये कानिचिदुदाहरणानीह प्रस्तूयन्ते। तद्यथा-

(क)- अनंगाश्रमे तत्रत्यैर्मुनिभिर्विश्वामित्रस्यमुनेः रामलक्ष्मणयो पाद्यार्घ्यातिथ्यादिना सत्कारस्य सन्ध्याजपस्य ---

1- कृषतः क्षेत्रात् सीताया अलौकिकी उत्पत्तिरियमरियंमाश्चर्यमयी

2- सृष्टिनियमविरुद्ध कथमेतत् संगतं समीचीनं विश्वासाहं च स्यादिति चिन्त्यम्? लेखकः

च वर्णनमित्थं क्रियते-अर्घ्यं पाद्यं तथातिथ्यं निवेद्य कुशिकात्मजे। रामलक्ष्मणयोः पश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम्। सत्कारं समनुप्राप्य कथाभिरभिरंजयन्।। यथार्हमजपन् सन्ध्यामृषयस्ते समाहिताः।[४]

(ख)-सिद्धाश्रमे विश्वामित्रेण सह रामलक्ष्मणौ प्रातःकाले सन्ध्यापोसनमग्निहोत्रं चाकार्ष्टाम्यथानियमम्-

प्राभातकाले चोत्थाय पूर्वां सन्ध्यामुपास्य च। प्राशुची परमं जाप्यं समाप्य नियमेन च।। हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्। स हि रामं प्रशस्यैवं ताभ्यां सन्ध्यामुपागमत्। प्रभातायां तु शर्वयां। कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ। विश्वामित्रमृषींश्चान्यान् सहिताविभजग्मतुः।[9]

(ग)- अयोध्यायां रामस्य राज्यभिषेकात् पूर्वं सीतारामाभ्यां सन्ध्याग्निहोत्रवर्णनम्- गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः। सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्। प्रगृह्य शिरसा पात्रिं हविषो विधिवत्तः। महते देवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानने। एकयामावशिष्टायां रात्र्यां प्रतिविबुध्य सः। अलंकारविधि सम्यक्कारयामास वेश्मनः। तत्र श्रृण्वन् सुखावाचः सूतमागधवन्दिनाम्। पूर्वां सन्ध्यामुपासीनो जजाप सुसमाहितः।[10]

(घ)- राज्ञी कौसल्यापि नित्यं सन्ध्याग्निहोत्रपरायणासीत्- तथा च वर्णनम्- कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता। प्रभाते चाकरोत् पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी। सा क्षोमवसना दृष्टा नित्यं व्रतपरायणा। अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला। प्रविश्य तु तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्। ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम्। देवकार्यनिमित्तं च तत्रापश्यत्समुद्यतम्। दध्यक्षतं घृतं चैव मोदकान् हविषस्तथा।[11] वनगमनावसरे माता कौसल्या साश्रुमुखी सान्त्वयन्ती च पुत्रं राममित्थमाशीर्वचनानि ब्रूते ''यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च। स वै राघव-शार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु। पितृशुश्रूषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा। सत्येन च महाबाहो चिरंजीवाभिरक्षितः।। समित्कुशपवित्रापि वेद्यश्चायतनानि च। स्थण्डिलानि च विप्राणां शैला वृक्षाः क्षुपा ह्रदाः। पतंगाः पन्नगाः सिंहास्त्वां रक्षन्तु नरोत्तम। स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा। लोकपालश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा। ऋतवः षट्च ते सर्वे मासाः संवत्सराः क्षपाः। दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा। (अ0 का0 025-3, 6-10) एवमेव सन्ध्याग्निहोत्रातिथिसत्कारादिसम्बन्धे अन्यान्यपि वर्णनानि सन्ति रामायणे द्रष्टव्यार्हाणि। यथा-

(ङ.)-रामवनगमनानन्तरं शोकाकुलितमनसामयोध्यावासिनां दशावर्णनम्- नाग्निहोत्राण्यहूयन्त नापचन् गृहमेधिनः। अकुर्वन्न प्रजाः कार्य सूर्यश्चान्तरधीयत (अ0का0 41-9) अपि च, रामोऽपि रात्रिशेषेण तेनैव महदन्तरम्। जगाम पुरुषव्याघ्रः पितुराज्ञामनुस्मरन्।। तथैव गच्छतस्तस्य व्यपायाद् रजनी शिवा। उपास्य तु शिवां सन्ध्यां विषयानत्यवगाहत। (तदैव, 2/49/1,2) ततश्चीरोत्तरासंगः सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्।। जलमेवाददे भोज्यं लक्ष्मणेनाहृतं स्वयम्। (2/50/48, 49), स तं वृक्षमासाद्य सन्ध्यामन्वास्य पश्चिमाम्। रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम्। (2/53/) हुताग्निहोत्रं (भरद्वाजमृषिं) दृष्ट्वैव महाभागः कृतांजलिः। रामः सौमित्रिणा सार्ध सीतया चाभ्यवादयत्।। तस्य

तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमत:। उपानयत धर्मात्मा गामर्घ्यमुदकं तत:। नानाविधानन्नरसान् वन्यमूलफलाश्रयान्। तेभ्यो ददौ तप्ततपा वासं चैवाभ्यकल्पयत्। (2/54/12, 17, 18) अज्ञानाद् दशरथस्य वाणेन हतं निजपुत्रं श्रवणकुमारं संस्पृशन् अन्धस्तत्पिता विलपति को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशन:। शलाधयिष्य त्युपासीन: पुत्रशोकमयार्दितम्। कंदमूलफलं हृत्वा को मां प्रियमिवातिथिम्। भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमजयकम्। (2/64/33,39), कौशल्या कैकेयीं निन्दन्ती तत्सुतं भरतमाह' अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्। अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघव:। (2/75/41) (वाग्यतस्ते) रामलक्ष्मणौ सीता च त्रय: संध्यां समुपासन्त संहिता:। (2/87/19), रजन्यां सुप्रभातायां भ्रातरस्ते सुहृद्वृता:। मन्दाकिन्यां हुतं जप्यं कृत्वा राममुपागमन्। (2/105/2), सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकम्पां प्रियवादितां च। द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्त:। (2/109-31), अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधिपूर्वकम्। कपोतांगरुणो धूमो दृश्यते पवनोद्धत:। (2/119/6), तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान्। आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान् वनगोचरान् (2/119/17), प्रभाते तु सहस्राक्षे राघव: सपरिच्छद:। अग्निहोत्रमुपासीनं शरभंगमुपागमत्। (अ0का0 05-25), तमेवमुक्त्वोपरमं राम: सन्ध्यामुपागमतम्। अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तत्र वासमकल्पयत्। सुतीक्ष्णस्याश्रमे रम्ये सीतया लक्ष्मणेन च। तत: शुभं तापसयोग्यमन्नं स्वयं सुतीक्ष्ण: पुरुषर्षभाभ्याम्। ताभ्यां सुसत्कृत्य ददौ महात्मा संध्या निवृत्तौ रजनीं समीक्ष्य।। (3-7-22, 23,24), रामस्तु सह सौमित्रि सुतीक्ष्णेनाभिपूजित:। परिणाम्य निशां तत्र प्रभाते प्रत्यबुध्यत। अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणौ। काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने। उदयंतं दिनकरं दृष्ट्वा विगतकल्मषा:। सुतीक्ष्णमभिगम्येदं श्लक्ष्णं वचनमब्रुवन्।। (3-8-1, 3,4), एवं कथयमानस्य तस्य सौमित्रिणा सह। रामस्यास्तं गत: सूर्य: संध्याकालोऽभ्यवर्त्तत। उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सह भ्रात्रा यथाविधि। प्रविवेशाश्रमपदं तमृषिं चाभ्यवादयत्। (अगस्त्यम्)। (3-8-11,68, 69), अगस्त्य मुनिना कृतो रामादीनामातिथ्यम् - प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकै:। कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत्। अग्निं हुत्वा प्रदायार्ध्यमतिथीन् प्रतिपूज्य च। वानप्रस्थेन धर्मेण स तेषां भोजनं ददौ (3/12/26, 27), राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथ:। पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्त: प्रियातिथि:। एवमुक्त्वा फलैर्मूलै: पुष्पैश्चान्यैश्च राघवम्। पूजयित्वा यथाकामं ततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत्। (3/12/31), लंकायां सीतान्वेषणार्थम् अशोकवनिकामुपेतो हनुमान् अनुमिमीते- सन्ध्याकालमना श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी। नदीं चेमा शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी। (सुन्दरकाण्डम् 14-49)।

इत्येभिरनेकप्रमाणभूतैरुदाहरणैरिदं सुस्पष्टं भवति यद् वेदविहितान् पंचमहायज्ञान् ब्रह्मयज्ञं (सन्ध्योपासनं, देवयज्ञम् ,अग्निहोत्रम्), पितृयज्ञं पूर्वजगुरुणां मातापित्रादीनां सेवाशुश्रूषाज्ञापालनादिकर्म),

बलिवैश्वदेवयज्ञम् अतिथियज्ञं अतिथिपूजनसत्कारम्। रामायणोक्ताः सर्वे आर्यस्त्रीपुरुषाः कुर्वन्ति स्म। सर्वेषां रघुवंशीय-राज्ञां दशरथरामादीनां सीताकौसल्यादीनां नारीणां तत्पुरोहितवसिष्ठादीनां वनेषु तपश्चरतां मुनितापसर्षीणां च समानमिदं सनातनं वैदिकं धर्ममासीत्। वेदेषु हि - उप त्वग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि।[12] श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।।[13], समिधाग्निं दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन।[14] इत्येवमादयो भूयांसो मन्त्राः सन्ध्याग्निहोत्रादिविषयकाः सन्ति। मनुस्मृतावपि सुस्पष्टमुक्तम्- स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि। पितृन् श्राद्धैश्च नृन्नैर्भूतानि बलिकमर्णा। कुर्यादहरहः श्राद्धन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।। अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवौ बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।[15] इत्यादि

अथ कुटुम्बमध्ये गुरुन् मातापित्रादीन् प्रति पुत्रादीनां सेवाशुश्रूषाभावः, आज्ञाकारित्वम् च, भातृणां मध्ये परस्परं स्नेहप्रेमौदार्यपूर्णः सौहार्द्रभावः, पतिपत्न्योः पारस्परिकी प्रीतिः पातिव्रत्यम्, भार्यातिरिक्तासु परस्त्रीषु मातृवदादरभावः। इत्यादिसम्बन्धे रामायणे आदर्शभूतानि उदाहरणानि सन्ति। कानिचित्तेषामिहोद्ध्रियन्ते। यथा तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः। धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः। बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः। रामस्य लोकारामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः। सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः। लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिः प्राण इवापरः। न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः। मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हिं तं विना। भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः। प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत् तथा प्रियः। स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः। बभूव परप्रीतो देवैरिव पितामहः।। ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः। पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः। 18-24, 28..., 33,36,। इति। अपि च।

चतुर्दशवर्षाणि वने निवासस्य पितुराज्ञां शिरसा सन्धार्य सविनयं रामस्येयं भणितिरपूर्वा खलुविलपंतीं तथा दीनां कौसल्यां जननी ततः। उवाच रामो धर्मात्मा वचनं धर्मसंहितम्। नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम। प्रसादये त्वां शिरसा गन्तमुमिच्छाम्यहं वनम्। नाहं धर्ममपूर्वं ते प्रतिकूलं प्रवर्तये। पूर्वैरयमभिप्रेतो गतो मार्गोऽनुगम्यते। तदेतद् तु मया कार्य क्रियते भुवि नान्यथा। पितुर्हि वचनं कुर्वन्न कश्चिन् नाम हीयते। (1-21-30, 36, 37), पिता हि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्। तस्माद्दैववतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः। अर्थितो हयस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव। मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये। पुरं च राष्ट्रं च महि च केवला मया विसृष्टा भरताय दीयताम्। अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन् वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम्। मया विसृष्टां भरतो महिमिमां सशैलखण्डां सपुरोपकाननाम्। शिवासु सीमास्वनुशास्तु केवलं त्वया यदुक्तं नृपते तथास्तु तत्।। (2/34/50, 52,55,56)।

पत्या रामेण सह वनं गन्तुं प्रवृत्तायै सीतायै माता कौसल्या यदा धर्ममुपदिशति तदा सीताया प्रत्युक्तिरपीह उल्लेख्यास्ति कृतांजलिरुवाचेदं श्वश्रूमभिमुखे स्थिता। करिष्ये सर्वमेवाहमार्या पदनुशास्ति माम्। अभिज्ञास्मि यथा भर्तुर्वर्तितव्यं श्रुतं च मे। नातंत्री विद्यते वीणानाचक्रो विद्यते रथः। नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा। मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितय तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत्। साहमेवं गता। श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा। आर्ये किमवमन्येयं स्त्रिया भर्त्ता हि दैवतम्। (2/39/26, 27,29,30,31) एवमेव सुमित्राया मातुः रामेण सह वनगमनावसरे सुतं लक्ष्मणं प्रति दत्तो धर्मोपदेशः स्वर्णाक्षरेषु उल्लेखनीयोऽस्ति-रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्। अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ।(2-40-9), सहर्षं पितुराज्ञामनुपालयतो रामस्य यथा राज्याभिषेकत्यागः अपूर्वः अद्भुतश्च, तथैव भरतस्यापि तस्मै दत्तस्यायोध्याराज्यस्यत्यागोऽद्भुतः, भ्रातृस्नेहादरस्य चापूर्वमुदाहरणम्। मातरं कैकेयीं प्रति भरतस्येयमुक्तिः - नहि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति। (2-37-29), चित्रकूटे भरतादिना सह समागताया मातुः कौसल्यायाः पुत्रवधूं सीतां प्रति दुहितृवदालिंगनं सीतायाश्च श्वश्रूचरणारविन्देष्वभिवादनमपूर्वमिवसीतापि चरणांस्तासामुपसंगृह्य दुःखिता। श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षी सम्बभूवाग्रतः स्थिता। तां परिष्वज्य दुःखार्ता माता दुहितरं यथा। वन वासकृतां दीनां कौसल्या वाक्यमब्रवीत्।,(2-104-22,23),

तदेतानि सर्वाणि उदाहरणानि वैदिकीं शिक्षां वैदिकीं संस्कतिं चानुसरन्ति। तथा चोपदिश्यते वेदे-

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥[16]
सम्राज्ञी श्वशुरे भव। सम्राज्ञी श्वश्रवां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥[17]

(६)- राजधर्मवर्णनम्-

वाल्मीकिरामायणे यथाप्रसंगे वेदशास्त्रानुसारं राजधर्मस्य विषयोऽपि वर्णितः। अत्र विषये एतत्सम्बन्धिताः कतिचन श्लोका उदाहरणत्वेन द्रष्टुं शक्याः-

रामायणस्य बालकाण्डे मानवेन्द्रेण मनुना निर्मितायाः कोसलजनपदे पावनसलिलाया सरय्वा नद्याः तटे अयोध्यानाम्न्या राजधान्यास्तत्र। राज्यशासनं कुर्वतो राज्ञो दशरथस्य वर्णनं राज्यस्य तत्र निवासिनां जनानां च धनधान्यादिबहुविधसम्पदुत्कर्षस्य च वर्णनं विद्यते। तत्रनैकोऽपि पुरुषः कामी,

कदर्यः, नृशंसः, अविद्वान् नास्तिको वा द्रष्टुं शक्यः। सर्वे नरा नार्यश्च धर्मशीलाः, सुसंयताः, मुदिताः, शीलवृत्ताभ्याम् ऋषिवत्पवित्राचारविचारयुक्ताश्च आसन्। यथा-

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्। निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्।।
अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता। मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।।
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी। श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथाः।।
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता। मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः।।
तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः। पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा।।
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्। सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः।।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्। शालितण्डुलसम्पूर्णामिक्षुकांडरसोदकाम्।।
तस्यांपुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः। दीघदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः।।
इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी। महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः।।
यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता। तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता।।
तस्मिन् पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः। नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यावादिनः।
नाल्पसंनिचयः कश्चिदासीत् तस्मिन् पुरोत्तमे। कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्।।
कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्। द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।
सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः। मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः। कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः।
स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः। दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे।।
दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः। सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे।।
क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः। शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानुपचारिणः।।

(बा0 का0 5/5....10,16,17,. 6/1,2,4,6,....9, 12/13,18,19)

वनं गतेषु सीतारामलक्ष्मणेषु पुत्रवियोगशोकेन च निधनं प्राप्ते राज्ञि दशरथे, तदानीं भरत शत्रुघ्नयोश्च मातामहनिवेशने कैकयेषु गतयो:, राजविहीना अयोध्या संजाता अराजकता तु राज्ये दु:खदा भवति। अतोऽवस्थामिमां विलोक्य मार्कण्डेय-मौद्गल्य कश्यप – गौतम- जाबालि वामदेव – कात्यायना राजकर्तारो द्विजातयो राजपुरोहितं वसिष्ठमभिमुखा भूत्वोंचु:। इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम्। अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्। नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वन:। अभिवर्षति पर्जन्यो मही दिव्येन वारिणा। नाराजके जनपदे बीजमुष्टि: प्रकीर्यते। नाराजके पितु: पुत्रो भार्यावा वर्तते वशे। अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके। इदमत्याहितं चान्यत्कुत: सत्यमराजके। नाराजके जनपदे कारयन्ति सभां नरा:। उद्यानानि च रम्याणि हृष्टा: पुण्यगृहाणि च। नाराजके जनपदे यज्ञशीला द्विजातय:। सत्राण्यन्वासते दांता ब्राह्मणा: संशितव्रता:। नाराजके जनपदे धनवंत: सुरक्षिता:। शेरते विवृतद्वारा: कृषिगोरक्षजीविन:। नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिन:। गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिता:। नाराजके जनपदे चरत्येकचरो वशी। भावयन्नात्मनाऽऽत्मानं यत्र सायं गृहो मुनि:। नाराजके जनपदे योगक्षेम: प्रवर्तते। न चाप्यराजके सेना शत्रून् विषहते युधि। नाराजके जनपदे हृष्टै:परमवाजिभि:। नरा: संयान्ति सहसा रथैश्च प्रतिमण्डिता:। यथाह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम्। अगोपाला यथागावस्तथा राष्ट्रमराजकम्। ध्वजो रथस्य प्रज्ञानं धूमो ज्ञानं विभावसो:। तेषां यो नो ध्वजो राजा स देवत्वमितो गत:। नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित्। मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम्। ये हि संभिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्नसंशया:। तेऽपि भावाय कल्पन्ते राजदण्डनिपीडिता:। यथा दृष्टि: शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते। तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभव: सत्यधर्मयो:। राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्। राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्। यमो वैश्रवण: शक्रो वरुणश्च महाबल:। विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता तत:।।

स न: समीक्ष्य द्विजवर्यवृत्तं नृपं विना राष्ट्रमरण्यभूतम्। कुमारमिक्ष्वाकुसुतं तथान्यं त्वमेव राजानमिहाभिषेचय। (अयो0 का0 67/8....13, 18,22.....25, 29......35,38), इत्येवमादयो दोषा राजविहीनस्य राष्ट्रस्य भवन्तीति निपुणं रामायणे राज्ञो धर्मात्मन:, श्रेष्ठाशासनस्य वा महत्त्वं वर्णितं विद्यते।

धर्मज्ञ:सत्यसंधश्च प्रजानां हिते रतो चित्रकूटे भरतेन सबहुमानं प्रर्थित: अयोध्यां प्रतिनिवर्त्य राज्यभारं वोढुमेभिर्वाक्यै: – कैकेयीं मां च तातं च सुहृदो बान्धवांश्च न:। पौरजानपदान् सर्वांस्त्रातुं सर्वमिदं भवान् क्व चारण्यं क्व जटा: क्व च पालनम्। ईदृशं व्याहतं कर्म न भवान् कर्तुमर्हति। एष हि प्रथमो धर्म: क्षत्रियस्याभिषेचनम्। येन शक्यं महाप्राज्ञ प्रजानां परिपालनम्।। (2-106-17....19), जाबालिना मुनिनापि राम इत्थं निवेदित: पित्र्यं राज्यं समुत्सृज्य स नार्हसि नरोत्तम। आस्थातुं कापथं

दु:खं विषमं बहुकण्टम्। समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय। एकवेणीधरा हि त्वा नगरी संप्रतीक्षते। (2-108-7,8) तदा रामस्येदं प्रत्युत्तरं वचो नूनं महत्वोपेतंवर्तते, येन हिं लोकाभिरामो रामो मर्यादापुरुषोत्तमत्वेन विख्यातोऽभूज्जगतीतले''- निर्मर्यादस्तु पुरुष: पापाचारसमन्वित:। मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शन:।। कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम्। चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाडीशुचिम्।। कामवृत्तोऽन्वयं लोक: कृत्स्न: समुपवर्तते। यद्वृत्ता:सन्ति राजानस्तद्वृत्ता: सन्ति हि प्रजा:। सत्यमेवानृशंसं राजवृत्तं सनातनम्। तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोक: प्रतिष्ठित:।। सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्म: सदाश्रित:। सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान् नास्ति परं पदम्।। दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च। वेदा: सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्।। सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये। सत्यप्रतिश्रव: सत्यं सत्येन समयीकृतम्।।

स्थिरा मया प्रतिज्ञाता प्रतिज्ञा गुरुसंन्निधौ। प्रहृष्टमानसा देवी कैकेयी चाभवत्तदा। वनवासं वसन्नेव शुचिर्नियतभोजन:। मूलपुष्पफलै: पुण्यै: पितृन् देवांश्च तर्पयन्।। (2-109-3, 4,9,10,13,14,16,25,26)

स एष राजधर्म मूलतो वेदेषु, मनुस्मृतौ, महाभारतादिषु च ग्रन्थेषु विस्तरेणोपदिष्टो विवृतश्च विद्यते। पुराकाले राज्यशासने प्रधानतया क्षत्रियाणामेवाधिकार आसीत्। अतएव रामायणे खल्वपि महाकविना राममुखान्नि:सृतं वचनमित्थमस्ति वर्णितम्- क्षत्रियाणां तु वीराणां वनेषु नियतात्मनाम्। धनुषा कार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम्। किं नु वक्ष्याग्रहं देवि त्वयैवांक्तमिदं वच:। क्षत्रियैर्धायते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।। ते चार्ता दण्डकारण्ये मुनय: संशितव्रता:। मां सीते स्वयमागम्य शरण्यं शरणं गता:। (अर. का. 09/26, 10-3,4)

रामायणे वृष्टिनिबन्धनं प्रकृतिचित्रणम्

डॉ० भारतेन्दु पाण्डेयः
वरिष्ठ प्रवक्ता: - संस्कृतविभागे
नानकचन्द-आंग्ल-संस्कृत महाविद्यालये,
मेरठ (उ० प्र०)

'लोको विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि' इत्यासूत्रितं शास्त्रकृता। परम् यतो वर्णनीयं लोकमन्तरेण तद्वर्णनाविशेषनिपुणकविकर्मभूतं काव्यं क्व उदियादित्येवाकलय्य स्वसूक्ष्मैक्षिकया तेन (शास्त्रकारेण) विद्यातोऽपि, षडङ्गात् प्रकीर्णादपि लोकस्यैव प्राथम्यं काव्याङ्गेषु प्रतिपादितम्। तत्र लोकेऽपि प्रकृतिरेव कवीनां कारयित्रीं प्रतिभां सर्वतोऽधिकं कृतार्थयति इत्यत्र विश्ववाङ्मयमेव प्रामाण्यं भजते।।

स्वयमस्मदीयं वाल्मीकिरामायणमेव प्रोक्तां प्रकृत्यालम्बपरम्परां काव्यानां प्रवर्तयत् परिलक्ष्ते। तत्र बाह्यप्रकृतिमतिरिच्य आन्तरिकी जीवानां प्रकृतिरपि प्रकर्षेण चित्रिता वर्तते। तत्र वर्षर्तुवर्णनपरं बाह्यप्रकृतिचित्रणमेवादाय तत्रत्यं प्रस्तूयते किंचित्।

वाल्मीकिना रामायणे विहितं प्रावृण्मूलकं प्रकृतिचित्रणम् (अ) नभोमेघपृथ्वीपर्वतवातप्रपातादिगतत्वेन, (आ) उद्भिज्जगतत्वेन, (इ) तिर्यङ्मनुष्यादिगतत्वेन चेत्यनेकधा विश्लेषितुं शक्यते। यथास्ति सार्वदिकं सार्वत्रिकं च सत्यं यन मेघाच्छन्ननभोदशयैवानुमीयन्ते वर्षास्तथैव रामेणापि माल्यावत्पृष्ठाधिष्ठितेन विधीयतेऽभिधीयते चेत्थम्-

अयं स कालः सम्प्राप्तः समायोऽद्य जलागमः। संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः।[1]

अग्रेऽपि वाल्मीकि राममुखेन तात्कालिकव्योमविच्छत्तीर्दर्शं दर्शं यदुत्प्रेक्षते यदुपमिमीते च तत्तु तदीयकविताकृतिकीर्तिकेतुत्वेनैवावभाति। तद्यथा-

'सन्ध्यारागोत्थितेस्ताम्रैरन्तैष्वपि च पाण्डुभिः। स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम्।।[2]**'**

'मन्दमारुतिनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरंजितम्। आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम्।।[3]**'**

'कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् । अन्तःस्तनितनिर्घोषं सवेदनमिवाम्बरम्।[4]**'**

अत्रैतेषु प्रकृतेऽम्बरे कल्प्यमाना बद्धव्रणता कामातुरता संवेदनता च चारुत्वेन स्वेन

कियच्चमत्करोति चित्तानि इत्यत्र चेतांस्येव सचेतसां साक्षीणि। पुनर्वाल्मीकिः प्रकाशाप्रकाशमयस्य प्रकीर्णाम्बुधरस्य मध्ये मध्ये पर्वतनिरुद्धस्य च नभसः शान्तमहार्णवरूपेण सादृश्यमुपनिबध्नन्।[5]

वस्तुतस्तद्वर्णनस्वाभाविकत्वमेव पुरस्करोति।

प्रावृट्कालिकमेघचित्रणे पर्वतगजेन्द्रसमुद्रादयः उपमानानि आदिकवये रोचन्तेतमाम्। एतानि मेघगतानां तत्तद्वैशिष्ट्यानां सविशेषवर्णनतयैवोपयुज्यन्ते रामायणे। यथा–

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्रकूटाकृतिः सन्निकाशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थः॥[6]

इत्यत्र शैलेन्द्रकूटानि मेघस्वरूपस्य गजेन्द्रविशेषाश्च नादस्य निरूपणार्थमादत्ताः कविना। इत्थमेव–

तडित्पाताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम्।
विभान्ति रूपाणि बलाहाकानां रणोत्सुकानामिव वारणानाम्॥[7]

इत्यत्र महारवबलाहकनिरूपणायैव वारणा वृता वाल्मीकिना। वस्तुतो मेघनां सक्तता पर्ववत्ता च शैलरूपोपमानैः सह तदुपमार्थं कविमामन्त्रयेते–

नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघा प्रतिभान्ति सक्ताः।
दवाग्निदग्धेषुः दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः॥[8]

परम् उपरिष्टात् अधोऽवलम्बिपर्ववत्ताया पराकाष्ठाभूतं चित्रन्तु तदा प्रादुर्भवति, यदा सा (पर्ववत्ता) रामायणकर्तुः अर्थदृष्टौ इत्थं सोपानायते–

शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः।
कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः॥[9]

अत्र

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः।
महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य-विश्रम्य पुनः प्रयान्ति।[10]

इत्येनन सबलाकबलाहकानां सविश्रमं प्रयाणं यथा-चित्र्यते महर्षिणा, तेन मेघदूतमपि उपकृतं

भवति।[11] अस्मिन् प्रकरणे मेघानां भू--नदी-तटाक-सरो वापीप्रभृतिसकलसत्त्वापवाहनसामर्थ्यमपि अत्यर्थसमर्थतया प्रास्तावि कविना।[12] वातप्रवेगादिस्वभाववर्णनन्तु तत्र पदे पदे विद्यत एव, परं प्रावृषेण्यवायोः सान्द्रता स्वाभाविकी यदा अञ्जलिपानशक्यतया कल्प्यते रामायणकृता,[13] नूनं मनोमयूरं नर्तयत्येव सा।

ग्रीष्मर्तोरनन्तरं वर्षागमसमये पृथिवीगततापकारणात् वृष्टिजलानि कथं वाष्पीभावमापद्यन्त इत्यत्र काव्यमयं प्रस्तवनं रामायणे मिलति। तद्यथा-

एषा घर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति।।[14]

वर्णनैषा रामायणीया नान्येन केनापि प्रत्युत कविकुलगुरुणैव प्रायो यथावदुपयुज्यते कुमारसम्भवीये पंचमसर्गे।[15]

पुनश्च वृष्टिजन्यसृष्ट्यनन्तरं शोभां कां धरणी धरतीत्यपि ज्ञापयत्याद्यकविः-

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन।।[16]

यावत् वृष्टिकालिकपर्वतवर्णनप्रसंगो वाल्मीकीयो विद्यते, मेघेषु कृष्णाजिनारोपेण, धारासु यज्ञोपवीतारोपेण मारुतापूरितगुहाध्वनितशब्देन प्राधीतत्व - कल्पना पर्वतगता[17] वस्तुतः पर्वतसामान्य एव वृष्टेः समग्रचित्रमेव पुर उत्किरन्तीव भाति।। इत्थमेव पर्वतानां घनाम्बुकुम्भाभिषिच्यमानतादीनि बहूनि सुरूपरूपाणि अत्र शोभामानानि विद्यन्ते।[18] तोयधारासु तत्प्रपातेषु वर्णनाविषयतामापन्नेषु मुक्ताः तत्कलापा एव वा वाल्मीकये बहुरोचन्त उपमानत्वेन।[19] विपुलवर्षप्रवेगपतनादूर्ध्वं प्रणष्टकूलविप्रतिपन्नमार्गनदीनाम् सुतरामेव स्वाभाविको निबन्धो वर्तते रामायणे[20] नदीनां समुद्वाहितचक्रवाकत्वं तटापवाहनं च तासां तत्र चित्रिमतिचित्तचमत्कारि।[21] एवमेव शैलापगानामधो लिखिते निरूपणे। स्वभावोक्तिरेवालंकारसार्थं समग्रमपि सभातिशय्य विराजते वाल्मीकीया-

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति।।[22]

अत्र प्रकरणे यावद् उद्भिज्जनिरूपणागतः प्रश्नोऽसि, वक्तव्यमेव यत् वाल्मीकेः कवनकला

सर्जार्जुनकदम्बानां रामस्यापि शोकाभिभूतस्य कामसन्दीपनसमर्थानां पुष्पितकुटजानां सङ्गुम्फने स्वयमपि फुल्लोत्फुल्लेवावभाति।[23] अत्रैव सन्दर्भे वर्णिता वनानामपराह्णशोभा कियत्स्वाभाविकीत्यस्ति द्रष्टव्यम्-

वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि पश्यापराह्णेष्वधिकं विभान्ति॥[२४]

परन्तु वर्षर्तौ प्रकृतेरुपहारभूतानां जम्ब्वाम्राणामत्रत्या वर्णनाऽवश्यमास्वाद्या वर्तते, यथा-

(क)- रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं प्रभुज्यते जम्बुफलं प्रकामम्।
अनेकवर्णं पवनावधूतं भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम्॥[25]

(ख)- अंगारचूर्णोत्करसन्निकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा निपीयमाना इव षट्पदौघैः॥[26]

रामायणस्य वृष्टिनिबन्धनेऽस्मिन् प्रकृतिचित्रणे तिर्यङ्मनुष्यादिगतं निरूपणं बहु वैभवं बिभर्ति। तत्र इन्द्रमोपेतिनामकात् कीटात् प्रभृति देवदेवं केशवमपि निरूपयन्ती कवेर्बहुव्यापिका भारती दृग्गोचरी भवति। कविः कथयति यत् ऋतावस्मिन् शाद्वलानि शक्रगोपोपस्थित्यैव चित्रितानि भवन्ति। सः प्रतिपादयति यत् तिर्यग्भ्य आरभ्य केशवं यावत् समस्तैवैषा सृष्टिर्वृष्टावस्यां हर्ष-काम निद्रादिभावभाविता भवति।[27] अत्र वर्षर्तौ जायमानं मेघरवं प्रतिवारणनादतया शंकमानस्य युयुत्सोर्मत्तगजेन्द्रस्य उत्तरोक्तामिमां यां स्वभावोक्तिं वाल्मीकिमतिरिच्यान्यो रचयितुं न प्रभवति, सैषा-

मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशंकी मत्तो गजेन्द्रः प्रतसन्निवृत्तः॥[२८]

अत्रान्या अपि काश्चन स्वभभावोक्तयः प्रसन्नपदपदार्थपुरस्कृताः साक्षात् भावकभावपयोधिमेध यन्तीवः, तद्यथा-

(क)- मुक्तासमाभं सलिलं पतद् वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति।[29]

(ख)- स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसन्निरुद्धाम्।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहतानदन्ति॥[30]

(ग)- धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति।।[31]

अत्र यथासंख्योपमाभ्यामनुपमाम्यामलंकृता या प्रकृतिः कविना लब्धवर्णैन वर्णसमुदायभूतशब्दरूपवर्णैः अचित्र्यत साऽपि चित्तं सविशेषं रञ्जयत्येव, यथा-

(क)- वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः।।३२

(ख)- मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती सम्मोदिता भाति बलाकपंक्तिः।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य।।[३३]

तत्र वृष्टिनिबन्धना मानवीयाऽपि प्रकृतिः तत्तद्वर्णविशेषविश्लेषवत्तया निरूपिता रामायणे। प्रतिपादयति कविर्यत् ऋतावस्मिन्- वसुधाधिपानां यात्रा स्थिता भवति, 'प्रवासिनो नरः स्वदेशान् यान्ति''[34] अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषु (मानवानाम्) यानानि मार्गेषु न सम्पतन्ति''[35] इत्यादि। राजन्यानां दैनिके सैनिके राजनैतिके चाचारे वृष्टिसलिलस्य कः कियांश्च प्रभावः इत्यस्यैकयैवाधो निर्दिश्यमानयाऽनुष्टुभा कविर्वैशद्येनेत्थं वर्णनं विदधाति-

वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः।।३६

भरतमाध्यमेनात्र कवेर्भणितिर्विद्यते यद् 'आषाढीमभ्युपगतो' (राजा) निवृत्तकर्मायतनः संचितसञ्चयश्च''[37] भवति।

ब्राह्मणानां प्रकृतिः प्रावृषि का भवतीदमपीत्थं निगदति काव्यकृत्-

मासि प्रौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः।।[38]

अत्र काव्यशास्त्रदृष्ट्या वक्तव्यमेव यत् प्रभूतेऽस्मिन् प्रकृतिचित्रणे क्रियमाणेऽपि वर्णनमेतद्धि कथमपि " अंगिनोऽननुसंधानम् न दुराप्नोति, यत इमं दर्श दर्श लक्षणग्रन्थाः तत्सम्प्रदायाश्च विविधा जनुर्लेभिरे, स (न केवलं लक्ष्यकृताम् अपितु लक्षाणकृतामप्युपजीव्यः

लक्ष्यकृच्चूडामणिर्वाल्मीकिरुपायैरुपमादिभिर्यथावसरमंगिपरामर्शपुरस्सरमेव वर्तते प्रकृत्यादिचित्रणे।[39]

स्वकविधर्ममक्षरशोऽभिरक्षन्नपि आदिकविरत्र रामायणे भास्करकराणामपाञ्च समुद्रगतानां मध्ये कः सम्बन्धो, वर्षासु का तद्भूमिका चैवमाद्यात्मकं वृष्टिविज्ञानमपि निर्वक्ति। इत्थमेव वृषर्तुवातानाम् अञ्जलिपानशक्यतानिरूपणद्वारा सान्द्रत्वार्द्रत्वादि तेषां (वातानाम्) प्रकाशयन्ती ऋतुविज्ञानवैशारदी चापि वाल्मीकीया मुहुर्मुहः मुखरीभवति रामायणे।[40]

अन्ते चोपसंहर्तुं शक्यते यत् उक्तप्रकरणे प्रकृतिचित्रणं काव्यसामग्री सम्भारसम्भृतं रामायणकृताऽकारि। अत्र तोय-पयोद- विद्युदादयो वृष्ट्युपादानानि भवन्तु तन्निबन्धना शिष्टा च प्रकृतिः जङ्माजङ्गमात्मिका लौकिक्यलौकिकी वा लोकोत्तरां वर्णनां वाल्मीकीयामवाप्य धन्यतामेव लभते कांचित्। अत एव तद्गतं वस्तुसत्त्वम् वैज्ञानिकतत्त्वम् काव्यसुषमा च तद्वर्णनव्याप्ता मतिमतां मतीश्चेतांसि च सचेतसाम् समानं सन्तर्पयति।

सन्दर्भः-

1- रामायणम्, किष्किन्धाकाण्डम् 28/2
2- तदेव 28/5, 3- तदेव 28/6, 4- तदेव 28/11
5- क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभं प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति। क्वचित् क्वचित् पर्वतसन्निरुद्धं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य 29/17
6- तदेव 28/20, 7- तदेव 28/31, 8- तदेव 28/40
9- तदेव 28/ 10- तदेव 28/22, 11-मेघदूतम् पूर्वमेघः 13/27
12- मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः। नदीस्तटाकानि सरांसि वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति।। 28/44
13- मेघोदरविनिर्मुक्ताः कर्पूरदलशीतलाः। शक्यमञ्जलिभिः पातु वाताः केतकगन्धिनः। तदेव 28/8
14- तदेव 28/7, 15- कुमाररसम्भवम् 5/23
16- रामायण, किष्किन्धाकाण्डम् 28/24
17- मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिनः। मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः। तदेव 28/10
18- नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रदत्तैः पवनोपनीतैः। घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति। तदेव 28/46
19- क- सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः। पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः। तदेव 28/51
ख- शीघ्रप्रवेगा विपुलाः पपाता निर्धौतशृंगोपतला गिरीणाम्। मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो महागुहोत्संगतलैर्ध्रियन्ते।। तदेव 28/50

20- वर्षप्रवेगा विपुला: पतन्ति प्रवान्ति वाता समुदीर्णवेगा:। प्रणष्टकूला: प्रवहन्ति शीघ्रं नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गा:। तदेव 28/45

21- नद्य: सुमद्वाहितचक्रवाकास्तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा। दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगादृतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति।। तदेव 28/39

22- तदेव 28/18, 23- तदेव 28/4, 24- तदेव 28/31
25- तदेव 28/19, 26- तदेव 28/30
27- तदेव 28/21,25,26,28,33,36,37, 28- तदेव 28/32
29- तदेव 28/35, 30- तदेव 28/38, 31- तदेव 28/29
32- तदेव 28/27, 33- तदेव 28/23, 34- तदेव 28/15
35- तदेव 28/16, 36- तदेव 28/53, 37- तदेव 28/55
38- तदेव 28/7,12 इत्यादि

40- नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभि:। पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौ: प्रसूते रसायनम्।। तदेव 28/03

'सीतापति राम'

डॉ० बीना अग्रवाल
अध्यक्ष - संस्कृत विभाग
राज विश्वविद्यालय,
जयपुर (राजस्थान)

आदिकवि वाल्मीकि की अमर लेखनी से प्रसूत आदि काव्य रामायण कलियुग में वेदोक्त धर्म के न रहने पर लोक सामान्य का मार्गदर्शक माना गया है। साथ ही पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम मोक्ष की सिद्धि भी करता है। और पापियों की पापबुद्धि के नाशपूर्वक उनके मन की शुद्धि में भी सहायक है। इसे स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदाता भी बताया गया है-

रामायणमादिकाव्यं स्वर्गमोक्षप्रदायकम्।
तस्माद् घोरे कलियुगे सर्वधर्मबहिष्कृते॥
नवभिर्दिनैः श्रोतव्यं रामायणकथामृतम्। (१.३५ रामायण माहात्म्य)

रामायण के राम एक आदर्श पुत्र, भ्राता, आदर्श राजा होने के साथ ही एक आदर्श पति भी हैं। राजा जनक की सभा में शिव धनुष भंग करके वीर्यशुल्का सीता का पाणिग्रहण करने वाले राम सीता से अत्यधिक प्रेम करते थे। इसका प्रमाण उनका एकपत्नीव्रती होना है। सीता स्वयं भी उनका मन, वचन कर्म से निरन्तर छाया की भांति अनुगमन करती थी-

प्रतिव्रता महाभागा छायेवानुवर्तत सदा। (बाल ७३-२७)

सीता और राम अपने आचरण के कारण प्रजा के भी अत्यधिक प्रिय थे। इसलिए राम के राज्याभिषेक की घोषणा से प्रजा प्रफुल्लित थी। किन्तु कैकेयी के द्वारा राजा दशरथ से पूर्व प्रदत्त दो वरों में, भरत के लिए राज्य एवं राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास का निर्णय करवाये जाने पर जितेन्द्रिय राम किसी भी मनोविकार को सम्मुख नहीं आने देते। धीर गम्भीर भाव से माता कौशल्या को वे यह समाचार देते हैं एवं माता के भी उनके साथ वनगमन के लिए उत्सुक होने की स्थिति में वे उन्हें अपने पतिधर्म का स्मरण करवाते हैं-

शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुःप्रियहिते रता।
एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतःस्मृतः॥ (अयोध्या २४.२७)

मानधनी राम जब पतिपरायणा सीता से वनगमन की अनुमति चाहते हैं तब सीता उन्हें पति का महत्त्व बताते हुए कहती है कि इस लोक में पिता, माता, भाई, पुत्र आदि अपने कर्मो के फलरूप पुण्य का भोग करते हुए अपने भाग्य की उपासना करते हैं किन्तु एकमात्र नारी ही वह व्यक्ति है जो अपने पति के भाग्य का भोग करती है, इसलिए मैं भी आपके साथ वन में जाऊँगी।

''शुद्धात्मन् प्रेमभावाद्धि भविष्यामि विकल्मषा।

भर्तारमनुगच्छन्ति भर्ता हि परदैवतम्॥ (अयोध्या. २९/१६)

वनवास के इसी प्रसंग में पत्नी को पति का आधा अंग नहीं अपितु आत्मस्वरूप बतलाया गया है। कैकेयी की भर्त्स्ना करते हुए गुरु वसिष्ठ कहते हैं कि पत्नी पति की आत्मा है। इसलिए राम के वनागमन करने की स्थिति में सीता अयोध्या का शासन सम्भालेंगी-

आत्माहि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।

आत्मेयमिति रामस्य पाल्[यिष्यति मेदिनीम्॥ (अयो. का. ३७/२४)

वनवास के लिए सीता के स्वयं तत्पर होने की स्थिति में ही राम अपना मनोभाव अभिव्यक्त करते हैं कि सीता के बिना तो उन्हें स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसकी स्वयं की इच्छा जाने बिना वे उससे वन नमन के लिए कैसे कह सकते थे। (अयोध्या 30-42) यही नहीं सीता उन्हें प्राणों से प्रिय थी। मारीच -वध के पश्चात् लौटने पर आश्रम में सीता को न देखने पर वे लक्ष्मण को कहते हैं कि सीता के बिना मेरे मर जाने पर तुम्हारे अकेले अयोध्या लौटने पर कैकेयी अतिप्रसन्न होगी-

सीतानिमित्तं सौमित्रे मृतेमयि गते त्वयि।

कच्चित् सकामा कैकेयी सुखिता सा भविष्यति॥ (अरण्य, ५८,७)

रावण द्वारा अपहृता, विवशा, सीता अपने पातिव्रतधर्म का पालन करती हुई को अशोक वाटिका में देखकर हनुमान् ने यह पाया, कि वे स्वयं अपने शील से रक्षित थी-

तां देवीं दीनवदनामदीनां भर्तृतेजसा।

रक्षितां स्वेन शीलेन सीतामसितलोचनाम्॥ (सुन्दर, १७,२७)

सीता की अतिदु:खित अवस्था को देख कर हनुमान जी, के उन्हें अपने साथ लेजाकर श्रीरामचन्द्र जी से मिला देने के प्रस्ताव पर पतिपरायणा सीता का कथन है-

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नहं स्प्रष्टुं स्वतो नात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥
यदहं गात्रसंस्पर्श रावणस्य गता बलात्।
अनीशा किं किरष्यामि विनाथा विवशा सती॥ (सुन्दर, ३७,६२,६३)

हनुमान् द्वारा सीता से प्राप्त अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि के साथ उसका समाचार और दुर्दशा वृत्तान्त को सुनकर राम रो दिए थे और तत्काल उस स्थान को जाना चाहते थे जहाँ उनकी प्रिया स्थित थी। (सुन्दर 65.66 वर्ग)

तदनन्तर सीता को मुक्त करवाने के लिए युद्ध का उपक्रम हुआ। राम रावण युद्ध के अन्त में स्वयं देवताओं ने उपस्थित होकर सीता के पातिव्रतधर्म की प्रशंसा की और राम ने हनुमान् को अपने कुशल समाचार के साथ सीता के पास भेजा व धर्मपथ पर स्थित सीता को उन्होंने राम का वह सन्देश सुनाया। (युद्ध. 113,16) सीता के द्वारा राम से तत्काल मिलने की इच्छा प्रकट करने पर राम ने विभीषण को सीता को तैयार करके लाने का आदेश दिया। जबकि सीता अपने विरहव्रत के साथ ही अपने पति के दर्शन चाहती थी-

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम्।
अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर॥ (युद्ध ११४.११)

राक्षस के घर में लम्बे समय तक रहने वाली प्रिय पत्नी सीता को देखने पर श्रीराम को क्रोध, प्रसन्नता व दीनता की एक साथ अनुभूति हुई। इसके पश्चात् सीता को शिविका से उतर पर पैदल आने का आदेश देते समय उनका मानना था कि विपत्ति, युद्ध स्वयंवर, यज्ञ, विवाह आदि में स्त्री को अन्य पुरुष द्वारा देखा जाना दोषयुक्त नहीं है। सीता के प्रति राम के तटस्थ व्यवहार एवं दारुण इंगितो से उनकी मनोदशा का अनुमान होता था। प्रिय पत्नी को सामने देख कर मन प्रसन्न था किन्तु बुद्धि लोकापवाद के भय से आशंकित थी-

पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम्।
जनवादभयाद् राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा॥ (युद्ध. ११५,११)

इस लोकनिन्दा के भय से राम सीता से कहते हैं कि स्वाभिमान की रक्षा के लिए उन्होंने रावण वध किया है। तुम्हारे चरित्र पर सन्देह होने के कारण तुम मुझे नेत्र रोगी के लिए दीपक की प्रभा की भांति अप्रिय हो, तुम दसों दिशाओं में कहीं भी, किसी के साथ जा सकती हो (युद्ध 111.15-24)

पति राम के इन हृदयविदारक वचनों के उत्तर से सीता का कथन है- कि मेरे अधीन जो हृदय है वह निरन्तर आपका ही ध्यान करता है, शरीर पर मेरा वश नहीं है। आपके साथ निरन्तर रहने से उत्पन्न सौहार्द्र और विश्वास के कारण आपको मेरी शुद्धता पर स्वत: विश्वास होना चाहिए और अगर वह नहीं है तो मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। ऐसी स्थिति में अनन्यहृदया सीता लक्ष्मण से चिता तैयार करवाती हैं। अपने पति राम की प्रदक्षिणा करके शपथपूर्वक कहती हैं-

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः॥ (युद्ध ११६.२७)

अग्नि में प्रविष्ट सीता को स्वयं अग्निदेव श्रीराम को समर्पित करते हैं तब श्रीराम यह स्पष्ट करते हैं कि उन्हें स्वयं सीता के चरित्र पर पूर्ण विश्वास था किन्तु किसी भी अपवाद से बचने के लिए उन्होंने यह किया -

नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणन्तःपुरे सती।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा॥ (युद्ध १११,१९)

वनवास की अवधि समाप्त होने पर राम अभिषिक्ति होकर अपने धर्मपरायणता के साथ राज्य करते हैं। सम्पूर्ण प्रजा भी धर्म परायण है। इसी युद्धकाण्ड के अन्त में फलश्रुति भी है जो किसी भी सम्पूर्णता पर की जाती है। उत्तरकाण्ड के वर्णनीय विषय, भाषा शैली, उनकी पूर्व विषयों के साथ सम्बद्धता आदि की दृष्टि से यह प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

इस दृष्टि से सीता निर्वासन का प्रसंग भी विचारणीय है। रामचरित पर विचार करने पर रामायण में वर्णित अनेक प्रसंगों व तथ्यों के साथ इसकी संगति का विवेचन आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में इसी विवेचन के साथ किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया जाएगा।

रामायणोक्त ऋषिसंस्कृति

डॉ० वीरेन्द्र कुमार अलंकार
अध्यक्ष - संस्कृत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्ढीगढ़ (पंजाब)

वाल्मीकीय रामायण में वैदिक ऋषियों, उनके आश्रमों, यज्ञों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। रामायण का आरम्भ ही दो ऋषियों के संवाद से होता है। वाल्मीकि मुनि परम तपस्वी स्वाध्यायनिरत नारद को पूछते हैं कि इस लोक में सम्प्रति कौन ऐसा व्यक्ति है ज़ो गुणवान् वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ सत्यवाक्य, दृढ़व्रत, चरित्रवान्, विद्वान्, आत्मवान्, जितक्रोध, द्युतिमान्, अनसूयक, तथा प्रियदर्शन है। त्रिलोकज्ञ महर्षि वाल्मीकि और देवर्षि नारद का यह संवाद पूरे काव्य की पृष्ठभूमिरूप है। नारद बताते हैं कि दाशरथि राम वश्य, शुचि, समाधिमान् धर्मरक्षक तथा वेदवेदांग के रहस्य को जानने वाले हैं।[1] रामायण में देवों और असुरों तथा ऋषियों और राक्षसों के शाश्वत अन्तर्द्वन्द्वों का गायन है। राम के जन्म से लेकर लंकाविजय और उत्तरकाल तक पूरी कथा में कवि ने ऋषिसंस्कृति का बड़ा बारीकी से विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यहाँ निम्न बिन्दुओं पर चर्चा ही करनी अभीष्ट है-

यज्ञसंस्कृति :-

'यज्ञ' ऋषिसंस्कृति का अभिन्न अंग है। राम और लक्ष्मण जब विश्वामित्र के साथ वन में विचरण करते हैं तो प्रातः उठकर अग्निहोत्र करना कभी नहीं भूलते।[2](1.35.20) अरण्य में ऋषि-आश्रमों में यज्ञ के भव्य दृश्य कवि ने उपस्थापित किए हैं। इक्ष्वाकु वंश के राजाओं में यज्ञ के प्रति विशेष उत्साह दिखाई देता हैं। त्रिशंकु, अम्बरीष, दिलीप, आदि सभी राजा यथाविधि यज्ञ करते दिखाई देते है। अनेक स्त्रियों द्वारा अग्निहोत्र के किए जाने के प्रसंग रामायण में है। कौसल्या प्रभात में अग्निहोत्र करती है- सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा। अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला।[3]

दशरथ अश्वमेध की चर्चा अपने अमात्यों में करते हैं, पर वे उसे तब तक नहीं करते, जब तक वसिष्ठादि ऋषियों की अनुमति प्राप्त नहीं हो जाती। सरयू के उत्तर तीर में यज्ञभूमि का

विधान किया जाता है। यथाविधि वाजिमेध की समाप्ति पर राजा को ऋष्यशृंग द्वारा चार पुत्रों की वरदानप्राप्ति होती है।

इस प्रसंग में पुत्रेष्टि याग का विवरण उपलब्ध होता है। दशरथ के पास विश्वामित्र का आगमन होता है। यह बड़े महत्त्व की बात है कि ऋषि के समक्ष सम्राट् भी केवल याचना ही करता है, राजा की याचना अस्वीकृत होने पर विश्वामित्र राम लक्ष्मण को जब वन में ले जाते हैं, तो वे विविध अरण्यों में घूमते हुए प्रायः आश्रमों और ऋषियों के स्थान ही दिखाते हैं। शिवाश्रम, भार्गवदर्शन, गौतम का आश्रम, धर्मभृत् का आश्रम, अगस्त्य दर्शन, चित्रकूट, पञ्चवटी, चूलि ऋषि, अत्रि ऋषि, कण्डु ऋषि आदि के प्रसंग उपस्थापित करके कवि ने वैदिक वातावरण पाठकों के समक्ष रख दिया है।

कर्मविपाकः-

कवि ने शाप और वरदान शैली का आश्रय लेकर वैदिक कर्मविपाक की स्थापना की है। रावण को यज्ञ करने पर देवों से अमरत्व का वरदान[5] तथा वेदवती के प्रति रावण की कामुकता के कारण रावण को वध[6] का शाप वैदिक कर्मवाद की काव्यशैली में की गई व्याख्या ही है।

करुणापूर्ण दशरथ का वह विलापप्रसंग कर्म विपाक का एक बेजोड़ उदाहरण है, जब कौसल्या दशरथ के प्रति क्रुद्ध होती है और कौसल्या के कठोर कथनों से कांपता हुआ दशरथ उसके सामने हाथ जोड़कर नीचे गिरकर गिड़गिड़ाता है। दशरथ की यह दीन अवस्था देखकर कौसल्या को भी दया आती है और कहती है कि स्वामी, पुत्रप्रेम के कारण मैंने जो कुछ आपको कह डाला, उसके लिए क्षमा मांगती हूँ, तब दशरथ अपने पूर्व आचरित वृत्त का स्मरण करके कहता है कि सब मेरे कर्मो का ही फल है-

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।

तदेव लभते भद्रे कर्मजमात्मनः।।

गुरु लाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।

दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते।।

कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च निषिञ्चति।

पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शोचति फलागमे।।

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।
स शोचेत् फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः॥
सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा पलाशांश्च न्यषेचयम्।
रामं फलागमे त्यक्त्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः॥
लब्धशब्देन कौसल्ये कुमारेण धनुष्मता।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम्॥
तदिदं मेऽनुसंप्राप्तं देवि दुःखं स्वयंकृतम्।
संमोहादिह बालेन यथा स्याद् भक्षितं विषम्॥
यथान्यः पुरुषः कश्चित् पलाशैर्मोहितो भवेत्।
एवं मयाप्यविज्ञातं शब्दवेध्यमिदं फलम्॥[७]

इस प्रसंग में कवि ने कर्मसिद्धान्त का निचोड़ प्रस्तुत कर दिया है। विकर्म यदि अनजाने में भी हो, उसका दुःखद फल अवश्यंभावी है। विष भले ही अनजाने में खाया जाए, वह रोगकारी ही है। शाप और वरदान के प्रंसगों में इस कर्मवाद की दार्शनिक और वैदिक पृष्ठभूमि देखी जा सकती है।

अरण्यसंस्कृतिः-

रामायण में मनुष्य और वनों का सम्बन्ध पिता और पुत्र का सा है। कवि ने अरण्यसंस्कृति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। अनेक वनों तथा ऋषि-आश्रमों का प्रसंगवश वर्णन है। अनेक नदियों और पर्वतों का उल्लेख करके कवि ने आधुनिक पर्यावरणविदों के लिए भी अध्ययन का अवकाश दे दिया है। तमसा (2/45), कालिन्दी (2/55), पम्पा (3/73-75, 4/1-2), केशिनी (7/52), सरयू (7/110) आदि नदियों, का चित्रकूट (2/59,90), दण्डका (2/60,93-83, 3/42), प्रयागवन (2/89) त्रिकूट (6/40, 7/3), मधुवन (5/61, 63), पञ्चवटी (3/14-15), अशोकवाटिका (3/56, 5/14), निकुम्भिल नामक लंकोपवन (7/25), आदि वनो उपवनों का, हिमालय (4/37), प्रस्रवणगिरि (4/28), माल्यवान् (4/28), सुवेल पर्वत (6/42), द्रोण पर्वत विन्ध्य (7-3) कैलास (7-16-26) शैवल (7,75)आदि पर्वतों का, भारद्वाजाश्रम (2/54),

वाल्मीकि आश्रम (7/6 5,66), पुलस्त्य (7/2), विश्रवा (7/6), तथा वसिष्ठ, विश्वामित्र, धर्मभृत चूली, अगस्त्य, गौतम आदि ऋषियों व उनके आश्रमों का वर्णन इस बात का भी साक्षी है कि ऋषिसंस्कृति में वनों, पर्वतों, वनस्पतियों का संरक्षण है। वन की रक्षा पुत्रवत् की जाती थी-

वनेऽस्मिन् मामके नित्यं पुत्रवत् परिरक्षिते।
पत्रांकुरविनाशाय फलमूलाभवाय च ॥ (४/२२/५७)

यह मतंग ऋषि का उद्घोष है कि पुत्रवत् परिरक्षित इस वन में यदि कोई पत्र के अंकुर का भी विनाश करने का उत्साह करेगा तथा किसी वृक्ष का एक फल भी नष्ट हुआ, तो मैं उसे शाप दे दूँगा। हिमालय की दिव्यौषधियों (4/37) तथा औषधिपर्वत (6/102) का वर्णन, वृक्षों के वर्णन से रामायण में उत्कृष्ट अरण्यसंस्कृति के दर्शन होते हैं। इस वर्णन द्वारा प्रकृतिविरुद्ध न जाने का सन्देश कवि वाल्मीकि ने दिया है।

कितने ही ऐसे प्रसंग भी रामायण में उपलब्ध है, जहाँ साक्षात् यह सन्देश है कि पुत्र को दायित्व सौंपकर वानप्रस्थ हो जाना चाहिए। इक्ष्वाकुवंश के राजाओं में यह वानप्रस्थ प्रवृत्ति दिखाई देती है।

कर्त्तव्य संस्कृति :-

रामायण में अधिकार की नहीं कर्तव्य की संस्कृति है। राजा अपने कर्त्तव्यपालन में पूरा जागरूक है। भले ही वह रावण है या वाली, पर वे अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक हैं, प्रजा के प्रति दायित्व में राजा के कर्त्तव्यों का सुन्दर निरूपण कवि ने रामायण में किया है। इसलिए तो वाल्मीकि द्वारा पूछे जाने पर नारद ऐसे व्यक्ति का वर्णन करते हैं, जो राजा हो कर समस्त जीवलोक, धर्म और स्वजनों का रक्षिता है। इतना ही नहीं उसे यह सारा बोध इसलिए है क्योंकि वह वेदवेदांग, शास्त्रों और स्मृतियों का ज्ञाता है-

प्रजापतिसमः श्रीमन् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिताजीवलोकस्य धर्मस्य परिक्षिता॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता
वेदवेदांगतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥[८]

ऐसे नृपोत्तम का वर्णन करना वाल्मीकि को अभीष्ट है। ध्यातव्य है कि पूर्व और पश्चिम में यह कर्त्तव्य और अधिकार का महान् अन्तर है। पश्चिमी चिन्तन में इस बात पर दृष्टि केन्द्रित रहती है कि माता पिता से रुपया लेना, आफिस में इतनी छुट्टी करना, पति से इतनी कमाई लेना मेरा अधिकार है, जबकि भारत में इसके विपरीत है। यहाँ माता-पिता की बात मानना, ऑफिस में काम करना, पत्नी की सुविधाओं का ध्यान रखना, पति की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है, यह दृष्टि प्रबल है। रामायण में यही कर्त्तव्य दृष्टि स्थाने स्थाने दिखाई दती है। अम्बरीष के यज्ञ में अश्व का अपहरण हो जाने पर जब अम्बरीष अश्व को ढूंढते हुए ऋचीक के आश्रम में जाते हैं, तो अम्बरीष प्रार्थना करते हैं कि हे ऋषिवर! पशु के अभाव में आप एक पुत्र दे दीजिए। तब ज्येष्ठ पुत्र पिता को और कनिष्ठ माता को प्रिय होने से मध्यम पुत्र 'शुन:शेप' स्वयं अम्बरीष के साथ चल पड़ते हैं। वहाँ विश्वामित्र (यज्ञ-पुरोहित) से पुत्रत्त्वरूप में दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हैं। तथा विश्वामित्र अपने पुत्रों की अपेक्षा शुन:शेष की रक्षा का वचन देते हैं।[9]

मर्यादा संस्कृति :-

रामायण में मर्यादा संस्कृति का उज्ज्वलरूप दिखाई देता है। राम की अपने माता पिता के प्रति मर्यादा सबको विदित है। रामवनवासयात्रा में सीता और लक्ष्मण का वनगमन, राम द्वारा पिता से यह प्रार्थना कि मेरे वन जाने पर मेरी माता को कोई शोक न होवें[10] शोकसन्तप्त प्रजा को राम निवेदन करते हैं कि तुम्हारी जो मुझसे प्रीति है ,वही प्रीति भरत में रखना-

या प्रीतिर्बहुमानश्च मय्ययोध्यानिवासिनाम्।
मत्प्रियार्थं विशेषेण भरते सा विधीयताम्।।
स हि कल्याणचारित्रः कैकेय्यानन्दवर्धनः।
करिष्यति यथावद्वः प्रियाणि च हितानि च।।[11]

'मर्यादा' को लेकर कुछ प्रश्न भी लोक में उठते रहते हैं। उदाहरण के लिए वालीवध, शूर्पणखा का कर्णनासच्छेदन , शम्बूकवध और सीतानिर्वासन ऐसे प्रसंग हैं, जो अमर्यादित से दिखाई देते हैं। सर्वप्रथम तो यह ध्यातव्य है कि रामायण का काव्यपक्ष बहुत प्रबल है, अत: मूल कथा के प्रवाह में प्रत्येक अवान्तर घटना का अभिधार्थ लेकर अन्वय करना चिन्त्य है। पुनरपि यदि रामायण में दो चार घटनाओं की संगति लगाना कठिन भी हो, तो भी उसका मूल तत्त्व नष्ट नहीं होता। पुनरपि मूल पाठ के अध्ययन से कुछ समाधान सम्भव है।

वालीवध की घटना का प्रसंग देखें, तो वाली का राम पर लगा आक्षेप स्वतः निवृत्त हो जाता है। रामबाण के आहत से वाली राम को कहता है कि तुमने यह अधार्मिक कृत्य किया है। यदि तुमने मुझे कहा होता तो मैं एक ही दिन में मैथिली को रावण से छुडाकर ला सकता था। जीवित रावण को तुम्हारे सामने लाकर पटक देता-

मामेव यदि पूर्वं त्वमेतदर्थमचोदयः।

मैथिलीमहमेकाह्ना तव चानीतवान् भवेः॥

राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणम्।

कण्ठे बद्ध्वा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे॥[१२]

तब राम वाली के कुछ पापकर्मों का स्मरण कराते हैं। राम कहते हैं कि सुग्रीव के साथ मेरी मैत्री लक्ष्मण जैसी ही है। इसलिए पत्नी या राज्य के लिए मैं मित्रता की उपेक्षा नहीं कर सकता था-

सुग्रीवेण च मे सख्यं लक्ष्मणेन यथा तथा।

दारराज्यनिमित्तं च निःश्रेयकरः स मे॥[१३]

राम कहते हैं कि मैंने वालीवध द्वारा कोई अकृत्य नहीं किया है। क्योंकि पशुओं का शिकार ही किया जाता है। मैंने भी उसी प्रकार से यह शिकार ही किया है।[14] राम वाली को पशुवत् मानते हैं। और हिंसक पशुओं को मारा जाता है।, उन्हें मारने के लिए ललकारा नहीं जाता।

शूर्पणखा का प्रसंग भी विवाद का विषय लोक में रहता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक श्लोक का अभिधार्थमात्र ग्रहण करने से कदाचित् कवित्त्व के साथ न्याय नहीं हो पाता। शूर्पणखा के नासकर्णच्छेद का जो प्रसंग वाल्मीकिमुनि ने उपस्थापित किया है वहाँ निश्चयेन कवि हास्य की छटा बिखरनेना चाहते हैं। पर्णशाला में राम सीता और लक्ष्मण के साथ बड़ी गम्भीरमुद्रा में बैठे हैं। तभी शूर्पणखा अभिराम राम को देखकर काममोहित हो जाती हैं। और राम के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखती है। कवि को यह अवसर हास्य और मनोविनोद का लगा, सो उसने वहाँ गम्भीर वातावरण में मनोविनोद छटा बिखेर दी। राम मनोविनोद करते हैं कि मैं तो विवाहित हूँ, यह मेरी पत्नी है, पर यह मेरा अनुज अविवाहित है, अतः तुम इससे विवाह कर लो। शूर्पणखा लक्ष्मण के पास आकर विवाह की बात करती है। तब लक्ष्मण मुस्कुरा कर कहता है- कि सुन्दरी, मैं तो

इनका दास हूँ, क्या तुम दास की पत्नी होकर दासी बनोगी।[15] इसलिए इन्हीं की भार्या बनो, क्योंकि इनकी यह पत्नी (सीता) एक तो विरूप है, फिर असती, कराल, निकले उदर वाली और वृद्धा है, ये (राम) इसे छोड़कर तुम्हें अपनी भार्या निश्चय ही बनाएंगे।

एतां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम्।
भार्यां वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति।।[१६]

यह सुनकर शपर्णखा फिर राम के पास जाती है और सीता को मारने का प्रयास करती है। इस पर राम कुद्ध हो जाते है। और लक्ष्मण को कहते है कि सौमित्रि, वस्तुतः हमें क्रूरों और अनार्यो के साथ मजाक नहीं करना चाहिए।

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे परिहासः कथंचन।
न कार्यः पश्य वैदेही कथंचित् सौम्य जीवतीम्।।[१७]

शूर्पणखा जब सीता के साथ बड़ी ही धृष्टता करती है, और अपने रूप का अभिमान करती हुई सीता को खाने दौड़ती है तो राम कहते हैं- लक्ष्मण, इसे अपने रूप का बड़ा घमण्ड है, इसका यह घमण्ड तोड़ ड़ालो, तब लक्ष्मण अपनी खड्ग उठाता है और राक्षसी के कर्ण और नासिका कट जाते है।

यहाँ जरा विचार कीजिए-क्या कोई भी रमणी कभी एक से और फिर दूसरे से फिर पहले से विवाह का प्रस्ताव रख सकती है? क्या लोक में यह सम्भव है। निश्चय ही यहँ इतिहास प्रमुख नहीं है, बल्कि काव्यगत हास्य शैली ही कवि को अभिष्ट है। तथा कवि यह सन्देश भी दे देता है कि क्रूरों, अनार्यों के साथ तो उपहास भी ठीक नहीं है। अब क्रोधाविष्ट शूपर्णखा यदि सीता को मारने के लिए झपटी है, तो लक्ष्मण द्वारा बचाव करना, उस बचाव में शूपर्णखा के कान और नाक पर चोट लगना कौन सा अनैतिक वा अमर्यादित कार्य है? इस प्रसंग का यही अर्थ क्यों लिया जाता है कि लक्ष्मण को शूपर्णखा के नाक और कान काटना अभीष्ट था यह बिल्कुल उसी प्रकार की घटना है जैसे दो में झगड़ा होने पर एक ने दूसरे पर प्रहार करना चाहा तो दूसरे ने अपने बचाव में उस पर एक पत्थर फैंक दिया, पत्थर आंख में लगा और आंख फूट गई, अब कहा तो यही जायेगा कि उसने उसकी आंख फोड़ दी, क्या आंख फोड़ना ही उसका उद्देश्य था?

शम्बूकघटना और सीतानिर्वासन प्रसंग उत्तरकाण्ड के विषय हैं। यह काण्ड प्रक्षेप के विवाद से अभी मुक्त नहीं हो पाया है। इसलिए इनकी समीक्षा विस्तरभयात्! यहाँ नहीं की जा रही है।

उपसंहार :-

यहाँ रामायणप्रतिपादित ऋषिसंस्कृति के कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर ही दृष्टिपात किया गया है। रामायण आर्षकाव्य होने से आर्षसंस्कृति का निर्वाहक ग्रन्थ है। ब्रह्मोपासना, यज्ञ के विविधरूप, आत्मा की अमरता तथा कर्म विपाक, कर्तव्य एवं मर्यादाओं की अपूर्व झलक रामायण के सौन्दर्य का ही अभिन्न अंग हैं। अनेक ऋषियों तथा उनके आश्रमों का दिव्य स्वरूप रामायण में दिखाई देता है। आलंकारिक वर्णनों को अभिधापरक मानकर रामायण को नीरस इतिहास किंवा अन्धविश्वासों का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। कवि के मूल प्रतिपाद्य पर दृष्टि केन्द्रित रखने से एक उदार मानवीय संस्कृति का दर्शन रामायण में होता है। वैदिक संस्कृति और लोकजीवन की समन्विति से शाश्वत ऋषिसंस्कृति द्वारा लोककल्याण ही कवि का प्रतिपाद्य प्रतीत होता है।

सन्दर्भ - सूची

1- रामायण 1/1,
2- वही- 1/35/20,
3- वही- 1/20/25
4- वही- 1/8,
5- वही- 2/6,
6- वही- 7/17
7- वही- 2/63, 6-13,
8- वही- 1/1/13/15
9- वही- 1/62, 62,
10- वही-- 2/38
11- वही- 2/45/6-50,
12- वही- 4/17/49-50
13- वही- 4/18/26,
14- वही- 4/18/36-40
15- वही- 3/18/1/9,
16- वही- 3/28/11

यहां श्लोक में अर्थान्तर भी द्रष्टव्य है - विरूपां = विशिष्टरूपाम् त्रैलोक्यसुन्दरीम्, असतीम् न विद्यतेऽन्या सती यस्यास्ताम् करालाम्- अवयवसंनिवेशैर्युक्तैर्निम्नोन्नताम्, निर्णतोदरीम् = तनु-मध्यमाम्, वृद्धाम्- ज्ञानवृद्धाम् इत्यर्थ।

17- वही- 3/18/19,
18- वही- 3/18/13-18, 20-21

रामायण में चित्रित दाम्पत्य मर्यादा
(वैदिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० सविता भट्ट
रीडर - संस्कृत विभाग
डी. ए. वी. (पी.जी.) कॉलेज
देहरादून (उत्तरांचल)

दाम्पत्य जीवन के मूलाधार स्त्री और पुरुष हैं। सृष्टि में सृजन इसके सम्बन्ध पर ही निर्भर करता है। दाम्पत्य जीवन प्रेम से वंचित नहीं रह सकता जो आकर्षण के फलस्वरूप उद्भूत होता है। यदि आकर्षण तो हो, प्रेम की स्थिति न हो तो दाम्पत्य जीवन सुख शान्ति से दूर अशान्ति का केन्द्र बन जाए। पुरुष और नारी जीवन में पूर्व अनुभूत भावात्मक प्रकरणों को भी नहीं भूल पाते हैं। कहीं-कहीं इसे मानसिक नैतिकता की दृढ़ता के अनुकूल प्रकट किया गया है-

आओ बैठो, क्षण भर तुम्हें निहारूँ।

अपनी जानी एक-एक रेखा पहचानू॥

चेहरे की, आंखो की, अन्तर्मन की,

और हमारी साझे की अनगिनत स्मृतियों की॥

अज्ञेय- हरी घास पर क्षण भर

आज अर्थ संकट के युग में मध्यवर्ती जीवन पीड़ा और अभाव से क्लान्त है। वेदों, पुराणों द्वारा प्रशंसित दाम्पत्य जीवन, देववृक्ष संज्ञा से अभिहित किया जाने वाला जीवन आज घोर कटुता, नैराश्य और कुण्ठा से जर्जरित हो रहा है। पति और पत्नी आज दोनों ही क्षोभ से उद्वेलित दीख रहे है। सामाजिक शिष्टाचार और मर्यादा की रक्षा में उन्हें अपने को प्रताड़ित करना पड़ता है। वेद और रामायण कालीन समाज में दाम्पत्य मर्यादा के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। दम्पति शब्द अभिव्यंजित हुआ हैं, ऋग्वेदीय ऋचाओं में दाम्पत्य सम्बन्धी स्नेहमयी आर्य सभ्यता की झांकी मिलती है, उसके समक्ष आज हमारी अत्याधुनिकता तो कुब्जा सी ठगी खड़ी रह जाती हैं। गृह सूत्रकार ने कहा- 'वह घर-घर नहीं जहाँ गृहिणी न हो।'

'न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते'

वैदिक दाम्पत्य, घूंघट तले व प्राचीरों में कुढ़ा नहीं, सड़ा नहीं,। मुक्त भाव से उत्तरीय लहराती हुई जाती थी- वैदिक कालीन पत्नियाँ, युवतियाँ और स्त्रियाँ। ब्रह्मवादिनी गार्गी, घोषा और लोपामुद्रा का दाम्पत्य हमारे सामने प्रमाण है। लोपामुद्रा ने कितनी सच्चाई से अपने मन की बात कही थी। वृद्ध ज्ञानी पति अगस्त्य से -

'हे अगस्त्य लगातार रात-दिन बुढापा लाने वाली उषाओं में तुम्हारी सेवा करके मैं श्रान्त कलान्त हुई हूँ। देह से वार्धक्य प्राप्त करने पर भी लोग वृद्धावस्था में पत्नी के पास जाते हैं तुम मेरी उपेक्षा क्यों करते हो। (ऋग्वेद-1/179/1-2)

लोपामुद्रा की यह साफगोई क्या अकुण्ठित कण्ठेन नहीं लगती।

वेदों में अनेक स्थलों पर दाम्पत्य की दृढ़ता द्रष्टव्य है। सोमपायी वैदिक दम्पति अपने कर्त्तव्यों के प्रति सदैव जागरूक थे। वेद में शुद्ध पवित्र और पूजनीय स्त्रियों को ज्ञानियों के हाथों में सौंपने की बात कही गई है।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्य मा सविता पुरन्धि मह्यं त्वादुर्गार्ह पत्याय देवाः॥

(ऋग्वेद १०/७/८५-३६)

अर्थात्

तुम्हारे सोभाग्य के लिए मैं पकड़ता हूँ,
तुम्हारा यह सलौना सा कोमल हाथ॥
पत्नी बन रहो तुम प्रार्थना यह मेरी,
उम्र के आखिरी कदम तक मेरे साथ।
अर्यमा भग और सविता (देवों) ने सौंपा है मुझे।
कि तुम चलाओगी मेरे सारे गृह-काज।

वैदिक दामपत्य की कितनी सुन्दर झांकी यहाँ प्रस्तुत की गई है। विवाह के माध्यम से दाम्पत्य जीवन की शुरुआत करने वाली वैदिक कालीन नारी समाज में अपने मनोनुकूल प्रिय पात्र रूप में चुनने को पूर्ण स्वतन्त्र थी।

कियती योषा मर्यतो वधूयोः, परि प्रीता पन्यसा वार्येण।

भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।

(ऋग्वेद 10-27-12)

अर्थात् कितनी ऐसी स्त्रियाँ है जो केवल सम्पत्ति से ही प्रसन्न होकर स्त्री कामी पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं। परन्तु जो स्त्री भद्रा और सुगठित शरीर वाली है वह अनेकानेक पुरुषों में से अपना मनोनुकूल प्रिय पात्र पति ही चुनती है।

ऋग्वेद में कही-कहीं सोमलता के सिंचन प्रसंग में भी युवक युवतियों के पारस्परिक उन्मुक्त प्रणय व्यवहार का उल्लेख किया गया है-

याभिः सोमो मोदते हर्षते च, कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः

(ऋग्वेद 10-30-5)

"अर्थात् जिन जलों में सोम अति प्रसन्न से उठते हैं: जैसे सुन्दरी युवतियों के मिलने से पुरुष आनन्दित हो उठते हैं।"

जैसे किसी युवा पुरुष के स्नेह व्यवहार सें युवतियाँ खिल उठती हैं। वैसे ही जल से सोमलता खिल उठती है। सप्तपदी के पवित्रतम वर्चस्वपूर्ण शपथ आज के भौतिक युग में दुर्बल हैं।

यदेतद्हृदयं तव तदस्तं हृदयं मम।

यदेतद्हृदयं मम तदस्तं हृदयं तव।।(सामवेद 1/3/9)

यह मेरा हृदय तुम्हारा हो तथा तुम्हारा हृदय मेरा हो :-

वैदिक दृष्टि से विवाह वासना, तृप्ति या वैदिक भोग तक ही सीमित नहीं था। इसमें मानव जीवन मूल्य भी जुड़े थे। वैदिक समाज में गृहस्थ जीवन में पत्नी की अनिवार्यता भी वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को पति की अर्धांगिनी कहा गया है।

पुरुष की भांति पति पर एकाधिकार का स्वप्न संजोये वैदिक नारी कह उठी-

'हे पुरुष मैं तुम्हें अपने वस्त्र से बांधती हूँ जिससे तू मेरा हो रहे और स्त्रियों से कभी बात न करे।'(अर्थवेद 7/37/1)

वर और वधू के अपेक्षित गुणों की भी वेदों में पर्याप्त चर्चा की गई है। सौन्दर्य और तेज सम्पन्न वधू -फूलों की माला सदृश होनी चाहिए। उसे ब्रह्मचर्य का पालन भी करना चाहिए। स्त्री को ससुराल पहुँचने के बाद घर के समस्त सन्तापों को भी दूर करना चाहिए। पति के अनुकूल आचरण करना चाहिए। क्रान्तिमती कन्या, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान भी प्राप्त करे।

इसके साथ ही वही नर उत्तम है, जिसका साहचर्य सदैव पत्नी को सुख प्रदान करे। उसका गुणवान होना आवश्यक है।

रामायण की चर्चा हो तो वहाँ भी यही कहा गया-

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम्।

राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा॥ (वा.रा. सु.का. १६/५)

अर्थात् पति पत्नी के सम्बन्ध तभी दृढ़ होते हैं जब उनके गुणों में समानता हो। रामायण में सीता, सत्यवती, अनुसूया, कौसल्या आदि नारियाँ दाम्पत्य के चरम उत्कर्ष को प्रस्तुत करती हैं॥ इसके अलावा दिति, अदिति, मन्दोदरी, शर्मिष्ठा आदि पात्र भी दाम्पत्य की दृढ़ता की ओर संकेत करते हैं।

रामायण का नायक राम एक आदर्श पुरुष है, आदर्श राजा है। रामायण में अनेक ऐसे प्रसंग है जो दाम्पत्य मर्यादा के संकेत देते हैं। माता- पिता, सास, ससुर, पति, महर्षि एवं पत्नियाँ भी दाम्पत्य जीवन को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से उपदेशक बने हुए हैं।

राजा जनक अपनी पुत्री सीता का हाथ राम को सौंपते हुए कहते हैं-

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।

प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना॥

अर्थात् मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणी के रूप में उपस्थित है। यह परम पतिव्रता, महान् सौभाग्य शालिनी तथा छाया की भांति तुम्हारा अनुसरण करने वाली होगी। (वा.रा.1/73-26,27)

कौसल्या आदि द्वारा पुत्री शान्ता को भी यही उपदेश दिया गया कि पति के प्रति स्नेह, नम्रता एवं सेवा का भाव प्रदर्शित करे। (उत्तर भारतीय संस्करण) (वा.रा. 1/12/15-16) एक स्थल पर सती स्त्रियों की विशेषता प्रतिपादित करते हुए कौसल्या द्वारा सीता को कहा गया है 'तुम मेरे पुत्र श्री राम का कभी अनादर मत करना, निर्धन हो या धनी, तुम्हारे लिए देवता के समान है।

'तव देवसमस्त्वेष निर्धनः सधनोऽपि वा' (वा.रा 2,39,25)

पति, गुरु की भूमिका भी प्रस्तुत करता है। वन के लिए प्रस्थान करते समय श्री राम सीता को पतिव्रता नारी के धर्मो का उपदेश देते हैं।

'मेरे वन जाने पर तुम व्रत और उपवास में सदा तत्पर रहना। देवताओं की पूजा वन्दना करके प्रत्येक दिन सास, ससुर की वन्दना करना। मेरी अन्य माताओं को भी वही सम्मान देना।

वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः। (वा.रा. 2/ 26-32)

भरत और शत्रुघ्न को तुम भाई और पुत्र से बढ़कर देखना । क्योंकि वे भी मुझे प्राणों से प्रिय हैं।

हे! कल्याणी- सत्यव्रत एवं धर्म में तत्पर रहकर तुम राजा भरत के अनुकूल चलती हुई अयोध्या में रहो। तुम्हारे द्वारा किसी का अहित न हो इस बात का सदैव ध्यान रखना।

'यथा व्यलीकं कुरुषे न कस्यचित्तथा त्वया कार्यमिदं वचो मम्'

एक स्थल पर कौसल्या सीता को उपदेश देती हुई कहती हैं-

साध्वीनां तु स्थितानां हि शीले सत्य श्रुते स्थिते

अर्थात् सती स्त्रियाँ सुशील एवं सत्यवादिनी होती हैं। और भी-

'स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते' (रामा 2/39-25)

अर्थात् उत्तम स्त्रियों के लिए पती ही परम पुनीत एवं सर्वश्रेष्ठ रत्न होता है। इसी प्रसंग में कहा गया है कि पतिव्रता नारी हमेशा अपनी मर्यादा का पालन करती है। बड़ों की बातों का आदर करती है।

असती स्त्रियों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि वे अवसरवादी होती हैं। बात ही बात में बदल जाती हैं। जिसे किसी दिन प्रेम किया उसी से द्वेष करने लगती हैं। सुख के दिनों में तो आनन्द लेती हैं। और दु:ख में परित्याग कर देती हैं।

सीता ने भी प्रत्युत्तर देते हुए कहा-जैसे चन्द्रमा की चांदनी उससे कभी अलग नहीं होती वैसे ही मैं भी अपने धर्म से विमुख नहीं होऊंगी जैसे बिन तार के वीणा नहीं बजती, बिना पहिए के रथ नहीं चलता उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रों की माँ बन जाए, किन्तु पति के बिना सुखी नहीं हो सकती। (वा.रा. 2/39/29, 30,31)

और भी-

''पती पत्नी को असीम सुख देता है- फिर उस असीम सुख देने वाले पति की कौन स्त्री पूजा न करेगी।''

'आर्ये किमवमन्येन स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम्'

एक स्थल पर महासती अनुसूया भी सीता को पातिव्रत धर्म समझा रही है-

यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदया:।

दु:शील: कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जित:।

स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पति:।

(रामा.२/११७/२३-२४)

अर्थात् जिन स्त्रियों को पति प्रिय होता है, उन्हीं नारियों को उत्तम लोक प्राप्त होते हैं। पति चाहे बुरे स्वभाव का हो, चाहे स्वेच्छाचारी हो, निर्धन हो, फिर भी वह सदाचारिणी और पतिव्रता के लिए देवता होता है।

'भवस्व भर्तु: सहधर्मचारिणी'

यशश्च, धर्मं च तत: समाप्स्यसि।

(रा.मा. 2/117/29)

अर्थात् पति सेवा को अपना सर्वश्रेष्ठ धर्म समझो और नित्य धर्माचरण में लगी रहो, इससे संसार में तुम्हारा यश फैलेगा।

स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में पतिव्रता नारी सुखों को भोगती थी। पति के प्रति उसका हमेशा सखा भाव रहता था। पति पत्नी के मध्य दो मित्रों की भांति समानता पायी जाती थी।

पत्नी के सद्गुणों से प्रभावित पति पत्नी, को पर्याप्त सम्मान देता है। श्री राम सीता के हृदय में इस प्रकार से बसे थे कि सीता उनके मनोगत भावों को बिना कहे ही जान लेती थी। वन के अभावपूर्ण जीवन् में भी सीता अडिग रही। उसे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई।

यहाँ तक कि वानर संस्कृति में पोषित तारा जैसी पत्नियाँ भी पति की सहधर्मिणी मानी गई है। कौसल्या एवं अनुसूया जैसी वयोवृद्ध महिलाएं भी दाम्पत्य मर्यादा से समन्वित दिखाई पड़ती

हैं। एक स्थल पर सीता से राम कहते हैं -सत्पुरुषों ने पत्नी के साथ रहकर जिस धर्म का पालन किया है मैं भी साथ रहकर उसी का पालन करूँगां। (रा.मा. 2/30,30)

'धर्मस्तु गजनासोरु सद्भिराचरितः पुरा।'

अपने चरित्र को शुद्ध बनाए रखना भी पत्नी का परम कर्त्तव्य था। सीता की अग्नि परीक्षा भी इसका ज्वलन्त प्रमाण है। विषम परिस्थितियों में भी अपने पातिव्रत्य का पालन करने वाली सीता अग्निपरीक्षा में पूर्ण सफल रही। इसके विपरीत अहल्या आदि के प्रसंग से सिद्ध होता है कि चारित्रिक शुद्धि के लिए कठोर प्रायश्चित कराया जाता था-

गौतम अहल्या को शाप देते हुए कहते हैं-

वायुभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।

अदृश्या सर्वभूतानां आश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि॥ (वा.रा.1/48,30)

अर्थात्- तुम निराहार रहकर, केवल हवा पीती, राख में लेटी और सब प्राणियों के लिए अदृश्य होकर इस आश्रम में बहुत हजार वर्षों तक पड़ी रहोगी।

रावण ने लाख प्रलोभन दिए पटरानी पद का लालच दिया परन्तु सीता किसी प्रलोभन के लिए वशीभूत नहीं हुई। उन्होंने यही कहा - मैं इस भूतल पर अपने लिए निन्दा या कलंक देने वाला कोई कार्य नहीं कर सकती।

'अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम्'। (वा.रा. ५/२१/४)

इस अवसर पर अपने रावण के बीच उन्होंने तिनके को ओट बनाया हुआ है। राम के लिए वे कहती हैं-

'विदितः स हि धर्मज्ञः शरणागतवत्सलः'। (रा.मा. ५/२१-२०)

रावण को पाप कर्म के प्रति सावधान करती हुई कहती हैं- 'जिस प्रकार एक पापी मनुष्य सिद्धि प्राप्त करने का अधिकारी नहीं होता उसी प्रकार तुम भी मुझे प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हो।'

'नाहं जीवितुमुत्सहे' (रा.मा. 5/26/5)

अपने सतीत्व पर वह जरा भी आंच नहीं आने देना चाहती-चाहे मुझे काट दो,चाहे रत्ती-रत्ती करके आग में जला डालो, भालों से भेदकर अग्नि में भून डालो- मैं राक्षसराज रावण

की भार्या नहीं बन सकती। (रा.मा. 5/26-10)

नारी संकल्प की दृढ़ता यहाँ द्रष्टव्य है। उत्पीड़न के विरोध में भी अनेक बार विदुषी स्त्रियाँ मौन विरोध कर उठती हैं। दुष्टा नारी दण्ड्नीय मानी गई है। इस प्रकार से रामायण में पत्नी का अर्थ है स्त्री या सहचरी जो अपने तमाम कर्त्तव्यों का निर्वाह करती हुई अपने धर्म में तत्पर दिखाई देती है। आदर्श पुरुष राम भी अनेक स्थलों पर दाम्पत्य मर्यादा के संकेत देते हैं। उन दोनों के दाम्पत्य की गरिमा भारतीय समाज को शिक्षित करने के लिए पर्याप्त हैं स्त्रियाँ पति के कल्याणार्थ देवताओं से प्रार्थना करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। पति रक्षक की भूमिका भी निभाता है। वनवासकाल में राम लक्ष्मण से कहते हैं - 'तुम आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे चलेंगी और सीता की रक्षा करता हुआ मैं तुम्हारे पीछे चलूँगा।' (रा.मा. 2- 46,76,77)

दुष्टाचरण करने वाली कैकेयी का मुख भी दशरथ नहीं देखना चाहते। इसके विपरीत वही दशरथ सहधर्मिणी कौसल्या से कहते हैं- 'हे देवी! धर्म का विचार करने वाली स्त्रियों के लिए गुणवान या निर्गुण पति प्रत्यक्ष देवता है'।

'भर्ता तु खलु नारीणां गुणवान्निर्गुणोऽपि वा।

धर्म विमृशमानानां प्रत्यक्षं देवि दैवतम्।

(वा.रा. २/५६-५)

वैदिक साहित्य में दाम्पत्य को पूर्णता प्रदान करने वाला भाव प्रथम स्थान पर दिखाई पड़ता है-

यथा वृक्षं लिबुजा समन्त परिषस्वजे
एषा परिष्वजस्व मां यथा कामिन्यसो
यथा मन्नागणा असः। (अर्थव.६-८-१)

पति का पत्नी से अनुरोध :-

जिस प्रकार लता वृक्ष से लिपट जाती है और उसका आश्रय लेती है उसी प्रकार हे स्त्री-प्रेम से तू सब प्रकार मेरा 'आलिंगन कर और मेरा आश्रय ले।' रामायण में भी कुछ-कुछ सही संकेत मिल रहा है।

'लताः समनुवर्तन्ते मत्ता इव वरस्त्रियः''

अर्थात् कामियों की उपमा लता से दी जा रही है।

वाल्मीकि सांकेतिक रूप से सब कुछ कहते हुए दाम्पत्य मर्यादा के दर्शन कराना चाहते हैं। स्थान-स्थान पर वैदिक आस्था के दर्शन हो रहे हैं। पूरा समाज वेदों के प्रति निष्ठावान् प्रतीत होता है- **''वेद वेदांगतत्त्वज्ञः, वेदेषुपरिनिष्ठतौ, वैदिकाध्ययने रताः ये चेमे कठकलापा, बुद्धिवेदमन्त्रानुसारिणी'** आदि अनेक प्रसंग द्रष्टव्य है।

वैदिक आचरण पर बल देने वाला रामायणकालीन समाज जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादा की परिभाषा दे रहा है। वैदिक काल में जिस प्रकार आशीर्वचनों से अलंकृत पति-पत्नी सहयोगपूर्ण गृहस्थ आश्रम धर्म का पालन करते दिखाई पड़ते हैं वैसे ही आशीर्वचनों से रामायण कालीन दम्पत्ति अलंकृत है। गृहस्थ का एक उद्देश्य सन्तान प्राप्ति भी है। सन्तान की रक्षा पर भी बल दिया गया। पति पत्नी का परस्पर सहयोग ही दाम्पत्य जीवन की आधारशिला है। वैदिक कालीन नारी अपने दायित्वों के प्रति पूर्ण जागरूक है। आस्तिकता, सौमनस्य, एकता एवं सद्भाव, प्रेम, धैर्य स्वावलम्बन, धन समृद्धि, स्वस्थता, तथा धर्मपरायणता आदि श्रेष्ठगुण ही दाम्पत्य को विशिष्ट बल प्रदान करते हैं अन्यथा दाम्पत्य जीवन असफल हो सकता है।-

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैदिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में रामायण कालीन दाम्पत्य का अत्यन्त महत्त्व है। वह समाज के लिए अनुकरणीय है। दाम्पत्य केवल सिद्धान्त या भाववाचक संज्ञा ही नहीं है इससे आगे भी बहुत कुछ है। हमें तलाश है एक सूर्योदय की-अत्यन्त तेजस्वी सूर्योदय हमें शान्ति दे।

शं नः सूर्य उरूचक्षा उदेतु-(ऋ.7/35-8)

वास्तव में संसार को सुख शान्ति पूर्वक पार करने के लिए भारतीय समाज रूपी जहाज में से ये दम्पति ही एकमात्र पतवार बनते हैं। अत्यन्त पवित्रता धारण किए हुए भारतीय दम्पति संसार के लिए आदर्श बन सकते हैं। वेदों तथा रामायण के अनुशीलन से ज्ञात होता हैं कि दातपत्य जीवन की पृष्ठभूमि में समाज की अनेक रीतियाँ, नीतियाँ, इतिहास तथा अनुभव छिपे हैं। वे अनुभव आधुनिक दाम्पत्य सम्बन्धों को एक सुन्दर राह दिखा सकते हैं। पवित्र प्रेम और विश्वास दाम्पत्य की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। दाम्पत्य सम्बन्ध को अटूट बनाया जा सकता है। यदि आपस में व्यक्तित्वों की टकराहट न हो। पति और पत्नी में कम से कम इतनी सहनशीलता तो होनी ही चाहिए जितनी कि दो पड़ोसियों में। सभ्यता के विकास में स्थिर आवास की कल्पना जब नर और नारी ने की, जिस दिन उसने दम का निर्माण किया उसी दिन से उसका नाम दम्पति पड़ गया। इसी घोंसले की शीतल छांह में उनका दाम्पत्य निखरा। वास्तव में आधुनिक युग में इस

टूटते बिखरते दाम्पत्य को संभालने के लिए सीमित स्वार्थो के परित्याग की अत्यन्त आवश्यकता है। किसी कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है-

महाकाश छटपटाता है धरती वधू को ,
बाहों में घेरने के लिए।
वधू धरित्री भी वैसे ही संयोग की,
आकांक्षा से पीडित है।

इस प्रकार वेदों और रामायण में अनेक स्थानों पर दाम्पत्य की दृढ़ता द्रष्टव्य है। रामायण काल में पति दैवतम् एवं 'पति: गतिरेको' की कल्पना दृढ़ हो गई थी। यही कारण है कि पति के सेवा, आदर, अनुगमन न करने वाली नारी पथभ्रष्टा कहलाती थी और समाज में निन्द्य समझी जाती थी।

दाम्पत्य मर्यादा के अनेक सूत्र वेद और रामायण में यत्र तत्र बिखरे हैं। उनसे प्रेरणा ग्रहण कर आधुनिक दाम्पत्य जीवन सुखमय बनाया जा सकता है। और वे सारी दुर्भावनाएं जो जीवन में भेद और विराग को जन्म देती हैं-समाप्त की जा सकती हैं।

वास्तव में भारतीय समाज में पति और पत्नी का आपस में ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरे की शोभा नहीं हो सकती। पत्नी के बिना पति का आस्तित्व उसी प्रकार सुखदायी नहीं है- जिस प्रकार प्राणों के बिना शरीर का अथवा जलराशि के बिना नदी का। सत्य के प्रति विश्वास उत्पन्न होने के कारण ही ऐसी उक्तियाँ ग्राह्य बनती हैं-

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहाँ सुरक्षित,
रक्त मांस की इच्छायें जन की हों पूरित।
मनुज प्रेम से जहाँ रह सके- मानव ईश्वर,
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर।

सुखमय दाम्पत्य के लिए वैदिक ऋषि की कल्पना द्रष्टव्य है।

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः। (ऋ. १०/८५-३२)

अर्थात् तुम दोनों के बीच में कभी न आये वे दुर्भावनाएं जो जीवन में भेद और विराग को जन्म देती हैं। तुम दोनों अपने सच्चारित्र्य के बल पर कठिन दाम्पत्य का निर्वाह कर सको।

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरण चेतना

डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी,
प्राध्यापक- संस्कृत विभाग
काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महा विद्यालय
ज्ञानपुर, भदोही

पर्यावरण शब्द परि+ आवरण से बना है, जिसका अभिप्राय है चारों ओर से घेरना। संस्कृत में इसके लिए पर्यावृति और परिवेष्टन शब्दों का प्रयोग मिलता है। पर्यावरण का सामान्य अर्थ भौतिक परिवेश से है, जो पृथ्वी के जीव जगत् को चारों ओर से घेरे हुए है। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण जगत् का जीवन एक आवरण से आवृत है जो इसे संचालित और प्रभावित करता हैं। यह शरीर पंचतत्वों से निर्मित है। पंच तत्त्वों के अन्तर्गत भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश आते हैं। भू तत्त्व में अन्न, भोज्य सामग्री तथा वृक्ष वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं। जल तत्त्व से जीवन शक्ति मिलती है। अग्नि तत्त्व से ताप, ऊष्मा और गति प्राप्त होती है। वायु तत्त्व से प्राणशक्ति मिलती है। आकाश तत्त्व, ध्वनि तरंगो, शब्द शक्ति और संवेदना का स्रोत है। यें पांचो तत्त्व जगत् को प्रभावित करते हैं। इनका संतुलन जीवन के स्रोत को प्रभावित करता है। पर्यावरण के इस संतुलन पर ही हमारा जीवंन निर्भर करता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण दोनों ही मनुष्य को प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्त्व विकास में जितना महत्त्व शुद्ध प्राकृतिक पर्यावरण का है उतना ही महत्त्व सामाजिक पर्यावरण का है।

वैदिक काल से ही सामाजिक एवं प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति संचेतना दिखायी पड़ती है। अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि जल, वायु और ओषधियों अर्थात् वनस्पतियों से यह भूमण्डल घिरा हुआ है। ये मानवमात्र को प्रसन्नता देते हैं। अतः इन्हें छन्दस् या आह्लादक कहते हैं-

त्रीण छन्दांसि कवयो वि येतिरे, पुरुषं दर्शतं विश्वचक्षणम्।

आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।

(अर्थवेद १८/१/१७)

वेदों में **'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः'** कह कर भूमि का माता के तुल्य संरक्षण करने

का उपदेश दिया है। यजुर्वेद के शान्तिपाठ में तीनों लोकों जल, वनस्पति, ओषधि तथा सभी देवों की शान्ति के लिए प्रार्थना की गई है। यह प्रार्थना विश्व में शान्ति बनाये रखने के लिए सन्देश के साथ पर्यावरण के प्रति भी एक सन्देश है। बढ़ते प्रदूषण से जब जीव, वृक्ष, वनस्पति, जल, वायु अछूते नहीं हैं, ऐसे में शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है।

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

यजुर्वेद में चर-अचर सबको मित्र की दृष्टि से देखने का सन्देश है। यह मंत्र सामाजिक और प्राकृतिक दोनों पर्यावरण के प्रति ऋषियों की सजगता प्रतिपादित करता है।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्ष्ये।

जब पर्यावरण के तत्त्वों के प्रति मित्रता का भाव होगा, तभी पर्यावरण सन्तुलन रहेगा। पुराणों में भी प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति चेतना प्राप्त होती है। पुराणों में जल को स्वच्छ रखने तथा नदियों के जल की स्वच्छता का ध्यान रखने के लिए सन्देश प्राप्त होता है। पद्मपुराण के आठवें अध्याय में कहा गया है कि गंगा के किनारे मलमूत्र न करें, जो ऐसा पाप करता है, उसका सहस्रों योनियों में भी उद्धार नहीं हो सकता। जो गंगा के जल में या उसके किनारे थूकता है, दूषित जल डालता है, उच्छिष्ट वस्तु डालता है, ऐसा व्यक्ति नरक में जाता है। और उस पर ब्रह्म हत्या का दोष चढ़ता है। जो गंगा के जल में किसी भी प्रकार का कोई पाप करता है, वह पाप अमिट होता है। और किसी तीर्थ में स्नान करने से वह पाप दूर नहीं होता है।

मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गङ्गातीरे करोति यः।

न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्प कोटि शतेरपि॥

श्लेष्माणं वाऽपि निष्ठीवं दूषिकाम्वाऽश्रुवा मलम्।

गङ्गा तीरे त्यजेद्यस्तु स नूनं नारकी भवेत्

उच्छिष्टं कफकञ्चैव गङ्गागर्भेच यस्त्यजेत्।

य याति नरकं घोरं ब्रह्महत्यां विन्दति॥

(पद्म पुराण 7 क्रियायोग 8/8-10)

वाल्मीकि रामायण में प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति स्पष्ट चेतना दिखायी पड़ती है। रामायण सामाजिक पर्यावरण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। समाज में समरसता, भाई-भाई में प्रेम सौहाद्र बनाए रखते हुए अपने कर्त्तव्य की शिक्षा और मार्गदर्शन कराने में पूरी तरह समक्ष है।

वायु एवं वृक्ष

वायु समस्त जीवधारियों के लिए आवश्यक है। पृथ्वी पर जीवन वायु के आक्सीजन पर आधारित होता है। समस्त जीव श्वास के रूप में आक्सीजन लेते हैं। तथा कार्बनडाई आक्साइड बाहर निकालते हैं। पेड़ पौधे कार्बनडाई आक्साइड को लेकर भोजन बनाते हैं। और आक्सीजन बाहर निकालते हैं इस प्रकार आक्सीजन और कार्बन डाई आक्साईड का सन्तुलन बना रहता है। वनों के कटने से कार्बन मोनो आक्साइड की मात्रा वायु में बढ़ रही है। इससे पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। इसको नियंत्रित करने के लिए आवश्यक है कि 40 प्रतिशत भू भाग पर वृक्ष वनस्पतियाँ हो। वर्तमान समय में भारत में मात्र 19.27 प्रतिशत भूभाग पर वन हैं। इनमें भी अधिकांश पहाड़ी और दुर्गम भागों में है। अन्य देशों की तुलना में भारत में वनों का क्षरण तेजी से हो रहा है जो चिन्ता का विषय हैं रामायण में वनों और वृक्षों की बहुलता का वर्णन प्राप्त होता है। वाल्मीकि ने वनस्पतियों के संरक्षण के लिए अनेक स्थानों पर स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

वृक्षों में देवत्व की उद्भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है और विशेष रूप से महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। रामायण में भी अनेक स्थलों पर वनस्पतियों का सौन्दर्य और प्राचुर्य वर्णित है। वृक्षों और वनों का भी वर्णन है। वृक्ष पूजनीय और सौभाग्यदायक रूप से वर्णित हैं। जो पर्यावरण के प्रति सजगता और जागरूकता का संकेत करते हैं। सीता द्वारा न्यग्रोध वृक्ष की पूजा का वर्णन प्राप्त होता है। जो स्पष्ट रूप से वृक्ष संरक्षण का सन्देश देता है।

न्यग्रोधं समुपागम्य वैदेही चाभ्यवन्दत।
नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम्।।
कौसल्यां चैव पश्येम सुमित्रां च यशस्विनीम्।
इति सीताञ्जलिं कृत्वा पर्यगच्छन्मनस्विनी।।

(अयो. ५५/२४-२६)

सीताजी न्यग्रोध वृक्ष के पास पहुँचकर कहती हैं- हे महावृक्ष! मैं आपको प्रणाम करती

हूँ। आप मेरे पति का व्रत पूरा कीजिए जिससे मैं अपनी सास कौसल्या, और सुमित्रा, के फिर दर्शन कर सकूँ। यह प्रार्थना कर और हाथ जोड़े हुए सीताजी ने वटवृक्ष की परिक्रमा की।''

रामायण में अनेक स्थलों पर वृक्ष की पूजा का वर्णन प्राप्त होता है जो वृक्ष संरक्षण के प्रति चेतनता का परिचायक है। अयोध्याकाण्ड में भारद्वाज ऋषि राम से कहते हैं- वह वटवृक्ष अनेक वृक्षों के बीच में है, सिद्धों द्वारा वह सेवित है। जानकी उस वृक्ष की अपने शुभ मनोरथों के सफल होने के लिए प्रार्थना करें।[1]

अयोध्याकाण्ड में ही वर्णन है कि शरदण्डा नदी के तीर पर सत्योपयाचन नाम का एक पूज्य वृक्ष था। दूतों ने उस वन्दनीय वृक्ष की परिक्रमा कर कुलिङ्गा नामक नगरी में प्रवेश किया।[2] अयोध्याकाण्ड में वृक्ष रहित स्थानों पर वृक्ष लगाने का भी वर्णन प्राप्त होता है।[3] पर्यावरण की दृष्टि से वृक्ष लगाया जाना अत्यन्त आवश्यक कार्य है।

युद्धकाण्ड में वर्णन है कि जिसके शिखर का महात्मा महर्षि कभी परित्याग नहीं करते वहां पर सर्वकामना पूरी करने वाले वृक्ष सदा फला करते हैं।

यस्य प्रस्थं महात्मानों न त्यजन्ति महर्षयः।
सर्वकामफला वृक्षाः सदा फलसमन्विताः।

(युद्धकाण्ड २७/३६)

युद्धकाण्ड में लंकावर्णन में वनों के प्रति आकर्षण वर्णित है। वे वन उपवन चौरस, सुन्दर, रमणीक , विशाल, चौड़े तथा नेत्रों को सुख देने वाले थे। उनको देख, वे वानर यूथपति विस्मित हुए।

समसौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च।
दृष्टिरम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जातविस्मयाः।। (युद्धकाण्ड ३९/२)

अरण्यकाण्ड में सुतीक्ष्ण मुनि राम से कहते हैं कि इस वन प्रदेश में अगस्त के भाई का आश्रम है। उसकी भूमि चौरस है और वहाँ अनेक पीपल के वृक्षों का वन है। पीपल वृक्ष का पर्यावरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्व है। पीपल के वृक्षों का वन उस समय की पर्यावरण के प्रति जागरूकता का परिचय प्रदान कराता है।

स्थलीप्रायेवनोद्देशे पिप्पलीवन शोभिते। (अरण्यकाण्ड ११/३९)

किष्किन्धा काण्ड में मतङ्गमुनि द्वारा वन पुत्रवत् पालन करने का वर्णन वनसंरक्षण का स्पष्ट सन्देश देता है। मतङ्गमुनि कहते हैं 'मैं' इस वन का पालन सदा पुत्रवत् किया करता हूँ।

वनेऽस्मिन् मामकेऽत्यर्थं पुत्रवत् परिपालिते। (किष्किन्धा ११/५७)

बालकाण्ड में आयोध्या का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है- सर्वत्र जगह-जगह उद्यान थे और आम के बाग नगर में वृद्धि कर रहे थे। नगर के चारों ओर साखुओं के लम्बे वृक्ष लगे हुए थे, ऐसा प्रतीत होता था मानों अयोध्यारूपिणी स्त्री की मेखला हों-

उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्।। (बालकाण्ड ५/१२)

वसिष्ठ आश्रम वर्णन[4], पम्पा सरोवर वर्णन[5], चित्रकूट वर्णन[6], वर्णन में वृक्षों के प्रति अनुराग और प्रेम का वर्णन प्राप्त होता है। जो पर्यावरण के प्रति चेतना का सन्देश प्रदान कराता है।

रामायण से ज्ञात होता है कि राम के समय वृक्षों के ज्ञान के साथ वनौषधियों का भी विस्तृत ज्ञान था। युद्धकाण्ड में वर्णन प्राप्त होता है -हे वीर! इन्हीं दोनों पर्वत शिखरों के बीच तुम अत्यन्त तेजस्वी चमकीले तथा सब जड़ी बूटियों से भरे हुए औषधपर्वत देखोगे, उस पर्वत शिखर पर तुमको चार बूटियाँ मिलेंगी, वे बड़ी चमकीली हैं। यहाँ तक कि उसकी चमक से दसों दिशाएं प्रकाशित रहती हैं। उन चार के नाम है- मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सावर्णकरणी, सान्धानकरणी।[7]

सुन्दरकाण्ड में लंकावर्णन से ज्ञात होता है कि लंका में भी वृक्षों के संरक्षण के प्रति चेतनता थी। हनुमान् ने लंका के पहाड़ पर खड़े होकर देखा तब उन्हें वन, उपवन तथा पर्वत पर सुन्दर बसी लंका दिखायी पड़ी। हनुमान् ने सब ऋतुओं में फूलने फलने वाले अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त, वहाँ रमणीय वाटिकाएं भी देखीं।[8]

रामायण से ज्ञात होता है कि वृक्ष संरक्षण के साथ ही वायु की शुद्धता के प्रति भी सजगता थी। किष्किन्धा वर्णन में राम कहते हैं- हे लक्ष्मण! वे लोग धन्य हैं जो कमल के फूलों की सुगन्ध से युक्त पम्पा सरोवर के तट के शोकहारी वायु का सेवन करते हैं।[9] यह पवन सुखस्पर्शी, चन्दन की तरह शीतल और शुद्ध गन्ध से युक्त हो, श्रम को दूर कर रहा है।[10]

जल

जल जीव का प्रमुख अंश है। मनुष्य के शरीर में लगभग 70 प्रतिशत जल होता है। जल मनुष्य एवं समस्त जीवधारियों के लिए तथा पेड़ पौधों के लिए नैसर्गिक आवश्यकता है। अत: जल ही जीवन है कहा जाता है। भूमण्डल का तीन चौथाई भाग जल से आच्छादित है। वैज्ञानिक शोधों

के अनुसार वर्तमान में मात्र 0.3 प्रतिशत भाग ही स्वच्छ और शुद्ध जल है। समुद्र के जल बादल बनता है। बादल, वर्षा के रूप में शुद्ध और प्राकृतिक जल के रूप में पृथ्वी पर आक प्राकृतिक जल स्रोतों का रूप धारण करता है। इसी जल पर जीवों का जीवन निर्भर है। जल को स्वच्छ और निर्मल बनाए रखने के लिए हमारे कवि और मनीषी चिन्तित रहे। वाल्मीकि ने रामायण में स्वच्छ और निर्मल जल की महत्ता का वर्णन किया है।

वाल्मीकि ने नदियों, सरोवरों के शुद्ध जल के लिए भी चेतनता जागृत की है। नदियों के प्रति श्रद्धा का भाव रखने उन्हें प्रदूषण से मुक्त रखने के लिए नदियों के पूजन करने, प्रणाम क आशीष मांगने का विवरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

बालकाण्ड में वर्णन है- ब्रह्मा के मानसरोवर से निकली हुई पवित्र सरयू नदी जो अयोध्या होती हुई बहती हैं यहाँ गंगा में मिलती है। और दोनों जलों के टकराने से शब्द होता है। हे राम तुम इनको मन से प्रणाम करो।

तस्यमतुलः शब्दो जाह्नवीमभिवर्तते।

वारिसंक्षोभजो राम प्रणामं नियतः कुरु।

ताभ्यां तु तावुभौ कृत्वा प्रणाममतिधार्मिकौ।।

(बालकाण्ड २४/१०-११)

अयोध्याकाण्ड में सीताजी यमुना को प्रणाम कर वर मांगती हैं कि श्रीरामचन्द्र जी सकुशल इक्ष्वाकुपालित अयोध्या लौट आवें।

कालिन्दीमध्यमायाता सीतात्वेनामवन्दत।
स्वस्ति प्रत्यागते रामे पुरीमिक्ष्वाकुपालिताम्।
कालिन्दीमथ सीता तु याचमाना कृताञ्जलिः।।

(अयो. काण्ड ५५/१९-२१)

बालकाण्ड में वर्णन है- हिमालय ने तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा नदी को तीनों लोकों के कल्याण के लिए देवताओं को दिया।''

ददौ धर्मेण हिमवांस्तनया लोकपावनीम्।
स्वच्छन्दपथगां गङ्गां त्रैलोक्यहितकाम्यया।। (राम.बाल. ३५/१८)

गंगा को लोकनमस्कृता कहा गया है। हे! राम! ये दोनों लोकनमस्कृता गंगा नदी और उमादेवी हिमालय की पुत्री हैं।

एते ते शैलराजस्य सुते लोकनमस्कृते।
गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा उमादेवी च राघव।। (बालकाण्ड ३५/२२)

गंगा का पापनाशिनी के रूप में वर्णन है- हिमालय की पुत्री रमणीय और पाप नाश करने वाले जल से बहने वाली और सुरलोक को जाने वाली यही सुरनदी गंगा है।''

सैषा सुरनदी रम्या शैलेन्द्रस्य सुता तदा।
सुरलोकं समारूढा विपापा जलवाहिनी।। (बालकाण्ड ३५/२४)

बालकाण्ड में वर्णन प्राप्त होता है- हे भारद्वाज देखो इन नदी का जल सज्जनों के मन के समान स्वच्छ है। यह स्वच्छ जल की महत्ता प्रतिपादित करता है।

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा। (बालकाण्ड २/५)

अयोध्याकाण्ड में भी गंगा का सम्मान करने का वर्णन है- श्रीराम कहते हैं इसी श्रेष्ठ गंगा नदी को जो मनोहर जलयुक्त है और देवादि से सेवित हैं हम देखें और उसका सम्मान करें।।''

किष्किन्धाकाण्ड में पम्पा सरोवर वर्णन में जल की शोभा का वर्णन है- हे लक्ष्मण देखो पन्ने की तरह हरे रंग और स्वच्छ जल वाले इस पम्पा सरोवर की कैसी शोभा हो रही है।

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका। (किष्किन्धा १/३)

भारद्वाज ऋषि नदियों के संगम को पवित्र और रम्य स्थान कहते हैं जो स्वच्छ रखने का सन्देश देता है। वे राम से कहते है। इन दोनों महानदियों के संगम पर इस एकान्त, पवित्र ओर रम्य स्थान पर सुखपूर्व वास करें।

अवकाशो विविक्तोऽयं महानद्योः समागमे।
पुण्यश्च रमणीयश्च वसत्विह भवान् सुखम्।। (अयो. काण्ड ५४/२२)

पंचवटी में राम लक्ष्मण से कहते हैं- जहां रमणीय वन हो। जहां जल भी अच्छा और

बहुत हो। जहां समिधा, पुष्प और कुश मिल सकें। ऐसा कोई स्थान खोजो।''

वनरामणयकं यत्र जल रामणयकं तथा।
सन्निकृष्टं च यत्र स्यात्समित्पुष्पकुशोदकम्।। (अरण्य काण्ड १५/५)

पम्पा सरोवर के वर्णन में शीतल जल को शोक दूर करने वाला कहा है-

हे श्रीराम ! सन्ध्या के समय तुम वहाँ घूमा करोगे, तब बड़ी शाखाओं वाले फूले हुए वृक्षों तथा पम्पा सरोवर के शीतल जल को देखकर तुम्हारा शोक दूर हो जाएगा।[12]

पम्पा नाम की झील के चारों ओर सघन वृक्ष और लताएं लगी हुई थीं। और उनका जल पीने में शीतल और स्वादिष्ट था।[13]

पशु - पक्षी

पर्यावरण सन्तुलन को बनाए रखने में पशुपक्षियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। पशु-पक्षियों का संरक्षण भी पर्यावरण की दृष्टि से आवश्यक है।

बालकाण्ड के आरम्भ में बहेलिए द्वारा क्रौंच के वध का वर्णन है। बहेलिए को वाल्मीकि द्वारा दिया गया शाप हिंसा त्याग का सन्देश देता है।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। (बाल का. २/१५)

बालकाण्ड में अयोध्यापुरी के वर्णन में पशुओं के संरक्षण का ज्ञान होता है। उस उत्तमपुरी में कोई धनहीन नहीं था। वहाँ जितने कुटुम्ब वाले लोग निवास करते थे। उनके पास धन, धान्य, गाय, बैल, और घोड़े थे।

नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन् पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान्।। (बाल. काण्ड ६/७)

सुग्रीव राम से कहते हैं- 'हे प्रभो मैं जाति का बन्दर हूँ मेरे साथ आपने जो मैत्री करनी चाही है यह आपने मुझको बड़ा सम्मान प्रदान किया है।''

तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चवोत्तमः प्रभो।
यत्त्वमिच्छसि सौहार्दं वानरेण मया सह।। (किष्किन्धा ५/११)

अरण्यकाण्ड में वनवासी राम को शिकार न करने का निर्देश है- ''तपस्वी को हिंसा आदि करना उचित नहीं, अतः अधर्म को संचित न करने के लिए शिकार आदि व्यसनों को त्याग दीजिए।''

अधर्मं तु सुसूक्ष्मेण विधिना प्राप्यते महान्।

निवृत्तेन च शक्योऽयं व्यसनात्कामजादिह।। (रा.मा, अरण्य. का. ९/२)

अयोध्याकाण्ड में वर्णन है कि मृग, पक्षी और मुनियों के बीच बैठे हुए भरद्वाज ने श्रीराम का स्वागत किया। भरद्वाज आश्रम में विद्यमान मृग और पक्षियों से संरक्षण का सन्देश प्राप्त होता है।

मृगपक्षिभिरासीनो मुनिभिश्च समन्ततः।

राममागतमभ्यर्च्य स्वागतेनागतं मुनिः।। (रा.मा, अयो. का. ५४/१९)

अरण्यकाण्ड में वर्णन है कि- तपस्वियों के आश्रम हिरण और पशु पक्षियों के लिए सुखद आश्रम स्थल थे। ये आश्रम प्राणिमात्र के लिए सुखप्रद स्थल थे। इन आश्रमों में बहुत से हिरण निर्भय घूमा करते थे। पक्षियों का समूह आश्रम के वृक्षों पर रहा करता था।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा।

मृगैर्बुहुभिराकीर्णं पक्षिसङ्घैः समावृतम्।। (रा.मा, अरण्य. का. १/३)

सामाजिक पर्यावरण

व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही सामाजिक पर्यावरण का महत्त्व है। मनुष्य पर सामाजिक और प्राकृतिक पर्यावरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। परिवार, मित्र आदि उसे प्रभावित करते हैं। इन्हीं से समाज भी प्रभावित होता है। अतः परिवार का वातावरण, मित्रों की संगति, भाई भाई में स्नेह, प्रेम सद्भाव आदि का होना आवश्यक है। वर्तमान समय में सामाजिक पर्यावरण भी आवश्यक विषय बन गया है। रामायण इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्पूर्ण ग्रन्थ है। समाज में सद्भाव, प्रेम, सहिष्णुता के सन्देश के साथ, परिवार में भी सोहार्द्र्य का सन्देश देता है।

अयोध्याकाण्ड में वर्णन है कि पिता की आज्ञा शिरोधार्य है- ''मेरे आत्महत्या करने पर हे पुत्र! जिस प्रकार समुद्र को अपनी माता का कहना न मानने से ब्रह्महत्या का पाप लगा था और नरक जाना पड़ा था उसी प्रकार मेरा कहना न माानने से तुझको भी नरक जाना पड़ेगा। इस बात को सब लोग जानते हैं।[14]

भाई-भाई में प्रेम का सन्देश अयोध्याकाण्ड में है- ''वे धैर्यवान्, प्रतापी, दृढ़प्रतिज्ञ और सत्यपराक्रमी भरत जी, महावन में गये हुए यशस्वी राम को प्रसन्न कर, लौटा लाने का विचार कर, सुमंत्र जी से बोले-हे सुमंत्र! तुम तुरन्त सेनानायकादि, सुहृदों तथा अन्य मुख्य प्रजाजनों को तैयार होने की आज्ञा दो। मैं जगत् के कल्याण के लिए राम को वन से लौटाने के लिए वन जाना चाहता हूँ।15''

एक अन्य स्थल पर वर्णन- यद्यपि पानी भरना छोटा काम है, तथापि इस काम को करने से वह निन्द्य नहीं है। क्योंकि अपने बड़े भाई की सेवा करना प्रशंसा करने योग्य कार्य है।16

अयोध्याकाण्ड में पत्नी के लिए उपदेश है- ''पति वन में रहे अथवा नगर में रहे, पति पापी हो अथवा पुण्यात्मा हो, जो अपने पति से प्रीति रखती है, वह उत्तमोत्तम लोकों को प्राप्त करती है।17''

राम, लक्ष्मण भाईयों के विवाह पर उपदेश है- राजकुमारों तुम सब अपनी इन पत्नियों के साथ सदा अच्छा व्यवहार करना और आज तुम लोग जिस प्रतिज्ञा को करते हो आजन्म निर्वाह करना।

पत्नीभिः सन्तु काकुत्स्था मा भूत्कालस्य पर्ययः
जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन् (बाल का. ७३/३४)

किष्किन्धाकाण्ड में मित्रता के सम्बन्ध में वर्णन है-चाहे धनी हो चाहे निर्धन, चाहे दुःखी हो चाहे सुखी, चाहे निर्दोष हो चाहे सदोष-मित्र मित्र ही है।18

मित्र ही एकमात्र सहारा है। ''मैंने शोकार्त्त होकर जो अपने शोक के नाश का उपाय बतलाया है, बस इसी से मेरा दुःख दूर हो सकता है। मित्र दुःखी हो अथवा सुखी, मित्र के लिए मित्र ही एकमात्र सहारा है।'

बालकाण्ड में बड़े भाई के प्रति सम्मान का उपदेश हैं- हे राम! आप धर्मज्ञ हैं अर्थात् यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि, बड़े भाई के सामने छोटा भाई राज्य नहीं पा सकता अतः आप ही राजा होने योग्य है।19

बालकाण्ड में वर्णन है राम के लिए पिता की आज्ञा सर्वोपरि थी- ''राज्य का कार्य चलाने के लिए भरताग्रज श्रीराम जी ने अपनी प्रतिनिधि रूपी खड़ाऊँ भरत को दीं और अनेक बार समझाकर भरत जी को लौटाया।'20

बालकाण्ड में बड़ों के प्रति आदर भाव रखने का सन्देश है- ''ब्रह्माजी को आते देख, वाल्मीकि जी झट उठ खड़े हुए और नम्र हो उनको प्रणाम किया और अत्यन्त आदरपूर्वक आसन, अर्घ्य और पाद्यादि से उनकी यथाविधि पूजा कर, कुशलता पूछी।[21]''

बालकाण्ड में सेवकों के प्रति भी सम्मान के भाव का सन्देश है- यही नहीं कि केवल ब्राह्मणों ही को भोजन दिया जाता था, प्रत्युत शूद्रों, नौकरों - चाकरों को भी भोजन मिलता था। इनके अतिरिक्त तपस्वी, संन्यासी भी भोजन पाते थे।[22]

इस प्रकार रामायण में एक ओर प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति चेतना दिखायी पड़ती है, वहीं सामाजिक पर्यावरण पर मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूचीः-

1- विवृद्धं बहुभिर्वृक्षैः श्यामं सिद्धोपसेवितम्।
तस्मै सीताऽञ्जलिं कृत्वा प्रयुञ्जीताशिषः शिवाः।। रामायण-अयोध्या 55/7

2- निकूलवृक्षमासाद्य दिव्यं सत्योपयाचनम्। अभिगम्याभिवाद्यं तं कुलिङ्गां प्राविशन् पुरीम्।। रा. -अयो. 68/16

3- अवृक्षेषु च देशेषु केचिद् वृक्षानरोपयन्।। रा.मा. अयो. 80/7

4- वसिष्ठस्याश्रमपदं नानावृक्षलताकुलम्। नानामृगगणाकीर्णं सिद्धचारणसेवितम्।। रा.मा.-बाल का. 51/23

5- सौमित्रे पश्य पम्पायाः काननं शुभदर्शनम्। यत्र राजन्ति शौलावा द्रुमाः सशिखरा इव।। राम. -किष्किन्धा 1/4
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः। कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः।। रा.मा. किष्कि. 1/13
विक्षिपन् विविधाः शाखा नगानां कुसुमोत्कटाः। मारुतश्चलितस्थानैः षट्पदैरनुगीयते। रा.मा. किष्कि 1/14

6- आम्रजम्ब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैः पनसैर्धवैः। अङ्कोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिन्दुकवेणुभिः।।
काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैस्तथा। बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः।।
पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावाद्भिर्मनोरमैः। एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः। रा.मा. अयो. 94/8 से 10

7- तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम्। सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम्।।

तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवा:। द्रक्ष्यम्योषधयो दीप्ता दीपयन्तिर्दिशो दश।। मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि। सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा।। रा मा. -युद्ध का. 74/31-33

8- स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च। स नगाग्रे च तां लंकां ददर्श पवनात्मज:।। सुन्दरकाण्ड 2/8

सन्ततान्विविधैर्वृक्षै: सर्वर्तुफलपुष्पितै:। उद्यानानि च रम्याणि ददर्श पवनात्मज:।। सुन्दरकाण्ड 2/13

9- पद्म सौगन्धिकवहं शिवं शोकविनाशनम्। धन्या लक्ष्मण सेवन्ते पम्पायापवनमारुतम्।। किष्कि. 1/104

10- स एव सुखसंस्पर्शो वाति चन्दनशीतल:। गन्धमभ्यवहन् पुण्यं श्रमापनयनोऽनिल:।। किष्कि. 1/17

11- द्रक्ष्याम: सरितां श्रेष्ठां सम्मान्यसलिलां शिवाम्।
देवदानवगन्धर्वमृगमानुषपक्षिणाम्।। अयोध्याकाण्ड 50/29

12- सायाह्ने विचरन् राम विटपीन्माल्यधारिण:।
शीतोदकं च पम्पाया दृष्ट्वा शोकं विहास्यसि।। अरण्यकाण्ड 73/20

13- नानाद्रुमलताकीर्णां पम्पा पानीयवाहिनीम्।
पद्मै: सौगन्धिकै: ताम्रां शुक्लां कुमुदमण्डलै:।। अरण्यकाण्ड 75/12

14- ततस्त्वं प्राप्स्यसे पुत्र निरयं लोकविश्रुतम्।
ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्र: सरितां पति:।। अयोध्या 21/28

15- स राघव: सत्यधृति: प्रतापवान् ब्रुवन् सुयुक्तं दृढ़सत्यविक्रम:।
गुरुं महारण्यगतं यशस्विनं प्रसादयिष्यन् भरतोऽब्रवीत्तदा।। अयोध्या 82/29
तुर्णं समुत्थाय सुमन्त्र गच्छ बलस्य योगाय बलप्रधानान्।
आनेतुमिच्छामि हि तं वनस्थं प्रसाद्य रामं जगतो हिताय।। अयोध्या. 82/30

16- जघन्यमपि ते पुत्र: कृतवान्न तु गर्हित:।
भ्रातुर्यदर्थरहितं सर्वं तद् गर्हितं गुणै:।। अयोध्या. 104/6

17- नगरस्थो वनस्थो वा पापो वा यदि वा शुभ:।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदया:।। अयोध्या. 11 7/23

18- आढ्यो वापि दरिद्रो वा दु:खित: सुखितोऽपि वा। निर्दोषो वा सदोषो वा वयस्य: परमा

गति:।। किष्कि. 8/8

एष मे राम शोकान्त: शोकार्तेन निवेदित:। दु:खित: सुखित: वाऽपि सख्युर्नित्यं सखा गति:।। किष्कि. 8/40

19- अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृत:। त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽगब्रवीत्।। बाल काण्ड 1/35

पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुन: पुन:।
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रज:।। बालकाण्ड 1/37

20- वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यत:। प्राञ्जलि: प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मित: पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनै:। प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम्।। बालकाण्ड 2/24,25

21- ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते। तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।। बालकाण्ड 14/12

22- अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभा:।
अहो तृप्ता: स्म भद्रं ते इति शुश्राव राघव:।। बालकाण्ड 14/17

वाल्मीकि-रामायण में वर्णित वास्तु विज्ञान

डॉ० मंजु नारंग
डी. लिट. अध्यक्षा- संस्कृत विभाग
एम.के.पी (पी.जी.) कालेज,
देहरादून (उत्तरांचल)

संस्कृतवाङ्मय में रामायण की गणना विशिष्ट ग्रन्थों के अन्तर्गत की जाती है। भारतीय संस्कृति के अध्ययन हेतु यह आदर्श ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है। रामायण का दृष्टिकोण व्यापक है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा कलात्मक प्रत्येक दृष्टि से रामायण में वर्णित विषय अद्वितीय हैं। वास्तु विज्ञान जीवन का आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण विषय है। प्रत्येक जीव को आत्मरक्षा, विश्राम एवं सुख सुविधा हेतु आवास गृह की आवश्यकता होती है। पशु-पक्षी भी श्रम पूर्वक अपनी आवश्यकतानुसार अपने आश्रय को सुखद एवं सुविधा सम्पन्न बनाते हैं। वे उसे रुचि अनुकूल सुन्दर स्वरूप भी प्रदान करते है। मानव बुद्धिजीवी प्राणी है, अस्तु मानव द्वारा निर्मित भवनों का निर्माण वास्तु दोष रहित, स्वच्छ वायु एवं प्रकाश की व्यवस्था सम्पन्न तथा सुन्दर एवम् आकर्षक शैली में किया जाता है, एतदर्थ वास्तु विज्ञान की सहायता ली जाती है।

रामायण में वर्णित पुरी, भवन , पर्णशाला, शिविर तथा सेतु बन्धनादि निर्माण कार्य दक्ष वास्तुविदों तथा कुशल शिल्पियों की सहायता से किया जाता था। अयोध्या एवं लंकापुरी के वर्णन में सुन्दर सुरुचिपूर्ण तथा भव्य सज्जा सम्पन्न भवनों, अट्टालिकाओं चौराहों तथा राजमार्गों का विवरण प्राप्त होता है। सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। एतदर्थ परिखाओं आदि का निर्माण किया जाता था। प्रत्येक प्रकार के निर्माण कार्य के उपरान्त वास्तु पूजा की जाती थी। अतएव रामायण में वर्णित वास्तु - कला विशिष्ट विज्ञान का रूप धारण कर चुकी थी। रामायण में वर्णित वास्तु विज्ञान के अध्ययन हेतु निम्न विषयों पर दृष्टिपात आवश्यक है:-

पुरी निर्माण:-

पुरी के वर्णन के अन्तर्गत रामायण में विशेष रूप से अयोध्या तथा लंकापुरी का वर्णन प्राप्त होता है। किष्किन्धा पुरी का भी यद्यपि वर्णन किया गया है। किन्तु वह अति संक्षिप्त है उसका नामोल्लेख मात्र है। राजा दशरथ की आयोध्या पुरी मनु द्वारा निर्मित एवं बसायी गयी थी। **''मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्''** (बाल काण्ड 5/6) अतीव शोभा सम्पन्न वह नगरी

बारह योजन लम्बी तथा तीन योजन चौड़ी थी। बाह्य जनपदों में प्रस्थान करने हेतु उसका विशाल राजमार्ग उभय पार्श्व में वृक्षावलियों से सुशोभित होने के कारण सुस्पष्ट तथा सम्यक् रूपेण विभाजित प्रतीत होता था। वह नगरी विशालकाय कपाटों तथा तोरणों से शोभायमान थी। उसके अन्दर विविध प्रकार के द्वार थे। समस्त प्रकार के अस्त्र शस्त्रों एवं यन्त्रों का वहाँ संचय किया गया था। समस्त प्रकार की कलाओं के शिल्पी वहाँ निवास किया करते थे।[1] सैकड़ों शतध्नियों से वह पुरी सुरक्षित थी। **शतध्नीशतसंकुलाम्** (बालकाण्ड 5/11)। उसके चारों ओर दुर्लंध्य तथा प्रवेश करने में असमर्थ परिखाए थी। वह नगरी अन्य जनों के लिए दुर्गम् एवम् अजेय थी। **दुर्गगम्भीर परिखां दुर्गमन्यैर्दुरासदाम्** (बालकाण्ड 5/13)। अयोध्या नगरी रघुवंशियों के वीर पूर्वजों की निवास भूमि थी। वह स्वानुरूप गुणों से सम्पन्न थी। उसके द्वार प्रत्येक ओर से सुदृढ़ थे। **वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः सत्यनामाम्**'' (अयोध्या काण्ड 100/40)

अयोध्या नगरी के चारों ओर आम तथा अन्य विविध प्रकार के उद्यान व्याप्त थे। महदाकार वह नगरी साल के वृक्षों से सभी ओर से आवृत थी। **''उद्यानाम्रवणोपेतां महतीं सालमेखलाम्''** (बाल काण्ड 5/20)। उसके प्रासाद विभिन्न प्रकार के रत्नों से अलंकृत तथा पर्वतों के समान उन्नत प्रतीत होते थे। विविध प्रकार के कूटागारों से समन्वित वह नगरी इन्द्र की अमरावती के समान प्रतीत होती थी। विभिन्न शोभा सम्पन्न उस नगरी के महलों पर सोने का पानी चढ़ाया गया था। श्रेष्ठ एवं सुन्दर नारियों के द्वारा उस नगरी की शोभा की अभिवृद्धि होती थी। अष्टपदाकार वह नगरी समस्त प्रकार के रत्नों से आपूर्ण सतमहले प्रासादों से शोभायमान थी।[2] वह नगरी समतल भूमि पर अवस्थित थी **'समभूमौ निवेशिताम्''** (बालकाण्ड 5/17) देवलोक में तपस्या से प्राप्त सिद्धों के विमान की भांति भूमण्डल में सर्वोत्तम स्थान से वह अलंकृत थी। वहां के सुन्दर महल सुन्दर रीति से निर्मित थे तथा सुचारु रूप से बसाये गये थे। उनके अन्त भागः अति सुन्दर थे। अनेको श्रेष्ठ पुरुष उसमें निवास किया करते थे।3 महाराज दशरथ के द्वारा वह बसायी गयी थी। **''पुरीमावसयामास राजा दशरथस्तदा''** (बालकाण्ड 5/22)। सुदृढ़ द्वारों, विचित्र गृहों तथा अर्गलाओं से समन्वित कल्याणकारिणी वह नगरी अपने अयोध्या नाम को सार्थक किया करती थी। **''तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां, गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम्।''**(बालकाण्ड 6/28)

विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंकापुरी सुदूर तक विस्तृत समुद्र के दक्षिण तट पर बसायी गयी थी। लक्ष्य का ज्ञान सम्भव नहीं होने के कारण वहाँ पर नौका द्वारा जाना सम्भव नहीं था। देवपुरी के सदृश प्रतीत होने वाली वह दुर्गम नगरी पर्वत के शिखर पर अवस्थित थी। गजों तथा अश्वों से व्याप्त उस नगरी में परिखाएं शतध्नियां तथा विविध प्रकार के यन्त्र शोभायमान थे।[4] वह

महानगरी सुवर्ण निर्मित प्राचीरों से व्याप्त थी। तथा शरद् ऋतु में मेघ के समान श्वेत एवं पर्वत के सदृश उन्नत भवनों से व्याप्त थी। श्वेत वर्ण वाली उन्नत प्रतोलियों से वह सभी ओर से आवृत थी। श्वेत वर्ण के उन्नत राजमार्गों ने उस पुरी को सभी ओर से घेरा हुआ था। शतशः अट्टालिकाएं तथा फहराती हुई ध्वज पताकाएं दसकी शोभा की अभिवृद्धि किया करती थी। उसके वाह्य तोरण स्वर्ण निर्मित तथा उसकी भित्तियाँ चित्र-विचित्र लता पंक्तियों से शोभायमान थी। सुन्दर शुभ्रसदनों से सुशोभित तथा पर्वत के शिखर पर अवस्थित वह नगरी आकाश में विचरण करती हुई सी प्रतीत होती थी।[5] राक्षसराज रावण द्वारा सुरक्षित तथा विश्वकर्मा के मानसिक संकल्प से निर्मित वह नगरी एक सुन्दरी स्त्री के सदृश प्रतीत होती थी। उसके प्राचीर तथा अन्त:मार्ग की वेदिका उसकी जघन स्थली थी। सागर की अथाह जल राशि उसके वस्त्र प्रतीत होते थे। शतघ्नी तथा शूल नामक अस्त्र उसके केश तथा विशालकाय अट्टालिकाएं उसके कर्णाभूषण प्रतीत होते थे।[6]

अलकापुरी के बहिर्द्वार के सदृश उसका उन्नत द्वार आकाश में रेखा खींचता हुआ सा प्रतीत होता था। उसको देखने पर ऐसा प्रतीत होता था मानों उन्नत प्रासादों पर आकाश को उठा लिया गया हो।[7] सुन्दर कलाकृति से निर्मित तथा सुस्पष्ट स्वरूप वाली अचिन्त्य उस नगरी में पूर्व काल में कुबेर निवास किया करता था। **अचिन्त्यां सृकृतां स्पष्टां कुबेराध्युषितां पुरा'** (सुन्दर काण्ड 2/25) यशस्विनी वह नगरी रावण के बाहुबल से सुरक्षित थी। यशस्विनीं रावणबाहुपालिताम्" (2-56) विशालकाय सप्त तथा अष्ट मंजिले भवनों के सुवर्ण भूषित तथा स्फटिक एवं वैदूर्य मणि से जटित फर्श से उनकी विचित्र प्रकार की शोभा होती थी। सुवर्ण निर्मित विचित्र प्रकार के तोरणों से वह शोभायमान थी।[8] विचित्र जाम्बूनद नामक सुवर्ण की जालियों तथा बन्दनवारों से वहाँ के गृह सुसज्जित थे। **''महार्हजाम्बूनदजालतोरणाम्''** (सुन्दर काण्ड 2/56)। अपूर्व शोभा सम्पन्न उस नगरी के सुवर्ण निर्मित द्वारों पर नीलम के चत्वरों का निर्माण किया गया था। वे समस्त द्वार हीरे, मोती तथा स्फटिक से जटित थे। उनके दोनों ओर तप्त सुवर्ण से निर्मित हाथी शोभायमान थे। उन द्वारों का ऊपरी भाग रजत निर्मित होने के कारण स्वच्छ तथा श्वेत था। उसके सोपान नीलम से निर्मित थे। उन द्वारों का अन्त भाग स्फटिक मणि से निर्मित तथा धूल रहित था। वे सभी द्वार रमणीय सभा भवनों से अधिष्ठित तथा सुन्दर थे। उनका आकार आकाश में उठा हुआ सा प्रतीत होता था। वह नगरी त्रिकूट के शिखर पर होने के कारण आकाश में ऊपर उठी हुई सी प्रतीत होती थी।[9]

लंकापुरी के अत्यधिक दीर्घाकार तथा आयताकार चार विशाल द्वारों पर सुदृढ़ कपाट तथा स्थूल अर्गलाएं थी। उन द्वारों पर विशालकाय प्रबल यन्त्र लगे हुए थे। उनसे बाणों तथा पत्थर के गोलों की वर्षा के द्वारा आक्रमणकारी शत्रुओं को आगे बढ़ने से रोका जाता था। अनका निर्माण

पराक्रमी राक्षसो द्वारा किया गया था। कृष्ण वर्ण की लौह निर्मित, भयानक तथा तीक्ष्ण शतशः शतध्नियां उन द्वारों के साथ लगातार रखी जाती थीं। उस पुरी के चारों ओर अति उन्नत स्वर्ण निर्मित परकोटे थे। इनको भेदन करना अति दुष्कर कार्य था। उनमें मणियों मूँगों, नीलम तथा मोतियों का कार्य किया गया था। परकोटों के चारों ओर अति भयानक शत्रुओं के लिये महान् अनिष्टकारी शीतल जल युक्त, अगाध जल वाली परिखाओं का निर्माण किया गया था। उनमें अति विशालकाय यन्त्र लगाये गये थे। उनके समीप के परकोटों पर अनेकों भवनों का निर्माण किया गया था। उनमें अति विशालकाय यन्त्र लगाये गये थे। उनके समीप के परकोटों पर अनेकों भवनों का निर्माण किया गया था। शत्रु सेना के प्रवेश करने पर यन्त्रों द्वारा उन संक्रमों की रक्षा की जाती थी तथा उन यन्त्रों के द्वारा ही उन्हें सभी ओर से गिरा दिया जाता था। उनमें से एक संक्रम अति सुदृढ़ तथा दुर्भेद्य था। देवताओं के लिये भी अति दुर्गम तथा भयानक उस नगरी के चारों ओर नदी, पर्वत, वन तथा कृत्रिम चार प्रकार के दुर्ग थे।[10]

भवन निर्माणः-

नगर निर्माण के समान ही सुरिक्षत, सुसज्जित, सुदृढ़, सुन्दर कलाकृतियों से सम्पन्न तथा सुरुचिपूर्ण भवनों का निर्माण किया जाता था। एतदर्थ वास्तु विज्ञान को प्रमुखता दी जाती थी। अयोध्यापति राजा दशरथ का भवन मेघ समूहों के सदृश शोभासम्पन्न, सुन्दर तथा विविध प्रकार के स्वरूपों तथा वर्णो से युक्त कैलाश शिखर के समान उज्ज्वल प्रासाद शिखरों से शोभायमान थे। उनमें अपनी श्वेत आभा तथा रत्नों की जाली से विभूषित तथा विमानाकार क्रीडा गृह निर्मित थे। वे अपनी ऊँचाई से आकाश को भी लाँघते हुए से प्रतीत होते थे। उपर्युक्त प्रकार की विशिष्टताओं से सम्पन्न वह श्रेष्ठ भवन इस भूतल पर इन्द्र के सदन के समान सुशोभित होता था।[11]

श्री राम का भवन कैलाश पर्वत के समान श्वेत प्रभा से दैदीप्यमान, इन्द्र भवन के सदृश दीप्तिमान् महा कपाट से युक्त तथा शतशः वेदिकाओं से सुशोभित था। उसका प्रमुख अग्रभाग देव प्रतिभाओं से अलंकृत तथा बाह्य भाग मणि एवं विद्रुम से जटित था। वह शरद् कालीन मेघ के समान कान्तिमान् तथा मेरु पर्वत की कन्दरा के सदृश शोभायमान था। सुवर्ण निर्मित पुष्पमालाओं के मध्य बहुमूल्य मणियों से वह सुसज्जित था। वीथियों में जटित मुक्तामणियों से वह दैदीप्यामान् था। चन्दन तथा अगरु की सुगन्ध से सुवासित उस भवन से मलयाचल के समीपवर्ती दुर्दर नामक चन्दन गिरि के शिखर की भाँति सर्वत्र सुगन्धि विकीर्ण होती रहती थी। कलरव करते हुए सारस एवं मयूरादि पक्षी उसकी शोभा की अभिवृद्धि किया करते थे। सुवर्णादि से सुन्दर रीति से निर्मित

भेड़ियों की मूर्ति से वह व्याप्त था। कुशल शिल्पियों के द्वारा उनकी भित्तियाँ सुसज्जित थीं। उनकी शोभा समस्त प्राणियों के नेत्रों एवं मन को स्वत: आकृष्ट कर लिया थी करती। चन्द्रमा तथा सूर्य के समान तेजस्वी कुबेर के भवन के समान अक्षय सम्पत्ति सम्पन्न तथा इन्द्र धाम के सदृश भव्य एवं मोनामुग्धकारी श्रीराम के भवन की विविध प्रकार के पक्षी शोभा की अभिवृद्धि किया करते थे। विशालकांय, उन्नत सुन्दर तथा शोभा सम्पन्न उस राज भवन की भित्तियाँ विविध प्रकार के रत्नों से जटित थी। कुब्जों से आवृत, शचीपति के भवन के सदृश शोभा वाला वह भवन इतस्तत: व्याप्त मृगों तथा मयूरों से सुशोभित रहता था।[12]

कैकेयी का श्रेष्ठ भवन हाथी दांत, रजत एवं स्वर्ण निर्मित वेदियों से संयुक्त था। प्रतिदिन प्रस्फुटित होने वाले पुष्पों, फलदार वृक्षों तथा वापी से वह सुशोभित रहता था। चम्पा तथा अशोक से युक्त अनेकों लता भवन तथा चित्र मन्दिर उसको सुशोभित किया करते थे। हाथी दांत तथा स्वर्ण निर्मित उत्तम सिंहासनों से युक्त वह सभा भवन विभिन्न प्रकार के अन्न तथा पेय पदार्थो तथा स्वर्ण विविध प्रकार की भक्ष्य एवं भोज्य सामग्रियों से सम्पन्न था। बहुमूल्य आभूषणों की सज्जा से युक्त वह भवन स्वर्गिक आभा के सदृश प्रतीत होता था।[13] लंकापति रावण का राजमहल त्रिकूट पर्वत के एक शिखर पर अवस्थित था। वह सभी ओर से श्वेत कमलों द्वारा अलंकृत परिखाओं से आवृत था। चारों ओर उन्नत प्राकारों से आवृत वह दिव्य भवन स्वर्ग लोक के सदृश मनोहारी था। रावण के अन्त:पुर के चारों ओर सुवर्ण एवं जाम्बूनद के परकोटे थे तथा उसका ऊपरी भाग बहुमूल्य मोतियों तथा मणियों से अलंकृत था। संगीत की मधुर ध्वनियों से वह निनादित रहता था।[14] रावण ने अपने भ्राता कुम्भकर्ण के लिये विश्वकर्मा के सदृश सुयोग्य शिल्पियों से शयन गृह का निर्माण करवाया था। वह शयनागार दो योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा, चिकना, एवं दर्शनीय था। वह सर्वप्रकारेण निर्बाध था। उसकी शोभा का विस्तार करने के लिये उसमें सभी ओर स्फटिक मणि एवं सुवर्ण के स्तम्भ बनाये गये थे। उसमें नीलम के सोपान तथा सभी नुपुर युक्त झालरें लगायी गयी थी। उनका प्रमुख तोरण हाथी के दाँतों से निर्मित था। हीरे तथा स्फटिक मणि से उसकी वेदिका सुशोभित होती थी। समस्त प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न वह शयनगृह सुन्दर, सुखद, एवं मनोहरी था। मेरु की पुण्यमयी गुफा के सदृश वह सर्वप्राकारेण सुख प्रदान करनें वाला तथा सुविधा सम्पन्न था।[15]

पर्णशाला निर्माण:-

चौदह वर्ष की वनवास की अवधि के समय श्रीराम को विभिन्न स्थानों पर आवास हेतु

पर्णशाला निर्माण की आवश्यकता अनुभव हुई थी। एतदर्थ श्री राम के आदेशानुसार श्री लक्ष्मण ने स्वयं पर्णशाला का निर्माण किया था। श्री लक्ष्मण ने सर्वप्रथम चित्रकूट में पर्ण कुटी का निर्माण किया था। उन्होंने अनेकों प्रकार के वृक्षों की शाखाओं को काटकर उनकी सहायता से देखने में सुन्दर उस पर्णशाला को अन्दर से काष्ट की भांति भित्ति से सुस्थिर किया था। वर्षा से रक्षा हेतु काष्ठ खण्डों को जोड़ कर उनसे ऊपर के भाग को वृक्षों के पत्तों से आच्छादित किया था।[16] मनोहारिणी उस पर्णशाला का निर्माण उपयुक्त स्थानों पर किया गया था। प्रचण्ड वायु से रक्षा हेतु उसमें समुचित व्यवस्था की गयी थी। **तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां यथा प्रदेशं सुकृतां निवाताम्''** (अयोध्या काण्ड 56/34)।

पंचवटी के रमणीय प्रदेश में पर्णशाला के निर्माण हेतु श्रीराम ने सुन्दर तथा समतल एवं पुष्पित वृक्षों से आवृत स्थान का चयन किया था। उसके समीप ही सूर्य के समान उज्ज्वल क्रान्तियुक्त, मनोमुग्धकारी, सुवासित कमलों से रमणीय प्रतीत होने वाला तथा पद्मो की शोभा से सम्पन्न पुष्करिणी दृष्टि गोचर होती थी। उसमें हंस तथा कारण्डव आदि जलचर पक्षी विचरण किया करते थे। वह स्थान नदी से न तो अधिक दूर तथा अधिक निकटवर्ती भी नहीं था। विविध प्रकार के पुष्पों तथा फलवाले वृक्षों तथा लतावल्लरियों से आवृत पर्वत उसकी शोभा को द्विगुणित कर रहे थे। अनेको कन्दराएं तथा उन्नत पर्वत उस स्थान को आकर्षक तथा मनोहारी बना रहे थे।[17] उपर्युक्त प्रकार की विशिष्टताओं से सम्पन्न स्थान का चयन करने के उपरान्त वहां पर विस्तृत पर्णशाला के रूप में आश्रम का निर्माण किया गया था। श्री लक्ष्मण ने सर्वप्रथम मृदा को एकत्रित किया था। तदुपरान्त भित्ति का निर्माण करने के अनन्तर सुन्दर एवं सुदृढ़ स्तम्भों का निर्माण किया था। स्तम्भों के ऊपर विशालकाय बॉसों पर शभी वृक्ष की शाखाएं फैलायी गयी थीं। तदनन्तर उन्हें सुदृढ़ रस्सियों से कसकर बांधा गया था। उसके ऊपर कुश, कास सरकण्डे तथा यन्त्रों को बिछाकर उसे सुन्दर पर्णशाला का स्वरूप प्रदान किया था।[18]

शिविर निर्माण:-

श्रीराम के द्वारा श्री लक्ष्मण तथा सीता के साथ वनवास हेतु प्रस्थान कर देने पर मातुल गृह से वापिस आने पर जब भरत को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ था।, उस समय उन्होंने तीनों गुरुओं, सम्बन्धियों तथा पुरवासियों के साथ वन हेतु प्रस्थान का निश्चय किया था। उस समय उनके साथ नतोन्नत, सजल एवं जल रहित भूमि के ज्ञाता सूत्र कर्म विशारद, मार्ग रक्षक, स्वकार्य में सदैव सचेत रहने वाले शूरबीर, भूखनन तथा सुरंग आदि के कार्य में प्रवीण नदी को पार करने हेतु

तत्काल साधन उपस्थित करने वाले जल प्रवाह को रोकने में समर्थ वेतन भोगी कर्मचारी, सूपकार, सुधाकार वंशकार, चर्मकार तथा मार्ग निर्माण कार्य के विशेषज्ञों ने पहले प्रस्थान किया था।[19]

उन्होंने सेतु बन्धन योग्य जल युक्त स्थानों में सेतु बन्धन का कार्य किया था। विषम तथा पथरीली भूमि को समतल बनाया था। जल प्रवाह हेतु आवश्यक मार्ग तथा बांधो का निर्माण किया था। इतस्ततः प्रवाहमान जलयुक्त लघुकाय स्रोतों को चारों ओर से निबद्ध करके अधिक जलयुक्त कर दिया था। अगाध जल से भरे हुए समुद्र के समान प्रतीत होने वाले सरोवरों का निर्माण किया था।[20]

देवमार्ग की भांति प्रतीत होने वाले मार्ग को चूना तथा कंकरीट आदि की सहायता से गन्तब्य मार्ग को पक्का कर दिया गया था। उसके किनारे पुष्पवाले वृक्षों का आरोपण किया गया था। **'ससुधा कुट्टिमतलः प्रपुष्पितमहीरुहः''** (अयोध्या काण्ड 80/13)। मार्ग कार्य का निर्माण करने के उपरान्त कार्य कुशल शिल्पियों ने सुस्वादु फलों के आधिक्य वाले सुन्दर प्रदेशों में शिविर का निमार्ण करवाया था। मार्ग के आभूषणे स्वरूप उन शिविरों को विभिन्न प्रकार से अलंकृत एवं सुसज्जित किया गया था। उन निवेशों के चारों ओर सुरक्षा हेतु परिखाएं खोदी गयी थी। शिविरों के अन्तः भाग में इन्द्र नीलमणि निर्मित प्रतिमाएं सुसज्जित की गयी थी। राजगृहों तथा देवस्थानों से युक्त शिविर चूने से लिप्त प्रकारों से आवृत थे। समस्त विश्राम स्थलों को पताकाओं से सुसज्जित किया गया गया था। सर्वत्र सुन्दर रीति से विशाल राजमार्गो का निर्माण किया गया था। कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित वे शिविर विटंको तथा उन्नत एवं श्रेष्ठ विमानों को कारण विशिष्ट शोभा सम्पन्न प्रतीत होते थे।[21]

सेतु बन्धनः-

सागर पार करने हेतु सेतु बन्धन कार्य आवश्यक था। एतदर्थ विश्वकर्मा के औरस पुत्र नल नामक वानर ने दायित्व भार वहन किया था। **''औरसतस्यपुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा। समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वरुणालये** (युद्धकाण्ड 22/53-54)। इस कार्य में सहायता प्रदान करने हेतु पर्वत के समान विशालकाय वानर शिरोमणि पर्वत शिखरों तथा वृक्षों को उखाड़कर उन्हें सागर पर्यन्त खींच कर लाते थे। वे महाकाय तथा महाबली वानर हाथी के समान विशालकाय शिलाओं तथा पर्वतों को उखाड़कर यन्त्रों की सहायता से समुद्र तट पर ले आते थे। शिलाखण्डों को फेंकने से समुद्र का जल सहसा आकाश की ओर उठ जाता था पुनः वहाँ से पुनः नीचे की ओर गिर जाता था। उन वानरों ने सौ योजन का सूत पकड़ा हुआ था। इस प्रकार कुछ वानरों ने नापने के लिये

दण्ड पकड़ा था। तथा अन्य वानरों ने सम्मिलित रूप से सेतु बन्धन कार्य में सहायता की थी। शतशः वानर तिनकों तथा काष्ठों की सहायता से स्थान-स्थान पर सेतु बन्धन कार्य में लीन थे। पुष्णों से भरे हुए अग्रभाग वाले वृक्षों से भी वानारों ने सेतु बन्धन का कार्य किया था।[22]

प्रथम दिवस में चतुर्दश योजन, द्वितीय दिवस में बीस योजन, तृतीय दिवस में इक्कीस योजन, चतुर्थ में बाईस योजन तथा पंचम दिवस तक वानर वीरों ने सुवेल पर्वत तक तेईस योजन पर्यन्त सेतु बन्धन का कार्य किया था।[23] इस प्रकार विश्वकर्मा के पुत्र नल ने समुद्र में सौ योजन लम्बे सेतु का निर्माण किया था। वह सेतु सौ योजन लम्बा तथा दस योजन चौड़ा था। अचिन्त्य, अद्‌भुत, असह्य तथा रोमांचकारी उस सेतु का निर्माण कार्य अति दुष्कर था। **''तमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोकहर्षणम्''** (युद्‌धाकाण्ड 22/77)। अति विशाल वह सेतु सुन्दर रीति से निर्मित, शोभा सम्पन्न, समतल तथा सुसम्बद्ध था। वह महान् सेतु सागर में सीमान्त के समान सुशोभित होता था।[24]

वास्तु पूजाः-

निर्माण कार्य के उपरान्त वास्तु पूजा की जाती थी। शिविर निर्माण कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त वास्तु कर्म के ज्ञाता विद्वानों ने उत्तम नक्षत्रों तथा शुभ मुहूर्त में श्री भरत के निवास एवं विश्राम हेतु निर्मित स्थानों की प्रतिष्ठा करवायी थी।[25] चित्रकूट में श्रीराम के निवास हेतु निर्मित पर्णशाला में दीर्घायु तथा वास्तु शान्ति की कामना से पर्णशाला के अधिष्ठाता देवों की पूजा की गयी थी। **''कर्त्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभि''** (अयोध्या काण्ड 56/22)। पूजन कार्य हेतु श्रीराम के आदेशानुसार श्री लक्ष्मण ने पावन तथा कृष्ण छिल्के वाले रक्त विकार शोधक गजकन्द को दखाड़ कर उसको भली भांति पकाया था। वास्तु पूजा के कर्म में कुशल श्री राम ने स्नान करके शौच तथा सन्तोषादि नियमों का पालन पूर्वक संक्षेप में वास्तु यज्ञ पूरक समस्त मन्त्रों का जाप किया था। तदुपरान्त बलि वैश्वदेव कर्म, रुद्रयाग तथा वैष्णवयाग करके वास्तु दोष की शान्ति हेतु मंगल पाठ किया था। श्रीराम ने विधिपूर्वक नदी में स्नान करके गायत्री आदि मन्त्रों का जाप किया था। तदनन्तर पंचसूना आदि दोषों की शान्ति हेतु उत्तम बलि कर्म सम्पन्न किया था। उन्होंने अपनी लघु पर्णशाला के अनुरूप ही वेदिस्थलों, चैत्यों तथा आयतनों आदि का निर्माण कार्य किया था। तथा उनकी स्थापना की थी।[26] पंचवटी के रमणीय प्रदेश में पर्णशाला के निर्माणोपरान्त श्री लक्ष्मण ने गोदावरी में स्नान करने के उपरान्त कमल के पुष्प तथा वहाँ पर प्राप्त होने वालें फलों से शास्त्रीय विधि के अनुकूल देवताओं को पुष्प बलि अर्पित की थी।, तदुपरान्त

श्री राम को उस आश्रम के दर्शन करवाये थे।[27]

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि रामायण काल में निर्माण कार्य विशिष्ट शिल्पियों के द्वारा उत्तम कलाकृति के रूप में किया जाता था। शिल्पियों के कार्य की कुशलता का वर्णन उनके नामोल्लेख के साथ किया जाता था। पुरी एवं भवन निर्माण हेतु शुद्ध , स्वच्छ एवं मनमोहक पर्यावरण का विशेष ध्यान रखा जाता था। निर्माण कार्य करते समय आन्तरिक एवं वाह्य सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता था। भवनादि को स्वर्ण, रजत, हीरे, मोती, माणिक्य, तथा नीलम आदि से सुसज्जित एवं सुअलंकृत किया जाता था। रामायण काल की वैभव एवं समृद्धि का चित्रण भी यथा स्थान सविस्तर प्राप्त होता है। सुरुचिपूर्ण वास्तु कला का वर्णन विविध प्रकार से किया गया है। राजमार्गो के दोनों ओर तथा उद्यानों में शृंगार एवं औषधिपरक तथा पुष्पों एवं फलदार वृक्षों को लगाया जाता था। पर्णशाला के निर्माण से पूर्व सुन्दर एवं आकर्षक वातावरण वाले तथा सुविधाओं को ध्यान में रखकर स्थान का चयन किया जाता था। पर्णशाला का निर्माण भी वास्तु कला की दृष्टि से सुन्दर तथा सुदृढ़ रीति से किया जाता था। वर्षा तथा प्रचण्ड वायु के प्रकोप से रक्षा हेतु समुचित व्यवस्था की जाती थी। दीर्घायु तथा स्वास्थ्य की कामना से तथा वास्तुदोष की शान्ति हेतु वास्तु पूजा का विधान था। प्रत्येक निर्माण कार्य के उपरान्त वैधानिक रीति से शुद्ध मन एवं शरीर से मन्त्रोच्चारण पूर्वक विविध प्रकार के यज्ञ किये जाते थे। सेतु बन्धन कार्य वैज्ञानिक रीति से किया जाता था। सागर पर विश्वकर्मा के औरस पुत्र नील जो अपने पिता के समान ही वास्तु कला में प्रवीण था, उसने शूरवीर अति उत्साही तथा शक्ति सम्पन्न वानर वीरों की सहायता से सौ योजन लम्बे तथा दस योजन चौड़े सेतु का निर्माण किया था। संक्षेप में रामायण कालिक वास्तु कला अति विकसित परिष्कृत तथा वैज्ञानिक थी।

सन्दर्भ सूचीः-

1- आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी। श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्त महापथा।
कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम्। सर्वयन्त्रायुधवतीमुषितां सर्वशिल्पिभिः। बाल.का.5/7,10

2- प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैरिव शोभिताम्। कूटागारैश्च सम्पूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम्।
चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम्। सर्वरत्नसमाकीर्णा विमानगृहशोभिताम्।। बाल का. 5/15-16)

3- विमानिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि सुनिवेशितवेशमान्तां नरोत्तमसमावृताम्। वही 5/19

4- स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव। नौपथश्चापि नास्त्यत्र निरुद्देशश्च सर्वतः।
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा। वाजिवारणसम्पूर्णा लंका परमदुर्जया।
परिखाश्च शतध्नयश्च यन्त्राणि विविधानि च। शोभयन्ति पुरीं लंकां रावणस्य दुरात्मनः। युद्ध काण्ड 3/21-23।

5- सुन्दर काण्ड 2/14-19

6- वप्रप्राकारजधनां विपुलाम्बुवनाम्बराम्। शतध्नीशूलकेशान्तामट्टालकावतंसकाम्। मनसेव कृतां लंकां निर्मितां विश्व कर्मणा। सुन्दर काण्ड 2/21

7- कैलासनिलयप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम्। ध्रियमाणमिवाकाश मुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः। वही 2/23

8- सप्तमौमाष्टभौमैश्च स ददर्श महापुरीम्। तलैः स्फटिकसंकीर्णैः कार्तस्वरभूषितैः वैदूर्यमणिचित्रैश्च मुक्ताजालविभूषितैः। तैस्तैः शुशुभिरे तानि भवनान्यत्र रक्षसाम्। सुन्दर काण्ड 2/52-53

9- जाम्बूनदमयैर्द्वारैर्वैदूर्यकृतवेदिकैः वज्रस्फटिकसंकीर्णैः राजतामलपाण्डुरैः। वैदूर्यकृतसोपानैः स्फटिकान्तरपांसुभिः। चारु संजवनोपेतैः रवमिवोत्पतितैः शुभैः। सुन्दर का. 3/8-10

10- युद्ध का. 3/11-18, 20

11- स राजकुलमासाद्य मेघसंधोपमैः शुभैः। प्रासाद श्रृंगैर्विविधैः कैलाशशिखरोपमैः। आवारयद्भिर्गगनं विमानैरिव पाण्डुरैः। वर्धमानगृहै श्चापि रत्नजालपरिष्कृतैः। ततः पृथिव्यां गृहवरं महेन्द्रसदनोपमम्।। अयोध्या का. 17/17-18.5

12- अयोध्या काण्ड 15/35, 36, 41,

13- अयोध्या काण्ड 10/13, 14, 15.5

14- सुन्दर काण्ड 4/25, 26, 30

15- उत्तर काण्ड 13/3-6

16- तस्य तद् वच्चनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान्। आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः। तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम्। शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत्। अयोध्या काण्ड 56/20-21

17- अरण्य काण्ड 15/10-14,

18- अरण्य काण्ड 15/21-23

19- अयोध्या काण्ड 80/1-31,

20- अयोध्या काण्ड 80/10-11

21- अयोध्या काण्ड 80/15-221,

22- युद्ध काण्ड 22/55, 60-62, 64-66

23- युद्ध काण्ड 22/ 68-74

24- विशालः सुकृतः श्रीराम सुभूमिः सुसमाहितः। अशोभत महान् सेतुः सीमन्त इव सागरे। युद्ध काण्ड 22/79।

25- नक्षत्रेषु प्रशस्तेषु मुहूर्तेषु च तद्विदः। निवेशान् स्थापयासुर्भरतस्य महात्मनः। अयोध्या काण्ड 80/17

26- अयोध्या काण्ड 56/26-33।

27- स गत्वा लक्ष्मणः श्रीमान् नदीं गोदावरीं तदा। स्नात्वा पद्मानि चादाय सफलः पुनरागतः। ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथाविधि। दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम्। अरण्य काण्ड 15/24-25।

वाल्मीकि रामायणे प्रकृति चित्रणम्

डॉ० (श्रीमती) पुष्पा यादव
विद्यालंकार, एम.ए., पी.-एच.डी.
रीडर एवं विभागाध्यक्ष-संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा0)
किदवई नगर, कानपुर(उ0प्र0)

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं और उनका महाकाव्य रामायण संस्कृत साहित्य में आदिकाव्य के रूप में विख्यात है। इस महाकाव्य की भाषा सुन्दर, ललित, प्राञ्जल प्रभावपूर्ण तथा परिष्कारयुक्त है। भाव के अनुरूप भाषा में आरोह-अवरोह का विन्यास महाकवि वाल्मीकि ने ही प्रारम्भ किया। आदिकाव्य होने पर भी महाकवि वाल्मीकि की यह कृति काव्य सौन्दर्य, शाश्वत सौन्दर्य एवं उदात्त भावनाओं से अलकृंत होने के कारण आज भी सारे विश्व के लिये अजस्र प्रेरणा स्रोत बनी हुई है। रामायण काव्य कला का अनुपम निदर्शन है। जिस प्रसादमयी शैली में इसका निर्माण हुआ है वह अन्यत्र कहीं दुर्लभ है। जीवन को ओजस्विता तथा निर्मलता से भरने के लिये रामायण में राम चरित्र के माध्यम से जिन आदर्शो को आदिकवि की लेखनी ने प्रस्तुत किया है वे न केवल भारतीय जनता के लिये ही मान्य एवं आदरणीय है, अपितु विश्व-मानवता के लिये उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना प्रस्तुत करते हैं।

यद्यपि रामायण में हृदय पक्ष की प्रधानता है, कविता का सहज प्रवाह है किन्तु इसमें कलापक्ष की भी कमी नहीं है। अतः मैं राष्ट्री -संस्कृत सम्मेलनम् के चयनित विषय 'वेदःवाल्मीकिरामायणञ्च' के उपविषय वाल्मीकि रामायणे प्रकृतिचित्रणम्' पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत कर रही हूँ।

जिससे सृष्टि आदि के कार्य किये जाते हैं, उसे प्रकृति कहते हैं। प्रकृति ही मानव के द्वारा किये जाने वाले समस्त कर्मों का मूलाधार है। मनुष्य आदि की इच्छाएं एवं कार्य उसके स्वाभावुनसार ही होते हैं। कहा गया है कि समस्त प्राणी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं।

''प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति''।

प्रकृति की विविधता एव विलक्षणता के कारण जो कार्य अपनी प्रकृति के अनुरूप नहीं

होते, वे हमें अप्रिय प्रतीत होते हैं। यह देखा जाता है कि भाव विभाग अनुभाव के रहने पर रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि दृश्यों को देखकर हमें रसानुभूति होती है। प्रकृत्याचारु रमणीय होने के कारण कुछ पदार्थों की प्राप्ति के लिये सभी की मानसिक प्रवृत्ति देखी जाती है। प्राणीमात्र की प्रवृत्ति प्रकृति के अनुसार होने के कारण ही प्रकृति के अनुरूप सदोष कार्यों का विधान भी उचित माना गया है।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा
हि दोशेण धूमेनाग्निरिवावृता:।।[1]

मानव सृष्टि का प्रकृति से इतना घनिष्ट संबंध है कि काव्यग्रंथों में उसका वर्णन अनिवार्य कर दिया गया है। इससे यही कहा जा सकता है कि प्रकृति के अंक में संबंधित मानव कभी भी स्वयं को प्रकृति की रमणीयता से पृथक् नहीं रखना चाहता है। प्रकृति पदार्थों का चित्रण दो प्रकार का होता है-

बाह्य तथा आभ्यान्तर, प्रथम से किसी भी आकृति का परिज्ञान होता है तथा द्वितीय से स्वभाव का परिज्ञान होता है।

प्रकृति के पदार्थों में संध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि प्रदोष, अन्धकार, दिन प्रात:, मध्याह्न, मृगयावर्णन, ऋतुवर्णन तथा समुद्र का वर्णन आवश्यक माना गया है-

संध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासरा:।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलातुर्वनसागरा:।।[2]

काव्यादि में प्राकृतिक दृश्यों को देखकर पात्र अपनी परिस्थिति के अनुरूप कभी मनो-भावनाओं का उनसे तादात्म्य स्थापित करना चहाता है और कभी कवि वास्तविकताओं का ही वर्णन करता है। पात्रों के कथन-उपकथन में मुख्यत: कवि की भावना की अभिव्यक्ति होती है। यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण में वर्षा ऋतु का जितने विस्तार से चमत्कारी वर्णन किया गया है, उतना गोस्वामी तुलसीदास-कृत राम चरित्रमानस में नहीं। उन्होंने यह संकोच कर मानों अपनी इस भावना को बताने का प्रयास किया है कि अधिक वर्णन से व्यक्त होने वाले व्यथित चित्त भगवान् श्रीराम के दु:ख को वे सहन नहीं कर सकते। इस प्रकार शरद् ऋतु का वर्णन

रामायण में अपेक्षाकृत विस्तारपूर्वक नहीं किया गया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों श्रीराम अपनी मनोभावना को व्यक्त कर रहे हों कि सीताजन्य वियोग उन्हें किसी भी प्रकार सहन नहीं है। वेस्पष्ट कहते हैं कि लक्ष्मण! यद्यपि ग्रीष्म और वर्षा ऋतु के चार मास ही व्यतीत हुए हैं, परन्तु मुझे लगता है कि जैसे सौ वर्ष व्यतीत हो गये हों-

चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमाः।। [3]

इस शान्तिपूर्ण अवस्था में आकर शरद् ऋतु की निर्मलता के साथ ही साधक का मन भी प्राय: निर्मल हो जाता है, जिससे सिद्धि प्राप्ति की आसन्नता सूचित होती है।

किसी वर्णन में कवि को अपनी भावना के साथ घटना के स्थल का भी ध्यान रखना पड़ता है। यही कारण है कि रामायण में भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने माल्यवान्, पर्वत पर निवास करते हुए वर्षा ऋतु का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है, इससे भगवान् श्रीराम की विप्रलभ श्रृंगार रस में पूर्णतया निमग्नता परिलक्षित होती है। महर्षि वाल्मीकि ने संध्या, सूर्य, चन्द्र आदि प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन औचित्य पूर्ण ढंग से किया है।

सन्ध्या वर्णन-

प्रात: कालीन संध्या रक्तिमवर्ण क्यों होती है? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि स्वर्णमय सुमेरु पर्वत तथा सूर्य के तेज से युक्त होने पर संध्या रक्तवर्ण होती है-

काञ्चनस्य च शैलस्य सूर्यस्य च महात्मनः।
अविष्टा तेजसा संध्या पूर्वा रक्ता प्रकाशते।।[4]

संध्याकाल में में स्वभावत: होने वाले कार्यो का वर्णन करते हुए अनुसूया ने सीता के प्रति इस प्रकार कहा-

रविरस्तं गतः श्रीमानुपोह्य रजनीं शुभाम्।।
दिवसं परिकीर्णानामाहारार्थं पतित्त्रणाम्।
संध्याकाले निलीनानां निद्रार्थं श्रूयते ध्वनिः।।
एते चाप्यभिषकार्द्रा मुनष्यः कलशोद्यता :।
सहिता उपवर्त्तन्ते सलिलाप्लुतवल्कलाः।।।[5]

अर्थात् तेजस्वी सूर्यदेव रजनी की शुभ बेला की समीप पहुँचाकर अस्त हो गये हैं। जो दिन में चारा चुगने के लिये दूर छिटके हुए थे। वे पक्षी अब संध्या काल में नींद लेने के लिये घोंसले में आकर छिप गये हैं, उनकी यह ध्वनि सुनाई दे रही है। ये जल से भीगे वल्कल धारण करने वाले मुनि जिसके शरीर स्नान के कारण आर्द्र दिखाई देते हैं, जल से भरे कलश उठाये आश्रम की ओर आ रहे हैं।

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्श हर्षोन्मीलिततारका।
अहो रागवती संध्या जहाति स्वयमम्बरम्।।[६]

प्रस्तुत प्रसंग में शरद् ऋतु की सांयकालीन संध्या को नवयुवती वधू के समान बताते हुए कहा गया है जैसे कोई नवयुवती वधू स्पर्शजन्य हर्ष के कारण अपनी आंखें खोलने लगती है और विशेष अनुराग के वशीभूत होकर वस्त्रों का परित्याग भी स्वयं ही करने लगती है, वैसे ही अत्यन्त चंचल चंद्रमा की किरणों के स्पर्श से उत्पन्न हर्ष के कारण अपने तारका रूपी नेत्रों को विकसित करके रक्तमारंजित होकर यह संध्या ही अम्बर छोड़ रही है।

हेमन्तकालीन चन्द्रवर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि-

रविसंक्रान्त सौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः
निश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।।
ज्योत्स्ना तुषारमलिना पौर्णमास्यां न राजते।[६]

अर्थात् हेमन्तकाल में चन्द्रमा का सौभाग्य सूर्यदेव में चला गया है। चन्द्रमण्डल हिम किरणों से आच्छन्न होकर धूमिल जान पड़ता है। अतः चन्द्रदेव निःश्वास वायु से मलिन हुए दर्पण की भाँति प्रकाशित नहीं हो पा रहे हैं। इन दिनों चन्द्रमा की चांदनी भी तुहिन बिन्दुओं से मलिन सी दिखाई देती है। पूर्णतया प्रकाशित नहीं होती।

रात्रि में जिस समय हनुमान् लंका का निरीक्षण कर रहे थे उस समय उन्हें आकाश में उदित होकर ऊपर की ओर चलने वाला चन्द्रमा उसी प्रकार दिखाई पड़ा मानो किसी सरोवर में हंस तैर रहा हो। रावण के अन्तःपुर में प्रवेश करके हनुमान ने आकाश के मध्य स्थित चन्द्रमा की जिस शोभा को देखा, उसका अनुभव पूर्ण विशद वर्णन उपमालंकार में अत्यन्त सरल और आकर्षक शैली में कवि ने किया है। उसमें कहा गया है कि जिस प्रकार गौशाला में मस्त वृषभ

भ्रमण करता है उसी प्रकार आकाश में चन्द्रमा गतिशील हो रहा है। चन्द्रोदय से तीन कार्य होते हैं।

1. लोक में फैले पाप अंधकार का नाश
2. समुद्र की वृद्धि।
3. सभी प्राणियों की शोभा में वृद्धि।

ततः स मध्यंगतमंशुभन्तं, ज्योत्स्नावितानं मुहुरुद्वमन्तम्।
ददर्श धीमान् भुवि भानुमन्तं, गोष्ठे वृषं मत्तमिव भ्रमन्तम्॥
लोकस्य पापानि विनाशयन्तम्, महोदधिं यापि समेधयन्तम्।
भूतानि सर्वाणि विराजयन्तं, ददर्श शीतांशुमथाभियान्तम्॥
या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था, यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेशु च पुष्करस्थाः, रराज सा चारुनिशाकरस्था।
हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः, सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्था, चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाम्बरस्थः॥[८]

महर्षि वाल्मीकि ने रात्रि वर्णन में रात्रिरूपी नायिका का मानवीयकरण करते हुए कहा है कि "चांदनी की चादर ओढ़े हुए शरत्काल की तरह श्वेत साड़ी से ढके हुए अंगवाली एक सुन्दरी नारी के समान शोभा पाती है। उदित हुआ चन्द्रमा ही उसका सौम्य मुख है और तारे ही उसकी खुली हुई मनोहर आंखें हैं-

रात्रिः शशाङ्कोदित सौम्यवक्त्रा, तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसवृतांगी॥[९]

वाल्मीकि रामायण में प्रकृति का विशुद्ध चित्रण भी रमणीय है। किष्किन्धाकाण्ड में वर्षा वर्णन के प्रसंग में कहा गया है-

वहन्ति वर्षन्ति नन्दन्तिभान्ति, ध्यायन्ति नृत्यन्ति समा श्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनः शिखिनाः प्लवंगमाः।

प्रहर्षिताः केतकिपुष्पगन्धमाघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेन्द्राः सार्धं मयूरैः समदा नदन्ति॥[१०]

वर्षा वर्णन का ही यह प्रसंग जो दक्षिण भारतीय नदियों के ताम्रवर्ण जल का दृश्य प्रस्तुत करता है-

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वताधातुताम्रम्।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति॥[११]

सूर्य की उपस्थिति काल को दिवस कहते हैं, इसीलिए सूर्य को दिनकर, अहस्कर कहा जाता है। रात्रि की शोभा जैसे शरद्काल में सर्वाधिक होती है, वैसे ही दिवस की शोभा हेमन्त ऋतु में अधिक मानी गयी है। उस समय सूर्य अधिक तीक्ष्ण प्रतीत नहीं होता, और उसके सेवन की इच्छा सदैव बनी रहती है।

अत्यन्तसुखसंचारा मध्याह्ने स्पर्शतः सुखाः।
दिवसाः सुभगादित्याश्छाया सलिलदुर्भगाः॥
मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्॥[१२]

मेघ पर्वत की चोटी से लटक रहे हैं, इससे यह प्रतीत होता है कि वह पर्वत चादर ओढ़े हुए हैं-

तुंगपद्मकजुष्टाभिर्नीलाभिर्वनराजिभिः।
सोत्तरीयमिवाम्भोदैः श्रृंगान्तरविलम्बिभिः॥[१३]

पर्वतीय नदियों की जलराशि गम्भीर घोष से ऐसा प्रतीत होता है कि मनों पर्वत सस्वर वेदपाठ कर रहा है। अनेकानेक झरनों के कलकल नाद से वह अरिष्टगिरि स्पष्टतया गीत गाता हुआ प्रतीत हो रहा है।

तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव पर्वतम्।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नाना प्रस्रवणस्वनैः॥[१४]

आदि कवि ने वन वर्णन भी अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ किया है। जहां चारो ओ झिल्लियों की झंकार सुनाई देती है। भयानक हिंसक जन्तु जंहां भरे हुए हैं। भयंकर बोली बोलने वाले पक्षी सब ओर फैले हुए हैं। नाना प्रकार के विहंगम भीषण स्वर में चहचहा रहे हैं। सिंह, व्याघ्र, सुअर और हाथी भी इस जंगल की शोभा बढ़ा रहे हैं। धव, अश्वकर्ण, ककुभ, बेल, तिन्दुक, पाटल तथा बेर के वृक्षों से भरा यह भयंकर वन क्या है?

अहो वनमिदं दुर्गझिल्लिकागण संयुतम्।
भैरवैः श्वापदैः कीर्ण शकुन्तैर्दारुणा रवैः।।
नाना प्रकारैः शकुनैर्वाश्यद्भिरभैरवस्वनैः।।
सिंहव्याघ्रवराहैश्च वारणैश्चापि शोभितम्।।
धवाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिन्दुकपाटलैः।
संकीर्णं बदरीभिश्च किंन्विदं दारुणं वनम्।।[१५] क

रामायण में मन्दाकिनी नदी का वर्णन अत्यन्त शोभायुक्त है, हंस और सारसों से सेवित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रही है। इसका किनारा बड़ा ही विचित्र है। नाना प्रकार के पुष्प इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। कहीं तो इसमें मोतियों के समान स्वच्छन्न जल बहता दिखायी देता है, कहीं ऊंचे कगारों से ही शोभा पाती है और कहीं सिद्धजन इसमें अवगाहन कर रहे हैं-

विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसुमैरूपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्।।
क्वचिन्मणिनिकाशोदां क्वचित पुलिनशालिनीम्।
क्वचित् सिद्धजनाकीर्णां पश्यमन्दाकिनीं नदीम्।।[१६]

महर्षि वाल्मीकि ने पञ्चवटी के रमणीय प्रदेश का वर्णन करते हुए मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है-

अयंदेशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि।।

इयमादित्यसंकाशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः।

अदूरे दृश्यते रम्यः पद्मिनी पद्मशोभिता॥

मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः।

दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृताः॥

सौवर्णे राजतैस्ताम्रैर्देशे देशे तथा शुभैः।

गवाक्षिता इवाभान्ति गजाः परभक्तिभिः॥[१७]

चित्रकूट पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये श्रीराम सीता से कहते हैं:- 'इस पर्वत पर दृष्टिपात करो, नाना प्रकार के पक्षी यहाँ कलरव कर रहे हैं। नाना प्रकार के धातुओं से मण्डित गगन- चुम्बी शिखर मानों आकाश को बेध रहे हैं। इन शिखरों से विभूषित हुआ वह चित्रकूट कैसी शोभा पा रहा है।

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।

शिखरैः खमिवोद्विद्धर्धातुमद्भिर्विभूषितम्॥

केचित रजतसंकाशाः केचित्ः क्षतजसंनिभाः।

पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवर प्रभाः।

पुष्पार्ककेताकाभाश्च केचिज्ज्योतीरसप्रभाः।

विराजन्तेऽचलेन्द्रस्य देशा धातुविभूषिताः॥

जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्यन्दैश्च क्वचित् क्वचित्।

स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः॥[१८]

महर्षि वाल्मीकि ने समुद्र वर्णन भी अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ किया है-समुद्र कहीं तो तरंगहीन एवं शान्त होने के कारण सोया हुआ प्रतीत होता है। अन्यत्र जहाँ थोड़ी-थोड़ी लहरें उठ रही हैं, वहाँ वह क्रीड़ा करता हुआ प्रतीत होता है, और जहाँ उत्ताल तरंगे उठती हैं वहाँ पर्वत के बराबर जलराशियों से आवृत्त दिखायी देता है-

प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यत:।
क्वचित् पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम्।।[19]

समुद्र की विशालता तथा विकरालता का वर्णन करते हुए युद्धकाण्ड में कहा गया है-

सुदुर्गं दुर्गमार्ग तमगाधमसुरालयम्।
मकरैर्नागभोगैश्च विगाढ़ा वातलोलिता:।।
उत्पैतुश्च निपेतुश्च प्रहृष्टा जलराशय:।
अग्निचूर्णमिवाविद्धं भास्वराम्बुमहोरगम्।।
सुरारिनिलयं घोरं पातालविषयं सदा।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषम् अदृश्यत।
सम्पृक्तं नभसाप्यम्भः सम्पृक्तं च नभोऽम्भसा।।
तादृग्रूपे स्म दृश्येते तारारत्नसमाकुले।।[20]

यद्यपि वाल्मीकि रामायण में प्रकृति चित्रण अत्यन्त विस्तृत है जिसका अल्प शब्दों में वर्णन अत्यन्त दुष्कर कार्य है। तथापि अनुशीलन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि आदि कवि वाल्मीकि ने प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण क्रिया है। प्रकृति के प्रांगण में तपो निरत तपस्वी के लिये नितान्त स्वाभाविक था कि वह स्वानूभूति के आधार पर सरल एवं स्पष्ट चित्रांकन कर सकते। अतएव उन्होंने मानव के समकक्ष ही प्रकृति के उन्मुक्त रूप का चित्रण विवराणात्मक ढंग से किया है। संश्लिष्ट तथा शब्द चित्रात्मक विवरणों के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि आदि कवि वाल्मीकि वन प्रकृति के सूक्ष्म द्रष्टा थे। अत: उन्होंने प्रकृति चित्रण अत्यन्त सजीवता एवं सूक्ष्मता के साथ किया है।

1. श्रीमद् भगवत् गीता
2. साहित्य दर्पण-6/322
3. वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड, 30वां सर्ग 64
4. वा.रा. किष्किन्धा काण्ड-40वां सर्ग 63
5. वा.रा. अयोध्याकाण्ड-111वां सर्ग 3,4,5

6. वा0रा0 किष्किन्धा काण्ड-30/45
7. वा0रा0 अरण्य काण्ड- 16/13/14
8. वा0रा0 सुन्दरकाण्ड-5/1,2,3,4
9. वा.रा. किष्किन्धा काण्ड-30/46
10. वा0रा0 किष्किन्धा काण्ड-28/27,28
11. वा0रा0 किष्किन्धा काण्ड-28/18
12. वा0रा0 अख्य काण्ड-16/10,11
13. वा0रा0 सुन्दरकाण्ड-56/26
14. वा0रा0 सुन्दरकाण्ड-56/28,29
15. बालकाण्ड-24/13,14,15
16. अयोध्याकाण्ड-15/3,4
17. वा0रा0 अरण्य काण्ड-15/10,11,14,15
18. वा0रा0 अयोध्या काण्ड-94/4,5,6,13
19. वा0रा0 अयोध्या काण्ड-94/4,5,6,13
20. वा0रा0 युद्ध काण्ड-4/113,114,115,116

वाल्मीकीय रामायण में प्रकृति-चित्रण

डॉ० अर्चना श्रीवास्तव
प्रवक्ता- संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय (परा.)
किदवईनगर, कानुपर (उ०प्र०)

आर्षचक्षुसम्पन्न, दिव्य गुण-मण्डित, विमल प्रतिभा सम्पन्न महामहनीय महर्षि वाल्मीकि का काव्य शाश्वतवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। अवान्तर काव्य-साहित्य पर मार्मिक एवं आभ्यन्तर प्रभाव डालने वाला वाल्मीकि का यह उपजीव्य काव्य रसमयी काव्यशैली का हृदयावर्जक निदर्शन है। फ्रान्सीसी आलोचक 'फ्लाउबेर' ने 'महनीय कला'[1] (Great Art) के लिये जिस आदर्श को काव्य गोष्ठी में प्रस्तुत किया था, वह 'वाल्मीकि रामायण' में सुचारु रूप से अभिव्यक्ति पा रहा है। 'चतुर्विंशति साहस्री संहिता' के नाम से विख्यात यह 'आदिकाव्य लव-कुश के मधुर स्वर के माध्यम से अपनी मार्मिक आलोचना स्वयं करता है-

अहोगीतस्य माधुर्यं श्लोकानाञ्च विशेषतः।
चिरनिवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।।[2]

वैदिक साहित्योपरान्त लौकिक काव्य-माला के प्रथम गुच्छ इस काव्य में ऐतिहासिक काव्य, महाकाव्य एवं वीर-काव्य के सभी गुण समन्वित हैं। इसमें एक ओर भाषा का लालित्य है, तो दूसरी ओर भावों की मनोहर छटा। एक ओर रस-परिपाक अद्वितीय है तो दूसरी ओर अलंकारों का सप्तरङ्गी आकर्षण। एक ओर नायक की उदात्तता है, तो दूसरी ओर नैतिकता का चरमोत्कर्ष। एक ओर अन्तःप्रकृति का मनोज्ञ संगुम्फन है तो दूसरी ओर बाह्य प्रकृति का सजीव चित्रण।

'शोक एवं श्लोक का समीकरण' (शोकः श्लोकत्वमागतः)[3] आलोचना जगत् के लिये कवि की महती देन है। सत्यं तथा शिवं के साथ सुन्दरं के मधुमय सामञ्जस्य को स्थापित करने वाले रससिद्ध कवीश्वर आदि वाल्मीकि की दिव्या वाणी विश्व के सामक्ष एक भव्य आदर्श उपस्थित करती है।

महर्षि वाल्मीकि केवल अन्तःप्रकृति के निरूपण में ही नहीं, अपितु बाह्य प्रकृति के विशद

चित्रण में भी सिद्धहस्त हैं। रामायण में प्रकृति-चित्रण के अनेक प्रसंग हैं। इसमें नगर, ग्राम आश्रम, वन, उपवन, पर्वत, नदी, पम्पा, सरोवर, सेना, युद्ध, ऋतु वर्णन चन्द्रोदय आदि के वर्णन अत्यन्त सरस, भावपूर्ण, सजीव एवं रोचक हैं। बालकाण्ड में राजा दशरथ द्वारा सुरक्षित अयोध्यानगरी का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया गया है।[४] भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर जब ब्रह्मा जी गङ्गा को पृथ्वी पर भेजते हैं, उस समय कवि ने आकाश मार्ग से कल-कल करके अवतरित होती हुई गङ्गा का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया है-

सा तस्मिन् पतिता पुण्या पुण्ये रुद्रस्य मूर्धनि।।[५] क

गगनाच्छङ्करशिरस्ततो धरणिमागता।।[६]

असर्पत जलं तत्र तीव्रशब्दपुरस्कृतम्।

मत्स्यकच्छपसङ्घैश्च शिंशुमारगणैस्तथा।।[७]

पतद्भिः पतितैश्चैव व्यरोचत वसुन्धरा,

ततो देवर्षिगन्धर्वा यक्षसिद्धगणास्तथा।।[८]

दिव्य गङ्गा की धारा जब वेगपूर्वक पृथिवी पर अवतरित हुई उस समय इस धरा की सुषमा दर्शनीय थी, इस अनुपम, अद्भुत दृश्य का दर्शन करने के लिये सभी तेजस्वी देवगण, यक्ष, ऋषि एवं सिद्धगण विमानों, अश्वों एवं गजराजों पर विराजमान होकर इस प्रकार एकत्र हो गये। वे सभी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जैसे नभमण्डल में सहस्रों सूर्य समुदित हो गये हों-

शतादित्यमिवाभाति गगनं गततोयदम्।[९]

विद्युद्भिरिव विक्षिप्तैराकाशमभवत् तदा।

पाण्डुरैः सलिलोत्पीडैः कीर्यमाणैः सहस्रधाः।

शारदाभ्रैरिवाकीर्णं गमन हंससम्प्लवैः।।[१०]

क्वचिद् द्रुततरं याति कुटिलं क्वचिदायतम्।।[११]

जिस समय राम चित्रकूट जा रहे थे उस समय मार्ग में वन की शोभा बड़ी ही मनोहारिणी थी। कवि का चित्रण देखिए :-

आदीप्तानिव वैदेहि सर्वतः पुष्पितान् नगान्।

स्वैः पुष्पैः किंशुकान् पश्य मालिनः शिशिरात्ये।।[१२]

पश्य भल्लातकान् बिल्वान् नरैरनुपसेवितान्।

फलपुष्पैरवनतान् नूनं शक्ष्याम जीवितुम्।।[१३]

वन भूमि फूलों से इस प्रकार ढकी हुई थी जैसे पुष्पों की वर्षा हुई हो। बसन्तऋतु में किंशुक के लाल रंग के पुष्पों से सारे वृक्ष आच्छादित हो रहे हैं। चातक पक्षी की सुमधुर ध्वनि का मानों मोर अपनी 'केका' ध्वनि से उत्तर दे रहे हैं। चित्रकूट में वन एवं पर्वतों की शोभा अनुपम है। कहीं सुन्दर स्वच्छ जलाशय, कहीं हरी-भरी लताओं से समन्वित वृक्ष फलों एवं फूलों से आच्छादित हैं जहां पक्षियों के कलरव से सम्पूर्ण भूभाग रमणीय प्रतीत हो रहा है-

तं तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम्।

बहुमूलफलं रम्यं सम्पन्नसरसोदकम्।।[१४]

अयोध्या काण्ड के 94वें सर्ग में जब श्रीराम श्री सीता को चित्रकूट की शोभा दिखलाते हैं, उस समय का चित्रण कवि ने बड़े ही मनोयोग से किया है-

पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः।

एवमादिभिराकीर्णः श्रियं पुष्यत्ययं गिरिः।।[१५]

चित्रकूट पर्वत की सुन्दरता का सजीव चित्रण कितना मनोहारी है जब राम सीता से कहते हैं कि यहां की अद्भुत छटा को देखकर मुझे नगर त्याग, सहृदजन-विरहजन्य दुःख भी कुछ समय के लिये विस्मृत हो जाता है। यदि लक्ष्मण एवं तुम्हारे साथ यहां पर मुझे अनेकों वर्षों तक भी निवास करना पड़े तो मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।

यदीह शरदोऽनेकास्त्वया सार्धमनिन्दिते।

लक्ष्मणेन च वत्स्यामि न मां शोकः प्रधर्षति।।[१६]

राम का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि जब प्रस्तुत कथन से पूर्व चित्रकूट की अनुपम शोभा का वर्णन देखा जाता है जहाँ कवि ने अपनी वाणी से सजीव चित्र उपस्थित किया है-

पश्येममचलं भद्रे नानाद्विजगणायुतम्।
शिखरैः खमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम्॥
केचिद् रजतसंकाशाः केचित् क्षतजसन्निभाः।
पीतमाञ्जिष्ठवर्णाश्च केचिन्मणिवरप्रभाः॥[१७]
गुहासमीरणो गन्धान् नानापुष्पभवान् बहून्।
घ्राणतर्पणमभ्येत्य कं नरं न प्रहर्षयेत्॥[१८]

यहाँ विविध प्रकार के पुष्पों से सुरभित गुफाओं से निकलने वाली हवाओं से सभी जनों का मन आह्लादित हो उठता है। विशाल पर्वतों से निःसृत झरने भूमि पर गिरते हुए तथा भूमि से स्वतः प्रस्फुटित जल-स्रोत मतवाले हाथी के मस्तक से स्रवित मद की भांति शोभायमान हो रहे हैं। यहाँ की पावन शोभा से आनंद निमग्न होकर मनुष्य क्या हिंसक पशु भी अपनी हिंसा को छोडने पर विवश हो गये हैं।

नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षिसमाकुलः॥[१९]

कवि का प्रकृति चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव है। वे किसी भी पदार्थ को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं। वर्षा वर्णन का यह उद्धरण कितना सुरम्य वन पड़ा है-

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति।
नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः॥

(किकि. का. २८/२७)

किष्किन्धा काण्ड में पम्पासरोवरवर्णन कवि के प्रकृति निरीक्षण के सूक्ष्म-सामर्थ्य का परिचायक है। प्रकृति का चित्रण करते समय कवि ने बहुधा उपमा एवं उत्प्रेक्षा[20] आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है-

कतिपय उत्प्रेक्षा के उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निव पादपान्।

शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगति इवचानिलः।।

अमी पवनविक्षिप्ता विनदन्तीव पादपाः।
षटपदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधुगन्धिषु।।
पुष्पसंच्छन्नशिखरा मारुतोत्क्षेपचञ्चलाः।

अभी मधुकरोत्तंसाः प्रगीता इव पादपाः।।[२१]

कहीं-कहीं तो कवि ने प्रकृति के व्यापारों में मानवीकरण की उद्भावना भी की है-

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।

कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः।।[२२]

वस्तुतः जिस कवि ने काव्य का प्रथम सूत्रपात ही प्रकृति निरीक्षण के समय क्रौञ्चयुग मे से एक नर प्रक्षी के हत होने पर शोकसन्तप्तावस्था में हुआ हो, उस आप्तकवि की दिव्य वा में प्रकृति के सूक्ष्म चित्रण संबंधी अपार संभावनायें थीं, और कवि इसमें पूर्णतः सफल हुआ है सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण का गंभीर अध्ययन प्रकृति चित्रण की दृष्टि से यदि किया जाये त कवि की सशक्त लेखनी से प्रादुर्भूत कवि का यह काव्य प्रकृति के स्वर्गिक आनन्द की अनुभू कराने में सर्वथा समर्थ है, इसमें कोई संशय नहीं है।

सन्दर्भ संकेत

1. द्रष्टव्यः 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' -आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.31-3
2. वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड, 4/17
1. काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
   क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।। -आनन्दवर्धन, ध्वन्यलोक, 1/
4. द्रष्टव्य, वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, पञ्चमः सर्गः, पृ. 104 (1/5/5,6,7 8
5. वाल्मीकिरामायण, काण्ड 1/सर्ग 43/7
6. तदैव, 1/43/15,
7. तदैव, 1/43/16,
8. तदैव, 1/43/17
9. तदैव 1/43/21 (पूर्वार्ध),
10. तदैव 1/43/22,
11. तदैव, 1/43/23
12. वाल्मीकिरामायण (अयोध्याकाण्ड) 2/56/6,
13. तदैव, 2/56/7
14. तदैव, 2/56/13,
15. वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड) 2/94/10
16. तदैव, 2/94/15
17. तदैव, 2/94/4,5
18. तदैव, 2/94/14,
19. वाल्मीकीय रामायण, 2/94/7
20. तदैव, किष्किन्धाकाण्ड
21. वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, श्लोक 15,18,20 (सर्ग I)
22. तदैव, किष्किन्धाकाण्ड, श्लोक 13 (सर्ग I)

वाल्मीकि रामायण में वैदिक नारी

डॉ० सुनीता जायसवाल
विभागाध्यक्ष-संस्कृत
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चकिया, चन्दौली (उ०प्र०)

रामायण आदिकवि वाल्मीकि की अद्वितीय आदिकृति है। इसमें लगभग 24 सहस्र श्लोक हैं, अत: इसे 'चतुर्विंशति साहस्री संहिता' भी कहते हैं। इसे आदिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, महाकाव्य, वीरकाव्य, उपजीव्य काव्य, चरित्र काव्य, आधार काव्य, आकरग्रन्थ, आचार संहिता एवं आदर्श धार्मिक ग्रन्थ आदि संज्ञाओं से भी अभिहित किया जाता है। रामायण में गायत्री मन्त्र के 24 वर्णों को आधार बनाकर 24 हजार श्लोकों का सृजन किया गया था। रामायण में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड कुल सात काण्ड हैं। इसमें प्रत्येक एक हजार श्लोक के बाद गायत्री मन्त्र के नवीन वर्ण से नवीन श्लोक की रचना की गयी है।

वाल्मीकि रामायण लौकिक संस्कृत साहित्य का आदिकाव्य है। यह वैदिक काल के बाद की रचना है। अर्थात् रामायण वैदिक साहित्य से परवर्ती रचना है। रामायण की पूर्वसीमा वैदिक काल की समाप्ति का काल माना जाता है। रामायण का अधिकांश चित्रण विशेषकर उसका सामाजिक चित्र 5वीं शताब्दी ई0पू0 का है। रामायण में हमें 5 वीं शताब्दी ई0पू0 के भारतीय समाज के पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन की स्पष्ट झांकी मिलती है। इस प्रकार मूल रामायण 500 ई0पू0 से पहले की रचना है। लौकिक संस्कृत साहित्य की प्रथम कृति वाल्मीकि रामायण से ठीक पूर्ववर्ती साहित्य वैदिक साहित्य को माना जाता है, क्योंकि वैदिक मन्त्रों की रचना 600 ई0पू0 से प्रारम्भ हुई थी, परन्तु उनका संकलन, परिष्कार और संहिता रूप 2500 ई0पू0 से 1400 ई.पू. के मध्य हुआ था।

किसी भी देश, काल और परिस्थिति विशेष के साहित्य पर पूर्ववर्ती साहित्य के देश, काल, परिस्थिति तथा तत्कालीन पारिवारिक स्वरूप, समाज संस्कृति, धर्म, जीवनमूल्य, राज्यव्यवस्था, न्याय व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, वर्णाश्रम व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, दार्शनिक चिन्तन प्रणाली, उपासना पद्धति एवं कर्मकाण्ड, प्रकृति, भौगोलिक स्थिति एवं पर्यावरण, आचार-विचार, आहार-विहार,

मूल्य, मान्यताएं, परम्पराएं, व्यक्ति एवं समाज की रुचि, अभिरुचि, अभिवृत्ति एवं आदर्शों का गह प्रभाव परिलक्षित होता है।

विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण में नारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी यु में किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का मुख्य मापदण्ड भी नारी की स्थिति को ही माना जाता है। ना की स्थिति में होने वाले परिवर्तन प्रत्येक युग के समाज के व्यवस्थाकारों के लिये चिन्तन का विष रहे हैं। यद्यपि सामाजिक मान्यताओं के परिवर्तन के अनुरूप नारी की स्थिति में परिवर्तन हुए तथा परवर्ती साहित्य पर पूर्ववर्ती समाज की नारी की स्थिति का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है।

वेदों में वर्णित वैदिक कालीन नारी का जन्म बाल्यावस्था, सामाजिक, वैवाहिक, शैक्षिक धार्मिक, राजनीतिक स्थिति एवं नारी के विविध स्वरूप एवं सम्मान की स्थिति के सम्बन्ध वाल्मीकि रामायण की नारी से अत्यधिक साम्य एवं एकरूपता परिलक्षित होती है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रायः पुत्री का स्थान पुत्र की अपेक्षा निम्न माना गय है। वैदिक युग में पुत्र का लाभ परिवार के लोगों को अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्नता प्रदान करता था अथर्ववेद के अनेक मंत्र इस तथ्य की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं।[1] पुत्ररत्न की प्राप्ति क अधिक प्रसन्नतादायक होने के दो कारण थे। पहला धार्मिक दृष्टि से वंश चलाने के लिये, दूसरा युद्ध में योद्धाओं की आवश्यकता के लिये। इसीलिए ऋग्वेद में बारम्बार वीरपुत्रों की प्राप्ति की कामना की गयी है।[2] उपनिषद् में कन्या का जन्म अपेक्षाकृत कम उपेक्षित था। वृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार अयोग्य पुत्र के स्थान पर योग्य कन्या का जन्म माता-पिता अधिक श्रेयस्कर मानते थे। पुत्रजन्म की कामना को लेकर पुंसवन संस्कार सम्पन्न होता था। किन्तु सुसंस्कृत माता-पिता पुत्रप्राप्ति हेतु जितने उत्सुक रहते थे, उतने ही पुत्री के लिये भी रहते थे। वैदिक युग के समान परवर्ती काल में हिन्दू परिवार में कन्या की उपेक्षा होती थी। वाल्मीकि रामायण[4] के अनुसार कन्या का पिता होना किसी भी व्यक्ति के लिये दुःख का कारण था, क्योंकि यह मान्यता थी कि यदि वह कन्या स्वेच्छा से किसी भी पुरुष का वरण करती है तो वह माता-पिता और ससुर तीनों कुलों को संशय में रखती है।[5] कभी-कभी प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में नारी के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी स्थितियां परिलक्षित होती हैं, यथा-ऐतरेय ब्राह्मण[6] के अनुसार पुत्री का जन्म कष्ट का कारण था परन्तु यह कष्ट अथवा दुःख क्षणिक ही होता था तथा पुत्री का पालन पोषण पुत्र के समान ही किया जाता था। आपस्तम्ब गृह्य सूत्र[7] के अनुसार पिता पुत्र के समान ही पुत्री के सुख तथा कल्याण की कामना करता था। वाल्मीकि रामायण में भी पुत्री परिवार और समाज के लिये भाग्यदेवी थी तथा

शुभावसरों पर उसकी उपस्थिति अनिवार्य होती थी। 14 वर्ष के चिर वनवास के पश्चात् जब रामचन्द्र जी अयोध्या लौटे, तब उनके स्वागत के लिये जो विशिष्ट लोग उपस्थित हुए थे। उनमें कन्याएं भी थीं। इतना ही नहीं उनके राज्याभिषेक के समय धार्मिक स्नान भी कन्याओं ने ही सम्पन्न कराया था।[8] वैदिक युग में स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। वैदिक काल से लेकर ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक कन्या का वेदाध्ययन करती थीं तथा मन्त्रोचारण भी करती थीं। काठकगृह्यसूत्र[9] इस तथ्य की प्रामाणिकता को सिद्ध करता है। पूर्व वैदिक काल में लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता तथा घोषा आदि अनेक विदुषी स्त्री कवियित्रियों ने वैदिक मन्त्रों की रचना की थी, इसीलिए वे वेदों में ऋषि उपाधि से विभूषित हुई थीं। नोधा, अकृष्टामाप, सिकता निवावरी तथा गोपायना आदि अन्य विदुषी नारियां थीं, जिनका उल्लेख सामवेद में प्राप्त होता है। अथर्वेद[10] के अनुसार कन्या को विवाह योग्य बनाने के लिये भी अध्ययन की अनिवार्यता थी तथा कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती थीं। द्वितीय श्रेणी की छात्राएं 'सद्योवधू' कहलाती थीं जो विवाह के पूर्व तक वेदाध्ययन करती थीं। ऋग्वेद,[12] यजुर्वेद,[13] अथर्ववेद,[14] शतपथब्राह्मण,[15] तैत्तिरीय संहिता,[16] आश्वलायन गृह्यसूत्र,[17] काठकगृह्यसूत्र,[18] पारस्कार गृह्यसूत्र,[19] तथा ताण्ड्य ब्राह्मण[20] के अनुसार कन्याओं के लिये वेदाध्ययन आवश्यक था। क्योंकि स्त्रियों को नियमित रूप से प्रातः सन्ध्या दैनिक प्रार्थनाएं करनी पड़ती थी। और ऋग्वेद के अनुसार पत्नियाँ यज्ञादि में अपने पति के साथ मंत्रोच्चारण करती थीं।[21] वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रियों की शिक्षा की उचित व्यवस्था थी। रामायण में राम और सीता के साथ वन जाते हुए लक्ष्मण को उनकी माता सुमित्रा ने कर्तव्य की शिक्षा दी थी कि वह सदैव ज्येष्ठ भ्राता का अनुरागी रहे। सुमित्रा के उपदेश से ज्ञात होता है कि वह सुशिक्षित विदुषी नारी थी।[22] वाल्मीकि रामायण[23] के अनुसार सीता जी भी नियमित रूप से संध्यापाठ करती थीं।

ऋग्वेद,[24] यजुर्वेद,[25] अथर्ववेद,[26] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[27] में वधू के वेद परायण होने का आदेश दिया गया है, क्योंकि यज्ञानुष्ठान बिना वेदमन्त्रों के सम्पादित नहीं होता है। पति के जीवन के प्रत्येक पहलू में पत्नी का महत्व था। ऋग्वेद,[28] शतपथ ब्राह्मण[29] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[30] के अनुसार अपत्नीक यज्ञ का अधिकार पति को नहीं था। यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का सम्मिलित रहना आवश्यक बताया गया है, क्योंकि बिना पत्नी के यज्ञ नहीं किया जाता है तथा बिना पत्नी के जो यज्ञ किया जाता है वह अपूर्ण माना जाता है। इसीलिए पति-पत्नी दोनों संयुक्त रूप से यज्ञ सम्पन्न करते थे। वाल्मीकि रामायण[31] के अनुसार श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी की अनुपस्थिति में जानकी की स्वर्ण निर्मित प्रतिमा रखकर यज्ञानुष्ठान किया था।

ऋग्वेद के अनुसार न केवल संयुक्त रूप से अपितु पृथक् रूप में भी स्त्रियाँ यज्ञ का थीं।[23] ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त के अनुसार जिस प्रकार कात्यायनी, मैत्रेयी, वाचक्रवी, गा आदि स्त्रियां वेदों की ज्ञाता थीं, उसी प्रकार वाल्मीकि रामायण की कौशल्या, कैकेयी, सीता, ता आदि स्त्रियों भी वैदिक मन्त्रों का उच्चारण, अग्निहोत्रयज्ञ तथा सन्ध्योपासना आदि करती थीं। वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड[34] में जानकी द्वारा सन्ध्याकाल में उत्तम जल वाली नदी के त पर सध्यावन्दन करने का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण क अयोध्याकाण्ड[35] में शोकसंतप्त जानकी द्वारा हवन किये जाने का उल्लेख भी प्राप्त होता है वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड[36] के अनुसार कैकेयी वेदमन्त्रों की ज्ञाता थीं। तथा कौशल्या के द्वारा मंगलपूर्ण अग्निहोत्र यज्ञ करने का वर्णन भी प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण क किष्किन्धा काण्ड[37] के अनुसार वाली की पत्नी तारा भी वैदिक मन्त्रों की ज्ञाता थीं।

ऋग्वेद[38] के अनुसार वैदिक युग में स्त्रियों का विवाह पूर्ण युवा होने पर ही होता था वाल्मीकि रामायण[39] में भी एक स्थल पर सीता जी कहती हैं कि जब वे विवाह के वय में पहुंचने लगी तब उनके पिता राजा जनक को उनके विवाह की चिन्ता होने लगी थी।

ऋग्वेद[40] तथा अथर्ववेद[41] के अनुसार वैदिक युग में युवक युवतियों को अपनी रुचि के अनुसार अपने योग्य जीवनसाथी का चयन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। ऋग्वेदकाल में स्वयंवर होते थे।[42] जिस प्रकार पुरुष को स्त्री चुनने का अधिकार है उसी प्रकार स्त्री भी अपने गुण और शील के अनुरूप पति का चयन करती थी। स्त्री को पति का चयन करने की स्वतन्त्रता महाकाव्य काल में भी थी तो वाल्मीकि रामायण[43] **सीताजी ने स्वयंवर के समय स्वेच्छा से श्री रामचन्द्र जी का वरण किया था।**

ऐतरेय ब्राह्मण,[44] गोपथ ब्राह्मण[45] एवं शतपथ ब्राह्मण[46] से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में बहुविवाह प्रथा का प्रचलन था एवं एक पुरुष अनेक विवाह कर सकता था। ऋग्वेद[47] के अनुसार पत्नी प्रथा वैदिक युग में मध्यमवर्ग में अपवाद स्वरूप प्राप्त होती है। शासकीय वर्ग में इस प्रथा का प्रचलन था। उत्तरवैदिक काल में बहुपत्नीक प्रथा को समाज के कुछ वर्गों ने पूर्णतया अपना लिया था और महाकाव्य काल में यह प्रथा अति प्रचलित रही। राजा तथा समृद्धिशाली लोग अनेक तथा कभी कभी सहस्त्रों स्त्रियों को पत्नी तथा उपपत्नी के रूप में रखते थे। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ तथा तीन सौ उपपत्नियाँ थीं।

ऋग्वेद[49] के अनुसार वैदिक काल में स्त्री-पुरुष को समान अधिकार प्राप्त थे। स्त्री स्वतन्त्र

थी तथा अपनी स्वतन्त्रता का पूर्ण उपयोग करती थी। स्त्रियों को नृत्य करने की भी स्वतन्त्रता थी। वाल्मीकि रामायण[50] के अयोध्याकाण्ड में भी उच्च वर्ग की स्त्रियां नृत्य एवं संगीत में रुचि लेती थीं। अयोध्यानगरी में स्त्रियों के लिये नाट्यशालाएं एवं विश्रामशालाएं बनायी गयी थीं। मन्दिरों में संगीत, नृत्य तथा नाट्य की व्यवस्था रहती थी। वाल्मीकि रामायण[51] के अनुसार अश्वमेध यज्ञ की तैंयारी के समय श्री रामचन्द्र जी ने नट एवं नर्तकियों को भी आमन्त्रित किया था।

ऋग्वेद[52] के अनुसार परिवार में पत्नी के रूप में स्त्री रानी की भांति सम्मानित थी तथा श्वसुर कुल में वह घर के वरिष्ठजनों पर राज्य भी करने लगती थी। अथर्ववेद के अनुसार स्त्रियाँ राज्य संचालन ही नहीं करती थीं वरन् युद्ध में भी वीरता का प्रदर्शन करती थीं। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है। अथर्ववेद में इन्द्राणी को ‘सेनानायक[53] और ‘शत्रुसेना का संहारक’[54] कहा गया है। ऋग्वेद[55] के अनुसार और दस्युओं के युद्ध में दस्युओं ने इन्द्र को पराजित करने के लिये युद्ध में स्त्री सेना का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। ऋग्वेद में इन्द्राणी को ‘वीर एवं शत्रुविजयिनी’[56] कहा गया है। वाल्मीकि रामायण57 में भी राम के वनगमन के समय सीताजी को राजमुकुट देने का प्रस्ताव रखा गया था।

इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यों का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि वाल्मीकि रामायण की नारी जन्म, बाल्यावस्था, शिक्षा, वैवाहिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विभिन्न दृष्टियों से अपने पूर्ववर्ती वैदिक युग की नारी के विविध स्वरूपों एवं स्थितियों से अत्यधिक साम्य एवं एकरूपता रखती है।

वाल्मीकि रामायण में पर्यावरणीय चेतना: वैज्ञानिक दृष्टि

डॉ० नन्दन भार्गव
व्याख्याता, रसायन शास्त्र
राज-महाविद्यालय, कोटा।

ऋग्वेद से प्रारम्भ कर आधुनिक संस्कृत साहित्य पर्यन्त सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय पर्यावरणीय चेतना से ओत-प्रोत है। वाल्मीकि रामायण में भी इस चेतना का बृहद्रूप वैज्ञानिक दृष्टि से पाया जाता है। रामायण में प्रकृति एवं पर्यावरण का विस्तृत वर्णन है। आधुनिक विज्ञान ने भी पर्यावरण का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया है।

पुण्यसलिला तमसा नदी के तट पर विहार करते हुए क्रौञ्ची के आकस्मात् आर्तनाद से व्यथित महर्षि वाल्मीकि के मुख से निःसृत शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया था। पर्यावरणीय चेतना से चमत्कृत वाल्मीकि के मुख से निषाद के प्रति निःसृत शापमयी वाणी ही काव्य बीज के रूप में प्रसिद्ध हुई।

वन्यजीव संरक्षण के प्रति वर्तमान प्रयासों का पूर्ण परिपाक रामायण में देखा जा सकता है। वन्यजीव संरक्षण वैज्ञानिक दृष्टि से परिस्थिति के संतुलन के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वाल्मीकि रामायण में स्थान स्थान पर वन एवं वनस्पतियों के संरक्षण एवं संवर्धन की चर्चा की गयी है। सुग्रीव का मधुवन दधिमुख नामक वनरक्षक से संरक्षित था एवं किसी भी प्राणी के द्वारा उसे हानि नहीं पहुँचायी जा सकती थी।

यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम्।

अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम्।।

यद् रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः।।

मातुलः कपिमुख्य सुग्रीवस्य महात्मनः।।

वा0रा0 5/61/8,9

महर्षि वाल्मीकि का वनस्पतियों के प्रति प्रेम भिन्न भिन्न स्थलों पर भिन्न भिन्न वनस्पतियों के वर्णन से प्रकट होता है जो प्राणवायु एवं औषधियों के रूप में कार्य करती हैं।

विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पर्यावरण संतुलन में अत्यधिक सहायक हैं। वे प्राणवायु की स्रोत हैं। प्राणियों द्वारा छोडी गयी कार्बन डाई आक्साइड में वनस्पतियाँ प्रकाश एवं क्लोरोफिल की उपस्थिति में भोजन का निर्माण करती हैं। यह प्रक्रिया प्रकाश संश्लेषण कहलाती हैं। पौधों को ऊर्जा मिलती है एवं वृक्षों की वृद्धि होती है। जो पुनः चक्र में प्राणियों का भोजन बनती है। इस प्रक्रिया में वृक्षों द्वारा दी गयी ऑक्सीजन अर्थात् प्राणवायु पर्यावरण को दूषित होने से बचाती हैं एवं पुनः प्राणियों द्वारा श्वसन में ग्रहण की जाती है एवं ऊर्जा प्रदान करती है। इस पर्यावरण चक्र का महर्षि वाल्मीकि ने स्थान स्थान पर वनस्पतिवृद्धि करके वर्णन किया है।

अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे' सीता का निवास होना अर्थात् प्राणवायु के स्रोत के समीप निवास होना उस समय की पर्यावरणीय सोच को प्रकट करता है।

सम्पूर्ण सृष्टि पांच महाभूतों में समाहित है। पर्यावरण के प्रमुख घटकों में भी पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि प्रमुख हैं।

शुद्ध एवं निर्मल जल की संकल्पना रामायण में सर्वत्र परिलक्षित होती है। यहाँ जल की आलौकिकता, पवित्रता, प्राणदायकता का समुचित वर्णन प्राप्त होता है। पानी को गदला करने वाले के लिये दण्ड का विधान है। सगरपुत्रों का गंगा के पावन जल द्वारा उद्धार की घटना से वाल्मीकि ने जलविषयक चेतना को दर्शाया है। निर्मल एवं पवित्र जल समस्त विकारों को दूर करने वाला है। एवं प्राणदायक होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से शुद्ध एवं निर्मल जल से तात्पर्य है कि उसमें Turbidity नहीं थी। Total disolred solids भी बहुत कम थे एवं खनिज भी लेशमात्र ही थे।

निर्मल जल में D.O. की मात्रा अधिक होने के कारण उसमें जीवन जन्तु सुगमता से विचरण करते थे। जल के निर्मल होने के कारण गंगा जल मे रोगों से मुक्ति दिलाने की क्षमता है। भागीरथी में अपशिष्ट घुले हुए नहीं थे। प्राणवायु अधिक धुली होने के कारण शरीर जीवाणुओं एवं कीटाणुओं को घोलकर ले जाने की क्षमता थी। यही नहीं बाण गंगा का जल आज भी बिना किसी Treatment के Mineral Water के रूप में पीने योग्य जल के रूप में प्रयुक्त होता है।

वर्तमान की ज्वलंत समस्या जलसंरक्षण का भी समुचित जल प्रबन्धन द्वारा वाल्मीकि रामायण में निदान किया गया है। अयोध्या कांड के अस्सी सर्ग के 10-12 वे श्लोक में अयोध्या से गंगा तक पानी पर पुल निर्माण एवं सुव्यवस्थित पानी के बहने के मार्ग निर्माण का वर्णन प्राप्त होता है।

छोटे छोटे स्रोतों से अधिक जलवाला बांध बनाया गया एवं समुद्र के समान दिखने वाले अगाध जल से परिपूर्ण सरोवर तैयार किये। निर्जल स्थलों पर नाना प्रकार के कुएं एवं बावड़ियाँ बनाकर वेदिकाओं से अलंकृत किये।

समुद्र जल के संरक्षण हेतु नानाविध जल जन्तुओं की उत्पति भी प्रमुख रूप से पर्यावरणीय चेतना को ही प्रदर्शित करती है।

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसम्भवः।

तासां गोपायने सत्त्वानसृजत् पद्ममसंभवतः।।

वा0रा0 7/4/9

पर्यावरण संतुलन हेतु पर्यावरणविदों द्वारा सघनवृक्षारोपण कर कृत्रिमवन-निर्माण की परिकल्पना का मूल भी रामायण में दृष्टिगोचर होता है। रामायण के सुन्दरकाण्ड में विश्वकर्मा द्वारा अशोकवाटिका में कृत्रिमवन एवं कृत्रिम तालाब के निर्माण का उल्लेख है-

कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णा शीतेन वारिणा।।

काननं कृत्रिमैश्चापि सर्वत्र समलंकृताम्।।

वा0रा0 5/14/33,35

वायु तत्व के प्रतिनिधि रामायण में हनुमान् है। हनुमान् के जन्मवृतान्त के प्रसंग में जीवलोक के लिये वायु की अनिवार्यता को प्रदर्शित किया गया है। वायु यदि अपने प्रसार को रोक ले तो यह सम्पूर्ण जगत काष्ठवत् हो जायेगा। वायुविषयक पर्यावरण विषयक चेतना के सम्यक् चित्रण से वायु प्रदूषण से संबंधित वर्तमान समस्या के निराकरण एवं पवित्र वायु के संरक्षण एवं सेवन की प्रेरणा प्राप्त होती है।

उत्तरकाण्ड के 35 वें सर्ग में मारुत द्वारा वायु की गति समेटना एवं श्वास आदि के रूप में संचार रोकना, वायुदेव द्वारा (Adbdorinal distation, Anuria एवं Not Passing stool प्रजाजनों के मलाशय एवं मूत्राशय को रोकना सभी चिकित्सकीय विज्ञान की व्याधियाँ भौतिक शास्त्र के वायु दाब सिद्धान्त पर आधारित सत्य हैं।

शब्द गुणक अवकाश की गणना भी पंचमहाभूतों में की जाती है। ध्वनि से आकाश भी

पदूषित होता है। इसी करण मेंघ गर्जन आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की ध्वनि से बाधा उत्पन्न होती है।

शुद्ध क्षेत्राकाश की अपेक्षा तपोवन का क्षेत्राकाश ज्यादा निर्मल एवं शान्त होता है। महर्षि वाल्मीकि ने लवकुश के मधुर गीत ध्वनि से उत्पन्न प्रभाव एवं युद्ध क्षेत्र के कानों को बहरा कर देने वाली ध्वनि के प्रभाव को सम्यक् रूप से बताया है। लवकुश का मधुरगीत आयु को बढ़ाने वाला, शरीर के समस्त अंगों एवं मन को आह्लादित करने वाला है।

सुंदरकांड में रावण की सभा में विशालकाय हनुमान की पूंछ फटकारने से सम्पूर्ण लंका के प्रतिध्वनित होने का वर्णन मिलता है। उनकी पूंछ फटकारने की गंभीर ध्वनिघोष बहुत दूर तक गूंज उठा था। उससे भयभीत होकर पक्षी आकाश से गिर पड़ते थे।

वाल्मीकि रामायण में सूर्य के प्रभाव को भी दर्शाया गया है। सूर्य के ही प्रभाव से आदित्यहृदय स्तोत्र ही राम-रावण को मारने में समर्थ हुए।

सूर्य से उस्मा-उर्जा प्राप्त कर अलौकिक शक्ति की प्राप्ति, अलौकिक शक्ति से रावण-वध ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त को इंगित करता हैं, जो आज भी शोध का विषय है।

पोखरण में किये गए परमाणु विखंडन विस्फोट की प्रक्रिया का महर्षि वाल्मीकि को ज्ञान था। युद्धकाण्ड में महासागर का रघुनाथ जी से उत्तमबाण द्वारा विस्फोट कराकर पृथ्वी में दुर्गम मरुभूमि बनाना जीता जागता उदाहरण है।

आदिकवि पर्यावरणविद्, आयुर्विज्ञानी, वैज्ञानिक, वनस्पति विशेषज्ञ वाल्मीकि को शत-शत नमन।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित यज्ञ

डॉ० डोली जैन
व्याख्याता, संस्कृत, दर्शन व
वैदिक अध्ययन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

भारतीय धर्मप्राण जनमानस में कर्म, आदर्श और धर्म की समन्वित त्रिवेणी प्रवाहित कर देने वाली "रामायण" सम्पूर्ण लौकिक संस्कृत साहित्य की आदिकाव्य कही जाती है और उसके रचयिता वाल्मीकि आदिकवि के रूप में समादृत हैं। वाल्मीकि ने रामायण में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्पूर्ण जीवन का अत्यन्त काव्यमय वर्णन किया हैं। परवर्ती युग में इस काव्य को जनता ने वेद के समकक्ष ही अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान दिया। वेदवेद्य परमपुरुषोत्तम के दशरथनन्दन श्रीराम के रुप में अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद ही श्रीवाल्मीकि के मुख से श्रीरामायण रुप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है। इसीलिए श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। इसमें कला, विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि अनेक विषयों की चर्चा है, जिसमें धर्म प्रमुख है। धर्म का मेरुदण्ड यज्ञ है। इसमें विविध स्थलों पर विभिन्न प्रकार के वेदसम्मत यज्ञों का भी उल्लेख मिलता है।

यज्ञ का महत्त्व

प्राचीन समय से ही भारतीय संस्कृति में शान्ति और मंगलकामना के लिए समाज में विशेष प्रकार के यज्ञों का विधान वर्णित है। यज्ञ के अनुष्ठान को सब प्रकार के धार्मिक कृत्यों एवं सामाजिक कार्यों में श्रेष्ठता दी गई है।[1] ब्राह्मण ग्रन्थों में सारे विश्व प्रपञ्च को यज्ञ रूप माना है।

यज्ञ के अनुष्ठान से संसार का कल्याण होता है, वह विष्णु रूप है।[2] यज्ञ को प्रजापति का स्वरूप कहा गया है।[3] प्रजापति प्रजा की रक्षा करता है और यज्ञ भी किसी न किसी रूप में प्रजा की। रक्षा करता है, अग्नि में प्रक्षिप्त हवि वायु के आश्रय से सूर्य की ओर अभिमुख होती है। फिर वह मेघमण्डल के साथ मिश्रित होकर वृष्टि का कारण बनती है। वर्षा से अन्न और अन्न प्राण रूप होने से प्रजा का रक्षक होता है।

इसी प्रकार यज्ञ को ही विश्व की स्थिति का मुख्य कारण माना गया है। **अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।**[4]

यज्ञ का अर्थ

निघण्टु नामक वैदिक कोष के भाष्य स्वरूप निरुक्त के अनुसार "यज्ञ" शब्द यजनार्थक है, अथवा क्योंकि यह यज्ञ किसी फल विशेष की याचना के लिये किया जाता है, यह यज्ञ याचनीय है, अतः यज्ञ कहते हैं, अथवा यह यजु के मंत्रों से छिड़का जाता है, अतः यज्ञ कहते हैं। औपमन्यव के मतानुसार क्योंकि यज्ञ में कृष्णाजिन बहुत से बिछाए जाते हैं, अतः इसे यज्ञ कहते हैं। अथवा इस यज्ञ को यजुर्मन्त्र सफलता को प्राप्त कराते हैं, अतः इसे यज्ञ कहते हैं।[5]

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।[6]

पुरुष देह भी यज्ञ है, क्योंकि इसी से यज्ञ किया जाता है-**पुरुषो वै यज्ञः पुरुषस्तेन यज्ञो यदेनं पुरुषस्तनुते।**[7]

पंच तत्वों से देह का संचालन, प्राण, अपानत्याग आदि, वायु वात, पित्त, कफ, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार एवं पंच कोषों की गतिविधि को देह का यज्ञ कहते हैं। देवताओं ने अस्थियों को समिधा, वीर्य को घी मानकर आठ प्रकार के रसों को लेकर पुरुष की देह में प्रवेश किया-

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्।
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषमाविशन्।।[8]

पिण्ड और ब्रह्माण्ड गत यज्ञ आपस में सम्बन्धित हैं। एक यज्ञ से दूसरा यज्ञ होता है। देवता यज्ञ से ही यज्ञ कर रहे हैं। **यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**[9] इस प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड में होने वाले यज्ञ परस्पर सम्बन्धित हैं। जब तक इन दोनों का सम्बन्ध सूत्र ठीक रहता है, तब तक शरीर और मन पूर्ण स्वस्थ रहता है। जब यह सम्बन्ध बिगड़ने लगता है, तो उसमें विकृति पैदा हो जाती है। ब्रह्माण्ड यज्ञ ठीक से न होने से भूकम्प, दुर्भिक्ष, तुफान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि विकृतियां पैदा होती हैं। देह यज्ञ ठीक न होने से देह की अस्वस्थता, दुर्बलता, अल्पायु, निराशा, चिंता मतिभ्रम आदि की उत्पत्ति होती है। इन विकृतियों को, अव्यवस्था एवं असंतुलन को ठीक करने की चिकित्सा "यज्ञ" है।

यज्ञ के प्रकार

श्रुति में वैदिक कर्मों के पांच विभाग हैं-1 अग्निहोत्र, 2. दर्श-पूर्णमास, 3. चातुर्मास, 4.

पशु, 5. सोम। स्मृति में यज्ञों का विभाग निम्न प्रकार से किया गया है- 1. पाकयज्ञ संस्था, 2. हविर्यज्ञ संस्था, 3. साम संस्था। पाकयज्ञ संस्था में सात कर्म आते हैं- 1. औपासन होम, 2. वैश्वदेव, 3. पार्वण, 4. अष्टका, 5. मासिश्राद्ध, 6. श्रावणा, 7. शूलगव। हविर्यज्ञ संस्था में भी सात यज्ञ हैं- 1. अग्निहोत्र, 2. दर्शपूर्णमास, 3. आग्रयण, 4. चातुर्मास, 5. निरूढ़ पशु बन्ध, 6. सौत्रार्याण, 7. पिण्डपितृ यज्ञ। सोम संस्था के सात यज्ञ इस प्रकार हैं- 1. अग्निष्टोम, 2. अत्यग्निष्टोम, 3. उक्थ्य, 4. षोडशी, 5. वाजपेय, 6. अतिरात्र और 7. अप्तोर्याम। इस प्रकार श्रौतस्मार्त में कर्मों की संख्या मिलाकर 21 यज्ञ बतलाये हैं। इनमें पाकयज्ञ संस्थाओं का निरूपण गृह्यसूत्रों एवं स्मृतियों में किया गया है। शेष दोनों संस्थाओं हविर्यज्ञ संस्था तथा सोमयज्ञ संस्था का विवरण श्रौतसूत्रों एवं ब्राह्मणात्मक देवभाग में किया गया है।

शाखाभेद से उक्त संस्थाओं में कहीं-कहीं कुछ अन्तर है। पहली दो संस्थाओं अर्थात् पाकयज्ञ संस्था तथा हविर्यज्ञ संस्था में से पाकयज्ञ संस्था एक वेद से और हविर्यज्ञ संस्था ऋक् तथा यजुर्वेद-दो वेदों से सम्पन्न होती है। तीसरी संस्था सोमसंस्था में ऋक्, यजु तथा साम-तीनों वेदों के ऋत्विक अपेक्षित हैं। सोमयज्ञ संस्था के अवान्तर अनेक भेद हैं, जिनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है- सत्र तथा अहीनसंज्ञक द्वादशाह यज्ञ, गवामयनत्र, राजसूय, चयन, अवश्मेध, पुरुषमेध , सर्वमेध, पितृमेध, एकाह आदि। इनके भी व्यूढ़ द्वादशाह, ज्योति, गो,आयु, अभिजित, विश्वजित, सर्वजित, सर्वज्योति, विश्वज्योति, साद्यस्क्र, अनुक्री, विश्वजिच्छत्म, श्येन, एकत्रिक, बास्त, अग्निष्टुन, त्रिवृत्स्तोम, बृहस्पतिसव, ईषु, सर्वस्वार, द्विदिव, त्रिरात्र, उपहव्य, ऋतपेय, वैश्यस्तोम, तीव्रसुत, पवित्र, अभिषेचनीय, दशपेय, केशवपनीय, व्युष्टिद्विरात्र, राट् विराट् औपशद प्रुनः स्तोम, चतुष्टोम, उद्भित, बलभिद्, अपचिति, पक्षी, ऋषभ, गोसव, मरुस्तोम, कुलाय, इन्द्रस्तोम, इन्द्राग्निस्तोम, बिघन, सर्वस्तोम, नवसप्तदश, विषुवदतिरात्र, गोष्टोट, आयुष्टोम, अभिजितदतिरात्र, विश्वजिदतिरात्र, त्रिवृदतिरात्र, चैत्ररथ, कापिवन, गर्गत्रिरात्र, वैद, छन्दोभपवमान, अन्तर्वसु, पराक, चतुर्वीर, जामदग्न्य, वाशिष्ठ, विश्वामित्र संजय, अभ्यासंग्य, पंचशारदीय, अन्तर्महाव्रत, त्रिकद्रुक, जनकसप्तरात्र, त्रिककुप, कौसुरूविन्द, देवपुर, पौण्डरीक, दार्षद्धत, तुरायण, सर्पसत्र, प्रजापतिसहस्त्रसंवत्सर, विश्वसृजामयन आदि अनेक भेद हैं। इनमें एक दिन से लेकर सहस्त्रसंवत्सरपर्यन्त चलने वाले यज्ञ आते हैं। इन यज्ञों के अतिरिक्त श्रौतग्रन्थों में विभिन्न फल-प्राप्ति के उद्देश्य से अनेक इष्टियों का विधान किया गया है। उदाहरणार्थ-मृगारेष्टि, पथिकृत, व्रातपति, व्रतभृत, तन्तुमती, विवेची, संवर्ग, शुचेष्टि, सुमतीष्टि, रौद्रेष्टि, पवित्रेष्टि, नक्षत्रेष्टि, कारीरि आदि। अग्निहोत्री के मृत्युकाल में अन्त्येष्टि का विधान किया गया है। इनके अतिरिक्त बहुत से पौराणिक, तान्त्रिक एवं आगमोक्त यज्ञ हैं। जैसे-

विष्णुयाग, रुद्रयाग, महारुद्र, अतिरुद्र, गणेशयाग, चण्डीयाग, गायत्रीयाग, सूर्ययाग, विनायकशान्ति, ग्रहशान्ति, अद्भुतशान्ति, महाशान्ति, ऐन्द्रीशान्ति, लक्षहोम, कोटिहोम, वैष्णवेष्टि, वैभवीष्टि, पाद्मी इष्टि, नारायणी, वारुदेवी, गारुड़ी, वैवृही, पावमानी, आनन्ती, वैष्वक्सेनी, सौदर्शनी, पवित्रेष्टि आदि अनेक यज्ञों का विधान पाया जाता है।

वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित यज्ञ

वाल्मीकि रामायण कालीन समाज में यज्ञ का प्राधान्य था। चाहे राजनीतिक क्रियाकलाप हों या गृहस्थ धर्म के कार्य या वानप्रस्थ जीवन की गतिविधियाँ, सर्वत्र यज्ञ की महत्ता रही है। तात्कालिक समाज में इन यज्ञों व उनसे प्राप्त फलों पर अत्यधिक विश्वास था। इच्छाओं की पूर्ति के लिये किए जाने वाले इन यज्ञों को साम्पादित करने के लिये अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता थी क्योंकि उस समय यह विश्वास था कि विधिहीन यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला यजमान अधोगति को प्राप्त होता है।[10] इसीलिए यज्ञकर्म, यज्ञानुष्ठान के ज्ञाता के द्वारा ही करवाया जाता था। रामायणकालीन समाज में यज्ञ करना और करवाना ब्राह्मणों के षड्कार्यों में से एक था।[12] रामायण में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन है, श्रौत यज्ञ व स्मार्त यज्ञ। श्रौत यज्ञों का आयोजन वृहत् रूप से किया जाता है। जिनके सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं का वर्णन संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। अश्वमेध यज्ञ, राजसूय आदि यज्ञ इसी श्रेणी में हैं। स्मार्त यज्ञों में ग्रह्य यज्ञों का विवेच है। रामायण में निम्न स्मार्त यज्ञों का विवेचन है:-

१. ब्रह्मयज्ञ

यह प्रत्येक दिन किया जाने वाला वेदाध्ययन है। इसमें वेदों के अतिरिक्त वेदांग, वाद-विवाद, इतिहास आदि का अध्ययन इत्यादि प्रमुख हैं। इस यज्ञ के अनुष्ठान से प्रसन्न होकर देवता मनुष्य को दीर्घायु, सम्पत्ति, दीप्ति आदि प्रदान करते हैं। राम-लक्ष्मण का वेदों का स्वाध्याय करना व विश्वामित्र से विभिन्न विषयों को जानने की उत्कण्ठा इसी के अन्तर्गत आते हैं।[13] इसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ के दान के प्रसंग में ऋत्विज महाराज दशरथ से कहते हैं कि हम तो सदा वेदों के स्वाध्याय में ही लगे रहते हैं।[14]

२. देवयज्ञ

देवताओं को विश्व के संचालक एवं कर्त्ता के रूप में पूजा जाता है। मनु के अनुसार देवों के लिए हवन करना देवयज्ञ है।[15] वाल्मीकि ने वैदिक देवों को आराध्य कहा है। यज्ञ के समय

देवों व ऋषियों के लिये हवि अर्पित की जाती थी।[16] राज्याभिषेक का समाचार सुनने के पश्चात् राम सीता सहित श्रीनारायण की उपासना करते हैं।[17] कौशल्या अपने दैनिक कर्मों को करने के पश्चात् मन्त्रोच्चारण नारायण का ध्यान करती हैं।[18]

३. भूतयज्ञ

जड़, अर्धचेतन व मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी का पूजन भी भूतयज्ञ में आता है। घर में प्रतिदिन बनने वाले भोजन में से भूतों के निमित्त बलि का निकाला जाना भूतयज्ञ है। रामायण में राम के द्वारा भूतयज्ञ करने का संकेत है।[19] अरण्यवास की अवधि में राम अपनी पर्णकुटी के भीतर बलिवैश्वदेव कर्म रुद्रयाग व वैष्णवयाग करने के पश्चात् ही प्रवेश करते हैं।[20] उन्होंने अपनी कुटी के अनुरूप ही वेदिस्थलों, चैत्यों तथा आयतनों का निर्माण एवं स्थापना की।[21]

४. मनुष्य यज्ञ

इसका तात्पर्य है-अतिथि का सत्कार या सम्मान देना।[22] इस यज्ञ में भोजन करने से पूर्व किसी वर्ग या आश्रम के व्यक्ति का सत्कार करके भोजन ग्रहण किया जाता है। यह यज्ञ मानव में समानता व बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करता है। यह यज्ञ रामायण में सर्वत्र वर्णित है। उस समय अतिथि का अत्यधिक महत्व था। महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ से पूछते हैं कि आपके यज्ञयाग आदि देवकर्म और अतिथि सत्कार आदि मनुष्यकर्म तो अच्छी तरह सम्पन्न हो रहे हैं न?[24] वहाँ रहने वाले चारों वर्णों के लोग देवताओं और अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, उदार और पराक्रमी थे।[25] राजा दशरथ सभी अतिथियों का कायिक, वाचिक व धार्मिक पद्धति से अतिथि सत्कार करते हैं।[6] राजा दशरथ विश्वामित्र के आ जाने पर घर को तीर्थ के समान मानते हुए कहते हैं कि मानों उन्हें सम्पूर्ण धर्मों का फल मिल गया।[26] अतिथि सत्कार केवल गृहस्थों का ही नहीं बल्कि वानप्रस्थियों का भी धर्म है। महर्षि अगस्त्य रामचन्द्र के पहुँचने पर वैश्वदेव कर अर्ध्य, पाद्य, आचमन, पुष्पादि से उनका स्वागत करते हैं।[27] और कहते हैं कि जो तपस्वी इसके विपरीत आचरण करता है उसे झूठी गवाही देने वाले की भांति परलोक में अपने शरीर का मांस खाना पड़ता है।[28]

५. पितृ यज्ञ

रामायण में पितृ यज्ञ का वर्णन अन्येष्टि संस्कार में किया गया है। पितरों के निमित श्राद्ध, तर्पण आदि करना पितृ यज्ञ कहलाता है। रामायण में दशरथ की मृत्यु के बाद राम पितरों के उद्धार के प्रसंग में गया शहर का उल्लेख करते हैं।[3] वे कहते हैं कि क्योंकि पुत्र पितरों का नरक से उद्धार

करता है व पितरों के इष्ट कार्यों को पूर्ण कर स्वर्ग में भेजता है, इसी कारण से वह पुत्र कहा जाता है।[30]

भरत राम को तर्पण के बारे में बताते हुए कहते हैं कि प्रिय पुत्र के द्वारा दिया हुआ पिण्ड और जल आदि पितृलोक में अक्षय होता है।[31] राम भी देव पितरों को तर्पण कर सूर्य का उपस्थापन कर नारायण की स्तुति करते हैं।[32]

इसी प्रकार श्राद्ध में भोजन करवाने इत्यादि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[33] स्त्रियों के भी पितृ यज्ञ से सम्बन्धित क्रियाएं करने का उल्लेख मिलता है। भगवान् राम ने सफेद वस्त्र पहने हुए कृश शरीर, देवताओं को प्रसन्न करती हुई गौरांगी कौशल्या को देखा।[34]

६. श्रौत यज्ञ

अश्वमेघ यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वाजपेय, ज्योतिष्टोम, अग्निष्टोम आदि यज्ञ श्रौत यज्ञ कहलाते हैं। इन यज्ञों का वर्णन रामायण में इस प्रकार मिलता है।

७. अवश्मेध यज्ञ

जो राजा कामनाओं की पूर्ति और सर्वविजय करना चाहे, उसे अश्वमेघ यज्ञ करना चाहिए।[35] ऐतरेय ब्राह्मण में अवश्मेध यज्ञ साम्राज्य, स्वराज्य, पारमेष्ठ्य आदि समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए किये जाते थे।[36]

वाल्मीकि रामायण में भी अवश्मेध यज्ञ का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इसे समस्त पापों को दूर करने वाला परम, पावन और दुष्कर माना हैं।[37] राजा दशरथ ने पुत्र की कामना से अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चिय किया।[1] उन्होंने सरयू नदी के किनारे अपनी यज्ञशाला बनवाई[49] तथा महर्षि वशिष्ठ से दीक्षा ली।[40]

इस यज्ञ के लिए सर्वप्रथम एक अश्व को वीरों के संरक्षण में सम्पूर्ण पृथ्वी पर भ्रमण क लिये छोड़ दिया जाता है। एक वर्ष बीत जाने पर अब अश्व लौट आता है तब सरयू के तट पर बांध दिया जाता है।[41] उसके बाद ही महाराज दशरथ ऋष्यश्रृंग के निर्देशन में यज्ञ प्रारम्भ करते हैं।[42] रामायण में वर्णित है कि कल्पसूत्र एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा अवश्मेध के तीन सवनीय दिन बताये गये हैं। उनमें प्रथम दिन जो सवन होता है, उसे जातुष्ठोम कहा जाता है। दूसरे दिन साध्य सवन को उक्त कहा जाता है, तीसरे दिन के सवन को अतिराज कहा गया है।[43]

यज्ञ विधि के अनुसार अश्व को यूप से बांध दिया जाता है। तत्पश्चात् कौशल्या अश्व का संस्कार करके तलवार से तीन वार करके उसे मार देती है।[44] उसके बाद उस वध किये गये अश्व के पास सावधान चित्त होकर धर्म की इच्छा से महारानी कौशल्या एक रात निवास करती है।[1] फिर होता, अध्वर्यु, महिषी, परिवृत्ति सभी अश्व को हाथ से स्पर्श करते हैं।[46] जितेन्द्रिय ऋत्विक् उस अश्व की चर्बी को निकालते हैं तथा शास्त्रोक्त विधि से पकाते हैं।[47] राजा दशरथ हवन की धूम की गंध और हवन की हुई चर्बी की गंध समय-समय पर विधानुसार सूंघते हैं। जिससे राजा के सभी पापों का नाश हो जाता है।[48] घोड़े के समस्त अंगों को सोलह ऋत्विज ब्राह्मण अग्नि में हवन करते हैं।[49]

रामायण में वर्णित इस अश्वमेध यज्ञ का स्वरूप वेदों में वर्णित अश्वमेघ यज्ञ से मिलता है। कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार इसका आरम्भ शुक्ल अष्टमी या नवमी को फाल्गुन मास या ज्येष्ठ आषाढ़ मास में सम्पन्न करना चाहिए।[50] अश्वमेध का अश्व काले रंग सहित श्वेत या अग्रकृष्ण या श्यामपुच्छ या श्याम वर्ण का होता है।[51]

भगवान राम ने भी यह यज्ञ किया था। महाराज दशरथ ने यह यज्ञ पुत्र प्राप्ति के लिये किया था, परन्तु राम द्वारा यज्ञ सार्वभौम सत्ता को उद्घोषित करने के लिये किया गया।[52]

पुत्रेष्टि यज्ञ

यह यज्ञ पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। रामायण में राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न करने का वर्णन है।[53] यज्ञ समाप्त होने पर विशालकाय दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके हाथ में देवताओं द्वारा निर्मित पायस कहा गया है।[52] उस पायस को राजा दशरथ को देते हुए वह कहता है कि राजन् यह खीर अपनी योग्य पत्नी को दो और खीर को खानें पर तुम्हे पुत्र प्राप्ति होगी।[55]

इसी तरह कुशनाभ भी श्रेष्ठ पुत्र के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पन्न करते हैं। जिससे उन्हें गाधि नामक विद्वान् पुत्र की प्राप्ति होती है।[56]

राजसूय यज्ञ

वैदिक साहित्य में इसका वर्णन मिलता है। जिसमें राजा का सवन होता है, वह राजसूय यज्ञ है।[57] जिन्होंने वाजपेय यज्ञ सम्पन्न नहीं किया हो, ऐसे राजा ही राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने के अधिकारी होते हैं।[58] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजसूय यज्ञ करने वाला और वाजपेय यज्ञ करने वाला सम्राट् होता है।[59] इस यज्ञ में यजमान फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा के दिन दीक्षा लेता है।[60] रामायण

में राजसूय यज्ञ की विधियों का वर्णन नहीं है। राम की राजसूय यज्ञ करने की इच्छा का उल्लेख प्राप्त होता है पर लक्ष्मण उन्हें मना कर देते हैं क्योंकि राम को सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त है।[61] रामायण में उल्लेख किया गया है कि यह यज्ञ नित्य फल देने वाला, धर्म का पोषक और सब पापों का नाश करने वाला है।[62]

वाजपेय यज्ञ

वाल्मीकि रामायण में वाजपेयी यज्ञ का उल्लेख इस प्रकार है कि तुम्हे राजकीय श्वेत छत्र प्राप्त नहीं हुए हैं, अतएव तुम सूर्यदेव की किरणों से संतृप्त हो रहे हो। इस अवस्था में वाजपेययज्ञ से प्राप्त इन छत्रों द्वारा हम तुम्हारी छाया करेंगे।[63]

इस यज्ञ से देवताओं को शक्ति प्राप्त होती है।[64]

अग्निष्टोम यज्ञ

इस यज्ञ में अग्नि की स्तुति की जाती है, और अन्तिम स्तोत्र अग्नि को ही सम्बोधित करता है।[65] इस यज्ञ का उल्लेख मात्र रामायण में प्राप्त होता है। एक स्थान पर लक्ष्मण, हनुमान् के राम का परिचय देते हुए कहते हैं कि जिन्होंने पर्याप्त दक्षिणा वाले अग्निष्टोम राजसूय आदि यज्ञों का अनुष्ठान किया था, ये उन्हीं महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं, इन्हीं को राम कहते हैं।[66]

इन विवेचनों से स्पष्ट है कि रामायण कालीन संस्कृति में यज्ञों का बहुत महत्व था। उस समय राजा अपने यश और मनोवांछित फल प्राप्त करने के लिये यज्ञ करते थे। राक्षस भी यज्ञ क्रियाओं को सम्पन्न करते थे। लंका में सीता जी को ढूंढते हुए हनुमान जी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में वहाँ छहों भागों सहित, सम्पूर्ण वेदों में विद्वान तथा श्रेष्ठ यज्ञों द्वारा यजन करने वाले ब्रह्म राक्षसों के घरों में वेद पाठ की ध्वनि को सुना था।[67]

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में वेद सम्मत अनेक यज्ञों की विधि का उल्लेख होता है जो कि तात्कालिक सामाजिक व धार्मिक जीवन में वैदिक यज्ञ की महत्ता व वाल्मीकि रामायण की वेदानुगामिता को सिद्ध करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. ताण्ड्य ब्राह्मण, 18/2/19,
2. पंचविश ब्राह्मण, 25/14/3
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/27/18-24,
4. अथर्ववेद, 9/10/4

5. निरुक्त, 3/4, 6. यजुर्वेद, 31/14

7. शतपथ ब्राह्मण, 3/5/3/1, 8. अथर्ववेद 8/30

9. अथर्व

10. विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति।
तद्यथा विधिपूर्व मे क्रतुरेष समाप्यते।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 8/18

11. कर्म कुर्वन्ति विधिवद् याजका वेदपारगाः।
यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/3

12. ततोऽब्रवीन्नृपो वाक्यं ब्राह्मणान्। वेदपारगान् ।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 12/5
सुमन्त्रवाह्य क्षिप्रभृत्विजो ब्रह्मणवादिनः।

13. ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः।
पितृशुश्रूणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः ।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/36

14. रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप। वाल्मीकि रामायंण, बालकाण्ड, 14/48

15. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलि भूतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। मनुस्मृति 3/70

16. ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षस्यः।
भावप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 15/4

17. प्रगृह्य शिरसा पात्रीं हविषो विधिवत्तदा।
महतो दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितेऽनले। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/2

18. प्रविश्य च तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम्।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्तीं हुताशनम्।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 20/16

19. श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभिषेचनम्।
प्राणायामेन पुरुषं ध्यायमाना जनार्दनम्।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 4/33

20. वन्यैर्माल्यैः फलैर्मूलैः पक्कैर्मासैर्यथाविधिः। अद्भिर्जपैश्च वेदोक्तैदर्भैश्च ससमित्कुशैः।
तौ तर्पयित्वा भूतानि राघव सह सीतया। तदा विविशतुः शालां सुशुभां शुभलक्षणौ।।
वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 56/34

21. वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च।
वास्तु संशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन्।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 56/31

22. वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च।

आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 56/33

23. मनुस्मृतिः, 3/70

24. अपि ते संनताः सर्वे सामन्तरिपवो जाताः।
दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम्।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 18/47

25. वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 6/17

26. उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन्। यथाऽमृतस्य सम्प्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके।।
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्मा प्रजस्य च। प्रणष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयेः।। 18/49-50
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने। कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः।।
वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/58

27. कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान् मम। मम चायमनुप्राप्तो महानभ्युदयोद्विज।।
तवागमनजः कृत्स्नो धर्मश्चानुत्तमो द्विज। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 18/58

28. प्रतिगृह्य च काकुत्स्थमर्चयित्वाऽऽसनोदकैः।
कुशलप्रश्नमुक्त्वा च आस्यतामिति सोऽब्रवीत्।। वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, 12/26

29. उवाच राममासीनं प्राञ्जलिं धर्मकोविदम्। अग्निं हुत्वा प्रदायार्घ्यमतिथिं प्रतिपूजयेत्।।
अन्यथा खलु काकुत्स्थ तपस्वी समुदारचन्। दुःसाक्षीव परे लोके स्वानि मांसानि भक्षयेत्।।
वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, 12/28-29

30. तैषां वै समवेतानामपि कश्चिद् गयां व्रजेत्। एवं राजर्षयः सर्वे प्रतीता रघुनन्दन।।
तस्मात् त्राहि नरश्रेष्ठ पितरं नरकात् प्रभो।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 107/14

31. पुन्नाम्मनो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितृन् यः पाति सर्वतः।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 107/12

32. प्रिमेण किल दत्तं हि पितृलोकेषुराघवः।
अक्षयं भवतीत्याहुर्भवांश्चैव पितुः प्रियः ।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 102/8

33. तर्पयित्वाथ सलिलैस्तै पितृन् दैवतानिच।
स्तुवन्ति स्मोदितं सूर्य देवताश्च समाहिताः।। वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, 16/42

34. भोजयन्तिकिल श्राद्धे केचित् स्वानेव बान्धवान्।
ततः पश्चात् समीक्षन्ते कृतकार्या द्विजोत्तमान्।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 61/12

35. तां शुक्लक्षौमसंवीता व्रतयोगेन कर्शिताम्।

तर्पयन्ती ददर्शाऽद्भिर्देवतां देववर्णिनीम्।। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 20/19

36. सवनि कमानाप्स्यन् सर्वा विजिती विजिगीषमाण: सर्वा व्युष्टीव्युशिष्यन्नश्वमेधेन यजेत्।।
आश्वा., 10/61.

37. अश्वमेधो महायज्ञ: पावन: सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचतां रघुनन्दन।। वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 84/2

38. मम लालप्यमानस्य सुतार्थं नास्ति वै सुखम्।।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड 8/8

39. सरयूवाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 12/16

40. यज्ञवाटं गता: सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि।
श्रीमांश्च सह पत्नीभि: राजा दीक्षामुपाविशत्।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/1

41. अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन् प्राप्ते तुरङ्गमे।
सरयूवाश्चोतरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/1

42. (अ) ऋष्यशृङ्गं पुरस्कृत्य कर्मचक्रुर्द्विजर्षभा:। अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मन:।।
(ब) अभिपूज्य ततो हृष्टा: सर्वे चक्रुर्यथाविधि: प्रात: सवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुङ्गवा:।।
वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/5-6

43. त्र्यहोऽश्वमेध: संख्यात: कल्पसूत्रेण ब्राह्मणै:। चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम्।।
उक्थ्यं द्वितीयं संख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम्। कारितास्तत्र बहवो विहिता: शास्त्रदर्शनात्।।
वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/40-41

44. कौशल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्तत:।
कृपाणैर्विससारैनं त्रिभि: परमया मुदा।। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/33

45. पत्त्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा।
अवसद् रजनीमेकां कौशल्या धर्मकाम्यया। वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 14/34

46. होताध्वर्युस्तथोद्गाता हस्तनेन समयोजयन्।
महिष्या परिवृत्याथ वावातामपरां तथा। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/35

47. पतत्त्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रिय:।
ऋत्विक् परमसम्पन्न: श्रपयामास शास्त्रत: ।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/36

48. धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिप:।
यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन् पापमात्मन:।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/37

49. हयस्य यानि चांगानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणा:।
अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत् समस्ता: पोडशर्त्विज:।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 14/38

50. कात्यायन, श्रौत सूत्र, 20/1/3/6, 9/9/6/7

51. शतपथ ब्राह्मण, 8/4/2/4, कात्यायन, श्रौत सूत्र, 20/129-35

52. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 91 व 92 सर्ग

53. तत: प्राक्रमिदिष्टं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड 15/13

54. दिवाकर-समाकारं दीप्तानल शिखोपमम्। तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम्।।
दिव्यपायसम्पूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम्। प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव।।
वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 16/14:15

55. भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै।
तासु त्वं लप्स्यसे पुत्रान् यदर्थं यजसे नृप।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 16/20

56. कस्यचित्त्वथ कालस्य कुशनामस्य धीमत:।
जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधि रित्येव नामत:।। वाल्मीकि रामायण, बाल काण्ड, 1/34/5

57. राजा सोतत्य: राजा वा इह सूयते राजसूय: क्रतु:।। काशि: 3/1/114

58. कात्यायन, 25/1/2

59. शतपथ ब्राह्मण, 9/3/4/8

60. आश्वा, गृ.सूत्र, 9/3/2 कात्या. गृ.सूत्र, 14/1/6

61. एष्यदस्मदभिप्रायाद् राजसूयात् क्रतूत्तमात्।
निवर्तयामि धर्मज्ञ तव सुव्याहतेन च।। वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, 83/19

62. अक्षयश्चाव्यश्चैव धर्मसेतुर्मतोमम।
धर्मप्रवचनं चैव सर्वपापप्रणाशनम्।। वाल्मीकि रामायण, उत्तर काण्ड, 83/4

63. अनवाप्तापतपत्रस्य रश्मि संतापितस्य ते।
एभिश्छायां करिष्याम: स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकै:। वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, 45/23

64. तैत्तिरय ब्राह्मण, 1/342

65. ऐतरेय ब्राह्मण, 14/5, आप, गृ.सू.I, 10/23

66. अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्त दक्षिणै:।
तस्यायं पूर्वज: पुत्रो रामो नाम जनै: श्रुत:।। वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 4/8

67. शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै/ स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान् ददर्श सः।। वा.रा. सुन्दर काण्ड 4/13

सन्दर्भ ग्रन्थसूचीः-

1. अथर्ववेद-चार भाग, भाष्यकार-स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1985.
2. ऋग्वेद-सात भाग, भाष्यकार-पं. जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल लि0 अजमेर, संवत् 1967-20009 वि.
3. यज्ञ का ज्ञान विज्ञान-पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाड्मय 25, सम्पादक-ब्रह्मवर्चस, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा
4. यजुर्वेद-दो खण्ड भाष्यकार-पं0 जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल लि0 अजमेर
5. शतपथ ब्राह्मण-दो काण्ड, भाष्यकार-पं0 बुद्धदेव विद्यालंकार, समर्पण शोध संस्थान, उत्त प्रदेश, 1990-92.
6. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम भाग), गीता प्रेस गोरखपुर।
7. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (द्वितीय भाग), गीता प्रेस, गोरखपुर।

रामायण में ध्वनि-तत्त्व

डॉ० अर्चना कुमारी दुबे
प्रवक्ता-संस्कृत
रवीन्द्र निवास, 8 वनस्थली विद्यापीठ,
राजस्थान-304022

रामायण भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में ग्रथित करने, समग्र सृष्टि के प्रति सौहार्द की प्रेरणा देने तथा जनमानास में समाहित पारलौकिक एवं उदात्त लोक-व्यवहार को समुचित बनाने में सहायक है। यह उदात्त काव्यशिल्प में ग्रथित आदि महाकाव्य है।

कूजन्तं राम-रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्॥

कविता-रूपी शाखा पर विराजमान होकर 'राम-राम' ऐसा मधुर अक्षरों का कूज करते हुए वाल्मीकि-रूपी कोकिल को नमस्कार करती हूँ।

काव्यतरु पर आरूढ़ होकर जिस प्राचेतस् ब्रह्मविद् आदि कवि महर्षि वाल्मीकि-रूप कोकिल ने राम-राम इन मधुराक्षरों के रटन से साहित्य-जगत् को अनुगुंजित किया, उसकी महिमा से सारा संसार सुपरिचित है। तमासातट पर विचरण करने वाले तपः पूत महर्षि ने कामासक्त क्रौंचमिथुन में से एक का व्याध द्वारा निर्मम वध होते देखा तो उनका शोक-संविग्न हृदय ही मानो श्लोक-रूप में फूट पड़ा[1]।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥[2]

हे निषाद! तुम अनन्तकाल के लिये प्रतिष्ठा न प्राप्त करो क्योंकि तुमने काममोहित क्रौञ्च युगल में से एक का वध किया है। रामायण में सर्वप्रथम लौकिक या पौरुषेय छन्द का अभिराम अवतरण हुआ- 'आम्नायादन्यत्र नूतनश्च्छन्दसामवतारः[3] अतः रामायण भारतीय साहित्य की प्रथम सृष्टि है, जिसके लिये प्रयुक्त आदि काव्य शब्द सर्वथा उपयुक्त है। यही आदि काव्य समग्र

उत्तरकालीन भारतीय साहित्य का उपजीव्य है, जिसका तंतु-संतान अद्यावधि अविच्छिन्न है। किसी लक्षण ग्रन्थ के आधार पर इसकी रचना नहीं की गयी है। इसने स्वत: अपने स्वरूप तथा काव्यशास्त्रीय अभिव्यक्तियों द्वारा परवर्ती महनीय काव्यविधा का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। रामायण के प्रसंग एवं वर्णन हमारी चेतना में बस गये हैं। इसका मुख्य कारण वाल्मीकि के शब्दों की ध्वन्यात्मकता है। रामायण में पग-पग पर ध्वनि तत्व की प्रधानता देखने को मिलती है। ध्वनि शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वैयाकरणों ने किया। [4] आचार्य आनन्दवर्धन एवं मम्मट का भी मानना है कि सर्वप्रथम वैयाकरणों ने ही ध्वनि शब्द का प्रयोग किया।[4] ध्वनि को आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया।[5] इसके अनुसार चारुत्व का उत्कर्ष होने से ही वाच्य या व्यङ्ग्य का प्राधान्य विवाक्षित होता है। आचार्य मम्मट के अनुसार वाच्यार्थ चमत्कार जनक व्यङ्ग्यार्थ के होने पर ध्वनि हुआ करता है। ध्वनि, को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ का कहना है कि 'वाच्य से अधिक चारुता का प्रतिपादक व्यङ्ग्य ही ध्वनि है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि की व्याख्या करते हुए कहा है कि जहाँ अर्थ अपने आपको तथा शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि काव्य कहा है।[8] वह अर्थ कुछ और ही चीज है जो रमणियों के प्रसिद्ध (मुख, नेत्र, श्रोत्र, नासिका आदि प्रतिभासित होता है।[9]

ध्वनि के मुख्य दो भेद हैं- लक्षणामूल (अविवक्षितवाच्य ध्वनि) एवं अभिधामूल ध्वनि (विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि)।

अविवक्षितवाच्यध्वनि- इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं रहती अर्थात् वाच्यार्थ रहता है, उसके द्वारा अर्थ की प्रतीति नहीं होती। इसके भी दो भेद हैं- अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य एवं अत्यन्ततिरस्कृत। अर्थान्तरसङ्क्रमित से अभिप्राय है 'जहाँ वच्यार्थ दूसरे अर्थ में सङ्क्रमित हो जाये अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ बाधित होकर दूसरे अर्थ में परिणत हो जाये। अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य-इसमें वाच्यार्थ को लगभग छोड़ दिया जाता है।[10] विवक्षितान्यपरवाच्य का अर्थ है। जिसमें वाच्यार्थ विवक्षित होने पर भी अन्यपरक अर्थात् व्यङ्ग्यनिष्ठ हो।[11] अर्थात् यहाँ वाच्यार्थ का अपना अस्तित्व अवश्य होता है, परन्तु वह व्यङ्ग्यार्थ का माध्यम ही होता है। इसके दो भेद हैं- असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य।

सङ्क्रमित हो जाये अर्थात् वाच्यार्थ बाधित होकर दूसरे अर्थ में परिणत हो जाये। अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य इसमें वाच्यार्थ को लगभग छोड़ दिया जाता है। विवक्षितान्यपरवाच्य का अर्थ

है जिसमें वाच्यार्थ विवक्षित होने पर भी अन्यपरक अर्थात् व्यङ्ग्यनिष्ठ हो। अर्थात् यहाँ वाच्यार्थ का अपना अस्तित्व अवश्य होता है, परन्तु वह व्यङ्ग्यार्थ का माध्यम ही होता है। इसके दो भेद हैं।असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य और संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य।[12]

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य में वाच्य और व्यङ्ग्य की प्रतीति का क्रम होता है तो अवश्य है किन्तु शीघ्रता के कारण पूर्वापर का क्रम सम्यक् रूप से लक्षित नहीं होता है। वाच्यार्थ एवं व्यङ्ग्यार्थ में क्रम तो होता अवश्य है किन्तु क्षिप्रता के कारण 'शतपत्रभेदन्याय' के समान वह क्रम लक्षित नहीं होता है। इसके अन्तर्गत रसादिध्वनि आता है। रसादिध्वनि के अन्तर्गत रस, भाव, रसाभाव, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि एवं भावशबलता समाहित हो जाते हैं।[13]

ये आठों जब काव्य के प्रधानरूप में स्थित होते है तब रसादिरूप संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि कव्य कहलाता है। और जब ये वस्तु या अलकांरादि किसी अन्य के अंग बन जाते हैं तब गुणीभूतव्यङ्ग्य नामक काव्य का दूसरा भेद हो जाता है।[14]

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य में वाच्य तथा व्यङ्ग्यार्थो का क्रम लक्षित होता है। यह भी शब्दशक्ति और अर्थ-शक्तिमूल होने से दो प्रकार का होता है।[15] संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि को 'अनुस्वानाभध्वनि' भी कहते हैं। मम्मट ने इसके तीन भेद-शब्दशक्त्युत्थ अर्थशक्त्युत्थ और उभयशक्त्युत्था मानते हुए शब्दशक्त्युत्थ के दो भेद वस्तुध्वनि और अलङ्कार ध्वनि स्वीकार किया है।[16]

आनन्दवर्धन ने न केवल काव्य का आत्मभूत अर्थ निरूपित करते समय वाल्मीकि को मानक उदाहरण के रूप में रखा है, अपितु ध्वनिकाव्य के उदाहरण में भी उन्होंने सबसे पहले वाल्मीकि का ही पद्य उद्धृत किया है।

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते॥[१७]

निःश्वास से अन्धे बने दर्पण के समान (इस हेमन्त ऋतु में) चन्द्रमा चमक नहीं पाता। आनन्दवर्धन के अनुसार यहाँ अन्ध शब्द में अर्थान्तर-संक्रमित-अविवक्षित वाच्य ध्वनि है। दर्पण अन्धा नहीं हो सकता, अतः अन्ध-शब्द दर्पण के अर्थ में बाधित होकर अतिशय धूमिल या धूंधलेपन की अधिकता को व्यंजित करता है। इस पद्य की ध्वन्यात्मकता और भी गूढ़ एवं चमत्कारजनक है। सूर्य में अपना सौभाग्य संक्रान्त कर चुके तुषार से घिरे चन्द्रमा का यहाँ चित्रोपम वर्णन है, पर यह विरही राम की उक्ति है, और पूर्वापर प्रसंग को देखते हुए यहां सौभाग्य संक्रमण,

चन्द्रमण्डल का तुषार से घिर जाना, नि:श्वास से अन्धा हो चुका दर्पण ये सब वक्ता का संशय तथा मोह से आच्छन्न मनोदशा को व्यंजित करते हैं। आदर्श शब्द का दर्पण अर्थ में प्रयोग अपने आप में सभिप्राय है। नि:श्वासों से अंधे हो चुके दर्पण में जिस प्रकार प्रतिबिम्ब साफ-साफ दिखाई नहीं पड़ता, वैसे ही दु:ख के अतिरेक, सौभाग्य के संक्रमण तथा इतिकर्तव्यता का निर्धारण न कर पाने के कारण जीवन का आदर्श वरेण्य मार्ग धुंधला हो गया है। राम सीता की स्थिति तथा उसके अन्वेषण के उपाय के विषय में एकदम अंधकार में है, अत: कवि ने उनकी बिखरी हुई मन: स्थिति को प्रकट करने के लिये उसी के अनुरूप व्यङ्ग्यगर्भ पदावली का सटीक प्रयोग किया है।

इसी प्रकार समुद्रलंघन के पश्चात् दिन भर युद्ध के प्रबन्ध में व्यस्त रहने के बाध संध्या के समय राम की यह उक्ति है-

वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृश।
त्वयि मे गात्रसंस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागमः।।[18]

सुप्रसिद्ध आलंकारिक अप्पय दीक्षित ने अपने चित्रमीमांसा नामक ग्रन्थ में वाल्मीकि के इस पद्य को उपमाध्वनि के उदाहरण में उद्धृत किया है। 'पवन, तुम उस स्थान से बहते हुए आओ, जहाँ प्रिया है, और उसे स्पर्श करके मुझे भी स्पर्श करो। तब मुझे तुम्हारा स्पर्श चन्द्रमा से दृष्टि-समागम जैसा लगेगा' इस कथन में प्रियतमा को स्पर्श करके आये हुए पवन का स्पर्श चन्द्रमा से दृष्टि के स्पर्श जैसा है, अत: नायिका चन्द्र सदृश है यह उपमा व्यंजित होती है, अत: यहाँ उपमांध्वनि है। साथ ही वाल्मीकि जैसे बड़े कवि की महती प्रतिभा का सामर्थ्य इसी में है कि वे कविता के रूढ़ उपादानों और प्रचलित व्यंजनाओं के प्रयोग से भी एक सर्वथा नूतन संसार को उद्भासित कर देते हैं। नायिका के चन्द्रमा के सदृश होने की ध्वनि यहाँ सामान्य नहीं रह जाती। राम के सामने ही लंका नगरी है, जिसमें कहीं सीता है, पर वे उसे देख नहीं सकते केवल उसे छूकर आती हवाएं उन्हें भी छू रही हैं।-ऐसी प्रेमी हृदय की नितान्त सुकुमार भावना के द्वारा परितोष पाना चाहते हैं। ऐसे में उनकी प्रिया उस अलभ्य सुदूरस्थ चन्द्रमा के समान बन गयी है, जिसे पाया नहीं जा सकता है, देखा ही जा सकता है। चन्द्रमा सामने रहते हुए भी अगोचर ही है, सीता भी समक्ष ही कहीं है, पर अगोचर है। केवल उसकी ओर आती हुई हवाओं में उसका आभास खोजा जा सकता है। राम के हृदय की चरम बिन्दु पर पहुँचती व्याकुलता तथा विवशता को सूचित करते हुए कवि ने एक रूढ़ उपमा में कई अर्थ भर दिये हैं।

वाल्मीकि उन कवियों में से हैं, जिनके शब्दों की ध्वन्यात्मकता एक साथ कई मन:

स्थितियों और जीवन के संदर्भों को उजागर कर देते हैं। उपमान अत्यन्त साधारण सुपरिचित ही रहता है, केवल उसका प्रयोग तथा उसके पीछे कवि की दृष्टि नयी व्यंजनाएं ले जाते हैं। तब एक एक उपमान का प्रसार सम्पूर्ण महाकाव्य जैसा हो जाता है। राम की ही उपुर्यक्त कथन के आगे की यह उक्ति है-

केदारस्येव केदारः सोदकस्य निरूदकः।
उपस्नेहेन जीवामि जीवन्तीं यच्छृणोमि ताम्।।

'जैसे सूखी हुई क्यारी सींची गयी क्यारी से जुड़ कर जी उठती है, वैसे ही मैं जी उठूंगा-यदि इतना भर सुन पाऊँ कि वह जीवित है।' यहाँ सीता के बिना राम के जीवन की निरर्थकता और नीरसता, उसका समाचार जानने की अत्यन्त उत्सुकता, है। एक उपमान या बिम्ब से भावसन्धि और भावशबलता की कई स्थितियों को आदिकवि वाल्मीकि प्रकट कर देते हैं। उनमें आकर व्यंजना व्यापार के अनेक आयाम खुलते हैं, वहाँ मनः स्थितियाँ, जीवन संदर्भ भावदशाएं और प्रसंग स्वतः खिंच कर मानस को अभिभूत कर डालते हैं। अशोकवाटिका में बैठी सीता के प्रथम दर्शन के समय हनुमान् की बुद्धि संदेहग्रस्त हो जाती है।

तस्य सन्दिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।।
दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमाननलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।। [१९]

अभ्यास के अभाव में शिथिल हुई विद्या के समान उस सीता को देख कर पहले तो हनुमान् की बुद्धि संदेहग्रस्त हो गयी। फिर बड़ी कठिनाई से अनलंकृत उस सीता को उन्होंने पहचाना, जैसे संस्कार से रहित होने पर अन्य अर्थ को प्राप्त कर चुकी वाणी (कठिनाई से फिर समझी जाती है)। हनुमान् के द्वारा सीता को पहचानने की प्रक्रिया को सूचित करने के लिये प्रयुक्त अमूर्त उपादान यहाँ भावक के चित्त में अनेक प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं। एक ओर आम्नाय से विहीन प्रशिथिल विद्या तथा संस्कार रहित अर्थान्तर को प्राप्त वाणी के दोनों उपमान रामरहित तथा रामवण जैसे अर्थान्तर को प्राप्त सीता को कष्टप्रद दशा, उसकी अत्यधिक शारीरिक क्षीणता और उसके साथ जिसके अन्तःकरण की निर्मलता और पवित्रता को ध्वनित करते हैं, सीता को देखकर हनुमान् के भीतर हुई प्रतिक्रिया भी बड़ी ही सूक्ष्मता से प्रकट की गयी है। आम्नायविहीन विद्या

के पुनः स्मरण के प्रयास तथा संस्कारहीन गलत अर्थ में रूढ़ वाणी से सीता को पहचानने की प्रक्रिया का अबूझ होना तथा क्रमशः पहचान का आना ही ध्वनित नहीं होता, उस मानसिक आघात का भी बोध होता है। जो सीता जैसी नारी को उस स्थिति में देखकर हनुमान् को लगा।

इसी प्रकार स्त्री के लिये 'पत्नी' शब्द की ध्वन्यात्मकता निम्नलिखित उदाहरण में द्रष्टव्य है।-

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियतमानसः।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत्।।[20]

यहाँ पर व्रत उपवास का अनुष्ठान तथा श्रीभगवन्नारायण का ध्यान करना अतीव धार्मिक कृत्य है। सीता भी राम के साथ ये सब धार्मिक कृत्य करेंगी। अतः सीता के लिये कवि ने धर्म की एक और प्रवृत होने के कार्य में भार्या, बधू अथवा स्त्री का प्रयोग न कर पत्नी का प्रयोग किया है क्योंकि पत्नी ही पति के धार्मिक कृत्यों में सहयोग देती है इसलिए पत्नी पद का प्रयोग भी धार्मिक कार्यों में ही होता है। अतः यहाँ पर 'पत्नी' पद में ध्वन्यात्मकता छुपी हुई है और कवि की अभिव्यञ्जना शक्ति अभिव्यक्त हुई है।

वाल्मीकि घटना या प्रसंग का चित्रोपम वर्णन करके ही नहीं रुकते, वे उसमें अन्तर्निहित अभिप्रायों को भी उजागर करके चलते हैं। वे घटनाओं की परिणति और प्रभाव का भी उतनी ही विशद रूप में अनुभव कराते हैं। अतः कोई भी घटना या प्रसंग का वर्णन अपने आप में विश्रान्त नहीं होता, उसके भीतर से कवि की दृष्टि उभरती है। अतः घटना के साथ चलने वाली उसकी ऐसी काव्यात्मक सूक्ष्म व्याख्या हमारे भीतर प्रतिक्रिया को ही जन्म नहीं देती, हमें दृष्टि सम्पन्न भी बनाती है। ऐसी कविता की विश्रान्ति मात्र आस्वाद में नहीं होती, आस्वाद के साथ वह हमें प्रतिक्षण अधिक प्रबुद्ध और संवेदनशील बनाती चलती है। सीताहरण के ही इस प्रसंग को पढ़ते हुए कवि के साथ हम अनुभव करते हैं मानो समग्र आर्यावर्त की संस्कृति को कुचल कर उसकी सम्पूर्ण साधना और शोभा का अपहरण किया जा रहा है।

तप्ताभरणसर्वाङ्गी पीतकौशेयवासिनी।
रराज राजपुत्री तु विद्युत् सौदामनी यथा।।
उद्धूतेन च वस्त्रेण तस्याः पीतेन रावणः।

अधिकं परिबभ्राज गिरिर्दीप्त इवाग्निना॥
तस्यास्तद्विमलं वक्त्रमाकाशे रावणांकगम्।
न रराज विना रामं विनालमिव पंकजम्॥
राक्षसेन्द्रसमाधूतं तस्यास्तद्वदनं शुभम्।
शुशुभे न विना रामं दिवा चन्द्र इवोदितः॥[21]

वाल्मीकि के उपमानों और विशेषणों का चयन घटना, प्रसंग या वर्ण्य को विशद बनाने के लिये होता है। रामायण के घटना, प्रसंग और विषय जो हमारी चेतना में रम गये हैं, उसका एक कारण आदि कवि का यह अभिव्यंजना कौशल भी है। राम-विवाह, कैकेयी की वरयाचना, दशरथ को परिवेदना, वनगमन आदि इन प्रसंगों में पात्रों की एक एक चेष्टा ही नहीं, देश; काल तथा वातावरण भी जागरित होकर मूर्त हो गया है। सीताहरण के प्रसंग में-

तां लतामिव वेष्टन्तीमालिंगन्तीं महाद्रुमान्।
मुंच मुंचेति बहुशः प्राप तां राक्षससाधिपः॥
क्रोशन्तीं राम रामेति रामेण रहितां वने।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसन्निभः॥
प्रधर्षितायां वैदेह्यां बभूव सचराचरम्।
जगत्सर्वममर्यादं तमसान्धेन संवृतम्॥[22]

दण्डकारण्य का सम्पूर्ण परिवेश तथा सीताहरण में उसमें उत्पन्न हाहाकार भी साकार हो उठता है। ऐसे प्रसंगों में वाल्मीकि की अनायास सी लगने वाली सजगता देखते ही बनती है। छूटने के लिये सीता बेल की तरह बल खा रही थी। रावण से बचने के लिये दोनों हाथों से बड़े पेड़ को पकड़ लेती थी। रावण उस समय मौत के समान लग रहा था, पर उसके सिर पर स्वयं मौत मंडरा रही थी।

शब्दों की ध्वन्यात्मकता तथा सही शब्द की पहचान ही नहीं शब्द के नाद का भी बोध हम सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि में पाते हैं। संध्या के वर्णन में।

चञ्चच्चन्द्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका।

अहो रागवती सन्ध्या जहाति स्वयमम्बरम्।।[23]

'चंच्चच्चन्द्रकरस्पर्श' में ह्रस्व तथा संयुक्ताक्षरों का प्रयोग चन्द्रकिरणों का स्पर्श और उससे होने वाली पुलक, चंचलता को प्रकट करता है, तो हर्षोन्मीलिततारका में हर्ष से तारकों (नेत्र की पुतलियों, तारों) का चमक कर फैलते जाने के लिये दीर्घ तथा लम्बी ध्वनियों का प्रयोग है। इसी प्रकार-

'नीलमेघाश्रितो विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे'

मेघ के विस्तार तथा विद्युत्स्फुरण की त्वरा दोनों को घोषित करने लिये तदनुरूप ध्वनियों का चयन किया गया।

यह महाकाव्य वाल्मीकि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का सत्फल है, जो विश्व के असंख्य कवियों साहित्यकारों का प्रेरक, रामकाव्य की अक्षुण्ण परम्परा का प्रवर्तक और भारत राष्ट्र की उदात्तता का चिरनवीन प्रतीक है। यह बहुजन समादृत लक्ष्य ग्रंथ है। जिसके आधार पर परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने लक्षण ग्रंथों का निर्माण किया है। यदि आदिकवि का यह सुललित ग्रंथ रत्न न होता तो लौकिक एवं ललित संस्कृत साहित्य विद्या की हृदयावर्जक स्वरूप परपम्परा इस रूप में स्यात् विकसित न हो पाती। आदिकवि का बृहद् ज्ञान, उनकी ज्ञानगरिमा रामायण के विस्तृत रचनाफलक में अनुस्यूत है।

कविता में ध्वनितत्व की असीम सामर्थ्य तथा उसके प्रसार की गहराई को अनन्त संभावनाओं के साथ वाल्मीकि दिखला सके। रामायण में पग-पग पर ध्वनि-तत्व दृष्टिगोचर होता है। शब्दों की ध्वन्यात्मकता से ही मानों रामायण के सभी प्रसंग एवं घटनाएं हमारे समक्ष मूर्त रूप धारण कर अन्तः मन का स्पर्श करती हुई आज भी भारतीय संस्कृति का आकाश-दीप एवं गौरवशिखर बना हुआ है। अतः मानवता के आदर्शों की मनोरम मञ्जूषा रामायण की कथा आज भी जगत् प्रसिद्ध है। अतः ब्रह्मा जी ने सत्य ही कहा है-

यावद् स्थास्यन्ति सरितश्च महीतले।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[२४]

सन्दर्भ संकेत

1. (क) निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः।
श्लोकत्वमापद्यति यस्क शोकः।। (रघुवंश, 14/70)
निषाद (व्याध) के द्वारा मारे गये पक्षी (क्रौञ्च) को देखकर जिसका शोक-श्लोक रूप से परिणत हो गया था।

(ख) काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगात्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।। (ध्वन्यालोक, 1-5)
(क्रौञ्चद्वन्द्व के वियोग से उत्पन्न शोक ही श्लोकत्व को प्राप्त हुआ।)

2. रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, 15

3. उत्तररामचरितम् अंक 2.

4. प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्।
-ध्वन्यालोक 1/13 की वृत्ति

5. काव्यास्यात्मा ध्वनिरिति..........सहृदयमनः प्रीतये तत्वस्वरूपम।।
-ध्वन्यालोके 1/1

6. चारुत्वोत्कर्षनिबन्धना हि वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यविवक्षा।
ध्वन्यालोक 1/42 की वृत्ति

7. इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।
-काव्यप्रकाश 1/4 का उत्तरार्द्ध

8. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।। -ध्वन्यालोक 1/13.

9. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव, वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।-वही 1/4

10. अर्थान्तरे सङ्क्रमितत्यन्तं वा तिरस्कृतम्।
अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा मतम्।। ध्वन्यालोक 2/1ण

11. विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः।-काव्यप्रकाश 4/25

12. (क) कोऽप्लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यो लक्ष्यव्यङ्ग्यक्रमः परः।।- वही 4/25

(ख) असंलक्ष्यक्रमोद्योतः क्रमेण द्योतितः पर।।
विविक्षिताभिधेयस्य ध्वनेरात्मा द्विधा मतः ।। ध्वन्यालोक 2/2

13. रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रम:।
ध्वेनरात्माऽङि्गभावेन भासमानो व्यवस्थित:।।- वही 2/3

14. अन्यत्र तु प्रधाने वाक्यार्थो यत्राङ्गभूतो रसादिस्तत्र गुणीभूतव्यङ्ग्ये रसवत्प्रेय ऊर्जस्विसमाहितादयोऽलङ्कारा:। ते च गुणीभूतव्यङ्ग्याभिधाने उदाहरिष्यन्ते।
-काव्यप्रकाश 4/26 की वृति भाग

15. क्रमेण प्रति भात्यात्मा योऽनुस्वानसन्निभ:।
शब्दार्थशक्तिमूलत्वात् सोऽपि द्वेधा व्यवस्थित:।। -धवन्यालोक 2/10

16 (क) अनुस्वानाभसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यस्थितिस्तु य:
शब्दार्थोभयक्युत्थस्त्रिधा स कथितो ध्वनि। -काव्यप्रकाश 4/37

(ख) अलङ्कारोऽथ वस्त्वेव शब्दाद्यत्रावभासते
प्रधानत्वेन स ज्ञेय: शब्दशक्युद्भवो द्विधा। -काव्यप्रकाश 4/38

17. अरण्यकाण्ड, 16-13.

18. रामायण, 6/5/6.

19. रामायण-सुन्दरकाण्ड, 15/38-39.

20. रामायण-अयोध्याकाण्ड, 6/11

21. रामायण, 3/52/13,14,1819,20

22. रामायण, 3/52/7-12.

23. रामायण, 4/30/46.

24. रामायण-बालकाण्ड, 2-36.

वाल्मीकि रामायण में निहित कतिपय वैदिक तत्व

डॉ० रेखा शुक्ला
विभागाध्यक्ष एवं उपाचार्या संस्कृत
जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज,
कानपुर, (उ0 प्र0)

रामायण संस्कृत साहित्य का आदि काव्य है। रामायण में कल्पना, भावना, व्यापक जीवनवृत्त, प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना तथा जीवन दर्शन का सम्यक्, प्रकाशन है। इस काव्य की कवित्वमयी रसपेशल शैली नें अन्य महाकाव्यों के लिये आदर्श उत्पन्न किया है। काव्यामृत का रसास्वाद तथा चतुर्वर्ग की सिद्धि दोनों का निदर्शन रामायण में प्राप्त होता है। सौन्दर्यबोध के साथ-साथ लोकोत्तर दिव्यता से पूर्ण मानव जीवन के समग्र चित्र के रसावह रूप का निदर्शन है रामायण। वाल्मीकि रामायण का आधारफलक अत्यन्त विस्तृत है, जो मानव की विराट् तथा प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना से परिपुष्ट है।

वैदिक साहित्य के पश्चात् रामायण की रचना हुई है। महर्षि वाल्मीकि नवीन काव्य शैली के प्रवर्तक होते हुए भी वैदिक साहित्य से पूर्णतः प्रभावित प्रतीत होते हैं। राम संबद्ध गाथा साहित्य की उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंश से हुई। विविध पात्रों के नाम चरित्र चित्रण, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक तथ्य, आध्यात्मिक एवं तात्विक ज्ञान, दण्डकारण्य संबंधी घटनाएं, राम रावण युद्ध इत्यादि सभी पर वैदिक प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

रामायण में प्रयुक्त इक्ष्वाकु, दशरथ, राम, सीता, तथा जनक का उल्लेख वेदों में भी प्राप्त होता है। यद्यपि ये सभी पात्र वैदिक पात्रों के समान नहीं प्रतीत होते हैं तथापि इनका नामोल्लेख महर्षि वाल्मीकि के वैदिक ज्ञान को प्रतिबिम्बित करता है। ऋग्वेद में एक स्थल पर इक्ष्वाकु राजा स्वर्गस्थ पञ्चदेवताओं की भांति अपने विरोधियों को नष्ट कर देता है। तथा वह अतिशय धन से युक्त है। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है-

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते।

दिवीव पञ्च कृष्टयः।[१]

इस स्थल पर यद्यपि इक्ष्वाकुवंशी राम की इक्ष्वाकु राजा से एकरूपता नहीं मानी जा स किन्तु राम की विशिष्टताओं का वर्णन करने में वाल्मीकि उनके वर्णन से प्रभावित होते हैं-

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी।।
बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः।।[2]

अथर्ववेद में भी एक स्थल पर प्राचीन इक्ष्वाकु का वर्णन प्राप्त होता है-

'यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यम् वा.............'[3]

अर्थात् आप जिनको इक्ष्वाकु पहले से जानते हैं, किन्तु रामायण के इक्ष्वाकुवंशी इ संबद्ध हैं अथवा नहीं तथ्यात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। महर्षि वाल्मीकि रामायण इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का आख्यान अवश्य स्वीकार करते हैं-

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।।[4]

स्पष्ट रूप से कवि के द्वारा राम को इक्ष्वाकुवंशी कहना प्रदर्शित करता है कि वे उन वंश की स्मृति तथा उनके उत्कृष्ट गुणों का प्रकाशन करना चाहते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर दशरथ के लाल भूरे रंग के चालीस अश्वों के द्वा सहस्राश्वों का वन में नेतृत्व का वर्णन प्राप्त होता है-

"चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।"[5]

इस स्थल पर दशरथ की समरूपता नहीं प्राप्त होती है तथापि रामायण में नायक की विशिष्टता प्रदर्शित करने लिये वाल्मीकि ने राम के पिता का दशरथ नाम दिया ऐसा माना जा सकता है।

ऋग्वेद में एक स्थल पर ऋषि पृथु के दुःशीम वेन, बलयुक्त राम तथा अन्य समृद्धिशाली एवं सौन्दर्यशाली देवताओं की स्तुति के लिये ऋचागान करता है जो देवता पांच सौ अश्वों वाले रथ पर स्थित है तथा यज्ञ के द्वारा हमारे समीप आते हैं-

प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्।।[६]

यद्यपि इस स्थल के राम आर्ष काव्य के राम में समानता हो यह आवश्यक नहीं तथापि रामायण के राम का शक्तिसम्पन्न होना विश्वामित्र के आश्रम में राक्षसों का विनाश तथा लंकाधिपति का वध उनके शक्ति सम्पन्न योद्धारूप को प्रदर्शित करता है।

सीता ऋग्वेद में कृषि की देवता के रूप में चित्रित हैं-

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दनामहे त्वा।

यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि।।[७]

प्रस्तुत स्थल पर ऋषि 'सीता' से अपनी ओर अभिमुख होने को कह रहा है। तथा समृद्ध फसल (अन्नधनधान्यादि) से सम्पन्न बनाने के लिये स्तुति कर रहा है। 'सीता' को पकड़ने तथा 'पूषन्' के द्वारा प्रेरित करने की प्रार्थना है तथा उसे 'पयस्वती' कह कर दुग्धवर्षा के लिये स्तुति की गयी है-

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु ता पूषन् यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।[८]

कौशिकगृह्यसूत्र[९ए] में 'सीता' के लिये 'कमुद्वती' 'पुष्करिणी' तथा 'सर्वाङ्गशोभिनी' विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

'रामायण' में राम के मुख से वाल्मीकि ने सीता के सौन्दर्य का वर्णन करवाया है। वहाँ वे सीता के सौन्दर्य को प्रकट करने वाले कई विशेषणों का प्रयोग करते हैं- यथा 'श्यामा' पद्मपला साक्षी, 'मृदुभाषा' पद्मकोशपलाशाक्षि', अमरसुतोपमा' इत्यादि। [९बी]

सीता के पिता जनक छान्दोग्योपनिषद् के दार्शनिक प्रसिद्ध जनक के वंश से संबद्ध प्रतीत होते हैं-

'सीताऽपि सत्कुले जाता जनकानां महात्मनाम्'[१०]

वेदों में इन्द्र प्रधान देवता के रूप में चित्रित है। वैदिक गाथाओं में इन्द्र तथा वृत्र प्रबल शत्रु के रूप में वर्णित है। ऐतिहासिक दृष्टि से वृत्र एक असुर है, जो वृष्टि का अवरोधक है। इन्द्र

उसका विनाश करता है। इन्द्र एक पराक्रमी देवता है जिसने हिलती हुई पृथ्वी को स्थिर कर दि
जिसने विचरण करने वाले पर्वतों को नियमित कर दिया। जिन्होंने अन्तरिक्ष की रचना की थी त
द्युलोक को थामा हुआ था-

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद यःपर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥[11]

वस्तुतः गृत्समद ऋषि ने इन्द्र की स्तुति करते हुए उसके स्वरूप को प्रकट किया है महर्षि वाल्मीकि ने भी राम की स्तुति रामायण में करते हुए उनको विष्णु के अवतार के रूप प्रस्तुत किया है-

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥[12]

विष्णु वैदिक देवता हैं। विष्णु के द्वारा तीन पग में तीनों लोकों को मापने का वर्णन है-

'यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमेष्वाधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा'।[13]

रामायण में एक स्थल पर तीन पग में तीनों लोकों को मापने वाले विष्णु देवता की भाँ राम का वर्णन द्रष्टव्य है-

त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुराणे विक्रमैस्त्रिभिः।[14]

उनके दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-

बुद्धिमान्मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।

वीर्यवान्न च वीर्येण महतास्वेन विस्मितः॥

न चानृतकथो विद्वान्वृद्धानां प्रतिपूजकः।

अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते॥[15]

इन्द्र भी समृद्धिशाली तथा निर्धन को प्रेरणा देने वाला है। याचना तथा स्तुति करने वाले को प्रेरणा देने वाला है तथा यजमान की रक्षा करने वाला है-

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणः नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्रावणो योऽविता सुशिप्र सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः॥[१६]

इसी प्रकार ब्रह्मा के द्वारा की गयी राम स्तुति पर स्पष्ट रुप से इन्द्रसूक्त एवं पुरूषसूक्त का प्रभाव दृष्टिगत होता है-

भवान्नारायणे देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः।
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृगविष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः॥[१७]

पुरुषसूक्त में ऋषि नारायण पुरुषदेवता की स्तुति करते हुए कहते हैं कि वह सहस्त्र शि वाला सहस्त्र नेत्र वाला, सहस्त्र पाद वाला, ईश्वर सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड में व्याप्त है-

सीहस्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपाद्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१८

वाल्मीकि भी ब्रह्मा जी के मुख से राम के विराट् रुप का वर्णन करतें है-

दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च।
दिक्षु सर्वासु गगनेषु पर्वतेषु च॥
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक्।

त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वतान्॥

अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः।

त्रींल्कान्धारयान्राम देवगन्धर्वदानवान्॥[१९]

ऋग्वेद में अदिति को द्युलोक अन्तरिक्षलोक, माता-पिता पुत्रादि कहा गया[20] इसी प्रकार राम को यज्ञ वषट्कार एवं ओंकार कहा गया है-

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकार परात्परः।[२१]

अर्थवेद 3.30 सांमनस्थ सूक्त का प्रभाव रामायण में पदे-पदे परिलक्षित होता है। एक उद्धरण द्रष्टव्य है, रामायण में राम लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम अश्विनिकुमारों की भांति है-

गोप्ता हि रामं सौमित्रिर्लक्ष्मणं यापि राघवः।

अश्विनौरिव सौभ्रात्रं तयोर्लोकेषु विश्रुतम्।[२२]

याज्ञिक कर्मकाण्ड पर भी वेदों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। ऋग्वेद के दक्षिणासूक्त (10.107) में हिरण्य, अश्व आदि का दान देने की प्रशंसा की गयी है। यज्ञ की समाप्ति पर राजा दशरथ द्वारा प्रुचर दक्षिणा प्रदान करने का उल्लेख प्राप्त होता है-,

प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः।

अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणांदिशम्॥[२३]

अन्यत्र अग्निष्टोम यज्ञ किये जाने का भी वर्णन है-

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टनावाप्तदक्षिणैः।

तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः॥[२४]

राम द्वारा रुद्रयाग तथा वैष्णवयाग किये जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वा०रा० 2/56/39। अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर राम के द्वारा सीता की स्वर्णप्रतिमा स्थापित करके यज्ञ की पूर्ति का वर्णन वाल्मीकि ने किया है। सामवेद के गोभिलगृह्यसूत्र के परिशिष्ट कर्मप्रदीप के तृतीय अध्याय में इसका उल्लेख प्राप्त होता है-

मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं नहि त्यजेत्।
उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत्।।
रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम्।
ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरर्चितैः।।

रामायण का जाबालि राम संवाद तत्वज्ञानात्मक दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत करता है जबकि राम तथा वालि का संवाद आचारशास्त्र तथा दण्डनीति को प्रस्तुत करता है।

प्रकृतिवर्णन करते समय कवि ने वसन्त, वर्षा, शरद् इत्यादि ऋतुओं के वर्णन प्रस्तुत किये हैं। शतपथ ब्राह्मण 11.3.1.3 में समस्त ऋतुओं का उल्लेख है-

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः ते देवा ऋतवः।
शरद् हेमन्तः शिशिरस्ते पितरः

तैत्तिरीय ब्राह्मण वसन्त को ऋतुओं का मुख कहता है-

मुखं वा एतद् ऋतूनाम्। यद्वसन्तः।

किष्किन्धाकाण्ड में उद्दीपन विभाव के रूप में वसन्त तथा वर्षा का अति रमणीय वर्णन प्राप्त होता है।

नदी सूक्त में नदियों के लिये 'विषिते हासमाने' [25] विशेषण प्रयोग किया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने गंगा के लिये जलाभाताट्टहासोग्राम फेननिर्मलहासिनीम्। [26] विशेषण प्रयुक्त किये हैं।

इस प्रकार विभिन्न स्थल हैं जहाँ पर महर्षि वाल्मीकि की विचारधारा वैदिकोन्मुखी दृष्टिगत होती है। ज्ञानकाण्ड हो अथवा कर्मकाण्ड, दार्शनिक पक्ष हो अथवा साहत्यिक परिकल्पनाएं, धर्म हो अथवा संस्कृति सर्वत्र वैदिक ऋचाओं में निहित तत्व उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान कर रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद 10/60/4
2. रामायण 1/1/8-9
3. ऋग्वेद 19/39/9
4. रामायण 1/5/3
5. ऋग्वेद 1/26/4
6. ऋग्वेद 10/93/14

7. ऋग्वेद 4/57/6
8. ऋग्वेद 4/57/7
9. कौशिक गृह्यसूत्र 106/7
9. किष्कन्धाकाण्ड 1/43
10. रामायण 7/45/4
11. ऋग्वेद 2/12/2
12. अयोध्याकाण्ड 1/7
13. ऋग्वेद 1/154/2
14. युद्धकाण्ड 120/26
15. अयोध्याकाण्ड 1/13-14
16. ऋग्वेद 2/12/16
17. युद्धकाण्ड 117/13-17
18. ऋग्वेद 10/90/1
19. युद्धकाण्ड 20/20-22
20. ऋग्वेद 1/189/10
21. युद्धकाण्ड 20/19
22. वा0रा0 2/8/3
23. बालकाण्ड 14/43
24. वा0रा0 4/4/8
25. ऋग्वेद 3/33/1
26. वा0रा0 2/50/16

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वाल्मीकि रामायण - उ0प्र0 संस्कृत संस्थान से प्रकाशित
2. ऋग्वेद - नाग पब्लिशर्स नई दिल्ली से प्रकाशित
3. ऋक्सूक्तसंग्रह - सुभाष बाजार मेरठ से प्रकाशित

वाल्मीकि-रामायणे वेदानां प्रभावः

डॉ० सुभाष वेदालंकार
पूर्व विभागाध्यक्ष- संस्कृत विभाग
राजस्थान वि. वि, जयपुर (राजस्थान)

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञाञ्च विजयावहम्
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।। युद्ध का . २५-१२८-१०६

वाल्मीकि- रामायणस्य पद्यमिदं साधयति यत् इदं ननु आदिकाव्यमस्ति तत् च वाल्मीकिना विरचितमिति।

रामायणस्योत्तर काण्डे लिखितं यत् आदिकाव्यमिदं चतुर्विंशतिसहस्रं पद्यैः शतमुपारख्यानैः, पञ्चशतं सर्गैः षड्भिश्च काण्डैर्गुम्फितं नाम। उत्तरकाण्डमपि कविनानेन वाल्मीकिनैव विरचितम्-

सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
उपाख्यानशतञ्चैव भार्गवेण तपस्विना।। (उत्तर ९४-२६)
आदि प्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च।
काण्डानि कृतानीह सोत्तराणि महात्मना।। (उत्तर ९४-२७)

वाल्मीकि रामायणे पदे पदे वेदानां प्रतिच्छाया दरीदृश्यते। रामायण-व्याख्यातृभिरनैर्विद्वद्भिः पद्यमिदमेकं प्रायेण समुद्धृतं ग्रन्थारम्भे-

वेदवेद्ये परे पुंसि जातेदशरथात्मजे
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षातरामायणात्मना।।

अर्थात् परमेश्वरः वैदेर्विज्ञेयो वर्तते। यदा चासौ परमेश्वरः रामरूपे भूमावतीर्णस्तदा सर्वे वेदाः वाल्मीकिमुखात् रामायणरूपे अवतीर्णा ननु। वेदानां गूढा अर्थाः शब्दाश्च सुगमतयासरस विधिना च रामायणेन स्फुटतामायान्ति। अत एवं भूना रामायणस्य फलश्रुतौ भणितं किल :-

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्
यः पठेत् रामचरितं सर्वपापैर्विमुच्यते।। वा.रा. ४.१.१-९८

रामायण-महानायकः श्रीरामः वेदाहध्येता अभूत्। भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्नैः सह गुरोराश्र गत्वासौ वेदानां गम्भीराध्ययनं विधाय, जीवनं वेदमयं कृत्वा, जीवन पर्यन्तं वेदप्रतिपादित-यज्ञानयजत्। अतएवाह कविवरो एहिः "सोऽहध्यैष्ट वेदान् त्रिदशानयष्ट"

राजर्षिः जनकः गुरुवर्यः याज्ञवल्क्यः गौतम-शतानन्द-प्रभृतयः वेदेषु कृतभूरिपरिक्रमाः समभवन्।

रामायणस्य खलनायकः दशाननो रावणोऽपि वेदज्ञः, वेदभाष्यकारश्चेति प्रथामगात्। रावणस्य लंकायां वेदपाठध्वनिः सततं श्रूयते स्म। सीतान्वेषणे लग्नः हनुमान् यदाशोकवाटिकां प्राप तदार्धरात्रावपि लंकावासिनां वेद विदुष्णषां वेदमन्त्रोच्चारध्वनिरश्रूयत -लिलेख च वाल्मीकिरत्र विषये-

षडङ्गवेद विदुषां क्रतु-प्रवर-याजिनाम्।

शुश्राव ब्रह्म घोषान् स विराजे ब्रह्मरक्षसाम्॥ [१] वा.रा.प्र.४ १८.२

अयोध्यानगर्यपि वेदविद्भिर्विद्योतमाना वेदमन्त्रैश्च जुगुञ्ज। भरतेन समं रामं वनवासान् प्रत्यावर्तनानुरोधं कर्तुं ये खलु विद्वांसो गतवन्तः ते कठ कपिष्ठल प्रभृतिवेद शाखानां पंडिताः शिक्षकाश्चाभवन्।

वनवासकाले यदा हनुमता सह रामलक्ष्मणयोः प्रथम साक्षात्कारः समभूत्। तदा रामः चकितचकितः इवभवत्। हनुमति गतवति सभति स लक्ष्मणं प्राह - य इदानीं वार्तां विधाय प्रति निवृत्तोऽस्ति स तु वेदानां व्याकरणस्य च महान् विद्वान् प्रतिभाति -

नानृग्वेद-विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नभनेन बहुधाश्रुतम्
बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥ वा.रा. ४.३.२८,२४

इत्येतावता विवेचनेन सुस्पष्टं यत् रामायण-काले वेदाध्ययनस्य प्रचलनमासीत्। वेदान् प्रति जने जने श्रदांभावः अवर्तत। वेदेषु चर्चिता, यज्ञाः रामायणेकाले समपाद्यन्त। रामस्य सम्पूर्णं जीवनं राक्षसेभ्यो यज्ञरक्षायामेव जगाम।

वेद विषये विदुषां मतमस्ति यत भूतले तादृशी कापि समस्या नास्ति, यस्याः समाधानं वेदेषु न स्यात्।

पुरुषार्थ-चतुष्टय प्राप्तिरेव वेदमते मानवजीवनोद्देश्यमस्ति। वेदे तावत् चतुर्णामपि पुरुषार्थानां पदे पदे चर्चा विलोक्यते।

वेदः समस्त धर्माणां मूलं मनुस्मृति मते, ये च धर्मं ज्ञातुकामाः तेषां कृते वेद एव परमं प्रमाणम् "वेदोऽखिलो धर्ममूलम् धर्मं जिज्ञासमानां प्रमाणं परमं श्रुतिः"। धर्मप्रसंगे वेदा निगदन्ति यत् केवलं परमेश्वर एव पूज्योऽभिमतः। ईश्वर एक एवास्ति तन्नामानि च बहूनि ननु। वेदे लिखित "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरेको दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।

अथर्व वेदे एतद्विषये दृढशब्दैरेषा घोषणास्ति

न द्वितीयः न तृतीयः न चतुर्थ उच्यते

न पञ्चमः न षष्ठः न सप्तमः उच्यते

न अष्टमः न नवमः न दशमः निगद्यते

त मिदं निगतं स एक एव इत् एक एव॥

अर्थात् परमेश्वरो न द्वितीयः तृतीयः चतुर्थः पञ्चमः षष्ठः सप्तमोऽष्टमो नवमो दशमो वापिनास्ति। स एकः केवलमेक एवास्ति। स एव च केवलं पूज्यः वर्तते "स एक एवव दृक्ष्वोऽयः"

ईश्वर विषयका इमे एव विचारा रामायणे परिलक्ष्यन्ते। वेदानुयायी पुरुषोत्तम रामः एकेश्वरस्यैव परमभक्तः सणितः। ईश्वरपूजाया एवं एक विधिः वेदे प्रतिष्ठितः स एव च विधिः रामायणे अंगीकृतः। रामः यजुर्वेद-प्रतिपादितानां त्रिंशन् यज्ञानामनुष्ठानं चकार। ऋषीणामाश्रमेषु पदे पदे यज्ञग्निः प्रज्ज्वलिता दृश्यते। रामदयश्च सततं यज्ञरक्षा-पराः विलोक्यन्ते। अरण्यकाण्डे रामः साक्षात् धर्मरूपो निगदितः "रामो विग्रहवान् धर्म" अरण्य 37/13 स कदाचित् धर्मात् विचलितो नाभवत्। रामस्य परममस्त्रं ब्रह्म एव निगदितम्, वेदमार्गं स न परित्यजति-

यस्मिन् न चलते धर्मो यो धर्मं नातिवर्तते।

यो ब्राह्मस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः॥ युद्ध-२८-॥

तत्रैव अयोध्याकाण्डे रामः पुरुषार्थानां ज्ञाता स्मृतेरध्येता च कथितः॥

धर्मार्थ-काम-तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानमान्

लौकिके समयाचारे कृतकल्पो विशारदः॥ अयोध्या-१.२२

किष्किन्धाकाण्डे धर्मचर्चा प्रसङ्गे अनेक पद्यानि द्रष्टव्यानि सन्ति, हृदिस्थ: परमेश्वर: सूक्ष्म: दुर्जेय: च निगदित: स एव सर्वं जानाति--

सूक्ष्मः परम-दर्जेयः सतां धर्मप्लवङ्गम।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम्॥

धर्मप्रसंगे सत्यचर्चा बहुश:वेदेषु, अन्यशास्त्रेषु च वर्तते। "सत्यमुते धर्मं वदन्ति, धर्ममुते सत्यं वदन्ति" इत्युपनिषद् वचसि सत्यमेव धर्मत्वेन वर्णित:। धर्मशास्त्रे सत्यमेव श्रेष्ठतमो धर्म: लिखित: "नहि सत्यात्परो धर्म:" वेदेषु सत्यस्य सर्वातिशायि महत्तवं प्रदर्शितम्। ब्रह्माण्डमिदं सत्य एव प्रतिष्ठितम् " सत्येनोत्तभिता भूमि"। राष्ट्रनिर्माण-प्रसंगे मनुष्य-जीवन-निर्माण-प्रसंगे च अथर्ववेद-भूमिसूक्ते सत्यमेव प्रकाशं तत्वमङ्गीकृतम्। "सत्यं बृहयुत दीक्षा तप: ब्रह्मयज्ञ: पृथिवीं धारयन्ति अथर्व-भूमिसूक्त--।

सत्य सम्बन्धिनी एषैव धारणा वाल्मीकिरामायणे दृश्यते।

"सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः- अयोध्या-१०९-१०

सत्यान्नास्ति परं पदम्- अयोध्या- १०९-१३

वेदे ब्रह्म सत्यस्वरूपं भणितं "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

अयमेव विचारः रामायणे वर्तते, पद्यमिदं तत्र प्रमाणम्-

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः
सत्यमेवाक्षया वेदा सत्येनावाप्यते परम् ॥ अयोध्या-१४-७

धर्ममध्ये एव वेदे अहिंसा बहुवर्णिता किल- 'मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" गांमाहिंसी: पशुं माहिंसी। "इत्यादि वेदवचांसि लोकश्रुतानि, जैन बौद्ध योर हिंसा परमो धर्म इत्यस्य मूलानि खलु।

वाल्मीकिरामायणे अरण्यकाण्डे अहिंसा निन्दिता, परित्याज्या चास्ति - अपराधं विना हन्तुं लोको वीर न मंस्यते" तत्रैवान्यत्र लिखितं यत् शस्त्रप्रयोगेण बुद्धि: मलिनतां पापञ्च प्रयाति। "कदर्य-कलुषा-बुद्धिर्जायते शस्त्रसेवनात्"

किन्तु वेदेच इदमपि भणितं यत् धर्मरक्षायै, पापनाशाय, पुण्यपरिरक्षणाय च शत्रुनाशोऽप्यावश्यक एव। "अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु, इत्यादि वचस्तु, अपि च वैदिक-वीरागनामा: आकांक्षायाम्- "मम

पुत्रा: शत्रुहण: इमो मे दुहिता विराट् ''सा एव भावना विलोक्यते।

रामायणस्यापिसुदृढं मतं यत् नारीमाणामपहर्तार:, दुराचारिण:, पापिन:, यज्ञादि-पुण्यकार्येषु विघ्नकर्तार: अनिवार्यत: हन्तव्या एव। रावण- वालि प्रभृतीनां यज्ञनाशकानाञ्च विनाशकृत्तान्त: रामायणं वेदमनुसरतीति साधयति।

धर्मादनन्तरमर्थस्य चर्चा पुरुषार्थचतुष्टय वर्वति। वयं स्याम पतयो रयीणाम् (प्रजापति सूक्ते), अग्रे नय सुपथा राये (यजुर्वेदान्तिमाध्याये), ''अग्निना रयिमश्नवत्'' सनो वसून्याभर पोषमंव दिवे दिवे'' इत्यादि, ऋग्वेद, प्रथममण्डलस्य-प्रथमसूक्तस्य वचनषु-'धर्मस्य विवरणं वर्तते।

ऋग्वेदस्य नैकमन्त्रेषु अधिकाधिक-धनार्जनस्य प्रवृत्ति: प्राप्यते-सरमा-पणि-संवादे वर्णितं यत् ''यत् धनमहं व्यापारे योजयेयम्, तत् सर्वथा वर्धताम् एव।

''इन्द्र! सानसिं रयिं सजित्वानम्'' ऋ.व. 1-8। इत्यादि मन्त्रे धनैश्वर्यस्य वृद्धचै, स्थिरतायै, च प्रार्थनास्ति। परन्तु वेदानामिदमपि भतं स्पष्टमस्ति यत ''इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि ''यानि धनानि गृहे आगच्छन्तु तानि श्रमेणार्जितानि शुद्धानि च भवेयु:। गृहे सदैव पुण्या लक्ष्मी: वसतु ''पुण्या: लक्ष्मी: रमन्ताम्''

अग्निहोत्रस्य प्रारम्भे आचमन-मन्त्रा: उच्चार्यन्ते। तत्र च शुद्धपवित्रेण सत्यमार्गेणत्रेर्जितं धनं वयं प्राप्नुयामेति प्रार्थनास्ति'' सत्यं यश: श्रीर्मयि श्रुयताम् स्वाहा'' ऋग्वेदस्याक्षसूक्ते ''अक्षैर्मा दीव्य: ''कृषिमित् कृषस्व कितेरक्तव ''बहुमन्यमान: इति मन्त्रे परिश्रमेण लब्धे धने सन्तोषो विधेय इति निर्देश: विद्यते

अर्थ सम्बन्धिन एव विचारा: रामायणे प्राप्यन्ते। रामायणस्य पद्य द्वयं नीतिग्रन्थेषु बहुलोक प्रियं ननु-

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा:
यस्यार्था: स पुमांल्लोके यस्यार्था: स च पण्डित:।। युद्ध-८३-३५
यस्यार्था: स च विक्रान्तो यस्यार्था: स च बुद्धिमान्
यास्यार्था: स महाभागे यास्यार्था: स गुणाधिक:।। युद्ध-८३-३६

युद्धकाण्डे (83-39)तु स्यष्टं घोषणास्ति यत् हर्ष-काम-धर्म-क्रोध-शमादय: धनकारणादेव मनुष्ये समायान्ति-

हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमोदमः
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप। ॥ युद्ध ८३-३९

पुरुषार्थचतुष्टे 'कामः' अनेकार्थकः खलु। इदं पदं परमेश्वयापि कि वाचकः सामान्येऋतया अपि वाचकः, इयञ्च कामवासनाया अपि द्योतकः। सृष्टचाम्भे काम एव सर्वपुथमं परमेश्वरो समुत्पन्नः स एव सृष्टेः प्रथमं बीजमासीत् ''कामस्तदग्रे समंवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्'' ऋक् नासदीय सूक्त-

अस्मिन रूपे वाल्मीकि-रामायणे कामस्य चर्चा न्यूना विद्यते। किन्तु कामवासना-प्रसंग काम-चर्चा प्राचुर्येण वर्तते।

वेदे स्फुटतया निर्दिष्टं यत् कामः सर्वविध दुःखानां जनकं खतु, तच्च नरकं नयति-यास्कः निरुक्ते मन्त्रमेकमुल्लिलेख-तस्माशः इयूमं ननु-----जिह्मायन्त्मो नरकं पताम--

मन्त्रे कुलटा नार्यो निगरन्ति यत् केचन यज्ञमाचरन्तः स्वर्ग सुखं लभन्ते केचन ईश्वरभक्त्या सुखं प्राप्नुवन्ति, किन्तु वयं कुत्सित-कर्म-रताः स्त्रियः यज्ञमकुर्वाणा नरक एव पतिष्यामः।

रामायणे अस्मै भावस्य प्रतिच्छाया संदृश्यते।- वालीरावणयोर्मृत्युः तस्यैव द्योतकः। क्रिष्किन्ध-काण्डे वाल्मीकिर्वदतियत् कामासक्तो जनः देश-काल-अर्थ-धर्माणां चिन्तां न करोति॥ न देशकालौ हि यथार्थ धर्मावेक्षते कामरतिर्मनुष्यः-किष्किन्धा 33-55 वेदेषु कामजन्य-दोषाणां चर्चा बहुशो वर्तते। मनुस्मृतौ मनुः कामज-दोषानित्थं दर्शयति-

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः
तौर्यत्रिकं वृथास्मा च कामजो दशको गणः॥
वाल्मीकिः स्वरामायणे त्रीणि कामज-व्यसनानीत्थं दर्शयामास
त्रीण्येव व्यसनान्यत्र कामजानि भवत्युत
मिथ्याश्यावाक्यं तु परमं तस्माद्गुरुतरावुभौ।
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ॥ अरण्य-९-३-४

-पुरुषार्थ चतुष्टय-प्रसंगे मोक्षचर्चा नैकस्थलेषु विद्यते। तस्य च प्राप्तेरुपायेषु यज्ञ-तपः-स्वाध्यायादीनां विशेष चर्चा विद्यते। वाल्मीकि-रामायणे यज्ञतपोभ्यां मोक्षमार्गः प्रशस्तो भवतीति नैक स्थलेषु दृश्यन्ते

वेदेषु काम-क्रोध-लोभ-मोहारदयः षड् शत्रवो भीषणा भणिताः, तेषां परित्यागस्य, विनाशस्य चादेशो वरीवर्ति। एको मन्त्रः अतीव प्रसिद्धः खलु-

उलूकयातुं भुभलूक यातुम जहि श्वयातु मुत कोकयातुम्।

सुपर्ण यातुमुत गृध्रयातुं दृशदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।

मन्त्रेऽस्मिन् समकालमेव उलूक-गतिम् (व्यवहारम्) कुक्कुरगतिम् कोक-सुपर्ण- गृधादिगतिं परित्यक्तुमुपदिष्टम्। अत्रोलूकः अज्ञानान्धकारयोः, शुशलूकः हिंसायाः, कुक्कुरः, ईर्ष्यां जातिद्रोहयोः कोकः (अतिशय-काम वासनायाः) सुपर्णः मदाहंकारयोः, गृध्रश्च लोभस्य द्योतकः खलु। वेदेषु 'माक्रुधः' 'मा गृधः' प्रभृतीनि नैक-पदानि क्रोध-लोभ-परित्यागस्योपदेशकानि ननु। गीतायां त्रिविधं नरकद्वारं काम-क्रोध-लोभ रूपं वर्णितम्।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशमात्मनः
कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। गीता-३

वाल्मीकि रामायणमपि दोषानेतान् हातुं प्रेरयति। अरण्यकाण्डे महर्षिर्लिलेख यत् कामिजन स्वभावः न परित्येजत् कामिजनानां गृहेषु पुण्यमधिक-समयं यावन्न तिष्ठति।

कामस्वभावो यः सोऽसौ न शक्यस्तं प्रभार्जितुम्।
नहि दुष्टात्मनामार्यभावसत्यालये चिरम्।। अरण्य-५०-१२
युद्धकाण्डे अस्य भीषणता एतैः शब्दैः व्यज्यते-
क्रोध-हर्ष-समानेन दुर्वर्णकरणेन च
शोक-सन्ताप-नित्येन कामेन कलुषीकृतः ।। युद्ध-१२-१७,

वाल्मीकिरामायणमते क्रुद्धो जनः सर्वविधं पापमाचरति। स पूज्यानां वृद्धजनानां गुरु वर्माणाश्च हत्यामपि कर्तुमर्हति। क्रोधावेगपीडितोजनः कटुवचोभिः सत्पुरुषानपि आक्षिपति।

क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि
क्रुद्धः परूषया वाचा नरः साधूनपिक्षिपेत्।।
सुखधर्मयोर्नाशकः क्रोधः यथाशक्ति यथाशीघ्रञ्च हातव्यएव
त्यजाशुकोपं सुखधर्म नाशनम्
भजस्व धर्मं रति-कीर्ति-वर्धनम्।।

लोभविषयेऽपि वेदे-रामायणे च साम्यं प्रतीयते। भरतः रामश्च उभावपि राजसिंहासनमारोढुं नोद्यतौ प्रतीयेते।

लंका विजयानन्तरं लक्ष्मणमुद्दिश्य रामो वदति-

अपि स्वर्णमयी लंकाह न मे लक्ष्मण रोचते

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

रामायणस्य पद्यमिदं यजुर्वेदस्य चत्वारिंशतमाध्यायस्य प्रथममन्त्रस्य पंक्तिमिमां स्मारयति- ---तेन त्यक्तेन भुञ्जीयाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्

वेद-संहितानां नैकमन्त्रेषु देशभक्तेरुपदेशः प्राप्यते। अथर्ववेदस्य भूमिसूक्ते एतादंशः उपदेशः पदे पदे दृश्यते। ''वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''

रामायणस्योक्ते पद्ये मातृभूमिं मांतरञ्च स्वर्गादपि अधिकतर श्रेष्ठं। निगद्य, भूमिसूक्तस्यैवानुकरणं दृश्यते।

मदः ईर्ष्या च वेदे भयावहः शत्रुनिर्गदितः, तयोश्च त्यागस्योपदेशः बहुशः दत्तः। वालि-रावण-प्रभृतीनां दुरभिमानिनां विनाश एव मद-मोह-ईर्ष्या-काम-क्रोधादीनां विनाशस्य प्रेरणा प्रयच्छति।

वेदे कर्म-पुनर्जन्मनोः बहुशः विवरणमस्ति, कर्म एव सर्वश्रेष्ठतत्वं भणितम्, श्रेष्ठतमं कर्म यज्ञः भणितः शतपथ-ब्राह्मणे।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छ्त ँ समाः

एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ यजु-४०-२

वेदे अकर्मण्यः दस्युरभिहितः ''अकर्मादस्युः कर्मणः फलमपि मिलत्येव ''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'' वाल्मीकिरामायणं वेदस्यैव विचाराणां पुष्टिं विदधाति युद्धकाण्डे ऋषिर्भणति-

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः। युद्ध-१११-२५

अयोध्या-काण्डे निर्देशो वर्तते यत् मनुष्यः यदपि

सत्कर्म दुष्कर्म वा चरति तस्य फलं तेन भोक्तव्यमेव भवति॥

यदाचरति कल्याणि। शुभं वा यदि वाशुभम्
तदेव लभते भद्रे। कर्ता कर्मजमात्मनः॥ अयोध्या-६३-८

रामायणमते शुभ कर्म कर्ता शुभं फलमाप्नोति, पापकारी च पापं प्राप्नोति
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते॥ युद्ध-१११-२६

वेदेषु पञ्चदेवपूजाया विधानमस्ति, ते च देवाः सन्ति पृथिव्यां माता, पिता, आचार्यः अतिथिश्च, तेषाश्ञ्चाधिदेवः परमेश्वर एव उपनिषदि तेषां पूजाया विधानमेतेषु शब्देषु विद्यते

''मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिरूथि देवो भव। एते चत्वार एवं वेदे ईश्वररूपे वर्णिता ''त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ'' इत्यादि मन्त्रांशास्तत्र प्रमाणम्। अधिदेवो महेश्वर एव प्रभुः ईश्वरः, सच्चिदानन्दरूपः आदिभिः बहुभिः नामभिः स्मर्यते। वस्तुतः स ईश्वर एक एवास्ति।

रामायणेऽपि एकस्यैव परमेश्वरस्य पूजाया विधानमस्तीति पूर्वभेव प्रतिपादितम्। रामः पितरं दशरथं देववत् मत्वा तदादेश-पावनं पुण्यं कर्तव्यं मनुते।

पिताहि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्।
तस्माद् दैवतमित्येव करिष्यामि पितुर्वचः॥ अयोध्या-३४-५२

मातृपितृभ्यां कृतमुपकारं न विस्मर्तु शक्नुवन्ति पुत्राः पुत्र्यश्च।
यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा
न सुप्रतिकरं तत् तु मात्रा पित्रा च यत् कृतम्। अयोध्या १११-९

वेदे उपदिष्टं यत् ''अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।

अर्थात् पुत्रः सदैव मातरं पितरं चानुकरोतु। रामायणे रामलक्ष्मणयोः चरित्रं तदेव प्रमाणयति। चतुर्णामपि रामभरतादीनां परस्परं स्नेहः ''वेदस्य'' मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्'' इति भावनामेव पोषयति।

गुरुभक्ति-प्रसंगे रामायणस्यायोध्याकाण्डे लिखितं यत्
स्वर्गो धनं वा धान्यं वा विद्याः पुत्राः सुखानि च।
गुरुवृत्त्यनुरोधेन न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ अयोध्या ३०-३६

रामायणं मातुः पितुः गुरोश्चावमान कर्त्रे नैकविधदण्डस्य विधानं करोति-

मातरं पितरं विप्रमाचार्यञ्चावमन्यते

स पश्यति फलं तस्य प्रेतराज वशं गतः॥ उत्तर १५-२१

वेदेषु दान-तपस्यादीनां महिमा गीतोऽस्ति। दानमहिम्नि दानस्तुतिसूक्तं प्रसिद्धमेव। एकस्मिन्नतीव सुप्रसिद्धे मन्त्रे परमेश्वर उपदिशति यः प्राप्तस्य धनस्यान्नस्य च दानं न करोति, स मृत्योर्वाहनं करोतु, कदाचित तस्य समृद्धिर्न भवति। यः एकाकी भुंक्ते स पापमेव भुङ्क्ते।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य

नार्ममणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादिः॥

दानदातारः अमृतत्त्वं लभन्ते इति वेदानां मतं ''दक्षिणावन्तो अमृतत्त्वं भजन्ते'' अत एव तत्र वेदेषु शतहस्तैः संग्रहस्यः सहस्रहस्तैश्च दानस्यादेशो वर्वति ''शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर उपनिषदि'' श्रद्धमादेयामश्रद्धया देयम्। हिया देयम्। भ्रि देयम्। श्रिया देयम् संविदा देयम्। इत्यादि वचोभिः वैदिक-दान भावस्य पुष्टिरस्ति।

एतादृशा विचारा एव रामायणे मिलन्ति उत्तरकाण्डे वाल्मीकिः श्वेतमुनिमभिलक्ष्य लिलेख- अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते'' हे महामते श्वेतमुने दानरूपबीजं बिना किमपि नोत्पद्यते।

यच्च देयं तत्केवलं श्रद्धया, ससम्मानं चैव देयम-

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा..............बाल- १३-३३-३४

तपसो महत्त्वं सर्ववेदेषु वर्णितमस्ति, अथर्ववेदभूमिसूक्ते प्रथममन्त्रे सप्ततत्त्वानि राष्ट्र धारकाणि, भूमेः धारकाणि वा भणितानि सत्त्यं बृहदुतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति सृष्टिनिर्माणं तपस एव जातम् ''ऋतञ्चसत्य ञ्चाभि धात्तपसोऽध्यजायत। तपसो महिम्ना एव सृष्टिरायातेति नासदीय सूक्ते ऋग्वेदे'' तपसो महिना'' पदेन ज्ञायते।

रामायणोत्तर काण्डे तपः परमकल्याण कारकं भणितम् ''तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत् सुखम्॥ उत्तर-84-9

किन्तु अरण्यकाण्डे तपः क्लिष्टं विघ्नबहुलञ्च निगदितम् ''बहुविघ्नं तपो नित्यं दुश्चरं चैव राघव।'' अरण्य-10-14

रामायणमुपदिशति यत् शरीरं नश्वरं विद्यते, यश्च जनः तपस्यां न करोति स शरीरे विनष्टे पश्चातापं करोति।

वेदे कालमहिमा बहुगीतोऽस्ति। अथर्ववेदस्य कालसूक्ते कालस्य भव्यं वर्णनं विद्यते। काले एव सर्वं तिष्ठति ''काले सर्वं समाहितम्'' कालरूपः अश्वः धावति तेन च समस्तभुवनानि चक्रवत् भ्रमन्ति। क्रान्तदर्शिनः कवमय एव तमश्वमारोहन्ति। काल एव सर्वशक्तिमान् परमेश्वरोऽपि वर्तते। काल एव तादृशः समयः अवसरो वा वर्तते यः गत्वा पुनः न हि प्रतिनिवर्तते।

कालो अश्वो धावति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः

तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥ अथर्व-१९-५३-१

अर्थात् काल एव सर्वान् चालयति, तत्रैव तपः तत्रैव प्राणाः वर्तन्ते।

काले तपः काले प्राणाः प्रतिष्ठिताः॥

वेदः भणति कोऽपि महाशक्तिशाली नरो वा पदार्थो वा कालमतिक्रामितुं नार्हति। कालः सर्वान् निगीर्णान् करोति। कोऽपि कालें न पराजेतुं शक्नोति।

वाल्मीकि रामायणे काल विषये वेदानुसारिणो विचाराएव प्राप्यन्ते। कालस्यैवापरं नाम मृत्युरपि वर्तते वेदेऽपि रामायणेऽपि अरण्यं काण्डे प्रचुरं लिखितं काल विषये। कालो हि दुरतिक्रमः '' इति वचनं प्रसिद्धमेव। कालः सर्वान् वशीकरोति। कालपाशपतितस्य पुरुषस्य सर्वाणीन्द्रियाणि वृथा भवन्ति। नरश्च किंकर्तव्यविमूढः भवति।

कालस्य सुमहद्वीर्यं सर्वभूतेषु लक्ष्मण॥ अरण्य -६९-४८

कालपाशपरिक्षिप्ताः भवन्ति पुरुषा हि ये

कार्याकामं न जानन्ति ते निरस्तषडिन्द्रियाः। अरण्य-३०-१५

मृत्योरर्थे कालशब्दः बहुशः प्रयुक्तः वेदे। ब्रह्मचर्ये तपसा

जनाः मृत्युमपिजेतुमर्हन्ति।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाहघ्न।

अविद्या-विद्या-प्रसंगेऽपि मृत्यौ विजयस्यः प्रसंग वेदेः दृश्यते।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते -यजु-४०-९, १०

किन्तु रामायणे मृत्यु-विजयस्योपायानां चर्चानास्ति।

तस्करता-वञ्चनामद्यपान-द्यूत-हिंसादि-दुष्कर्मणां, पापाचरणेर्ष्या-वैरादिदुर्गुणानां परित्यागस्य बहुशः चर्चा विद्यते वेदे। द्यूतं महाविनाशकं भणितमस्ति। "अक्षास इदङ्कुशिनः निकृत्वानः नितोदिनः तपनास्तापयिष्णवः।। ऋक् अक्ष-सूक्तम्।।

इत्यादि-कठोर-शब्दैः द्यूतस्य दुष्परिणामं भीषणताञ्च संसूच्य अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व" इत्यादि-शब्दै द्यूत परित्यागस्योपदेशः वर्तते। रामायणेऽपि द्यूतस्य निन्दायाः तत्परित्यागस्य चोपदेशोवर्तते-

"पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्"

सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ऋग्-७-८६-६ इत्यादि मन्यत्रेषु

सुरा जीवननाशकं कलहकारकञ्च कथितम्।

एतादृशाः विचारा एव रामायणे विद्यन्ते। किष्किन्धा-काण्डे

धर्मार्थयोरुपार्जने सुरापानं बाधकं कथितम्।

न धर्मार्थ-सिद्ध्यर्थं पानमेवं प्रशस्यते।

पानादर्थश्च कामश्च धर्मश्च परिहीयते।। किष्किन्धा-३३-४६

वेदेषु वर्णाश्रमयोः तद्धर्माणां च चर्चास्ति। ऋग्वेदस्य पुरुष-सूक्ते चतुर्णां वर्णानां सूचना इत्थं विद्यते-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः
ऊरू तदस्य यद्वैश्यो पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

आश्रमेषु ब्रह्मचर्यगृहस्थाश्रमयोः महत्त्वपूर्णा चर्चा बहुशः वर्तते चतुर्ष्वपि वेदेषु।

ब्रह्मचर्येण तपसैव मृत्यौ विजयः संभाव्यते-

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युन्दमुपाध्नत-अथर्ववेदे।

महिलाभ्योऽपि ब्रह्मचर्याश्रमः महत्वपूर्ण आसीत् ''ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।।

रामायणस्य समाजे वर्णाश्रम व्यवस्था अपि महत्वपूर्णा आसीत्। स्वयं राम-लक्ष्मणादयः ब्रह्मचर्याश्रमं पालयन्तः वेदाध्ययनं कृतवन्तः। गृहस्थाश्रमः अथर्ववेदे ''ब्रह्मोदनं भणितम्'' गृहस्थे च पति-पत्नी-पुत्र-पुत्री भातृ-प्रमृतीनामरर्थाः स्थापिताः सन्ति-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्राज भवतु सम्मनाः

जामा पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा

सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।

इत्यादिषु विख्यात-मन्त्रेषु गृहस्थ धर्मस्य यः आदर्शः स्थापितोऽस्ति स एव रामायणे पदे पदे दृश्यते। रामायणे पिता, पतिश्च देवतुल्यो मतोऽस्ति ''पिता हि दैवतम् तात।'' इति वचनं पूर्व समुद्धृतमेव।

अनुजः पिततञ्च अग्रजमनुकरोतु, इत्येव वैदिकाचारः रामायणे प्रवर्तते- ''एष लोके सतां धर्मो यज्ज्येष्ठ वशगो भवेत् भ्रातृषु परस्पर प्रेम्णः द्वेष हीनतायाः यदरूपं रामायणे मिलति तत् सर्वथा वेदानुरूप मेव। राम-लक्ष्मण-भरतानां परस्परं प्रेमभावः, राम-भरतयोः रामे अन्यन्या भक्तिः कस्य न चित्तमाकर्षति। राम-लक्ष्मणयोः स्नेहस्य चरमनिदर्शनं। रामस्यास्मिन् वचने संदृश्यते।

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।

तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातः सहोदरः। युद्ध- १०१-१५

गृहस्थ जीवनस्य आदर्शः रामायणेनापि स्वीकृत एव।

वेदे धीर पुरुषस्य तस्य धैर्यगुणस्य च प्राचुर्येण प्रशंसास्ति। वेदादि-शास्त्रेषु धैर्यमेव धर्मः भणितः। मनोः दश विधे धर्म लक्षणे धैर्य प्रथमतया विराजते। ''धृति क्षमा दमोऽस्तेयम्

महापुरुषलक्षणे नीतिशास्त्रे धैर्यमेव प्रथमो गुणः निगदितः।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा..................नीतिशतकम्।

विद्याविद्या-प्रसंगे धीर शब्दः वारद्वयं प्रयुक्तः यजुर्वेदस्य चत्वारिंशत्तमे अध्याये।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।'' तमेव विद्वान्न विभाय मृत्योः। मृत्योरात्मानम युवानम् अथर्व- 10-8-44 इत्यादि मन्त्रेषु धीरः स वर्णितः यो मृत्योर्भीतो न भवति। यो आनन्दरसेन तृप्तो वर्तते स वृद्धो न भवति, नित्यः युवा च तिष्ठति। धीरा एव रक्षकाः भणि ''धीराः न पितरः

एतेषामेव विचाराणां छाया रामायणे दृश्यते। किष्किन्धाकाण्डे लिखितं यत् धीरः का नैवाप्नोति, कामं प्राणाः गच्छन्तु, काममर्थकष्टं समायातु, कामं यादृशी तादृशी विपत्तिरागच्छेत्।

व्यसनेवार्थकृच्छ्रे वा भये वा जीवितान्तगे।

विभृशंश्च स्वर्या बुद्धया धृतिमान् नावसीदति।। किष्किन्धा ७-९

अथच तत्रैव दशमे पद्ये वाल्मीकिः लिखति-''यो मूर्खोनरः विपत्तिं वीक्ष्य विभेति पलाय धैर्यं परित्यजति स भाराक्रान्ता नौरिव शोकसागरे निमग्नो जायते।

वालिशस्तु नरो नित्यं वैक्लव्यं योऽनुवर्तते। स मज्जत्यवशः शोके भाराक्रान्तेव नौर्जले किष्किन्धा 7-10 नारीजातेः वेदे नितरामुच्चं स्थानं वर्तते-सा गृहे साम्राज्ञी निगदिता-

साम्राज्येधि श्वशुरेषु साम्राज्ञी ननान्दरि।

युद्धे सा वीरांगनास्ति। वैदिकनार्या गर्जनं पदे पदे श्रूयते।

''असपत्ना सपत्नध्नी'', ममपुत्राः शत्रुहणः अथो मे दुहिता विराट् ''इत्यादि मन्त्रांशाः नार्या वीरभावान् संसूचयन्ति।

वेदेषु पुरुष-नार्योरधिकाराः समानाः किल। पतिः द्युलोक रूपं पत्नी च पृथ्वीरूपा वर्णिता।

''द्यौरहं पृथिवी त्वम्'' ऋग्वेदः- 10 मंडलम्। उभयोः सामञ्जज्येव गृहस्य चक्रं साधुतम चलति।

सा युद्धक्षेत्रे, समायां, यज्ञादि कार्येषु नेतृत्वं दातुमर्हति-यज्ञस्य जा ब्रह्मा भणिता ''स्त्री ब्रह्मा बमूविथ''

रामायणे नार्याः स्थितिः वेदतुल्या तु नास्ति। तथापि तस्माः सम्मानं वर्तते एव। तां विना यज्ञः सफलतां न याति अत एव सीतायो वनं गतायां सत्यां, रामः यज्ञे तस्याः प्रतिमां स्थापितवान्। नारीं विना पुरुषस्स जीवनं शून्यारण्यमिव भतम्। अत एव सीतायाविरहे, रामः तंदन्वेषणाय सर्वत्र वनेषु,

पर्वतेषु बभ्राम। तरत्र लंकायुद्धं विधाय, सीतायाः मुक्तिं कारितवान्।

यज्ञेषु वेदाध्यने च नारीणामधिकारोऽवर्तत रामायणकाले। राजप्रासादेषु राज्ञः नित्यं यज्ञं चक्रुः। सर्वास्वपि सुख-दुःख स्थितुषु नार्यः नरैः सह उपस्थिताः दृश्यन्ते- पत्या तासामुपस्थितिः दूष्या नामन्यत। युद्धकाण्डस्य पद्यमिदं द्रष्टव्यं नाम

व्यसनेषु च कृच्छ्रेषु युद्धेषु च स्वयंवरे।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः। युद्ध ११४-२८

नार्याः प्रथमः आश्रयः पतिरेव भवति। द्वितीय आश्रयः पुत्रः भवति अन्तिमः आश्रयः पिता भ्राता वा निगदितः। एतदतिरिक्तम् तस्याः आश्रयः कोऽपि नास्त्येव''

वेदे च रामायणे च नारी अवध्या कथिता। अयोध्या-काण्डे विलिखितम् यत्- अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति। अयोध्याः- 7-8-2

गृहस्थजीवने नारी-नरौ वेदे रामायणे च समानौ 'तव चित्तं मम चित्तमनु' इत्यत्र वेदमन्त्रे स्थितः भावः रामायणेऽपि प्राप्यते। किन्तु रामायणे नार्याः अधिकाराः न्यूनाः सन्ति। पतिरेव तस्या देवतास्ति स एव च तस्या भागवनस्ति- जीवन्त्या हिस्त्रिया भर्ता देवतं प्रभुरेव च अयो 24-21 किन्तु वेदवत् रामायणेऽपि विवाहः अच्छेद्यः खलु।

''इहैव स्तं मा व्यौष्टम्'' इति भावना रामायणे दृश्यते।

इत्थं प्रायः सर्वेषु विषयेषु वेदानां प्रतिबिम्बं रामायणे दृश्यन्ते। वस्तुतः वेद-रामायणोः तुलनाप्रसंगेन अद्भूतः ग्रन्थ एव विलिखितुं शक्यते। यतो हि समाजक्षेत्रे, राजनीतिक्षेत्रे, धर्मक्षेत्रे, संस्कृतिक्षेत्रे वा सर्वत्रापि रामायणे वेदनां प्रभावः स्फुटं संलक्ष्यते।

''वाल्मीकिरामायणे वैदिककर्मकाण्ड:

डॉ० भगवत शरण शुक्
प्राचा
सौदामिनी संस्कृतमहाविद्याल
149 विवेकानन्द मार्ग: इलाहाबा

अखिलापीयं सृष्टि: परमात्मना यज्ञै: सह सृष्टास्ति[1]। किन्तु वेदा: परब्रह्मण: नि:श्वास भू सन्ति। वेद विहिता: यज्ञास्तावत्-परमात्मस्वरूपा एव सन्ति-''ब्रह्म यज्ञ:[2]'', ''ब्रह्म हि यज्ञ:[3]'', '' वै विष्णु: स यज्ञ:[4]'', विष्णुर्वै यज्ञ:[5]''। एषा सम्पूर्णा वेदत्रयी यज्ञार्थत्वात् यज्ञ एव कथितास्ति-''सैष त्रयी विद्या यज्ञ:[6]''।

एतेषां वेदानां पद्यगद्यगेयेतित्रितियस्वरूप भेदेन त्रैविध्यं स्वीकृतमस्ति-''स इमानि त्रीणि ज्योति ꣳष्यभितताप। तेभ्यस्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेद: सूर्यात् सामवेद:''

''तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजयात।।''[8]

किन्तु विषय भेदेन एतेषां चत्वारो भेदा: सन्ति। तत्र सर्वविषयात्मक: ऋग्वेद:, कर्मकाण्ड (याग) विषयात्मको यजुर्वेद:, गेयात्मक: सोमयागविषयकश्च सामवेद:, लोककल्याणसम्पादकत्वात् लौकिकविषयात्मकोऽथर्ववेद:। एते सर्वे वेदा: साङ्गोपाङ्गा: परम्परायां संस्थापिता: सन्ति-

''एवमिमे सर्वे वेदा: निर्मिता: सकल्पा:, सरहस्या:, सब्राह्मणा:, सोपनिषत्का:, सेतिहासा: सान्वाख्याना:, सपुराणा:, सस्वरा:, ससंस्कारा:, सुनिरुक्ता:, सानुशासना:, सानुमार्जना:, सवाकोवाक्या:''

अत्र निर्मित शब्द आविर्भूतवाचको ''यस्य नि:श्वितं वेदा:'' इत्यभियुक्तवचनस्य सत्वात् ऋषय: वेदमन्त्राणां द्रष्टार: सन्ति नतु कर्त्तार:। ये च तपसा वेदमन्त्राणां साक्षात्कारं कृतवन्त:-

''ते यत्पुरास्मात् सर्वस्माद् इदमिच्छन्त: श्रमेण तपसा आरिषन्, तस्माद् ऋषय:''[10] इति शतपथब्राह्मणे

ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेति औपमन्यव:। तद्येनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भवभ्यानर्षत ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम् इति विद्यायते।।[2] इति निरुक्ते।

भत्स्यपुराणे ऋषि शब्दस्य व्युत्पत्ति: साधु: दर्शितास्ति।

''ऋषिर्हिंसगतौ धातुर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।
एष सन्निचयो यस्माद् ब्राह्मणश्च ततस्त्वृषिः॥''[१२]

शब्द कल्पद्रुमे ऋषीणां सप्तक्रमो दर्शितोऽस्ति-

''सप्त ब्रह्मर्षिदेवर्षिमहर्षि परमर्षयः।
काण्डर्षिश्च श्रुतर्षिश्च राजर्षिश्च क्रमवराः॥''[१३]

पद्येऽस्मिन् अवरोहक्रमो दर्शितोऽस्ति। आरोहक्रमे तावत् राजर्षिः, श्रुतर्षिः, काण्डर्षिः, परमर्षिः, महर्षिः, देवर्षिः, ब्रह्मर्षिश्चेति क्रमो विद्यते। तत्र यो राजा ऋषिरिव आचारवान् तपस्वी मन्त्रदृष्दा स राजर्षिः कथ्यते/यथा पृथुः मान्धाताप्रभृतयश्च।[14] श्रुतः विख्यातः ऋषिः ऋषिपुत्रत्वात् श्रुतर्षिः[15]। मन्त्रदृष्टारः ऋषिपुत्राः ब्राह्मणाः क्षत्रियाः, वैश्याश्च भवन्ति। यथा वैवश्वतो मनुः, पुरवा, भलन्दकः संकीकप्रभृयः। काण्डं मन्त्राणां काण्डमात्रं वेदविभागम् ऋषति पश्यतीति तपसा सः काण्डर्षिः। यथा जैमिनिवेदव्यास प्रभृतयः[16]। परमम् उत्कृष्टं मन्त्रादिकम् ऋषति पश्यति लभते वा स परमर्षिः। यथा भृगुमरीचिपुलहकृतुप्रभृतयः सन्ति। एते एव भृगुभरीचिप्रभृतयो महान्तः ऋषयः महर्षयः कथ्यन्ते।[17] ये च ब्रह्म वेदमन्त्र परब्रह्म वा तपसा ज्ञानेन च ऋषन्ति साक्षात्कुर्वान्ति ते ब्रह्मर्षयः सन्ति। ते च मरीचिभृगुवसिष्ठाङ्गिरः पुलस्त्यप्रभृतयः।[18]

एतुेषु सप्तषु क्रमेषु वाल्मीकिः भृगुवंशीय व्यात् तपसा ज्ञानेन आचारेण चोत्कृष्टत्वात् महर्षिः विद्यते। अयं स्वयमेव आत्मनः परिचयं ददाति रामायणग्रन्थे -

''प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥''[१९]

रामायणे च वाल्मीकेः महर्षिरिति विशेषणमपि तस्य बहुत्र समागतम्।[20]

महर्षिः वाल्मीकिः परमवैदिकः स्वकीये रामायणे वेदसम्मतमेवाखिलं वृत्तान्तं रहस्यादिकं च स्थापितवान्। प्रतिजानाति च सः स्वयमेव रामायणे -

''इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मतम्।
यः पठेत् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥''[२१]

श्री रामवृत्तान्तवर्णनप्रसङ्गे वैदिककर्मकाण्डस्यापि अनेके विषया: समागता:। कर्मकाण्डश च कर्मेति पदेन यज्ञादिकर्मगृह्यते। तस्यैव श्रेष्ठतमत्वात्। तथा च श्रुतय: "यज्ञो वै कर्म[22]", "यज्ञो श्रेष्ठतमं कर्म[23]', "यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म[24]"। कृधातो: "सर्वधातुभ्यो मनिन्[25]" इत्युणादि सूत्रे मनिन् प्रत्यये सति कर्म शब्दो निष्पद्यते। कर्मपदस्य यद्यपि अनेकेऽर्था: तथापि सकलपुरुषार्थ सा कत्वात् श्रेष्ठतमत्वाच्च यज्ञ एव कर्मपदेनात्र गृह्यते।

कमु कान्तौ, कनी दीप्तिकान्ति गतिषु धातोर्वा ञगन्ता ड्ड:"[26] इत्युणादि सूत्रेण ड प्रत्यये सति काण्ड शब्दो निष्पद्यते। काम्यते कन्यते वा कर्म यत्रासौ कर्मकाण्ड:। यया प्रक्रियया वेदविहि कर्म यज्ञादि रूपं दीप्यते प्रकाश्यते स कर्मकाण्ड: कथ्यते।

यज्ञेषु तावत् (1) औपासन होम: (2) वैश्व देवम् (3) पार्वणम् (4) अष्टका (5) मासिश्राद्धम् (6) श्रवणा (7) शूलगव: इत्येवं सप्त पाक यज्ञा:, अत्रैव सर्वे संस्कारा अ स्वीक्रियन्ते श्रौत यज्ञेषु (1) अग्निहोत्रम् (2) दर्शपौर्णमासौ (3) आग्रयणम् (4) चातुर्भास्याति (5) निरूढपशुबन्ध: (6) सौत्रामणी (7) पिण्डपितृयज्ञ: इत्येवं सप्त हविर्यज्ञसंस्था: यज्ञा: कथिता:। (1) अग्निष्टोम: (2) अत्यग्निष्टोम होम: (3) उक्थ्य: (4) षोडशी (5) वाजपेय: (6) अतिरात्र: (7) आप्तोर्याम इति सप्त सोम संस्था: यज्ञा: कथिता: सन्ति। अत्रैव राजसूयाश्वमेधादीनाामपि संग्रह:। इत्येवं सामान्येन एकविंशति: यज्ञा: सन्ति। तत्रापि वेदस्मृत्यादिषु कथिता: विष्णुरुद्रचण्डी गणपतिप्रभृतियज्ञा: अनेकविधा: सन्ति। सप्त सोमसंस्थायज्ञेषु राजसूयाश्वमेधपुरुषमेधसर्वमेघ पितृमेधप्रभृतय:, एकाहयज्ञा: अहीन यज्ञा: सत्रयज्ञाश्चापि स्वीक्रियन्ते।[27]

श्रौतयागानां क्रमस्तावत् गोपथब्राह्मणे इत्थं कथितोऽस्ति-"अथातो यज्ञक्रमा: अग्न्याधेयमग्न्याधेयात् पूर्णाहुति:, पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपूर्णमासौ, दर्शपूर्वणमासाभ्याभाग्रयणमाग्रयणाच्चातुर्मास्यानि, चातुर्मास्येभ्य: पशुबन्ध: पशुबन्धादग्निष्टोमोऽग्निष्टोमाद् राजसूयो, राजसूयादश्वमेधोऽश्व: मेधाद् दक्षिणावन्तो, दक्षिणावद्भ्योऽदक्षिणा, अदक्षिणा: सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमा:"[28]

भगवान् श्रीकृष्णश्च गीतायामपि अन्यमेव यज्ञक्रमं भेदं वा कथितवान् -

"द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा: योगयज्ञास्तथा परे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतय: शंसितव्रता:।।[२९]
एतेषु च मन्ये सर्वेषां यज्ञानां समावेशो भवति।

वाल्मीकि रामायणेश्रौत यज्ञेषु राजसूयाश्वमेधाग्निष्टोमो। क्थ्यातिरात्र ज्योतिष्टोमाभिजिद् विश्वजिदाप्तोर्यामा: यज्ञा: कथिता:। अत्रैव पुत्रेष्टियागस्यापि वृत्तान्तं समागतम्। तत्र च राजसूययज्ञस्य

चर्चैव समागता नतु तस्यान्नुष्ठानं तत्र कृतम्[30]। अश्वमेधस्याङ्गत्वेन अग्निष्टोमोस्क्थ्यज्योतिष्टोमातिरात्राभिजजिद्विश्वजिदाप्तोर्याम यज्ञानां विधानस्य संकीर्तनमात्रं विहितम् न तु तस्य प्रक्रिया काचित् तत्र कथितास्ति।[31] अश्वमेधयज्ञविधानस्य चर्चा च बालकाण्डे[3], उत्तरकाण्डे[4] च समागते विद्यते। मुख्यकथा प्रसंगे बालकाण्डे दशरथेन[34] कृतस्य उत्तरकाण्डे च रामेण कृतस्य अश्वमेधस्य[35] वर्णनमस्ति अवान्तरकथासु च पुरुवरण[36] सगरेण[37] इन्द्रदेण[38] च कृतस्याश्वमेधस्य चर्चा समागता। तत्र दशरथेन विहितेऽद्रश्वमेधयज्ञे तस्ययज्ञस्य सम्पूर्णे विधिर्वर्णितोऽस्ति। श्री रामेण विहितेऽश्व मेधयज्ञे सामान्या प्रक्रिया कथितास्ति। किन्तु सगरेन्द्रपुरुवोभिः विहिताश्व मेधस्य केवलां चर्चैव समागतास्ति।

अश्वमेधयज्ञे तावत या प्रक्रिया कात्यायनादिश्रौत सूत्रेषु समागता। सा प्रक्रिया सामान्येन दशरथकृताश्वमेध यज्ञप्रसगें वर्णितास्ति। तत्र प्रथमं राजा मन्त्रिभिः सहाश्वमेधा यज्ञानुष्ठानाय परामर्शं विधायगुरोः वशिष्ठस्य समक्षं तदर्थं निवेदनं विदधाति। तेषामनुज्ञां प्राप्य यज्ञविधानसामग्रीव्यवस्थायै विधिज्ञसौम्यब्राह्मणवरणविषये च राजा मन्त्रिण आदिशति। स च कथयति यत् यज्ञो विधिहीनो न भवेत्, चण्डाः ब्राह्मणाः यज्ञस्य न्यूनतामेव पश्यन्ति। विधिहीनस्य यज्ञस्यानुष्ठाता सद्यो विनश्यति। अत सर्वं सविधि भवेत् -

''सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञ भूमिर्विधीयताम्।
शान्तयश्चाभिवर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि॥
शक्यः कर्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता।
नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन् क्रतुसत्तमे॥
छिद्रं हि मृगयन्त्येते विद्वान्सो ब्रह्मराक्षसाः।
विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्त्ता विनश्यति॥''[३९]

दशरथेनाश्वमेधयज्ञस्यायोजनं वस्तुतः पुत्रप्राप्तये भवति। कथयति च सः-

''पुत्रार्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम।
तदहं यष्टुमिच्छामि हयमेधेन कर्मणा।''[४०]

वस्तुतोऽस्माकं दुष्कर्मणः प्रभावेण अभीष्टवस्तुसम्प्रात्यभावः प्रभूतकष्ट समुद्भवश्च भवति। अश्वमेधयज्ञेन सर्वेषां पापानां विनाशोऽभीष्ट सम्प्राप्तिश्च भवति -

''तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते''[४१]

''प्रजापति ७ँ सर्त्वङ्करोति योऽश्वमेधेन यजते''[४२]

''अश्वमेधो महायज्ञः पावनः सर्वपाप्मनाम्।
पावनस्तव दुर्घर्षो रोचतां रघुनन्दन॥
श्रूयते हि पुरावृत्तं वासवे सुमहात्मनि।
ब्रह्महत्यावृतः शक्रो हयमेधेन पावितः॥''[४३]

राजा दशरथः सर्वं जानातिस्म। अत एवाश्वमेधस्यानुष्ठानायाश्वस्य चयनं विधाय वसन्ततौ यज्ञं कर्तृकामः गुरुं ब्रह्मर्षिवशिष्ठं सुयज्ञ वामदेवजाबालिकाश्यपसहितं न्यवेदयत्। वसिष्ठश्च ऋषिभिः सहितस्तथा कर्तुं स्वीकृतवान् आदिशति च यज्ञकार्यसम्पत्तये-

''ततोऽब्रवीत् द्विजान् वृद्धान् यज्ञकर्मसु निष्ठितान्।
स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव वृद्धान् परमधार्मिकान्॥
कर्मान्तिकान् शिल्पकारान् वर्धकीन् खनकानपि।
गणकान् शिल्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान्॥
तथा शुचीन् शास्त्रविदः पुरुषान् सुबहुश्रुतान्।
यज्ञकर्म समीहन्तां भवन्तो राजशासनात्॥''[४४]

पुनस्तस्मिन् यज्ञकर्मणि भारतवर्षस्य राज्ञां वैदेशिक राष्ट्राध्यक्षाणां निमन्त्रणं भवति। ऋष्यशृङ्गस्य प्रामुख्ये वसिष्ठप्रभृतयः महर्षयः एतस्याश्वमेधास्यानुष्ठाने संलग्नाः आसन्। ते सर्वे महर्षि अश्वविभोचनान्तरं वर्षपर्यन्तं यज्ञीय-प्रक्रियां पालयन्तः अश्वप्राप्तौ सत्यां यथाविधि यज्ञक्रिया महर्षिया ऋष्यशृङ्गेण सर्वौः ऋत्विग्भिः सह सम्पादिता। यस्य विवरणमित्थमस्ति -

''प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः।
चक्रुश्च विधिवत् सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः॥
अभिपूज्य तदा हृष्टाः सर्वे चक्रुर्यथाविधि।

प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुंगवाः।।

ऐन्द्रश्च विधिवद् दत्तो राजा चाभिषुतोऽनघः।

माध्यन्दिनं च सवनं प्रावर्तत यथाक्रमम्।।

तृतीयसवनं चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः।

चक्रुस्ते शास्त्रतो दृष्ट्वा यथा ब्राह्मणपुङ्गवाः।।''

इत्थमेव सर्वा प्रक्रिया यज्ञस्य वर्णितास्ति। यत्र प्रभूतं दानं, बैल्व खादिरपर्णिशलेष्मातकदेवदारू यूपानामेकविंशतिसंख्याकानां स्थापनमग्निचितेः गरुड म्याः स्थापनं यूपेषु पशूनां बन्धनम्, 337 पशवस्तत्र बद्धाः भवन्ति। कौशल्या च तस्य मृताश्वमेर्धस्य समीपे रजनीमेकां शेते। पुनः अश्वस्य वपया अंङ्गेन च होमादिविधानं भवति। अश्वमेधस्य अनन्तरं तदंगभूतानां चतुष्टोमः, उक्थ्यम्, अतिरात्रम्, ज्योतिष्टोमः, आयुष्टोमः, पुनश्चातिरात्रम्, अभिजिद्, विश्वजिद् आप्तोर्यामः एते यज्ञाः दशरथेन तदा सम्पादिताः भवन्ति।[45]

यज्ञानुष्ठानानन्तरं राजा दशरथः होत्रे प्राचीं अध्वर्यवे प्रतीचीं, ब्रह्मणे दक्षिणां, उद्गात्रे च उदीचीं दिशां स्व राष्ट्रस्य ददौ।[46] ऋत्विजो ब्राह्मणाश्च तां दक्षिणां विलोक्य निवेदितवन्तः-

''भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति।

न भूम्या कार्यभस्माकं नहि शक्ताः स्म पालने।।

रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप।

निष्क्रियं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति।।

मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम्।

तत् प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम्।।[४७]

एवं श्रुत्वा राजा तेभ्यः तन्निष्क्रय द्रव्यत्वेन दश लक्षगावः दश कोटि स्वर्णमुद्राश्च तच्चतुर्गुणितरजतमुद्राः दक्षिणात्वेन ब्राह्मणेभ्यः दत्तवान् तेन च ते परम सन्तुष्टा आसन्। ते ऋत्विजः ऋष्यशृङ्गाय वसिष्ठाय च सर्वं निवेदितवन्तः महर्षि वसिष्ठश्च यथोचितं दक्षिणां विभज्य सर्वेभ्यः दत्तवान्।[४८]

तदनन्तरं राजा सर्वान् प्रणम्य आशीर्वादं गृह्णाति स्म। इत्थं सर्वा प्रक्रिया अश्वमेधस्यात्र कथितास्ति। श्रीरामकृताश्वमेधस्य यज्ञस्य वर्णनं सामान्येनैव विहितम्। तत्र ऋषीणां वरणस्य सम्मानस्य ज्ञातिब्राह्मण भोजनस्य पूजिताश्वप्रेषणस्य चर्चा समागता। सर्वेभ्यो दानं तु एवमभूत् यत् यश्च यत् किमपि याचते स्म तस्मै तद् वस्तु प्रभूतं दीयतेस्म[49]

"छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः।

तावत् सर्वाणि दन्तानि क्रतुमध्ये महात्मनः।।[५०]

इत्थंमुख्य कथायां दशरथकृत रामकृताश्वमेधस्य वर्णनं वर्तते। अवान्तरकथासु सगरेन्द्र पुरुरवस्कृताश्वमेधस्य च वर्णनमस्ति।

अश्वमेधयज्ञस्यानुष्ठाता चक्रवर्ती सम्राट् क्षत्रियो राजा एव भवितुमर्हति। एतस्य चायोजनं फाल्गुनशुक्लपक्षाष्टम्यां नवभ्यां वा ग्रीष्मर्तौ जयेष्ठमासस्य अषाढमासस्य वा शुक्लपक्षस्य अष्टम्यां नवभ्यां वा तिथौ भवति।

अश्वमेधयज्ञस्य कृते योऽश्वो गृह्यते स चग्रे पूर्वभागे कृष्णवर्णोऽपरभागे शुक्लः ललाटे च शकटाकारत्रिपुण्डयुक्तोऽद्वितीयो गोसहस्रमूल्यलभ्यो नीलवर्णलाञ्छनयुक्तो भवेत्। पूर्वं तडागनद्यादिजलाशये तस्य स्नपनं विधीयते। पश्चात् शुद्रात् वैश्यजातिस्त्रियामुत्पन्नेन पुरुषेण चतुरक्षं श्वानं (द्वयोः नेत्रयोरुपरि नेत्रतुल्यचिह्न युक्तःश्वा चतुरक्षः कथ्यते) सिध्रक (सीध) वृक्षनिर्मितमुसलेन मारयित्वा वेतसकटे च स्थापयित्वा अश्वस्य अधस्तात् जलमध्ये प्लावयेत्। पश्चात् होमकर्म विधाय द्वादशकपालाः पुरोडाशाः क्रियन्ते। ततः तिस्त्रः स्रविस्रः इष्टयः भवन्ति।

यज्ञमानः अध्वर्युश्च शतैः वृद्धैः (प्रौढैः) अश्वैः सह याज्ञिकमश्वमीशनदिशं प्रति उत्सृजतः। भ्रमणार्थं प्रस्थितस्य अश्वस्य पृष्ठतः चतुःशतसंख्याकान् धनुष्धारिणो वीरसैनिकान् युद्धार्थं प्रेषयेत्। तत्र शतं राजपुत्राः शतं क्षत्रियजाति सैनिकाः, शतं सूतपुत्राः, शतञ्च क्षतृजाति (क्षत्रियायां शूद्रपुरुष संयोगेन संजातः पुरुषः क्षता कथ्यते) पुरुषाः भवन्ति।

वर्षानन्तरमेव सः अश्वः सर्वत्र भ्रमणं कृत्वा यदा आगच्छति तदा अन्याः याग सम्बन्धिन्याः क्रियाः विधीयन्ते।[51]

अश्वमेधस्य पश्चात् राजा दशरथः ऋष्यशृङ्गस्याचार्यत्वे पुत्रेष्टियागस्य विधानं विहितवान्। यस्य प्रक्रिया चाथर्ववेदानुसरिणी विद्यते। कथयति च ऋण्यशृङ्गः-

''इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः।।''[५२]

एतस्य यज्ञस्य कश्चिद् विधिर्न तत्र दर्शितोऽस्ति। ह्यर्षिः विश्वामित्रः सर्वदैव यज्ञकार्ये रत आसीत्। किन्तु राक्षसाः तस्य यज्ञस्य विध्वंसनं कुर्वन्तिस्म। तस्य रक्षणार्थं दशरथं रामलक्ष्मणौ याचित्वा यज्ञं विदधाति। किन्तु विश्वामित्रेण विहितस्य यज्ञस्य किं नाम एतस्य चर्चा न काचित् समागता। एतस्योल्लेखस्तु अवश्यमेवास्ति यत् सः यज्ञः षड्रात्रं यावत् प्राचलत्-

''अद्य प्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राधवौ युवाम्।
दीक्षां गतो ह्येष मुनिर्मौनित्वं च गमिष्यति।।''[५३]

श्रोतयागेषु वाजपेययज्ञः षड्रात्रं यावत् प्रचलति वाजपेय यज्ञविधानस्य अधिकारी ब्राह्मणो क्षत्रियश्च भवति। अतोः विश्वामित्रः इष्टाराधनाय वाजपेय यज्ञं वा विहितवान्, वाजपेययज्ञो हि प्रत्येकं मासेषु शुक्लपक्षेषु पृष्ठ्यषह सम्बन्धीनि अहानि क्रमात् रथन्तरबृहत्वैरूपवैराजशाक्वररैवताख्य सामषट्कसाध्यानि स्तोत्राणि सामवेदस्य एकैकस्मिन् दिवसे क्रियन्ते ऋत्विग्भिः। एतस्य विधानं शरद्ऋतौ प्रतिमासं शुक्लपक्षे वा क्रियते।[54]

श्रौतयागेषु तावत् षोडश ऋत्विजो भवन्ति। अध्वर्युः, प्रतिस्थाता, नेष्टा, उन्नेता इति चत्वारो ऽध्वर्युगणाः यजुर्वेदिनः, ब्रह्मा, ब्राह्मणच्छसी, आग्नीध्रः, पोता इति चत्वारः ब्रह्मगणाः, अथर्ववेदिनः, होता, मैत्रावरुणः, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत् इति चत्वारः होतृगणाः ऋग्वेदिनः, उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, सुब्रह्मण्यः इति चत्वारः उद्गातृगणाः सामवेदिनः भवन्ति।

विष्णुप्रीतये वैष्णवयज्ञस्योल्लेखः उत्तरकाण्डे हि रावणवंशवर्णनसमये यदा इन्द्रो मेघनादेन पराजितस्तदा ब्रह्मा इन्द्रं सान्त्वयन् तत्कर्तृकपापकर्मजन्यदोषनिवृत्तये मे वैष्णवयज्ञानुष्ठानाय कथयति। इन्द्रश्च तं यज्ञमनुतिष्ठति-

''नीतः सन्निहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ।
एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्तु यज्ञमिष्ट्वा च वैष्णवम्।।''[५५]

बाल्मीकि रामायणे शत्रुविनाशाय पराक्रमप्राप्तये चाभिचारात्मकदेवीयज्ञस्यापि वर्जनं वर्तते। मेघनादः श्रीरामप्रभृतिशत्रून् दमयितुं निकुम्भिला यज्ञस्यानुष्ठानं विदधाति-

''स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम्।

निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित्॥

यज्ञभूम्यां ततो गत्वा पावकस्तेन रक्षसा।

हूयमानः प्रजज्वाल होमशोणितभुक् तदा॥

सर्चिः पिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः।

सन्ध्यागत इवादित्यः सुतीव्रोऽग्निः समुत्थितः॥''[५६]

एवम्भूताः अभिचारात्मकयज्ञाः अथर्ववेदीय परम्परायां कथिताः सन्ति। तन्त्रेषु चिन्तनमेषामधिकं विद्यते। अतः एतेषां विध्वंसनमपि पुण्यकरं भवति। अत एव लक्ष्मणो हनुमदादिवानर प्रमुखैः सह इमं यज्ञं विध्वंस्य मेघनादस्य बधं विदधाति।[57]

वाल्मीकि रामायणे यज्ञविशेषचर्चायां वास्तुशान्ति यज्ञस्यापि चर्चा समागता।[58] यदा रामश्चित्रकूटे लब्ध्वीं कुटीं विदधाति तदा तत्र वास्तु शान्तिं विधायैव स्वनिवासं विदधाति।

''इष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः।

बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः॥

वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च।

वास्तु संशमनीयानि मंगलानि प्रवर्तयन्॥

जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां च यथाविधि।

पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम्॥

वेदिस्थलमविधानानि चैत्यान्यायतनानि च।

आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः॥''[५९]

वाल्मीकि रामायणे राज्याभिषेकस्य चर्चा बहुधा समागता। कर्मकाण्डदृष्ट्या राज्ये एतस्यातीव-महत्त्वं वर्तते। राज्याभिषेकस्य चर्चा सुग्रीवविभीषणश्रीरामरावणकुशलवविषये समागतास्ति। राज्याभिषेक समये पूर्वं योग्य राजपुत्रस्य कृते परमाचार्यैः राज्य सम्बन्धिनां राजनीतिसम्बन्धिनां हितोपदेशनं भवति। अभिषेकात् पूर्व-दिने उपवासविधानं भवति। अभिषेक सामग्रीषु सर्वेषां समुद्राणां पुण्य सलिलानां

नदानां नदीनां तीर्थानां च जलानि आनीयन्ते। सर्वा औषधयः सर्वाणि रत्नानि च तत्र स्थाप्यन्ते। आचार्याः पुरोहिताः महिषीसहितं भविष्णुं नृपं रत्नजटित सिंहासने चोपवेश्य तैः पुण्यजलैः वेदमन्त्रैः अभिषेकं कारयन्ति। पूर्वं परमाचार्याः ऋत्विजः कनकघटैः रत्नजटितैः तं नृपम् अभिषेचयन्ति,ततः शतसंख्याकाः कन्यकाः, भ्रातरः मन्त्रिणः मित्रवर्गाश्च अभिषेचयन्ति। अभिषेकानन्तरं हवनादि कर्म विधानम् आचार्येभ्यो दक्षिणादानं ज्ञातिभ्यो मित्रेभ्यः अन्येभ्यश्चोपहारसमर्पणादिकार्यं क्रियते। एषः सम्पूर्णः क्रमः श्री रामाभिषेके वर्णितः। श्रीरामकृते हितोपदेशोपवासयोः वर्णनमयोध्याकाण्डे राज्याभिषेको पक्रमे आसीत्।[60] अन्यत् सर्वं युद्धकाण्डे वर्णितम्।[61] सुग्रीवस्याभिषेक सम्बन्धिकार्यम्[62] श्रीरामस्याज्ञया हनुमत् प्रमुखाः अमात्याः विधिवत् विहितवन्तः। तत्रापि सुग्रीवस्याभिषेकप्रक्रिया सम्पादनायाचार्या कन्यकाः अन्ये मन्त्रिवर्गादयः सर्वे आमन्त्रिताः आसन्। सर्वं कर्म शास्त्रानुसारेण विहतभासीत।[63]

विभीषणस्य राज्याभिषेकक्रिया श्रीरामेणादिष्टो लक्ष्मणः स्वयमेव सुग्रीवप्रभृतिभिः सह सम्पादयति। राज्याभिषेकविधेः पूर्णा चर्चा तत्र न समागता। प्रथममभिषेकार्य लक्ष्मणेनैव विहितम्-

घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषण।
लंकायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात्।।[६४]

रावण वंश जन्मादि वर्णन समये रावणस्य राज्याभिषेक वर्णनं समागतम्। लंकायां यस्याभिषेक कार्यं राक्षसैः विहितम्-

‘‘स चाभिषिक्तः क्षणदाचरैस्तदा निवेशयामास पुरीं दशाननः।
निकामपूर्णा च बभूव सा पुरी निशाचरैर्नीलकबलाहकोपमैः।।’’[६५]

तथैव लवकुशयोर्विषयेऽपि राज्याभिषेकवर्णनमुपलभ्यते -

‘‘कौशलेषु कुशं वीरमुत्तरेषु तथा लवम्।
अभिषिच्य महात्मानावुभौ रामः कुशीलवौ।।’’[६६]

वैदिक कर्मकाण्डे संस्काराणामतीव महत्त्वं वर्त्तते। सर्वेषु गृह्यसूत्रेषु संस्काराणां वैदिक दिनचर्या श्च वर्णनं भवति। वाल्मीकिरामायणेऽपि संस्काराणां वर्णनं वर्त्तते।

सर्वे संस्काराः वलिवैश्वदेवनित्यहोमादिनित्यकर्मादयश्च पाकयज्ञेन गृह्यन्ते। पच्यते श्रप्यते ओदनादिकमस्मिन्निति पाको गृह्यग्निः, पाके यज्ञाः इति पाकयज्ञाः। ते च चत्वारः हुतोऽहुतः प्रहुतः

प्राशितश्च। तत्र हुत: होममात्रं यथा सायं प्रातर्होमादि यज्ञ:। अहुत: होमबलिरहितं कर्म यथा प्रस्तरारोहणम्। प्रहुत: यत्र होमादिक्रिया बलिप्रदानादिकं च सर्वं क्रियते यथा ग्रहयज्ञा: होमबलिसहिता: विष्णुरुद्रप्रभृति यज्ञा: विवाहादि संस्काराश्च। प्राशित: यत्र प्राशन मात्रं न होमो न बलि:, यथा सर्वांस् गवां पयासि पायसश्रपणानन्तरं ब्राह्मण भोजनादिकं भवति। इत्थं चतुर्विधा: पाकयज्ञा: कथ्यन्ते। अत्र सर्वेषां संस्काराणां समावेश इति सर्वं पारस्करगृह्य सूत्रे प्रतिपादितम्।[67]

वाल्मीकि रामायणे षोडश संस्कारेषु नामकरणोपवीतवेदारम्भविद्यारम्भादि संस्काराणां केवलं संकेत एवोपलभ्यते।[68] विवाहसंस्कारस्य च विधिवत् चर्चा सभागतास्ति।[69] अन्त्येष्टि संस्कारस्यापि वर्णनं दशरथस्य[70] जटायो:[71] कबन्धस्य[72] वाले:[73] रावणस्य[74] संजातम्। तत्र विधिवदन्त्येष्टि संस्कार विधानवर्णनं दशरथस्यैव वर्तते। अन्येषामपि प्रसंगानुसारेण वर्णनं विद्यते।

अवान्तरकथासु विश्वामित्र पौरोहित्ये त्रिशंकुकृत सशरीरस्वगमन कारक यज्ञस्यापि वर्णनं प्राप्यते। किन्तु तस्य यज्ञस्य का संज्ञेति निर्देशो नास्ति''

इत्थं वाल्मीकि रामायणे अनेकेषां श्रौतयज्ञानां स्मृतियज्ञानां वास्तुशान्ति राज्याभिषेकादि: संस्काराणां च वर्णनं समागतम्। विश्वामित्र विहित यज्ञस्य त्रिशंकुना विहित यज्ञस्य चर्चा तु समागता किन्तु तयो: यज्ञयो: संज्ञा न कथिता। अनेकेषां सन्ध्योपासन तर्पणादि नित्यकर्मणामपि यथाप्रसंग वर्णनं समागतम्।

वाल्मीकिरामायणे यत्किमपि वर्णनं तत् सर्वं शास्त्रानुसारं वेदानुमोदितं च विद्यते। ग्रन्थोऽयं वैदिक सनातनधर्म पद्धते: प्रयोगिकमुदारहणं विद्यते। अतएव एतस्याध्ययने श्रवणे पाठे च सर्वत्रपुण्योपलब्धि : कथितास्ति।-

''य: पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।
भक्त्या निष्कल्मषो भूत्वा दीर्धमायुरवाप्नुयात्।।''

उ.का.(1)."

1- सह यज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति:। गीता 4/1

2- श.प.ब्रा. 3.1.4.15

3- श.प.ब्रा. 5.3.2.4

4- श.प.ब्रा. 5.2.3.6

5- ऐ.ब्रा.1.15

6- तै.ब्रा. 3.3.7.6

7- श.प.ब्रा. 11.5.8.3

8- य.वे. 31/7

9- गो.ब्रा. पूर्व भागे 2/10

10- श.प.ब्रा. 6.1.1.1
12- मत्स्य पु0 145/8
14- मत्स्य पु. 145/100
16- श.क.द्रु पृ. 288
18- म.पु. 145/80/91
20- वा.रा. 1.2.40, 2.5.6.17,
22- श.प.ब्रा. 1.7.2.12
24. तै.ब्रा. 3.2.1.4
26. उ.सू.प्र.पा. 11
28- गो. ब्रा. पू. भा. 5.7.
30- वा.रा. 83/5-19
32- वा.रा. 1.12.14
34- वा.रा. 1.12-14
36- वा.रा. 7/90
38- वा.रा. 7.86
40- वा.रा. 1/12/9
42- ता.ब्रा. 21.4.2
44- वा.रा. 1.13.6-8
46- वा.रा. 1.14.43-45
48- वा.रा 1.14.50-55
50- वा.रा. 7.92.11
52- वा.रा. 1.15.2
54- का.श्रौ.सू. भूमिका पृ0 58
56- वा.रा. 6.82.25-27
58- वा.रा. 2.56
60- वा.रा. 6.128.48-86
62- वा.रा.
64- वा.रा. 6.12.15
66- वा.रा. 7.107.17
68- वा.रा. 1.8.21-28
70- वा.रा. 2.76-77
72- वा.रा. 3.72.1-4
74- का.रा. 6.111.103-121

11- निरुक्त 2/3 पृ0 85
13- श.क.द्रु.पृ0 288
15- मत्स्य पु0 145/115-118
17- म.पु. 145/95
19- वा.रा.7.96.19-20
21- वा.रा. 1.1.98
23- तै.ब्रा. 1.7.1.5
25. उ.सू.च.पा.सू.सं. 584
27- कात्यायन श्रौत सूत्र भूमिका
29- गीता 4/28
31- वा.रा. 1.12-14
33- वा.रा. 7.11.93
35- वा.रा. 7.91-93
37- वा.रा. 1.3.8-41
39- वा.रा. 1.12.16-18
41- श.प.ब्रा. 13.3.1.1
43- वा.रा. 7/84/2-3
45- वा.रा. 1.14.1-42
47- वा.रा. 1.14.47-49
49- वा.रा. 7.91.92
51- कौत्यान श्रौत्सूत्रे अश्वमेध यज्ञप्रकरणे।
53- वा.रा. 1.30.4
55- वा.रा. 7.30.49
57- वा.रा. 6.84-90
59- वा.रा. 2.56.30-33
61- वा.रा. 2.3-6, 6-128
63- वा.रा. 4.26.23-39
65- वा.रा. 7.11.51
67- पा.गृ.शू. चतुर्थ कण्डिका
69- वा.रा. 1.72-74
71- वा.रा. 3.68.27-38
73- वा.रा. 4.25.27-54
75- वा.रा. 1.60

वाल्मीकिरामायणे प्रकृतिचित्रणम्

डॉ० [illegible]

संस्कृताध्यापिका,
रा०वरि०मा०विद्यालय,उगराखेड़ी
पानीपत–हरियाणा

आदिकविर्वाल्मीकिमहामुनिविरचितं रामायणमहाकाव्यमेकमुत्कृष्टमार्षकाव्यमस्ति। लौकिकसंस्कृतसाहित्ये महाकाव्यमिदमादिकाव्यरूपेणास्माभिर्दृश्यते। यतोहि आदिकाव्यं तु तदेव भवितुमर्हति यस्योद्भवकालस्य गणना कर्तुं शक्यते। अत एव सकलवैदिकवाङ्मयमादिकाव्यमकथयित्वा तदुत्तरवर्त्तीमहाकाव्यं रामायणमेवादिकाव्यरूपेण स्वीक्रियते विद्वद्भिः। अतः रामायणनाममहाकाव्यं भारतीयसंस्कृतसाहित्यस्य प्रथमा सृष्टिरस्ति यस्य कृते प्रयुक्त आदिकाव्यशब्दः सर्वथा सार्थको विद्यते। महाकविना क्षेमेन्द्रेणापि वाल्मीकिमुनिरेव मुनीनां मध्ये आदिकविरूपेण स्वीकृतो यथा–वर्णेषु ओंकारस्यापि सर्वप्रथमं स्थानं भवति। यथा –

स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः।।[१]

इममेवादिकविं ब्रह्मापि वाल्मीकिः 'आद्यः कविरसि'[२] इति कथयित्वा सम्बोधितवान् लोके चात्रेदानीमपीयमेव परम्परा बद्धमूला दृश्यते। आनन्दवर्धनाचार्येण स्वकीये ग्रन्थे ध्वन्यालोके स्वीकृतं यदयं महाकविर्वाल्मीकिरेवास्ति यस्य 'क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः'[३] रामायणरचनायां बीजरूपेण च परिणतो बभूव। पश्यतु तावत्–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।[४]

प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते। अतः वाल्मीकिः महाकविरपि स्वादिकाव्यरामायणमाध्यमेन सकलजनान् प्रेरयति दर्शयति चास्मिन् महाकाव्ये नानाछन्दालंकारगुणयुक्तां प्रकतेः सजीवचित्रणम्। यद्यपि प्रकृतेरत्यन्तं मनोहरं वर्णनं वैदिक साहित्येऽपि द्रष्टुं शक्यते तथापि आदिकविना वाल्मीकिना कृतं प्रकृतिवर्णनं रामायणमहाकाव्ये अद्भुतमस्ति। महाकाव्येऽस्मिन् प्रकृतेर्विविध क्षेत्रेषु विलषितसौन्दर्यस्य मुक्तरूपेण दर्शनं क्रियते विवेचकैः। रामायणरचनाप्रेरणायां मूलतः प्रकृतेरेकं रमणीयदृश्यस्य करुणावसानमेव त्वस्ति। कस्मिन्नपि महाकाव्ये प्रकृतेश्चित्रणस्योदेश्यद्वयमस्ति–वर्णनस्य पृष्ठाधारप्रस्तुतिः पाठकानां मनोमोहनञ्च। वाल्मीकिश्च महाकाव्येऽस्मिन् प्रकृतेश्चित्रणमाध्यमेनास्यैवोदेश्यस्य पूर्तिः कृतवान्।

यत्रायमादिकविः महान् कविरासीत् तत्रायमस्माभिः साक्षात्कृतधर्मामहर्षिरप्यनुमीयते। अस्य महाकाव्यस्य रचना तमसानद्यास्तटे, चित्रकूटपर्वतशिखरछायायां, सरसरिद्वनपर्वतान्विताश्रमे ऋतुभिरलंकृते विहगकलकूजितप्रकृतेर्मुक्तप्राङ्गणेऽभवत्। तदानीं यावद् वेद–ऋचागुञ्जनं स्पष्टस्वरेषु अवशिष्टमासीत्। प्रकृतिं प्रति तत्र भयविस्मयविनयप्रीतेश्च संस्काराणि सजीवितानि आसन्। प्रकृतिर्वरदात्री आसीत् मानवजीवनस्य कृते च सहयोगिनी अनुमीयते स्म। अतोऽस्मिन् महाकाव्ये यत्रायमादिकविः प्रकतेर्भव्यदृश्यं प्रस्तुतवान् स तत्र प्रकृति जीवने प्रगाढ़मवतीर्य सम्पूर्णमानवजीवनस्य सकलक्रियाकलापानां हासरोदनयोः, आशानिराशयोः, उल्लासविषादयोश्च दर्शनपि कृतवान्। सः प्रकृतिं मानवञ्ज सहोदररूपेणावलोकितवान्। एकत्र मानवः प्राकृतिकविभूतीनां दर्शनेन सोल्लासं नृत्यन् दृष्टिपथमवगच्छति अन्यत्र च मानवीयविपत्सु प्रकृतिरश्रूणि प्रवाहयन्ती आवलोक्यतेऽस्माभिः।

महाकाव्येऽस्मिन् एकतः रामसीतालक्ष्मणवनवासकाले मन्दाकिनी, चित्रकूटादयश्च आनन्दोल्लासस्य स्रोतांसि प्रवाहयन्ति सर्वे च ते अत्र अयोध्यातोऽपि अधिकं सुखिनोऽवलोक्यन्ते। परतश्च सीताहरणसमये अखिलाप्रकृतिर्विशेषतः पंचवटी वेत्रवती इत्यादयः असहाय्येनाश्रूणि मुञ्चन्ति। आदिकविर्वाल्मीकिः यादृशं प्रकृतिचित्रणमस्मिन् महाकाव्ये कृतवान् न तादृशमन्यत्र द्रष्टुं शक्यते लोकेऽत्र।

कविनाऽत्र प्राकृतिकदृश्यविधानमत्यन्तरमणीयरूपेण कृतम्।

वाल्मीकिर्न केवलं बाह्यप्रकृतेः विशद्‌चित्रणे असाधारणपटुरस्ति अपितु अन्तः प्रकृतिनिरूपणेऽपि सिद्धहस्तोदृश्यते। प्रकृतेर्विविधरूपव्यापारैस्सह आदिकवेः परिपूर्णं रागात्मकं सामाञ्जस्यमवलोक्यते। वाल्मीकेर्मनः प्रकृतिं प्रति अत्यन्तं संवेदात्मकमस्ति। प्रकृतेरतीव सुन्दरं रमणीयञ्च चित्रणमनेन सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपव्यापाराणां विशद्‌विवेचनेन सहांकितं कृतम्। प्रत्यक्षनिरीक्षणेन तेषां वर्णनेषु पूर्णरूपेण सजीवता विद्यते। महाकाव्येऽस्मिन्नादिकविः प्रकृतिचित्रणदृष्ट्या चित्रकूटमन्दाकिनी, पम्पासरोवरादीनां वसन्तवर्षाशरद्हेमन्तादीनां ऋतूनां नयनाभिरामसुषमायाः चित्रणं समुचितरूपेण निरूपितवान्। अत्र सर्वप्रथमं चित्रकूटवर्णने प्रकृतेदर्शनमित्थं क्रियते।

चित्रकूट–

चित्रकूटनामकस्थले एकत्र स्थित्वा रामः सीतां चित्रकूटस्य शोभां दर्शयन् कथयति यदत्र पर्वते कीदृशानि रमणीयजलप्रपातानि पतन्ति भूमध्ये च स्रोतांसि प्रवहन्ति। पर्वतोऽयं मदान्वितगजराज इव शोभते। तद्यथा –

जलप्रपातैरुद्भेदैर्निष्पन्दैश्च क्वचित्।
स्रवद्भिर्भात्ययं शैलः स्रवन्मद इव द्विपः।।[5]

चित्रकूटपर्वतोऽयं विविधफलपुष्पान्वितो नानाविहंगसेवितश्चावलोक्यते। विचित्रशिखरयुक्तोऽय पर्व रामस्य मनो हरति च। यथा –

बहुपुष्पफले रम्ये नानाद्विजगणायुते।
विचित्रशिखरे ह्यस्मिन् रतवानस्मि भामिनि।।[६]

मन्दाकिनी –

अस्ति महाकाव्येऽस्मिन् प्रकृतेश्चित्रणे मन्दाकिनी अपि अतिसहयोगिनी। सा हंस सारससेवितातीव मनोहरा प्रतीयते। विविधतटयुताऽस्याः शोभा नानापुष्पवर्धिनी अवलोक्यते। पश्यतु च –

विचित्रपुलिनां रम्यां हंससारससेविताम्।
कुसुमैरुपसम्पन्नां पश्य मन्दाकिनीं नदीम्।।[७]

चक्रवाकपक्षिणोऽपि तत्र मधुरकलरवं कुर्वन्तस्सरित्तटेषु शोभन्ते। यथा –

पश्यैतद्वल्गुवचसो रथांगाह्वयना द्विजाः।
अधिरोहन्ति कल्याणि निष्कूजन्तः शुभा गिरः।।[८]

पम्पासरोवरः–

वाल्मीकिरामायणे पम्पासरसः शोभा अति प्रशंसनीयास्ति। वैदूर्यमणिवत् निर्मलजलमस्ति तत्र विकसन्ति च नानाकमलानि। तटवर्तिनां विविधवृक्षाणां शोभापि तत्रातीव मनोहरा दृश्यते। यथा–

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः।।[९]

नानाकमलाच्छादिता पुष्करिणी अति रमणीया प्रतीयते तत्र मृगादिपशुपक्षिणश्च तां परितः परिभ्रमन्ति। पश्यैतत्।

नलिनैरपि संच्छन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना।
सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला।।[१०]

अतः महर्षिः वाल्मीकिः स्वकीयमादिकाव्यमनेन प्रकारेण नानानगनदीनां वर्णनेन चित्ताह्लादकं कृत्वा प्रकतेश्चित्रणं कृतवान्।

कस्यामपि रचनायां ऋतूनां वर्णनं प्रकृति चित्रणे अतीव महत्त्वपूर्ण प्रतीयते। अतः वाल्मीकिनापि स्वकीये महाकाव्ये ऋतूनां वर्णनं कृत्वा ग्रन्थोऽयं सुशोभितः। ग्रन्थेऽस्मिन् वाल्मीकिना बसन्त–वर्षा–शरद् हेमन्तादीनां ऋतूनां वर्णनं अतिमनोहरं कृतम्। तद्यथा–

बसन्त ऋतु –

कविरत्र तन्मयोभूत्वा वसन्तर्तोः वर्णनं कृतवान्। एकदा पम्पातटे रामः लक्ष्मणेन सह गच्छति परितश्च पुष्पान्वितपर्वतशिखराणि सन्ति यानि समन्ततः पुष्पलता युतानि शोभन्ते। अपि च

पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः।

लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः।।[११]

पुष्पाणां शोभा तु तत्र रमणीया वर्तते। तां दृष्ट्वा सर्वे जनाः आकर्षणमनुभवन्ति। अपि च वृक्षाः मेघजलवत् पुष्पाणीव वर्षन्ति। यथा--

पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम्।

सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव।।[१२]

पतितपतमानपादपस्थपुष्पाणां शोभा तत्र अतीव रमणीयास्ति। तां दृष्ट्वा सर्वे सुखान्विताः दृश्यन्ते।

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारूतः।

कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः।।[१३]

वर्षा ऋतु--

रामायणे महर्षिवाल्मीकिना प्रकृतिचित्रणमाध्यमेन वर्षर्तोः वर्णनमति मनोहरं कृतम् दर्शितम्। वर्षायां निद्रा मन्दमन्द भगवतः विष्णोः समीपमागच्छति तीव्रगत्या नदी च स्वपतिं समुद्रं प्रति प्रवहति। वलाकाः प्रसन्नतया मेघं प्रति गच्छन्ति। कामासक्ताः कामिन्यश्च स्वप्रियतमानां समीपं गच्छन्ति। यथा--

निद्रा शनैः केशवमभ्युपैति,

द्रुतं नदी सागरमभ्युपैति।

हृष्टा बलाका घनमभ्युपैति।

कान्ता सकामा प्रियतममभ्युपैति।।[१४]

सर्वतो पतन्ती जलधारा तत्र रतिक्रीडाकाले अंगानां मर्दनेन परिभ्रष्टाः देवाङ्गानानां मुक्ताहारा इव प्रतीयते। पश्यतु तावत्–

सुरतामर्दविच्छिन्नाः स्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः।
पतन्ति चातुला दिक्षु तोयधाराः समन्ततः।।[१५]

शरद् ऋतु–

महाकाव्येऽस्मिन् शरद् ऋतोः शोभा अति मनो मोहिनी प्रतीयते। सर्वत्र सुन्दरतायाः साम्राज्यमवलोक्यते तदा तदानीं शरद् यामिनी कोमलांगी नारीव शोभते उदयमानश्चन्द्रस्तस्याः सोम्यं मुखं भवति। सकल तारागणाञ्च तस्याः सुलोचनानि प्रतीयन्ते। यथा–

रात्रिः शशाङ्कोदित सौम्यवक्त्रा,
तारागणोन्मीलित चारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति,
नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी।।[१६]

एवमेव कालेऽस्मिन् युवतयो यथा प्रथम समागमसमये लज्जाभावयुक्ताश्शनैश्शनैः स्वजघनस्थलानि दर्शयन्ति तथैव सरितः मन्दं मन्दं जलाधोगमनेन स्वनग्नतटानि प्रकटयन्ति। तद्यथा–

दर्शयन्ति शरन्नद्यः पुलिनानि शनैः शनैः।
नवसंगमव्रीडा जघनानीव योषितः।।[१७]

हेमन्त ऋतु–

वाल्मीकेः हेमन्तर्तुवर्णनं किष्किन्धायाः वर्षा वसन्त शरदादीनां ऋतूनां वर्णनतः पृथगस्ति। हेमन्त वर्णने सीतारामलक्ष्मणानां वनजीवनं प्रत्यक्षरूपेणानुभूयते। अपि च

मृदुसूर्याः सुनीहाराः पटुशीताः समारुताः।
शून्यारण्या हिमध्वस्ता दिवसा भान्ति साम्प्रतम्।।[१८]

अत एव कथयितुं शक्यते यत् वाल्मीकिना महाकाव्ये प्रकृतिमवलम्ब्य विविधानि रमणीयानि सजीवानि चित्रांकितानि कृतानि प्रकृतेश्चापि सजीवं चित्रणं कृतं यं दृष्ट्वा सर्वेषां मनो हर्षितो जातम्।

सन्दर्भ सूची

१– क्षेमेन्द्र : रामायणमंजरी
२– उ०रा०च०, अं २ वाक्य सं० २४ संस्करण कपिलदेव द्विवेदी, १९६८
३– ध्व० : १/१५
४– वा०रा०, बा०का० २/१५
५– वा०रा०, अयो०का० ९४/१३
६– तत्रैव, ९४/१६
७– वा०रा०, अयो०का० ९५/३
८– तत्रैव, ९५/११
९– तत्रैव, कि०का० १/३
१०– तत्रैव, १/७
११– तत्रैव, १/१
१२– तत्रैव, १/११
१३– तत्रैव, २८/२४
१४– तत्रैव, २८/५१
१५– तत्रैव, ३०/४६
१६– तत्रैव, ३०/५८
१७– तत्रैव, अर०का० १६/११

वाल्मीकि रामायण में वर्णित औषधि और वनस्पतियाँ

डा. नन्दिता सिं
व्याख्याता, संस्
राजकीय स्नातकोत्तर डूँगर महाविद्याल
बीकानेर (राज)

वाल्मीकि रामायण के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारत वैदिक काल तुल संभवत: उससे अधिक औषधि और वनस्पतियों की दृष्टि से सुसम्पन्न था। राम के वनगमन प्रसंग में हमें भारत के प्राय: सभी वानस्पतिक क्षेत्रों का ज्ञान होता है। भारत का वानस्पतिक भी समुन्नत था, इसका दिग्दर्शन राम के वनवासगमन के समय सीता द्वारा राम से वनस्पतियों संबंध में पूछे गये प्रश्नों से होता है-

एकैकं पादपं गुल्मं लतां वा पुष्पशालिनीम्।
अदृष्टरूपां पश्यन्ती रामं प्रपच्छे साबला।। (1)

औषधि-वनस्पतियाँ जहाँ यज्ञों के निष्पादन में सहायक थीं(2), वहीं यज्ञ फल-मूलों को स्वादिष्ट बनाने में सहायक थे। इस तथ्य का परिज्ञान रामायण से होता है। हिमालय पर्वत पर पूर्वकाल में भगवान् शंकर का यज्ञ हुआ। उस पर्वत पर खीर आदि अन्न (होमद्रव्य) से घृत आदि का स्राव हुआ था, उससे वहाँ अमृत के समान स्वादिष्ट फल और मूल उत्पन्न हुए। उक्त अन्न से उत्पन्न हुए उस दिव्य मनोहर फल-मूल को जो कोई एक बार खा लेता था वह एक मास तक उससे तृप्त बना रहता था।(3) रामायण में प्रमुखत: तीन स्थान ऐसे पाये जाते हैं जो औषधि वनस्पतियों से रहित थे। प्रथम, विंध्य पर्वत के समीप का प्रदेश कण्डु महर्षि के शापवश औषधि -वनस्पतियों और प्राणियों से रहित था।(4) द्वितीय, कैलास पर्वत और देवसख पर्वत के मध्य सौ योजन विस्तृत मैदान(5) और तृतीय, क्रौञ्च पर्वत से आगे मानस शिखर(6)। शेष भारत में औषधि और वनस्पतियों का बाहुल्य था। रामायण कालीन भारत में आश्रम व्यवस्था सुदृढ़ रूप में विद्यमान थी। तपस्वियों और महर्षियों के आश्रम उपवन और वनों में विद्यमान थे। सिद्धाश्रम सघन वृक्षों से भरा था।(7) एक विचित्र वन में अश्वमुनि का आश्रम था।(8) सप्तजन आश्रम उद्यानों और उपवनों से युक्त था।(9) रामायण में 44 वनीय क्षेत्र उल्लिखित हैं और शेष अन्य संकेतित हैं। रामायण में वन के कष्टों की ओर संकेतित करते हुए कहा गया है कि-

वन में कांटेदार वृक्ष, कुश और काश होते हैं जिनकी शाखाओं के अग्रभाग सब ओर फैले रहते हैं, इसलिए वन विशेष कष्टदायक होते हैं।(10) रामायण में ऐसे भंयकर वन भी मिलते हैं जिनमें मनुष्यों के आने-जाने के कोई चिह्न नहीं मिलते। ऐसा ही एक वन गोदावरी के जनस्थान के दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर था।(11) द्वितीय, गंगा के दक्षिण किनारे पर ताटका वन है। इस भयंकर वन में धव (घौरा) अश्वकर्ण (एक प्रकार के शाल वृक्ष) ककुभ (अर्जुन), बिल्व, तिन्दुक, पाटल (पाडर), तथा बेर के वृक्ष भरे हुए थे। सिंह, व्याघ्र, सूअर, हाथी और अन्य भयानक हिंसक जन्तु उसमें भरे हुए थे। भयंकर बोली बोलने वाले पक्षी सब ओर फैले हुए थे। इस अद्भुत और दुर्गम वन में चारों ओर झिल्लियों की झन्कार सुनाई देती थी।(12)

हिमालय पर्वत पर अनेक वन थे। वनों की विशालता के कारण फल-मूलों की इतनी बहुलता थी कि उससे एक नील की संख्या में वानर जीवन-निर्वाह करते थे।(13)

वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है कि हिमालय पर्वत पर लोध्र और पद्म की झाड़ियाँ और देवदारु के वन हैं।(14) उससे आगे देवसख पर्वत भांति-भांति के विहंगमों से व्याप्त तथा नाना प्रकार के वृक्षों से विभूषित है।(15) उससे आगे कैलास पर्वत के सरोवर में प्रचुर कमल और उत्पल पाये जाते हैं उनमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी भरे रहते हैं तथा अप्सरायें जलक्रीड़ा करती हैं।(16) मैनाक पर्वत से आगे 'वैखानस सर' सुवर्णमय कमलों से आच्छादित है। उसमें अरुणवर्ण वाले हंस विचरते हैं।(17) उससे आगे शैलोदा नदी के दोनों तटों पर कीचक बांस है।(18) शैलोदा के तट पर स्थित उत्तर कुरुदेश में हरे-हरे पत्तों से सुशोभित सहस्रों नदियां बहती हैं, जिनके जल सुवर्णमय पद्मों से अलंकृत अनेकानेक पुष्करिणियों से मिले हुए हैं।(19) वहाँ के वृक्षों में सदा ही फल-फूल लगे रहते हैं और उन पर पक्षी चहकते रहते हैं। वे वृक्ष दिव्य गन्ध, दिव्य रस और दिव्य स्पर्श प्रदान करते रहते हैं। तथा प्राणियों की सारी मनचाही वस्तुओं की वर्षा करते रहते हैं।(20) गंगा-यमुना संगम से आगे यमुना नदी को पार करने पर नीलवन आता है। वहाँ सल्लकी (चीड़) और बेर के वृक्ष मिले हुए हैं। यमुना तट पर उत्पन्न बांसों के कारण वह रमणीय दिखाई देता है।(21) चित्रकूट के मार्ग में बसन्त ऋतु में पलाश के वृक्ष सब ओर खिले हुए थे।(22) चित्रकूट के वन की भूमि समतल थी। वहाँ फूलों की वर्षा होती थी और आनन्दपूर्वक उस पर विचरण किया जा सकता था।(23) यह पर्वत नाना पक्षियों और नाना प्रकार के मृगों से व्याप्त था। बड़े-बड़े व्याघ्र, चीते और रींछ आदि हिंसक जन्तु अपने दुष्टभाव का त्याग करके रहते थे।(24) चित्रकूट के प्रत्येक वृक्ष में मधुमक्खियों द्वारा संगृहीत एक द्रोण (16 सेर) मधुभरा था।(25) यहां आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बांस, काश्मरी (मधुपर्णिका), अरिष्ट

(नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आंवला, कदम्ब, बेत, धन्वन (इन्द्रजौ), बीजक (अनार) आदि घनी छाया वाले वृक्ष फूलों और फलों के कारण मनोरम प्रतीत होते थे।(26) गंगा के पार प्रयागवन में भरद्वाज मुनि का आश्रम था, जो मनोहर पर्णशालाओं तथा वृक्षावलियों से सुशोभित था।(27) वहाँ पांच योजन तक की भूमि पर नाना प्रकार की घास थी।(28) दण्डकारण्य स्वादिष्ट फल देने वाले परम पवित्र तथा बड़े बड़े वन्य वृक्षों से घिरा था।(29) कमल पुष्पों से सुशोभित पुष्पकरिणी उस स्थान की शोभा बढ़ाती थी तथा वहाँ सब ओर बहुत से फूल सब ओर बिखरे हुए थे। अगस्त्य मुनि के भाई के आश्रम की ओर जाते हुए राम सीता और लक्ष्मण को मार्ग में चित्र-विचित्र वन मिले।(31) पिप्पली का वन अगस्त्य मुनि के भाई के आश्रम की शोभा बढ़ाता था। वहाँ फूलों और फलों की बहुतायता थी। नाना प्रकार के पक्षियों के कलरवों से गूंजते हुए उस रमणीय आश्रम के पास भांति-भांति के कमलमण्डित सरोवर थे।(32)

अगस्त्य मुनि के आश्रम की ओर जाते हुए राम ने मार्ग में नीवार (जल कदम्ब), कटहल, साखू, अशोक, तिनिश, चिरिबिल्ब, महुआ, बेल, तेंदु तथा और भी सैंकड़ों जंगली वृक्ष देखे जो फूलों से भरे तथा खिली हुई लताओं से परिवेष्टित थे।(33) यहाँ के वृक्षों के पत्ते चिकने थे। रामायण के अनुसार अगस्त्य आश्रम के समीप महुओं का विशाल वन है उससे उत्तर दिशा की ओर पञ्चवटी का सुन्दर वन है।(35) यहाँ बहुत से मृग रहते हैं और फल-मूल और जल की अधिक सुविधा है।(36) यह भांति-भांति के विहङ्गमों से सेवित है।(37) नाना प्रकार के सर्पों, हिंसक जन्तुओं और मृगों से पञ्चवटी भरी हुई थी।(38) वहाँ पुष्पों, गुल्मों तथा लता-वल्लरियों से युक्त साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, जलडदम्ब, तिनिश, पुंनाग, आम, अशोक, तिलक, केवड़ा, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और पाटल (पाडर) आदि के वृक्ष विद्यमान थे।(39)

गोदावरी नदी के तट पर जौ और गेहूँ के खेतों से युक्त बहुसंख्यक वन थे तथा क्रौञ्च और सारस इनमें कलरव करते थे।(40) सुनहरे रंग के जड़हन धान खजूर के फूल के स आकारवाली नालों से, जिनमें चावल भरे हुए थे, कुछ लटके थे, इन बालों के कारण इनकी विशेष शोभा थी।(41) पञ्चवटी में श्रीराम का आश्रम केले के वृक्षों से घिरा था।(42) वहाँ कनेर के कुञ्ज थे।(43)

गोदावरी का जनस्थान नाना प्रकार के वृक्ष-लताओं से युक्त सघन वन से भरा था।(44) उसके दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर जनविहीन अत्यन्त भयानक विशाल वन था।(45) जनस्थान से तीन कोश दूर क्रौञ्चारण्य था। वह वन अनेक मेघों के समूह की भांति श्याम प्रतीत होता था।

विविध रंग के फूलों से सुशोभित था। उसके भीतर बहुत से पशु-पक्षी निवास करते थे।(46) क्रौञ्चारण्य से आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम भयंकर वन में स्थित था। उसमें बहुत से भयानक पशु-पक्षी निवास करते थे। अनेक प्रकार के वृक्षों से व्याप्त वह सारा वन गहन वृक्षावलियों से भरा था।(47) यहाँ से पश्चिम की ओर खिले हुए वृक्षों से सुशोभित वन थे, जिनमें जामुन, प्रियाल (चिरौंजी) कटहल, बड़, पाकड, तेंदु, पीपल, कनेर, आम तथा अन्य वृक्ष, धव, नागकेसर, तिलक, नक्तमाल, नील, अशोक, कदम्ब, खिले हुए करवीर, भिलावा, लाल चन्दन तथा मन्दार के वृक्ष थे।(48) इस वन में आगे का वन नन्दनवन के समान मनोहर था। उस वन के वृक्ष उत्तर कुरुवर्ष के वृक्षों की भांति मधु की धारा बहाने वाले थे। तथा उनमें सभी ऋतुओं में फल लगते थे।(49) इसके पश्चात् अनेक वनों को पार करने के बाद पम्पा नामक पुष्करिणी का तट प्राप्त होता है।(50) उस पुष्करिणी में सेवार का सर्वथा अभाव था।(51) अरुण कमलों से वह ताम्रवर्ण की, कुमुद कुसुमों के समूह से शुक्ल वर्ण की तथा नील कमलों के समुदाय से वह नीलवर्ण की दिखाई देती थी।(52) कमलों से ढकी होने के कारण वह शुभदर्शना थी।(53)

पम्पा पुष्करिणी भांति-भांति के रमणीय उपवनों से घिरी हुई थी।(54) वह निम्न वृक्षों से सुशोभित थी-तिलक, अशोक, नागकेसर, बकुल, लिसोडा, बिजौरा, वट, लोध, खिले हुए करवीर, मालती, कुन्द, झाड़ी, भंडीर (बरगद), वञ्जुल, छितवन, कृतक, माधवी लता, चिरिविल्व, महुआ बेंत, मोलसिरी और चम्पा।(55) केतकी, सिन्दुरवार तथा वासन्ती लताएं सुन्दर फूलों से भरी हुई थी। माधवीलता तथा कुन्द कुसुमों की झाड़ियाँ शोभायमान थी।(56) पम्पा सरोवर के फूल न तो मुरझाते हैं और न ही झरते हैं।(57) क्योंकि मतंगमुनि के शिष्यों के पसीने की बून्दे गिरकर फूलों के रूप में परिणत हो जाती थीं।(58) पम्पा के उपवनों में फल-मूलों का प्राचुर्य था। कवन्ध इसी कारण राम को जीवदया और मनोरंजन की दृष्टि से उन्हें पक्षियों और जलचरों को खिलाने का आग्रह करता हुआ कहता है कि- वहाँ घी के लोंदे के समान चिकने तथा आर्द्र, न सूखे हुए, आग में पकाये फल-मूल के ढेर भक्ष्य पदार्थ के रूप में उपलब्ध होंगे। उन पदार्थों को लेकर सरोवर के मोटे-मोटे प्रसिद्ध जलचर पक्षियों तथा श्रेष्ठ रोहित (रोहू), वक्रतुण्ड और नलमीन आदि मत्स्यों को थोड़ा-थोड़ा करके खिलाइयेगा।(59) पम्पा का विशाल वन टिट्टियों, मोरों, कठफोड़वों, तोतों तथा अन्य बहुत से पक्षियों के कलरवों से गूंज रहा था।(60)

पम्पा के पश्चिमी तट पर विद्यमान मंतगवन में नाना प्रकार के पक्षी विद्यमान थे। मतंगमुनि के प्रभाव से वहाँ हाथी कभी आक्रमण नहीं करते थे।(61) पम्पा सरोवर के पूर्वभाग में ऋष्यमूक पर्वत है। वहाँ के वृक्ष पुष्पित हैं।(62) उस पर्वत के ऊपर एक बहुत बड़ी गुफा है। उस गुफा के

पूर्व द्वार पर शीतल जल से भरा एक बहुत बड़ा कुण्ड है। उसके आस-पास बहुत से फल और मूल सुलभ हैं। वह रमणीय ह्रद नाना प्रकार के वृक्षों से व्याप्त हैं।(63)

ऋष्यमूक से किष्किन्धा जाते हुए मार्ग में सब ओर हरी-हरी कोमल घास के अङ्कुरों का आहार करने वाले वनचारी हरिण कहीं निर्भय होकर चरते हैं और कहीं खड़े दिखायी देते हैं।(64) किष्किन्धा के समीप प्रस्रवणगिरि पर तुङ्गभद्रा नदी बहती है। वहाँ चन्दन, तिलक, साल, तमाल, अतिमुक्तक, पद्यक, सरल, शोक, जलबेंत, तिमिद, बकुल, केतक, हिन्ताल, तिनिश, नीप, स्थलबेंत, कृतमाल आदिवृक्ष नदी को सुशोभित करते हैं।(65) प्रस्रवणगिरि पर शरद्ऋतु में वन के भीतर बहुत से असन वृक्ष खड़े थे जिनकी डालियों के अग्रभाग फूलों के अधिक भार से झुक गये थे। उन पर मनोहर सुगन्ध छा रही थी। ये सभी वृक्ष सुवर्ण के समान तथा नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले थे और वनप्रान्त को प्रकाशित कर रहे थे।(66) प्रस्रवणगिरि पर चीतों और मृगों की आवाज गूंजती रहती थी। भयंकर गर्जना करने वाले सिंहों से वह स्थान भरा था। नाना प्रकार की झाड़ियाँ और लताएं उस पर्वत को आच्छादित किये हुए थीं और घने वृक्षों के द्वारा वह सब ओर से व्याप्त थी।(67)

विंध्यगिरि के दक्षिण में ऋक्षबिल नामक एक गुफा लता और वृक्षों से आच्छादित थी।(68) साल, ताल, तमाल, नागकेसर, अशोक, धव, चम्पा नागवृक्ष और कनेर-ये सभी फूलों से भरे हुए थे।(69) सभी वृक्ष सुवर्णमय थे और उनसे अग्नि के समान प्रभा निकल रही थी।(70) सह्य और मलयपर्वत पर विचित्र कानन थे।(71) वहाँ के वनों में निम्न वृक्ष पाये जाते थे- चम्पा, तिलक, आम, अशोक, सिन्दुवार, तिनिश, करवीर, अंकोल, करंज, पाकर, बरगद, जामुन, आंवला, नीप, चिरिबिल्व, मधूक (महुआ), वञ्जुल, बकुल, रंजक, तिलक, नागकेसर, पाडर, कोविदार, मुचुलिन्द, अर्जुन, शिंशिपा, कुटज, हिंताल, चूर्णक, कदम्ब, नीलाशोक सरल और पद्म।(72) नाना प्रकार के जंगली वृक्ष वानरों पर फूलों की वर्षा करते थे।(73)

क्षीर समुद्र के किनारे और तमाल वन में बहुसंख्यक वानर नारियल खाते थे।(74)

महेन्द्र पर्वत नाना प्रकार के पुष्प युक्त वृक्षों से भरा हुआ था। वन्य पशु वहाँ की हरी-हरी घास चर रहे थे।(75) महेन्द्र पर्वत पर विद्याधरों द्वारा भांति-भांति के भक्ष्य पदार्थ, चटनी, नाना प्रकार के फलों के गूदे का प्रयोग करने तथा लाल रंग के फूल और अनुलेपन (चन्दन) धारण करने का वर्णन मिलता है।(76) समुद्र से तेरह योजन दूरी के बाद उदयपर्वत स्थित है। वहाँ साल, ताल, तमाल, और फूलों से लदे कनेर आदि सुवर्णमय वृक्ष हैं।(77) तदनन्तर अयोमुख पर्वत पुष्पित विचित्र काननों से युक्त है। उसके सभी स्थानों में सुन्दर चन्दन के वन हैं।(78)

क्षारसमुद्र में विद्यमान मैनाक पर्वत बड़े-बड़े वृक्षों और लताओं से आवृत्त था।(79) उसपर बहुत से सुगन्धित और सुस्वादु कन्द-मूल और फल विद्यमान थे।(80)

महासागर लांघकर लंका जाते हुए मार्ग में हनुमान् ने हरी-हरी दूब और वृक्षों से भरे हुए मकरन्दपूर्ण सुगन्धित वन देखे।(81)

समुद्र पार त्रिकूट पर्वत के शिखर पर वृक्षों से झड़े हुए फूलों की वर्षा होती थी, इससे वहाँ बैठे हुए पराक्रमी हनुमान् फूल के बने हुए वानर के समान प्रतीत होने लगे।(82) त्रिकूट पर्वत पर स्थित हो हनुमान् ने बहुत से वन-उपवन देखे तथा पर्वत के अग्रभाग में बसी हुई लंका का अवलोकन किया।(83) श्रीलंका के समुद्र तट पर चन्दन के सहस्रों वन थे, जिनकी जड़ों से गोंद निकले हुए थे, जो बड़े ही सुहावने थे और अपनी सुगन्ध से नासिका को तृप्त करने वाले थे।(84)

कहीं श्रेष्ठ अगरु के वन थे, कहीं उत्तम जाति के सुगन्धित फल वाले तक्कोलों (वृक्ष विशेषों) के उपवन थे। कहीं तमाल के फूल खिले हुए थे। कहीं गोल मिर्च की झाड़ियाँ शोभा पाती थीं।(85)

वहाँ समुद्र तट पर समुद्र वट नामक एक बरगद का वृक्ष था उसके नीचे चारों ओर मुनि निवास करते थे। उसकी शाखाएं चारों ओर सौ योजकों तक फैली हुई थीं। यह वही वृक्ष था, जिसकी शाखा पर किसी समय महाबली गरुड़ एक विशालकाय हाथी और कछुए को लेकर उन्हें खाने के लिये आ बैठा।(86)

रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लंका भांति-भांति के वृक्षों से सुशोभित थी-विविधद्रूमभूषितम्।(87) लंका में निम्न वृक्ष पाये जाते थे- सरल (चीड़), कनेर, खिले हुए खजूर, प्रियाल, (चिरौंजी), सुचुलिन्द (जम्बीरी नींबू), कुटज, केतक (केवड़ा) सुगन्धपूर्ण प्रियङ्गु (पिप्पली), नीप (कदम्ब या अशोक), छितवन, असन, कोविदार तथा खिले हुए करवीर।(88) कमल और उत्पल से आच्छादित बहुत सी बावड़ियाँ थीं, जो हंसों और कारण्डवों से व्याप्त थीं।(89) नाना प्रकार के जलाशयों के चारों ओर सभी ऋतुओं में फल-फूल देने वाले अनेक प्रकार के वृक्ष फैले हुए थे।(90) रामायण में लंका से आगे के वनीय क्षेत्रों का भी उल्लेख मिलता है। रामायण से ज्ञात होता है कि लंका से आगे 100 योजन विस्तृत समुद्र में पुष्पितक पर्वत है, जो परम शोभा सम्पन्न तथा सिद्धों और चारणों से सेवित है।(91) इस वर्णन से ज्ञात होता है कि वह औषधि-वनस्पतियों से सम्पन्न रहा होगा।

पुष्पितक से चौदह योजन दूर वैद्युत नामक पर्वत है। वहाँ के वृक्ष सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलों

से युक्त हैं। वहाँ उत्तम फल-फूल और सेवन योग्य मधु है।(92) उससे आगे नेत्रों और मन को प्रिय लगने वाला कुञ्जर पर्वत है।(93) इस विवरण से ज्ञात होता है कि वह औषधि वनस्पतियों से सम्पन्न रहा होगा। उससे आगे ऋषभ पर्वत है। वहाँ गोशीर्षक, पद्मक, हरिरयाम आदि नामों वाला दिव्य चन्दन उत्पन्न होता है। वह चन्दन वृक्ष अग्नि के समान ज्वलित होता रहता है। उस चन्दन को देखकर कदापि उसका स्पर्श नहीं करना चाहिये।(94)

इनके अतिरिक्त रामायण में अनेक वनों के नामोल्लेख और संकेत प्राप्त होते हैं, तथा -यमुना के तटवर्तीवन(95), चैत्ररथ वन(96), भारुण्ड वन(97), कलिंग नगर का सालवन(98) आदि।

वाटिकाओं में अयोध्या की अशोक वनिका, किष्किन्धा का मधुवन और लंका की अशोकवाटिका उल्लेखनीय है।

अयोध्या के अशोकवनिका की शोभा निम्नलिखित वृक्ष बढ़ाते थे- चन्दन, अगरु, आम, तुङ्ग, कालेयक, देवदारु वन, चम्पा, अशोक, पुंनाग, महुआ, कटहल, असन, पारिजात, लोध, कदम्ब, अर्जुन, नागकेसर, छितवन, अतिमुक्तक, मन्दार, कदली, प्रियङ्गु, बकुल, जामुन, अनार, तथा कोविदार तथा गुल्मों और लताओं का समूह सब ओर व्याप्त था।(99) कोकिल, भृगंराज आदि रंग-बिरंगे सैंकडों पक्षी उस वाटिका की शोभा थे।(100)

किष्किन्धा में स्थित सुग्रीव का मधुवन नन्दनवन के समान मनोहर था।(101) वहाँ के फल-मूल सुगन्धित थे।(102) उस वन में मधु से भरे हुए छत्तों की बहुतायत थी।(103)

रामायण में लंका के अशोक वन और वाटिका का विशेष और विस्तृत गुणगान किया गया है। अशोक वन को देवोद्यान नन्दन वन के समान आनन्ददायी, कुबेर के चैत्ररथ वन के समान विचित्र तथा उन दोनों से भी बढ़कर अचिन्त्य, दिव्य एवं रमणीय शोभा युक्त बताया गया है।(104) अशोक वाटिका ऐसी थी, जहां जाने पर हर समय लोगों के मन में प्रसन्नता होती थी। मृग और पक्षी मदमस्त हो उठते थे। मतवाले मोरों का कलनाद वहाँ निरन्तर गूंजता रहता था और नाना प्रकार के पक्षी वहाँ निवास करते थे।(105) उस वाटिका में बड़े-बड़े वृक्ष थे- महाद्रुमाः।(106) अशोक वाटिका में पाये जाने वाले निम्न वृक्षों का नाम मिलता है- साल, अशोक, निम्ब, चम्पा, बहुवार, नागकेसर, लाल फल देने वाले आम, चन्दन, मौलसिरी, पुनांग और छितवन।(107) सभी वृक्ष शत-शत लताओं से आवेष्टित थे।(108) वहाँ अशोक के सहस्रों वृक्ष थे, जिनमें कुछ तो सुवर्ण के समान कांतिमान थे, कुछ आग की ज्वाला के समान प्रकाशित हो रहे थे और कोई-कोई काले काजल की सी कान्ति वाले थे।(109)

अशोक वाटिका की बावड़ियाँ तटवर्ती वृक्षों से सुशोभित थीं और सरिताएं चारों ओर से उन बावड़ियों का संस्कार करती थीं।(110) उसके तटों पर सैंकड़ों प्रकार की लताएँ फैली हुई थीं। खिले हुए कल्पवृक्षों ने उन्हें चारों ओर से घेर रखा था। उनके जल नाना प्रकार की झाड़ियों से ढके हुए थे।(111)

अशोक वाटिका के पास एक काले पर्वत के चारों ओर बहुत से पर्वत शिखर थे। उन पर अनेकानेक वृक्ष उगे हुए थे।(112) उस पर्वत के समीप बहुत से कमलमण्डित सरोवर थे।(113)

इस प्रकार बहुत से उपर्युक्त वन और वाटिकाओं में विद्यमान औषधि-वनस्पतियों की विविधता और प्रचुरता तथा वहाँ रहने वाले पशु-पक्षियों के वर्णन से तत्कालीन भारत की जैव विविधता का परिचय प्राप्त होता है। ये औषधि-वनस्पतियों से सभी प्राणियों के भोजन की पूर्ति होती थी। मानव को भी शुद्ध भोजन, फल-मूल प्राप्त होता था।(114) पशु-पक्षी इन वृक्षों पर आश्रय लेते थे(115) और मानव विश्राम(116) करता था।

वृक्ष की शाखाओं से दन्तशुद्धि की जाती थी,(117) फूलों और पत्तों का शय्या(118) और आसन(119) के रूप में उपयोग किया जाता था। नदी(120) और सागर(121) पर पुल बनाने के लिये वृक्षों और झाड़ियों का उपयोग किया जाता था। युद्ध में वृक्षों का हथियार के रूप में प्रयोग अनेक स्थानों पर दृष्टिगत होता है।(122)

शवदाह के अवसर पर चिता में विविध प्रकार के वृक्ष और सुगन्धित औषधियों का प्रयोग किया जाता था।(123)

तत्कालीन नर-नारी पुष्पों से अपना शृंगार करते दृष्टिगत होते हैं। लंका में राक्षसों के गले में फूलों का हार था।(124) सुन्दरियाँ फूलों के हार से विभूषित थीं।(125) रावण की स्त्रियाँ वेणी में फूल गूंथती थीं।(126)

उत्तर कुरु देश के वृक्ष श्रेष्ठ फलों के रूप में नाना प्रकार के वस्त्र, मोती और वैदूर्यमणि जटित आभूषण देते थे जो कि स्त्री-पुरुषों के उपयोग में आने योग्य होते थे।(127) कितने ही वृक्ष विचित्र बिछौनों से युक्त शय्याओं को ही फलों के रूप में प्रकट करते थे, सुन्दर मालाएँ देते, बहुमूल्य पेय पदार्थ और भांति-भांति के भोजन देते थे तथा रूप और यौवन से प्रकाशित होने वाली सद्गुण सम्पन्न युवतियों को जन्म देते।(128) रामायण में मानव स्वास्थ्य और जीवन के लिये उपयोगी अनेक औषधि-वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है। समुद्र मन्थन के समय देवताओं की आज्ञा से

जाम्बवान आदि ने उन औषधियों का संचय किया, जिससे बल बढता है और उससे वे बलवान हुए।(129) फल-मूल का गूदा मानसिक प्रसन्नता को बढाता है- निषसाद गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन्।(130) मधुर फल-मूलों के भक्षण से सात्विक भावों का उद्रेक होता है अतः राम सीता से कहते हैं कि-हे प्रिये! तुम्हारे साथ तीनों काल स्नान करके मधुर फल मूल का आहार करता हुआ मैं न तो उयोध्या जाने की इच्छा रखता हूँ और न राज्य पाने की।(131) एक कन्द के विषय में महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि-यह फल परम पवित्र है। यह बहुत स्वादिष्ट है तथा इस कन्द को अच्छी तरह आग पर सेका गया है-

इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना।(१३२)

अयोध्याकाण्ड में ''एणेयं मासं''(133) शब्द आया है, जिसका अर्थ है गजकन्द विशेष का गूदा। मदनपाल निघण्टु में मृग का अर्थ गजकन्द दिया गया है। लक्ष्मण ने पवित्र और काले छिलके वाले गजकन्द को उखाड़कर प्रज्ज्वलित आग में डाल दिया।(134) यह गजकन्द रक्तविकार का नाश करने वाला तथा बिगड़े हुए सभी अंगों को ठीक करने वाला है।(135) पश्चिम भारत में अपरपर्वत नामक जनपद में शिला नदी के पास आग्नेय कोण में शल्यकर्षण देश है वहाँ शरीर से कांटे को निकालने में सहायता देने वाली औषधि विद्यमान है(136)

पर्वतों पर अनेक विशिष्ट औषधियाँ पायी जाती थीं। रात्रि में चित्रकूट पर्वत के ऊपर लगी हुई सहस्रों ओषधियाँ अपनी प्रभा सम्पत्ति से प्रकाशित होती हुई अग्निशिखा के समान उद्भासित होती हैं।(137) हिमालय पर्वत पर स्थित ऋषभ पर्वत और कैलास शिखर के मध्य ओषधियों का एक दीप्ति मान पर्वत है। उसमें निम्न चार ओषधियाँ अपनी प्रभा से चारों दिशाओं को प्रकाशित करती हैं- मृतसञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सवर्णकरणी और संधानी।(138) इन्द्रजीत के ब्रह्मास्त्र से वानरसेना सहित श्रीराम व लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर श्री हनुमान् उस पर्वत शिखर को ही उखाड़ लाये।(139) उन महौषधियों की सुगन्ध से श्रीराम, लक्ष्मण और अन्य वानर स्वस्थ हो गये। उनके शरीर से बाण निकल गये घाव भर गये पीड़ा समाप्त हो गयी।(140)

इन्द्रजीत के साथ युद्ध में पुनः लक्ष्मण के शरीर में अनेक बाण लग गये और शरीर में घाव हो गये(141) तब वानर यूथपति सुषेण ने लक्ष्मण की नाक में एक बहुत ही उत्तम ओषधि लगायी। उसकी गंध सूंघते ही लक्ष्मण के शरीर से बाण निकल गये और सारी पीड़ा दूर हो गयी। उनके शरीर में जितने भी घाव थे, सब भर गये। अन्य विभीषण आदि सुहृद् तथा अन्य वानर भी तत्काल नीरोग होकर खड़े हो गये।(142)

रावण द्वारा किये गए शक्ति प्रयोग से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये।(143) तब महोदय पर्वत के दक्षिण शिखर पर उगी हुई विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी तथा संधानी नामक प्रसिद्ध औषधियों से लक्ष्मण के जीवन की रक्षा की गयी।(144) सुषेण ने उन औषधियों को कूटपीस कर लक्ष्मण जी की नाक में दे दिया। उनको सूंघते ही उनके शरीर से बाण निकल गये और वे नीरोग हो शीघ्र ही भूतल से उठकर खड़े हो गये।(145) मानव के सुख-दुःख में वनस्पतियाँ सहभागिनी होती हैं इस तथ्य का रामायण में सूक्ष्मता से चित्रण किया गया है। राम के वन प्रस्थान करने से अयोध्या में आये महान् संकट से वृक्ष भी कृशकाय हो गये तथा फल, अंकुर और कलियों सहित मुरझा गये। वनों और उपवनों के पत्ते सूख गये।(146) इसी प्रकार रावण द्वारा सीता को अपहृत करने के बाद पञ्चवटी का स्थान वृक्षों के द्वारा मानो रो रहा था और फूल मुरझा गये।(147)

औषधि-वनस्पतियों की संवेदनशीलता का वर्णन भी सूक्ष्मता से प्राप्त होता है। रावण के भय से वृक्ष फूल बरसाने लगते हैं।(148) जब हनुमान् औषधियाँ लेने ऋषभ तथा कैलास पर्वत के मध्य पहुँचे तो वहाँ कि महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेने आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो गयीं।(149) भरद्वाज मुनि के तप के प्रभाव से आश्रम के वृक्ष अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। उनके तेज से बेल के वृक्ष मृदङ्ग बजाते, बहेडे के वृक्ष शय्या नामक ताल देते और पीपल के वृक्ष वहाँ नृत्य करते थे।(150) वृहदारण्यकोपनिषद्(151) ने मानव और वृक्षों के मध्य जिस अनन्य सादृश्यता का प्रतिपादन किया है उसका साकार रूप वाल्मीकि रामायण में दृष्टिगत होता है। वृक्षों का मानवीकरण करते हए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं कि देवदारु, ताल, तिलक तमाल नामक वृक्ष कुबडे और बौने बनकर बड़े हर्ष के साथ भरत की सेवा में उपस्थित हुए।(152) शिंशपा, आमलकी और जम्बू आदि स्त्रीलिंग वृक्ष तथा मालती, मल्लिका और जाति आदि वन की लताएं नारी का रूप धारण करके भरद्वाज मुनि के आश्रम में आ बसीं।(153) उन्होंने भरत के सैनिकों को भोजन के लिए पुकारा।(154)

वृक्षों का प्राणी जगत् पर पड़ने वाला विशिष्ट प्रभाव भी रामायण में दृष्टिगत होता है। अशोक का वृक्ष प्रियाविरही कामी पुरुषों के शोक को अत्यन्त बढ़ा देता है-

कामिनामयमत्यन्तमशोकः शोकवर्धनः।(१५५)

गजराजों को कमल के पुष्प तथा वन अत्यन्त प्रिय हैं तथा छितवन के फूलों को सूंघकर वे उन्मत्त हो उठते हैं।(156) रामायणकालीन युग में वनों और उपवनों की पारिस्थितिकी संतुलन और पर्यावरण के लिये उपयोगिता को देखते हुए उनका वैदिक परम्परा के अनुरूप विशेष संरक्षण किया जाता था।

शासकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से वनों और उपवनों के पोषण, विकास और सुरक्षा के लिये ध्यान दिया जाता था। इसलिए कहा गया है कि- अयोध्या में पके हुए फलों को पतन के सिवाय और किसी से भय नहीं था।(157) अयोध्या की अशोक वनिका में वृक्ष लगाने की कला में कुशल मालियों द्वारा दिव्य वृक्ष लगाये जाते थे।(158) लंका की अशोक वाटिका की रक्षा के लिए बहुत से राक्षस तैनात किये गए थे।(159) उसके विकास की ओर रावण ने विशेष ध्यान दिया। यही कारण है कि वह सब प्रकार के संस्कारों से संवारी गयी थी।(160)

किष्किन्धा में स्थित सुग्रीव का मधुवन नन्दन वन के समान मनोहर था।(161) वह सर्वथा सुरक्षित था। समस्त प्राणियों में कोई भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता था। सुग्रीव के मामा दधिमुख वानर सदा उसकी रक्षा करता था। जब अन्य वानरों ने उसे उजाड़ने का प्रयत्न किया तो उसने उन्हें पूरी चेष्टा के साथ रोका इस प्रयास में वह घायल भी हो गया।(162) लंका पर चढ़ाई के अवसर पर श्रीराम ने आज्ञा दी थी कि मार्ग में कोई किसी प्रकार का उपद्रव न करें। तब भयंकर कोपशील राम के आदेश से भयभीत वानरसेना नगरों कि समीपवर्ती स्थानों और जनपदों को दूर से ही छोड़ती गयी।(163) महाकवि ने वन की रक्षा के लिये नियुक्त लोगों को वनस्य भोक्ता,(164) वनपाल(165) वनप और वनपालक(166) जैसे शब्दों से संबोधित किया है।

ऋषभ पर्वत के घोर वनों की रक्षा रोहित नाम वाले गन्धर्व करते थे।(167) ऋक्षबिल गुफा के वन की रक्षा हेमा अप्सरा की प्रार्थना पर स्वयंप्रभा तापसी करती थी।(168) मतङ्गवन की रक्षा स्वयं मतंगमुनि करते थे। वे कहते हैं कि- मैंने अपने इस वन की सदा पुत्र की भांति रक्षा की है। जो इसके पत्र और अङ्कुरका विनाश तथा फल मूल का अभाव करने के लिये यहाँ रहेंगे वे अवश्य शाप के भागी होंगे।(169) रावण से युद्ध के अवसर पर श्री हनुमान् को औषधियों के निमित्त दो बार पर्वतों के शिखरों को ऊखाड़ कर लाना पड़ा। प्रथम बार तो उन्होंने उसे यथास्थान पहुँचाया।(170) अनुमान किया जा सकता है कि दूसरी बार भी शिखर को यथास्थान पहुँचाया होगा। तत्कालीन भारत में वृक्ष रहित स्थानों पर वृक्ष लगाये जाते थे। अवृक्षेषु च देशेषु केचित् वृक्षानरोपयन्।(171)

नगरों में औषधि-वनस्पतियों का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। अयोध्या के संदर्भ में एक स्थान पर कहा गया है कि सर्वत्र जगह-जगह उद्यान थे। और आम के बाग नगर की शोभा में वृद्धि करते थे। नगर के चारों ओर साखुओं के लम्बे वृक्ष थे।(172) तत्कालीन भारत में वृक्षों की पूजा होती थी। जो स्पष्ट ही वृक्ष संरक्षण चेतना का संदेश है।(173)

वृक्षों की उपयोगिता और महत्त्व के कारण उनको देवता तुल्य आदर दिया जाता था। और उनसे आर्शीवाद लिया जाता था।

सीता गंगा-यमुना के संगम से आगे यमुना नदी के पार स्थित श्यामवट को शीश झुकाकर नमन करती है। और प्रार्थना करती है कि आप ऐसी कृपा करें जिससे मेरे पतिदेव अपने वनवास विषयक व्रत को पूर्ण करें तथा हम लोग वन से सकुशल लौटकर माता कौशल्या तथा यशस्विनी सुमित्रा देवी का दर्शन कर सकें।(174)

वाल्मीकि के अनुसार शरदण्डा नदी के पश्चिमी तट पर एक दिव्य वृक्ष था, जिस पर देवता का आवास था, इसलिए वहाँ जो याचना की जाती थी, वह सत्य होती थी अत: उसका नाम सत्योपयाचन हो गया था।(175)

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में वेदों की अपेक्षा व्यापक और औषधि, वनस्पतियों के विषय में विशद विवरण प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची -

1- वा. रा., 2/55/29
2- वही, 1/14/6,/39
3- वही, 4/37/28-30
4- वा. रा., 2/48/ 9- 14.5
5- वही, 4/43/19
6- वही, 4/43/28
7- वही, 1/28/17-18
8- वही, 2/116/20
9- वही, 4/13/17-18
10- वही, 2/28/22, अन्य द्रष्टव्य वही, 3/13/3
11- वही, 3/69/2-4
12- वा. रा., 1/24/ 12- 15-1/2
13- वही, 2/37/23
14- वही, 4/43/13
15- वही, 4/43/17
16- वही, 4/43/22
17- वही, 4/43/33.5
18- वही, 4.43.37
19- वा. रा., 4.43.39
20- वही, 4.43.44
21- वही, 2.55.8
22- वही, 2.56.6
23- वही, 2.56.9,11,14
24- वही, 2.94.7
25- वही, 2.56.8
26- वा. रा., 2.94.8-10
27- वही, 2.89.23
28- वही, 2.89.29
29- वही, 3.1.5
30 वही, 3,1,6
31- वही, 3.11.45
32- वही, 3.11.38-39
33- वा. रा., 3.11.74-76
34- स्निग्धयत्रा यथा वृक्षा-वही, 3.11.78

35- वही, 3.14.21-22
36- वही, 3.13.13
37- वही, 3.13.19
38- वही, 3.15.1
39- वही, 3.15.16-18
40- वही, 3.16.16
41- वही, 3.16.17
42- वही, 3.42.13
43- वही, 3.42.23
44- वही, 3.67.5
45- वही, 3.69.2-4
46- वही, 3.69.5-6
47- वही, 3.69.9
48- वही, 3.73.3-5
49- वही, 3.73.6-7
50- वही, 3.73.10 1/2
51- वही, 3.73.11 1/2
52- वही, 3.75.20-21
53- वही, 4.1.7
54- वही, 3.75.16, 4.1.6
55- वही, 3.75.16, 23-25, 4.1.76-77
56- वही, 4.1.77
57- वही, 3.73.22 1/2
58- वही, 3.73.25
59- वही, 3.73.14-15 1/2
60- वही, 4.75.12
61- वही, 3.75.28-30
62- वही, 3.73.31
63- वही, 3.73.39 1/2-40 1/2
64- वही, 4.13.9
65- वही, 4.27.16-19, 22
66- वही, 4.30.34
67- वही, 4.27.2
68- वही, 4.50.8-9
69- वही, 4.50.26
70- वही, 4.51.25
71- वही, 6.4.71
72- वही, 6.4.72-73, 79-81
73- वही, 6.4.74
74- वही, 4.37.25
75- वही, 4.67.40, 5.1.12.13
76- वही, 5.1.23.25
77- वही, 4.40.56
78- वही, 4.41.13 1/2
79- वही, 5.1.101
80- वही, 5.1.116 1/2
81- वही, 5.2.6
82- वही, 5.2.12
83- वही, 5.2.8
84- वही, 3.35.21
85- वही, 3.35.22-23
86- वही, 3.35.27-28, 36
87- वही, 5.1.204
88- वही, 5.2.9-11
89- वही, 5.2.12
90- वही, 5.2.13
91- वही, 4.42.28
92- वही, 4.41.32-33 1/2
93- वही, 2.41.34 1/2
94- वही, 4.41.40-41
95- वही, 2.55.32
96- वही, 2.71.4
97- वही, 2.71.5
98- वही, 2.71.16
99- वही, 7.42. 2-5
100-वही, 7.42.8
101- वही, 5.61.7-8
102-वही, 5.61.14

103- वही, 5.62.9-11
104-वही, 5.15.11 1/2
105- वही, 5.14.7-8
106-वही, 5.13.55
107- वही, 5.14.3-4, 43, 6.15.9 1/2
108-वही, 5.14.4
109- वही, 5.15.10 1/2
110-वही, 5.14.25
111- वही, 5.14.26
112-वही, 5.14.28
113- वही, 5.14.32
114- वही, 2.56.7, 2.89.21, 52, 67-68, 72-73 आदि।
115- वही, 3.11.76, 7.42.7 आदि
116-वही, 2.50.28, 2.55.7 आदि
117- वही, 1.5.9
118-वही, 2.54.33
119- वही, 4.5.18 1/2, 4.8. 12-14
120- वही, 2.55.14, 15, 4.43.38
121- वही, 6.22.56-59
122- वही, 5.62.21, 6.58.9, 21, 23, 6.59.10, 37,77 आदि
123- वही, 2.76.16, 5.111.104-105, 112-113
124- वही, 5.4.22
125-वही, 5.6.21
126- वही, 5.9.64.65
127-वही, 4.43.45
128- वही, 4.43.47-48
129-वही, 4.66.33
130- वही, 2.96.1
131-वही, 2.95.17
132- वही, 2.96.2
133-वही, 2.56.22
134- वही, 2.56.26
135-वही, 2.56.27,28
136- वही, 2.71.3
137-वही, 2.94.21
138- वही, 6.74.29-33
139-वही, 4.74.67
140- वही, 6.74.73.74
141-वही, 6.91.11
142- वही, 6.91.24-28
143-वही, 6.100.36, 101.1
144- वही, 6.101.30-32
145-वही, 6.101.44-45
146- वही, 2.59.4.5
147-वही, 3.60.6
148- वही, 5.23.17
149-वही, 5.74.64
150- वही, 5.89.49
151-बृहदारण्यकोपनिषद्, 4.9.1-4
152- वा. रा., 5.89.50
153-वही, 2.89.51
154- वही, 2.89.52
155-वही, 4.1.59
156- वही, 4.30.35
157-वही 2.10.5.17
158- वही, 7.42.7
159-वही, 5.13.62, 63, 5.42.24
160- वही, 5.13.62
161-वही, 5.61.7.8
162- वही, 5.61.8, 19-24

163- वही, 6.4. 38-39 1/2 अन्यत्र द्रष्टव्य 2.91.2

164- वही, 5.61.21

165- वही, 5.62.8

166- वही, 5.62.18, 5.63.14

167-वही, 4.51.42

168- वही, 4.51.17

169-वही, 4.11.57

170- वही, 6.74.77, 101.37-41

171-वही, 2.80.7

172- वही, 1.5.12

173-वही, 2.55.7, 24-26, 2.68.16

174- वही, 2.55.6, 23-25

175-वही, 2.68.16

रजि0 पंजीकरण सं0 : एल-1277

ओ३म्

गुरुकुल पत्रिका

नवम्बर 2006 - फरवरी 2007

अन्ताराष्ट्रिय—वेद—वेदाङ्ग—विद्वत्—सम्मेलनम्

सम्पादक

डॉ० महावीर

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
अधिष्ठाता, प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-२४९४०४

सम्पादक मण्डल

संरक्षक मण्डल	**श्री सुदर्शन शर्मा** कुलाधिपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
	पद्मश्री देवेन्द्र त्रिगुणा परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
	प्रो. स्वतन्त्र कुमार कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
	आचार्य रामनाथ वेदालंकार भूतपूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
निदेशक	**प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री** आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
सम्पादक	**डॉ. महावीर** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
व्यवसाय-प्रबन्धक	**डॉ. जगदीश विद्यालंकार** पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रकाशक	**प्रो. आर. डी. शर्मा** कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वित्त प्रबंधक	**श्री एन. के. ग्रोवर** वित्ताधिकारी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मुद्रक : किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रेस, कनखल, हरिद्वार। फोन : 01334-245975

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

- ✱ सम्पादकीय
- ✱ शुभकामनाएं
- ✱ अभिनन्दनीय विद्वानों का परिचय

वेदेषु विज्ञानम्

1. वैदिक वाङ्मय में भौतिक विज्ञान	डॉ0 सुनीता जायसवाल	2
2. वेदों में वनस्पति विज्ञान	प्रभात कुमार सिंह	3
3. मित्रावरुण का वैज्ञानिक चिन्तन	अनु रानी	4
4. ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवविज्ञान	डॉ0 नन्दिता सिंघवी	4
5. ऋग्वेद में जल तत्त्व	डॉ0 सीमा सिंह	5
6. वेदों की पृष्ठभूमि में वनस्पति विज्ञान	अमन कुमार शर्मा	6
7. वेदों में कृषि विज्ञान का परिशीलन	डॉ. रामबहादुर शुक्ल	7
8. वेदों में वर्णित कृषि व्यवस्था	परषोत्तम शर्मा	8
9. ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में वर्णित वनस्पति विज्ञान	स्वाति दवे, डॉ0 नंदिता सिंघवी	8
10. वेदेषु सृष्टिविज्ञानम्	सत्यनारायण भारद्वाज:	9
11. वेदों में विमान विज्ञान	अमल चन्द्र राय वेदालंकार	10
12. वैदिक वाङ्मय में विमान विज्ञान	डॉ0 बसन्त कुमार	11
13. वेदों में भौतिक विज्ञान	सीमा देवी	12
14. वैदिक सूक्तों की वैज्ञानिकता.............	डॉ0 नीलम त्रिवेदी	13
15. वैदिक गणित की उपयोगिता:..............	प्रज्ञा यादव	14
16. अथर्वसंहिता तथा अगदतन्त्र	निष्ठा यादव	15
17. वेद वेदाङ्गों में वर्णित प्रतिमा विज्ञान	मंजु चौहान	16
18. वेद और विज्ञान में रासायनिक समन्वय	बबलू कुमार आर्य	17
19. वेदों में वर्णित नौवहन............	धर्मेन्द्र प्रसाद, डॉ0 नवीन सैनी	17
20. वेद में अग्निर्देवता एवं ऊर्जा विज्ञान	मोनिका साहू	19
21. ऋग्वेद में अग्निदेव की वैज्ञानिकता.........	डॉ0 नन्दन भार्गव	20
22. वेदों में वर्णित विमान विज्ञान	विवेक ओझा	21
23. वेदों में गणित	साधना शर्मा	22
24. ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवविज्ञान	डॉ0नन्दिता सिंघवी	
	अरुण आचार्य	23

25. वेदकालीन कृषि व्यवस्था — डॉ0 चन्द्रशेखर पाण्डेय — 24
26. वेदों में वर्णित कृषि विज्ञान — डॉ0 ईश्वरी देवी — 25
27. वेदों में कृषि विज्ञान — कुन्ती देवी — 26
28. संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान — डॉ. प्रेम चन्द्र शास्त्री — 27
29. वेदों में विज्ञान — ओमप्रकाश 'राही' — 28
30. Solar Energy - A Vedic Approach — Dr. K.B. Archak — 29
31. SCIENCE IN THE VEDAS............ — Dr. R. Laxmi — 30
32. Vedic Science of Chanting:........... — Dr. Falguni Piyush Desai — 32
33. Multi-disciplinary Explorations................ — Dr. R.P. Pathak, Dr. Amrita Panday — 33
34. AGRICULTURAL SCIENCE...... — Prof. Satya Deva Misra — 34
35. A Compartative Study of Vedic and Modern Cosmology — Dr. Parnav Pandya, Shambhavi Mishra, Dr. B.P. Shukla — 35
36. Vedas : The Source of Ultimate.... — Dr. S.R. Verma — 36
37. The Concept of Entropy in the light of Vedic Philosophy — Prashant Arya, Dr. B.P. Shukla, Dr. V.P. Shastri — 37
38. Origin of physical sciences......... — Dr. Rai Gyan Narian Prasad — 38

राजधर्मः

39. वैदिक राजधर्म — डॉ0 पद्मजा अमित — 40
40. अथर्ववेद का राजनैतिक अध्ययन — राज कुमारी — 40
41. आतंकवाद का वैदिक समाधान — डॉ0 कुलदीप सिंह आर्य — 41
42. वैदिक कालीन राजनैतिक जीवन — नमन प्रताप सिंह — 42
43. वेदों में मानवाधिकार की अवधारणा: — डॉ0 देवेन्द्र नारायण सिंह — 43
44. वैदिक कालीन प्रशासनिक अधिकारियों.... — डॉ0 अल्पना शर्मा — 44
45. वैदिक वाङ्मय में दण्ड की.......... — डॉ0 प्रज्ञा शंकर — 45
46. अथर्ववेद में राजनीति — श्रीमती पूजा वैस — 46
47. वैदिक राजनीति में ब्रह्म क्षत्र का सहयोग — डॉ. मधुबाला — 47
48. वेदों में वर्णित राजनीति विज्ञान — रणजीत कुमार पाण्डेय — 48
49. अथर्ववेद में अद्यतन शासन प्रणाली......... — डॉ0 शालिनी मिश्रा — 49
50. वैदिक वाङ्मय में अस्त्र शस्त्र विज्ञान — डॉ. भीमदेव आर्य — 50
51 वेदों में निहित राष्ट्रिय चेतना......... — डॉ. (श्रीमती) शैल वर्मा — 51
52. वैदिक राजनीति में विदथ:......... — डॉ0 सुनीता कुमारी — 52

53. वेद वर्णित राजनीति में कोश (कोष)..... आचार्य ध्रुवपति पाण्डेय 54
54. धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित न्याय व्यवस्था.... दीपाली सिंघल 55
55. वेदों में राजनीति अरविन्द कुमार गौड 56
56. वेदों में वर्णित राज्य के कार्यों की..... डॉ0 अनिल कुमार सैनी 56
57. वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रीय भावना ज्योति शर्मा 57
58. वैदिक युग में राष्ट्रध्वज डॉ0नरेश प्रसाद सिंह 58
59. वेदवाङ्मये राजनीतिः डॉ0 कृष्ण वे. जोशी 58
60. वेद वाङ्.मय और राष्ट्रवाद श्रीश पाण्डेय 59
61. वेदों में जीवन राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में डॉ0 मनोरमा गुप्ता 59
62. वैदिक गणतन्त्र डॉ0 विनय विद्यालंकार 60
63. वैदिकं लोकतन्त्रम् राम रतन खण्डेलवालः 61
64. वेदों में राजनीति विज्ञान सन्दीप कुमार उपाध्याय 62
65. वेदों में प्रतिपादित राजनैतिक सिद्धान्त विद्याधर सिंह 63

पर्यावरणम्

66. वेदेषु पर्यावरणम् डॉ0 राधेश्याम गंगवार 65
67. वेदों में पर्यावरण–विज्ञान वन्दना कुलश्रेष्ठ 66
68. परिस्थितिकी विचारधारा का वैदिक स्वरूप डा0 मीरा द्विवेदी 66
69. वैदिक वाङ्मये पर्यावरणचिन्तनम्....... डॉ0 विनीत घिल्डियाल 67
70. वेदों में पर्यावरण डॉ0 शरण कौर 68
71. वेदेषु पर्यावरणम् डॉ0 मिताली देव 69
72. वेदों में पर्यावरण पूजा शर्मा 70
73. वेदों में पर्यावरण–विज्ञान डॉ0 ऋतु शुक्ला 71
74. वैदिक पर्यावरण डॉ0 प्रदीप कुमार दीक्षित 72
75 वेदों में अग्नि एवं पर्यावरण संरक्षण डॉ. नन्दिता सिंघवी, दीपा मेहता 73
76. वेदों में पर्यावरण विज्ञान गरिमा राजपूत 74
77. वेदों में पर्यावरण डॉ0 किरण टण्डन 75
78. सांस्कृतिक पर्यावरण की ऋग्वेदीय.... डॉ. जितेन्द्र डी. सोनी
डॉ. सुरेन्द्र डी. सोनी 76
79. ऋग्वेद में जलवायु प्रियंका राय 77
80. पर्यावरण चेतना की वैदिक अवधारणा राजकुमार लाटा 78
81. वेदों में पर्यावरण चेतना डॉ0 सी0के0झा 79

82. वेदों में पर्यावरण — प्रणव कुमार मिश्र 80
83. वेदों में पर्यावरण एवं कृषि विज्ञान दर्शन — डॉ0 महादेव सिंह 81
84. वेदेषु पर्यावरणम् — डॉ0 नीलम पाण्डेय 81
85. वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चिन्तन — डॉ0 (श्रीमती) पुष्पा यादव 82
86. वेदों में प्रतिफलित पारिस्थितिकी विज्ञान — मानस शरण तिवारी 83
87. वेदेषु विज्ञानम् पर्यावरणम् — डॉ0 सुदेश गोयल 83
88. वेदों में पर्यावरण संरक्षण — राज भूषण 84
89. वेदों में पर्यावरण — मीनू सक्सेना 85
90. वेदों में पर्यावरण — श्याम लाल गौड 86
91. वेदों में पर्यावरण चेतना — डॉ0 केदारनाथ शर्मा 87
92. सावित्री उपनिषद् में पर्यावरण — डॉ. साधना मिश्रा 88
93. माध्यन्दिनसंहितायां पर्यावरणचेतना — प्रो मानसिंह 88
94. वेदेषु जीवनस्याधारः वायुः — हरीश चन्द्र गुरुरानी 89
95. TRADITIONAL KNOWLEDGE SYSTEM... — Dr. Ramesh C. Sharma 90
96. ECOLOGICAL AWARENESS...... — Dr. Sachidananda Mohapatra 91
97. Conservation of Environment..... — Seema Nirwal 93

काव्यसौन्दर्यम्

98. ऋक्संहितायां ध्वनिकारोक्तमुख्यकाव्यभेदस्थितिः — डॉ0 भारतेन्दुपाण्डेयः 95
99. वेदेषु काव्य तत्त्वानि — डॉ0 कमला जोशी 95
100 वैदिक साहित्य में प्रतीक-संक्षिप्त विवेचन — डॉ0 निधि सिन्हा 96
101 स्फोटवाद : काव्यशास्त्रीय ध्वनि-सिद्धान्त... — डॉ0 निरुपमा त्रिपाठी 97
102 वेदों काव्य तत्वों में रस प्रवाह — डॉ0 रमेश चन्द्र मुरारी 98
103 रीतिः — डॉ0 विद्यानन्द झा 99
104 ऋग्वेद में शैली गाम्भीर्य — डॉ0 (श्रीमती) बीना विश्नोई 100
105 ऋग्वेदे वक्रोक्तिचिन्तनम् — डॉ0 हरिशंकर पाण्डेय 101
106 वैदिक वाङ्मय की काव्यशास्त्रीय दृष्टि — बैकुण्ठ नाथ शुक्ल 102
107 ऋग्वेद में विविध रस — डॉ. डॉली जैन 103
108 वैदिक मंत्रों में अलङ्कार — डॉ0 जयप्रकाश नारायण 104
109 वैदिक छन्दः शास्त्रार्थ परम्परा — टेकचन्द मीना 105
110 छन्दः शास्त्राचार्य परम्परा — डॉ0 प्रकाश चन्द्र पन्तः 106
111 वेदों में रस का स्वरूप — कर्मानन्द आर्य 107
112 वैदिक सूक्तों में काव्यतत्त्व — डॉ0 निहारिका पटेल 108

113 ऋक्संहितायां ध्वनितत्त्वम्	डॉ0 (श्रीमती) प्रीति सिन्हा	109
114 वेदेषु काव्यतत्त्वानि	डॉ0 धनीराम अवस्थी	110
115 वेदों में अलंकार	केशव दत्त बलियानी	111
116 ऋग्वेद में सौन्दर्य	श्रीमती मिनाक्षी हुड्डा	112
117 भारतीय नाट्य परम्परा एवं वेद	डॉ0 दुर्गा प्रसाद मिश्र	112
118 पिङ्गल छन्द:सूत्र का महत्व:.........	डॉ0 विजेन्द्र कुमार तोमर	114
119 वेदेषु काव्यतत्त्वानि	डॉ0 शुचि अग्रवाल	115
120 वेदेषु ध्वनि:	सुन्दरलाल	116
121 वैदिककाव्यसौन्दर्ये छन्दसामुपादेयता	डॉ. व्रजेन्द्र कुमार सिंहदेव	117
122 छन्दो वै स:	डॉ0 रूप किशोर शास्त्री	118
123 वैदिक संहिताओं में अलंकार	डॉ0 विनोदचन्द्र विद्यालंकार	118
124 वैदिक वाङ्मय में रस निरूपण	डॉ0 विजयवीर विद्यालंकार	120
125 Pathetic Pleasure (Karuna Rasa)....	Dr. Manjusha Kaushik	122
126 Raudra rasha its use and effect.....	Priyanka Tyagi	122
127 Theory of Rasa in john......	Dr. Mudita Agnihotri	123

वैदिक शिक्षा

128 वैदिक शिक्षा का आदर्श और वर्तमान....	डॉ. लता गर्ग	125
129 शिक्षाशास्त्रीयपरम्परायामयोगवाहादिध्वनय:	भवानी शंकर: शर्मा 'महाजनीय:'	126
130 वैदिक सूत्रों की शैक्षणिक उपादेयता	किरण पुरोहित	127
131 प्रमुख प्राचीन भारतीय आचार्यों का...	उमेश चन्द्र पुरोहित	129
132 शिक्षासाहित्य विमर्श:	डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी	130
133 भारतीयाचार्य्याणां शिक्षाविषयकं चिन्तनम्	डॉ0 धर्मेन्द्र शास्त्री	130
134 भारतीयाचार्याणां शिक्षा विषयकं चिन्तनम्	डॉ0 उर्मि गौतम	131
135 शिक्षा का लक्ष्य दैवी सम्पत्	डॉ0 बबीता शर्मा	132
136 वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था	डॉ0 प्रेरणा गोयल	133
137 पंचमुखी शिक्षा वैदिक शिक्षा का लक्ष्य	जितेन्द्र सिंह	134
138 वैदिक शिक्षा में गुरु शिष्य परम्परा.....	अलका राठौर	135
139 स्वामीदयानन्दसरस्वती महोदयस्य.....	डॉ0 लोकमान्य मिश्र:	136
140 शिक्षायां स्वामिविवेकानन्दस्य योगदानम्	डॉ0 गणेश शंकर विद्यार्थी	137
141 वेदाङ्ग में शिक्षा	अंशिता मिश्रा	138
142 वैदिक शिक्षा प्रणाली में मानवाधिकार....	डॉ0 के0पी0 सिंह	139
143 वैदिक संस्कृति की शिक्षा.........	रुचि मिश्रा	140

144 शिक्षाशास्त्र के उपजीव्य उपनिषद् डॉ0 अर्चना शर्मा 140
145 समकालीन शिक्षा पद्धति और वेद बबलू वेदालंकार 141
146 वेदों में शिक्षा का स्वरूप डॉ0रवीन्द्र सिंह 142
147 पातञ्जलशिक्षातत्त्वम् डॉ0 रमाकान्तमिश्र: 144
148 महर्षि दयानन्द सरस्वती का....... डॉ0 आशारानी राय, प्रीति शुक्ल 144
149 Ideas and Ideals of Education...... Dr. Shashi Tiwari 145

आयुर्वेदः

150अथर्ववेद में प्रतिपाद्य आयुर्वेद भास्कर प्रसाद द्विवेदी 147
151 वेदों में आयुर्वैदिक शल्य-चिकित्सा डॉ0 उमा जैन 147
152 वैदिक वाङ्मय में चिकित्सा विज्ञान डॉ0 आशा गुप्ता 149
153 वेदों में स्वास्थ्य एवं सुखपरक-भारतीय.. डॉ0 छाया रानी 150
154 वेदों में आयुर्विज्ञान डॉ0 आर. के. जखमोला 151
155 अथर्ववेद में आयुर्वेदीय चिकित्सा....... डॉ0 चरण सिंह 152
156 अथर्ववेदीय चिकित्सा-विज्ञान अनुराधा जायसवाल 153
157 अथर्ववेद में वर्णित आयुर्विज्ञान डॉ0 मन्जू नारंग 153
158 आयुर्वेद में पञ्चकर्म चिकित्सा-पद्धति राधा चतुर्वेदी 154
159 वेदों में कौमारभृत्यम् विशेषत:....... डॉ0 अच्युत भट्टाचार्य
डॉ0 कल्पना पटेल, डॉ0 लोकेश 155
160 यजुर्वेद में औषधि विमर्श विवेक जगदीश बिडवई 157
161 वेदों में चिरपुरातन आयुर्वेद डॉ0 आरती मिश्रा 158
162 आयुर्वेद में सृष्टि प्रक्रिया आराधना पाण्डेय 159
163 अथर्ववेद एवं चिकित्सा तत्त्व जयप्रकाश वर्मा 159
164 अथर्ववेदे अपामार्गस्य महत्वम् डॉ0 अहल्या नायक 161
165 ऋग्वेदे आयुर्विज्ञानम् वेदव्रत 161
166 ऋग्वेद में वर्णित औषधी विज्ञान तृप्ति गोस्वामी 162
167 वेदों में स्वास्थ्यरक्षा सुदर्शनदेवार्य व्रती 163
168 अथर्ववेद में मनश्चिकित्सा डॉ. सुधा जैन 164
169 वैदिक वाङमय में मानव आयु ..... डॉ0 सुभाष चन्द्र शास्त्री 165
170 वेदों में आयुर्वेद महेश चन्द्र बहुगुणा 166
171 वेदों में सोमतत्व डॉ0 प्रतिभा पुरन्धि 167
172 Depression-Prevention and...... Dr. (Mrs.) Lalita Kuppuswamy 169
173 MEDICINAL PLANTS USED...... Dr. Neha P. Pandya 169

निरुक्तम्

174 निर्वचन प्रक्रिया	डॉ0 रामनारायण शास्त्री	172
175 स्वामिदयानन्दस्य वेदार्थदिक् तदाधारश्च	डॉ0 जितेन्द्र कुमार	172
176 निरूक्ते दैवतचिन्तनम्	डॉ0 सुधा शुक्ला	173
177निरुक्तस्य महत्वमुपयोगिता च	डॉ0 हरेश ऐ जोशी	174
178 महर्षि दयानन्दानुसारं वेदार्थस्य समस्या:	श्रीमती आरती	175
179 यास्क और नैरुक्ताचार्य परम्परा	डा0 रामसेवक दुबे	176
180 निर्वचन प्रक्रिया	डॉ0 रीना अस्थाना	177
181 वेदार्थ में निरुक्त का महत्त्व	डॉ0 रघुवीर वेदालंकार	178
182 निरुक्त: एक परिचय	डॉ. हेम बाला पाण्डेय	178
183 वेद व्याख्यान परम्परा में दयानन्द सरस्वती..	ब्रजेश कुमार शुक्ल	179
184 निरुक्त में वर्णित शैक्षणिक तथ्य	डॉ0 रेखा शुक्ला	180
185 विष्णु शब्द की निरुक्ति एवं स्वरूप	डॉ.अर्चना लाल सिंग	181
186 वेदार्थ के समझने में निरुक्त.......	रुद्रेतपाल आर्य	182
187 निरुक्त और वेद	डॉ0 मनुदेव बन्धु	183
188 ऋग्वेद में चित् निपात का अर्थपरिशीलन	अवधेश कुमार उमराव	183
189 सृष्टि-उत्पत्ति विषयक वेदमंत्रों..........	डॉ0 कमलेश कुमार सी. चोकसी	184
190 वेदों में पुनरुक्ति	डॉ0 दिनेशचन्द्र शास्त्री	185
191 निरुक्त में उद्धृत युद्धोपकरण देवता	सरिता श्रीवास्तव	186
192 निरुक्तशास्त्रे दैवतचिन्तनम्	डॉ0 वेदप्रिय आर्य	187
193 वेदार्थावगमने निरुक्तस्य महत्त्वमुपयोगिता च	अर्चना मिश्रा	188

दर्शनम्

194वैदिकवाङ्मयानुसारं मोक्षस्वरूपविमर्श:	प्रो0 महेश झा	190
195 वेदस्य वेदता	सुष्मिता पाण्डेय	191
196 वेदेषु पुनर्जन्मन: अवधारणा	भाव प्रकाश	192
197 उपनिषत्सु दृष्टान्तदार्ष्टान्तिका:	डॉ. वेणीशास्त्री जोशी	192
198 अथर्ववेदे जीवतत्त्वस्यावधारणा	प्रो0राजेश्वर मिश्र:	193
199 ऋग्वेद में मोक्ष की अवधारणा	डॉ0 उमाकान्त यादव	194
200 वेदों में कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म....	डॉ0 आशा रानी राय	195
201 यजुर्वेद में दार्शनिक विचारधारा	श्रीमती वन्दना सिंह	196
202 वैदिक अद्वैत दर्शन	डॉ0 (श्रीमती) सुधा गुप्ता	196

203 वैदिक संहिताओं में पुनर्जन्म की अवधारणा डा0 अनीता जैन 197
204 सृष्टि की उत्पत्ति एवं ऋग्वेदीय...... डॉ0 मधु अग्रवाल 198
205 उपनिषदों में वाक् का स्वरूप सुजेता शास्त्री 199
206 ऋग्वेदीय नासदीयसूक्त परिशीलनम् आचार्य डॉ0 नागेश चन्द्र पाण्डेय: 200
207 वेदों में परम तत्व विशाल भारद्वाज 202
208 वेदों में अद्वैततत्व रिपु दमन सिंह 202
209 यजुर्वेद में वर्णित ऋत एवं सत्य..... पूनम शर्मा 203
210 वैदिक रहस्यवाद का पाश्चात्य...... डॉ0 अर्चना श्रीवास्तव 204
211 स्वामी दयानन्द दर्शन की वेद मूलकता रञ्जना शर्मा 205
212 ऋग्वेद में आत्मतत्त्व डॉ0 लेखराज शर्मा 206
213 उपनिषदों में मोक्ष की अवधारणा पवन कुमार 207
214 वेदों में प्राण का स्वरुप डॉ. सोम देव शतांशु 209
215वैदिक सूक्तों में दर्शन डॉ0 उर्वशी सी. पटेल 209
216 वैदिक वाङ्मय में दार्शनिक तत्त्व डॉ0 इन्द्रेश 'पथिक' 210
217 वैदिक देवता तत्त्व विमर्श डॉ0 रामकृष्ण आचार्य 211
218 उपनिषदों में कर्म सिद्धान्त प्रो0 महावीर 212

योग:

219 वेदों में योगविद्या डॉ0 जया तिवारी 215
220 वैदिक तत्त्व चिन्तन और विविध चक्र योगेश कुमार व्यास 216
221 वेदों में नियम (योगाङ्ग) का स्वरूप डॉ0 देवेन्द्र सिंह सोलंकी 217
222 वैदिक वाङ्मय में योग का महत्व डॉ0 रमेश सिंह 218
222 वेदों में योग आभा शुक्ला 219
223 वेद में योग विमर्श डॉ0 विनोद कुमार पाण्डेय 219
224 अथर्ववेदे योगमार्ग: डॉ. रजनी शर्मा 220
225 योगदर्शन में प्राणायाम विज्ञान अविनाश कुमार रॉव 221
226 वैदिक वाङ्मय में योग की अवधारणा डॉ0 नाहीद आबिदी 222
227 वेदों में अष्टांग योग विद्या मनीषा गर्ग 223
228 वेदों में योगविद्या मीनू तलवाड़ 224
229 तनाव कारण एवं मुक्ति डॉ0 सी0 पी0 खोखर 225
230 वेदों में योग ऋतु तलवाड़ 226

231 श्रुति साहित्य में प्राणविद्या	रोहित आर्य	226
232 वैदिक वाङ्मय में प्राण विद्या	डॉ0 वन्दना वागीश्वरी	227
233 वेदों में योग	कुञ्जदेव मनीषी	228
234 वेदों में योग	सुभा सिंह	229
235 VIBHUTI-YOGA IN VEDA	Saloni	230

यज्ञः

236यजुषि यज्ञस्य यूपः	डॉ0 अञ्जू रानी	233
237 वैदिक वाङ्मय के आधार पर..........	डॉ0 ब्रह्मानन्द पाठक	234
238 वैदिक ज्ञान का स्वरूप यज्ञ	कविता आर्या	235
239 वैदिक साहित्य में यज्ञ का महत्त्व	ओम् प्रकाश शर्मा	235
240 वेदों में यज्ञ विज्ञान का निरूपण	नबिता जम्बाल	236
241 यज्ञों का दार्शनिक स्वरूप-यजुर्वेद...	अनीता मिश्रा	236
242 वेदों में यज्ञ चिकित्सा	डॉ0 प्रदीप कुमार	238
243 वेदों में यज्ञ विधान	अन्जू रानी	239
244 कल्पसाहित्ये विविधाः यज्ञाः	डॉ0 (श्रीमती) प्रतिभा श्रीवास्तव	239
245 वैदिक वाङ्मय में यज्ञों का पर्यावरणीय......	मयंक शेखर पाण्डेय चन्द्र प्रकाश शुक्ल	240
246 वैदिक यज्ञ विधि और रुद्राष्टाध्यायी	अरुण कुमार मिश्र	241
247 यज्ञों की सार्वभौमिकता	डॉ0 मीरा वाणी	242
248 वैदिक यज्ञ विज्ञान	डॉ. वत्सला उपाध्याय	243

संस्कृतिः

249 भारतीय संस्कृतौ वृक्षाणां पवित्रता	डॉ. राम सुमेर यादव	245
250 वेदेषु मानव जीवनदर्शनम्	प्रवीण कुमार	246
251 नैतिकता का मूलाधार ऋग्वेद	डॉ (श्रीमती) मनोरमा गुप्ता	246
252 वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता	शिव शंकर स्वामी	247
253 वैदिक संस्कृति का आदर्श	आभा तिवारी	248
254 वेद और 'कामायनी' की 'श्रद्धा'	डॉ0 मृदुल जोशी	249
255 वैदिक संस्कृति में जीवन का स्वरूप	डॉ. श्यामा व्यास	250
256 वेद साहित्य में नीति विषयक दर्शन	श्रीमती भावना स्वामी	250
257 वैदिक मन्त्रों की महानारदीयपुराण में स्थिति	डॉ0 महेश दत्त शर्मा	251
258 लोक संग्रह रूपी कर्म रहस्य	डॉ0 उदय सरकार	252

259 यजुर्वेद में वामनावतार का निरूपण — राशी गुप्ता
260 वेदों में काम — डॉ0 प्रणव शर्मा
261 वेदोऽखिलो धर्ममूलम् — प्रभाकान्त त्रिपाठी
262 ऋषि दयानन्द की धर्म....... — डॉ0 सोहनपाल सिंह आर्य
263 पुरातात्विक संस्कृतियों के आधार...... — डॉ0 ममता पाण्डेय, जगमोहन भटनागर
264 अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में आश्रम व्यवस्था — महेन्द्र कुमार
265 अथर्ववेद के आलोक में वर्ण व्यवस्था — परवीन बाला
266 वैदिक साहित्य में ऋणत्रय — ओमकार सिंह त्यागी
267 Dharma and Artha in the........ — Dr. M.N. Joshi

समाज:

268 वैदिक वर्णव्यवस्थाया वैज्ञानिक आधार: — डॉ0 हरिगोपाल शास्त्री
269 वेदेषु समाज व्यवस्था, — डॉ0 अन्नपूर्णा
270 सामाजिक क्षेत्र में ऋग्वैदिक....... — डॉ. अर्चना कुमारी दुबे
271 वेदों में समाज शास्त्र एक विश्लेषण: — गिरिराज सिंह
272 कल्प साहित्य व उसकी विधायें....... — शैलेन्द्र कुमार
273 ऋग्वेद में समाज शास्त्र — योगेन्द्र कुमार शास्त्री
274 वेदों में सामाजिक जीवन का स्वरूप — अजय प्रताप सिंह
275 वेदों में सामाजिक स्थिति — डॉ. रेणु गुप्ता
276 वेदोक्त आदर्श समाज — बिजेन्द्र शास्त्री
277 पुरुष सूक्त में वर्णित समाज एवं..... — डॉ0 गीता शर्मा
278 आधुनिक भारतीय समाज में वैदिक.... — सचेन्द्र कुमार सिंह
279 सामाजिक मूल्यों के स्रोत-वेद...... — हेमलता शर्मा, रविन्द्र कुमार सैनी
280 वैदिक काल में भारतीयों का..... — शशि बाला वर्मा
281 वेदों में सामाजिक चिन्तन — डॉ0 सन्त कुमार मिश्र
282 वैदिक समाज एक अध्ययन — डॉ0 देवेन्द्र प्रताप सिंह
283 वैदिक समाजशास्त्र — श्रीमती हिमांचल कुमारी
284 वेदेषु समाजशास्त्रम् — आँचल गुप्ता
285 वैदिक साहित्य में समाज की अवधारणा — ओजोव्रत
286 Socio-cultural impacts..... — Dusyant Singh, Ayaz Ali

अध्यात्म

287 कैवल्योपनिषदि ब्रह्मात्मानुसन्धानम् डॉ0 उमारानी त्रिपाठी 282
288 मन्त्र एवं उनकी रहस्यात्मक शक्तियाँ विनीता कुमारी 283
289 वेदों में वर्णित विज्ञानवाद, अध्यात्मवाद...... दयाशंकर मिश्र 283.
290 वेदों में वर्णित शरीर डॉ0 सुमन शर्मा 284
291 आचार्यों का दैवत चिन्तन डॉ0 सत्यदेव निगमालंकार 285
292 वेदों में दार्शनिक अध्यात्म तत्त्व डॉ0 धीरजकुमार 286
293 Relevance Vedic-Medication....... Dr. Shalini Shukla 286
294 Stress in life and remedy....... Dr. Suchitra Mitra 287
295 Role of Upanisads in Social...... Prof. K.V.Venkateswara Rao 289
296 Opposites in the Kathopanisad.......... Dr. S.C. Goswami 291
297 The Vedic Thought Samadarsana Dr. Trinath Hota 291

नारी

298 वेदों में नारी उत्थान डॉ0 ममता गंगवार 294
299 वैदिक संहिताओं में नारी के अधिकार डॉ0 प्रतिभा सक्सेना 295
300 वैदिक समाज में नारी की गरिमा सुजाता मंगोत्रा 296
301 वैदिक वाङ्मय में नारी विमर्श सूरज राव 297
302 वेदों में नारी आदर्श रवीश कुमार सिंह 298
303 वैदिक परिवार में नारी डॉ0 पूजा श्रीवास्तव 298
304 वैदिक समाज में स्त्री की भूमिका...... डॉ0 अखिलेश कुमार दुबे 299
305 सूत्र साहित्य में नारी डा0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता
डा0 मुकेश शर्मा 300
306 STATUS OF WOMEN IN INDIA Vernika , Nidhi Vats 301
307 The improved environment.... Aparna Sharma 302

अर्थशास्त्रम्

308 वैदिक मन्त्र संहिताओं में आर्थिक........ डॉ0 ओमप्रकाश पाण्डेय 304
309 यजुर्वेद में वर्णित अर्थनैतिक संकेत डॉ0 सविता भट्ट 305
310 वेदों में मुद्रा डॉ. ऋचा तिवारी 306
311 वैदिक युग की अर्थव्यवस्था डॉ0 अजय कुमार 306
312 अथर्ववेद में गोधन डॉ0 रेणू बाला 307
313 वेदों में अर्थशास्त्र अर्चना आर्या 308
314 ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्थ तत्त्वीय, मीमांसा डॉ. योगेश शास्त्री 310

315 ऋग्वेद : वाणिज्य के परिप्रेक्ष्य में	आभा द्विवेदी	311
316 वैदिक अर्थव्यवस्था	अर्चना श्रीवास्तव	311
317 वेदों में आर्थिक चिन्तन	बीना	312
318 वेदों का अर्थशास्त्रीय अवलोकन	डॉ0 जगत नारायण ठाकुर	313
319 वैदिक युगीन कृषि व्यवस्था	डॉ0 अखिलेश कुमार शुक्ल	314

भूगोलः

320 वेदों में भूगोल	डॉ. अर्चना विश्नोई	316
321 वैदिक भूगोल और खगोल विद्या	डॉ0 महेन्द्र कुमार मिश्र	317
322 वेदों में राजनीति, भूगोल एवं दर्शन.......	डॉ. दीपा गुप्ता	318
323 ऋग्वेद में नदियाँ : एक परिशीलन	डॉ0 कमला अग्रवाल	319
324 ऋग्वैदिक भूगोल	प्रतिमा त्रिपाठी	320
325 ऋग्वेदकालीन भौगोलिक अध्ययन	अजय कुमार शुक्ल	320
326 वैदिकवाङ्मय में ऋतु अवलोकन	बिपिन कुमार	321
327 ऋग्वैदिक खनिज सम्पदा	अमृता अस्थाना	322
328 वैदिक वाङ्मय में भूगोल	विष्णु प्रकाश त्रिपाठी	322
329 वैदिक साहित्य में गंगा की अवधारणा	डॉ. दीप शिखा	323
330 Geography of Uttaranchal in Vedas	Meena Chauhan	324

मनोविज्ञानम्

331 ऋग्वेदे मनोविज्ञानम्	डॉ0 नागेन्द्रनाथ झाः	326
332 वेदे बाल मनोविज्ञानम्	डॉ0 सुधा बाजपेयी	326
333 वेदों में मनोविज्ञान	डॉ0 कालिन्दी पाठक	327
334 वेदों में मानसिक चिकित्सा	डॉ0 (श्रीमती) पद्मिनी नातू	328
335 वेदों में मनोविज्ञान	नीतू सिंह	329
336 वेदों में मनस् की अवधारणा	डा0 सुधा वाजपेई	330
337 Prospects of Psychology in......	Dusyant Singh	331

सूत्रग्रन्थः

338 कात्यायनशुल्बसूत्रे दिक्साधनप्रयोगः	डॉ0 बृजेशकुमारशुक्लः	333
339 ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतीक विधान	डॉ0 बलवीर आचार्य	334
340 धर्मसूत्रों में प्रतिपादित सामाजिक न्याय	डॉ0 टी0 केशव नारायण वेदालंकार	335
341 गृह्यसूत्रों के कतिपय विवेच्य स्थल	डॉ. वेदपाल	336
342 कल्प साहित्य में विविध यज्ञ	डॉ0 गीतांजलि तिवारी	337

343 भिन्नाकारी वेदियों का [illegible] विवेचन	डॉ0 राजेन्द्र विद्यालंकार	338
344 वैदिक विवाह में प्रतिज्ञा मन्त्रों की उपादेयता	रश्मि सिंह चौहान	339
345 धर्मसूत्रों में प्रायश्चित्त विधान	वेदप्रकाश	340
346 धर्मसूत्रों में वर्णित ब्राह्मणों के......	हिमांशु पंडित	341
347 Geometrical Structures In	P.Venkata Chalapathi	342

व्याकरणम्

347 वाग्भेदपर्यालोचनम्	डॉ0 अयोध्यादास श्रीवैष्णव:	345
348 व्याकरणस्य दर्शनशास्त्रत्वम्	डॉ0 भोला झा:	346
349 संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणोपाया:	डॉ0 ओमप्रकाश भट्ट:	347
350 व्याकरणशास्त्रे स्फोटवाद:	डॉ. भारतनन्दन चौबे	348
351 पाणिनीयं व्याकरणं सङ्गणकविज्ञानञ्च	डॉ. सुरेन्द्र कुमार:	348
352 भर्तृहरिमते स्फोटस्वरूपम्	डॉ0 कामदेव झा:	349
353 वैयाकरण शास्त्रे स्फोटवाद:	बलदेव प्रसाद चमोली	350
354 व्याकरणशास्त्र में वाक्यतत्त्व एवं स्फोट	डॉ0 विक्रम कुमार	351
355 ऋग्वेद का वाक्सूक्त तथा आधुनिक...	डॉ0 नीरजा टण्डन	352
356 संस्कृत व्याकरण में स्फोट सिद्धान्त	डॉ0 (श्रीमती) कृष्णा आचार्य	353
357 व्याकरण शास्त्र में स्फोटवाद	डॉ0 रामप्रकाश वणी	354
358 संस्कृत वैय्याकरण परम्परा	डॉ0 (श्रीमती) अर्चना श्रीवास्तव	355
359 सामवेद के आग्नेय पर्व में समास-विवेचन	डॉ0 सुधा सिसोदिया	356
360 श्री महादेव भट्टाचार्य विरचित 'उपसर्गवर्ग:.....	डॉ. रीता तिवारी	359
361 संस्कृत व्याकरण की वैज्ञानिकता	डॉ0 भीमसिंह	360
362 संस्कृत वैयाकरण परम्परा	डॉ0 विजय कुमार	361
363 वैयाकरण मत में स्फोट	डॉ0 अरविन्द कुमार	362
364 संस्कृत व्याकरणस्य सरलीकरणोपाया:	रोशनलाल गौड	363
365 शास्त्र परम्परा में स्फोट तत्व का स्वरूप	नन्दलाल चौरसिया	364
366 अर्थचिन्तन परामपरा में स्फोट	डॉ0 सुमन कुमारी	365
367 संस्कृत व्याकरणस्य सरलीकरणोपाया:	श्रीवत्स कुमार विद्यालंकार	366
368 व्याकरण में स्फोटवाद	स्मृति पाण्डेय	367
369 वैदिक संस्कृत व्याकरण शास्त्र....	संजूलता वर्मा	367
370 संस्कृत वैयाकरण परम्परा में आचार्य.......	युद्धवीर सिंह	368
371 अष्टाध्यायी के पठन पाठन में...............	अभिमन्यु	369
372 Vyakarana: A Journey	Dr. (Mrs.) Bhagyalata Pataskar	370

ज्योतिष्

373 अथर्ववेद का मानव जीवन पर प्रभाव	डॉ. भारतभूषण मिश्र	372
374 ज्योतिष वेदांग का महत्त्व	डॉ. भगवानदास शास्त्री	373
375 वैदिक परिप्रेक्ष्य में वार समीक्षण	अनिल कुमार पोरवाल	374
376 वेदों में ज्योतिष	डॉ0 सुदेश कुमार शर्मा	375
377 वैदिक समाज में सूर्य की उपस्थिति	राजेश शर्मा	376
378 वैदिक साहित्य में चन्द्र की अवधारणा	धर्मपाल	377
379 वेदाङ्गों में ज्योतिष की अवधारणा	कृष्णा दूबे	378
380 शनि स्वभाव निरूपण	विजेन्द्र कुमार	378

मानवीयमूल्यम्

381 वेदों में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों	डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी	381
382 वैदिक मूल्यों की राष्ट्र के स्वरूप.....	डॉ0 मीरा मोदी	382
383 वैदिक संस्कृति में मानवाधिकारों	डॉ0 अरुण कुमार दीक्षित डॉ0 (श्रीमती) सोना दीक्षित	383
384 वेदमाता गायत्री: बुद्धिशोधन से......	डॉ0 श्वेता शर्मा	385
385 ETHICAL CONCEPTS IN	Prof. Shashiprabha Kumar	386
386 Indian Ethics on Environment	Gokulendra N.D.Goswami	387

विविधा:

387 वेदेषु विमानविज्ञानम्	डॉ0 बुद्धदेव शर्मा	389
388 वैदिकगर्भविज्ञानम्	डॉ0 निरञ्जन मिश्र:	390
389 वेदेषु दूर्वाया: महत्त्वम्	डॉ0 श्वेता बिश्नोई	391
390 संस्कृतवैयाकरणपरम्परा में आचार्य.....	प्रो0 श्रीकृष्ण शर्मा	392
391 वैदिक समाज में नारी	डॉ0 अरुणा शर्मा	392
392 भर्तृहरि को अभिमत व्याकरणाध्ययन...	डॉ0 ब्रह्मदेव	393
393 ऋग्वेद में अलङ्कार योजना...	डॉ0 कपिल देव शुक्ल	394
394 व्याख्या के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द....	डॉ0 शारदा वर्मा	395
395 शिक्षा विषयका: ग्रन्था:	डॉ0 सतीश कुमारी	396
396 वेदों में धन की अवधारणा	डॉ0 गणेशदत्त शर्मा	397
397 वैदिक प्रकृति तत्त्व एवं हिन्दी साहित्य	डॉ0 सुचित्रा मलिक	397
398 गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस......	डॉ0 मिथिलेश कुमार	398
399 ऋग्वैदिक उपनिषदों का संक्षिप्त अनुशीलन	प्रो0 मु0 इसराइल खा	399

400 वेदों का सर्वविद्यामयत्व	प्रो0 भवानीलाल भारतीय	400
401 वैदिक गौ रक्षण की वर्तमान में उपेक्षा	डॉ0 प्रतिभा शुक्ला	400
402 ऋग्वेद, में कर्म का महत्व	डॉ (श्रीमती) गीता परिहार	401
403 आथर्वणिक मधुविद्या	डॉ0 दीनदयाल वेदालंकार	402
404 वैदिक वाङ्मय में संगीतिक......	डॉ0 निशा पाठक	402
405 वैदिक साहित्य में वर्णित व्यवस्था.....	डॉ0 रवि प्रकाश	404
406 ऋग्वेद में अङ्गिरस्	डॉ0 किरण कुमारी	405
407 वेदों में वेदमाता गायत्री मंत्र एवं	डॉ0 शील निगम	406
408 सामी देवताओं में वैदिक इळ:	डॉ0 असहाब अली	407
409 वृद्धों व नयी पीढ़ी के मध्य समायोजन.....	अखिलेश कुमार शुक्ल	408
410वेदाङ्ग साहित्ये विविधा: विद्या:	अनीता विश्वकर्मा	409
411 वेदों में अहिंसा का स्वरूप	श्रीमती राजलक्ष्मी	409
412 वैदिक देवता मरुत् एवं वैश्विक प्रभाव	क्षमा शुक्ला	410
413 वैदिक वाङ्मय में 'संहिता' शब्द का...	सुरुचि पारीक	411
414 वेदों की मिथकीय कथाओं का हिन्दी....	दीपमाला	412
415 वेद की अतुलनीय महिमा	शालिनी पाण्डेय	412
416 वैदिक संहिताओं में वर्णित आचार दर्शन.....	डॉ0 सुनीता केशरी	413
417 वेदों में योग का स्वरूप	डॉ0 रघुबीर वेदालंकार	
	डॉ0 (श्रीमती) सुनीता	414
418 'ऋत' का मानवजीवन में सार्वकालिक.....	डॉ0 मन्जू त्रिपाठी	415
419 वैदिक यज्ञों की वर्तमान में उपादेयता	डॉ0 आशारानी पाण्डेय	416
420 वेद की दृष्टि में-राष्ट्र-संकल्पना	डॉ0 चन्द्रकान्त गर्जे	417
421 राजधर्म का स्वरूप - अथर्ववेद....	डॉ0 रमा शर्मा	417
422 वेदों में पर्यावरण चिन्तन	तारादत्त अवस्थी	418
423 ऋग्वेद का प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा	कुलदीप शुक्ल	419
424 ज्योतिष शास्त्र वास्तुविद्या के परिप्रेक्ष्य में	दीपाली मित्तल	420
425 ईशोपनिषद्यात्मविज्ञानम्	डॉ0 माधवी त्रिपाठी	421
426 वेदों में विविध विद्यायें-आचार शास्त्र	डॉ0 शिवानी विद्यालंकार	421
427 वैदिक वाङ्मय में विधि-निषेध	बृजेश गौतम	422
428 व्याकरण विद्या का मूल आधार वेद	डॉ0 निष्ठा विद्यालंकार	424
429 दाम्पत्य-जीवन की आदर्श संस्कृति-वेद	डॉ0 अक्षयवर नाथ तिवारी	425
430 विवाह-संस्कार वैदिक काल से प्रचलित है	डॉ0 डी0पी0 श्रीवास्तव	426

431 वैदिककालीन आदश पारवार एवं संस्कृति	कमलापति शास्त्री	427
432 पति पत्नी और दाम्पत्य जीवन....	राहुल	427
433 विवाह के प्रकार और रिवाजों......	अनीता शर्मा	428
434 वेदों में सैन्यविज्ञान	डॉ0 विनोद कुमार गुप्त	429
435 वेदों में अपराध निरोध के उपाय	डॉ0 स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती	429
436 वेदों में शान्ति भावना	हरेन्द्र नारायण देव गोस्वामी	431
437 भारतीयशास्त्रेषु सृष्टि प्रलयविज्ञानम्	डॉ0 शिवशंकर मिश्र:	431
438 वैदिक ऋषियों की कवि मेधा	नेहा मल्होत्रा	432
439 वेदों में आयुर्वेद के मूल-तत्व	आकाश	432
440 वेदों में आयुर्वेद की अवधारणा	डॉ0 जगदम्बा प्रसाद चमोली	433
441 वैदिक व्यक्तित्व के प्रतिमान	देवेन्द्र कुमार	434
442 वेदों की महिमा	नवदीप गुप्ता	434
443 वेदार्थस्य विविधा: प्रक्रिया:....	डॉ0 सुधीरकुमार आर्य:	435
444 A Comprehensive Comparison......	Dr. Piyush Desai	435
445 The Vedic seer Grtsamada	Dr. Indu Deshpande	436
446 Non-violance vis a vis Holistic...	Dusyant Singh Harsh Vardhan	437
447 ROLE OF INTERCULTURAL......	Mr. Rakesh Kumar	438
448 The Art of Writing In Ancient India	Krishan Kant 'Vaidik' Kapura	438
449 Conservation of water resources...	Dr. DS. Malik, P.K. Bharti Yogesh Shastri	439

संयोजक की लेखनी से

हम सब गुरुकुलवासियों के लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गत तीन वर्षों से निरन्तर हिमालय की उपत्यका में गंगा के पावनतट पर स्वामी श्रद्धानन्द की कर्मभूमि में वैदिक विद्वानों का महाकुम्भ संपन्न हो रहा है। श्रद्धालु भारतीयों की यह मान्यता है कि प्रयाग में दो धाराओं में प्रवाहित होता हुआ सित असित जल गंगा और यमुना के संगम का मनोरम दृश्य उपस्थित करता है किन्तु वहाँ सरस्वती की धारा लुप्त है, जिससे त्रिवेणी की अवधारणा अधूरी रह जाती है। जहाँ वैदिक वाङ्मय के मनीषी विद्वान् और विदुषियाँ एक स्थान पर सम्मिलित होकर वैदिक ज्ञानधारा प्रवाहित करते हैं वही सरस्वती है, और यह नयनाभिराम दृश्य उपस्थित होने जा रहा है ६,१०,११ फरवरी, २००७ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सभागार में।

आज जब कि २१ वीं सदी में सम्पूर्ण विश्व, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर रहा है। विज्ञान अपने चरमोत्कर्ष पर है। संचार साधनों से विश्वग्राम की संकल्पना साकार हो रही है। वैभव बढ़ रहा है। बड़े-बड़े उद्योगों, भवनों, सड़कों का निर्माण आर्थिक समृद्धि को दर्शाता है। विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विद्यालयों का विस्तार शिक्षा के प्रचार-प्रसार का स्पष्ट संकेत है। शिक्षकों एवं छात्रों की संख्या बढ़ रही है और इसी के साथ बेरोजगार युवकों की सेना खड़ी होती जा रही है। एक ओर IIM और IIT से शिक्षा प्राप्त युवक, युवतियों को करोड़ों रुपये वेतन देकर बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ सम्मान जनक कार्य प्रदान कर रही हैं, वहाँ करोड़ों ऐसे भी युवक हैं, जिन्हें तीन अंको के मासिक वेतन में सेवा का कार्य प्राप्त नहीं हो पा रहा है, परिणामतः **निराशा, हताशा, कुण्ठा, अवसाद** ने युवा पीढ़ी को ग्रस लिया है। अभाव का जीवन जीने वाला यह वर्ग **अपराध, हिंसा, आतंक** में लिप्त होकर कुपथगामी बन जाये, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु सुख और समृद्धि की जिन्दगी जीने वाला देश का धनाढ्य वर्ग अथवा उच्च वर्ग भी आज मार्ग भटक रहा है। प्रतिदिन ऐसे मर्म भेदी समाचार सुनने, पढ़ने और देखने को मिलते हैं, जिन्हें सुन, पढ़ और देखकर मर्मान्तक पीड़ा होती है। भौतिकता की आन्धी में मानव अपना मार्ग भूल रहा है। बड़े-बड़े पदों पर प्रतिष्ठित महानुभाव गीता के इस वचन को भूलते जा रहे हैं **यद्यद् आचरति श्रेष्ठस्तदेवेतरो जनः** अर्थात् बड़े श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, छोटे उन्हीं का अनुगमन करते हैं।

कहाँ हैं वे राष्ट्र नेता जो **तिलक, गाँधी, सुभाष, सावरकर, लालबहादुर शास्त्री, दीनदयाल उपाध्याय, राममनोहर लोहिया** और **डॉ० अम्बेडकर** के रूप में देश का मार्गदर्शन करते थे। आज न जाने कहाँ खो गये वे शिक्षा शास्त्री जो **स्वामी श्रद्धानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, महात्मा हंसराज** बनकर राष्ट्र की शिक्षा नीति तैयार करते थे। **सा विद्या या विमुक्तये, माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः, सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्, तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्, मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा, वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या, कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः, अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा**

भवतु सम्मना अर्थात् विद्या वह है जो मुक्ति प्रदान करती है, यह भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, सब सुखी रहें, सब नीरोग हों, यह सम्पूर्ण संसार उस परमात्मा से व्याप्त है, के पदार्थों का त्यागपूर्वक उपभोग करो, किसी के धन वैभव पर लालच मत करो, यह धन कि है? अर्थात् सुख स्वरूप 'क:' प्रजापति का है, भाई-भाई से द्वेष न करे और बहिन बहिन से न करे। संपूर्ण वसुधा हमारा परिवार है, जहाँ सम्पूर्ण विश्व एक घोंसला बन जाता है, एक दूसरे इस तरह प्रेम करो जैसे गाय अपने सद्योजात शिशु से प्रेम करती है, इस संसार में श्रेष्ठ कर्म हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो, पुत्र पिता का अनुगामी और जननी के साथ समान मन वाला ऐसे सुन्दर-सुन्दर जीवन को सुपथगामी बनने की प्रेरणा देने वाले वेद के अमृतवचन सुनाई नहीं जिस देश में घर-घर में प्रात: सायं सम्पन्न होने वाले यज्ञ के धूम से और वैदिक ऋचाओं की ध्वनि से पर्यावरण-प्रदूषण नाम की कोई समस्या ही नहीं थी, वह यज्ञ कहाँ चला गया? ये ऐसे प्रश्न हैं, जो हम सबको सदैव चिन्तित करते हैं। आज संपूर्ण संसार अशान्त है, **हिंसा**, राग, द्वे **दुराचार, अनाचार, भ्रष्टाचार, प्रान्तवाद, जातिवाद एवं आतंकवाद के विषधर** मानवता को **डस रहे हैं। समस्त विश्व को प्रेम, मित्रता, दया, करुणा, अहिंसा का संदेश** देने वाली **विश्ववारा वैदिक संस्कृति का और कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का उद्घोष करने वाली** आ **संस्कृति का तेज कुछ कम हो रहा है।** हम जंगली थे असभ्य थे हमें पहनना, खाना, पीना, पढ़ लिखना नहीं आता था, हम अनार्य थे, बाहर से आर्यों ने आकर यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित कि इस प्रकार का अनर्गल प्रलाप कर इस देश के अमर शहीदों और महापुरुषों पर मिथ्या आरोप ल वाले तथा कथित बुद्धिजीवियों ने भारत के स्वर्णिम इतिहास को दूषित कर युवा पीढी में जगने आत्मगौरव एवं राष्ट्रगौरव को नष्ट करने का षड्यन्त्र चला रखा है। जब दुनियाँ के अन्य देश सभ्य और संस्कृति के विकास में बहुत पीछे थे, अशिक्षित थे, धर्म और संस्कृति से बहुत दूर थे, तब ह ज्ञान विज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ थे। यहाँ पुष्पक विमान था जो आकाश, पृथ्वी एवं में शब्द की गति से अधिक तीव्र वेग से चलता था। यहाँ परमाणु की व्याख्या करने वाले क सदृश ऋषि थे। **अष्टाङ्ग योग से कायिक, मानसिक एवं वाचिक दोषों और रोगों को दूर क ब्रह्मानन्द का मार्ग दिखाने वाले पतञ्जलि जैसे महर्षि थे।** चिकित्सा विज्ञान की गूढ़ से गूढ़ ग्रन्थियों को खोलकर पूर्ण स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त करने वाले चरक के समान परम ज्ञानी साहित्य, संगीत, कला, कौशल में यह देश सबसे आगे था। नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र, वाद्य आदि सम्बन्ध में सुनकर हमें आश्चर्य होता है। कोई ऐसी विद्या नहीं थी, जो इस देश में फल-फूल न रही हो। इन समस्त उपलब्धियों का मूल था वैदिक ज्ञान। चार वेद, उनके व्याख्यानभूत ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषदादि ग्रन्थ, वेदार्थावगमन के लिये साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों द्वारा प्रणीत **शिक्षा**, कल्प **व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष** विषयक सहस्रों ग्रन्थ, महर्षि गौतम, कणाद, कपिल पतञ्जलि आदि विरचित सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त, मीमांसा आदि ग्रन्थ, मनु की मनुस्मृति, आदिकवि वाल्मीकि का अमर महाकाव्य रामायण, महर्षि वेदव्यास का महाभारत, भोज का समराङ्गणसूत्रधार, वराह मिहिर आदि की कालजयी कृतियाँ, चरक और सुश्रुत, विष्णु शर्मा के

पञ्चतन्त्र तथा महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, माघ आदि की रससिक्त काव्य रचनाएँ और इस प्रकार की असंख्य अमर कृतियों का अपार काव्य वैभव हमारे पास है। आज की सारी समस्याओं का समाधान इस अगाध और अनन्त ज्ञानसागर में विद्यमान है। चारों वेद इस अक्षय ज्ञान की गंगोत्री हैं। हम वैदिक ज्ञान से दूर होते चले गये, समस्यायें बढ़ती गईं, इसलिए **युग द्रष्टा एवं नव जागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द ने वेदाध्ययन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। महर्षि ने कहा था- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।** हमारे समस्त प्राचीन साहित्य में वेद की महिमा कूट-कूट कर भरी पड़ी है। वेद मानव मात्र के लिए हैं। वेदों में सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक सत्य निहित है। वैदिक ज्ञान में दुनिया की समस्त समस्याओं का समाधान है, इसलिए हमें वेदों की ओर चलना ही होगा। वेदोदधि का मन्थन कर प्राप्त होने वाला नवनीत अथवा अमृत मानव के समस्त कष्टों को दूर कर सकेगा, इस सत्य को ध्यान में रखते हुए हमने ६,१०,११ फरवरी २००७ में गुरुकुल की पावन भूमि में त्रिदिवसीय अन्ताराष्ट्रिय-वेद-वेदाङ्ग-विद्वत् महासम्मेलन का आयोजन किया है। हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों से वरिष्ठ विद्वानों के साथ-साथ युवा विद्वान् एवं विदुषियाँ अहमहमिकया इस महाकुम्भ में आ रहे हैं। मैं यह देखकर अत्यन्त भावविह्वल हूँ कि विद्वानों की जहाँ वैदिक ज्ञान के प्रति भक्ति है, हरिद्वार और गंगा के प्रति अनुरक्ति है तो गुरुकुल के प्रति विशेष प्रीति है। **हमारे पास सुख, सुविधा के अच्छे साधन नहीं, वैभव नहीं, यदि है तो केवल विशुद्ध प्रेम, समस्त विद्वानों और विदुषियों के प्रति हृदय का सम्मान।** उसी को अधिमान देते हुए भाइयों और बहिनों ने हमारे निमन्त्रण को स्वीकार किया, शोधपत्र सारांश भेजे और बहुत अच्छी संख्या में हरिद्वार पधार रहे हैं। आवास, भोजन, परिवहन आदि की व्यवस्था में संभावित असुविधाओं के लिए क्षमा याचना करते हुए प्रेमपूर्ण हृदय से हम आप सबका स्वागत एवं अभिनन्दन कर रहे हैं। विद्वानों के शोधपत्र सारांश इस स्मारिका में अत्यन्त लघुरूप में प्रस्तुत हैं। हमने इस अवसर पर पाँच वैदिक विद्वानों के अभिनन्दन का संकल्प लिया है, जो देव भाषा संस्कृत के गौरव हैं। अपना समग्र जीवन संस्कृत की सेवा में समर्पित करने वाले ये महनीय विद्वान् हैं- **वेदमूर्ति डॉ० रामनाथ वेदालंकार, डॉ० अमरनाथ पाण्डेय, डॉ० हरिनारायण दीक्षित, डॉ० गणेश दत्त शर्मा एवं आचार्य प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री।** इन विभूतियों का सम्मान करते हुए हमे अतिशय आनन्दानुभूति हो रही है। समारोह की सफलता के लिए हमें देश की अनेक विभूतियों की शुभ कामनाएँ प्राप्त हुईं हैं, हम सबके प्रति नतमस्तक होकर सबका आभार प्रकट करते हैं। इस महासम्मेलन की सफलता के लिए जहाँ विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय **प्रो० स्वतन्त्र कुमार जी** का अतिशय सहयोग, मार्गदर्शन एवं प्रेरणाएँ प्राप्त हुईं हैं, वहाँ उपकुलपति **प्रो० वेदप्रकाश जी** का पदे पदे पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता रहा है।

विश्वविद्यालय के पूर्व कुलसचिव **डॉ० ए० के० चोपड़ा**, वर्तमान कुलसचिव **डॉ० आर.डी. शर्मा** एवं वित्ताधिकारी **श्री एन०के० ग्रोवर** तथा लेखाधिकारी **श्री महेन्द्र सिंह नेगी**, शिक्षा परीक्षा विभाग के प्रभारी **श्री प्रेम जुयाल** के सहयोग के लिए इन सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट

करना मेरा धर्म है।

इस महाकुम्भ के सफलता पूर्वक आयोजन में मेरी छोटी सी प्रार्थना को स्वीकार कर सहर्ष ब बड़ा सहयोग करने वाले देश के गौरव, आर्यरत्न, प्रसिद्ध उद्योगपति **पद्मश्री श्रीयुत् बृजमोहन मुंजाल** को किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि श्री मुंजाल जी शतायु हों, उन कीर्ति सर्वत्र व्याप्त होती रहे। यज्ञादि शुभ कर्मों के अनुष्ठान से तथा परोपकार एवं राष्ट्रसेवा से अपना जीवन सफल बनायें। इस अवसर पर उदारतापूर्वक सहयोग करने वाले क्रिस्टल वर्ड के अध्य **माननीय श्री हजारी लाल जी, श्री ज्ञानेश जी** एवं भारत के प्रसिद्ध प्रतिष्ठान भेल के कार्यपालक निदेशक **श्रीयुत् अनिल सचदेवा जी डॉ० राजकुमार रावत जी,** जन कल्याण फार्मेसी के संस्थापक **वैद्य श्री विश्वम्भर सिंह जी, आर्य दानवीर श्री कौड़ाजी** आदि महानुभावों के प्र कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह स्मारिका आप सब सहृदयों के कर कमलों में सादर सस्नेह समर्पित है।

इस स्मारिका को सीमित समय में प्रकाशित करने में किरण प्रिण्टिंग प्रैस के स्वामी श्री **चन्द्रकिरन सैनी** का प्रशंसनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। ईश्वर से प्रार्थना है कि सैनी जी का प्रतिष्ठान सदैव उन्नति करता रहे। उन सब मित्रों, शिक्षकों शिक्षकेतर कर्मचारियों एवं प्रिय छात्रों को साधुवाद धन्यवाद देना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ, जिनके हर प्रकार के सहयोग से यह आयोजन सफल हो सकेगा।

इस स्मारिका में जो-जो उत्तम है, ग्राह्य है, अमृतरूप है, वह सब आपकी साधना, तपस्या एवं प्रेम का परिणाम है, जहाँ जो कमियाँ हैं, वे सब मेरी हैं अथवा यूँ कहें कि मानवोचित अल्पज्ञता के कारण है। असुविधाओं के लिए पुन: आप सब सुहृज्जनों से क्षमायाचना करते हुए तथा पुनः पुनः आगमन से कृतार्थ करने के विनम्र अनुरोध के साथ यह स्मारिका आपके करकमलों में सादर समर्पित है।

विद्वच्चरणानुरागी

प्रो० महावीर
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
अधिष्ठाता, प्राच्यविद्या संकाय
संयोजक

Swami Satyamitrananda Giri
(Ex Jagadguru Shankracharya)
Founder President : Bharatmata Mandir

परम प्रेयांसः श्री महावीर अग्रवाल महाभागाः।
गु० कां० वि० वि० हरिद्वारस्थाः।

सप्रेम हरिस्मरणम्। विश्वविद्यालये 2007 फरवरी मासस्य 9-10-11 तारिकासु अन्ताराष्ट्रियं वेद वेदाङ्ग सम्मेलनं भविता, इति विज्ञाय परमं प्रमोदमावहति चेतः।

'उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत' इति विप्रता विश्वकल्याणकारिणी वर्तते। विना वेदाध्ययनं च इयं विप्रता नोपलब्धा भवति नापि च धृतिं क्षमां दमम् अस्तेयम् शौचमिन्द्रियनिग्रहं धियं विद्यां सत्यमक्रोधं च लभन्ते।

वेदाः विश्वज्ञानस्य आश्रयः। चराचरस्य जगतः अस्तित्वम् ओम् इति पारिवारिकतां च बोधयन्ति वेदाः। प्रकृत्या एकरूपतां जीवानां कृते जीवनोपाय स्वरूपादर्शा एकम् पुत्रो रक्षे पृथ्वी प्राणिता तस्याः विश्वम्भरा भूमिमाता रत्नगर्भा तां प्रमाणि अथर्व "चोदयित्री सूनृतानाम्" इत्यादि रूपेण ऋषिः प्रशंसितम्। तच्च मातृदर्शनेन शिशूनां हर्षप्रकर्षो च उद्भवत्यानन्द सन्दोहं संदिशति। "चित्रं देवानामुदगादनीकं मन्त्रे "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति चिन्तनं सूर्यस्य पितृत्वे दर्शनमिव प्राणसञ्चारकं बोधयति।

इमाः आपः शिवतमा इमा राष्ट्रस्य भेषजीः।
इमा राष्ट्रस्य वर्धिनी रिमा राष्ट्रभृतो यशाः। ~~स्वच्छ~~ यदि नद्यः पुण्यतोयाः तर्हि तासां भोज्यं सुप्रकाशितं भवति अन्यथा ताः, कर्मनाशा नदीव विनाशलीलां वहन्ति। कलुषैः दूषिता स्वयं नष्टा सर्वान् नाशयन्ति।

अद्यत्वे वेदशिक्षाविहीनानां मानवानां कृते पृथिव्याः नदीनां पर्वतानां सागराणां नैव निर्मलत्वं दोहनमेव सम्भवति; सुनामी त्रासतां भूकम्पनाशतां अतिवृष्टिम् अनावृष्टिं च मानवानां दर्शयन्ति। संसूचयन्ति च तस्य आत्मनः ~~[illegible]~~ आगतविनाशकालम्।

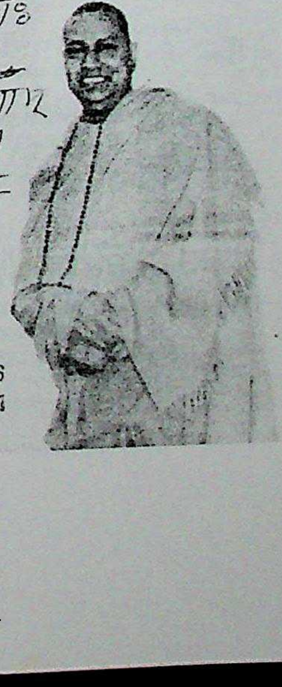

SAMANVAYA KUTIR, SAPTA SAROWAR
HARIDWAR - 249 410 (UTTARANCHAL) INDIA
Telephone : Office : 0133 - 460256, Fax : 0133-460981
Residence : 0133-460135
Bharat Sadan : 0133 - 460111, Fax : 0133 - 460010

फोन 01334-260256
फैक्स 01334-260981

Swami Satyamitrananda Giri
(Ex Jagadguru Shankracharya)
Founder President : Bharatmata Mandir

अयं तु स एव जीवति चिरायते शास्त्रिप्रार्थितो यः
जानाति वेदाशिसाम्'—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्
सहस्रं धारा द्रविणस्य दुह्यां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती
य आत्मनं विस्तारयति ऊरसहनशीलः मनुष्यस्तु सार्वभौमो
विशालो सर्वसहः हरिः वेदे विज्ञानमेव विदुषामु निष्पति
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।
अतोऽत्र सर्वाः आस्था ब्रह्मैव स्पृशन्ति' यथा उक्तम् 'एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः
प्रत्यङ्गानि भवन्ति' अङ्गप्रत्यङ्गेन अङ्गी प्रसन्नं भवत्येव।

वेदशिक्षा सदाचारं राष्ट्रियजागरणं बोधयन्ती उदरपूर्तिं मिथुनमपि
अपीति। तदपि न पीडयति लोकम्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्
इत्युक्तो धर्मं सामाजिकीं पीडां मनुष्यस्य दूरीकर्तुमनुष्ठापयते।
वैदिकानां सामान्यः मूलो धर्मः तिष्ठति धर्मशब्दस्य च सदाचारं कर्तव्यमेव
"निखिलो चौर्यं लोके" इत्यनुगताम् आस्थाम् प्रत्येकं लक्ष्मणादि ब्रह्म पर्यन्तेषु
उपयोगिता ज्ञापयति यथा सूर्यस्योपयोगिता प्रकाशरूपे उष्णतारूपे जीवनदायित्वरूपे
रक्षकरूपेऽस्य धर्मः। धर्मं विना सर्वस्यापि अस्तित्वं नश्यति। स धर्मः सर्वेषां
अपेक्ष्यः न तु उपेक्ष्यः निरपेक्ष्यो वा। अत एव समरांगणे ब्रह्माण्डे धर्मस्य वर्णितः
"धर्मस्य वृक्ष हेतुमूलः वेदः स्कन्धः पुराणशाखाढ्यः।
क्रतुकुसुमः मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति" मोदते स्वरूपेऽवतिष्ठते
यो हि धर्मं वेद वेदं वेद स स्वस्वरूपं परं चिन्तयन् विनापि भोगैः मोदते
यथा हि निरूपितम् "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति"
अयं मनो सर्वस्वदानं निष्प्रभो न तु सर्वेषां सर्वस्वहरणम् अपहरणादिकं मा
वैदिको विप्रः "मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः" इत्यादि विज्ञापयति पठ्यते
तेनैव द्यावापृथिव्योः शान्तिं कामयमानः "द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः" इति
शान्तिं सर्वत्र मधु वर्षा शान्तिं च उद्घोषति न तु परमाणुविस्फोटं कलहं च
भवता सम्मेलने सर्वत्र शान्ति मधु वर्षा कृपा कीर्ति तस्य सफलता कामयते

भवदीयः
स्वामी सत्यमित्रानन्दः
ॐ

SAMANVAYA KUTIR, SAPTA SAROWAR
HARIDWAR - 249 410 (UTTARANCHAL) INDIA
Telephone : Office : 0133 - 460256, Fax : 0133-460981
Residence : 0133-460135
Bharat Sadan : 0133 - 460111, Fax : 0133 - 460010

फोन 01334-260256
फैक्स 01334-260981

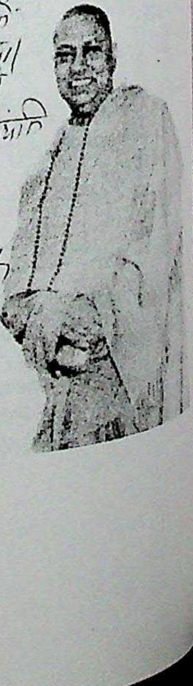

December 18, 2006

Dear Divine Soul
Prof. Mahavirji Agarwal,

I hope that – by God's grace – this finds you and all the divine souls at Gurukul Kangri in the best of health and happiness.

I am so impressed to see the details of the upcoming International Ved-Vedang-Vidwat Sammelan, which will be held on the 9-11 February at Gurukul Kangri University, Haridwar.

The Vedas hold within them the keys and the answers to all problems which plaque mankind today. Regardless of what sphere we examine – health, science, architecture, spirituality, Truth – we will find the most complete and accurate reference in the Vedas. The Vedas tell us how to live in Truth and complete Health – of the body, mind and spirit.

To propagate the study of the Vedas is a great task and a great gift for all of humankind. I am very impressed to see the dedication, commitment and deep knowledge held by the team at Gurukul Kangri. Through their devotion to this ancient science, they are making Vedic wisdom available for the world.

I am sure that this Sammelan will not only teach people, but it will also touch people and transform them through the divine wisdom of the Vedas.

I pray to the Lord Almighty to bestow His blessings upon you today and forever.

In the service of God and humanity,

Swami Chidanand ॐ

Swami Chidanand Saraswati

H.H. Pujya Swami Chidanand Saraswatiji
Parmarth Niketan Ashram; P.O. Swargashram; Rishikesh (Himalayas); Uttranchal 249304, India
Phone: +91-135-2440088, 2440077 Fax: +91-135-2440066
Email: swamiji@parmarth.com websites: www.parmarth.com, www.ihrf.com

|| HARI OM ||
Prabhu Premi Sangh Charitable Trust
H.O. Prabhu Prem Ashram, Jagadhari Road, Ambala Cantt-133006 (Haryana) India. Ph.: 0171-2699335, 26993
Shri Harihar Ashram, Kankhal, Haridwar-299 408. Ph.: 01334-246974

Founder Chairman
Junapeethadheeshwar Acharya
Mahamandaleshwar

Pujyapada
Swami
Avdheshanand Giriji

शुभाशंसा

ऋषिवर श्रीमद्दयानंद सरस्वती के सिद्धान्तों पर स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित तथा विश्वभर में पौर्वात्य प्राचीन और अर्वाचीन विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन की संगम-स्थली के रूप में स्थापित एवं सुचर्चित गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार अपनी पाठ्यक्रमेतर साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए भी विख्यात है। मुझे ज्ञात हुआ है कि इसी क्रम में विश्वविद्यालय का संस्कृत विभाग 9-11 फरवरी 2007 में एक अंतर्राष्ट्रीय वेदवेदांग सम्मेलन का आयोजन कर रहा है।

वेद विश्व की पहली अपौरूषेय दैवीय कृति है। यह मनुष्यमात्र का पथप्रदर्शक ग्रंथ है जिसने मनुष्य जाति में सद्गुणों की प्रतिष्ठा का अप्रतिम कार्य किया है। वेद भारतीयता और भरतीयता के भी उज्ज्वलतम पक्ष विश्वबंधुत्व की प्रेरणा से ओतप्रोत है। वेदवेदांगों का अध्ययन-अध्यापन और उन पर चर्चा सदा से हमें प्रेरित ही नहीं करती रही, बल्कि ऊर्ध्वचेता बनाती रही है।

9 से 11 फरवरी के बीच गुरुकुल के गंगातटवर्ती परिसर में संपन्न होने वाले इस वृहद आयोजन में देश-विदेश के विद्वानों द्वारा की जाने वाली वेदचर्चा से निस्संदेह वाग्देवी की अभ्यर्थना के साथ साथ मानव के ज्ञानकोश में अभिवृद्धि होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

इस आयोजन की सफलता के लिए अंत:करण से मेरी शुभाशंसाएँ!!

स्वामी अवधेशानन्द गिरि
जूनापीठाधीश्वर
आचार्य महामण्डलेश्वर

Website : www.prabhuprem.org.in | email : Prabhuprem@hotmail.com
www.hariharashram.org | hariharashram@hotmail.com

के.एल.कोचर
संयुक्त सचिव एवं उपराष्ट्रपति के प्रेस सलाहकार
दूरभाष : 23016344, 23016422
फैक्स :23018124

उप-राष्ट्रपति सचिवालय
नई दिल्ली-110011
VICE-PRESIDENT'S SECRETARIAT
NEW DELHI - 110011

संदेश

महामहिम उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय: हरिद्वारम् के संस्कृत विभाग द्वारा त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय शोध सम्मेलन ''वेद और वेदांग'' का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है।

उपराष्ट्रपति जी को पूर्ण विश्वास है कि, महासम्मेलन में सम्मिलित होने वाले विद्वान अपने शोधपत्रों के माध्यम से वैदिक वाङ्मय में छिपे हुए रहस्यों को उद्घाटित करेंगे, जिससे मानवता की रक्षा हो सकेगी।

उपराष्ट्रपतिजी आयोजन की सफलता, विश्वविद्यालय की निरंतर प्रगति तथा छात्रों के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए प्रकाशित स्मारिका के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

नई दिल्ली
30 जनवरी, 2007

(के.एल.कोचर)

सुदर्शन अग्रवाल
राज्यपाल, उत्तरांचल

राजभवन
देहरादून - 248 003

दिनांक 02 फरवरी, 2007

संदेश

यह प्रसन्नता की बात है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वारम् के संस्कृ विभाग द्वारा 09 से 11 फरवरी, 2007 तक एक त्रि-दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय शोध सम्मेल का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका भी प्रकाशित की जायेगी

यह बड़े हर्ष की बात है कि इस सम्मेलन के दौरान आयोजित होने वाली संगोष्ठी का विषय ''वेद और वेदांग'' रखा गया है। यह अपने आप में अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। इसके लिए आयोजकों की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम है।

भारत वस्तुतः ऋषि-मुनियों और साधू-संतों का देश रहा है, जहां हर युग और ह काल में अनेक युग पुरुषों ने जन्म लेकर समस्त मानव जाति को प्रेम-एकता, सहयोग-सद्भाव, दया-उपकार, सहिष्णुता-सहअस्तित्व, वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्व-शांति और मानवता का सदुपदेश दिया। इसके साथ ही समाज को ''आदर्श समाज'' और मानव को ''आदर्श मानव'' बनाने के सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य को लेकर अनेक धर्म ग्रन्थों की रचना की।

मैं पूर्णतया आशान्वित हूँ कि इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में वेद वेदांग के बारे में विस्तार से विचार विमर्श किया जायेगा। इसके निश्चय ही अच्छे परिणाम सामने आयेंगे।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के सफल आयोजन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

सुदर्शन अग्रवाल

(सुदर्शन अग्रवाल)

प्रतिभा पाटील
राज्यपाल, राजस्थान

सत्यमेव जयते

राजभवन
जयपुर-302 006

7 नवम्बर, 2006

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के तत्वावधान में 9 से 11 फरवरी, 2007 तक हरिद्वार में वेदांग विद्वत् सम्मेलन का आयोजन एवं इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

वेद–वेदांग भारतीय ज्ञान–विज्ञान के अमूल्य ग्रंथ हैं। इनमें निहित ज्ञान को आधुनिक एवं विकसित विज्ञान के साथ समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन महत्वपूर्ण है। वेद–वेदांग में विद्यमान अवधारणाओं से विश्व समुदाय का हित साधन संभव है।

मुझे विश्वास है कि सम्मेलन में निष्णात विद्वानों के विचार एवं निष्कर्ष वेद–वेदांगों की सार्थकता को व्यापक बनाने में सहायक होंगे।

मैं इस सम्मेलन के आयोजन एवं स्मारिका के प्रकाशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करती हूँ।

प्रतिभापाटील

(प्रतिभा पाटील)

राज्यपाल बिहार
GOVERNOR BIHAR

राजभवन, पटना
RAJ BHAVAN
PATNA - 800 022

9 अक्टूबर, 2006

संदेश

यह जानकर मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार द्वारा "अन्तर्राष्ट्रीय वेद-वेदान्त-विद्वत सम्मेलन" का आयोजन किया जा रहा है जिसमें देश-विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान भाग ले रहें हैं ।

इस पवित्र अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है ।

स्मारिका के प्रकाशन तथा सम्मेलन के लिए मेरी शुभकामनाएँ ।

(आर० एस० गवई)

वीरभद्र सिंह
मुख्य मन्त्री

हिमाचल प्रदेश

एलर्जली
शिमला – 171 002

सन्देश

मेरे लिए यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 9 से 11 फरवरी, 2007 तक अन्ताराष्ट्रिय वेद-वेदातं-विद्वत-सम्मेलन का आयोजन कर रहा है जिसमें विश्व के उच्चकोटि के मूर्धन्य वैदिक विद्वान हिस्सा लेंगे।

भारत के पौराणिक ग्रंथों में उल्लिखित सामग्री आदिकाल से विश्व समाज का मार्गदर्शन करती आ रही है और ब्रम्हांड के रहने तक मानवता के कल्याण के लिए मार्गदर्शिका की भूमिका निभाती रहेगी। हमे इस बात का गर्व है कि भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है जिसने अनेकों अन्य संस्कृतियों का सृजित किया है। हमारे वेद-वेदान्त ज्ञान के भण्डार हैं तथा हर वर्तमान तथा भविष्य की समस्याओं का समाधान उनमें विद्यमान है।

मैं आशा करता हूं कि 'अन्ताराष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान विश्व के विद्वानों द्वारा इस ज्ञान को मानवता के कल्याण के लिए विश्व के कोने-कोने तक पंहुचाने के उपायों पर विस्तृत विचार विमर्श होगा ताकि इस आलौकिक ज्ञान का प्रकाश हर प्राणी तक पंहुच सके और उनका जीवन सफल हो सके।

सम्मेलन की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

(वीरभद्र सिंह)

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार - २४९४०४

शुभकामनाएं

पं. सुदर्शन शर्मा
कुलाधिपति
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वा

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि हमारा प्रिय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्याल 9,10,11 फरवरी 2007 में International Veda-Vedang Conference आयोजित कर रहा है जिसमें देश-विदेश के उच्च कोटि के वैदिक विद्वान् बहुत बड़ी संख्या में स्वामी श्रद्धानन्द क पुण्यभूमि में पधार रहे हैं।

युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संपूर्ण संसार का कल्याण चाहते हुए वेद की महिम प्रतिपादित करते हुए वेद मार्ग पर चलाने का सन्देश दिया था। आज के भौतिकतावादी युग में भ वेद ज्ञान उतना ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है, जितना प्राचीन काल में था।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि, महासम्मेलन में सम्मिलित होने वाले भाई और बहिन अपने शोधपत्र के माध्यम से वैदिक वाङ्मय में छिपे हुए रहस्यों को उद्घाटित करेंगे, जिससे मानवता की रक्ष हो सकेगी।

मैं सम्मेलन की सफलता के लिए विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 स्वतन्त्र कुमार, आचार्य एवं उपकुलपति प्रो0 वेदप्रकाश शास्त्री तथा संयोजक प्रो0 महावीर को हार्दिक बधाईयां एवं शुभकामना प्रेषित करता हूँ। सम्मेलन में पधारे भाइयों और बहिनों का शत-शत स्वागत अभिनन्दन।

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,

हरिद्वार - २४९४०४

शुभाशंसा

प्रो० स्वतन्त्र कुमार
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

4 मार्च 1902 में गंगा के पावन तट पर हरिद्वार में कांगड़ी ग्राम के समीप महात्मा मुंशीराम ने अपने प्यारे सुपुत्रों चन्द्र और इन्द्र के साथ जालन्धर से आकर गुरुकुल की स्थापना की थी। भारत के भविष्य का निर्माण करने की सुभावना से संस्थापित इस शिक्षा संस्थान का एक अत्यन्त गौरवपूर्ण इतिहास है। स्वतन्त्रता संग्राम में इस विश्वविद्यालय के स्नातकों का अनुपम योगदान रहा है। हैदराबाद सत्याग्रह, पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह और गौरक्षा सत्याग्रह में यहाँ के छात्रों एवं अध्यापकों की अग्रणी भूमिका रही है। साहित्य, पत्रकारिता, आयुर्वेद, राजनीति, समाजसेवा, आदि विभिन्न क्षेत्रों में गुरुकुल कांगड़ी वि0 वि0 के स्नातकों की अलग पहचान है। इन सबसे बढ़कर गुरुकुल ने राष्ट्र को वेद के मार्ग पर चलकर वैदिक संस्कृति की पताका को संपूर्ण विश्व में फहराने का संदेश दिया है। वैदिक साहित्य पर उच्च कोटि का लेखन करने वाले गुरुकुल के आचार्यों को कौन नहीं जानता? आचार्य अभयदेव, स्वामी समर्पणानन्द, पं0 धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति, डॉ0 रामनाथ वेदालंकार एवं आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार के नाम वैदिक साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

आज भी गुरुकुल कांगड़ी वि0 वि0 में वैदिक ज्ञानधारा निरन्तर प्रवाहित है। वेद और संस्कृत विभाग के विद्वान उपाध्याय देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाकर शोध सम्मेलनों में विद्वतापूर्ण वेद विषयक व्याख्या से सबको आनन्दित करते हैं।

इस परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए 9,10,11 फरवरी 2007 में संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो0 महावीर के संयोजकत्व में अन्ताराष्ट्रिय वेद-वेदाङ्ग-विद्वान् महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

मुझे बताया गया है कि इस सम्मेलन में 500 से अधिक विद्वान् एवं विदुषियाँ पधार रहे हैं। मैं गुरुकुल में पधारने वाले सभी भाई बहनों का तथा युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि करने वाले शोध छात्रों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करता हूँ तथा विद्वन्महासम्मेलन की सफलता के लिए शुभकामनाएं प्रदान करता हूँ।

कुलपति

देव संस्कृति विश्वविद्यालय
विश्व के सांस्कृतिक नवोन्मेष के लिए संकल्पित एक अभिनव स्थापना

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य एवं
शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी शर्मा

डॉ. प्रणव पण्ड्या
एमडी

कुलाधिपति	देव संस्कृति विश्वविद्यालय
प्रमुख	अखिल विश्व गायत्री परिवार
निदेशक	ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
संपादक	अखण्ड ज्योति, युगशक्ति गायत्री
अध्यक्ष	स्वामी विवेकानन्द योग अनुसन्धान संस्थान (डीम्ड विश्वविद्यालय)

शुभ कामना संदेश

वेद वेदाङ्ग भारतीय संस्कृति के मूल आधार ग्रंथ हैं। ये दीर्घकाल तक भारतीय जन-जीवन के अंग रहे हैं। आज यह समझा जाता है कि भारतीय जन-जीवन भी वेद विज्ञान से बहुत दूर जा पड़ा है; फिर भी यजुर्वेद का एक ऐसा प्रभाग है जो आज भी जन-जीवन में अपना स्थान किसी न किसी रूप में बनाये हुए है। देव-संस्कृति के अनुयायी पश्चिमी सभ्यता से कितने भी प्रभावित क्यों न हों पर जन्म से लेकर विवाह एवं अंत्येष्टि तक संस्कार परक कर्मकाण्डों से उनका सम्बन्ध थोड़ा बहुत बना ही रहता है। संस्कारों एवं यज्ञीय कर्मकाण्डों के अधिकांश मंत्र यजुर्वेद के ही हैं। उनकी मंत्रशक्ति एवं प्रेरणाओं का सम्पर्क भारतीय जन-जीवन के साथ निरन्तर बना ही हुआ है।

वेद के सभी मंत्र अनुभूतिजन्य ज्ञान के उद्घोषक ऋषियों के अंत:करण से प्रकट होने के कारण लौकिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों से लबालब भरे हैं। ऋषियों ने 'वेद' सम्बोधन किसी पुस्तक विशेष के लिए नहीं किया है, उसका अर्थ है दिव्य साक्षात्कार से उद्भूत ज्ञान। इस आधार पर वेद कोई पुस्तक नहीं ज्ञान की एक विशिष्ट-परिष्कृत धारा हैं।

दिनांक ९ से ११ फरवरी २००७ की अवधि में सम्पन्न होने वाले राष्ट्रीय वेद-वेदाङ्ग-विद्वत सम्मेलन के अवसर पर विद्वतजनों के शोधपत्र सारांशों से युक्त स्मारिका के प्रकाशन से वेदों का दिव्य संदेश जन-जन तक पहुँचेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। इस सम्मेलन की सफलता एवं स्मारिका के सार्थक प्रकाशन के लिए हमारी मंगल कामनाएँ

(डॉ० प्रणव पण्ड्या)

मुख्य परिसर : गायत्रीकुञ्ज-शान्तिकुञ्ज विस्तार, पोस्ट : शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल) 249411, हिमालय (भारत)
Tel : 91 1334 260602, 260309, 260723, 261367 • Cell : 09837059567 Fax : 091 1334 260866
Email : pranav.pandya@gmail.com, shantikunj@awgp.org, drpshankar1950@yahoo.co.in • Internet : www.awgp.org, www.d

उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालयः हरिद्वारम्
'संस्कृत भवन' दिल्ली राष्ट्रीय राजमार्ग, हरिद्वार
दूरभाष : 01334-251720, 275573, फैक्स : 01334-251720

दिनांक 18.11.2006

पत्रांक 785/उ.सं.वि.वि./200607

शुभाशंसनम्

महतः प्रमोदस्य प्रसंगोऽयं यद् हरिद्वारस्थ गुरुकुलकांगड़ी-विश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागः 2007 ख्रिष्टाब्दस्य फरवरीमासस्य 09 दिनांकादारभ्य 11 दिनांकं यावत् अन्ताराष्ट्रिय-वेद--वेदांग--विद्वत्सम्मेलनमायोज्यते। सम्मेलनेमुस्मिन् देशस्य/विदेशस्य विभिन्नेभ्यः विश्वविद्यालयेभ्यः, विद्यापीठेभ्यः,संस्कृतप्रतिष्ठानेभ्यः, महाविद्यालयेभ्यश्च महान्तो मनीषिणः प्रतिभागित्वेनोपस्थिताः भविष्यन्ति। सम्मेलनेऽस्मिन् भारतीयवैभवभूतस्य वेदवेदांगस्यानुद्घाटितानि यानि सन्ति खलु तत्वानि तान्युद्घाटयिष्यन्ति मनीषिमूर्धन्याः सदसद्विवेकिनो विद्वांसः इति नूनं मे विश्वासः।

अस्य सम्मेलनस्य गरिमापूर्णपूर्णतायै भगवन्तं बदरीशं प्रणमनहं सर्वेभ्यः आयोजक-सदस्येभ्यः विशेषतो प्रो0 महावीर अग्रवाल महोदयेभ्यश्च साधुवादं विज्ञापयामि,

(ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मचारी)
कुलपतिः

भगत सिंह कोश्यारी
प्रदेश अध्यक्ष

भारतीय जनता पार्टी
उत्तरांचल

28 दिसम्बर 2006

संदेश

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विख्यात शिक्षण संस्थान गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,हरिद्वार आगामी 9,10 व 11 फरवरी 2007 को अर्न्तराष्ट्रीय वेद, एवं विद्वत सम्मेलन का आयोजन करने जा रहा है। देश विदेश के विद्वानों द्वारा इस शोध संगोष्ठी में प्रेरक व मार्गदर्शक विषयों का प्रतिपादन किया जायेगा। इस अवसर पर विद्यालय द्वारा एक भव्य स्मारिका भी प्रकाशित की जा रही है, जिससे इस अर्न्तराष्ट्रीय संगोष्ठी को नई दिशा प्राप्त होगी।

शोध संगोष्ठी की सफलता एवं स्मारिका के भव्य प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक मंगल कामना स्वीकार करें।

सधन्यवाद

भवदीय,

(भगत सिंह कोश्यारी)

प्रो० महावीर
संयोजक
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तरांचल)

कार्यालय : 39/29/3 बलबीर रोड, देहरादून, उत्तरांचल 248001
दूरभाष - (0135) 2669578, 2669587, 2671304, 3091124 फैक्स 267130

प्रो. वेम्पटि कुटुम्ब शास्त्री
कुलपति
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
मानित विश्वविद्यालय
(मानवसंसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन)

Prof. V. Kutumba Sastry
Vice-Chancellor
RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
Deemed University
(Under MHRD, Govt. of India)

रा०सं०सं०/वीसी-3/06-07/296

08.11.2006

सन्देश

मुझे यह जानकर अति हर्ष का अनुभव हो रहा है कि अन्ताराष्ट्रिय स्तर पर वेद वेदांग विद्वत् सम्मेलन फरवरी, 2007 में देवभूमि के आंचल में स्थापित आपके विश्वविद्यालय में आयोजित किया जा रहा है । देश–विदेश से अनेक बुद्धिजीवियों का आपके विश्वविद्यालय में आगमन होने से आपके विश्वविद्यालय की ख्याति तो बढेगी ही साथ ही तीन दिन तक इस विषय पर गंभीरता से विचारमंथन करने से भारतीय संस्कृति और चिन्तन की अवश्य ही बढोतरी होगी । इन चिन्तनों को आपने एक संग्रह के रूप में प्रकाशित करने का निश्चय किया है यह बहुत ही प्रशंसनीय कदम है । मैं समझता हूं कि इस पत्रिका के माध्यम से भारतीय संस्कृति एवं चिन्तन को जनमानस तक पहुंचाने में सफलता प्राप्त होगी साथ ही इस तरह की पत्रिका आपके विश्वविद्यालय को यशस्विता दिलाने में सहयोगी होगी और आपको इसका अवश्य ही यश प्राप्त होगा । आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस महान् आयोजन को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में सफलता प्राप्त होगी । इस सन्दर्भ में जुडे सभी महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन एवं बधाई प्रेषित करता हूं ।

(वि0 कुटुम्बशास्त्री)

प्रो0 महावीर अग्रवाल
संयोजक
अन्तर्राष्ट्रिय वेद वेदांग विद्वत् सम्मेलन
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार –249404

56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi-110058 Ph. : (O) 28523949 (R) 25085238 Fax : 28521948
EPABX : 28524993, 28521994 Gram : SAMSTHAN E.Mail : rsks@nda.vsnl.net.in

प्रो. ओम प्रकाश
PROF. OM PRAKASH

कुलपति
Vice-Chancellor

महात्मा ज्योतिबा फुले
रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

☎ आफिस/Off (0581) 2527282
निवास/Resi (0581) 2523378
फैक्स/Fax (0581) 2528384 2523334
E-mail : oprakash2@yahoo.com
म.ज्यो.फु. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय
बरेली-243006
M.J.P. ROHILKHAND UNIVERSITY
BAREILLY-243006

रु0वि0/कु0का0/2006/९६८४/12224

दिनांक : 07.11.2006

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि 'गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार दिनांक 9-11 फरवरी 2007 को 'अन्तर्राष्ट्रीय वेद-वेदांग-विद्वत्-सम्मेलनम्' आयोजित कर रहा है जिसमें देश-विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान पधार रहे हैं। वेद-वेदांग के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त विद्वत्जनों के बड़ी संख्या में एक स्थान पर एकत्रित होकर चर्चा-परिचर्चा से निश्चित रूप से समाज को एक नई दिशा मिलेगी। हमारे वेद-पुराण वास्तव में आध्यात्मिक ज्ञान व मूल्यों के अथाह समुद्र है जिनका मंथन होता रहना चाहिए और अमृतरूपी ज्ञान की रसधारा समाज में प्रवाहित होती रहनी चाहिए।

आशा है कि वेद-वेदांग के प्रकाण्ड विद्वानों के इस सम्मेलन में चर्चा-परिचर्चा से अत्यन्त सार्थक एवं सदुपयोगी परिणाम प्राप्त होंगे, जिससे इस सम्मेलन में भाग ले रहे प्रतिभागी एवं सर्वसमाज लाभान्वित हो सकेगा।

सम्मेलन की सफलता हेतु बहुत-बहुत शुभकामनायें,

भवदीय,
ओम प्रकाश
(ओम प्रकाश)

प्रो. महावीर,
संयोजक,
अन्तर्राष्ट्रीय वेद-वेदांग-विद्वत्-सम्मेलनम्,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (उत्तरांचल)।

Dr. N.K. Jain
M.Sc., M.Phil., Ph.D., FBS.
M.A.(Pub.Admn.), M.H.R.M.
Visiting Fellow (Sussex University U.K.)

कुलपति
Vice-Chancellor

1947-2007
60
Diamond Jubilee

(O) 0141-2707863
(R) 0141-2703350
Fax : 0141-2711799
E-mail : vc@uniraj.ernet.in

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
University of Rajasthan, Jaipur

नवम्बर 7, 2006

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के द्वारा तीन दिवसीय "अन्तर्राष्ट्रीय वेद–वेदांग–विद्वत–सम्मेलन" का आयोजन फरवरी 9–11, 2007 के मध्य किया जा रहा है जिसमें देश–विदेश के अनेक मूर्धन्य वैदिक विद्वान पधार रहे है तथा इस अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है ।

मैं इसके सफल आयोजन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ ।

एन. के. जैन

एन0के0 जैन

प्रो0 महावीर
संयोजक
अन्तर्राष्ट्रीय वेद–वेदांग विद्वत सम्मेलन
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्याल,
हरिद्वार

Prof. Raj S. Dhankar
Ph.D. P.D.S., UCLA (U.S.A.)
VICE-CHANCELLOR

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY
ROHTAK-124 001, HARYANA, INDIA
Off. : 01262-274327, 292431
Res. : 01262-274710
Fax : 01262-274133, 274640
E-Mail : rsdhankar_mdurvc@hotmail.com

क्रमांक: VC:MDU:715
दिनांक 8.11.2006

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हो रही है कि गुरूकुल कांगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार 9 से 11 फरवरी , 2007 को 'अन्ताराष्ट्रिय वेद–वेदाग्–विद्वत्–सम्मेलन' का आयोजन करने जा रहा है तथा इस शुभ अवसर पर एक भव्य स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है ।

मुझे इस बात की विशेष खुशी हो रही है कि आज के इस भौतिक युग में भी गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय निरन्तर वेदों के प्रचार–प्रसार में यत्नशील है । वेदों में ज्ञान का भण्डार छिपा है । मुझे विश्वास है कि इस अन्ताराष्ट्रीय सम्मेलन में देश विदेश के विद्वानगण वेदो के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे जो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी । मुझे उम्मीद है कि विश्वविद्यालय समय–समय पर ऐसे आयोजन करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहेगा ।

इस अवसर पर मैं गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय परिवार को अपनी व महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक की ओर से बधाई देता हूँ तथा इस सम्मेलन के सफलतापूर्वक आयोजन हेतु शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ ।

आर. एस. धनकर
(आर0 एस0 धनकर)

Professor R.C. Sobti
Vice-Chancellor

PANJAB UNIVERSITY
CHANDIGARH, *India* 160 014

4140/VC/06
13/11/06

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार अन्तराष्ट्रिय वेद-वेदाङ्ग विद्वत्सम्मेलन का आयोजन करने जा रहा है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विपुल वैदिक साहित्य एवम् इसके अङ्गत्वेन स्वीकृत षोढ़ा शास्त्र (व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प एवं छन्दस्) विशुद्ध भारतीय जीवन-पद्धति के प्रशस्त एवं प्रबल प्रतिपादक होने के कारण हमारी अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर है जिनका सम्यक् अनुशीलन, संरक्षण एवं सम्वर्द्धन करना प्रत्येक भारतीय का पुनीत कर्तव्य है।

हमारी भारतभूमि अनादिकाल से ही महान् आत्माओं और दिव्य विभूतियों की जननी रही है। हजारों वर्ष पहले जब संसार के अन्य देश अज्ञान की तन्द्रा में उंघ रहे थे तो हमारा भारतवर्ष विद्या-तपोवृद्ध ऋषि-मुनियों की कृपा से सांस्कृतिक विकास एवं चेतना से प्रबुद्ध हो रहा था; धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष का क्रियात्मक रूप भारत के जीवन में ही पप्रथमेन प्रस्फुटित हुआ था। उच्च कोटिक आध्यात्मिक ज्ञान भारत से ही उद्भूत होकर अन्य देशों में प्रवृत्त हुआ है।

भूमण्डलीय व वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी यह निर्विवाद अवधारण है :- "Light still goes from EAst to West" अर्थात प्रकाश अभी भी पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर ही प्रवृत्त होता है।

उपर्युक्त चिन्तन-प्रवाह के आलोक में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के द्वारा प्रकृत सम्मेलन के आयोजन का प्रयास सर्वथा श्लाघनीय है। मैं इस सम्मेलन के सर्वविध साफल्य की कामना करता हुआ इसके आयोजक-वृन्द के लिए हार्दिक अभिनन्दन एवं शुभकामनाएं प्रेषित कर रहा हूं।

रणवीर चन्द्र सोबती

(प्रोफेसर आर.सी. सोबती)
उप कुलपति

Telephones : 0091-172-2541945 (Office), 2541428,2541523 (Res); Fax : 0091-172-2541022
E-mail : vc@pu.ac.in rcsobti@pu.ac.in Website : www.pu.ac.in

प्रोफेसर पंजाब सिंह
Prof. Panjab Singh
FNAAS, FIAS, FNIE, FBRSI, FSEE
(EX-SECRETARY, DARE, GOI & DG, ICAR)

कुलपति
VICE-CHANCELLOR

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005 (INDIA)
Phones : (0542) 2368938/230-7220 (O)
: (0542) 2368339/230-7209 (R)
Fax : (0542) 2369951
e-mail : vc_bhu@sify.com

वी0सी0/ २१५८
नवम्बर 17, 2006

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार द्वारा विश्व को वेद के आलोक से आलोकित करने के महनीय उद्देश्य से अन्ताराष्ट्रिय वेद वेदांग विद्वत सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। वेद हमारी सभ्यता के मूल हैं और इन पर निरन्तर विचार विमर्श समाज के लिए शुभ है।

मै सम्मेलन के सफलता की कामना करता हूँ।

(पंजाब सिंह)

SWARN SINGH BOPARAI
Kirti Chakra
Awarded Padma Shri by the President
Vice Chancellor
PUNJABI UNIVERSITY, PATIALA

ਸਵਰਨ ਸਿੰਘ ਬੋਪਾਰਾਏ
ਕੀਰਤੀ ਚੱਕਰ
ਪਦਮ ਸ਼੍ਰੀ ਰਾਸ਼ਟਰਪਤੀ ਵੱਲੋਂ ਪ੍ਰਦਾਨਤ
ਉਪ ਕੁਲਪਤੀ
ਪੰਜਾਬੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਪਟਿਆਲਾ

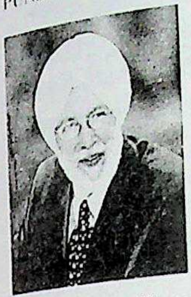

MESSAGE

I am pleased to learn that International Veda-Vedanga Vidwat-Sammelana is going to be hosted by Gurukul Kangri University, Haridwar with Prof. Mahavir Agrawal as its Co-ordinator from 9th to 11th February, 2007. I hope that a large number of scholars from India and abroad will participate in the conference and present papers before the learned gathering. I am confident that the intellectual deliberations will go a long way in expanding the horizons of knowledge and wisdom particularly in the field of Vedic and Oriental Studies.

I take the opportunity to extend my greetings to the organizers of the conference and wish them a grand success.

Swarn Singh
9.12.06
Swarn Singh Boparai

Phone : (Off.) 0175 2286418, 3046001 (Resi.) 2282478, 3046005 **Fax : 0175 2286682**
E mail : (1) boparai@pbi.ac.in, (2) vc@pbi.ac.in, Telegram : UNIVERSITY PATIALA 147 002

Lt Gen. (Retd.) **G.S. Negi**
PVSM AVSM' VSM

CHAIRMAN

उत्तरांचल लोक सेवा आयो
PUBLIC SERVICE COMMISSION UTTARANCHA
P.O. Gurukul Kang
Haridwar - 2494
Ph. (01334)-244283
Fax : (01334) 244

D.O.No. 478 PS 200
Date : 10-01-200

शुभकामना संदेश

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः"
(Let noble thoughts come to us from Every side)

यह अत्यंत गर्व और प्रसन्नता का विषय है कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा "अन्तर्राष्ट्रीय वेद–वेदांग–विद्वत् सम्मेलन" का आयोजन आगामी फरवरी माह में किया जा रहा है एवं इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानंद जी ने जिस गुरूकुल की स्थापना की थी, "वेद" के ज्ञान के द्वारा प्राचीन और नवीन ज्ञान के समन्वय का जो स्वप्न देखा था, उसे आपका विश्वविद्यालय निरंतर साकार कर रहा है। भारतीय ऋषियों ने वेदों के ज्ञान से पूरे विश्व में प्रकाश फैलाया था उसका आज 21वीं सदी में महत्व कम नहीं है। मेरा विश्वास है इस अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में देश–विदेश से आने वाले विद्वान अपनी शोध दृष्टि से वैदिक ज्ञान–विज्ञान की नवीन दिशाएं प्रस्तुत करेंगे एवं वर्तमान विश्व की समस्याओं के समाधान के संदेश भी अपने प्राचीनतम साहित्य के माध्यम से देने का प्रयास निरंतर करते रहेंगे।

मै विश्वविद्यालय के कुलपति एवं संयोजक मंडल के सदस्यों को सम्मेलन की सफलता के लिए शुभकामना प्रेषित कर रहा हूँ, आशा है, यह सम्मेलन विश्व के वैदिक साहित्य के विद्वानों, शोधार्थियों एवं वैदिक साहित्य के छात्रों के लिए मार्गदर्शक मील स्तंभ बनेगा।

भवदीय,

ग. नेगी
(ले.जन.(अ.प्रा.) जी.एस. नेगी)
अध्यक्ष

ओ३म्

राष्ट्रपति-सम्मानित
पूर्व उपकुलपति एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
महर्षि दयानन्द वैदिक शोधपीठ
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

☎ - ०१३३४-२५३८४५
आचार्य (डॉ०) रामनाथ वेदालंकार
विद्यामार्तण्ड
वेदमन्दिर, ज्वालापुर-२४९४०७
(हरिद्वार) उत्तराञ्चल

दिनाङ्क: १.२.२००६

प्रिय प्रो० महावीर,

एतद् विज्ञाय परमानन्दसन्दोहमनुभवामि यद् गुरुकुलकांगड़ीविश्वविद्यालयो वर्षेऽस्मिन् फरवरीमासे भवत्संयोजकत्वे 'अन्ताराष्ट्रियवेदवेदाङ्गविद्वत्सम्मेलनम्' आयोजयतीति। वेदाः खलु आध्यात्मिकस्य दार्शनिकस्य शारीरस्य सामाजिकस्य वैज्ञानिकस्य च भारतीयचिन्तनस्याधारभूताः, विश्वशान्तिसन्देशं मुखरयन्तः, आतङ्कवादमुन्मूलयन्तः, निराशस्यापि मानवस्य हृदये आशां सञ्चारयन्तः, जनमनस्सु प्राणप्रेरकाः सन्ति। सम्मेलने वैदिका विद्वांसो वेदेभ्यो विविधविषयान् निष्कृष्य स्वकीयानि शोधपत्राणि प्रस्तोष्यन्ति, येषां प्रकाशनेन वेदानां गौरवम् आविर्भविष्यति। भव्या स्मारिकापि पाठकानां प्रीतिं ज्ञानवर्धनञ्च जनयिष्यति।

अहं विश्वविद्यालयस्याधिकारिवर्यान् भूयो भूयो वर्धापयन् सम्मेलनस्य साफल्याय स्वकीयाः शुभकामनाः प्रेषयामि।

लसतु लसतु लोके वेदलीलाविलासो
भवतु भवतु कीर्तिर्वेदविद्वद्वराणाम्।
जयतु जयतु श्रद्धानन्दस्वामी वरेण्यः
फलतु फलतु भव्यो विश्वविद्यालयोऽयम्॥

शुभेच्छुः
रामनाथवेदालङ्कारः

ओ३म्

आचार्य एवं उप-कुलपति
Acharya & Pro. Vice-Chancellor

Off. : 0133-416207
Resi. : 0133-423451

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Hardwar
पो० ओ० गुरुकुल कांगड़ी, जि० हरिद्वार - २४६४०४
P.O. Gurukula Kangri, Distt. Hardwar - 249404

दिनांक 16/1/07

अभ्याशंसनम्

समेषां संसारवासिनां मनसि यच्चिन्तनं विद्यते तत् सर्वं वेदे निहितमस्ति। आधिभौतिकम् आधिदैविकम् आद्यात्मिकं च चिन्तनं वेदाश्रितमेव। वेदानां महत्त्वं समुद्गिरता श्रीमता मनुना दिगदितम्–

"यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥"

येन चक्षुषा मनुष्यो भौतिक पदार्थान् पश्यति तच्चक्षुर्मनुष्याणां भौतिकमेव। तस्मिन् चक्षुषि कालक्रमवशाज्जायते विकारोऽतस्तच्चक्षुषोर्विकृतिमत्त्वाद् दृश्यमानः पदार्थः सविकार इव आभाति निर्विकारः सन्नपि। परं येन चक्षुषा जगतो बाह्यमान्तरिकं च रूपं सम्यग् रुपेण प्रत्यहं विलोक्यते,तच्चक्षुस्तु निर्विकारतया सदैव त्रिष्वपि कालेषु याथातथ्येन वस्तु ज्ञापयति, तस्य चक्षुषो नाम वेद एव। अत एव तपस्विना महामनीषिणा वेदतत्त्वविदा मनुना प्रोक्तम् –"वेदश्चक्षुः सनातनम्।"

यदा यदा मानवैर्वैदिक दृषा स्वजीवनं दृष्ट्वा निजाभ्युदये प्रयासाः कृतास्तदा तदा तेषां जीवनं सततं सुखमयं त्रिविधतापविरहितं समभूत्। सुखभाजां जीवन मूले वेदानुराग एव परं सुख विरहितानां जीवन मूले वेदानुरागशून्यतैव दृश्यते। वर्तमाने काले दिने दिने हृदयदाहिन्यो मर्मभेदिन्यो नैराश्योद्भाविन्यः समस्याः प्रादुर्भवन्ति याभि र्निखिलं जगत् कष्टगर्तनिपतितमिव दृश्यते। तासां सर्वासां दारुणदुःख प्रदायिनीनां समस्यानां समाधानं नूनं वेदे विद्यते। अत एव समामोज्यते अन्ताराष्ट्रिय वेदवेदाङ्ग विद्वत् महासम्मेलनम्। अस्मिन् सारस्वत विद्वांसः स्वमेधोन्मेषं प्रकुर्वाणाः विविधेषु विषमेषु विचारान् प्रकटय्य सम्मेलनं सफलमिष्यन्ति।

नूनमेवाहं मन्ये यत् सारस्वतसम्मेलनमभ्युपयाताः सर्वे सूरयः त्रिवेणी संगमामृताम्भसा परिसिक्ता इव, सरस्वतीमातुरङ्काश्रयजनितानन्देन परितृप्ता इव, अमरहुतात्मास्वामिश्रद्धानन्दारोपित गुरुकुल तरुवर पारिजात मञ्जरी परिमलाकृष्टचित्ता इव, वेदवेदाङ्ग पाथो निधि मन्थनोत्था मृतपान निवारित वार्धक्या इव, तपः पूतमहर्षि देवगण विवर्धितार्ष परम्परा त्रिस्रोतस्विनी निर्मलजलावगाहन प्रक्षालित किल्विषा इव, आनन्दपूरित हृदया इव, सम्मेलने विचार्यमाण विविध विद्योल्लासलसिता इव, देवभूमिसमागमामर गाथागानरसपान पवित्रित हृदया इव विभान्ति। चिरस्मरणीयस्यास्य अन्ताराष्ट्रिय वेदवेदाङ्ग विद्वत् महासम्मेलनस्य समस्तायोजकमण्डलस्य डॉ. महावीर अग्रवालस्य आयोजन सचिवस्य च भूयो भूयः सातत्येन वर्धमानां यशस्वितां कामये।

(प्रो. वेदप्रकाशः शास्त्री)

प्रो. सत्यदेव मिश्र
कुलपति (पूर्व)
राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
जयपुर

मङ्गलकामना

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को कालजयिता प्रदान करने में वेदों की प्रमुख भूमिका रही है। विविध ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों, द्विशताधिक उपनिषदों, शिक्षादि वेदाङ्गों और अनेकानेक अनुक्रमणियों से समुपबृंहित यह वाङ्मय न केवल समस्त भारतीय भाषाओं और उनमें उपनिबद्ध साहित्य का उपजीव्य है, अपितु भारतवर्ष के अविच्छिन्न धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों तथा 'सह नौ भुनक्तु' जैसी उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की आधारशिला है। ज्ञान के इस अक्षय कोश में विज्ञान का भी ऐसा कोई विषय नहीं है, जिस पर तत्त्वद्रष्टा ऋषियों के विचार न उपलब्ध हों। यह प्रसन्नता का विषय है कि वेदों के उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसन्धान के लिए विश्रुत गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार त्रिदिवसीय वेद-वेदाङ्ग-विद्वत्-सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। मैं सम्मेलन के आयोजकों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ तथा यह आशा करता हूँ कि इसमें भाग लेने वाले विद्वान् वेद एवं वेदाङ्गों में निहित ज्ञान-विज्ञान की उपयोगिता और समसामयिकता का सम्यक् मूल्याङ्कन करेंगे।

सत्यदेव मिश्र
19.1.07

निवास : 131, नेमी नगर, डी.ए.वी. स्कूल के सामने, दयानन्द मार्ग, वैशाली नगर, जयपुर-302 021

बी एच ई एल
BHEL
अनिल सचदेव
समूह महाप्रबन्धक
ANIL SACHDEV
GROUP GENERAL MANAGER

भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
हेवी इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट प्लांट
रानीपुर, हरिद्वार - 249 403, (उत्तरांचल) भारत
Bharat Heavy Electricals Limited
Heavy Electrical Equipment Plant
RANIPUR, HARIDWAR - 249403, (UTTARANCHAL) INDIA
Tel. : 91-1334-226459, FAX : 91-1334-225096
e-mail : asachdev@bhelhwr.co.in

दिनांक : 11 जनवरी, 2007

संदेश

हर्ष का विषय है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, फरवरी 9-10-11, 2007 को वेदों पर एक अंतर्राष्ट्रीय वेद-वेदांग-विद्वत सम्मेलन आयोजित कर रहा है, जिसमें बहुत से वैदिक विद्वान् पधार रहे हैं।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** की हमारी प्राचीन एवं समृद्ध वैदिक संस्कृति ही वास्तव में विश्व-शान्ति का मूल है। यह विश्वविद्यालय शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ इस समृद्ध परम्परा को जनमानस तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। यह हम सबके लिए गौरव की बात है और इसके लिए यह विश्वविद्यालय, इसका प्रबन्ध मण्डल एवं शिक्षक वर्ग हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

बीएचईएल-हरिद्वार तथा अपनी ओर से मैं इस सम्मेलन की उल्लेखनीय सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

अनिल सचदेव
(अनिल सचदेव)
समूह महा प्रबंधक

प्रो. महावीर अग्रवाल,
संयोजक एवं आयोजन सचिव,
अंतर्राष्ट्रीय वेद-वेदांग-विद्वत सम्मेलन,
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार-249404.

पंजीकृत कार्यालय : बी.एच.ई.एल. हाउस, सीरी फोर्ट, नई दिल्ली - 110 049
REGISTERED OFFICE : BHEL HOUSE, SIRI FORT, NEW DELHI - 110 049

ओ३म्

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार - २४९४०४

आर०डी० शर्मा
कुलसचिव

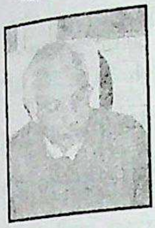

शुभाशंसा

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि संस्कृत विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार 9,10,11 फरवरी 2007 को त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय शोध सम्मेलन वेद और वेदांग जैसे श्रेष्ठ विषय पर आयोजित कर रहा है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय वेद की ज्योति को सदैव सर्वोपरि रखते हुए समाज को दिशा प्रदान करता आया है। इस सम्मेलन से विश्वविद्यालय वेद और वेदांग के समाजोपयोगी संदेश को विश्लेषण के साथ जन-जन तक पहुंचायेगा।

मैं इस राष्ट्रीय संगोष्ठी की पूर्ण सफलता के लिये मंगल कामना व्यक्त करता हूँ।

शुभाकांक्षी

RDSharma

प्रो. आर. डी. शर्मा
कुलसचिव

फोन:01334-246811(का.)01334-245940(वि.)243090, 243919(नि.),मोबा.:9719004453फैक्स:01334-246811
निवासः 3 बड़ा परिवार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार-249404 (उत्तरांचल)
email:registrargkv@redifmail.com website:www.gkvharidwar.org

आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार

आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त प्रख्यात वैदिक विद्वान् हैं। फरीदपुर, बरेली, उत्तरप्रदेश में 7 जुलाई, 1914 ई० को माता श्रीमती भागवती देवी एवं पिता श्री गोपालदास जी के घर आपका जन्म हुआ। गुरुकुल में प्रविष्ट होकर सन् 1936 में आपने वैदिक साहित्य, दर्शनशास्त्र, संस्कृत साहित्य, आर्यसिद्धान्त, अर्थशास्त्र तथा अंग्रेजी विषयों का अध्ययन कर यहाँ से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। संस्कृत में एम. ए. तथा पी-एच.डी. उपाधियाँ आपने आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्त की। सन् 1938 में गुरुकुल विश्वविद्यालय में प्रथम वैदिक शोधकर्ता के रूप में नियुक्त हुए तथा शीघ्र ही वैदिक साहित्य में उपाध्याय बना दिये गये। लगभग 20 वर्ष इस पद पर कार्य करने के अनन्तर गुरुकुल में ही संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हो गये। इसी काल में आप यहाँ प्रस्तोता (कुलसचिव) तथा आचार्य एवं उपकुलपति भी रहे। 1976 में गुरुकुल से सेवानिवृत्ति के पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में **महर्षि दयानन्द वैदिक शोधपीठ** (दयानन्द चेयर) के प्रथम प्रोफेसर एवं अध्यक्ष नियुक्त हुए। जहाँ से इनके तीन शोधग्रन्थ प्रकाशित हुए। 1979 में वहाँ से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र रूप से वैदिक शोध एवं ग्रन्थलेखन में संलग्न हैं।

आपके प्रकाशित प्रमुख वैदिक ग्रन्थ- **वेदों की वर्णन शैलियाँ**, **वेदभाष्यकारों की वेदार्थप्रक्रियाएँ**, **यज्ञमीमांसा**, **वेदमञ्जरी**, **वैदिक नारी**, **वैदिक मधुवृष्टि**, **आर्षज्योति**, **उपनिषद् दीपिका**, **ऋग्वेद-ज्योति**, **वैदिकशब्दार्थविचारः**, **और सामवेदभाष्यम्** हैं। इन ग्रन्थों ने वैदिक शोध को आगे बढ़ाने में, स्वामी दयानन्द की वेदविषयक विचारधारा के प्रसार में और जनमानस तक वेदों को पहुँचाने में बहुत अधिक योगदान किया है।

आपकी वेदसेवा से प्रभावित होकर अनेक संस्थाओं ने आपको सम्मानित एवं पुरस्कृत किया है। इन सम्मानों में आर्य समाज सान्ताक्रुज मुंबई का **वेदवेदाङ्ग पुरस्कार**, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान का **संस्कृत साहित्य पुरस्कार**, **राष्ट्रपति- सम्मान**, भारतीय विद्याभवन बैंगलूरु का **गुरु गंगेश्वरानन्द वेदरत्न पुरस्कार**, उत्तरांचल संस्कृत अकादमी का **राष्ट्रिय बदरीश संस्कृत सम्मान** तथा राव हरिश्चन्द्र आर्य चैरिटेबल ट्रस्ट नागपुर का **आर्यरत्न अनूचान साहित्य पुरस्कार** प्रमुख हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने आपको मानद उपाधि **विद्यामार्तण्ड** से विभूषित किया है।

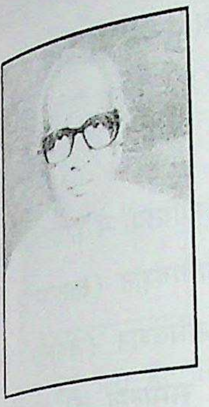

प्रो० अमरनाथ पाण्डेय

प्रो0 अमरनाथ पाण्डेय का जन्म 6 अक्टूबर, 1937 को इलाहाबाद जनपद के ग्राम अनुवाँ (जंघई) में हुआ। इनकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। इन्होंने वहीं से बी0 ए0, एम0 ए0 तथा डी0 फिल्0 उपाधियाँ प्राप्त कीं। इन्होंने हाई स्कूल से एम0 ए0 तक सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। इन्हें अनेक छात्रवृत्रियाँ तथा पुरस्कार मिले।

प्रो0 पाण्डेय ने 1958 से 1960 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कार्य किया तथा रिसर्च फेलो के रूप में अध्यापन कार्य भी। काशी विद्यापीठ, वाराणसी में 1960 में संस्कृत प्राध्यापक पद पर आप की नियुक्ति हुई। वहीं रीडर के पद पर तथा अल्प वय में प्रोफेसर के पद पर आप की नियुक्ति हुई। प्रो0 पाण्डेय ने महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ में मुख्य गृहपति, अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष, मानविकी सङ्कायाध्यक्ष तथा छात्रकल्याण-सङ्कायाध्यक्ष के रूप में भी प्रशासन-कार्य सम्पन्न किया। आप 37 वर्षों तक संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष रहे। आप 1998 में देश में संस्कृत के वरिष्ठ (Seniormost) प्रोफेसर के रूप में सेवा-निवृत्त हुए।

प्रो0 पाण्डेय के निर्देशन में 40 छात्रों ने शोधोपाधि प्राप्त की। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ0 राजदेव मिश्र ने आपके निर्देशन में पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त की। हार्वर्ड विश्वविद्यालय की छात्रा हाली एन सीलिंग ने कुछ समय तक आपके निर्देशन में कार्य किया।

प्रो0 पाण्डेय ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, त्रिपुरा विश्वविद्यालय तथा इन्दिरा कला सङ्गीत विश्वविद्यालय में अभ्यागत-आचार्य के रूप में कार्य किया। आप देश के 70 से अधिक विश्वविद्यालयों तथा संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं।

प्रो0 पाण्डेय साहित्य, व्याकरण, वेद तथा भारतीय दर्शन के प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। आप न केवल भारत में, अपितु विश्व में अपने योगदान के लिए समादृत हैं।

प्रो0 पाण्डेय की 16 पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें **बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन, दशरूपकदीपिका, वाररूचसङ्ग्रह, शब्दविमर्श, सौन्दर्यवल्ली, मङ्गल्या, आकाङ्क्षा, काव्यसिद्धान्तकारिका तथा इन्डालाजिकल क्रिटीक** प्रमुख हैं। आप की 5 पुस्तकें पुरस्कृत हैं।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने उन्हें **व्यास** तथा **विशिष्ट** पुरस्कारों से सम्मानित किया है। आपके काव्य **सौन्दर्यवल्ली** के विषय में किये गये कार्य पर पी-एच0डी0 उपाधि प्रदान की जा चुकी है। प्रो0 पाण्डेय के 250 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। ऑल इण्डिया रेडियो के विभिन्न केन्द्रों से आपकी 50 से अधिक वार्ताएँ तथा कविताएँ प्रसारित हुई हैं।

प्रो0 पाण्डेय ने शताधिक राष्ट्रिय तथा अन्ताराष्ट्रिय सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में शोध-पत्र पढ़े हैं तथा अध्यक्षता की है। उन्होंने विश्व संस्कृत सम्मेलन के पञ्चम अधिवेशन (वाराणसी) में साहित्य-सत्र, नवम अधिवेशन (मेलबर्न, आस्ट्रेलिया) तथा दशम अधिवेशन (बंगलोर) में व्याकरण-सत्र की अध्यक्षता की। आप **अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या सम्मेलन** की भारतीय **भाषाशास्त्र शाखा, संस्कृत साहित्य शाखा** तथा **पुराणेतिहास शाखा** के अध्यक्ष रहे हैं। आप विश्व-संस्कृत प्रतिष्ठान के **निदेशक** भी रहे हैं।

प्रो0 पाण्डेय ने अनेक महत्त्वपूर्ण संस्थाओं में व्याख्यान दिये हैं। आप ने मलेशिया तथा आस्ट्रेलिया में भारतीय दर्शन तथा संस्कृति के विषय में अनेक व्याख्यान दिये हैं।

अखिल भारतीय पण्डित-महापरिषद् ने प्रो0 पाण्डेय को **पण्डितराज** उपाधि से सम्मानित किया है। आर्यावर्त-विद्वत्परिषद् ने आप को **महामहोपाध्याय** उपाधि प्रदान की है। रामायण-महोत्सव-प्रतिष्ठान, चित्रकूट, साहित्यकार- संङ्घ, चित्रकूट, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, भारत धर्म महामण्डल, कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा, अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् आदि संस्थाओं ने प्रो0 पाण्डेय को सम्मानित किया है।

प्रो0 पाण्डेय कवि, समीक्षक, लेखक, वक्ता तथा मौलिक चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

डॉ० हरिनारायण दीक्षित

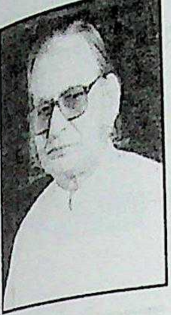

विगत सैंतीस वर्षों से देवभूमि उत्तराखण्ड में रहकर संस्कृत-भाषा की अति महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहे, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल के प्रोफेसर एवं संस्कृत-विभागाध्यक्ष के पद से अपनी साठ वर्ष की अधिवर्षिता पूर्ण हो जाने पर सेवा निवृत्त हुए तथा वहाँ कला संकाय के अधिष्ठाता के पद पर भी कार्य कर चुके डॉ0 हरिनारायण दीक्षित का जन्म उत्तरप्रदेश के जनपद जालौन अन्तर्गत ग्राम पड़कुला में 13 जनवरी, सन् 1936 के दिन हुआ था। इनकी माता का नाम श्रीमती सुदामा देवी दीक्षित था और इनके पिता का नाम था पण्डित श्री रघुवीर सहाय दीक्षित। आपने संस्कृत भाषा का निष्ठा एवं लगन के साथ अध्ययन करते हुए व्याकरणाचार्य, सांख्य-योगाचार्य, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न और एम0 ए0 की उपाधियाँ प्राप्त कीं। इनके अलावा वर्तमान युग में उच्च शिक्षा जगत् में शोधकार्य की उपादेयता को समझकर इन्होंने विधिवत् शोध-प्रबन्धों को लिखकर पी-एच0 डी0, डी0 लिट्0 की भी उपाधियाँ प्राप्त की हैं। आपके शोध निर्देशन में पचपन शोधार्थियों ने कुमाऊँ विश्वविद्यालय से संस्कृत-विषय में पीएच0 डी0 की उपाधि प्राप्त की है।

संस्कृत वाङ्मय की अनेक शाखाओं के कुशल और छात्र-प्रिय प्राध्यापक और समीक्षक होने के साथ ही साथ डॉ0 दीक्षित संस्कृत भाषा के कुशल और रससिद्ध महाकवि हैं। अब तक चौबीस पुस्तकें लिख चुके हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:-

१. **संस्कृतानुवादकलिका**, (२) **संस्कृतनिबन्धरश्मिः**, (३) **श्रीमदप्पयदीक्षितचरितम्** (गद्यकाव्यम्), (४) **तिलकमञ्जरी : एक समीक्षात्मक अध्ययन** (पीएच० डी० शोध प्रबन्ध), (५) **संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना** (डी० लिट्० शोध प्रबन्ध), (६) **मेनकाविश्वामित्रम्** (दृश्यकाव्यम्), (७) **संस्कृतनिबन्धावली**, (८) **राष्ट्रियसूक्तिसंग्रहः**, (९) **श्रीहनुमद्दूतम्** (सन्देशकाव्यम्), (१०) **गोपालबन्धुः** (कथाकाव्यम्), (११) **शोधलेखावली**, (१२) **गद्यकाव्यसमीक्षा**, (१३) **भीष्मचरितम्** (महाकाव्यम्), (१४) **देशोऽयं कुरुते प्रोन्नतिम्** (मुक्तककाव्यम्), (१५) **उपदेशशती** (शतककाव्यम्), (१६) **भारतीयकाव्यशास्त्रमीमांसा** (सह-सम्पादित), (१७) **पण्डितराज- जगन्नाथकाव्यग्रन्थावली** (सम्पादित और अनूदित), (१८) **गुरुकुलकाङ्गड़ीविश्वविद्यालयीयम्** (काव्यम्), (१९) **भारतमाता ब्रूते** (महाकाव्यम्), (२०) **राधाचरितम्** (महाकाव्यम्), (२१) **बुन्देलखण्डी कवि पण्डित राजाराममिश्रकाव्यसंग्रह** (मम्पादित), (२२) **श्रीग्वल्लदेवचरितम्** (महाकाव्यम्), (२३) **पशुपक्षिविचिन्तनम्** (खण्डकाव्यम्) और (२४) **मनुजाश्शृणुत गिरं मे** (मुक्तककाव्यम्)।

डॉ0 दीक्षित की संस्कृत काव्यकृतियों का संस्कृत जगत् में सभी जगह व्यापक स्वागत हुआ है। फलस्वरूप उत्तर भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में उन पर उनके विभिन्न पक्षों को लेकर एम0 ए0, एम0 फिल्0 और पीएच0डी0 के लिए लघुशोधप्रबन्ध और शोधप्रबन्ध लिखे गए हैं, शोध-पत्रिकाओं में शोध-पत्र प्रकाशित किए गए हैं, तथा शोध-संगोष्ठियों में शोधपत्र पढ़े गए हैं। इस सबके अलावा भारत की प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अन्ताराष्ट्रिय स्तर की अनेक संस्थाओं द्वारा डॉ0 दीक्षित को, इनकी इन संस्कृत काव्यकृतियों की गुणवत्ता के लिए समय-समय पर सम्मानित एवं पुरस्कृत भी किया गया है, जिसका क्रमिक विवरण इस प्रकार है:-

1- **श्री हनुमद्दूतम् (सन्देशकाव्यम्)** नामक कृति के लिए इन्हें **उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी** द्वारा सन् 1987 में विशेष पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

2- **गोपालबन्धुः (कथाकाव्यम्)** नामक कृति के लिए इन्हें **उत्तरप्रदेश संस्कृत** अकादमी, **लखनऊ** द्वारा सन् 1988 में **बाणभट्ट पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

3-. **भीष्मचरितम् (महाकाव्यम्)** नामक कृति के लिए इन्हें **उत्तरप्रदेश संस्कृत** अकादमी, **लखनऊ** द्वारा सन् 1991 में पुनः **विशेष पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

4- इनकी तब तक की समग्र संस्कृत काव्य रचना के लिए इन्हें **भारतीय भाषा** परिषद्, **कलकत्ता** द्वारा सन् 1991 में **संस्कृत साहित्य सम्मान** से सम्मानित किया गया।

5- **भीष्मचरितम् (महाकाव्य)** नामक कृति के लिए इन्हें **साहित्य अकादमी**, दिल्ली द्वारा सन् 1992 में **साहित्य अकादमी पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

6- संस्कृत वाङ्मय को अतिविशिष्ट योगदान करने के लिए इन्हें **भारत सरकार** द्वारा सन् 2003 में **राष्ट्रपति सम्मान प्रमाणपत्र पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

7- साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट एवं प्रेरक योगदान के लिए इन्हें **लोक संस्कृति** सेवानिधि **मण्डपम्, उरई** (जिला जालौन, उत्तर प्रदेश)' द्वारा सन् 2006 में **पं० गौरीशंकर द्विवेदी** 'शंकर' **अलंकरण** पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

8- **भीष्मचरितम् (महाकाव्यम्)** नामक कृति के लिए इन्हें **रामकृष्ण जयदयाल** डालमिया **श्रीवाणी न्यास, नई दिल्ली** द्वारा सन् 2007 में **श्रीवाणी अलङ्करण** सम्मान से पुरस्कृत किया गया।

डॉ० गणेशदत्त शर्मा

जन्म स्थान : भवन बहादुर नगर, बुलन्दशहर (उ0प्र0)

पिता : स्व0 श्री पं0 हरिशरण शास्त्री (स्नातक, गुरुकुल सिकन्दराबाद)

पितामह : स्व0 श्री पं0 नानक चन्द शर्मा (स्वतंत्रता सेनानी)

माता : श्रीमती अशरफी देवी (अभी जीवित अवस्था में 99 वर्ष)

शिक्षा :
- (क) गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार
- (ख) नानक चन्द एंग्लो संस्कृत कालिज, मेरठ
- (ग) श्री बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ

उपाधियाँ :
- (क) विद्याभास्कर, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार
- (ख) शास्त्री, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
- (ग) साहित्याचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी
- (घ) एम0 ए0 (संस्कृत), आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- (ड) पी0एच0डी0 (संस्कृत), आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

शिक्षाक्षेत्र में सेवाएँ :
- (क) संस्कृत अध्यापक एवं प्रधानाध्यापक, डी0 ए0 वी0 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, ग्वालियर
- (ख) लैक्चरर, रीडर-अध्यक्ष, नानक चन्द एंग्लो संस्कृत पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, मेरठ
- (ग) प्राचार्य, लाजपत राय पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, साहिबाबाद
- (घ) विजिटिंग प्रोफेसर, हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका, ओरलैण्डो (फ्लोरिडा)
- (ड) निदेशक, आर0 सी0 सी0 वी0 पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, गाजियाबाद
- (च) सदस्य, कार्यकारिणी, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

(छ) सदस्य, विद्या परिषद्, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

(ज) मन्त्री, विद्या सभा, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार

विदेश यात्राएँ : फ्रांस (1977), जर्मनी, (1979), हालैण्ड (1987), अमेरिका (198
2000, 2002, 2004), नेपाल (2004)

प्रमुख रचनाएँ : (क) ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व (शोध ग्रन्थ), उ0प्र0 संस्कृत अकाद
लखनऊ द्वारा पुरस्कृत

(ख) निबन्धपारिजातम् (मौलिक संस्कृत निबन्ध संग्रह)

(ग) विवेकानन्दचरितामृतम् (मौलिक संस्कृत महाकाव्य)

(घ) स्वप्नवासवदत्तम् (आलोचनात्मक व्याख्या व टिप्पणी सहित)

(ङ) वैदिक चिन्तन की धाराएँ

शोध निबन्ध : देश विदेश की स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रमुख शोध निबन्ध-65

प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री

आपका जन्म 6 जून, 1945 को सरकड़ा, मुरादाबाद (उ0प्र0) में श्री फूलचन्द जी के घर हुआ। आपकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर तथा गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार में सम्पन्न हुई। आपने सन् 1968 से गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, विभिन्न सोपानों को पार करते हुए सन् 1990 में प्रोफेसर पद पर अभिषिक्त हुए और आज विश्वविद्यालय के विभिन्न दायित्वों का सम्यक् निर्वहण करते हुए 1996 से गरिमामय आचार्य एवं उपकुलपति पद को सुशोभित कर रहे हैं। **श्रुतिमञ्जरी** नामक ग्रन्थ आपके वैदुष्य का जीता-जागता प्रमाण है। गम्भीर लेखन, विद्वत्तापूर्ण एवं ओजस्वी वक्तृत्व के कारण समय-समय पर आप अनेक विश्वविद्यालयों तथा धार्मिक संस्थाओं द्वारा अभिनन्दित एवं पुरस्कृत हो चुके हैं। आप को भारतीय गणराज्य के महामहिम राष्ट्रपति भारतरत्न डॉ0 ए.पी.जी. अब्दुल कलाम ने 27 सितम्बर 2004 को पं0 नारायणदत्त तिवारी, मुख्यमन्त्री उत्तरांचल की उपस्थिति में उत्तरांचल संस्कृत अकादमी के प्रथम **पं० मदन मोहन मालवीय संस्कृत पुरस्कार** से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त, **श्रीमद् आर्यावर्त्त विद्वत् परिषद् काशी** ने सन् 2005 में आपको **महामहोपाध्याय** मानद उपाधि से सम्मानित किया।

आपकी अध्यापन शैली अत्यन्त भावपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं। आपसे शिक्षा प्राप्त शिष्य देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हैं।

आपके निर्देशन में अद्यावधि लगभग 50 छात्र शोध कार्य कर पी-एच.डी. शोधोपाधि प्राप्त कर चुके हैं और वर्तमान में भी दस शोधार्थी शोध कार्य कर रहे हैं। आपके वैदुष्यपूर्ण संस्कृत के शोध लेख देश की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं, जिन्हें पाठक प्रेमपूर्वक पढ़ते हैं। आकाशवाणी से प्रसारित होने वाली आपकी संस्कृत वार्त्ताएं अत्यन्त जनप्रिय हैं।

वेदेषु विज्ञानम्

वैदिक वाङ्मय में भौतिक विज्ञान

डॉ० सुनीता जायसवाल
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चन्दौली

भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत शक्ति (Force), गति (Motion), ऊर्जा (Energy), सामर्थ्य (Power), ताप (Heat), ध्वनि (Sound), प्रकाश (Light), चुम्बकत्व (Magnetism), विद्युत् (Electricty), नाभिकीय ऊर्जा (Nuclear Energy), आदि विषयों पर विचार किया जाता है।

वैदिकवाङ्मय के अनुसार सम्पूर्ण विश्व का प्रथम वैज्ञानिक होने का श्रेय अथर्वा ऋषि को प्राप्त है, क्योंकि अथर्वा ऋषि ने ऊर्जा (Energy) के प्रतिनिधि स्वरूप अग्नि से सम्बन्धित तीन आविष्कार किए थे। जिनमें यजुर्वेद के अनुसार सर्वप्रथम अरणि नामक वृक्ष की लकड़ियों के घर्षण से अथर्वा ऋषि ने अग्नि का आविष्कार किया था, तथा यज्ञ में इस अग्नि का सर्वप्रथम प्रयोग अथर्वा ऋषि के पुत्र दधीचि ऋषि ने किया था। ऋग्वेद में भी अरणियों के घर्षण से जन्य तथा प्रस्तरखण्डों के घर्षण से जन्य अग्नि का उल्लेख प्राप्त होता है।

भौतिक विज्ञान के ऊर्जासंरक्षण के नियम के अनुसार वस्तु की सम्पूर्ण ऊर्जा नियत रहती है, ऊर्जा का मात्र रूपान्तरण होता है। ऊर्जासंरक्षण सम्बन्धी भौतिक विज्ञान का वह सिद्धान्त यजुर्वेद में प्राप्त होता है। यजुर्वेद के अनुसार नश्वर जगत् अग्नि में अर्थात् ऊर्जा अक्षय है। क्योंकि अग्नि अर्थात् ऊर्जा में वयस् अर्थात् (Potential Energy) है। यजुर्वेद में (Potential Energy) के लिए वयस् शब्द का प्रयोग किया गया है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा (Energy) एक ही है किन्तु उसका रूपान्तरण होता है, इसलिए ऋग्वेद में अग्नि अर्थात् ऊर्जा को 'पुरुरूप' कहा गया है तथा अग्नि को शब्द, रूप, प्रकाश तथा गति आदि स्वरूप धारण करने के कारण 'विश्वरूप' कहा गया है। ऋग्वेद में ऊर्जा के समूहरूप में गमन के कारण उसे 'संहत' अर्थात् पुञ्जीभूत कहा गया है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार विद्युत् में श्रवणशक्ति होने के कारण विद्युत के द्वारा ध्वनितरङ्गों का सम्प्रेषण भी होता है। जिससे दूरस्थ व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर सकते हैं तथा दूर देशान्तर में सन्देश प्रेषित कर सकते है, संवाद को सुन सकते हैं। ऋग्वेद में 'श्रुत्कर्ण' शब्द से तथा यजुर्वेद में 'श्रवो वयः' शब्द के प्रयोग से विद्युत् तरङ्गों में संवादप्रेषणीयता की क्षमता को व्यक्त किया गया है। वेदों में वर्णित विद्युत् द्वारा ध्वनिसम्प्रेषण के सिद्धान्त के आधार पर ही ग्राहमवेल ने टेलीफोन, और मारकोनी ने वायरलेस का निर्माण किया है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार सूर्य की किरणें संसार के सभी पदार्थों को रङ्ग प्रदान करती है। सूर्य के श्वेत प्रकाश में सात रङ्गों का संयोजन है। इन सात रंङ्गों में से वस्तु जिस रङ्ग को

परावर्तित करती है। उसी रङ्ग की वह परिलक्षित होती हैं वस्तु जिस रङ्ग की होती है, उसी रङ्ग को परावर्तित करती है तथा भिन्न रङ्ग को अवशोषित कर लेती है। इस प्रकार वस्तु का रङ्ग परावर्तित प्रकाश और प्रेषित प्रकाश पर निर्भर करता है। भौतिक विज्ञान का यह सिद्धान्त ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में वर्णित है, जिसके अनुसार सूर्य की सात रङ्ग की किरणें सात रङ्गों को प्रदान करती हैं। सूर्य की किरणें उच्च, मध्य व निम्न भेद से 7x3=21 प्रकार की होती है, इसीलिए अथर्ववेद में इसे 'त्रिषप्ता:' कहा गया है।

भौतिक विज्ञान में सूर्य की घातक पराबैगनी किरण (Ultra-Vilet Rays) को ऋग्वेद में 'पुरुषद्' कहा गया है। अथर्ववेद में इसे कृषिनाशक एवं घातक बताया गया है।

भौतिक विज्ञान के न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को वृहत्जाबालोपनिषद् में 'आधारशक्ति' के नाम से वर्णित किया गया है। लगभग 4000 ई.पू. पिप्पलाद ऋषि ने प्रश्नोपनिषद् में तथा 700 से 800 ई. में आचार्य शंङ्कराचार्य ने प्रश्नोपनिषद् के भाष्य में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त का उल्लेख किया है। इस प्रकार इन साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भारतीय ऋषियों को दो हजार वर्ष पूर्व से ज्ञात था।

वेदों में वनस्पति विज्ञान

प्रभात कुमार सिंह
शोधछात्र- संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वेद, मानव जगत् की सबसे प्राचीन अलौकिक रचना है। वेदों में निहित संस्कृति एवं सभ्यता के आधार पर मानव अपने इस सांसारिक जीवन का निर्वहन करते हुए इष्ट की प्राप्ति सुगमता से प्राप्त कर सकता है। इसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक पक्षों के साथ साथ ज्ञान-विज्ञान की भी प्रचुर सामग्री मिलती है। जिस विज्ञान के माध्यम से आज मानव असाध्य रोगों के ऊपर विजय प्राप्त कर चका है तथा जिसके माध्यम से इस पृथ्वी पर आधुनिक सुविधाओं से युक्त जीवन को व्यतीत ही नहीं कर रहा है बल्कि इसके साथ ही साथ नभ एवं जल में भी सरलता से आवागमन कर रहा है, उस विज्ञान के संदर्भ में आधुनिक वैज्ञानिकों का कथन है कि विज्ञान की सभी शाखाओं जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान इत्यादि में भी जो तत्व हैं वे अपने उनके विचार हैं। किन्तु जब हम वैदिक ऋचाओं की ओर मुड़कर देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी तत्वों को हमारे प्राचीन ऋषियों ने ऋचाओं में बहुत पहले कह दिया है। उन तत्वों को आज मूर्तरूप प्रदान करने का श्रेय मात्र आधुनिक वैज्ञानिकों को जाता है न कि आविष्कार करने का।

वनस्पति विज्ञान शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है- वनस्पति एवं विज्ञान। वनस्पति का

तात्पर्य है सभी प्रकार के उद्भिज्ज पादप समूह से है तथा विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। विशिष्ट अर्थ में जो विशेष है वही विज्ञान है। इस प्रकार वनस्पतियों के विशेष प्रकार के ज्ञान को वनस्पति विज्ञान कहते है। वेदों में पादपों के रूप, आकार, संरचना उत्पत्ति तथा इनके अंगों के कार्यों एवं परिणामों का विशद वर्णन है।

मित्रावरुण का वैज्ञानिक चिन्तन

अनु रानी
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,कुरुक्षेत्र

प्राय: ऐसी धारणा है कि - ''वेदात् सर्वं प्रसिद्ध्यति'' अर्थात् वेद से ही सब विकसित हुआ या ''वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्'' अर्थात् वेद में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। अतएव मनु ने वेदों को 'सर्वज्ञानमय' कहते हुए उनमें सभी प्रकार के ज्ञान और विज्ञान को निहित माना है।

वेदों में विज्ञान की दृष्टि से अनेक तत्त्व उपलब्ध हैं और ये तत्त्व वैदिक देवताओं की स्तुतियों के माध्यम से प्रकट है। पाश्चात्य विद्वानों ने मित्रावरुण, अश्विनौ, इन्द्राग्नी, द्यावापृथिवी आदि शब्दों का न केवल देवता विशेष अर्थ माना है बल्कि इन्हें पारिभाषिक शब्द मानते हुए उनको विभिन्न अर्थों का द्योतक माना है। इन देवताओं की अनेक प्रकार से की गयी विज्ञान परक स्तुतियों में मित्रावरुण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर इनका विज्ञान सम्मत अर्थ लिया गया है और विज्ञान की दृष्टि से इनकी व्याख्या की गयी है। प्रस्तुत शोध पत्र में मित्रावरुण के साथ साथ उनके वैज्ञानिक स्वरूप के सन्दर्भ में आलोकपात किया जाएगा।

ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवविज्ञान

डॉ० नन्दिता सिंघवी
व्याख्याता, संस्कृत विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

सूक्ष्म जीवविज्ञान, जीवविज्ञान की वह शाखा है कि जिसके अन्तर्गत सूक्ष्म जीव अथवा सूक्ष्माणु का अध्ययन किया जाता है। हालैण्ड निवासी एन्टोनी वान ल्यूवेनहॉक (1632 1723 ई) को सूक्ष्म जीवों की खोज का संस्थापक माना जाता है। जबकि सर्वप्रथम वेदों में सूक्ष्म जीवों के विषय में विवरण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवों को 'अदृष्टा:' कहा गया है तथा इनसे मानव शरीर को व्याप्त माना गया है। (1/191)। ये विषैले तथा विषहरहित होते हैं। तथा दाह उत्पन्न करते हैं। (वहीं 1/191/1)। रात्रि में ये सक्रिय हो जाते हैं और सारे संसार को देखते हैं (वहीं

1/191/5)। यक्ष्मनाशन सूक्त से ज्ञात होता है कि रोगजनक सूक्ष्म जीव मानव के प्रत्येक अंग, लोम और शरीर की सन्धि में उत्पन्न होत हैं। (वहीं 10/163/6)। अग्नि हमारे शरीर में रहने वाले सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने की क्षमता रखता है। (वहीं 8/39/2), अत: यज्ञाग्नि के माध्यम से अज्ञात यक्ष्मा, राजयक्ष्मा और अन्य रोगों से रोगी को मुक्त कराया जाता था। (वही 10/161/1)। अग्निहोत्र यज्ञ करने सें सूक्ष्म जीवों का विनाश हो जाता है। जो अग्निहोत्र नहीं करते वे मनुष्य रोगी बने रहते हैं:

अग्ने त्वंमस्मद् युयोध्यामीवा अग्निमित्रा अलभ्यमन्त कृष्टीः (वही १/१८९/३)

उदित होता हुआ सूर्य विषैले सूक्ष्म जीवों का विनाश कर देता है। (वही, 1/191/89), अत: आदित्यो को ''अपामीवाम्'' कहा गया है।

श्री रामगोपाल शास्त्री ने ''वेद में आयुर्वेद'' पुस्तक मे राक्षस, गन्धर्व, अप्सरस, पिशाच, असुर और शर्कु आदि सौ से अधिक नामों को रोग कृमियों के नाम माने हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद को सूक्ष्म जीव विज्ञान का आदि स्रोत कहा जा सकता है।

ऋग्वेद में जल-तत्त्व

डॉ० सीमा सिंह
गढ़ रोड, मेरठ

ब्रह्माण्डसृष्टि का प्रथम तत्त्व 'जल' न केवल प्राणियों का जीवनाधार है, अपितु संसार में दृश्यमान समस्त चैतन्य का मूल है। जीव का प्रथम अयन जल जब तक अविकल, शुद्ध, पर्याप्त परिमाण में अवस्थित रहेगा, तब तक जीवन की सम्भावना निरापद है। जल ने ही गर्भधारण करके अग्नि व आकाश आदि को उत्पन्न किया है। जल ही औषध, रोगशान्ति का कारण और समस्त रोगों के लिए भेषज है।

''आप इद्वाउभेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्यभेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥'' ऋग्वेद १०/११/१३७/६

जल के विविध स्रोतों यथा अन्तरिक्ष जल, नदीय जल, खोदकर निकाले जाने वाले जल एवं समुद्र से प्राप्त जल से दीप्तिमान और पवित्र होकर मानवजीवन की रक्षा करने की प्रार्थना की गई है।

''या आपोदिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उतवायाः स्वयञ्जाः।
समुद्रार्थायाः शुचयः पावकास्ता आपोदेवीरिहमामवन्तु॥'' ऋग्वेद ७/३/५०/२

ऋग्वेद के एक मंत्र में 'जल' का मूल सूत्र दिया गया है कि 'मित्र'(Oxygen) और 'वरुण' (Hydrogen) के संयोग सें जल प्राप्त होता है।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता॥ ऋग्वेद १/२/७

स्वास्थ्य, धन, शक्ति, लम्बी आयु और अमरत्व की प्राप्ति का हेतु जल ही है। इस प्रकार जल प्रत्येक जीवधारी के जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। मनुष्य को दीर्घायु बनाने वाली औषधियाँ भी जल से ही पुष्ट होती हैं

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम।
ज्योक् च सूर्यंदृशे ॥ '' ऋग्वेद १०/९/७

वेदों की पृष्ठभूमि में वनस्पति विज्ञान

अमन कुमार शर्मा
शोधछात्र
संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

भारतीय चिन्तन धारा के आदि स्रोत के रूप में वेद ही सभी शास्त्रों के मूल आधार हैं। सभी शास्त्रों के समान ही वेदों में वनस्पति विज्ञान से सम्बन्धित अनेकों तथ्य प्राप्त होते हैं।

वनस्पति विज्ञान के इतिहास की परम्परा वेदों से प्रारम्भ होती है इसका आधार वैदिक कर्मकाण्ड है। वैदिक कर्मकाण्ड में प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियों की खोज एवं नामकरण से यह स्पष्ट है। प्रकृति के प्रति आर्यों का विशेष अनुराग वेद में वनस्पति विज्ञान की आधारशिला बना। वैदिक काल से ही सब जीवधारियों को दो विभागों में विभाजित किया गया है स्थावर व जङ्गम। ऋग्वेद में उन्हे क्रमशः तस्थुष व जगत् शब्दों से सम्बोधित किया गया है। वैदिक ऋषियों ने इन प्राणियों का सम्यक् अध्ययन किया था। मानव जीवन में सूर्य के महत्त्व के आधुनिक दृष्टिकोण की संसूचना भी वेदों में प्राप्त होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर उन्होने सूर्य को स्थावर एवं जंगम की आत्मा कहा है।

वनस्पतियों में जीव हैं व उन्हे जागृति, निद्रा, सुख-दुःख आदि का अनुभव होता है वेद तथा उपनिषदों में इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में पुष्टि की गई है कि उनमें जीव है। ऋग्वेद में भी वनस्पतियों के जल में विकास प्राप्त करने की बात से उनकी जीवता को स्पष्ट किया गया है वेदों में पेड पौधों के आन्तरिक स्वरूप का प्रारम्भिक रूप चित्रित मिलता है। संहिताओं, ब्राह्मणों और उपनिषदों में पेड पौधों के विभिन्न अंगो जैसे मूल, तूल, काण्ड, शाखा, पर्ण, पुष्प और फल का स्पष्ट नामोल्लेख एवं वर्णन है। बृहदारण्यकोपनिषद् में एक वृक्ष की तुलना मानव शरीर से की गई है तथा स्पष्ट किया है कि इनमें कई समान विशेषताएं है। वेदों में असंख्य प्रकार के पेड़ पौधों का वर्गीकरण पारिवारिक एवं जातिगत दृष्टिकोण से नहीं प्रत्युत बाह्य एवं पुष्पगत विशेषताओं के आधार पर और भोज्य उपादेयता के आधार पर किया गया है। आकृति की दृष्टि से सम्पूर्ण वनस्पति जगत् को वेदों में चार भागों में विभाजित किया गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि अन्य शास्त्रों के साथ साथ वेदों में वनस्पति विज्ञान के भी बीजांकुर प्राप्त होते हैं।

वेदों में कृषि विज्ञान का परिशीलन

डॉ. रामबहादुर शुक्ल
वरिष्ठ प्रवक्ता-संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

शीलोञ्छवृत्या जैसे कोई किसान खेत में बिखरे हुए अन्नकणों को समेटकर अन्न भण्डारण करता है, ठीक उसी प्रकार कृषि से सम्बन्धित विविध तथ्य वेदों में बिखरे रूप में, यत्र तत्र हमें प्राप्त मिलमे हैं यदि इन सम्पूर्ण तथ्यों को एकत्र समवेत रूप में, शृखलाबद्ध रूप में रखा जाये, तो उनसे कृषि से सम्बन्धित वैज्ञानिक विद्या की दृष्टि के दर्शन प्राप्त होते हैं। वेदों में विशेष कर ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में ही कृषि विज्ञान के विविध सन्दर्भ प्रार्थना रूप में, या काव्यविधा रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। कृषि सूक्त, गोसूक्त, गोष्ठसूक्त, वृषभसूक्त तथा वर्षा सूक्त के अतिरिक्त, वायु अग्नि, एवं इन्द्र देवता से सम्बन्धित सूक्तों में कृषि सम्बन्धी विवरण, उसी प्रकार ओतप्रोत एवं अन्योन्याश्रित रूप में वर्णित मिलते हैं, जैसे कृषि कर्म के लिए मानव, वृषभ, अन्न तथा भूमि एवं भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए उर्वरा, अर्थात् गोमूत्र तथा गोबर की, भूमि संकर्षण के लिए सीर तथा वृषभ की और अन्न के बीजाङ्कुरण तथा संवर्धन के लिए ऊष्मा, ह वा एवं वर्षा की आवश्यकता होती है। ऋग्वेद में "कृषमित्कृषिस्व" रूप में कृषि कर्म अपनाने के संकेत के साथ-साथ खेत जोतने, हल (सीर) चलाने एवं फसलों से हरे-भरे खेतों का उल्लेख, साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित रूप में उल्लिखित मिलता है। भूमि के विविध भेदों यथा-आर्तना, अग्नास्वती, एवं उर्वरा तथा खिल भूमि खेती के उपकरणों (औजारों) यथा- सीर, स्तेग, फल, लांगल, सीता, अस्र आदि के नामों का विवरण मिलने के साथ साथ यह भी विवरण मिलता है कि उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिए भूमि को छोटे छोटे खेतों में बाँट दिया जाता था। एवं आवागमन हेतु खेत के मध्य डाँड (मेड़) भी निर्मित की जाती थी। कृषि कर्म करने के पूर्व खेत के देवता एवं कृषि उपकरणों की पूजा की जाती थी। तथा उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए गोबर, या गोमूत्र से युक्त मिट्टी खेंतो में डाली जाती थी। अनन्तर सीर द्वारा खेत की जुताई होती थी, एवं उसमें लकीरें बनाकर अन्न का बीजारोपण किया जाता था, फिर अन्न प्राप्ति हेतु प्रार्थना की जाती थी, जैसा कि ऋग्वेद (10/101/3) में वर्णित युनक्त सीरा वि युवा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। मिरा च श्रुष्टि: सभरा आसन्नो नेदीय। इत्सृण्य: पक्वमेयात्" जैसी प्रार्थना से स्पस्ट भी है। फसल पक जाने केबाद हँसिया (शृणी, दात्र) उसे काटकर, वर्ष या गट्ठों में बाँधकर खलिहान में इकट्ठा किया जाता था, फिर अन्न को साफकर वहाँ से घर लाकर भण्डारों में विविक रूप में भरा जाता था, एवं वही अन्न एक वर्ष पर्यन्त चलता था। तत्कालीन समय में यव एवं धान्य की खेती अत्यधिक हुआ करती थी, लेकिन गोधूम, ब्रीहि, माष, तिल, मुद्ग, खल्ब, प्रियङ्गु, श्यामाक, नीवार, एवं मसूर की फसल उगायी जाती थी।

वेदों में वर्णित कृषि व्यवस्था

परषोत्तम शर्मा
शोधछात्र
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वैदिक आर्य कृषि पर आधारित थे। आज की ही भाँति तब भी कृषि कार्य को बड़ा महत्व दिया जाता था। कृषि को अपनाना तब आर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व की पहचान थी। समाज के सभी वर्गों के लोग प्राण रक्षिका एवं जीवनदायिनी धरती के प्रति आदर सम्मान का भाव रखते थे। वैदिक जन जीवन कृषि पर अवलम्बित होने के कारण वेदों एवं वैदिक साहित्य में धरती के प्रति बड़े श्रद्धाभाव से उद्गार प्रकट किये गए है कि **''माता पृथिवी महीम्'' एवं, माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''** आदि ऋचाये आज भी धरती के प्रति भारतीयों का असीम प्रेमभाव का द्योतन करती है। वैदिक साहित्य में आज की तरह उस समय में भी कवि कार्य के लिए विभिन्न साधनों का उपयोग होता था। आर्य जीवन में कृषि कार्य की उपयोगिता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उस व्यवसाय के लिए कृषि-कार्य के सम्बन्ध जोताई वोवाई, हल, बैल, जुआढ़ हँसिया, गाड़ी, नाद, गोशाला, कुठार और लौहदात्र आदि विभिन्न प्रकार की सामग्री उपयोग में लायी जाती थी। जिस माध्यम से वैदिक आर्य कृषि से सम्बन्धित व्यवस्था किया करते थे। विशेषतः वेदों में वर्णित कृषि व्यवस्था का विवरण शोधपत्र में यथा स्थान द्रष्टव्य होगा।

ऋग्वेदीय ब्राह्मणों में वर्णित वनस्पतिविज्ञान

स्वाति दवे
एम. ए. उत्तरार्द्ध संस्कृत
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

डॉ० नंदिता सिंघवी
व्याख्याता, संस्कृत
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों-ऐतरेय और शाङ्खायन- ब्राह्मण में वनस्पतिविज्ञान विषयक सूक्ष्म संकेत प्राप्त होते हैं।

शङ्खायन ब्राह्मण (12/7) में वनस्पति को प्राण तत्व से युक्त माना गया है।

प्राणो वनस्पतिः।

शाङ्खायन ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि जलों के रस से औषधि और वनस्पतियां बनी, औषधि और वनस्पतियों के रस से फल, फल के रस से अन्न, अन्न के रस से रेतस् और रेतस् के रस से पुरुष बना है। (2/7)। अन्न से वीर्य का सिंचन किया जाता है। और वीर्य से प्रजा उत्पन्न होती है। (ऐतरेय ब्राह्मण 6/5/10)।

इस लोक में जिसके पास बहुत अन्न होता है वही इस संसार में अधिक विराजता है, इसलिए अन्न को विराट् कहा गया है। **अन्नं वै विराट् (वही १/१/५)।**

औषधियों के पक्व होने में अग्नि का योगदान है। अग्नि दक्षिण दिशा में अवस्थित होती है।, दक्षिण से पहले पकी औषधियाँ आती है, क्योंकि अग्नि से सम्बन्ध रखती हैं (वही, 2/1) इसलिए कहा गया है कि अग्नि वनस्पति है, क्योंकि वह देवताओं को हवि देता है। (शाङ्खायन ब्राह्मण, 10/6)।

वनस्पतियों के उत्पन्न होने में औषधियों का विशेष योगदान है। अतः कहा गया है कि वर्षाओं से ही यज्ञान्न उत्पन्न होते हैं। (वहीं 3/4) तथा जल ही अन्न है। आपोऽन्नम् (ऐतरेय ब्राह्मण, ६/५/४)।

वेदेषु सृष्टिविज्ञानम्

सत्यनारायण भारद्वाजः
वरि0 शोधाध्येता, प्राकृत एवं जैनागम विभागः
जैन विश्वभारती संस्थानम्, लाडनूँ, राज.

विचित्रमिदं जगत्। दर्शं दर्शमिदं चमत्कृता भवन्ति विवेचकाः। कुतः इदं कस्मात् इदम्? इत्येवं संशये संजाते वदन्ति ज्ञानवन्तः- इदं जगत् निर्मितं परमात्मना। अस्य सृष्टिकाले किमपिनासीत्। केवलं ब्रह्मैव स्व प्रतिष्ठमासीत्। तस्मिन् समये वायुरपिनासीत्। वायुं बिनैव एकं ब्रह्म अर्वतत। केवलं तदीया अनिर्वचनीया शक्तिरेव तन्निष्ठा आसीत्। तस्मिन् समये ब्रह्मणा भिन्नं ततः उकृष्टं किमपि वस्तु तत्र नासीत्। मृत्युः अमृतं वा तत्र नासीत्। अमृत पदार्थः भावः मृत्युपदार्थः अभावः। अनयोर्मध्ये किपपि नासीत्। रात्रेर्दिवस्य का प्रयेदोऽपि तत्र नासीत्।

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीनासद्रजोनोव्योमापरायत्।
किमावरीवः कुहकस्यशर्मन्नम्यः किमासीद्गीहंनगभीरम्॥१॥
(ऋ.क्-अ.७ मं.१० सूक्त १२९)

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हिनरात्र्याह्नआसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधयातदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास॥२॥
(ऋक् अ. ७ मं. १०सूक्त १२९)

प्रलयावस्थायां इदं दृश्यमानंजगत् तमसा आछन्नं आसीत्। इदं सर्वेषां कृते अज्ञातमासीत्। यदा सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरः सृष्टेः इच्छा चक्रे-

सो कामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति। बृहदारण्यक १/२/४

सृष्टेः उत्पत्तिपूर्वं ब्रह्मण कामना अभवत्-एकोऽहं बहुस्याम्। इयं कामना मानसिकवीर्यरूपासीत्।

एत एव मंनुष्यजीवनेऽपि सर्वप्रथमं कामना उत्पन्ना भवति। पश्चात् वीर्यं ततः सन्तति इति अयं क्रमः चलति किन्तु ब्रह्मणि यः कामः प्रकटीभवति सा कामना एवं बीजरूपा आसीत्। ततेव अस्य विचित्रस्य जगतः समुत्पत्तिर्भवति। तस्मात् ब्रह्मणः इयं विचित्रा सृष्टिरजायत तद् ब्रह्मैव अस्याः सृष्टेध रिकमस्ति। तदेव अस्य पालकं विनाशकं च अस्ति। तदेव अस्या अध्यक्षमस्ति। सर्वव्यापके तस्मिन् ब्रह्मणि इयं सृष्टिः स्थितता अस्ति। सम्पूर्णस्य जगतः प्रकाशं ब्रह्मैव वर्तते। सम्पूर्णं जगत् यतः कारणात् उन्पन्नं भवति तद् जगत् ब्रह्मस्वरूपमैव अस्ति। अतः एव पुरुषसूक्ते वेदः कथयति

ऊँ सहस्त्रीशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्व्वतस्पृत्त्वाऽत्त्यतिष्ट्टद्दशाङ्गुलम्।। (पुरुषसूक्त)

अनेन वेदवचनेन इदं सिद्धयति-ब्रह्मैव अस्य जगतः उपादानकारणं निमित्त कारणं चास्ति।

वेदों में विमान विज्ञान

अमल चन्द्र राय वेदालंकार
प्रवक्ता ज्योतिष विभाग
गु0काँ0वि0वि0 ,हरिद्वार

वेदों में जैसे अध्यात्मविद्या, खगोलविद्या, भूगर्भविद्या, समाजशास्त्र, प्राणिविद्या आदि का वर्णन मिलता है, वैसे ही विमानविद्या भी उपलब्ध होती है। स्वामी दयानन्द ने अपने ऋग्वेद और यजुर्वेद के भाष्य में अनेक वेदमन्त्रों की विमानपरक व्याख्या की है- विमान का शिल्प वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। वेद में विमान बनाने की विधि का भी वर्णन मिलता है। संस्कृत में 'वि' पक्षी को कहते है और 'मान' का अर्थ हैं अनुरूप अथवा सदृश। इसलिए विमान का अर्थ होता है 'पक्षी के सदृश' इससे यही ज्ञात होता है कि विमान की रचना पक्षियों के सिद्धान्त पर हुई थी। आज हम प्रत्यक्ष हवाई जहाजों को चिड़िया के आकार का उड़ता हुआ देखते हैं।

वेदों में विमानों के लिए अधिकतर रथ शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त पक्षियों के वाचक वि, पतत्रिन्, श्येन, सुपर्ण, पतंग आदि शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। अन्तरिक्ष में यात्रा करने का भी वर्णन मिलता है। अन्तरिक्षयात्री कह रहा है-'उर्वन्तरिक्षमन्वेभि' (य.1.7) अर्थात् मै विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में यात्रा कर रहा हूँ। यजुर्वेद 4.34 में स्वामी दयानन्द के अनुसार राष्ट्र के विद्वान मनुष्य को कहा गया है कि तू बाज-पक्षी के समान अन्तरिक्ष मार्ग से यजमान के घरों को तथा देश-देशान्तरों को जा। अथर्ववेद में द्यावापृथिवी के मध्य अन्तरिक्षवर्ती मार्गों को देवयान मार्ग कहा गया है, जिनमें विमान आवागमन करते हैं। ऐसी कामना की गई है कि वे मार्ग हमें प्राप्त हों, जिनसे हम देशान्तरों में जाकर दूध और घी बेचकर धन कमाकर लायें। वेद में विद्युत् से चलने वाले

मनोजवा विमानों और सौर ऊर्जा से चलने वाले विमानों का भी वर्णन मिलता है।

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
यद् वां रथो विभिष्यतात् ।।ऋ. १.४६.३

इस ऋचा में सूर्य किरणों द्वारा विमान के अन्तरिक्ष में उड़ने का वर्णन है। यहां 'वि' का अर्थ पक्षी नहीं अपितु सूर्यकिरण अर्थ है, क्योंकि पक्षियों से विमान नहीं उड़ते। अन्यत्र भी 'वि' का प्रयोग सूर्यकिरण अर्थ में हुआ है, यथा

वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्। ऋ. १०.७३.११

वैदिक वाङ्मय में विमान-विज्ञान

डॉ० बसन्त कुमार
प्रवक्ता संस्कृत,
दयाल सिंह कालेज,, करनाल

वेद एवं वेदों के व्याख्यान भूत वैदिक वाङ्मय में आधुनिक विज्ञान है। इस विषय में मार्क्स-मैकाले के मानसपुत्र अपनी सहमति नहीं रखते। विमान-विज्ञान जैसे उन्नत विषय की तो कल्पना तक नहीं करते। ऐसे ही विचार बहुत से लोगों के मिलते हैं। वेद के विषय में मनु के विचार सत्य हैं ''सर्वज्ञानमयो हि सः 2.100 वेद सृष्टि विद्या के प्रस्येक क्षेत्र का बीजरूप में दिशा-निर्देश करता है। विमान-विद्या के विषय में भी वेद मन्त्रों में पर्याप्त वर्णन मिलता है। यथा

1. वेद यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतलताम्। वेद नावः समुद्रियः। ऋ1.25.7
2. अनश्वोजातो अनमीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः। घोड़े, लगाम से रहित तीन पहिये वाला रथ (यान) ऋक् 4.36.1
3. यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे.....अन्तरिक्षे चरन्ति। ऋ. 6.58.3

यहाँ समुद्र तथा अन्तरिक्ष में चलने वाली नाव का वर्णन है। महर्षि भरद्वाज ने विमान की परिभाषा करते हुए लिखा है- पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषुखगवद्वेगतः स्वयम्। यः समर्थो भवेद् गन्तुं स विमान इति स्मृतः।। यन्त्र सर्वस्व।। महामुनि भरद्वाज ने वेदों का मन्थन कर यन्त्रसर्वस्व की रचना की।

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भरद्वाजो महामुनिः।
नवनीतं, समुद्घृत्य यन्त्र सर्वस्व रूपकम्।।

यह श्लोक यन्त्रसर्वस्व के वृत्तिकार बोधानन्द का है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में जो विमान-विद्या थी। उसका मूल स्रोत वेद ही हैं। आज जो विद्यावान् विमान-विज्ञान को अमेरिका एवं योरोप की देन मानते हैं; उनके लिए इस शोध पत्र में वैदिक वाङ्मय स्थित 'विमान विज्ञान का उल्लेख रहेगा। भरद्वाज मुनि के 'यन्त्रसर्वस्व' के वैमानिक-प्रकरण में विमान

विद्या के सभी रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है। जिन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। यथा 32 रहस्य, भारहीन एवं ऊष्मण लोह, विशेष वस्त्र भोजन, पाक शाला, अग्निहोत्र व्यवस्था, प्रक्षेपास्त्र-तोप-व्यवस्था, ऋतुओं , विद्युत्, मेघ आदि से बचाव, आकाश मार्ग आदि। विमान भेद युग आदि के अनुसार पुष्पक आदि विमान थे। त्रिपुर नामक विमान जल स्थल, वायु तीनों पर चलता था। अन्य आचार्य:- बोधानन्द वृत्ति में 25 वैमानिक आचार्यों के सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। नारायण, शौनक, लल्ल, गर्ग, ईश्वर, अगस्त आदि। अर्वाचीन वाङ्मय वाल्मीकि रामायण, महाभारत , समरांगण सूत्रधार आदि ।

इस प्रकार विमान-विद्या का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि विमान वेद काल से ही रहे हैं। समय-समय पर इसमें उत्कर्ष अपकर्ष होता रहा। मध्यकाल (दासता का) अपकर्ष काल रहा। अतः कुछ लोगों को प्राचीन ज्ञान विज्ञान कला कौशल के गौरवमय काल को स्वीकारने में कष्ट होता है।

वेदों में भौतिक विज्ञान

सीमा देवी
शोध छात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद शब्द ज्ञान का पर्याय है जो इसके मूलधातु विद् से प्रकट होता है तथा विज्ञान शब्द क्रमबद्ध ज्ञान का वाचक है अतः वेद एवं विज्ञान का सम्बन्ध अत्यन्त स्वाभाविक है।

वेदों के अध्ययन से हमें विज्ञान के प्रत्येक विषय पर विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है किन्तु यहां पर हम केवल भौतिक विज्ञान के दृष्टिकोण से वेदाध्ययन करेंगे।

आधुनिक विज्ञान ने वर्तमान समय में हमें बहुत सारी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ दी हैं किन्तु यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि इन उपलब्धियों के आविष्कार वैदिक काल में ही हो चुके थे।

ऋग्वेद के मंत्रों में स्थूल जगत् के सोम और अग्नि दो तत्वों का उल्लेख है जो क्रमशः जल और अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही काल और गति की अन्योन्याश्रिता व प्रकाशवर्ष का भी वर्णन उनमें उपलब्ध है।

महान् वैज्ञानिक न्यूटन ने जिस गुरुत्वाकर्षण की खोज की उसका संकेत भी नारदीय सूक्त में मिलता है।

ताप मापक यंत्र और घड़ी का उल्लेख शिल्प संहिता में किया गया है।

भौतिक विज्ञान ने अनेक प्रयोगों और अनुसंधानों के द्वारा सिद्ध किया है कि साधारण गति, ताप, विद्युत्, प्रकाश तथा शब्द सब एक दूसरे रूप में परिवर्तनीय है तथा इनका नाश नहीं होता केवल रूप बदलता है। यह तथ्य हमारे वैदिक ग्रन्थों में सहज ही उपलब्ध है।

वैदिक सूक्तों की वैज्ञानिकता जल संरक्षण के संदर्भ में

डॉ० नीलम त्रिवेदी
डी.जी.कॉलेज, कानपुर

आज जल समस्या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक गम्भीर समस्या है। जल संरक्षण का उपक्रम जटिल होता जा रहा है। पृथ्वी का निरन्तर भीतर ही भीतर गर्म होते जाना, पानी की सतह का लगातार नीचे गिरना, फैलते रेगिस्तान, सिकुड़ते वन, प्रदूषित नदियाँ सभी जोर शोर से यही व्यञ्जित कर रहे है कि यदि इस दिशा में त्वरित प्रयास नहीं किये गए तो भंयकर परिणाम भुगतने होंगे।

इस संदर्भ में जब हम वैदिक साहित्य का अनुशीलन करते है तो हम पाते हैं कि हमारे ऋषियों, मनीषियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह देख लिया था कि व्यक्ति का हित संरक्षण समष्टि के हित संरक्षण के साथ जोड़कर ही देखा जाना चाहिये। जीवन के लिये वन, पशुधन, स्वच्छ नदियाँ, चहकते पक्षी, वृक्षाच्छादित पर्वत कितने अनिवार्य है। जल को बार बार जीव, उपजीव, संजीव, जीवात्मा कह कर उसे जीवन स्वरूप स्वीकार कर ऋषियों ने जल के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है अथर्ववेद (19/09 मंत्र 1-4)। ऋग्वेद के विविध सूक्तों मंत्रों में शुद्ध जल, उसके विभिन्न स्रोत आदि का उल्लेख मिलता है

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा या स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

ऋ ७/४९/२

यजुर्वेद में जल प्राप्ति की प्रथम पद्धति (18/36) का भी वर्णन प्राप्त है। यज्ञ द्वारा अन्तरिक्ष से जल प्राप्ति यजु0 27/30। यज्ञ द्वारा धुलोक से जल प्राप्ति 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' 22/22 अर्थात् पर्जन्य से जब भी इच्छा करे वर्षा प्राप्त की जावे। द्युलोक अन्तरिक्ष से ऊपर है, वहां जल नही है पर वहाँ हाइड्रोजन और आक्सीजन अवश्य है जिनसे मिलकर जल बनता है। सामवेद के मंत्र 1186 'वृष्टि दिवः परिस्रव' में इसी सम्भावना के संकेत मिलते है।

वैदिक ऋषियों की अवधारणा, वर्तमान वैज्ञानिकों की तरह ही विज्ञान के तथ्यों पर आधारित थी। वैदिक मंत्रों के द्वारा वह ऐसी मानसिकता बनाते थे कि देवता वही है जो देता है। इसलिये नदी, पहाड़ वृक्ष, पंचतत्व सभी पूज्य हैं, संरक्षणीय हैं। जल के सम्बन्ध में आज जितनी बातें कही जाती है पुरा काल में भी वे ही तथ्य ऋषियों के सम्मुख थे जिनका उद्घाटन उन्होंने अपनी अनूठी शैली में किया है। यदि आज की समस्याओं से निपटना है तो इन वैदिक ग्रन्थों को खगालना होगा। अन्त में **''अपो याचामि भेषजम्'' ''सर्वमायुर्जीव्यायम्''** यही इस शोध पत्र में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैं।

वैदिक गणित की उपयोगिता: आज के संदर्भ में

प्रज्ञा यादव
शोध छात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत शोधपत्र वैदिक गणित को आज के सन्दर्भ में उपयोगी सिद्ध करने के विषय में विभिन्न दृष्टिकोण प्रकट करता है। प्रस्तुत शोधपत्र तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में वैदिक गणित का सामान्य परिचय है, द्वितीय खण्ड में वैदिक गणित की वैज्ञानिकता को दर्शाया गया है और तृतीय खण्ड में आज के सन्दर्भ में वैदिक गणित की उपयोगिता पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जो इस शोधपत्र का प्रमुख प्रतिपाद्य है। इस खण्ड में बताने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार वैदिक गणित के कतिपय सूत्रों के माध्यम से आधुनिक गणित की अत्यन्त जटिल प्रक्रिया को सर्वथा सरल प्रक्रिया बनाया जा सकता है और इसी के माध्यम से आधुनिक तकनीकी को और अधिक कार्यदक्ष तथा अधिक त्रुटिहीन बनाया जा सकता है।

वैदिक गणित प्राचीन गणित है, जिसे 1911-1918 के मध्य श्री भारतीकृष्णतीर्थजी ने वेदों से ढूंढ़कर पुनः प्रचलित किया था। इनकी खोज के अनुसार सम्पूर्ण गणितीय प्रक्रिया 'एकाधिकेन पूर्वेण' आदि सोलह सूत्रों पर आधारित है।

आज के सन्दर्भ में वैदिक गणित की उपयोगिता मुख्य रूप से इनकी सरल प्रणाली के कारण है। अनेक भयभीत कर देने वाली गणनाओं का मान वैदिक गणित का अवलम्बन करके अत्यन्त सरल और त्रुटिहीन प्रक्रिया के माध्यम से निकाला जा सकता है। उदाहरण के लिए वैदिक गणित के एक सूत्र एकाधिकेन पूर्वेण के द्वारा मात्र एक चरण में ही दशमलव की अट्ठारह संख्याओं तक भागफल निकाला जा सकता है, इसी प्रकार एक अन्य सूत्र 'यावदूनं तावदूनीकृत्य वर्ग च योजयेत्' के द्वारा किसी भी भयभीत करने वाली सङ्ख्या का वर्गफल निकालना मात्र एक चरण की प्रक्रिया बन जाता है, जबकि आधुनिक गणित इन्हीं कार्यों को अनेक चरणों में करने के कारण प्रक्रिया को जटिल बना देता है, जिससे त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है और समय भी अधिक लगता है।

आधुनिकता के परिचायक सङ्गणक की सम्पूर्ण कार्यप्रणाली 'कोडिंग' पर आधारित है। इस क्षेत्र में वैदिक गणित सङ्गणक के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अंतरिक्षयुग में अन्वेषण के लिए बहुत सी समस्याएं उपस्थित हैं। उनमें से कुछ का हल मनोवैज्ञानिकों, रसायनज्ञों, भौतिकीविदों और जीव रसायनज्ञों द्वारा निकाला जा रहा है, पर ऐसी भी समस्याएं बहुत सी हैं जिन पर गणितज्ञ काम कर रहे हैं, यथा :

1. राकेट की उड़ान में हवा, राकेट का जो परिवर्तनशील प्रतिरोध प्रभाव पड़ता है, उसका हिसाब लगाना।

2. राकेट अथवा उपग्रह की दिशा पर पृथ्वी के घूर्णन का जो प्रभाव पड़ता है, उसका हिसाब लगाना।

3. पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का निराकरण करने के लिए वायु में जिस आरम्भिक चाल और संवेग बल की आवश्यकता होती है, उसका हिसाब लगाना।

इन समस्याओं का समाधान आधुनिक गणित में उपस्थित ही नहीं है, यह कहना उचित नहीं है किन्तु यह कहना अवश्य ही उचित प्रतीत होता है कि उसकी गूढ़ता और जटिलता के कारण यह कार्य सम्भव नहीं हो पा रहा है। वैदिक गणित की रचना ही त्रुटिहीनता को आधार बना कर की गयी थी। जो कार्य आधुनिक गणित की क्षमता के बाहर हैं उनकी सम्भावना वैदिक गणित में निहित है। आज के अन्तरिक्ष युग में केवल व्यावहारिक और अनुप्रयुक्त गणित में ही नहीं अपितु सैद्धान्तिक गणित में भी परिवर्तन हो रहे हैं। अवश्यमेव वैदिक गणित का प्रयोग इन परिवर्तनों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान करेगा और यह भी सम्भव है कि भविष्य में वैदिक गणित के निर्दोष तथा सुदृढ़ आधार पर अनेक आविष्कारों के भवन शोभित हो जाएं।

अथर्वसंहिता तथा अगदतन्त्र

निष्ठा यादव
शोध छात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद भारतीय परम्परा के प्राचीनतम और सर्वाधिक पवित्र ग्रन्थ हैं। वेद धर्म का मूल हैं और समस्त ज्ञान से युक्त हैं। भारतीय जीवन में वेदों की महनीय महत्ता है।

गुरु परम्परा से श्रवण द्वारा अधीत होने के कारण मंत्र श्रुति है, मंत्रों का समुच्चय सूक्त है तथा सूक्तों का समुच्चय संहिता है। संहितायें चार हैं–

1. ऋग्वेद संहिता 2. यजुर्वेद संहिता
3. सामवेद संहिता 4. अथर्ववेद संहिता

अथर्वसंहिता की रचना यज्ञ विधान के लिये न होकर यज्ञ में उत्पन्न होने वाले विघ्नों के निवारण के लिये हुई है। अथर्वसंहिता लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार की सामग्री का सङ्ग्रह ग्रन्थ है।

इस संहिता में आयुर्वेद सम्बन्धित मंत्र भी है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। आयुर्वेद के आठ अङ्ग हैं। इनमें अगदतन्त्र नामक विषय का अन्यतम स्थान है। आचार्य सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता में सूत्रस्थान के प्रथम अध्याय में अगदतन्त्र की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार की है –

"अगदतन्त्रं नाम सर्पकीटलूतामूषकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थं विविधसंयोगोपशमनार्थञ्च"।

'गद' शब्द सामान्यार्थ में रोग या असुख का वाचक है। फलतः अगद का अर्थ रोगहीन

होना या करना होता है। इस तन्त्र में बहुत प्रकार के अगदों (विषघ्न योगों) का वर्णन मिलता है, इसलिये इस तंत्र का नाम अगदतन्त्र पड़ा है।

अथर्ववेद में अगदतन्त्र का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। उसमें स्थावर तथा जङ्गम विषों और विषदग्ध बाणों का उल्लेख है तथा इन विषों के निराकरणार्थ उपायों को बताया गया है।

वेद वेदाङ्गों में वर्णित प्रतिमा विज्ञान

मंजु चौहान
गु0का0वि0वि0, हरिद्वार

मानव सभ्यता की ऐतिहासिक कहानी उसके रहन-सहन, खान पान, विचार चिन्तन की ही गाथा है। वह सदैव ही अपने सृष्टा के विषय में चिन्तन-मनन करता है। मानव के हृदय में कहीं न कहीं यह भावना रहती है कि देवों के साथ उसका ऐक्य है। मानव सदैव दैवत्व से मिलने के लिए आतुर रहता है तथा उस परमतत्व को प्राप्त करने के लिए पूजा, उपासना, यज्ञ, योग, तप आदि साधनों की सहायता लेता है। इस परमतत्व को प्राप्त करने के लिए किसी न किसी आधार पर होना अनिवार्य है, उसी के परिणामस्वरूप प्रतिमा का निर्माण होने लगा।

प्रतिमा निर्माण की परम्परा प्राचीन है। जहाँ सिन्धु घाटी सभ्यता में मातृदेवी, पशुपति शिव, शक्ति पूजा, ब्रह्मी बैल, वृक्ष (पीपल, बरगद) सर्प आदि की आराधना करने का सक्ष्य मिलता है। वहीं वैदिक आर्यो ने प्रकृति के विभिन्न अंगों में ईश्वर तत्व के दर्शन किये वह जल, अग्नि, वायु, आकाश, अन्तरिक्ष, ऊषा, अदिति आदि को देवरूप में पूजने लगे। वैदिक आर्यो ने वरुण को जल देवता, इन्द्र को अन्तरिक्ष और अग्नि को पृथ्वी का देवता मानकर उनकी उपासना करने लगे। प्रतिमाओं की पूजा और उसका निर्माण वैदिक काल में होता था या नहीं इस पर प्रश्न चिन्ह लगाया जाता रहा है। लेकिन ऋग्वेद में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिमाओं का निर्माण होता था, यथा - ऋग्वेद में देवोनरस (आकाश के मानव) तथा नृपेशस (मानव के आकार वाले) शब्दों का प्रयोग हुआ है जो आकार वाली प्रतिमा की पुष्टि करते है। ऐसे ही रुद्र की रंगी हुई प्रतिमा का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है, जिन्हें भूरे वर्ण का सुनहरे रंग में रंगे हुए, सुनहरा कवच धारण किये हुए अनुचरों से घिरा आसन पर बैठा हुआ बताया गया है। इसी प्रकार अर्च्चा, वपु, तनु, रूप, विमान आदि शब्द प्रतिमोपासना को ही प्रकट करते हैं।

वेद और विज्ञान में रासायनिक समन्वय

बबलू कुमार आर्य
गु0का0वि0वि0, हरिद्वार

रसायन शास्त्री कहते हैं कि घोलक घुल्य को घुलाता है। तो वेद कहता है जिनमें घुलाने की शक्ति विद्यमान हो उसे सलिल कहते हैं। कार्बनिक रसायन शास्त्र में कहा जाता है कि कुछ ऐसे पदार्थ है जिनका अणुसूत्र एक हो परन्तु वे एक दूसरे से भौतिक एवं रासायनिक गुणों में भिन्न हो, सम परमाणुक कहलाते हैं। ऐसे यौगिकों की उपलब्धि की घटना को समाववयता कहते हैं।

वेद भी किसी शब्द की व्याख्या सीमित रूप में नहीं करता है, बल्कि व्यापक रूप में एक ही शब्द से सैकड़ों वस्तुओं का नाम निर्धारित करता है। जैसे हरि 'हरण' करने वाले को कहा है संसार में जितने हरणशील प्रकृति के है, उन्हें हरि कहा गया है। उदाहरणार्थ ईश्वर सभी के दुर्गुण, दुर्व्यसनों एवं दुखों को हरते हैं इसलिए उन्हें हरि अर्थात् भगवान् कहा गया है।

सूर्य को भी हरि कहा गया है। सूर्य के प्रकाश में सात रंग होते हैं। पौधे सूर्य के सात रंगों में से छः रंगों को अवशोषित कर लेते हैं, परन्तु हरे रंग का अवशोषण नहीं होता। अतः हरि का अर्थ हरित वर्ण, अर्थात् हरित पर्ण कहा गया। उसी प्रकार अनेक शब्द लिये गए हैं। जैसे हरि घोड़ा, सांप, मेंढक, चोर, सूर्य, अग्नि, हर, गुरु सेनापति इत्यादि।

रसायन विज्ञान वेत्ता कहते हैं कि हाइड्रोजन एवं आक्सीजन निश्चित अनुपात में मिलते हैं, तो जलने के फलस्वरूप पानी बनता है, लेकिन वेद अपनी प्राचीन भाषा में कहता है कि जब सूर्य और वरुण मिलते है तो पानी का निर्माण होता है

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताची साधन्ताः।।
-ऋग्वेद एवं साम वेद उ.आ.४/मं.१

वेदों में वर्णित नौवहन व्यवस्था एवं प्रौद्योगिकी

धर्मेन्द्र प्रसाद
शोध छात्र
प्रा0भा0इति0,सं0 एवं पुरा0 विभाग
गु0कॉ0वि0वि0, हरिद्वार

डॉ० नवीन सैनी
प्रा0भा0इति0,सं0 एवं पुरा0 विभाग
गु0कॉ0वि0वि0, हरिद्वार

किसी भी सभ्यता के विकसित होने का अर्थ है उसकी संस्कृति का उत्तरोत्तर पल्लवित होते रहना। इस संस्कृति के पल्लवन में सामाजिक, आर्थिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक आदि सभी पहलुओं का विकास शामिल होता है और यह सभी पहलू आपस में अन्तः- सम्बन्धित भी हैं।

जो एक दूसरे के विकास के लिए आधार का कार्य करते हैं। सामाजिक जीवन के विकास के लिए अनेकों मानवीय उपलब्धियों एवं व्यवस्थाओं ने आधार का कार्य किया है। मानव ने अपने सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रखने के लिए विभिन्न नियमों, रीति रिवाजों आदि को बनाया, उसी समाज की आवश्यकताओं के लिए वह समय समय पर अनेक तकनीकों, युक्तियों का विकास तथा विभिन्न आविष्कार करता रहा है, इन्हीं उपलब्धियों में एक उपलब्धि मानव के आवागमन एवं उससे जुडे हुए साधनों के विकास से सम्बन्धित है।

इसी सन्दर्भ में वेदों में आवागमन व्यवस्था के अन्तर्गत जल आवागमन पर दृष्टिपात करें तो इस काल की तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी में नौवहन व्यवस्था एवं तकनीक का बहुत महत्वपूर्ण स्थान मिलता है। वैदिक सभ्यता सुसंस्कारित एवं अत्यन्त विकसित थी, समाज में स्थायित्व आने से जीवन के विविध पक्षों का उत्तरोत्तर विकास हो रहा था, इन्हीं पक्षों में जल आवागमन व्यवस्था का भी उपयुक्त रूप से विकास हो चुका था। वैदिक आर्यों के लिए नदियों का विशेष महत्व था, सिन्धु, सरस्वती, वितस्ता, चेनाव, रावी, व्यास, शुतुद्रि, गंगा, यमुना आदि नदियों का वैदिक ग्रन्थों में बार-बार उल्लेख होना इस बात को सिद्ध कर देता है और जिस सभ्यता एवं संस्कृति में नदियाँ इतना महत्व रखती हों तो स्वाभाविक ही है कि उस समाज में नौवहन व्यवस्था के विकास पर अवश्य ही विशेष ध्यान दिया जाता होगा। आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार, लेन देन, भ्रमण अभियान चाहे वह सैन्य अभियान हो, साहसिक, व्यापारिक या फिर आव्रजन प्रवर्जन हो सभी उद्देश्यों हेतु जल आवागमन व्यवस्था विकसित हो चुकी थी। इन सभी पक्षों पर वेदों ने तत्सम्बन्धी प्रचुर सामग्री को प्रस्तुत किया है। इन साहित्यों में नौवहन व्यवस्था, तकनीक एवं प्रौद्योगिकी का ज्ञान हमें इनमें वर्णित श्लोकों एवं विभिन्न कथानकों के माध्यम से होता है। वेदों में समुद्र के रत्न, मोतियों का व्यापार, समुद्री व्यापार के लाभ, भृज्यु नामक समुद्री यात्री के कथानक, बृबु जैसे प्रसिद्ध समुद्री व्यापारियों का उल्लेख, ऐतरेय ब्राह्मण में समुद्र को अतल और भूमि का पोषक कहा जाना, शतपथ ब्राह्मण में रत्नाकर (अरब सागर) तथा महोदधि (बंगाल की खाड़ी) के लिए प्राच्य और उदीच्य शब्दों का प्रयोग इनके अतिरिक्त नौ, नावा, प्लव, द्युम्न के साथ नौमण्ड (लंगर), शंबिन (नाव हटाने की लग्धी) आदि के स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं, जो तत्कालीन नौवहन व्यवस्था एवं जहाजरानी उद्योग की उन्नत दशा का बोध कराते हैं।

वेद में अग्निदेवता एवं ऊर्जा विज्ञान

मोनिका साहू
शोध छात्रा,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, इलाहाबाद

अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति 'अग्नि इति अङ्गिति. अगि गतौ इस गत्यर्थक धातु से अग्नि शब्द निष्पन्न हुआ है। अत: अग्नि शब्द देवता तथा शक्ति, तेज के अर्थ के लिये प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही अग्निदेव की स्तुति से गायत्री छन्द में होता है

''अग्निमीळे पुरोहितं ज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्''

अग्नि सम्प्रदाय के भक्तों में श्रेष्ठ पूजनीय अग्निदेव और उनके स्वभाव के सम्बन्ध में अनेक रूपकों की कल्पना की गयी है। इस पृथ्वी पर अनेक रूपों में उनके आविर्भाव कल्पित किये गए हैं। आकाश में उन्हें विद्युत्‌रूप और सूर्य के मध्य तेज के रूप में माना गया है।

भूलोक के पार्थिव देवताओं में सबसे प्रधान अग्नि है। वैदिकगण में भी इन्द्र के बाद अग्नि का ही प्राधान्य है। ऋग्वेद में अग्नि से सम्बन्धित 200 से अधिक सूक्त हैं। अग्नि की स्थापना भूतल पर इस प्रकार हुयी।

''प्रभु: भू: भुव: स्व: है उसे साक्षी करके मैं आकाश की सुन्दरता पृथिवी पर उतारने के लिये है। विद्वानों की यज्ञभूमि तेरी छाती पर अन्नादि अग्नि की स्थापना करता हूँ। जिससे सबको अन्न प्राप्त हो।''

अग्नि इहलौकिक पारलौकिक दोनों के देवता माने जाते हैं, ये यज्ञ के पुरोहित, ऋत्विक, होता, हैं, तथा रत्नधारकों में श्रेष्ठ है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक सूक्त निर्माता के शब्दों में ''पुरोहित एक ही पदार्थ, 'यम का अनेक रूप से वर्णन करते हैं। वे उसे अग्नि, यम, और मातरिश्वा कहते हैं, अथवा अग्नि को विद्युत् की अनुकारिणी बताया गया है। वे घृत-पृष्ठ, घृतप्रतीक, घृतलोम, आदि अनेक विशेषणों से युक्त है।

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचि पावकं घृतपृष्ठमग्निनम्।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्योणि॥

अग्नि को देवता मानने के साथ ही ऊर्जा, शक्ति, एवं तेज का भी प्रतीक माना जाता है। अग्नि हिरण्यमय स्वर्णिम रंग से विभूषित है, जो तेज का द्योतक है।

पृथ्वी पर सूर्य का प्रतिनिधि अग्नि को ही माना जाता है। सूर्य की ऊर्जा, शक्ति, ताप अग्नि से सम्बन्धित है। प्रकाश देवत्व का दर्शन और ताप जीवन की उष्णता है। एक ऊर्ध्वगमन का मार्ग बनता है, दूसरे में जीवनोचित शक्ति की सृष्टि होती है

अग्नि जो सूर्य का प्रतिनिधि है, सूर्य की किरणों से चिकित्सा करके पीलिया आदि रोगों

का निवारण करता है। [illegible] रोगों का संहारक बताया गया है। अग्नि को सब प्रकार के कृमियों को जलाकर दग्ध कर देने वाला कहा गया है

सर्वेषां च किर्माणां सर्वासां च किर्मीणाम्।
भिनद्भ्राश्मना शिरो दहाम्यग्निना मुखम्॥

ऋग्वेद में अग्निदेव की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता

डॉ० नन्दन भार्गव
व्याख्याता, रसायन शास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

ऋग्वेद में 250 से अधिक सूक्तों में अग्निदेव की स्तुति की गई है। प्रस्तुत शोधपत्र में अग्निदेव के सूक्तों की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है।

पृक्षोवपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीय मा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषयः॥(ऋ १/१४१/२)

प्रस्तुत मंत्र में अग्निदेव के तीन रूप वर्णित हैं :

1. भौतिक अग्नि के रूप में वे अन्न को पकाने वाले और शरीर को पोषित करने वाले हैं।
2. सप्त लोकों के हितकारक मेघों में विद्युत् रूप में हैं।
3. बलशाली अग्निदेव रसों का दोहन करने वाले सूर्य के रूप में विद्यमान है।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्त्रणयन्त देवाः॥ (ऋ. १४७/१)

अग्निदेव की ज्वालाऐं जो वायुमण्डल का शोधन करती है सर्वत्र प्रकाश बिखेरती है एवं पोषक अन्नों के द्वारा जीवन तत्व प्रदान करती हैं। यह वैज्ञानिक सत्य है कि अग्नि न केवल वायुमण्डल शुद्ध करती है बल्कि अन्न को भी पकाती है।

ईड़ितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्चुतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम्॥(ऋ. २/३/३)

'मरूतां अच्युतम्' इन्द्रम पवन में स्थिर होने वाली विद्युत् अर्थात आधुनिक विज्ञान में विंड पावर इलक्ट्रिसिटी का वेदकालीन ज्ञान दृष्टि गोचर है। जिसके आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने पवन विद्युत् उत्पादनों को वर्तमान रूप देकर उपयोग किया है।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवःस्यु॥ (ऋ. १/२४/७)

ऋग्वेद में सूर्य को अद्भुत ऊर्जा का महान् स्रोत माना गया है एवं उसकी किरणों को

प्रकाश एवं शक्ति प्रदायिनी कहा गया है अर्थात् अद्भुत शक्ति (सोलर एनर्जी) की ओर इंगित किया है, जिसे आज वैज्ञानिक स्वीकार कर प्रफुल्लित हैं।

ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं को जल विद्युत, परमाणु विद्युत, नाभिकीय विखण्डन पद्धति में विद्युत् उत्पादन में ऋग्वैदिक ऊर्जा – अवधारणा का महत्वपूर्ण योगदान है। ताप विद्युत् ऊर्जा, भू गर्भीय ताप विद्युत्, वैमानिक अभियांत्रिकी अभियांत्रिकी आदि ऋग्वेद में अग्निदेव की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता को सिद्ध करते हैं।

वेदों में वर्णित विमान विज्ञान

विवेक ओझा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वेदों में वर्णित विज्ञान के विकास में हमें सायण महोदय के अनुवाद से स्पष्टतः पता चलता है कि इसका वर्णन चारों वेदों, संहिताओं एवं उपनिषदों इत्यादि ग्रन्थों में हुआ है। वेदों में उड़नखटोलों, पुष्पक विमानों आदि प्रकार के विमानों का वर्णन है, जो केवल कपोल कल्पना मात्र ही नहीं वरन् सत्य है। क्योंकि अब विश्व के सभी देशों के विमान वैज्ञानिक जिस प्रकार के विमानों का अविष्कार तथा निर्माण कर रहे हैं उन सभी प्रकार के विमानों का वर्णन हमारे वेदों में मिलता है।

विमान वह यन्त्र व मशीन होता है जिसको कोई अश्व नहीं चलाता है तथा जिसकी गति बहुत तीव्र होती है। विमान कई प्रकार के होते हैं।

ग्रिफिक महोदय ने ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 36वें सूक्त की इतनी गलत व्याख्या की है कि वह बोधगम्य ही नहीं रहा है। यदि सायण के भाष्य से काम लिया गया होता तो इस विषय पर अवश्य ही प्रकाश पड़ता।

हे रैभव! तुमने जिस रथ का निर्माण किया उसमें न तो अश्वों की आवश्यकता है और न धुरी की। यह तीन पहियों का प्रशंसनीय रथ वायुमण्डल में विचरण करता है। तुम्हारा यह अविष्कार महान है। तुमने इस कार्य में स्वर्ग एवं मृत्युलोक दोनों को दृढ़ एवं धनी बनाया है, (ऋक्0 4/23/1)। इस वायुयान से किसी प्रकार की आवाज नहीं होती थी। यह अपने निश्चित पथ पर वायुमण्डल में विचरण करता था और इधर उधर न जाकर सीधे अपने गंतव्य स्थान पर चला जाता था। यह रथ बिना अश्व के संचालित होता था। (ऋक्0 1112/12 और 10/112/10)। ऋभुओं ने ऐसे रथ का निर्माण किया था जो सर्वत्र जा सकता था। (ऋक्0 1/20/3/1/34/2 1/47/2/1/92/28, 1/118/1, 1/118/2, 1/129/4,1/157/3,5/75//3,5/77/3,5/85/29,10/39/12)।

विल्सन तथा कुछ दूसरों ने अश्वों द्वारा संचालित पतंग अर्थ किया है, विमान नहीं, किंतु इन उदाहरणों से यह अर्थ नहीं निकलता है। कम से कम यह तो साफ वर्णित है कि अश्विनों का

रथ यंत्र कला से निर्मित किया गया था और उसके संचालनार्थ अश्व नहीं लगे थे। (ऋक्0 1/112/10 और 1/120/12)। एक दूसरे स्थान में सर्वत्र विचरणशील सुन्दर रथ का वर्णन है। (ऋक्0 1/20/3)।

ऋग्वेद में वायु तथा समुद्र वाले दोनों रथों का साफ साफ वर्णन है। (ऋक्0 1/182/5) इसी प्रकार यजुर्वेद में भी वायुयान यात्रा का बड़ा ही मनोहर वर्णन है:

आकाश के मध्य में यह विमान के समान विद्यमान है। धुलोक, पृथ्वी और अंतरिक्ष इन तीनों लोकों में इसकी अबाध गति है। सम्पूर्ण विश्व में गमन करने वाला और मेघों के ऊपर चलने वाला, वह विमानाधिपति इहलोक और परलोक के मध्य में सब ओर से प्रकाश देखता है। (वाज0 संहि0 17/59)। इसी तरह के प्रमाण अथर्ववेद में भी स्पष्टत: मिलते हैं।

निष्कर्षत: विभिन्न वेदों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में विमान विज्ञान के क्षेत्र में जो भी विकास हुआ है, उसका बीज वेदों में है। इस लेख के विभिन्न बिन्दुओं का विस्तृत विवरण शोधपत्र में दिया जायेगा।

वेदों में गणित

साधना शर्मा
शोधछात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव सभ्यता के विकास के प्रथम चरण में ही भारतीय दार्शनिकों ने ब्रह्माण्ड की मूलभूत एकता की परिकल्पना कर ली थी एवं अनुभव किया था कि इस संरचना का गणितीय आधार है, जिसके कारण इसके किसी भी प्रदत्त प्रक्रम के शुद्धता सीमा तक विश्लेषण हेतु निश्चित नियमों का पालन करना आवश्यक है।

ज्योतिष सम्बन्धी उपलब्ध ग्रन्थों में प्राचीनतम लगध ऋषि कृत वेदाङ्गज्योतिष की 36 वीं और 43वीं कारिकाओं में गणित को सबसे महत्वपूर्ण कहा गया है–

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वत् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्ध्नि स्थितम्।।

(लगधकृत वेदाङ्गज्योतिष, श्लोक -४)

गणित के विषयों में कुछ आधारभूत नियमों से सम्बद्ध उल्लेख प्राप्त होते हैं। गणनाविषयक शब्दों में दश, शत, सहस्त्रं आदि दस दस गुणा की वृद्धि को सूचित करते हैं। यह दशगुणा प्रणाली भारतीय मनीषा की ही विश्व को परम देन हैं। गणित में शून्य, अनन्त, स्वतन्त्र नौ अंको तथा दशमलव स्थिति मान की खोज सर्वप्रथम भारत में हुई थी। संख्याओं में युग्म और अयुग्म संख्याएं

तथा मूलभूत परिकर्म संकलन, व्यवकलन, गुणन, भागहरण तथा भिन्नों का ज्ञान प्रमाणित हैं। ऋग्वेद में प्रमा, प्रतिमा और परिधि शब्दों का प्रयोग रेखागणित के ज्ञान की ओर निर्देश करता हैं यज्ञशालीय निर्माण के लिए वर्ग और वर्गमूल निकालने की विधि का ज्ञान अपेक्षित है। वैदिक युग में रेखागणित का विकास कर्मकाण्ड से हुआ। क्षेत्रमापन और नाना आकार के क्षेत्रों के निर्माण की विधियां शुल्बसूत्रों में मिलती हैं। वृत्त के सन्दर्भ में व्यास और परिधि के क्षेत्रों के निर्माण का जो 'पाइ' नाम का स्थिरांक है उसकी भी अनेक प्रकार से गणना की गयी है। यजुर्वेद में यज्ञ के विषय में वर्णन करते हुए बीजगणित विद्या का भी संकेत मिलता है।

विज्ञान का प्रथम विकास अति प्राचीन काल में प्रारम्भिक भारतीय दार्शनिकों द्वारा प्रकृति की प्रत्यक्ष जटिलताओं एवं विविधताओं की मूलभूत एकता की खोज के प्रयासों के साथ हुआ था। प्रकृति को प्रक्रमों एवं घटकों के मौलिक आंधार पर समझने के उनके ये प्रयास उन्हें इन्द्रियजनित स्थूल परीक्षणों से कहीं आगे ले गये थे। प्रत्यक्ष प्रेक्षणिक स्थूलता के क्षेत्र में उक्त परिमेय विश्लेषण पर आधारित उनके इन प्रयासों में वे अन्ततः अविभाजित परमाणुओं, अनन्त रूप से विभाजित बीज के अन्तः बीजों एवं संख्याओं, ज्यामितियों तथा सममिति की अवधारणा पर पहुँच गये थे।

ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवविज्ञान

डॉ० नन्दिता सिंघवी
व्याख्याता, संस्कृत
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

अरुण आचार्य
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

सूक्ष्म जीवविज्ञान की वह शाखा है कि जिसके अन्तर्गत सूक्ष्म जीव अथवा सूक्ष्माणु का अध्ययन किया जाता है। हालैण्ड निवासी एन्टोनी वान ल्यूवेनहॉक (1632-1723ई.) को सूक्ष्म जीवों की खोज का संस्थापक माना जाता हैं जबकि सर्वप्रथम वेदों में सूक्ष्म जीवों के विषय में विवरण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सूक्ष्म जीवों को ''अदृष्टाः'' कहा गया है तथा इनसे मानव शरीर को व्याप्त माना गया है (1.1.91)। ये विषैले तथा विषहरहित होते हैं तथा दाह उत्पन्न करते हैं (वही, 1.191.1)। रात्रि में ये सक्रिय हो जाते हैं और सारे संसार को देखते हैं (वही, 1.191.5)। यक्ष्मनाशन सूक्त से ज्ञात होता है कि रोगजनक सूक्ष्म जीव मानव के प्रत्येक अंग, लोम और शरीर की सन्धि में उत्पन्न होते हैं (वही 10.163.6)। अग्नि हमारे शरीर में रहने वाले सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने की क्षमता रखता हैं (वही 8.39.2), अतः यज्ञाग्नि के माध्यम से अज्ञात यक्ष्मा, राज्यक्ष्मा और अन्य रोगों से रोगी को मुक्त कराया जाता था (वही 10.161.1)। अग्निहोत्र यज्ञ करने से सूक्ष्म जीवों का विनाश हो जाता है। जो अग्निहोत्र नहीं करते वे मनुष्य रोगी बने रहते हैं

अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यामीवा अनग्नित्रा अलभ्यमन्त कृष्टी: (वही 1.189.3)।

उदित होता हुआ सूर्य विषैले सूक्ष्म जीवों का विनाश कर देता है (वही 1.191.89), अत: आदित्यों को "अपामीवाम्" कहा गया है।

श्री रामगोपाल शास्त्री ने "वेद में आयुर्वेद" पुस्तक में राक्षस, गन्धर्व, अप्सरस, पिशाच, असुर और शर्कु आदि सौ से अधिक नामों को रोग कृमियों के नाम माने हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद को सूक्ष्म जीव विज्ञान का आदि स्रोत कहा जा सकता है।

वेदकालीन कृषि व्यवस्था

डॉ० चन्द्रशेखर पाण्डेय
प्रवक्ता संस्कृत
नित्यानन्द महाविद्यालय, लखना, इटावा

वैदिक मानव प्रकृति के सानिध्य में रहकर ही अपनी दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। अस्तु उसकी जीविका का प्रधान कृषि कार्य था। अश्विनी कुमारों ने सर्वप्रथम आर्यलोगों को हल के द्वारा बीज बोने की कला सिखाई-

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्य दिवि यवं वृकेण कर्षथ:। (ऋग्वेद 10/13/6)

वैदिक मानव मुदग, माष, तिल, अणुखल्व, गोधन, नीवार, प्रियंगु, मसूर, श्यामक, कपास आदि फसलों का उत्पादन करता था। नर्मदा से गोदावरी तक का सम्पूर्ण क्षेत्र कपास की उन्नत खेती के लिए प्रसिद्ध था। गृत्समद् नाम क ऋषि ने इस संसार को कपास की खेती का सफल प्रयोग दिखाया। गृत्समद् ने एक-एक पौधे से दस सेर कपास प्राप्त किया था। इस नई पैदावार को लोगों ने **'गार्त्समदम्'** नाम दिया।

वैदिक काल में समस्त पुरुष वर्ग खेती का कार्य करता था तथा स्त्रियाँ घर का काम काज सम्भालकर बुनाई करती थी। शाम को जब सूर्य अपनी किरणे समेट लेता है तो बुनने वाली स्त्रियाँ भी अपना अधूरा बुना हुआ धागा समेट लेती है -

"पुनः समव्यद् विततं वयन्ती
मध्या कर्तोन्यधाच्छक्म धीर:।। (ऋग्वेद 2/38/4)

यद्यपि बुनाई का कार्य स्त्रियों पर था किन्तु कातने का कार्य स्त्री पुरुष बालक वृद्ध सभी करते थे। प्रारम्भिक काल में बुनाई का कार्य अत्यन्त कष्टप्रद था अस्तु इसे बुनाई का तपस्याकाल कहा जा सकता है। आर्य लोग ब्रह्ममय वृत्ति से बुनाई कार्य करते थे।

वेदों में वर्णित कृषि विज्ञान

डॉ० ईश्वरी देवी
रीडर एवं अध्यक्षा, संस्कृत विभाग
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत

कृषि विज्ञान को मानवजीवन के विकास के प्रथम अध्याय के रूप में लिया जा सकता है। कृषि ही वह तन्तु है जिसने असभ्य मानव समाज को सभ्यता एवं संस्कृति के अटूट बन्धन में बांधा। यह कृषि कर्म ही मनुष्य के जीवन की प्रथम कला एवं विज्ञान है क्योंकि आर्यों की आस्था के शाश्वत केन्द्र एवं विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में कृषि विज्ञान का विशद वर्णन है। ऋग्वेद में कृषि के महत्व को वैदिक कृषि के इस कथन द्वारा जाना जा सकता है, जब वह द्यूतकर को जुये के दोषों को अवगत कराते हुये,अन्त में उसे कृषि करने का उपदेश देता है

अक्षै र्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व।।

ऋग्वेद में ऐसा वर्णित है कि सर्वप्रथम अश्विनी कुमारों ने वैदिक मानव को हल आदि के माध्यम से कृषि कार्य करना सिखाया।[2] इसके पश्चात् कृषि का आरम्भ वेन पुत्र पृथी ने किया।[3] ऋग्वेद में कृषि भूमि को उर्वर एवं क्षेत्र आदि नामों से जाना जाता था। यह क्षेत्र भी उपजाऊ तथा पड़ती के भेद से दो प्रकार के थे। वेदों में कृषकों एवं कृषि विज्ञानियों को ऐसा निर्देश दिया गया है कि भूमि की उर्वरता को सहेजने के लिये खेतों की उचित देखभाल करें।[4] वैदिक काल में खेतों पर स्वामित्व किसी एक व्यक्ति का नहीं था, अपितु यह सामूहिक रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा की जाती थी।

वर्तमान समय में तो आज हमारा समाज तकनीकी रूप से अत्यधिक विकसित है किन्तु प्राचीन काल में तो कृषि परम्परागत रूप में की जाती थी। वेदकालीन प्रमुख कृषि उपकरण 'हल' था इसके अतिरिक्त वरत्रा (रस्सी), युग, कीनारा (हलवारा), अष्ट्र, तोत्र आदि का वर्णन है। कृषि करने के लिये पशुबल सर्वाधिक सहायक था। हिन्दुओं की आस्था की केन्द्रस्थली गाय सर्वाधिक उपयोगी थी। गाय के बछड़े कृषि में सहायक थे एवं उसका गोबर खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था।

करीषिणी फलवतीं सुधाभिराम्। [5]

वैदिक काल में ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि अनाज बोने का कार्य भिन्न-भिन्न ऋतु में किया जाता था।[6] बोये जाने वाले अनाजों में यव (जौ), माष, गेहूँ, मुद्ग, नीवार (जंगली धान) श्यामाक (सांवा) तिल, प्रियगुँ (मसूर), ब्रीहि (धान), उर्वारू आदि का नामोल्लेख प्राप्त होता है।

कृषि का कार्य वैदिक आर्यो के लिये अत्यधिक पूजित एवं आदरणीय था इसका आकलन अथर्ववेद में वर्णित 'पृथिवी' सूक्त से किया जा सकता है। इस सूक्त में मातृ स्वरूपा पृथिवी को ही समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी तथा पोषिका कहा गया है।

वेदों में कृषि विज्ञान

कुन्ती देवी
शोध छात्रा
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेद ज्ञान विज्ञान के अपार भण्डार हैं तथा हमारी भारतीय संस्कृति के आधार हैं। वेद की महत्ता रसायन, पर्यावरण, गणित, वनस्पति, वास्तुशास्त्र आदि सभी क्षेत्रों में रही है, परन्तु कृषि विज्ञान वेदों में अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारतवर्ष अर्थ व्यवस्था के संदर्भ में कृषि पर निर्भर रहा है। कृषि ही भारतीय जन-जीवन का मुख्य आर्थिक व्यवसाय रही है। सर्वप्रथम पृथु वैन्य ने पृथिवी की कृषि योग्य बनाया। पर्वतों, वनों को काट, ग्राम नगर बसाये। उस समय भी भूमि अकृष्टा पच्या थी। बिना जोते बोये फल और अन्न उगना बंद हो गया (अ0वे0प, 10,24) आर्यों की धारणा है कि मानवों का कल्याण करने के लिये देवताओं ने सर्वप्रथम कृषि का काम करना आरम्भ किया था। वैदिक ऋषियों ने भी कृषि की ओर संकेत दिया है (ऋ0वे0 7, 22,6) ऋग्वेद में पृथ्वी को 'गो' नाम से कहा गया हौ मनुष्य के लिये कृषि को मुख्य व्यवसाय बताया गया है (यजु0 वे 71,72)। खोद कर बीज बोने की परिपाटी चली और कृषि का आरम्भ हुआ (महा0 द्रोण, पर्व) वैदिक काल में सिंचाई के आधुनिक युग की तरह साधन नहीं थे। खेतों की सिंचाई के लिये वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि मेघ वर्षा करते रहें तथा कृषि फलती फूलती रहे (यजु0 22, 22) ऋग्वेद में कृषि के लिये कई स्रोतों से जल प्राप्त करने की बात कही है। ऋग्वेद में भी वर्षा को कामेष्टि यज्ञ द्वारा अपने वश में कर लेता है। वृष्टि सूक्त के अतिरिक्त वेदों में वर्षा करने का भी वर्णन है (ऋ0 105/17) यजुर्वेद में पतली नालियां, पोखरों, तालाबों और नालियों से कृत्रिम आन्दोलन द्वारा ऊँचे क्षेत्रों के लिए उठाए जाने वाले, झरनों, कृत्रिम नालों में पानी, वृष्टि से प्राप्त जलों का उल्लेख है जिनसे कृषि सुगमता से की जाती थी (जयु0 16, 37) वायु की शक्ति से जल सींच कर सिंचाई होने लगी थी। तालाबों, नालों, जलाशयों से खेतों की सिंचाई होती थी।

संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान

डॉ. प्रेम चन्द्र शास्त्री
प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, संस्कृत संहिता सिद्धान्त विभाग
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

संस्कृत वाङ्मय का आदि साहित्य और सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम साहित्य वेद हैं। वेदों में सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है कहा भी गया है " वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्" भारतीय ऋषि-मुनियों का शाश्वत चिन्तन ही वैज्ञानिक चिन्तन है। उन्होंने कहा प्रत्येक कण में सारा संसार और सारा संसार अनेकानेक कणों में विद्यमान है। बीज में वृक्ष या वृक्ष में बीज का सिद्धान्त भी भारतीय ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व प्रतिपादित कर दिया था। जिस का प्रमाण महाभारत में प्राप्त होता है। **"बीजमात्रं पुरा सृष्टम्" (शान्तिपर्व- १८४-१५)**

"नाबीजाज्जायते किञ्चित्" (शान्तिपर्व २१६-१२) अर्थात् बीजमात्र की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई। बिना बीज के कुछ भी उत्पन्न नहीं होता है।

इसी प्रकार विद्या अविद्या रूपी ज्ञान-विज्ञान का आधार सम्पूर्ण वेद हैं-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतश्नुते।। (यजुर्वेद ४०/१४)

अर्थात् जो मनुष्य विद्या और अविद्या को साथ ही जानता है वह अविद्या से मृत्यु को तर के विद्या से मोक्ष को प्राप्त होता है। इस मंत्र में ज्ञान के एक भाग अविद्या में समस्त आधुनिक-भौतिक, रसायन, जीव, वनस्पति, चिकित्सा, अभियान्त्रिकी एवं तकनीकी विज्ञानों का समावेश हो जाता है। जबकि दूसरे भाग विद्या में दर्शन, अध्यात्म, वेदान्त आदि Spirtual Science का समावेश हो जाता है।

संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान भी है जो आधुनिक विज्ञान में नहीं है विश्व के प्राचीन साहित्य ऋग्वेद में कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में रात-दिन "अहोरात्रि" का युग्म बना। दिनों से तीस दिन का एक चान्द्रमास और बारहमासों से एक संवत्सर के अनुसार काल गणना प्रारम्भ हुई- "समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी।। ऋ0 10/190/2

चिकित्साविज्ञान का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के 10/97-161-163 मंत्रों में रुद्र के प्रथम देवभिषक होने तथा अश्विनी कुमारों द्वारा शल्य, काय, रसायन आदि अष्टांग आयुर्वेद चिकित्सा वर्णन प्राप्त होता है।

संस्कृतवाङ्मय वेद-वेदाङ्ग, आरण्यक, उपनिषद, धर्मशास्त्रों आदि में वैज्ञानिक तथ्य प्राप्त है। जिनका उल्लेख यथासम्भव शोध पत्र में प्रस्तुत किया जायेगा।

वेदों में विज्ञान

ओमप्रकाश 'राही'
प्राध्यापक संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, पोंटा साहिब, सिरमौर

सर्वज्ञानागमा वेदाः मानवहितसाधकाः।
धर्मसंस्कृतिमूलाश्च शश्वत्विज्ञानसंकुलाः॥

विश्व की प्राचीनतम भाषा संस्कृत में निबद्ध साहित्य न केवल अध्यात्म एवं तत्त्वज्ञानपरक ही है अपितु विज्ञान, शिल्प, कला आदि विषयों में भी यह अग्रणी है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने 'वेद भाष्य' और अन्य साहित्य में वेदों में विज्ञान का प्रतिपादन किया है। वेदों में इतना विज्ञान भरा पड़ा है जिसे वैज्ञानिक अभी भी नहीं ढूँढ पाये हैं। अमेरिकन विदुषी श्रीमती व्हीलर विल्लौक्स के ये शब्द यहाँ उद्धरणीय हैं-''India is the land of great Vedas. The most remarkable works, containing not only religious ideas for a Perfect life but also which science has since proved true. Electricity, Radium, Electrons, Airships, all seem to the sears who found the Vedas.

''सभी ग्रह अपने-2 अक्ष पर परिक्रमा करते हैं जबकि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर तथा चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है''-इस सर्वमान्य सिद्धान्त को सर्वप्रथम चारों वेदों में स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद के ''या गौर्वर्तनि पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना वृतनीर वारतः........'' मन्त्र में पृथ्वी द्वारा अपने मार्ग पर तथा सूर्य के चारों ओर घूमने, यजुर्वेद के ''आकृष्णेन रजसा वर्तमानो......'' इत्यादि मन्त्र में सूर्य की आकर्षण शक्ति तथा परिभ्रमणशीलता, अथर्ववेद के सत्येनोत्तभिता भूमिः .....दिवि सोमो अधिश्रितः'' मन्त्र में सोम अर्थात् चन्द्रमा के सूर्य पर आश्रित हो प्रकाशित होने आदि वैज्ञानिक तथ्यों को स्वीकार किया गया है। अथर्ववेद के-''याऽर्णवेऽधि सलिलमग्न आसीत् यस्या हृदयं परमे व्योमन्'' मन्त्र में पृथ्वी के जलमग्न होने की वैज्ञानिक पूर्व पुष्टि होती है।

''सूर्य द्वारा जल को वाष्प रूप से ग्रहण करके बादल रूप में वर्षा होने'' के वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्राग्रूप अथर्ववेद के ''अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः। आपः समुद्रियाः धाराः।'' तथा 'हरयः सुपर्णा अपोवसाना दिवम् उत्पन्ति'' मन्त्रांशों से होती है। अथर्ववेद के ही ''हिमस्य त्वा जरायुणा शाले परि व्ययामसि......'' मन्त्र में वर्णित घर को ही वैज्ञानिक परिवेश में एयरकण्डीशन्ड घर कहा गया है।

Solar Energy - A Vedic Approach

Dr. K.B. Archak
Reader Deptt. of Sanskrit,
Karnatak University, Dharwad

Verily Indian Science and civilization have evolved together and complemented each other through the age. The Indians of the past have unraveled the mysteries of nature through their constant experiments and observations, which however have been documented in the form of Vedas, Vednagas and so on. Needless of say that such store of Vedic literature records rich material pertaining to the science of Physics, in particular the Solar Energy.

Declaring the genesis of the Sun, the satapatha Brahmana (VI .1/2/3) asserts that the sun is born out of the union of Vayu and Antariksa, With a view to showing the invariability of the water in the Sun, the same Brahmana (X.6/5/2) indentifies the Sun with water. This point has substantiated by many vedic texts from the yajur Veda (XIII. 30), the Jaiminiya Brahmaṇa (II. 62,II,145) the Aitareya Brahmana (IV. 20)

The Satapatha Brahmana (VI 1/2/3) again clerly states that the sun, Composed of Vayu, Apa and Agni is called Asmaparsni. The Rgveda (V. 47/3), the Taittiriya Brahmana (V. 3/6) reiterate this point. In connection with the vedic reference to Sun's black spot, Prof. Karl Kiepenhauer's remark holds much consistency. To quote his words- each spot consists of nucleus called umbra and a border called penumbra. Naturally, the Umbra is not fully black, but appears to be so, in contrast with the brighter black ground."

It is further interesting to note that the chandogya Upanishad (IV 1/4) refers to the periodic movement and their numerical variability of the sunspots, which perhaps are determined by Apah and Agneya i.e electrons and neutrons. The thermal agitation or eruption hypothesis is suggested here. The Jaiminiya Brahmana (I. 137) states that the Sun, the Moon and the Maruts have the atomic nuclei radiating the light, and due the balance of radiation the solar atmosphere is stable. Parallel to the Maitrayani Samhita (II 2/21), Yaska in his Nirukta (I .5) enumerates fifteen atomic nuclei considering their colom intensity and variety.

The scientific fact of solar energy accounting for rain is quite emphatic from the Vayu Purana (53/19), Brahmanda Purana (XXIV /26) and the Matsya Purana (XXVIII / 18). The constituent of Apah engulfing the solar atmosphere emits the cold waves as a result of which heavy masses of ice or fog or and glaciers are formed that are seen in North America, Europe and Antartic and Arctic polar regions.

All these tuype of solar rays energy in the plants producing food for livelihood. So too, the fossil Fuels are formed when living things get embedded in the earth's crust and undergo chemical change. Thus life forms and fossil fuels are due to the solar energy. Although the solar rays emit lot emit lot of energy, a part of it is being by us. the scientists consider that almost 1/3 of solar radiation consists of infrared radiation, through which we get the heat of the Sun. With the help of such solar energy. many a solar device wherein solar energy gets transformed into heat electricity such as solar water heater, solar cooker. By and large, in may be said that the Sun is the perennial source of solar energy, which can be utilized for the betterment of mankind.

SCIENCE IN THE VEDAS : WITH SPECIAL REFERENCE TO CELESTIAL ENERGIES

Dr. R. Laxmi
H.O.D., Deptt. of Sanskrit
Smt. K.S.J. Arts & Dr. S.M.S.
Commerce College, Dharwad

It is quite obvious and fortunate that in recent years, science in the Vedas has been a unuversally recognized aspect of ancient Indian culture. But the need of the present and future years to come is to go deeper into vedic science, solidify the scientific aspects and utilize the energies to constructive pattern of living and abandon the destructive elements right from now. To mention here a few opinions of great scholars, among the many, we can cite Manu, Narada, patanjali, Maxmullar, Buhler, Prof. E. Bright, and others. For instance, the Naradiya samhita makes reference to 18 earliest scientists of India and their contribution to science.

From the vedic times till today and nay in the years to come, Sun-Agni-Varuna and Vayu have been regarded as the sources of Celestial energy. Without these energies, life o this earth becomes impossible.

In this paper an attempt is made to highlight the significance and utility of celestial energies throughout the ages and in the future. They are :

SUN : The Sun God, (the power of light and heat) is the foremost major and primary lumanary of the Universe. In the Rgveda we come across 10 Suktas on the Sun. These suktas substantiate the efficacy and power of the Sun and also major aspects of atomic anergy. For instance, to cite one sukta,

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमाभासि रोचनम्।। ऋ १-५०-४

Other relevant suktas will be cited in the paper, along with their meaning.

VARUNA : Similarly, Varuna, the Sea God, a द्युस्थान Devata os another Divine Power which is vital for Living. To quote here a Sukta :

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वियस्तंभ रोधसी चिदुर्वी।
प्रनाकमृ म् नुनुदे बृहंतं द्विता नक्षत्रं प्रपथच्च भूम।। ऋ.

VAYU : Vayu, the wind God is highly essential for living. He is the giver of life breath. He is regarede as अंतरिक्ष प्रधान देवता. To cite a sukta,

वात अ वातु भेषजं। शंभु मयोभुनो हृदे। प्रण आयुंषि तारिषत्।। ऋ.

AGNI : Agni the fire God is still another Celestial energy without whom, life cannot exist. He is required at the yagnas, for cooking food and as the digestive power in living being. The following verse is in evidence of the power of Agni :

अग्निमीळे पुरोहितं। यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।। ऋ० १-१-१

Thus these four primary forces of Celestial energy, co-ordianate as they are, are absolutely necessary for mankind on this earth. It is apt to mention that Gayatri Mantram is a mode of worship of celestial energies.

CONCLUSION

These Celestial Energies when used with caution and prudence will shower boons on humanity; or else we have to face their wrath because there is a limit to their tolerance. Therefore, it is high time for modern India to conserve scientific knowledge of the Vedas and to utilize the same to peace and security. of India and the globe.

Vedic Science of Chanting: the Musical Symmetry Prefiguring Nature in Harmony

Dr. Falguni Piyush Desai
Lecturer Dept. of English
V.S. Patel College of Arts Sc. Bilimora, (Gujrat)

My paper proposes to focus on what does symmetry has to do with music, poetics or enlightenment? (With special reference to Vedic texts) For building up my argument I have looked for the roots of India music in Vedas i.e. Sam Veda and its supplement Gandharva Veda. Throughout the paper I have discussed that what could the precision and rigorous logic of symmetry have in common with the symmetry of nature and creative flow of enlightened music/ Not much, it might seem at first. But if we look beneath the hard, rational persona of symmetry, we actually discover that symmetry can be a unique form of music and even poetry of enlightenment this earth the principles of nature every thing is in harmony for instance sun rises it, sets, the river flows the stars twinkle this is harmony- harmony means symmetry-symmetry means tuning and due to this tuning the mother earth has its own music pronounce the Vedas. What does it mean, though to talk of music enlightenment, or an enlightened poetry? How does musical manifestation relate to the unmanifest ground of symmetry of this world? In what ways does music hide and reveal its own ground/ How can musical notes or sounds be vehicles for enlightenment? Can symmetry concepts and logic be such vehicles? Can they also act i the manner of forms of music? This is dealt with in the present paper. The concludes with the findings that the Vedas are sacred verses that are traditionally chanted. It is said that they are not merely deceptions of doctrines, but revelation of Truth. Their musical and poetic power to transform consciousness derives from the fact that these verses are not merely sounds referencing a silent truth separate from the sounds. Rather, the vowels and consonants of the sacred varies are the tangible presence of Truth itself which govern this universe. **According to our Vedic tradition, music and poetry is not merely a fanciful and pleasant play of worlds and sounds that might evoke some surprising images or emotions, but a direct manifestation of a deeper reality that has the potential to radically trans-**

form us and shift us out of fixed modes of awareness. Moreover. It is said that all existence manifests in this way from a fundamental sweara, seed, syllable of vibration. OM. As the Mandukya Upanishad says, This eternal Word is all : what was, what is, and what shall be, and what is beyond eternity.

Multi-disciplinary Explorations in Vedas and Vedanga sahitya

Dr. R.P. Pathak
Reader, Deptt of Education
L.B.S Vidya Peeth, New Delhi.

Dr. Amrita Panday
Sr. Lecturer, Deptt of Education
L.B.S Vidya Peeth, New Delhi.

The Veda which is believed to be the oldest and most authemtic repository of knowledge in India and has in it the elements both of abstract the theoretical and concrete practical ideas.The ideas underlying such ritual activities as yajna as well as astrogical and astronimical pursuits like calculating the black and movement of the celestial bodies are found in Vedic mantras. Mantr is poetic speech, inuested with the intensity of shythmic movement, The intensity of interwoven uerbal form and though substance and the intensity of human vision of truth.

The Vedas have diffrent meanings. To start with, the Vedas meat only the four Vedas, R.K. Sama, Yaju and Atharua. Later on the upanisads also came to be regarded as part of the Vedas. Actually, Vedangas, Viz, Siksa (Phonetics), Kalpa (ritualogy), Vyakaran (Grammar), nirukta (astronmy and astrology) had began to dewlop ewn be fore the upamisads. Aport from Vedangas there deuelop four upvedas Viz, Ayurvedic, Dhanurveda, Gandhar uar veda and Arthveda. In the extended sense, Vedas include even the two epics, Ramayana and Mahadharata. A Vast Literature of exposition Commentaries and treatises on the Vedas, Vedangas and the upanisadas deueooped in due course. The many-sideness of the Indian tradition may be gattered from the rich luterature.

In this tradition, spirituality is rated about religiousity, Psychological is rated about religiousity, Psychological displine, Yoga, peouides access to higher spiritual exprience. to become free from the crippling ffectsol of religious dogma. materialistac atheism, agnosticism and ewn scepticism were allowed to deuelop. But undoubtedly the Vedic-Puranic emphasis were more on pure existence, sat (satyaloka), cit (tapoloka), pure bliss, ananda (Janaloka), and knowledge, viznama (maharloka) in that order. It is true that other three principles, viz, mind (swar), life (bhuuar) and matter (bhus) are recognized by the vedic paramic fradition, but they are accoeded a lesser status, i.e. Less developed states of reality.

In the Indian tradition knowledge has been broadly diaided into two ways aparavidya empirical or mundane knowledge and Paravidya superos or spiritual knowledge. Knowledge requires us to per form some activities, nitya (perpetual) and kamya (optional for end. realization). Invedic Tradition ganita and Zyotisa are regarded as closely related be cause of their essential Computational character. The Karma ideology, and the bhaktimarga.

These ideas and ideals are often held to be responsible for arresting the dewlopment of science and technology in India. There are other levels of knowledge beyond the natural science. Pursiut of ''Principles' does not entaildenial of earthly 'defails.' from Atharva Veda to carakasamhita, from Arthaveda to Arthasastra, from Rgveda to Kamasutra, one finds an amazing range of Indian views and values, a remarkable blend of principles and details.

AGRICULTURAL SCIENCE IN THE VEDAS

Prof. Satya Deva Misra
Former Vice-Chancellor
Rajasthan Sanskrit University, Jaipur

Agriculture is the bed rock of Indian economy. Even the oldest portions of the Vedas are witness to the agricultural economy of India, and display the Vedic seers' Knowledge and techniques of farming. The famous Krsi Sukta of the Rgveda is directly related to agriculture. The Aksa Sukta has glorified agriculture, and the Manduka Sukta has extolled frogs as the harbingers of the rainy season. Indra, who occupies an important place in the Vedic religion, has been depicted both as the rain-god and the warrior-god in the Rgveda. A large number of hymns are addressed to many other Vedic deities like Maruts, Varuna, Mitravaruna and Parjanya, who are instrumental to agriculture.

The Vedic literature contains numerous references to the process of harvesting, and the tools and techniques of farming. In the Satapatha Brahamana, the operations of agriculutre have been described as plowing, sowing, reaping and threshing. Plough and other important accessories, namely hoe, sickle, and winnowing basket, which are still used for agriculture were known during the Vedic period. Even the classification of soil for cultivation and varieties of cultivated grains, problems of agriculture and irrigation method are described in the Vedic literature. The Present paper is an attempt to bring into focus the agricultural science in the Vedic literature, which has remained the foundation stone of agriculture down the ages.

A Compartative Study of Vedic and Modern Cosmology

Dr. Parnav Pandya
Dr. B.P. Shukla

Shambhavi Mishra
Research Sch.
Dev Sanskriti University, Haridwar

The subject of cosmology has been dealt in a great detail in Vedic literature. This subject has also occupied the attention of modem scientists and continues to remain as one of the most active fields of research. A comparative survey of Vedic and Modem cosmology has been presented in this paper. The origin and evolution of universe has been discussed in the light of Vedic Philosophy and modern Big Bang theory. Big Bang theory is purely materialistic in its approach whereas according to Vedas it is truly impossible to explain the origin of universe without the involvement of "Consciousness" as an essential Entity in addition to matter. Vedic view appears to be more logical and convincing.

Vedas : The Source of Ultimate Science

Dr. S.R. Verma
Reader, Deptt of Physics
DBS (PG) College, Dehradun

The Universe is a great mystery, and man indeed is the greatest wonder of the Universe. In the cultural history of the world we find man's consciousness oscillating between two extremes: Science and mysticism. There are moments in the history of mysticism surmounting science, and also Science triumphing over mysticism. Now the time has come to synthesize both the points of view. The Veda alone can bridge the gap between the two and present the whole unified vision of the universe. The Veda stands for the direct experience of Reality : anubhava. When this experience finds natural expression in words, it is latent with wisdom and vision. It has force of imparting the vision to truth seeker. Such poetic expressions are called the Veda-mantras. The seer who conceived, perceived and composed such mantras was called Rsi or Tattvadarsin.

The Rig Samhita is the most ancient of the world where we find these seers communicating their message of eternal truth to mankind. Their sensitive minds received the refining flashes of wisdom and vision radiating from the self-illuminating universe. They saw Reality face to face. They perceived the whole universe as a living organism. They saw the universal law and cosmic order as the manifestation of Truth and held it in high esteem as Rta. They knew the science and technique of living in harmony with nature.

There was never any conflict between science and Vedas. Vedic Rsi were not merely spiritual thinkers, they were also discoverers of science through its objective approach reveals that which is perceived, the object, the subject, the perceiver remains separte from it. Modern science investigates the field of known, but it does not touch the field of the knower and the spotaneous process of knowing at all.

Vedic science is a complete siience, which extends and fulfills the objective approach of modern science by incorporating the knower and the process of knowing of the unified field of all the laws of nature, which knower, the known and the process of knowing. Credit must also go to modern science because its objective approach has now uncovered the pure subjectivity, Today the most advanced level of modern science needs a complete apporach to investigation, which includes the two other values of knowledge-the value of the knower and the value of the process of knowing. All three values are uncovered in their totality in Vedic science. If progress is to continue a shift is required from the science of only one category to a total science. Vedic science is that total science. It uncover the knowledge of the total potential of natural law in its completeness and brings human awareness in tune those fine creative impulses that are engaged in transforming the field of intelligence into the field of matter.

The Concept of Entropy in the light of Vedic Philosophy

Prashant Arya
R.S., Deptt. of Philosophy
G.K.U. Haridwar.

Dr. B.P. Shukla
Ex. Head, Deptt. of Phyaics
G.K.U. Haridwar.

Dr. V.P. Shastri
Prof.,
Deptt. of Philosophy
G.K.U. Haridwar.

According to law of thermodynamics, in all natural processes entropy goes on increasing. The increase in entropy means the increase in disorderlyess resulting in the degeneration of energy. The universe was most orderly in the begining and with the passage of time it becomes more and more disorderly. However the concept entropy is applied in the case more of human beings the picture appeares to be different. Normally we all are fresh in the morning and our mind and body are in perfect order. But in the process of discharging our duties, the orderlyness of our mind and body are reduced, which may be interpreted as increase in entrophy. But the entropy of human beings can be reduced by taking spritual practices prescribed in Vedic Philosophy.

Is the same possible in the case of universe as a whole? An Attempt has been made in this paper to critically analise this concept.

Origin of physical sciences in Vedas

Dr. Rai Gyan Narian Prasad
Gorakhpur

Under my study, Rgveda deals with Agni, who presides over Vedic prthiviasthabna region, denotes the action i.e. mechanical dynamism of the physical world. Yajurveda deals with Jala/Vayu (or Indra) who presides the Vedic intermediate region i.e. antariksa, along with all pervasive cosmic-water, represents the space-time geometry of the universe. Samaveda deals with Surya (soul resides in the svarloka or dyuloka) or more certainly with it psychophysical represent ativl the Soma (manas or mind, personified as moon, inside the observe. Thus our three Vedas, the triple sciences (Rgveda, Yajurveda and Samaveda) deal with the three types of excited quanta grouped under the term 'Tharva' (agni, vayu and surya respectively) physical phenomenal world. while the Atharvaveda, primarily, deals with the fourth background) motionless or non-dynamic (universal parents - Dyavaprthivi) substratum on which the aforesaid physical creation was generated. In this work 'yajna' is more correctly equated with the English term 'egg' the symbol of univrese or the creation. i.e. Each mananda or world-egg. Brhadaranyaka Upanisad, describes the 33-dimensional cosmic geometry, belongs to this Yajurveda. In fact, space (cosmic waters) and time (vayu, the succession of events) constitute the infrastructure of the universe was alwayas in the pivilion and thus of lesser importance and personification. In modern physics. this cosmic-waters is assumed as the space, which is nothing but the hypersphere of gravitational (and electromagnetic)? fields unified with Riemannian geometry in general theory of Relativity, what we call our universe (i.e. world-egg or Brahmanda.) All the available eight sulba-sutras (seven belongs to Krsna Yajurveda but Katyayana to the Sukla yajurveda), the guidebook of Vedic geometry of solar/cosmic system is the part of the shukta-sutras of Yajurveda stream only why the vedi, chiti and manadapa etc. is required with so much mathematical accuracy of measurement and not only the accuracy of structures but also of the time periods which ranging from a day long to 1000 days .

राजधर्मः

वैदिक राजधर्म

डॉ० पद्मजा अमित
रीडर- मुन्नालाल कालिज
सहारनपुर

मानव संगठन के उपलब्ध रूपों में राज्य का संगठन महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। राजनीतिक संगठन ही वह आधारशिला है जिसपर सामाजिक जीवन का भव्य प्रासाद स्थिर रह पाता है। ऋग्वेद से लेकर आज तक राज्य संस्था विचारकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती आ रही है।

धर्म, अर्थ काम रूप प्रवृत्तियों का सम्बन्ध मानवीय संस्कृति से है। इनके प्रवर्तन के लिए समाज में जिस समुचित वातावरण की व्यवस्था का होना आवश्यक है। उसका दायित्व विशेष रूप से राजा, आचार्यो एवं विचारकों का रहा है। समाज को संघठित करने के उद्देश्य से प्रजा व राजा के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यही राजनीतिक जीवन का प्रारम्भिक रूप है। राजसंस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से चली आ रही है। नियम पालन, न्याय सुरक्षा और कल्याण की परिस्थिति की प्रतीक ही राज्य व्यवस्था है।

शतपथ ब्राह्मण में राजा को राष्ट्रभृत की उपाधि दी गई है। राज्याभिषेक के समय राजा से प्रजा यह आशा करती है कि जिस प्रकार से वर्षा प्रजा का भरण पोषण करती है। उसी प्रकार राजा के प्रयत्नों से भी हमारा संरक्षण एवं पोषण हो। राजा के अंश में दिव्यता की स्थापना के लिए उसे आठ लोकपालों के अंश से युक्त बताया है। राजा के चयन में प्रजा का योगदान रहता है। राजा की स्थिति प्रजा पर निर्भर है। ऐतरेय ब्राह्मण में सम्राट् राजन् विराट् आदि शब्द मिलते हैं।

अथर्ववेद का राजनैतिक अध्ययन

राज कुमारी
शोधछात्रा
जुहारी देवी गर्ल्स डिग्री कालेज, कानपुर

वेद आर्यजाति के ही नहीं, वरन् समस्त मानव समुदाय के सर्वाङ्गीण विकास के प्रेरणा स्रोत हैं। यह प्राचीन भारतीय मनीषियों की उच्च बौद्धिक क्षमता के प्रतीक हैं।
"सर्वज्ञानमयो हि सः" (मनु0 2.7)

मनुष्य के जीवन में राजनीति का विशेष योगदान है। राजनीति अर्थात् राज्य करने की नीति या शासन करने की नीति। वह नीति, जिसमें राज्य, प्रजा व राजा सभी का कल्याण निहित हो।

तत्कालीन राजनैतिक परिदृश्य में राष्ट्र कल्याण की भावना इतनी बलवती है कि राजा अपनी मातृभूमि के लिए व उसके दुःख विमोचनार्थ स्वयं कष्टों को सहने को तैयार है। (अथर्ववेद 12.1.54) वह राष्ट्र विकास में पूरे प्रयास से जुटता है। राजा राष्ट्र को धारण करने वाला है। (ऋ0, 10/173/2 अतः) उसका (राजा का) कल्याण तो राष्ट्र के कल्याण से स्वयमेव सम्बद्ध हो गया। यह उच्चस्तरीय राष्ट्रीय भावना वेदों में उपलब्ध है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में राजनीति विषयक अनेक मन्त्र हैं। इस से अनुमानतः यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में यह विद्या पर्याप्त रूप से विकसित हो चुकी थी।

वेदकालीन राजनैतिक दृष्टिकोण को जानने व समझने के लिए 'अथर्ववेद का राजनैतिक अध्ययन' महत्त्वपूर्ण लगता है। अतः मैंने प्रस्तुत शोध-पत्र के विषय के रूप में 'अथर्ववेद के राजनैतिक अध्ययन' को ही चुना है, जिसके अन्तर्गत विषयानुसार अथर्ववेद के राजनीतिपरक मन्त्रों का यथामति विवेचन करने का प्रयास किया जायेगा।

आतंकवाद का वैदिक समाधान

डॉ० कुलदीप सिंह आर्य
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
डी.ए.वी. कालेज, अमृतसर

आतंकवाद केवल भारत की ही समस्या नहीं अपितु विश्व की भयंकर एवं दुःखदायी समस्या है, विश्व का ऐसा कोई देश नहीं जिसमें आतंकवाद का ताण्डव न हो रहा हो। प्रत्येक देश का हर शान्तिप्रिय विकासोन्मुख नागरिक इसके समाधानार्थ चिन्तित एवं गम्भीर है। समय के अनुसार आतंकवाद का जाल भयावह होता जा हरा है, यदि यह विभीषिका न रुकी तो सर्वस्व स्वाह हो जाएगा। अतः बुद्धिजीवियों एवं समाजशास्त्री, विधिवेत्ताओं द्वारा आतंकवाद के जो अब तक उपाय खोजे गए वे पर्याप्त एवं पूर्ण नहीं है क्योंकि यदि वे असरदार होते तो आतंकवाद बढ़ने की बजाए घटता चला जाता। प्रत्येक समय में दो प्रकार के मानव होते है। एक देव प्रकृति के और दूसरे राक्षस वृत्ति के, ये जो राक्षस प्रवृत्ति के जन होते हैं वें ही आततायी या आतंकवादी कहलाते हैं

अग्निदो गरदश्चैवशस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहश्चैव षडेते ह्याताततायिनः।। मनुस्मृति ८/२१९

प्रत्येक युग के ऐसे आततायी जन होते हैं वैदिक काल में आतंकवादी थे जिन्हें - धातुधानः हिस्रः, किमीदिनः, अम्नः, तुण्डेल, अघशंसम आदि रूपों में कहा गया है। वेदों में दस्युओं और राक्षसों की अति विस्तार से चर्चा है। वृत्र, शम्बर, नमुचि आदि वैदिक युग के प्रमुख आतंकवादी थे।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं ....रक्षइन्द्र। अथर्व0 8/4/22, 8/4/24

इन आतंकवादियों को वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि, मरुत आदि देवताओं ने विनाश किया था क्योंकि ये आर्यों का विनाश करते थे। इन आतंकवादियों को देवों ने अग्नि में जलाया, समूल नष्ट किया इनके सिर कांटे और पीस-पीस कर मथ डाला, देवताओं ने इन पर कोई अभियान नहीं चलाया। प्रसु विश्वान् रक्षयो धक्ष्यग्ने। ऋ. 1/76/3 दंष्ट्राभ्यांमलिम्लून् य0 11/78। यदि वर्तमान में भी वैदिक आतंकवादियों के समान दण्ड दिया जाए तो आतंकवाद समाप्त होगा, क्योंकि दण्ड जितना अधिक होगा शान्ति उतनी ही अधिक होगी। अतः वेदोक्त दण्ड का पालन किया जाना आवश्यकता है, यही दण्ड विधान 84 के पंजाब में हुए आतंकवाद के अवसर पर पी. एस. गिल ने अपनाया था और पंजाब का ही आतंकवाद समूल नष्ट हुआ, दूसरे देश नर्मी से पेश आ रहे हैं जिससे आतंकवाद बढ़ रहा है। प्रस्तुत पत्र में वैदिक आतंकवाद के 75 सन्दर्भ हैं।

वैदिक कालीन राजनैतिक जीवन

नमन प्रताप सिंह
शोधछात्र, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक युग की शासन-व्यवस्था और राजनीति का विस्तृत परिचय ऋग्वेद से प्राप्त होता है। वैदिक युग में बड़े-बड़े राज्य नहीं थे, अपितु आर्य अनेक जनों (कबीलों) में बंटे हुये थे। आर्यो के पांच प्रमुख जनों का उल्लेख ऋग्वेद में है - अनु, द्रुह्य, यदु, तुर्वसु और पुरू। इनके अतिरिक्त भरत, त्रित्सु आदि जनों का वर्णन मिलता है। आर्य शासन-व्यवस्था में सभी मनुष्यों की सामाजिक स्थिति प्रायः समान थी और सामान्य प्रजा को 'विशः' कहा जाता था। वैदिक युग की शासन व्यवस्था की कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं -

वैदिक युग में शासन के संचालन के लिये राजा का निर्वाचन होता था। प्रत्येक जन की जनता (विशः) राजा का निर्वाचन करती थी राजा जनता से प्रतिज्ञा करता था कि वह उसकी बाह्य तथा आन्तरिक आक्रमणों से रक्षा करेगा और न्यायपूर्वक उसका पालन करेगा। राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना और बाह्य आक्रमण होने पर सेना का नेतृत्व करना था। न्याय करना भी राजा का ही कार्य था। शासन के संचालन के लिये वह अधिकारियों को नियुक्त करता था।

राजा का निर्वाचन प्रजा द्वारा होता था, तथा राजा पर विश्वास करता था। परन्तु राजा स्वेच्छाचरी नहीं था। राजा के अतिरिक्त प्रजा द्वारा दो संस्थाओं, सभा और समिति का निर्वाचन होता था। ये संस्थायें राजा पर नियंत्रण रखती थीं तथा राजकार्यो में उसकी सहायता करती थीं।

आर्य जाति युद्धप्रिय थी और उसने युद्ध की कला का अच्छा अभ्यास किया था। धनुष-बाण और तलवार इनके प्रमुख हथियार थे। आर्य भालों और छुरियों का भी प्रयोग करते थे। शरीर

की रक्षा के लिये लोहे के कवच, टोप और दस्तानों को पहना जाता था। युद्धों में सवारी के लिये घोड़े और रथ काम में आते थे।

ऋग्वैदिक युग में अपने देश के प्रति भक्ति और राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो गया था। ऋग्वेद के 5.66.6 मन्त्र में राज्य की महिमा का उपदेश है (व्यचिष्टे बहुपथ्ये स्वराज्ये) स्वराज की अनेक उपायों से रक्षा करनी चाहिये। राष्ट्रीयता की भावना अनेक मन्त्रों में अभिव्यक्त हुई है।

वेद मन्त्रों में यह भावना भी स्पष्टतया देखी जाती है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि उसके सब अंगो का विकास हो और समस्त जनता की समृद्धि और सुख ही उसका प्रथम लक्ष्य हो।

राजनीतिक आदर्शों के सम्बन्ध में वेदमंत्रों की ये उदार और उदात्व भावनाएँ वैदिक धारा के लिए वास्तव में गर्व और गौरव का विषय है।

वेदों में मानवाधिकार की अवधारणाः आधुनिक संदर्भों में एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० देवेन्द्र नारायण सिंह
राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर

वर्तमान समय में भारत ही क्या सम्पूर्ण विश्व में मानवाधिकारों की चर्चा विशेष रूप से है। राजनीति, राज्य और शासन के आविर्भाव के साथ ही मानव संबन्धों के दो रूप उभर कर सामने आए-शासक और शासित और यहीं से शासितों के अधिकारों की व्याख्या और उनकी सुरक्षा की माँग भी चल पड़ी। कहना न होगा कि इतिहास में जब-जब निरंकुश तंत्र प्रबल हुआ है मानवाधिकारों की मांग भी बलवती हुई है। 1215 ई में मैग्ना कार्टा से लेकर 10 दिसम्बर 1948 के संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के ''मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा'' तथा अद्यतन मानवाधिकारों की रक्षा के लिए किए जा रहे प्रयास इस तथ्य के विशिष्ट प्रमाण हैं।

इस संदर्भ में जब हम प्राचीन भारतीय वाङ्मय विशेष रूप से वैदिक साहित्य का अनुशीलन करते हैं तो वहाँ भी मानवीय मूल्यों और अधिकारों से संदर्भित पर्याप्त उद्धरण उपलब्ध होते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि जिस परिष्कृत, विकसित रूप में वर्तमान युग में मानवाधिकारों का उल्लेख किया जाता है, वैदिक साहित्य उस रूप में मानवाधिकार को नहीं सहेजते किन्तु अधिकांश अधिकारों के उल्लेख वेदों में बीज रूप में विद्यमान हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध मानव अधिकारों के इन्हीं उद्धारणों का आधुनिक संदर्भों में तुलनात्मक विश्लेषण किया

जाएगा। आधुनिक युग में जिन अधिकारों पर विशेष बल दिया जाता हैं, वे है जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और सम्पत्ति का अधिकार। इन मूलभूत अधिकारों के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में पर्याप्त विवरण उपलब्ध है जो इस संदर्भ में आधुनिक राजनीतिक परिवेश का सम्यक् मार्गदर्शन कर सकते हैं।

वैदिक कालीन प्रशासनिक-अधिकारियों का समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ० अल्पना शर्मा
रिसर्च एसोसिएंट,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

वैदिक वाङ्मय अत्यन्त विशाल एवं विविध प्रकार के ज्ञान से परिपूर्ण है। इसमें सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक इत्यादि के अतिरिक्त ऋषि मनीषियों की राजनैतिक प्रतिभा भी यत्र-तत्र अभिव्यक्त होती है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वेद चतुष्ट्य, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक, उपनिषदों तथा सूत्र-साहित्य को सम्मिलित किया जाता है। इनमें राजनीति के विविध विषय यथा-राज्य, राजा, प्रजा, शासन संगठन, प्रशासनिक अधिकारी इत्यादि का वर्णन मिलता है। राज्य व्यवस्था को सुचारू ढंग से चलाने के लिए सुदृढ़ शासन व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसकी धुरी श्रेष्ठ प्रशासनिक अधिकारी होते हैं।

वैदिक साहित्य के अनुसार प्रशासनिक अधिकारी-पुरोहित, सेनानी, राजन्य, महिषी, वावाता, परिवृक्ति, सूत, ग्रामणी, क्षतृ, संग्रहीतृ, भागदुध, अक्षावाप, गोविकर्तृ, पालागल एवं स्थपित आदि थे।

यजुर्वेद के अनुसार प्रशासनिक अधिकारी विद्वान् होते थे और वे अपनी विशिष्ट बुद्धि का प्रयोग करके प्रजा के दुःखों को दूर करने में समर्थ और राष्ट्र को धारण करने में सक्षम होते थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों का मत है कि विद्वान् अधिकारियों की नियुक्ति करके राजा अपने राज्य में ऐसे दिव्य संगठन का निर्माण करता था, जिससे राष्ट्र में सुव्यवस्था स्थापित हो सके।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य वैदिक-साहित्य में निहित तत्कालीन प्रशासनिक अधिकारियों के गुण-दोषों को प्रस्तुत करके उनका समालोचनात्मक अध्ययन करना है।

वैदिक वाङ्मय में दण्ड की अवधारणा एवं आधुनिक दण्ड व्यवस्था

डॉ० प्रज्ञा शंकर
रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

वेदों का निर्मल प्रकाश देश तथा काल के दुर्भेद्य आवरण को छिन्न भिन्न कर आज भी विश्व को अपनी प्रभा से प्रकाशित करता दृष्टिगोचर हो रहा है। धर्म, संस्कृति और सभ्यता के प्राण और प्राचीन ज्ञान भण्डार को अपने भीतर समेटे विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद में मानव की व्यक्तिगत और सामाजिक शांति को अविच्छिन्न रूप से बनाये रखने हेतु दण्ड-व्यवस्था का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है।

प्रजा शासन के निमित्त राजनीति के चतुर्विध उपायों में दण्ड का महत्वपूर्ण स्थान है। निरुक्तकार के अनुसार "धार्ये ह्यषोऽपराधेषु" अर्थात् अपराध के करने पर जिसे धारण किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं, आचार्य औपमन्यव के मतानुसार जिसके द्वारा अपराधियों का दमन किया जाता है, वह दण्ड है। साधारण शब्दों में सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए जो कानून निर्मित हैं, उनके उल्लंघन को रोकने के लिए भय के रूप में जो शारीरिक, मानसिक या आर्थिक कष्ट पहुँचाया जाता है, वह 'दण्ड' है।

इस दृश्यमान संसार में, चर-अचर स्थूल प्रकृति में सत्व, रज और तमो गुण, नियंत्रण एवं रञ्जन करते हैं तथा प्रजा के रञ्जन एवं नियंत्रण हेतु राजा व नियन्ता की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार समाज में अत्याचारों के नियन्त्रण एवं रोकथाम के लिए दण्ड-विधान आवश्यक होता है।

समाज में अव्यवस्था फैलाने व अत्याचार करने वाले व्यक्ति को कठोर दण्ड देकर ही वश में किया जा सकता है, उन्हें स्वतंत्र छोड़कर समाज में फैली अव्यवस्था को नहीं रोका जा सकता, किसी भी देश के सुसंचालन हेतु दण्ड व्यवस्था अनिवार्य है। समाज के पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग पर लाने हेतु तथा अत्याचार की रोकथाम हेतु दण्ड देना आवश्यक है। दण्ड अपराधी से प्रतिशोध लेने के लिए नहीं अपितु सुधार करने के लिए होता है। बढ़ती हुई हिंसा और अनुशासनहीनता पर अंकुश लगाये रखने के लिए तथा अपराध की पुनरावृत्ति की रोकथाम हेतु अपराधियों को दण्ड का भय होना आवश्यक है। यदि इस भय का अभाव हो जाये तो समाज में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना असम्भव हो जायेगा।

वैदिक काल से ही दण्ड व्यवस्था का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है, जिसमें छोटे छोटे अपराधों के लिए भी प्राण दण्ड तथा अंग-विच्छेदन जैसे कठोर दण्ड दिये जाते थे, लेकिन कुछ समय बाद विचारकों ने दण्ड व्यवस्था में सुधार लाने की प्रक्रिया शुरू की। अतः विश्व की प्राचीन एवं आधुनिक दण्ड व्यवस्था में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। किन्तु वर्तमान विकसित, शिक्षित

और न्यायसंगत समाज में न्याय के अधिकारी मानव मन को समझते हुए अपराधी को उसके अपराध के अनुसार दण्ड देते हैं, जिसमें कठोरता में पर्याप्त कमी कर दी गयी है।

प्राचीन दण्ड व्यवस्था एवं आधुनिक दण्ड-व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उसकी व्यवहारिकता तथा उसमें किये गए परिवर्तनों से सम्बन्धित विचार ही इस शौध पत्र के प्रस्तुतिकरण का आधार है।

अथर्ववेद में राजनीति

श्रीमती पूजा वैस
शोधछात्रा
सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

राजा या स्वामी की नीति को राजनीति कहते हैं। नीति का जानने वाला पृथ्वीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन और शत्रु अधिक न हों। सब उपायों को वर्ते। सब कार्यों का वर्तमान में कर्त्तव्य और भविष्य में जो -जो करना चाहिये और जो-जो काम कर चुके हैं, उन सब के गुण-दोषों को विचार करे। दोषों के निवारण का प्रयत्न करे। और गुण दोषों का ज्ञाता, तुरन्त निर्णय का कर्त्ता, वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता। तथा वह मोह में कभी न फंसे, यही संक्षेप से विनय अर्थात् राजनीति कहलाती है।

नेता के गुण:- मंगल देने वाला, प्रजा का पालक और विशेषतः हिंसा को वश में करने वाला, बलवान और वनस्पतियों का रस पीने वाला अभय करने वाला, शत्रुनाशक और वीर आदि अनेक गुणों को अथर्ववेद में नेता के गुण बताया गया है।

इस प्रकार मंगलकारी, संयमी, निर्भय और शत्रुनाशक वीर के नेतृत्व में रहकर ही राष्ट्र का उद्धार होता है। ऐसे ही शत्रु का पराभव करने वाले, बलवान विजयी बनाना, ये तीन गुण राष्ट्र सेवा के लिए आवश्यक है। इस प्रकार ऐसा नेता ही वीरों और लोगों में शोभायमान होता है।

राजा के लिए उपदेश :- अथर्ववेद के अनुसार नवीन राजा के लिए यह उपदेश है कि हे राजा। तुझे राष्ट्र ने पसंद किया है इसलिए तेजस्वी बनकर व्यवहार कर, प्रजा का पालन कर सब प्रजा के प्रिय बने और सब प्रजा को प्राप्त हो। वह क्लेशयुक्त न हो। राज्य में यज्ञयाग करने वाले बहुत हो। देश-देशांतर में चतुर दूत भेजे जाएं। राज्य में स्त्रियों का सदाचार रहे। और संतान गुणसम्पन्न हो। राजा के लिए उचित है कि वह अपने पास ज्ञानी, विचारवान मनशील, विद्वान्, तत्वज्ञानी, कारीगर, तखाण, लुहार आदि सब प्रकार के लोगों को रखे, उनको उत्तेजना देकर के कारीगरों को बढ़ावा दे।

राष्ट्र में राजाओं की शक्ति की उन्नति :- अथर्ववेद के अनुसार राष्ट्र में राजा की शक्ति

बढ़ानी चाहिये। राष्ट्र को अद्वितीय बल से युक्त करना चाहिये। राजा को अपने पास उत्तम घोड़े और गाय रखने चाहिये। स्वयं उत्तम क्षात्र बल से युक्त होकर सम्पूर्ण शत्रुओं को पदाक्रांत करना चाहिये। राजा धन का उचित उपयोग करे। राजा अत्यन्त तेजस्वी होकर उत्तम प्रकार से प्रजा का पालन करें तथा शत्रुओं को निस्तेज बना दे। राजा को प्रभु की भक्ति अवश्य करनी चाहिये, जिससे उसका सदैव जय हो और वह कभी परास्त न हो।

वैदिक राजनीति में ब्रह्म-क्षत्र का सहयोग

डॉ. मधुबाला
प्रवक्ता
हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, सोनीपत

वैदिक काल में ब्रह्म और क्षत्र – राज्य के अभिन्न अंग थे। आर्य राजनीति में राष्ट्र के योग क्षेम की विचारधारा को प्रस्तुत करने वाले ब्राह्मण की प्रतिष्ठा निश्चित थी विचारधारा को क्रियान्वित करने वाले क्षत्रिय का भी महत्त्व निर्धारित था। आर्य राजनीति दोनों के सहयोग पर आश्रित थी।

वैदिक साहित्य में ब्रह्म-क्षत्र सहयोग के प्रकरण हैं। वाजसनेयी संहिता में कहा है कि जिस देश में ब्रह्म-क्षत्र अनुकूल होकर चलते हैं, वह देश समृद्ध होता है और उसमें वीर पुरुष होते है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा हैं-

यद् यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समुद्धं
तद्वीरवदाह- अस्मिन् वीरो जायते।

वैदिक काल में धर्म के क्षेत्र पर ब्रह्म का और राज्य के क्षेत्र पर क्षत्र का अधिकार हुआ। वर्णानुसार क्षेत्र-विभाजन होने पर भी ब्रह्म को क्षत्र की और क्षत्र को ब्रह्म की सहायता अपेक्षित थी। शत्रु को नष्ट करने और राज्य को स्थिर बनाने के लिए ब्रह्म के अभिचार प्रचलित थे। इस प्रकार ब्रह्म और क्षत्र का सहयोग प्रतिष्ठित हुआ।

ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितं क्षत्रे वै ब्रह्म।

वैदिक साहित्य में ब्रह्म-क्षत्र-सहयोग के रूप में भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का संगम हो जाने से एक नए युग का अवतार होता है। ब्रह्म-क्षत्र का उदय होने से प्राचीन वैदिक काल की सभा समितियों का गौरव चला गया। राजा ब्राह्मण के जादू-टोनों पर निर्भर था। वह उसे मन्त्रणा भी लेता था। ब्राह्मण की सहायता से क्षत्र की भी प्रतिष्ठा की गई। सम्प्रभुता को पाकर क्षत्र ने ब्राह्मण को दवाना चाहा किन्तु ब्राह्ममण की शक्ति दृढ़ हो गई थी। उसका उन्मूल करना अति कठिन का।

चातुर्वर्ण्य में ब्राह्मण के उच्च स्तर का सभी वर्णों पर प्रभाव था। उस युग में जय संघर्ष के पश्चात् विजेता आर्य शान्ति की स्थापना में संलग्न हुए, पराजित प्रजा जनों को हृदयों में से कटुता और मालिन्य का उन्मूलन करने के लिए उन्हें ब्राह्मण की सहायता अपेक्षित हुई। वह वैश्य और शूद्रजनों को राजा के अनुकूल करता था। क्षत्र-ब्रह्म पर आश्रित था क्योंकि ब्रह्म राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में समर्थ था। वह दुष्टों का दमन करने में उस वैद्य के सदृश था जो रोग का प्रतिकार कर सकता हो और जिसके पास प्रतिकार की औषधियाँ सदा रहती हों।

वेदों में वर्णित राजनीति विज्ञान

रणजीत कुमार पाण्डेय
शोध-छात्र संस्कृत- विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

किसी राष्ट्र या प्रदेश की स्थिति पर उस पर आश्रित राजनीतिक विज्ञान पर आधारित होती हैं, उसी में एक है वेदों में वर्णित राजनीतिविज्ञान। वेदों के अनुशीलन से उस युग की राजनैतिक दशा तथा शासन सम्बन्धी धाराणाओं का परिज्ञान हमें भली भांति होता है। ऋग्वेद काल के प्रत्येक जन (जाति) का आधिपत्य राजा के हाथ में होता था। राजसत्ता का प्रादुर्भाव वेद की दृष्टि में युद्धकाल से सम्बन्ध रखता है। ऐतरेय - ब्राह्मण (1/14) की मान्यता के अनुसार वेदों ने विचार किया था, कि असुरो के हाथों हमारे पराजय का यही कारण है कि हम लोग राजा से विहीन हैं। अतएव उन लोगों ने एक बलिष्ठ तथा ओजिष्ट इन्द्र को अपना राजा बनाया। इससे स्पष्ट है कि वैदिक काल में राजपद निर्वचन का विषय था और इसकी उत्पत्ति युद्ध काल में हुई। समिति में एकत्र होने वाली प्रजा के द्वारा राजा चुना जाता था। उपस्थित प्रजा एक राय होकर राजा को उसके महनीय पद के लिए चुनती थी और इससे विश्वास किया जाता था कि वह अपने पद से कभी भ्रम को न पावेगा। अथर्ववेद (7/87-88) तथा ऋग्वेद (10/173) में पूरा सूक्त ही राजा के निर्वाचन के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस मन्त्र में समिति के द्वारा राजपद के निर्माण की धारणा स्पष्टतः घोषितः की गई है।- (अथर्ववेद 3/88/3)

ध्रुवाऽच्युतः प्र मृणीहि शत्रूञ् छत्रुयताऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः समनसः सध्रीची ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह।।

अपने कर्तव्य से च्युत होने पर राजा अपने पद तथा देश से च्युत कर दिया जाता था। तथा अपने दोषों को स्वीकार करने पर वह फिर से चुना जाता था। इस पुनः स्थापना तथा प्रजा के द्वारा राजा के संवरण का उल्लेखअथर्व दो सूक्तों में (3/3) करता है।

अथर्ववेद में अद्यतन शासन प्रणाली का अभिविन्यास

डॉ० शालिनी मिश्रा

लखनऊ वि0वि0, लखनऊ

विश्व की संस्कृतियों में वैदिक संस्कृति का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है, आज उपलब्ध साहित्य और प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि जब विश्व के अन्य राष्ट्र अज्ञानान्धकार में डूबे थे, उस समय वैदिक आर्य विविध कला कौशलों में निपुण थे। जिस समय यूनानी राष्ट्रों में प्रजातन्त्र के प्रारम्भिक परीक्षण चल रहे थे उस समय वैदिककालीन भारत में प्रजातांत्रिक राज्यों की स्थापना हो चुकी थी।

वेदों के सूक्ष्म अध्ययन से तत्र स्थित राजनीतिक शासन व्यवस्था को ज्ञात कर उनसे अद्यतन व्यवहारिक जीवन को लाभान्वित कर सकते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में अथर्ववेद में शासन व्यवस्था के सूत्रों को सामायोजित करके अद्यतन शासन प्रणाली के सन्दर्भ में उसकी उपयोगिता दिखाने का प्रयास किया गया है।

वैदिक शासन प्रणाली में राजा या मुख्य शासक चुना हुआ था या प्रजा के बहुमत से निर्वाचित होता था। इस प्रणाली में एकतन्त्र या वंशानुगत रजत्प को स्थान नहीं दिया गया है। जिसका स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद के मन्त्रों में मिलता हैं, इसके अतिरिक्त ऋग्वैदिक मन्त्रों में भी इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं।

अथर्ववेद के मन्त्रों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उस समय संघीय राज्य प्रणाली द्वारा शासन किया जाता था, राजा को सहायता देने के लिये सभा तथा समिति नाम्नी दो संस्थायें होती थीं जो राजा की स्वेच्छाचारिता पर भी नियन्त्रण रखती थी, जैसा कि अथर्ववेद के अधोलिखित मन्त्र से स्पष्ट है।

''सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संङ्गच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संङ्गतेषु।।'' अथर्ववेद ७/१२/१

वेदों में राज्याभिषेक सम्बन्धी जितने उद्धरण है उनमें स्पष्ट यह नहीं बताया गया है कि राजा को कितने वर्षों के लिए राज्यसिंहासन पर बिठाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त वेदों में दलविहीन प्रजातन्त्र के दर्शन होते हैं। वेद शासन की प्रजातन्त्रीय पद्धति को तो स्वीकार करता है, परन्तु वेद प्रजातन्त्र की दलानुबन्धी पद्धति को स्वीकार करता हुआ प्रतीत नहीं होता है।

इसी प्रकार वेदों की शासन प्रणाली की अन्य बहुत सी विशेषतायें हैं जो आज की शासन प्रणाली से भिन्न हैं जिनका विवेचन इस शोध पत्र में किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में अस्त्र शस्त्र विज्ञान

डॉ. भीमदेव आर्य
वानप्रस्थी
पूर्व रिसर्चसाइंटिस्ट पर्यावरणविद्, अलीगढ़

जहां मानव के उत्थान, सर्वांगीण विकास तथा अभ्युदय के लिए वेद, शास्त्र आदि वैदिक ग्रन्थों की आवश्यकता है वहीं मानवता विरोधी शक्तियों, दैत्यों, राक्षसों, आतकंवादी, आततायियों शत्रुओं, अनीति, अत्याचार एवं राष्ट्र पर आक्रमण करने वालों को परास्त एवं संहार कर नष्ट कर देने के लिए अस्त्र-शस्त्रों की भी परमावश्यकता है, उनका महत्त्व कुछ कम नहीं है। इन अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग करने की आवश्यकता केवल तभी है जब संधि, शांति वार्ता, युद्धटालने के सा उपाय धूमिल हो जायें। दीन, दुःखी, असहाय, निर्बल, शरणागत (विशेष परिस्थतियों में,), बच्चे, बूढ़े, महिलाओं आदि पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग वर्जित है। अस्त्र शस्त्रों के निर्माण, अनुसंधान एवं भण्डारण की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये।

वैदिक काल में, राम राज्य से लेकर महाभारत काल तक भिन्न भिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का वर्णन मिलता है। वेदों में भी अस्त्र शस्त्रों का वर्णन सूत्र रूप में प्रचुर मात्रा में मिलता है।

महाभारत काल तक अस्त्र-शस्त्र विज्ञान चरम सीमा तक पहुँच गया था महायुद्ध के परिणाम विश्व तथा भारत विशेष रूप से अब तक भुगत रहा है।

वेदों में अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन:-

पाश - जो शत्रु को बांध दे, कर्तव्य विहीन करदे

'उदुत्तमं वरुण पाशमदाधमं विमध्य श्रथाय।'' यजुर्वेद में मंत्र 12/12 में वरुण के तीन पाशों- उत्तम, मध्यम, अधम का वर्णन है।

ज्यापाश :- अथर्ववेद 21/10/23

कवच :- ये वर्मिणो ये ऽ वर्माणो अमित्रा ये वर्मिणो'' अथर्व0 11/10/23

अथर्व वेद, सूक्त 10 में ''शत्रु सेना का विजय'' ही शीर्षक दिया है। जिसके प्रथम मंत्र में शत्रुओं पर सर्पो के समान विषैले शस्त्रों की वर्षा करो।

त्रिसधि महास्त्र (अथर्व0 11/10/2), अधोमुखा (वज्र), सूचीमुखा, विकङ्कती मुरवा वज्र, क्रव्याद, वातहस: (अथर्व0 11/10/3), धूमाक्षी वज्र, (अथर्व 11 30 5) कृणकर्मी वज्र सम्मोहन कर दे (अथर्व0 11/11/7), अग्नि जिह्वा, धूम शिखा (अथर्व 11 10 19), वायुः, इन्द्र,

आदित्य, चन्द्रमा, शितापदी (विद्युत शक्ति), नागपाश, चक्र पाश [illegible] आदि चक्रव्यूह रचना कं पाश तामस (तोप संबधी), मृत्यु किरण शततंजा (यजुर्वेद)। सृक ॐ क्षुर (अथर्व0), पवि, निषङ्ग, धनु, पिनाक (यजु.) बाण, क्षर, वृष, (यजु), वज्रेव शतपर्वणा, इन्द्रस्य वज्रेऽसि, वज्र हस्ता, तिमतंजा, हेति, प्रहेति (यजु.), उदवज्र (अथर्व.), वृहदवा (तोप), वरुथी (टैंक) (यजु.), मृत्यु पाशा, मृत्योशपमा, दुर्गान्धास्त्र (अथर्व.), "मृग: पन्था अनृक्षर ......" ऋ0 1/41/4

रक्षणसाधन:-

"मर्माणि ते वर्मणा छादयामि" (यजु. १६/४९)
नमो बिल्मिनो च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरुथिने च"
(यजु १६/३५), विल्म, शिरस्त्राण (हेलमेट), कवच, वर्म, वरुथी,
वृहदवा (तोप, महती शक्ति) (यजु. ५/२२) इत्यादि।

वेदों में निहित राष्ट्रिय चेतना (सामयिक अपेक्षा के संदर्भ में)

डॉ. (श्रीमती) शैल वर्मा
रीडर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग
बी.डी.एम.एम.गर्ल्स (पी.जी.) कालेज, शिकोहाबाद

वैदिक वाङ्मय मानवीय चिन्तन का ऐसा शाश्वत स्रोत है, जो सार्वकालिक है आज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से समृद्ध मानव भय एवं त्रासदी से मुक्त नहीं है। आतंकवाद का भय और युद्ध की विभीषिका सभी के अंदर समायी हुई है। ऐसी स्थिति में अपने राष्ट्र के प्रति जागरूक होना अतीव आवश्यक है। वैदिक वाङ्मय की समृद्ध भावसंपदा से समय के अनुरूप अनुशीलन करके मनुष्यों के हृदय में सुप्त राष्ट्र चेतना को उद्बुद्ध करने की महती आवश्यकता है।

बीसवीं शती के अंतिम दशकों में प्रेस एवं टेलीविजन जैसे संचार तंत्र के विस्तार से सामाजिक मान्यताओं, सांस्कृतिक मूल्यों, सामाजिक राजनीतिक चेतना तथा वैचारिक क्रान्ति के क्षेत्र में नवीन सूत्रपात हुआ। समूचे विश्व का घटनाक्रम कहीं किसी ग्राम या नगर की चेतना का हिस्सा बन सकता है। कम्प्यूटर, टेलीफोन, टेलेक्स, फैक्स, ई मेल, इंटरनेट माध्यम से नवीन क्रान्ति उत्पन्न हो गयी है। इस संचार माध्यमों से जहाँ हमें सुविधायें प्राप्त हुई हैं, वहीं हमारी राष्ट्रीय अस्मिता प्रभावित हो रही है। अनास्था, अराजकता, संत्रास, नैराश्य, अलगाव एवं भय, पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव राष्ट्र की चेतना पर हावी होता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। व्यावसायिकरण और औद्योगीकरण तीव्रगति से फैल रहा है। विज्ञापन का अंधकार सर्वत्र मानवचेतना को ग्रस्त किये जा रहा है। राष्ट्र के सामाजिक मापदण्ड प्रभावित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति

में विज्ञापन, परक संचार तंत्र को राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित करने की अपेक्षा है।

'राष्ट्र' शब्द का प्रथम प्रयोग हमें वेदों से प्राप्त होता है। 'राष्ट्र' तत्त्व बोध, राष्ट्रधर्म बोध, राष्ट्रीय चेतना का अंकुरण, राष्ट्रीयता का अंतर्चेतना में अबाध प्रवाह उत्पन्न करने के लिये यदि हम वेदों का अध्ययन करें तो हमें पर्याप्त सम्भावनायें प्राप्त होती हैं। हमारी राष्ट्रीय चेतना जितनी पुष्ट होगी, राष्ट्रीय एकता उतनी ही समृद्ध होगी। राष्ट्रीय चेतना राष्ट्रीय संस्कृति से प्रभावित होती है, जो राष्ट्रवासियों को भावात्मक एकता में आबद्ध करती है। भारत विविधता से पूर्ण राष्ट्र है, यहाँ भावनात्मक एकता को अक्षुण्ण रूप से बनाये रखने हेतु राष्ट्र चरित्र के निरंतर संवर्धन की महती आवश्यकता है। इस हेतु वेदों के परिशीलन से हमें संजीवनी प्राप्त होती है, जो हमारे राष्ट्र, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता एवं स्वाभिमान, राष्ट्रीय एकता के संवहन में जीवनी शक्ति का संचार कर सकती है। राष्ट्र के प्रति निष्ठा एवं स्वाभिमान, राष्ट्रीय एकता के बाधक तत्वों का निराकरण होने के लिये वेदों में प्राप्त राष्ट्रपरक मंत्रों का अनुशीलन करना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' 'नमो मात्रे पृथिव्यै, नमो मात्रे' 'संगच्छध्वं, संवदध्वं संवोमनासि जानताम्' इत्यादि मंत्र ही वह बीज हैं, जो मानव चेतना में राष्ट्र चेतना का अनुकरण करते हैं। एक प्रबुद्ध राष्ट्र ही विश्वहित और विश्वबन्धुत्व में सहायक हो सकता है। स्वस्थलोकतंत्र की मानसिकता का प्रतिष्ठापन तभी हो सकता है, जब जनता में आत्मगौरव हो शत्रुओं के विनाश की सामर्थ्य हो, राष्ट्र में उच्च मनोबल विद्यमान हो।

इमं देवा असपत्न सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्येष्ठ्याय, महते जानराज्याय, इन्द्रस्येन्द्रियाय॥ यजु. १/४०

वस्तुतः स्वस्थ, समृद्ध एवं विवेकशील प्रजायें ही अपनी मातृभूमि, मातृभाषा एवं मातृसभ्यता के संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति जागरूक हो सकती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक मंत्रों से अनुस्यूत राष्ट्रिय संचेतना का सोमरस निकालने का अल्प प्रयास किया गया है।

वैदिक राजनीति में विदथः स्वरूप एवं कार्य

डॉ० सुनीता कुमारी
रीडर संस्कृत विभाग
बी0एस0एम0(पी0जी0)कॉलेज, रुड़की

वैदिक आर्यों के राजनीतिक सिद्धांतों एवं कार्यप्रणाली का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी राजनीतिक संस्थाओं का सूक्ष्म विवेचन परमावश्यक है। मुख्यतः राजा को राज्य कार्य में सहायता देने तथा राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण रखने हेतु दो संस्थाओं का उल्लेख प्राप्त होता है, सभा एवं समिति। इन समितियों से संसद् शब्द के बोध होने का संकेत मिलता है 'संगच्छध्वं

सभासमिति उभे बोधयति।'' किन्तु राजा की इन दो सभाओं के अतिरिक्त एक अन्य सभा का उल्लेख भी प्राप्त होता है-'विदथ'- त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।' ऋग्वेद के इस मन्त्र में राष्ट्र-यज्ञ को चलाने के लिए (विदथ) तीन सभाओं को बनाने का उल्लेख किया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य की मुख्य नियायक संस्थाएं तो दो ही थीं सभा और समिति। किन्तु उक्त मंत्र में तीन सभाओं के उल्लेख से जान पड़ता है कि तीसरी सभा मंत्रिपरिषद् या राज्य की कार्यकारिणी सभा होगी। संभवतः सभा एवं समिति में विचारणीय विषय इस परिषद् के द्वारा ही वहाँ उपस्थित किए जाते होंगे।

'विदथ' शब्द को विद धातु से निष्पन्न बताया गया है, जिसका अर्थ विद्वानों की सभा है- ज्ञायते हि यज्ञः। लभते हि दक्षिणादिरत्र। विचार्दते हि विद्वदभिः। भावयत्येन फलम्.....। यहाँ विदथ का अर्थ ज्ञान, लाभ, सत्ता एवं भ्रमण अर्थ में किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि विदथ वह संस्था भी जिसमें सत्य की खोज की जाती होगी। अतः विदथ को सत्य या न्याय देने वाली संस्था कहा जा सकता है। भाषा विज्ञान में गोधिक शब्द 'विटोथ' को विदथ का पर्याय माना गया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी 'विदथ' शब्द के विभिन्न अर्थ किए हैं। यथा आज्ञा या विधि, प्रबंध, नियन्त्रण, समुदाय, धार्मिक समिति, परिषद् आदि। वेदों के अनेकानेक मंत्रों में उल्लिखित विदथ शब्द से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि वैदिक आर्यों के लिए महत्त्वपूर्ण संस्था थी। इसके सदस्य विद्वान् ब्राह्मण होते थे। सामान्य जनों को इसकी सदस्यता प्राप्त नहीं थी-'सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै।'' विदथ में स्त्रियां भी भाग ले सकती थी' विदथ के कल्याण के लिए सामाजिक कार्य में भाग लेने वाली विदुषी स्त्रियों को विदथ में लाए जाने का संकेत ऋग्वेद के एक मन्त्र में प्राप्त होता है। यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या विदथ का कोई अध्यक्ष भी होता था? विभिन्न संकेतों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि विदथ का एक अध्यक्ष भी होता था जो प्रधान पुरोहित होगा। संभवतः 'ब्रह्मणस्पति' की उपाधि उसे ही दी गई है। यह ऋग्वेद के एक मन्त्र से स्पष्ट होता है, जहाँ विदथ को संचालक एवं नियन्ता बताया गया है।

'ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता...............बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।'

स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेद के मन्त्र-त्रीणि राजाना.............भूषथः सदांसि' की व्याख्या करते हुए 'त्रीणि संदासि' का अर्थ राज्य-सभा, विद्या-सभा और धर्म-सभा किया है।

इस प्रकार विभिन्न मतों एवं मतान्तरों से यह सिद्ध हो जाता है कि 'विदथ' वैदिक आर्यों की एक महत्त्वपूर्ण संस्था थी जो सत्य की खोज एवं धर्म के पालन को कार्यान्वित करती थी। सत्य को ही धर्म माना गया है। विदथ धर्म, सत्य, ब्रह्म, जीव, आत्मा आदि अनेक विषयों पर भी समाधान प्रस्तुत करती थी। यह एक विद्वत् सभा थी। किंतु विद्वत्-सभा होकर भी यह एक राजनीतिक संस्था ही थी जो वैदिक आर्य जीवन की शुद्धता एवं पवित्रता की रक्षा करती थी।

वेद वर्णित राजनीति में कोश (कोष) मीमांसा

आचार्य ध्रुवपति पाण्डेय
प्रज्ञा पीयूष समिति, बलिया

वेदों में देवगणों की चर्चा के प्रसंग में राजनीति विषयक सामग्री प्राप्त होती है। इसमें कोश की प्रबल महत्ता का वर्णन है। कोश के अभाव में कोई भी कार्य सम्पादित नही हो सकता।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में कोश शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। अधिकांश स्थलों पर कोश को स्वर्ण भण्डार के रूप में प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद में **'कोशो हिरण्यये"** 8 20 8, **कोशे अहिरण्य,** ऋग्0 9 75 3, **'दश कोशान्'** ऋग्0 6 47 23। इन स्थानों पर कोश को स्वर्णागार या स्वर्ण भण्डार कहा गया है। सायणाचार्य ने भी दश कोशान् की व्याख्या की है **'दश हिरण्यपूर्णान् कोशान'** अर्थात् स्वर्ण भरे दश कोश।'

'दिव्या न कोशास:' ऋग्0 9 88 6, में भी कोश को धन सम्पत्ति का भण्डार बताया है। दिव्य कोश या दैवी कोश धन धान्य से परिपूर्ण भण्डार के लिये प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद में कोश शब्द चौदह बार प्रयोग हुआ है। अधिकांश स्थलों पर यह निधि या खजाने के अर्थ में है। अथर्ववेद में शरीर को अयोध्या नगरी बताते हुये कहा गया है कि इसमें आत्मारूपी एक स्वर्णपूर्ण कोश है। **अयोध्या तस्यां हिरण्यमय: कोश:।** अथ0 10 2 31। इस स्वर्णपूर्ण कोश में जो ब्रह्मरूपी ज्योति है, उसको ब्रह्मज्ञानी जानते है। तस्मिन् हिरण्ययं कोशे...तद्वै ब्रह्मविदो विदु:। अथ0 10 2 32। ब्रह्म में ही सारे लोक और सारे कोश निहित हैं। **'यत्र लोकांश्च कोशान् च।'** अथ0 10 7 10। उस ब्रह्म के 9 कोश हैं और वे 9 प्रकार से रखे हुये हैं। **तस्येमे नवकोशा विष्टम्भा नवधा हिता:।** अथ0 13 4 10। उक्त सन्दर्भों से ज्ञात हैं कि बहुमूल्य सामग्री के भण्डार के लिये कोश शब्द का प्रयोग हुआ है।

एक अन्य मंत्र से ज्ञात होता है कि कोश में बहुमूल्य सामग्री रखी जाती थी और उसमें से निकाली जाती थी। मंत्र का कथन है कि बुद्धिरूपी कोश से तपस्या के द्वारा वेदज्ञान रूपी निधि निकाली गयी और उसमें ही पुन: रखी गयी। **'यस्मात् कौशाद् उदभराम वेदं तम्मिन्** अन्तरव दध्म एनम्। अथ0 19 72 1।

इस प्रकार कोश की उपयोगिता और उसके स्वरूप का वर्णन वेदों में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित न्याय व्यवस्था का स्वरूप

दीपाली सिंघल
शोध छात्रा, प्रा.मा.स.पु.विभाग
गु()का()विश्वविद्यालय, हरिद्वार

धर्म वह नैतिक नियम और आदर्श है जो व्यक्ति को भौतिक सुख तथा सांसारिक भोग विलास के बीच भी जीवन के उच्चतर आदर्शों के प्रति जागरूक और सचेत रखता है और उसके व्यवहारों को नियंत्रित या निर्देशित करता है। शास्त्रों की यह युक्ति धर्म के महत्व को पूर्णरूपेण स्पष्ट करती है

''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः''

धर्मशास्त्रों में न्याय के लिए विधि के स्थान पर धर्म शब्द का प्रयोग होता था। धर्मशास्त्रों में वर्णित न्याय प्रक्रिया के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि राजा ही न्याय का मुख्य स्रोत एवं सर्वोच्च न्यायाधीश था। वह प्रजा का संरक्षक, दुष्टों का दमन करने वाला, शिष्टों का पोषक, धर्म एवं समाज के नियमों का संरक्षक था। राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखने के लिए न्याय व्यवस्था को स्थापित करना उसका सर्वोपरि धर्म एवं कर्तव्य था। अतः अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए वह सत्य की खोज अत्यन्त उत्सुकता एवं तत्परता से करता था। ताकि निर्दोष को दण्ड देने का दोष उस पर न लग पाये। क्योंकि त्रुटियुक्त निर्णय देने पर न्यायाधीश अर्थात् राजा भी दण्डनीय था, इसलिए निष्पक्ष न्याय की प्राप्ति के लिए एक न्यायिक परिषद् का भी गठन किया जाता था। इस परिषद् में गुणवान् व्यक्तियों को ही सभासदों के रूप में नियुक्त किया जाता था क्योंकि सत्य का यथार्थ निर्णय की प्राप्ति के लिए राजा इन्हीं सभासदों की सहायता लेता था। धर्मशास्त्रों में न्यायालय शुल्क एवं प्रतिभू जमानत की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। इस समय न्याय के लिए व्यवहार शब्द का प्रयोग किया जाता था। व्यवहार की पुष्टि प्रमाणों के माध्यम से की जाती थी। यह दो प्रकार के माने गये हैं। प्रथम, मानुषी प्रमाण एवं द्वितीय, दैविक प्रमाण। इनमें मानुषी प्रमाण लिखित, भुक्ति एवं साक्षी तीन प्रकार के कहे गये थे। इन तीनों प्रमाणों से न्याय कार्य न हो पाने की स्थिति में ही दिव्य प्रमाण का सहारा लिया जाता था। उपरोक्त प्रमाणों के परीक्षण के लिए अनेक प्रकार के नियमों का भी उल्लेख प्राप्त होता है और इन सभी नियमों का निर्धारण वर्णानुसार, स्थानानुसार एवं समयानुसार किया जाता था। अन्ततः धर्मशास्त्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनमें वर्णित न्याय व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्त आज भी मौजूद हैं परन्तु कुछ परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं संशोधन के साथ।

वेदों में राजनीति

अरविन्द कुमार गौड़
गु0कां0वि0वि0, हरिद्वार

वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों में गिने जाते हैं। वेदों में ज्ञान का भण्डार हैं। कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसका प्रतिपादन वेदों में न हुआ हो। जैसे भूगोल, विज्ञान, चिकित्सा, धर्म व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, शासन व्यवस्था इत्यादि। वेदों में राजा किस प्रकार राज्य करता है, उसकी नीति को राजनीति कहा है।

वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन वेद है। इसमें राजनीति का वर्णन बहुत कम स्थानों पर मिलता है। यजुर्वेद और अथर्ववेद में राजनीति का वर्णन कई स्थानों पर मिलता है। भारतवर्ष की प्राचीन राजनीति एवं शासन पद्धति को जानने के लिये हमें अथर्ववेद से बहुत सहायता प्राप्त होती है। वेदों में राजा के गुणों, उसके कर्तव्यों, मंत्री परिषद्, सभा समिति आदि राजकीय संस्थानों और उनके कार्यों का विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि अथर्ववेद के सूक्तों में भी स्तुतिपरक मंत्र ही अधिक मिलते हैं, किन्तु इन मंत्रों को ध्यान से पढ़कर तथा विचार कर, उनका सही संदर्भो में अर्थ लगाने से वैदिक शासन पद्धति को आज की परिस्थितियों में देखा और समझा जा सकता है।

भारत के लिए प्राचीन राजनीति एवं शासन पद्धति का बहुत महत्व है, क्योंकि हमारे यहाँ के लोग सदियों से इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत अभ्युदय और नि:श्रेयस की साधना करते रहे हैं। यहां की राजनीति इतनी उच्चकोटि की है कि इसको फिर से अपनाकर न केवल भारतवर्ष ही अपने प्राचीन गौरव को फिर से प्राप्त कर सकता है बल्कि विश्व के अन्य देशों के शासन के लिये भी यह प्रणाली आदर्श सिद्ध हो सकती है।

वेदों में वर्णित राज्य के कार्यों की प्रांसगिकता

डॉ० अनिल कुमार सैनी
प्रवक्ता, राजनीति शास्त्र
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद विश्व संस्कृति के आधार स्तम्भ रहे हैं। आदिकाल से ही वेदों ने मानव जाति के उत्थान के लिए मार्ग-दर्शन का कार्य किया है। वेदों में ज्ञान तथा विज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है। राजनीतिशास्त्र मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। किसी भी राष्ट्र की जाति, समाज सुरक्षा, प्रजा-हित, विकास-कार्य और वैज्ञानिक उन्नति आदि सभी कार्य राज्य के स्वच्छ और कुशल

शासन पर निर्भर हैं। चारों वेदों में राजनीति शास्त्र से सम्बन्धित सैकड़ों मन्त्र हैं। इन मन्त्रों में राज्य के कार्य, राज्य के प्रति राजा के कर्तव्य, राजा प्रजा के सम्बन्ध, राष्ट्र का स्वरूप, सभा समिति, विधि निर्माण, राजा का निर्वाचन, युद्ध, सैन्य व्यवस्था, शासन प्रणाली आदि का वर्णन मिलता है।

वर्तमान सन्दर्भ में वेदों में वर्णित राज्य के कार्यों को व्यवहार में लाकर वर्तमान समाज में व्याप्त भय, निर्धनता, असुरक्षा की भावना तथा अराजकता को समाज से दूर किया जा सकता है साथ ही, एक स्वच्छ, सुन्दर और भयमुक्त समाज का निर्माण संभव है।

वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रीय भावना

ज्योति शर्मा
शोध छात्रा, संस्कृत
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में राष्ट्र के आधारभूत-तत्वों, उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्त्तव्यों का भलीभांति उपदेश दिया गया है। 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः' अर्थात् हम राष्ट्र में रहते हुए राष्ट्र के प्रति अग्रणी होकर जागरूक रहें। अथर्ववेद में भी कहा गया है - 'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः' अर्थात् भूमि मेरी माता है और हम उसके पुत्र अर्थात् सन्तान है। वैदिक वाङ्मय में मातृभूमि को अपना सर्वस्व स्वीकार करते हुए स्वराष्ट्र की आराधना की विविध राष्ट्रीय भावनाएँ प्रभूत एवं अपरिमित रूप में परिलक्षित होती हैं। वेदों में राष्ट्रीयता की उदात्त भावना का भरपूर समावेश है। यथा-ऋग्वेद में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं ....
.. संजानानाउपासते॥

इस प्रकार वेद ज्ञान के महासागर हैं तथा विश्व-वाङ्मय की अमूल्य निधि एवं भारतीय आर्यसंस्कृति के मूल आधार हैं। उनमें राष्ट्रीयता की उदात्त भावना का भरपूर समावेश है। अंतः हम सभी राष्ट्रवासियों को चाहिए कि हम राष्ट्ररक्षा में समर्थ हो सकें, इसके लिये वेद की शिक्षाओं को समग्ररूप से ग्रहण करें।

वैदिक युग में राष्ट्रध्वज

डॉ०नरेश प्रसाद सिंह
व्याख्याता, राजनीतिक शास्त्र
एस0जी0जी0एस0 कॉलेज, पटना सिटी

ध्वज की परम्परा सभ्याता के आदिकाल से ही रही है। प्रारम्भ में ध्वज में ध्वज का उद्देश्य किसी स्थान विशेष की पहचान करवाना मात्र रहा होगा। कालान्तर में ध्वज स्थान के साथ ही वर्ण, वर्ग या विचारधारा विशेष के भी प्रतीक हो गये। तदनुसार ध्वज के आकार, प्रकार और रंगों में भी विभिन्नताएँ आ गयी। ये ही ध्वज आगे चलकर राष्ट्रीय ध्वज के रूप में परिवर्तित हो गये।

हमारे यहाँ राष्ट्रीय ध्वज की चर्चा वैदिक काल में भी हुई है। अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों (जैसे-5/21/12, 11/12/2 तथा 11/10/7) में राष्ट्रीय ध्वज के आकार प्रकार का स्पष्ट उल्लेख है। इन मन्त्रों के अनुसार उन दिनों राष्ट्रीय ध्वज का रंग लाल होता था तथा उस पर श्वेत रंग में सूर्य का चिह्न अंकित होता था। राष्ट्रीय ध्वज का यह स्वरूप हमारी संस्कृति और प्रवृत्ति के रूप में नहीं, अपितु प्रेम के प्रतीक रूप में था। प्रेम और स्नेह का रंग भी हमारे यहाँ लाल माना गया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विचारधारा से युक्त हमारे देश की संस्कृति ने सदैव अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का परिचय दिया है तथा प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की भावना व्यक्त की है। उसी आपसी प्रेम, भाईचारा और सम्पूर्ण विश्व के हित की कामना राष्ट्रीय ध्वज के लाल रंग में समायी हुई थी।

वेदवाङ्मये राजनीतिः

डॉ० कृष्ण वे. जोशी
प्राध्यापक, सी.डी. वाई.
संस्कृत महाविद्यालय, धारवाड

विदितमिदं सर्वेषां यत् वेदाः भारतीय प्रज्ञायाः अक्षयो निधिः यः अतिप्राचीन कालात् दायरूपेण अनुवर्तते, यत्राहि ऐहिक-आमुष्मिक-धार्मिक आध्यात्मिकानां सर्वेषां विषयाणां तत्वानि अन्तर्हितानि वर्तन्ते इति। ''वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्'' ''वेदात् सर्वं प्रसिद्धति,'' वेदाः सर्वहितार्थाय'' इत्यादयः उक्तयः अमुमेव अर्थं द्योतयन्ति।

विपुलेऽस्मिन् संस्कृतवाङ्मये मानवजीवनस्य संरक्षणाय, संवर्धनाय, कल्याणाय च सर्वेपि विषयाः अस्माकं ऋषिभिः सविस्तारं निरूपिताः सन्ति। नास्ति कोपि जीवनोपयोगिविषयः यस्य

निरूपणं अत्र न विहितम्।

राजतंत्रम्- पुरा प्रायेण बहुषु देशेषु राजतंत्रमासीत्। क्षात्रकुलावतंसा अन्ये वा वंशानुक्रमेण राजानः संबभूवुः। तदा प्रजा राजानं पूज्यभावेन जानन्तिस्म। राजा च प्रजां स्वपुत्र इव पोषयतिस्म।

दण्डः- राजा दण्डधरः उच्यते। स एव राजा वीरः यो धार्मिकानदण्डयान् कृत्वा दुष्टान् दण्डयति। दण्डयनां दण्डनमृते दस्यवो लुण्ठकास्तस्कराः सज्जनान् ब्रह्मणान् विदुषिः स्त्रीश्च लुण्ठन्ति पीडयन्ति घ्नन्ति च। अतो दण्डयं न मुंचेत्। (मानो वधी रुद्रपरा दा मा ते भूम प्रसितौ हीष्ठितस्य ऋ 7 46 4)

न्यायः- सः सर्वप्रजासु समद्रष्टिवान् स्यात्। न्यायं कुर्वन् कमपि पक्षान्तरं नावगच्छेत्। ये दुष्टान् प्रति मन्युं कुर्वन्ति त एव राज्ञा न्यायाधीशा नियोक्तव्याः।। इति।।

वेद वाङ्.मय और राष्ट्रवाद

श्रीश पाण्डेय
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक वाङ्.मय का प्रारम्भ ऋक्संहिता से होता है और वेद चतुष्टयी के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् भागों के विविध व्याख्यान के लिए वेदाङ्ग साहित्य पर्यन्त इसका विपुल विस्तार देखा जाता है। वैदिक देवों का स्मरण, अभिनन्दन और आह्वान वेदविद्या का आधारभूत परिचय है। इसी परिचय के ब्याज राष्ट्रतत्व भी धीरे-धीरे विकसित होता दिखायी पड़ता है। राष्ट्रसत्ता के शिखर में यदि इन्द्र को रखें तो सोम, सूर्य, वरुण, पर्जन्य आदि उनकी सत्ता के परिपोषक, देवसमूह का स्वरूप ग्रहण करते हैं। इन्द्र का परिचय देने वाला सूक्त उन्हें जन्मजात मनस्वी कहता है-

''यो जात एव प्रथमो मनस्वान्'' (इन्द्रसूक्त-श्लोक-१)

मनस्वी होने के साथ ही वह शम्बर आतयाती का निग्रह करता है। वह मनुष्यों के मध्य अपने प्रभाव के साथ स्थिर होता है-

''नृम्णस्य महना स जनास इन्द्रः'' (इन्द्रसूक्त-१)

वेदों में जीवन-राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ० मनोरमा गुप्ता
रीडर, राज0विज्ञान
महिला महाविद्यालय, कानपुर

वैदिक साहित्य में सर्वप्रथम स्थान वेदों का है। वेदों को प्राचीन भारत की सभी विधाओं और कलाओं का मूल स्रोत माना जाता है। वैदिक वाङ्मय में तत्कालीन इतिहास, भूगोल,

सामाजिक संगठन एवं वैदिक राष्ट्र की शासन पद्धति का परिचय मिलता है। वेद आर्य सभ्यता और संस्कृति के मूलाधार हैं। वैदिक साहित्य का सर्वप्रथम तथा विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद है। जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने कहा है, कि जब तक भूतल पर नदी और पर्वत रहेंगे तब तक सृष्टि में ऋग्वेद की महिमा का प्रचार रहेगा।

वैदिक साहित्य के अध्ययन द्वारा ही हमें राज्य की उत्पत्ति, राजनैतिक संगठन, एवं राजा के शासन के प्रति अधिकार एवं कर्तव्यों के बारे में पूर्ण जानकारी मिलती है। वैदिक साहित्य के अनुसार राज्यसत्ता ईश्वर प्रदत्त है जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण ग्रंथ में किया गया है। इस युग में राजा को परमात्मा का अंश माना गया है उसकी तुलना प्रजापति एवं विष्णु से की गयी है। अतः राज्य की वैदिक उत्पत्ति के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव वैदिक साहित्य के द्वारा ही हुआ है।

दूसरे सिद्धांत के अनुसार, आर्यों में शासन का सूत्रपात परिवार से हुआ। समाज में विकसित होने के साथ-साथ पारिवारिक शासन की तरह राजकीय शासन पितृप्रधान होता गया। उस समय परिवार पितृप्रधान थे। पिता ही परिवार में सर्वोपरि था। अतः अथर्ववेद में वर्णित शब्द विशः जन तथा विशः पति आदि तत्वों से पितृप्रधान अथवा विकासवादी सिद्धांत का समर्थन प्राप्त होता है। राज्य की उत्पत्ति के तीसरे सिद्धान्त (संविदावादी सिद्धांत) के दर्शन हमें ब्राह्मण ग्रंथों एवं वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि असुरों के विरुद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए देवताओं ने इन्द्र को अपना राजा निर्वाचित किया। यह निर्णय उन्होंने प्रजापति की अध्यक्षता में देवताओं ने एक दूसरे से कहा कि इन्द्र उन सबमें अधिक पूर्ण, सुदृढ़, क्रियाशील और प्रत्येक कार्य करने में श्रेष्ठ हैं। अतः उन्हें राज पद पर विभूषित किया जाये।

वैदिक गणतन्त्र

डॉ० विनय विद्यालंकार
प्राचार्य राजकीय स्नातकोत्त महाविद्याल, लोहाघाट

वेद समग्र विद्याओं के मूल उत्स हैं। वैदिक संहिताओं में जहाँ अध्यात्म; नैतिकता, समाज विज्ञान, कर्मकाण्ड आदि अनेक ज्ञातव्य विषयों का वर्णन है, वहीं राजधर्म एवं राज्य व्यवस्था सम्बन्धी अनेक निर्देश प्राप्त होते हैं। यजुर्वेद में चार प्रकार के राजाओं का उल्लेख है स्वराट् , जनराट्, सत्रराट् एवं सर्वराट्। प्रजा द्वारा राजा का चयन होने तथा जनविरोधी कार्य करने वाले राजा को पदच्युत करने का भी निर्देश वेद में प्राप्त होता है। राजसूय यज्ञ में प्रजा द्वारा चुने गये राजा का राज्याभिषेक किया जाता है। वर्तमान में जिसका परिवर्तित रूप शपथ ग्रहण समारोह प्रतीत होता

है। प्रजा का प्रतिनिधि या पुरोहित चुने हुए राजा को सम्बोधित कर कहता है मैं तुझे प्रजा में से लाया हूँ हमारे बीच राजा बनकर रह। स्थिर और अविचल होकर शासन कर। सब प्रजाएं तुझे चाहती रहें ऐसा न हो कि तुझसे यह राष्ट्र छीना जाये। (ऋ0 10.173.1)

इस प्रकार राजा का प्रजा द्वारा चुना जाना तथा सम्यक्रूपेण व्यवस्था संचालित न होने पर राज्य का छीना जाना, दोनों प्रकार का निर्देश वेद में प्राप्त होता है। साथ ही राजा स्वच्छन्द नहीं है उसका नियन्त्रण प्रजा के हाथ में है। राज्य व्यवस्था संचालन हेतु सभा समितियों का भी उल्लेख वेद में है। वैदिक राजा या प्रधानमन्त्री स्वतन्त्र नहीं है, किन्तु सभा और समिति के अधीन है राजा उनके विषय में स्वयं कहता है

सभा च या समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षात् चारु वदानि पितरः संगतषु।।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ये राज्य परिषदें लोक सभा और राज्य सभा कहलाती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती को इस महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाशन का श्रेय है उनेसे पूर्व वेद में राज व्यवस्था सम्बन्धी व्याख्यायें उपलब्ध नहीं होती। ऋषि ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में वेदाधारित राज्य की तीन राज्य परिषदों का गठन करने का उल्लेख किया है

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान्।। ऋ० ३.३८.६

अर्थात् राजा और प्रज़ा के पुरुष मिलकर राष्ट्र यज्ञ के संचालनार्थ विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा एवं राजार्य सभा नामक राज्य परिषदों का निर्माण करें उसमें ऐसे सदस्य रहें जो राष्ट्र को धारण करने में समर्थ (गन्धर्व) तथा वायु के समान सर्वविषय संचारी और सूर्य रश्मियों के तुल्य सर्वविषय प्रकाशक हों।

इस प्रकार वेद वर्णित राज धर्म का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि राज्य का संचालन गणतन्त्र व्यवस्था के माध्यम से प्रजा द्वारा चयनित (निर्वाचित) राजा एवं उसकी अन्य सभा समितियों द्वारा ही होता है।

वैदिकं लोकतन्त्रम्

राम रतन खण्डेलवालः
शोधच्छात्रः
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि.,हरिद्वारम्

सर्वज्ञानमयाः वेदाः सार्वकालिकसार्वभौमिकादर्शैः सयुंताः विराजन्ते। अत्र आध्यात्मिकविषयैः सह सुव्यवस्थितं लोकतन्त्रमपि परिलक्ष्यते। यद्यपि नाम वैदिकशासनप्रणाल्याः केन्द्रे राजास्ति तथापि सा राजकेन्द्रिता नासीत्। तत्र तु प्रजाभिर्निर्वाचितः नर एव राजपदमलङ्करोत्। तथा च लक्ष्यते निम्नयजुर्वेदीये मन्त्रे

आ त्वा हार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविंचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्टमधिभ्रशत्॥ (१२/११)

ऋग्वेदे स्पष्टमेव निर्दिष्टं यद्राजा तिस्त्रसभाभिर्प्रजां सम्यक्रूपेण परिपालयेत **त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः संदासि॥** अथर्ववेदे (19/55/6) एताभिर्सभाभिः सह राज्ञः सम्बन्ध विषये निगदितं यद्राजा सभाः परिपालयेत्, सभाः राजानं परिपालयन्ताम् राजासभे च मिलित्वा प्रजां परिपालयेताम्। वेदेषु यत्र प्रजाः राज्ञः चयनं गुणानुसारं कुर्वन्ति तत्र प्रजाभ्योऽपि गुणानामपेक्षा क्रियते। अद्यतनीयं मनोहरं one man, one vote सिद्धान्तं वेदेषु न लक्ष्यते। तत्र तु योग्यविद्वान् नरः एव मताधिकारीरूपे स्वीकृतः। यथा व्यञ्जते निम्नमन्त्रे -

यत्र ब्रह्मं च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह॥ (यजु० २०/५५)

अत्र ब्रह्मपदेन प्रजानां प्राज्ञत्वमेवोरिकृतमिति मन्ये। अमुमेव विशदयन्निगदितं मनुस्मृतौ।

एकोऽपि वेदविद् धर्म यं व्यवस्येद्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मः नाज्ञानामुदितोऽयुतैः॥ (१२/११३)

इत्थं वेदेषु प्रजाभिः राज्ञः निर्वाचने, तदभिषिंचने, सभाभिः प्रजापालने च विशुद्धलोकतन्त्रस्यैव दर्शनं भवति। यं विस्मृत्य पाश्चात्यदेशीयसिद्धान्तानामन्धानुकरणेनैवाद्य भारत देशः विश्वगुरोः उच्चपदादवनितं प्राप्याशिक्षितदेशेषु गण्यते। वेद विरुद्धस्य one man, one vote सिद्धान्तस्यैव दुष्परिणामस्ति यदद्य सर्वत्राराजकता व्यापृता, कुत्सितेऽर्थे च प्रयुज्यते इदानीमयं राजनीति शब्दः। विषयोऽयं शोधपत्रे विस्तरेण विवेचयिष्यते॥

वेदों में राजनीति विज्ञान

सन्दीप कुमार उपाध्याय
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आर्य समाज के तृतीय नियम के अन्तर्गत प्रतिपादित करते हैं कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है। महर्षि मनु भी कहते है कि **'वेदोऽखिलो धर्ममूलं'** अर्थात् वेद सब धर्मो का मूल है। वेद् में विविध विद्याओं का समावेश है। प्राचींन काल से ही राजनैतिक सिद्धान्त मानव जाति से सम्बन्धित रहे हैं। राजा कैसा हो? उसके गुण, कर्म, स्वभाव कैसे हो? मन्त्रीगण के क्या कर्तव्य हैं? प्रजा जन के क्या अधिकार हैं? आदि सब वेदों में निहित है। मनु महाराज का श्लोक है -

ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्॥ मनु स्मृति(७/२)

अर्थात् जैसे परम विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय अर्थात् राजा

को अपने राज्य की रक्षा न्याय के द्वारा यथावत् करे इसबात का प्रतिपादन ऋग्वेद करता है

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान्।। ऋ० ३/३८/६

अर्थात् राजा और प्रजा मिलकर सुखप्राप्ति और ज्ञान विज्ञान वृद्धिकारक हों। राजा और प्रजा के मध्य सम्बन्ध के लिए तीन सभाएें विद्यार्य्य सभा, धर्मार्य्य सभा और राजर्य्य सभा बनें और समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धन आदि से अलंकृत हो।

वेदों में प्रतिपादित राजनैतिक सिद्धान्त

विद्याधर सिंह
शोध छात्र
जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

वर्तमान में राजनीति शब्द से प्रायः शासन सम्बन्धी विविध स्वरूपों और व्यवहारों को समझा जाता है। जिसे अंग्रेजी में Politics कहा जाता है, उसके लिए हिन्दी में राजनीति शब्द का प्रयोग होता है परन्तु वैदिक वाङमय में एतदर्थ ''राजधर्म'' शब्द का प्रयोग हुआ है (अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः - स0प्र0, समु0 6) तथापि राजनीति शब्द सर्वथा उपेक्षणीय नहीं है, क्योंकि अब इसका प्रयोग विस्तृत रूप से होता है। नीति और धर्म में तत्वतः कोई विशिष्ट भेद नहीं है। नीति का अर्थ प्रायः जैसा कि समझा जाता है, धूर्त्तता, चालाकी, छलकपट आदि नहीं हैं अपितु इसका अर्थ निर्देशन, दिग्दर्शन, व्यवहार है। इस दृष्टि से राजनीति या राजधर्म वह मार्ग है जिसके अन्तर्गत धर्म के अनुसार अर्थ प्राप्ति अर्थात् शुद्ध साधनों के व्यवहार से शुभ इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति हो।

आधुनिक काल में कतिपय ऐसे शब्द हैं जो अत्यन्त तिरस्कृत हो गये हैं और इनका प्रयोग यदा-कदा होता है तो पूर्व सञ्चित संस्कारों एवं आग्रहों के कारण श्रोता के हृदय में एक घृणा और उपेक्षा की प्रतिक्रिया होती है। ऐसे ही शब्दों में एक शब्द राजा है, जिससे प्रायः यह समझा जाता है कि यह एक स्वेच्छाचारी, निरकुंश और क्रूर व्यक्ति का नाम है और यह कहा जाता है कि अब राजाओं का युग समाप्त हो गया, इस समय प्रजा का युग है, परन्तु वेदों में वर्णित राजा इससे सर्वथा भिन्न है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतवर्ष में अनेक राजा थे परन्तु अब उन्हें प्रजा की कक्षा में बैठा दिया गया है। अतः राजधर्म की अपेक्षा प्रजाधर्म और राजनीति की अपेक्षा प्रजानीति पर अधिक बल देना चाहिए, परन्तु वैदिक राजनीति का मूलभूत सिद्धान्त सदा से ही यह रहा है कि राजा वही हो सकता है जो रक्षक हो। जो प्रजा का रञ्जन, जनता के ऊपर प्रेम करता है, वह राजा होता है 'सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत' - अथर्व0 15.8.9 ।

पर्यावरणम्

वेदेषु पर्यावरणम्

डॉ० राधेश्याम गंगवार
वरिष्ठ प्रवक्ता- संस्कृत विभाग
स्ना0 महा0, पिथौरागढ़

वेदेसर्वं प्रतिष्ठितमिति श्रुतिवचनेन सिद्धयति यदिह मानवजीवनस्य सर्वमपि ज्ञानं समाहितं विद्यते। तज्ज्ञानं नाम यज्ञविज्ञानं, सृष्टिविज्ञानं, प्राणिविज्ञानं, वाक्विज्ञानं, ज्योतिषविज्ञानं, भौतिकविज्ञानं, रसायनविज्ञानं, जीवविज्ञानं, वनस्पतिविज्ञानं, पर्यावरणं, गणितं, वास्तुविज्ञानं, कृषिविज्ञानम्, आयुर्विज्ञानं वा स्यात्। सर्वेषां मूलाधारास्तु वेदाः सन्ति। विषयेऽस्मिन् नैव विदुषां काचित् विप्रतिपत्तिः।

प्रकृतिं परित आवृत्य स्थितं तत्त्वजातं नाम पर्यावरणं कथ्यते। जल-भूमि वाय्वाकाशवृक्षवनस्पतिप्रभृतयः सन्ति पर्यावरणस्य अवयवाः। वेदेषुः सर्वाण्येतानि 'देव' इतिशब्देनाभिधीयन्ते। यतोंहि ताहन दिव्यैः गुणावदानैः पर्यावरणं शुद्धयन्ति। देवेषु प्रतिपाद्यते यन्मनुष्यः शताधिकवर्षाणि जीवितुं शक्नोति, यद्यसौ स्वच्छवायुं सेवेत, प्रसन्नं पयः पिबेत्, शुद्धमन्नमद्यात्, विमलावनौ क्रीडेत् प्रशुद्धभूमौ कृषिकर्म चाचरेदिति।

वेदेषु विहितं पर्यावरणमत्र समासेन सप्तधा विभज्य प्रस्तोतुं शक्यते, तथाहि-

(1) वायुमण्डलस्वच्छता तस्य प्रभावश्च, (2) वनस्पतिभिर्वायुशोधनम् (3) शुद्धजलानां महत्त्वम् (4) जलशोधनम् (5) भूमिमहत्त्वम् (6) अग्निहोत्रद्वारा पर्यावरणशोधनम् (7) झञ्झावात-वर्षासूर्यादिभिः पर्यावरणशोधनं च।

निष्कर्षतो वक्तुं शक्यते वेदा मनुष्य वायु-जल-भूमि-वनस्पतिप्रभृतिपर्यावरणघटकानां शुद्धये सावहितं संदिशन्तु। तदेषु समागतामशुद्धतामपसारयितुं सततं प्रेरयन्ति, तद्यथा-

"वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नोहृदे। प्राण आयुंषि तारिषत्।[१]
ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवती प्रसूवतीः।"[२]

वस्तुतः प्रसन्ने पर्यावरणे हि मनुष्यः शारीरिक-मानसिक-बौद्धिकरूपेण च स्वस्थीभूय सौख्यमाप्तुमर्हति। एतदर्थमेव वेदेषु ऋषिभिर्भूयोभूयः सन्दिश्यते-

"इदमाप प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि"[३] "शग्मा भवन्तु मरुतो न स्योनाः"[४]

1- ऋग्वेद - 10/186/1 2- ऋग्वेद-10/97/3
3- वही- 10/24 3- अथर्व0 4/27/3

वेदों में पर्यावरण-विज्ञान

वन्दना कुलश्रेष्ठ
शोधछात्रा
बुन्देलखण्ड वि() वि(), झाँसी

'परि + आ' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करने पर पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। ''परित: सम्यक् वृणोति आच्छादयतीति पर्यावरणम्'' अर्थात् हमारे चारों ओर जो कुछ नैसर्गिक आवरण-आच्छादन स्थावर जङ्गमात्मक विद्यमान है, वह सब पर्यावरण कहलाता है। मानव-जीवन में पर्यावरण के घटक तत्व यथा जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, वनस्पतियाँ औषधियाँ आदि अनिवार्यत: आवश्यक हैं। अत: वैदिक ऋषियों ने इन्हें देवत्व प्रदान इनकी स्तुति की है और अपनी सुख-समृद्धि हेतु इनसे प्रार्थना की है तथा इनके संरक्षण एवं संवर्धन का उल्लेख भी किया है।

वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है, क्योंकि पर्यावरण असंतुलन प्राणियों के अस्तित्व के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। किंतु वैदिक ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा और दूरदर्शिता ने पहले ही इस गतिशील - प्राकृतिक - विधान के अंतर रहस्य को जान लिया था।

परिस्थितिकी विचारधारा का वैदिक स्वरूप

डा० मीरा द्विवेदी
रीडर-संस्कृत एवं वैदिक अध्ययन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

पारिस्थितिकी जीव-जगत् के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करने वाली विज्ञान की एक शाखा है। वेदों में भी जीव-जगत् के अन्त: सम्बन्धों का दिग्दर्शन कराने वाले प्रचुर सन्दर्भ देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में उन्हें इस विज्ञान की दिशा में तुलनात्मक रूप से एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया गया है।

भारतीय आर्ष मनीषा ने प्रकृति में देवत्व के अनुसन्धान से प्राकृतिक शक्तियों की उपासना का मार्ग प्रशस्त किया था। वैदिक साहित्य में प्रतिबिम्बित पारिस्थितिकीय विचारधारा के अनुसार समग्र पर्यावरण तीन भागों में विभक्त है द्युलोक, अन्तरिक्षलोक एवं पृथिवीलोक (तिस्र एव देवता ....निरुक्त) सूर्यद्युलोक की सर्वप्रमुख प्राकृतिक शक्ति है। यह अन्तरिक्ष लोक की सहायता से वर्षा, ऋतुपरिवर्तन (ऋक्0 10/85/18) द्वारा पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति एवं विकास का मुख्य आधार है। इसीलिए इसे जड-जंगम की आत्मा भी माना जाता है।

अन्तरिक्ष वायुमण्डल के ही अपर पर्याय के रूप में प्रयुक्त है। अन्तरिक्ष स्थानीय

देवों इन्द्र, मरुत्, रुद्र, मातरिश्वा पर्जन्य आदि का सम्बन्ध मूलतः वायु, विद्युत्, जल एवं वृष्टि आदि प्राकृतिक तत्त्वों से हैं। सही अनुपात में वर्षा जहाँ भूमण्डल पर सुख समृद्धि लाती है, वहीं झंझावात, विद्युत्पात आदि से भूमण्डल वासियों की महती क्षति होती है। अतः वैदिक ऋषि अधिक निष्ठा के साथ इन प्राकृतिक शक्तियों के सन्तुलन की प्रार्थना करते हैं।

वेदों में पृथिवी को देवता, माता आदि रूपों में स्तुत्य एवं वन्दनीय माना गया हैं, क्योंकि यह विविध औषधियों, वनस्पतियों, अन्न एवं जल आदि की अपरिमित निधि है। वैदिक पारिस्थितिकी जल को पर्यावरण का एक स्वतन्त्र भाग न मानकर अन्तरिक्ष एवं पृथिवी स्थानों से ही सम्बद्ध करती है; इसके विपरीत आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान जल को पर्यावरण का स्वतन्त्र भाग मानता है। वैदिक विचारधारा में वर्षा के रूप में जल जहाँ अन्तरिक्ष व्यापी है, वहीं समुद्र, नदी, कूप, तडाग, वापी आदि के रूप में जलों का आधार पृथिवी ही है। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त (12/1/9) में जल को पृथ्वी माता का दुग्ध कहा गया है। जो इस पारितन्त्र चक्र का संसूचक है कि पेयजल तथा कृषि के उपयोग की दृष्टि से (धान्य आदि के उत्पादन द्वारा) जल प्राणियों एवं वनस्पतियों का उसी प्रकार पोषण करता है जैसे माता दुग्ध से शिशु का पोषण करती है।

वेदों में प्राकृतिक पर्यावरण के महत्त्वपूर्ण भागों के स्वरूप का प्रकाशन करने के साथ प्राकृतिक शक्तियों (देवस्वरूप) के पारस्परिक अन्तःक्रिया से होने वाले प्रभावों का भी वर्णन किया गया है। साथ ही पर्यावरण की संरक्षा के भी अनेक उपाय बताये गए हैं। अथर्ववेद कहता है- सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, यज्ञ एवं ब्रह्म का पालन पृथिवी का धारण करते हैं।

"सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो।
ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।।अथर्व. १२/१

इस प्रकार वैदिक विचारधारा में पर्यावरण के प्रमुख भागों, उनकी पारस्परिक अन्तःक्रिया एवं पारितन्त्र के सन्तुलन के महत्त्वपूर्ण विचार वैज्ञानिक विधि से समुन्मीलित हैं।

वैदिक वाङ्मये पर्यावरणचिन्तनम्
(प्राकृतिकपर्यावरणसन्दर्भविशेषः)

डॉ० विनीत घिल्डियाल
उपाचार्या, संस्कृत विभागः
हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगरम्

यत्किञ्चिदपि अस्मान् परिवृणोति जीवनञ्चास्माकं प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण प्रभावयति तत्सर्वमेव 'पर्यावरणम्' इत्यनेन पदेनाभिहितम्। एवं सति जलवायुपृथिवीदहनगगनाख्यानि पञ्चभूतानि, अन्नवृक्षवनस्पतयः, लतौषधयश्च वन्यपशवः पालितपशवश्च जलचरखेचरसरीसृपकीटादयश्च जन्तवः

सर्वेऽप्येते पर्यावरणस्य प्राकृतिकघटकास्सन्ति। वैदिकवाङ्मये पर्यावरणम्प्रत्यस्माकमृषीणां काचिदलौकिकीचेतना दृश्यते। एतस्मादेव कारणात् पर्यावरणस्य प्राकृतिकघटकेषु तत्तदभिमानिदेवानां सद्भावोऽभ्युपगतस्तत्र। ऋग्वेदे त्रयस्त्रिंशत्देवानां वर्णनमस्ति ये प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण पर्यावरणसम्पूरकास्सन्ति। उक्तञ्च यजुर्वेदे 'अग्निदेवता वातो देवता सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता.........।'

पर्यावरणशमभिलक्ष्यैव वृक्षाणामपि देवतात्वं स्वीकृत्य स्थाने-स्थाने वनवृक्षौषधीनां स्तवनं कृतमस्ति तत्र-'नमो वृक्षेभ्यः 'ऋ' वनानां पतये नमः 'ऋ' 'औषधीनां पतये नमः।' अथर्ववेदे पर्यावरणचिन्तनस्य उदात्तरूपं दृश्यते 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥' किञ्च 'यस्यां' समुद्र उत

सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥' एवमेव 'अप्सु अमृतम्' ऋ 'अप्सु भेषजम्' 'शुद्ध न आपस्तन्वे क्षरन्तुऋ 'यद् वो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे 'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वाः नः स्वस्तये' इत्यादयो नैके मन्त्रा दृष्टव्याः। ऋग्वेदस्य 'अरण्यानी' सूक्ते पादपैः सह प्राणधारिणां सहावस्थानं पारस्परिकमुपजीवित्वञ्च स्पष्टरूपेण दृश्यते। अद्यत्वे तु उपभोक्तावादिनो जनाः स्वार्थपूर्तये महता लोभेन प्रकृते अतिदोहनं कुर्वन्ति किन्तु वैदिकवाङ्मये नैकेषु मन्त्रेषु पर्यावरणसंरक्षणचिन्तनमपि दृश्यते ऋषिणाम्, तद्यथा 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः 'यत्' ते भूमि विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् 'यन्नदीषु परिजायते विषम् विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु 'सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु।' विशुद्ध पर्यावरणस्य कामनार्थमेवेत्थं शान्तिरोधषयः शान्तिः.....।' वैदिकवाङ्मये समस्तानां प्राणिनां निरामयत्वं प्रतिपादिमस्ति 'शं नो शान्तिपाठ करोति ऋषिस्तत्र-द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।' दर्शनीयञ्चैतत्विषयकं चिन्तनन्तत्र 'मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥' एवं शोधपत्रेऽस्मिन् वैदिकवाङ्मयमधिकृत्य पर्यावरणचिन्तनं विस्तरेण कृतमस्ति।

वेदों में पर्यावरण

डॉ० शरण कौर
अध्यक्षा, संस्कृत विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

भारत की प्राचीनतम संस्कृत के उदात्त चिन्तन के मूलाधार वैदिक-संहिताएं हैं, जो सार्वभौमिक और सार्वकालिक अनन्त ज्ञान-राशि के अजस्र - स्रोत के रूप में विश्व की अनेक जटिल व गंभीर समस्याओं के समाधान हेतु प्रासंगिक है। आधुनिक मानव भौतिक प्रगति के

उच्चतम सोपानों को संस्पर्श करने की लालसा में प्राकृतिक मर्यादाओं का निरन्तर अतिक्रमण करता जा रहा है, जिससे चारों ओर प्राणघातक रोग तथा भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि प्राकृतिक आपदाएं सृष्टि को पीडित कर रही हैं, जिससे समस्त जगत् का पर्यावरण प्रदूषित हो चुका है। इस भयानक विभीषिका को देखकर सम्पूर्ण विश्व इस बात से चिन्तित है कि पर्यावरण प्रदूषण महाविनाश का कारण बन सकता है।

पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन की प्राचीनतम परम्परा का प्रथम साक्षात्कार वेदों में परिलक्षित है। इनमें आधुनिक पर्यावरणीय विज्ञान की तकनीकी शब्दावली तो प्रयुक्त नहीं हुई है, परन्तु मानव और प्रकृति के अन्योन्याश्रित सामञ्जस्य एवं संतुलन की चेतनता पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। यों तो चारों वेदों में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन उपलब्ध होता ही है।, किन्तु अथर्ववेद में यह विशद रूप से प्रतिपादित हुआ है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने पर्यावरण के समस्त घटकों के महत्त्व को समझा और भूमि, जल, वायु, अग्नि, पर्जन्य, आकाश और अन्तरिक्ष को मात्र जड प्रकृति न मान कर उसमें देवत्व की उद्भावनाएं की।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में पृथ्वी के भौतिक व सांस्कृतिक पर्यावरण के संरक्षण हेतु कहा गया है कि भूमि सबके भरण-पोषण में समर्थ होती है जिसमें वृक्ष एवं वनस्पतियां सदा खड़ी रहती हैं, इसकी रक्षा की जानी चाहिए। यदि हम भूमि को खननादि कार्यों के लिए खोदें तो क्षति पूर्ति की जानी चाहिए। ऋषियों की दृष्टि में जल, पृथ्वी माता का दुग्ध है, क्योंकि इसी से पृथ्वी का मातृत्व प्रकट होता है, अत: वे जल को प्रदूषित करने के विषय में कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

वेदेषु पर्यावरणम्

डॉ० मिताली देव
संस्कृत विभाग, महिला महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीयजनजीवने कर्मकाण्डस्य महती भूमिका अस्ति। यतो वयं षोडश संस्कारै: संस्कारितं जीवनं सुखेन यापयिष्याम अतो धार्मिककृत्येषु स्वस्तिवाचनस्य प्रारंभो शान्तिपाठेन च विसर्जनम् दृश्यते। एतत् सर्वं पर्यावरणमधिकृत्य एव निष्पाद्यते। अस्य पर्यावरणस्य वर्तमाने यान्त्रिके युगे भीषणा प्रतिक्रिया वर्धमाना दृश्यते। औद्योगिकप्रदूषणेन दूषितं पर्यावरणं विनाशायकत्यते इति वैज्ञानिका विपश्चिता च चिन्तयति।

पर्यावरणं व्याकरणशास्त्रे व्युत्पत्तिदृष्ट्या परि आ वृ ल्युट् निष्पद्यते। ब्रह्माण्डे च भौतिके भूमण्डले च जैविकपरिक्रिया येन सम्पद्यते तद्यपि विनश्यते तदा महनी हानिः भविष्यति। प्रदूषितं पर्यावरणं विनाशाय शिवत्वस्य विनाशमवश्यंभावि दरीदृश्यते यत्र तत्र सर्वत्र। यान्त्रिकी भौतिक विद्या विजृम्भते, तान्त्रिकी दानवी शक्तिः वर्धते, लोभेषणा विजृम्भते। भज्यन्ते मर्यादाः लोप्यन्ते सदाचारनियमाः, नाद्रियन्ते पथ्यानि सुभाषितानि।

वैज्ञानिकप्रगतौऽत्रवयं पश्याम यतः सर्वत्र प्रदूषितं वारि वहति। ओषजनं न तत्र दृश्यते। न वा 'आपः शिवाः शिवतमाः कुर्वन्तु वो भेषजम्'। नगरेषु मूत्रपुरीषं सर्वं प्रणालिकासु वहति। औद्योगिक परिसरेषु दूषितं विषमयं सर्वं प्रदूषणं जले वहति यतो जलं सुविलायकमस्ति। अतः सर्वं विषमयं जलं दुर्गन्धं वहन् जीवजन्तूनां विनाशं समाचरति। जले यद् 'ओषजन' वायुः सान्द्रीभूतं आसीत् तत् नष्टम्। अतः नदीषु स्नानं व्यर्थीभूतं जातम्। नदीषु दूषितपदार्थानां संगमम् केवलं विषवधनम् समाचरति। राष्ट्रचिन्तकाः विपश्चियताः वैज्ञानिकाः जलस्य परीक्षणं कृत्वा सर्वकारान्, नगरप्रशासकान् सूचयन्ति च यत् यन्त्रागारनिसृतं दूषितवारिपरिशोधनं व्यवस्था करणीया, नाद्यापि तैः श्रूयते। तेन वायुमण्डलेऽपि पर्यावरणं दूषितं जायते।

आधुनिकसन्दर्भे पञ्चविधं पर्यावरणस्थानं दृश्यते तद्यथा स्थलमण्डलं, जलमण्डलं वायुमण्डलं तेजोमण्डलं नभो मण्डलं च। तेषां भौतिक स्वरूपं पृथक्त्वेन, संयोगेन समवाय सम्बधेन च वर्तते पर्यावरणे। पर्यावरणं विशुद्धं भवेत् इति कामनया ज्ञानराशेरक्षय्यभण्डारेषु वाऽपौरुषेयेषु वेदवाक्येषु दृश्यते। भारतीयानां विश्वासो वर्तते यत् 'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति'। सा भारतीया संस्कृतिः विश्ववारा वर्तते, वयं च भारतीयाः, अस्मासु श्रद्धाविश्वासरूपेण 'तस्य हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम्' 'वेदोऽखिलाधर्ममूलं स्मृतिशीलं च तद्विदाम्' वर्तते।

वेदों में पर्यावरण

पूजा शर्मा
शोधछात्रा
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

मनुष्य एवं अन्य प्राणी जगत्, वृक्ष वनस्पतियों के चारों ओर पञ्च महाभूतों की अवस्थिति ही पर्यावरण है। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं नीरोगता प्रदान करते हैं और जब ये दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिन्ता का विषय बन जाते हैं। आज औद्योगिक युग में पर्यावरण का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों द्वारा किया जाता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पूरे विश्व में विकराल रूप ले चुकी है।

पर्यावरण प्रदूषणों को समाप्त करने हेतु यजुर्वेद के उपाय अद्भुत और अलौकिक हैं। वैदिक काल से ही पर्यावरण के प्रति संचेतना दिखाई पड़ती है। वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी। ऋषियों ने प्रकृति की इस प्रकार से व्याख्या की है कि प्रदूषण की समस्या ही उत्पन्न न हो। "माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" कहकर भूमि का माता के तुल्य संरक्षण करने का उपदेश दिया है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के अश्विनौ सूक्तों में पर्यावरण संतुलन के सूक्त मधु विद्या के रूप में उभर कर सामने आये हैं।

रामायण में भी वाल्मीकि ने पर्यावरण संरक्षण के प्रति सन्देश दिया है। वृक्षों में देवत्व की उद्भावना हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता रही है और विशेष रूप से महिलाओं ने इसे श्रद्धापूर्वक विकसित किया है। रामायण में अनेक स्थलों पर वनस्पतियों का सौन्दर्य और प्रचार्य वर्णित है। जो पर्यावरण के प्रति सजगता और जागरूकता का संकेत करते हैं। वाल्मीकि ने नदियों, सरोवरों के शुद्ध जल के लिए चेतनता जागृत की है। नदियों के पूजन करने प्रणाम कर आशीष मांगने का विवरण अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। यजुर्वेद पर्यावरण विज्ञान का अद्भुत ग्रन्थ रत्न भी है।

वेदों में पर्यावरण-विज्ञान

डॉ० ऋतु शुक्ला
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
पं. दीनदयाल उपाध्याय राज() महा(), वाराणसी

वेद को ज्ञान विज्ञान का अक्षय भण्डार कहा गया है क्योंकि इनमें प्रत्येक विषयों एवं पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान उपलब्ध है। वेद मानव के आध्यात्मिक एवम् आनुष्ठानिक पक्षों को स्पर्श करने के साथ साथ उसके सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी पक्षों के प्रति भी चिन्तनशील हैं। मानव के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को प्रथमदृष्ट्या प्रभावित करने वाला घटक उसके आस पास का वातावरण होता है, जिसके शुद्धिकरण एवं परिवर्धन हेतु ऋषियों में पर्याप्त चेतनता दिखाई पड़ती है। वेदार्थ के सम्यक् अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पर्यावरण चेतना का मूल स्रोत वेद है।

'परि, आ' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करके पर्यावरण, शब्द निष्पन्न होता है। परितः सम्यक् वृणोति आच्छादयतीति पर्यावरणम् अर्थात् मानव के चारों ओर जो कुछ नैसर्गिक आवरण आच्छादन, स्थावर जंगमात्मक विद्यमान है, वह सब पर्यावरण कहलाता है। जब इस वातावरण की स्वाभाविक स्थिति किन्हीं बाह्य तत्वों के अतिक्रमण करने से दूषित हो जाती है तो वह प्रदूषण का रूप ले लेती हैं सम्प्रति पर्यावरण प्रदूषणों में जल प्रदूषण मृत्तिका प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण इत्यादि प्रमुख हैं।

वर्तमान युग के मानव की भांति वैदिक युग का मानव इस तथ्य से अभिज्ञ था कि स्वस्थ मानव जीवन के संचालन हेतु स्वच्छ एवम् अनुकूल वातावरण आवश्यक है। अतएव वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने प्रकृति के विभिन्न अवयवों-क्षिति, जल पावक, गगन, समीर नदी इत्यादि की देवताओं के रूप में स्तुतियाँ की है। वैदिक मंत्रों के अर्थज्ञान से जल आदि की निर्मलता तथा समृद्धि की अपेक्षा प्रकटित होती है। विभिन्न श्रौतयागों के निरूपण एवं महत्ता स्वीकार करने के मूल में ऋषियों की पर्यावरण चेतना ही है।

इस प्रकार यह द्रष्टव्य है कि ऋषियों एवं मनीषियों ने मानव जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व, प्रकृति से सान्निध्य संवेदनशीलाता आरोग्य सम्बन्धी विशिष्ट-ज्ञान सम्पदा से वैदिक वाङ्मय को पुष्पित पल्लवित किया है। वैदिक साहित्य में उपलब्ध अनेक सूक्तों के सूक्ष्मानुशीलन से यह विदित होता है कि पर्यावरण विज्ञान प्राचीनकाल से ऋषि-मुनियों के मानस में था तथा निरन्तर प्रवाहित होता हुआ वर्तमान समाज को सुसमृद्ध कर रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र में वेदों में पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन का विहगावलोकन किया गया है।

वैदिक पर्यावरण

डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित
रीडर एवं अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
अकबर महाविद्यालय, अकबरपुर

जहाँ वेदों की ज्योति है, वहाँ प्रकाश है, उन्नति है। सुख है शान्ति है और सतत विकास है। वेदों का स्वाध्याय प्रत्येक व्यक्ति, समाज राष्ट्र और विश्व की उन्नति का साधन है, विश्व बन्धुत्व का प्रेरक है और विश्व धर्म का संस्थापक है। वैदिक वाङ्मय भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राण तत्व है। भारतीय धर्म और दर्शन में जो जीवन सत्य अनुस्यूत है; उसका मूल कारण वैदिक वाङ्मय ही है। इसे भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधार भी कहते हैं। यह धारा युगों-युगों से प्रवाहित होने वाली वह पवित्र एवं अक्षुण्ण ज्ञान गंगा की धारा है जो अनवरत प्रवाहित हो रही है। इसमें अवगाहन कर मानव हृदय को परम शान्ति प्राप्त होती है।

वास्तव में हमारे ऋषि-मुनि भविष्य द्रष्टा थे। उन्होंने हजारों वर्ष पश्चात् आने वाली समस्याओं को पहले ही भांप लिया था। आधुनिक युग में विकास की गति ने हमारे सामने प्रदूषण की एक ज्वलन्त समस्या को उत्पन्न कर दिया है। यदि समय रहते इसकी उचित रोक-थाम नहीं की गयी तो वह दिन दूर नहीं जब सम्पूर्ण मानव जीवन ही नष्ट होने के कगार पर पहुँच जायेगा। इस भयवह संकट से बचने के लिये हमें प्राकृतिक वातावरण की आवश्यकता है। जिसे पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण मानव जीवन का मूल आधार है, क्योंकि पर्यावरण के अनुसार ही सामाजिक,

सांस्कृतिक, आर्थिक,, जैविक एवं अन्य क्रियाएं प्रभावित होती हैं।

मानव जीवन का कोई भी पहलू ऐसा नहीं है जिसकी चर्चा वेद में न की गयी हो और पर्यावरण भी इसका अपवाद नहीं है। वायु, जल, पेड़-पौधे, भूमि, प्रकृति के घटकों को शुद्ध, स्वच्छ रखता है तो पर्यावरण स्वयमेव हमारे लिये कल्याणकारी व शुद्ध रहेगा। वेद हमारा मार्ग प्रशस्त करता है कि किस प्रकार हमें प्रकृति के उक्त तत्वों से उपयोग लेना है और कैसे इसकी रक्षा करनी है। वायु, प्राण शक्ति हैं वायु के अभाव में हम जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। वेद भी हमें सन्देश देता है कि स्वच्छ वायु का सेवन प्राणियों के लिये श्रेयस्कर है।

वेदों में अग्नि एवं पर्यावरण संरक्षण

दीपा मेहता
शोध छात्रा

डॉ. नन्दिता सिंघवी
व्याख्याता, संस्कृत
राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर

राजकीय डूँगर महाविद्यालय, बीकानेर

सृष्टि की संरचना में अग्नि का महत्त्वपूर्ण योगदान है-

अग्निषोमात्मकं जगत्, बृहज्जाबालोपनिषद्-२/४१

अग्नि ही जड़-चेतन पदार्थो का उत्पादक है-ऋग्वेद, १०/५/७

वेदों में अग्नि के प्रमुखतः तीन रूप माने गये हैं-

1. पार्थिव अग्नि   2. अन्तरिक्ष स्थानीय अग्नि   3. द्युस्थानीय अग्नि

अग्नि तत्व पर्यावरण निर्माण एवं संरक्षण का आधारभूत घटक है। वेदों में अग्नि को ऊर्जा का सम्राट् अर्थात् प्रतिनिधि माना गया है- त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजम् -वहि 3/10/1।

अग्नि (ऊर्जा Energy) एक ही हैं उसका रूपान्तरण होता है। अतः उसके अनेक नाम हो जाते हैं। विश्व के प्रत्येक कण में ऊर्जा है-

वैश्वानरो विश्वकृत् - अथर्ववेद ६/४७/१

सूर्य की किरणों से लेकर मानव जगत् तक, वृक्ष-वनस्पतियों, जल और समुद्र में अग्नि व्याप्त है- आसूर्ये - ओषधीष्वप्सु-मानुषेषु राजा ऋग्वेद 1.59.3 । पर्यावरण की शुद्धि में अग्नि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। अतः इसे **''विश्वशुचे''** (वही, 7/13/1) और पावकः (वही, 1/12/9) कहा गया है।

यज्ञाग्नि से पर्यावरण में व्याप्त हानिकारक विष्णु व जीवाणुरूपी राक्षस समाप्त हो जाते है। वहीं 1/1/4, 6/16/28,। अग्नि वर्षा द्वारा पर्यावरण का संरक्षण और पोषण करता है अथर्ववेद (18/3/65) में अग्नि को द्यावापृथ्वी में वर्षा करने वाला कहा गया है, मेंघ के जलों में रहने वाला विद्युत् रूप अग्नि सब शरीरा के साथ एक रूप होता हुआ औषधियों का पालक है। वह अग्नि

आकाश से अमृतरूपी वृष्टि जल, जो प्रजाओं के लिये प्राणरूप है, देता है वही, 4/15/10।

सूर्य की ऊर्जा से चराचर में गति, प्रगति, विलास और विकास सम्भव है। सूर्य के द्वारा ही संसार को जीवनी शक्ति मिलती है अत: सूर्य को जगत् की आत्मा कहा गया है सूर्य आत्मा **जगतस्तस्थुषश्च वही १३/२/३५, ऋग्वेद, १/११५/१, यजुर्वेद ७/४२।** सूर्य द्वारा किये गये प्रकाश संश्लेषण से औषधि वनस्पतियाँ जीवित रहती हैं। प्रस्व आ विशेश ऋग्वेद, 7/9/3। उन पर ही समस्त जीव-जगत् का जीवन निर्भर है। औषधि-वनस्पतियों से ऑक्सीजन (प्राणवायु) प्राप्त होती है और अपान अर्थात् प्रदूषण नष्ट होता है

अन्तश्चरति रोचनादस्य प्राणादपानती- यजुर्वेद ३/७

सूर्य दृष्ट और अदृष्ट सभी प्रकार के कृमियों को नष्ट कर पर्यावरण में व्याप्त प्रदूषण को दूर करता है। अथर्ववेद 5/23/6। पर्यावरण के संरक्षण और विकास में अग्नि के महत्त्वपूर्ण योगदान को दृष्टिगत करते हुए वेदों में अग्नि तत्त्व के संरक्षण पर बल दिया गया है। अथर्ववेद में (2/19/1)अग्नि तत्व को क्षति पहुँचाने वाले के लिए दण्ड का विधान किया गया है। अग्ने यत्ते तपस्तेन तं प्रति तप।

वेदों में पर्यावरण विज्ञान

गरिमा राजपूत
शोध छात्रा
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रत्येक प्राणी अपने चारों ओर के वातावरण अर्थात् बाह्य जगत् पर आश्रित रहता है। जिसे सामान्य भाषा में पर्यावरण कहा जाता है। पर्यावरण दो शब्दों मिलकर बना है। 'परि' तथा 'आवरण'। 'परि' का अर्थ है चारों ओर तथा 'आवरण' का अर्थ है ढ़का हुआ अर्थात् किसी भी प्राणी को जो भी वस्तु या प्राणी जीव जन्तु चारों ओर से घेरे या ढके रहते हैं वह उसका पर्यावरण कहलाता है। सभी जीवित वस्तुएं अपने पर्यावरण से निरन्तर प्रभावित होती हैं। तथा वह स्वयं उसे प्रभावित करती हैं।

वेदों में पर्यावरण को अनेक तरह से बताया गया है जैसे: वायु जल, ध्वनि वर्षा खाद्य मिट्टी, वनस्पति, वनसम्पदा, पशु पक्षी आदि। वेदों में इन पर्यावरण रक्षक तत्वों, घेरों की तथा पर्यावरण संरक्षण की पुष्कल ज्ञानराशि प्रतिपादित है। पर्यावरण को सुखमय जीवन्त दोषमुक्त बनाने में अत्यन्त सहायक, सूर्य अग्नि, औषधि आदि जो पदार्थ हैं उनकी महत्ता वेदों ने बार बार गाई है।

इस प्रसङ्ग में सम्पूर्ण पर्यावरणीय तत्वों में शान्ति व व्यवस्था की कामना को प्रस्तुत

ने वाला यजुर्वेद का यह मन्त्र उल्लेखनीय है।

द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिराप: शान्तिरोषधय: शान्तिः वनस्पतय: शान्तिविश्व
: शान्तिर्ब्रह्म, शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

वेद के ऋषि को यह पता है कि यदि भूमि द्यौ, अन्तरिक्ष जल, वनस्पति आदि दूषित हो जायें तो जीवन दूभर हो जायेगा। इसलिए वेद ने इन सभी की शान्ति की बात की है।

आज आवश्यकता है कि इसी भाव को जन चेतना में विकसित किया जाये तो एक समय ऐसा आयेगा कि प्रगतिवाद के इस युग में भौतिक एवं औद्योगिक विकास के साथ ही मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण भी संरक्षित रह सकेगा।

वेदों में पर्यावरण

डॉ० किरण टण्डन
प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,नैनीताल

स्वच्छ पर्यावरण संसार के समस्त प्राणियों के अस्तित्व के लिए परमावश्यकह है। यह जानकर हम अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का अनुभव करते हैं कि इस आवश्यक तत्त्व के सभी परमावश्यक अवयवों के प्रति हमारे प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्याप्त आदरभाव व्यक्त किया गया है; और हमारे वैदिक साहित्य में तो अग्नि, वायु, आकाश, जल तथा पृथिवी-इन पंचमहाभूतों को देवता मानकर, अनेक सूक्तों के माध्यम से इनकी स्तुति की गई है। इतना ही नहीं पंचमहाभूतों के संरक्षक के रूप में इन्द्रादि देवताओं से भी प्रार्थना की गई है। वैदिक साहित्य में पृथिवी को माता कहकर पूजा गया है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। -अथर्ववेद, १२/१२

और संसार को शस्य सम्पन्न बनाने वाले जलवर्षक मेघों को पिता मानकर उनसे अपने पालन की प्रार्थना की गई है-

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तुः। -वही, १२/१२

अग्नि से निवेदन किया गया है कि जिस प्रकार पिता पुत्र से अच्छी तरह व्यवहार करते हुए उसका कल्याण करता है, उसी प्रकार वह भी हम सबको आसानी से मिलें और हमारा कल्याण करें

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये। -ऋग्वेद १/१/९

प्रख्यात, सुखद, जलसम्पन्न. सुन्दर युक्त, कार्यशील एवं प्रकाशपूर्ण आकाश और पृथिवी

को याद किया गया है, जिसमें प्रकाश धारण करने वाले सूर्य देवता कर्त्तव्यपालन रूप धर्म में लगे रहते हैं-

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव
ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते
देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥ -वही, १/१६०/१

वायु को प्रजापति रूप पुरुष के प्राणतत्त्व से उत्पन्न मानते हुए उसे प्राणिमात्र के लिए अत्यावश्यक सिद्ध किया गया है-

प्राणाद् वायुरजायत॥ -वही, पुरुषसूक्त, १/९०/१३

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इन पंचमहाभूतों से सृष्टि में पर्यावरण की शुद्धि तभी होगी, जब इनका सन्तुलन बना रहे। पंचमहाभूत, औषधि, वनस्पति और सभी देवता हमारे लिए तथा हमारे पर्यावरण के लिए शान्तिदायक और सुखदायक हों-

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेधि।

-यजुर्वेद, 36/17

इसी सद्भावना से वेदों में प्रतिबिम्बित पर्यावरण को इस शोधलेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सांस्कृतिक पर्यावरण की ऋग्वेदीय अवधारणा एवं उसकी प्रासंगिकता

डॉ. जितेन्द्र डी. सोनी
व्याख्याता भूगोल विभाग
राजकीय महाविद्यालय, स्याल्दे,
अल्मोड़ा

डॉ. सुरेन्द्र डी. सोनी
व्याख्याता इतिहास विभाग
राजकीय लोहिया,(पी.जी)महाविद्यालय
चुरू

वैश्वीकरण के इस युग में जब दुनिया विकसित, विकासशील व अविकसित राष्ट्रों के खेमों में विभाजित करके देखी जा रही है एवं आर्थिक साम्राज्यवाद व्यापक रूप से अपनी जड़े जमा रहा है- संस्कृति और पर्यावरण को मात्र अंगरेजी शब्दों Cuture और Environment के पर्याय के रूप में ही नहीं देखा जा सकता। इस संबंध में भारत के प्राचीन ऋषि-वैज्ञानिकों के मौलिक दृष्टिकोण पर अवश्य विचार करना चाहिए।

वस्तुतः मानव जब अपने प्रत्यक्ष निश्चयात्मक ज्ञान अर्थात् विज्ञानसम्मत ज्ञान से आगे

बढ़कर सोचता है तो वह अपने ही तर्कों द्वारा परीक्षित एक अनुमानजन्य अप्रत्यक्ष निश्चयात्मक ज्ञान की ओर चला जाता है, जिसे दर्शन कहा गया है। इस आधार पर वह आचरण के कुछ नियम तय करता है, जो उसका धर्म बन जाते हैं। जब एकाधिक लोग इस धर्म में विश्वास करते हैं और इसके अनुसार चलते हैं तो यही धर्म, विज्ञान और दर्शन से सम्पृक्त होकर, संस्कृति के रूप में प्रवाहित होने लगता है। इसी क्रम में कहने को तो वर्तमान युग में जीव की वृद्धि व विकास की समस्त परिस्थितियों को पर्यावरण कहा गया है, किन्तु वास्तव में यह नहीं समझा गया कि पर्यावरण केवल पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल ही नहीं, इससे भी कहीं आगे की अवधारणा है, जिसमें मानव-मानव और मानव प्रकृति के अन्योन्याश्रयी व्यवहार का स्पष्टीकरण होता है। यह पर्यावरण का आभ्यन्तरिक या भीतरी रूप है, जिससे हमारा मन प्रभावित होता है। अत: ऋग्वेद में कहा गया है-

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।। (१०.१६४.१)

ऋग्वेद में जलवायु

प्रियंका राय
शोध छात्रा
दी0द0उ0गो0वि0वि0, गोरखपुर

ऋग्वेद न केवल प्राचीनतम भारत का, अपितु विश्व-वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता हुआ ऐसा मनमोहक मुकुर है, जिसमें तप-पूत ऋषियों की विश्व-वन्धुत्वपूर्ण उदात्त भावना के साथ ही भारतीय संस्कृति सर्वात्मना प्रतिविम्बित हो उठी है। ऋग्वेद प्राचीन विश्व-वाङ्मय का मूर्धन्य ग्रन्थ है, जिसमें आर्यों की पावन जन्म एवं कर्मभूमि 'सप्तसैन्धव प्रदेश के धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक आदि विविध पक्षों का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में ऋग्वेद का भौगोलिक अध्ययन है। भौगोलिक अध्ययन के अन्तर्गत मैंने मुख्यत: जलवायु को अपने शोध-पत्र का विषय बनाया है, क्योंकि किसी भी प्रदेश के भौगोलिक अध्ययन के लिए उस प्रदेश के जलवायु के बारे में अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है।

'ऋग्वेद में जलवायु' इस शोध पत्र के माध्यम से जलवायु-विज्ञान के तत्वों के आधार पर ऋग्वैदिक जलवायु के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है, क्योंकि सभी भौगोलिक प्रभावों में जलवायु ही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है, जो कि मानव को प्रभावित करती है।

पर्यावरण-चेतना की वैदिक अवधारणा

राजकुमार लाटा
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
राजकीय लोहिया (पी()जी()) महाविद्यालय, चूरू

वैश्वीकरण के इस दौर में विश्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त है। वर्तमान परिस्थितियों में यह समस्या स्वाभाविक सी लगती है, क्योंकि मनुष्य की सोच कुछ ऐसी ही हो गई है।

तकनीकी, प्रौद्योगिकी और आर्थिक दृष्टि से पाश्चात्य देशों के प्रगति कर जाने के कारण वे इस विश्व का नेतृत्व कर रहे हैं। पूरा विश्व उनकी तरफ देख रहा है। जीवन शैली को, उनके दर्शन को, उनकी वैज्ञानिक सोच को हम सब अपना आदर्श मान रहे हैं। यदि इसी आदर्श को विश्व अपनाए रखता है तो पर्यावरण को शुद्ध रूप में बचाए रखना संभव नहीं होगा।

पर्यावरण को बचाए रखने हेतु भारतीय आचार-विचार, भारतीय दर्शन को अपनाना होगा, जिसे वर्तमान सन्दर्भों में हेय दृष्टि से देखा जा रहा है। भारतीय आचार विचार का मूल आधार वेद है। जब तक हमारे ऊपर पाश्चात्य सोच की श्रेष्ठता रूपी भ्रम का पर्दा नहीं छाया था तब वैदिक चेतना ही भारतीय जन-जीवन को संचालित करती रही है।

प्रकृति और पर्यावरण पर वैदिक चेतना अत्यन्त स्पष्ट है। पश्चिम, जहाँ प्रकृति को अपना दुश्मन मानता है वहीं वेद मैत्री का संदेश देते हैं। पश्चिम विज्ञान का उपयोग जिस प्रकार से कर रहा है उसके विपरीत वेद हमें विज्ञान के दोस्ताने उपयोग का संदेश देते हैं। वर्तमान में हमने प्रकृति को स्वयं से अलग मान लिया है, जबकि वैदिक साहित्य प्रकृति एवं मनुष्य दोनों को एक बताता है। इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है-

"तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्रविशत्"

वेदों में पर्यावरण चेतना

डॉ० सी०के०झा
व्याख्याता, एम0पी0एन0 (पी0जी0)
कॉलेज मुलाना, अम्बाला,

भारतीय समाज को आदर्श रूप देने में वेदों का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका आश्रय लेकर हम सर्वविध समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होते हैं। सम्प्रति समग्र विश्व में पर्यावरण की चर्चा चल रही है। उपभोगवाद की भावना से ओत प्रोत मानव आज प्रकृति देवी की अवहेलना कर रहा है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। प्रकृति मानवीय दुष्कृत्यों से क्षुब्ध होकर यदा-कदा अपना ताण्डव नृत्य आरम्भ कर चुकी है। ऐसे समय में वेदों का स्मरण आना स्वाभाविक है क्योंकि वेदों में पर्यावरण के प्रति एक विशेष सकारात्मक दृष्टि रखी गई है।

संस्कृत वाङ्मय में 'पर्यावरण' शब्द के स्थान पर ''प्रकृति'' तथा 'सृष्टि' जैसे शब्दों का अतिशय प्रयोग हुआ है। पर्यावरण शब्द अंग्रेजी के Environment शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। परि+आ+ वृ+ल्युट् 'पर्यावरण शब्द की व्युत्पत्ति है, अर्थात् जो हमें चारों ओर से आवृत करे तथा जिसके द्वारा हम चारों ओर से आवृत हों उसे पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण विभिन्न अन्तर्निर्भर घटको सजीव एवं निर्जीव के मध्य सामञ्जस्य एवं पूर्णता (प्रकृति) की अवधारणा है जिसे हम व्यापक दृष्टि से कह सकते हैं कि हमारे चारों तरफ ही नहीं अपितु स्थावर जंगम के अतिरिक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चारो तरफ से आच्छादित करने वाला पदार्थ या तत्व समूह को पर्यावरण कहते हैं।

अतः वैदिककाल पर्यावरण के लिए स्वर्णयुग था। वेद हमारे पथ-प्रदर्शक ही नहीं जीवन भाग्य विधाता है, उनमें ऋषियों मुनियों ने जिस प्रकार से पर्यावरण की व्याख्या की है वह प्रादेशिक स्तर पर राष्ट्रीय स्तर पर तथा वैश्विक स्तर पर आज भी प्रासंगिक है। ऋग्वेद (1.90.6.57) की ये ऋचायें इस तथ्य को स्पष्टतः उद्घाटित करती हैं कि हमारे मनीषी ऋषि मुनि प्रकृति और पर्यावरण को कितना महत्व देते थे। वर्तमान में मानवकृत वनस्पति जगत् के विनाश से पारिस्थितिकी की असन्तुलन व भीषण पर्यावरण समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, जिनका समाधान वैदिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में सम्भव हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्ही बिन्दुओं पर विस्तार से विचार किया गया है।

वेदों में पर्यावरण

प्रणव कुमार मिश्र
शोध छात्र, हिन्दी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अन्य जीवों के समान ही मानव भी पर्यावरण का एक अंग है। परन्तु एक भिन्नता जो सहज ही परिलक्षित होती है, वह यह है कि मनुष्य में अन्य जीवों की तुलना में पर्यावरण को प्रभावित और नियन्त्रित करने की पर्याप्त क्षमता होती है। उपभोक्तावाद की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने मनुष्य को इतना स्वार्थी बना दिया है कि उसने अपनी क्षमताओं का दुरुपयोग कर पर्यावरण में असन्तुलन और प्रदूषण उत्पन्न कर दिया है। पर्यावरणविद् प्रदूषण रोकने के उपाय और प्रदूषण संरक्षण के साधनों के विषय में बताते रहते हैं, पर समस्या दिन प्रतिदिन विकराल होती जा रही है। यह समस्या एक देशीय नहीं, अपितु वैश्विक है। आजकल पर्यावरण रक्षण व प्रदूषण निवारण के विषय में जो बातें कहीं जा रही हैं, उन सबके विषय में बहुत कुछ जानकारी एवं पर्यावरण विषयक सामग्री वैदिक साहित्य में उपलब्ध होती है। वैदिक ऋषि पर्यावरण के प्रति मानव को सचेत ही नहीं करता अपितु उसके संरक्षण के लिए प्रेरित भी करता है। इसके लिए उसने पर्यावरण से जुड़े सभी पदार्थों को देवत्व का पद प्रदान कर उनके प्रति न केवल आदर भाव प्रकट किया है, अपितु पर्यावरण की सुरक्षा का सुनिश्चित आधार प्रदान करने के लिए उसे धार्मिक आस्था से जोड़कर निरन्तर संरक्षण और संवर्द्धन का मार्ग प्रशस्त किया है।

पूरे सौर मण्डल में हमारी पृथ्वी एकमात्र ऐसा गृह है, जिस पर जीवन के योग्य पर्यावरण पाया जाता है। पृथ्वी के प्राकृतिक पर्यावरण के मुख्य घटक हैं-स्थलमण्डल, जलमण्डल और वायुमण्डल।

वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी, परन्तु मानवीय प्रवृत्ति को जानने वाले ऋषि ने प्रकृति की इस प्रकार व्याख्या की जिससे प्रदूषण की समस्या उत्पन्न ही न हो। अथर्ववेद के ऋषि ने 'पृथ्वी' को माँ कहा है। पृथ्वी पर रहने वाले हम सभी धरती माँ की सन्तान हैं-

'' माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''

वेदों में पर्यावरण एवं कृषि विज्ञान दर्शन

डॉ० महादेव सिंह
रीडर
बैसवारा पी0जी0 कालेज, लालगंज, रायबरेली

पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर ने आत्मक्रीडनार्थ नाम-रूपात्मक वैविध्यपूर्ण विलक्षण इस सृष्टि का सृजन किया है। स्वयं में अंतर्हित अनभिव्यक्त सृष्टि की अभिव्यक्ति की है। इस जगत् की उपादान सामग्री वह स्वयं ही है। तथा स्वयं ही इस जगत् का आविर्भाव करता है। इस तरह उपादान तथा निमित्त दोनों ही कारण इस जगत् का वह एक ही अद्वय अद्वितीय ब्रह्म है। आविर्भूत इस जगत् का यही ब्रह्म पालन पोषण संवर्धन संरक्षण भी करता है। और पुनः इस जगत् का अपने में ही उपसंहार भी कर लेता है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में (10-90) परमपुरुष से इस सृष्टि के आविर्भाव का साधु वर्णन है। अतः सकल सृष्टि पुरुषमय है। इस प्रकार जगत् के उद्भव स्थिति प्रलय का हेतु यही सच्चिदानंद परम कारण ब्रह्म है-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभि संविशन्ति च तज्जलानिति।

अतः पारिस्थितिकी सन्तुलन के लिए ऋषियों द्वारा प्रस्तुत दृष्टि को ग्रहण करना चाहिए, समय के अनुरूप उपयोगी तत्त्वों को स्वीकार कर लेना चाहिए। इस तरह ऋषियों द्वारा प्रस्तुत कृषि विज्ञान दर्शन आज भी प्रासंगिक है।

वेदेषु पर्यावरणम्

डॉ० नीलम पाण्डेय
लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

पर्यावरण सभी जीवों के लिए आधार भूत वस्तु है। पर्यावरण का अर्थ होता है, परितः आवरणम् अर्थात् जिससे हम चारो ओर से ढँके हों। जैसे-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। इनसे हम आवृत्त हैं। अतः इन्हें ही पर्यावरण कहा जाता है। इन्हीं पञ्च तत्वों या पर्यावरण पर जीवों का जीवन या पर्यावरण पर जीवों का जीवन सुरक्षित रहता है। आकाशीय वायु और अग्नि तत्व को शुद्ध करने के लिए इस धरती पर वनों वृक्षों का महत्व सर्वाधिक है, क्योंकि वृक्ष ही कार्बन डाई आक्साईड को ग्रहण कर आक्सीजन उत्सर्जित करते हैं तथा पृथ्वी के ताप को कम करके ब्लैक होल के छिद्र को बढ़ने से रोकते हैं। जिससे पृथ्वी पर सूर्य के ताप की मात्रा का नियन्त्रण

होता है। इन्हीं वैज्ञानिक पक्षों को स्वीकार कर वेद में वृक्षों का वन्दन किया गया है।

नमो वृक्षेभ्यः। यजुर्वेद १६-१७

पर्यावरण ही जीवन का आधार है। अतः उसका संरक्षण मानव का कर्तव्य है। वेदों में वनस्पति को सर्वाधिक महत्व दिया है, क्योंकि यह विश्व को समृद्ध ही नहीं करती बल्कि प्राणदायक वायु के माध्यम से पर्यावरण को माधुर्यमय भी बनाती है।

मधुमान्नो वनस्पतिः। (ऋग्वेद-१०-१४६-६)

सुमित्रियाः न आप ओषधयः सन्तु। (यजुर्वेद-३६-२३)

वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चिन्तन

डॉ० (श्रीमती) पुष्पा यादव
रीडर एवं अध्यक्षा-संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

प्राचीनकाल से मानव तथा मानसवेतर प्राणी प्रकृति के सहचर रहे हैं। प्राकृतिक पर्यावरण के सानिध्य में समस्त प्राणी का जीवनचक्र घूमता रहता है। पर्यावरण वायु, जल, भूमि, वनस्पति, पेड़-पौधे, पशु और मानव सब मिलकर बनाते हैं। प्रकृति में इन सबकी मात्रा और इनकी रचना कुछ इस प्रकार से व्यवस्थित है कि पृथ्वी पर एक व्यवस्थित एवं सन्तुलनमय जीवन चलता रहे। विगत करोड़ो वर्ष पूर्व से, जब से मानव, पशु, पक्षी, अन्य जीव और जीवाणु उपभोक्ता बनकर आये, तब से पृथ्वी का यह चक्र निरन्तर और अबाधगति से चला आ रहा था। जिसको जितनी आवश्यकता थी, वह उन्हें मिलता रहा और प्रकृति आगे के लिये अपने में और उत्पन्न करके संरक्षित कर लेती।

विगत सौ वर्षो से विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण सामाजिक और आर्थिक आवश्यकतायें बढ़ी और उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि से अनेक वैज्ञानिक आविष्कार किये, भौतिकवादी सुख सुविधाओं का अर्जन करने के लिये औद्योगिक क्रान्ति का सहारा लिया। इन कारणों से प्रकृति का सामान्य रूप विखण्डित होने लगा, वन-सम्पदा कटने लगी, उपजाऊ भूमि पर आवास बनने लगे, बड़े बड़े जंगल साफ कर बाँधों की योजनायें बनीं और भी न जाने ऐसे कितने प्रयोग प्रारम्भ हुये, जो प्रकृति के स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं। सामान्य मानव जीवन में परिवर्तन आना स्वाभाविक है।

इन परिस्थितियों में आज पर्यावरण चिन्तन की आवश्यकता है। अतः मैं वेदों में पर्यावरण चिन्तन' शीर्षक से अपना शोधपत्र प्रस्तुत कर रही हूँ जो सामयिक तथा बदलती प्राकृतिक परिस्थितियों में उपादेय भी है।

वेदों में प्रतिफलित पारिस्थितिकी विज्ञान

मानस शरण तिवारी
शोधछात्र राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
गंगानाथ झा-परिसर, इलाहाबाद

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति।।
(ऋग्वेद ५वां मण्डल/८३वां सूक्त/५वां मन्त्र)

ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में पारिस्थितिकीय चेतना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार वेदों में पारिस्थितिकीय घटकों यथा-पर्वत, नदी, वन तथा जीव जन्तुओं का अनेकानेक प्रकार से वर्णन प्राप्त होता है।

21वीं सदी में आज हम जिन पारिस्थितिकीय संकटों का सामना कर रहे हैं वैदिक युगीन मंत्रद्रष्टा ऋषि उससे कदापि अनभिज्ञ नहीं जान पड़ते। अकाल, महामारी, अतिवृष्टि, सूखा जैसे संकटों पर ऋषियों ने पर्याप्त चिन्तन किया है। (ऋ0 5/83/10)। वस्तुतः वेद ज्ञान की राशि है। सर्वविदित है कि वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। ये यज्ञ विधान पारिस्थितिकी से प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों तरह से संबद्ध हैं। आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान (Ecology) का संदेश है कि पारिस्थितिकीय संतुलन में ही जीवन है और पारिस्थितिकीय संतुलन तभी तक कायम रह सकता है जब तक इसके प्रत्येक घटक अपनी स्वाभाविक दशा में बने रहें। इनसे छेड़छाड़ का दुष्परिणाम कल्पनातीत है।

प्रस्तावित लेख में अपनी अल्प बुद्धि से अपरिमित ज्ञान राशि वाले वेदों में पारिस्थितिकीय चेतना को प्रदर्शित करने का एक प्रयास किया गया है।

वेदेषु विज्ञानम्-पर्यावरणम्

डॉ० सुदेश गोयल
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग
देवसमाज महाविद्यालय, फिरोजपुर सिटी

आज विज्ञान का युग है। प्रत्येक विचार ज्ञान को कार्यान्वित रूप से देखा जाता है। यदि प्राप्त ज्ञान क्रियात्मक रूप से सफल होता है, तभी मनुष्य उसे अपनाने को उद्यत होता है। वैदिक साहित्य से अभिप्राय चारों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद और इनसे सम्बन्धित साहित्य ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और षड्वेदांग है-शिक्षा, ज्योतिष, व्याकरण, कल्प और निरुक्त है। हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने सुखद प्राकृतिक वातावरण में अपने तप द्वारा मनन करके

मंत्रों का अन्वेषण किया और तत्पश्चात् मौखिक रूप में शिष्यों को उनका ज्ञान प्रदान किया। जिनको बाद में लेखन बद्ध किया गया।

पर्यावरण शब्द 'परि+आवरण' दो शब्दों के मेल से बना है, जिसका अभिप्राय चारों ओर से घिरा हुआ, ढका हुआ। मनुष्य अपने चारों ओर से जैसे वातावरण से आवृत होगा, वैसा ही उसका विकास होगा। इसमें उसके शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का विकास सम्मिलित है।

विकासशील जगत् में प्रत्येक जीव पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से निर्मित है। शरीर के स्वस्थ विकास के लिये इन पंचतत्वों का स्वस्थ होना भी अनिवार्य है, इस विचार से हमारे ऋषि, मुनि भली प्रकार से अवगत थे। इसीलिये वे प्रकृति के सान्निध्य में रहते थे। उन्होंने शिक्षा केन्द्र नगरों के दूषित वातावरण से दूर निर्जन स्थानों में स्थापित किये थे। जहाँ पर पर्याप्त मात्रा में वृक्ष पाये जाते थे, वे शुद्ध वायु और जल का सेवन करते थे। एकान्त स्थान पर तपस्या करके अपने मन को नियन्त्रण में रखते थे।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण

राज भूषण
शोध छात्र संस्कृत
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष-पूर्व मानव-जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व और रक्षा, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनशीलता रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी, वरन् उसकी रक्षा और महत्व को भी स्पष्ट किया गया था। उन लोगों की भी दृष्टि पर्यावरण प्रदूषण की ओर थी, अत: उन्होंने प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में पर्यावरण की रक्षा की ओर समाज का ध्यान इस और आकर्षित किया था। वे भूमि को ईश्वर का रूप ही मानते थे पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था जैसा कि कहा भी गया है।-

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।

(अथर्ववेद 10/7/32)

वेदों में पर्यावरण को अनेक वर्गों में बांटा जा सकता है। जैसे :-
वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्टी, वनस्पति वनसम्पदा।

वेदों में पर्यावरण

मीनू सक्सेना
शोध छात्रा
रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

वैदिक मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व जीवमात्र के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्व और उसकी रक्षा प्रकृति के प्रति सन्निकटता, रोगों के उपचारएवं स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्वों को प्रकाशित किया। वैदिक ऋषि केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर सजग नहीं थे वरन् उसकी रक्षा तथा महत्व को भली-भांति समझते थे। अतः वे पर्यावरण प्रदूषण के प्रति अत्यन्त सचेत थे। वैदिक ऋषि ने पृथिवी सूक्त में स्पष्ट रूप से पृथिवी को माता स्वयं को उसका पुत्र कहा है

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या।

इसी कारण अथर्ववैदिक ऋषियों ने भूमि को ईश्वर का रूप बताते हुए पर्यावरण की रक्षा एवं पूजा का एक अविभाज्य अंग बताते हुए अथर्ववेद के दशम काण्ड के इस मंत्र से स्पष्ट होता है, ईश्वर को भूमि बताते हुए स्पष्ट किया है-

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ अथर्व० १०/७/३२

अर्थात् भूमि जिसकी पादस्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।

वेदों में पर्यावरण मुख्य रूप से पांच वर्गों में दृष्टिगोचर होता है यथा - वायु, जल, ध्वनि, खाद्य, मिट्टी, वनसम्पदा, पशु-पक्षी आदि। सजीव जगत् के लिये पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रथम स्थान है। बिना प्राण वायु (ऑक्सीजन) के क्षणभर भी जीवित रहना सम्भव नहीं है।

वायु की शुद्धि के लिए यजुर्वेद में इस प्रकार कहा गया है-

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन।

वेदों में पर्यावरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण के उपाय दृष्टिगोचर होते हैं। पर्यावरण की शुद्धता के लिए यज्ञों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गई है। वेदों में वैदिक ऋषियों ने स्वस्थ जीवन को संतुलित करने के लिए स्वस्थ पर्यावरण को नितान्त आवश्यक माना है।

वेदों में पर्यावरण

श्याम लाल गौड
शोध छात्र
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

पर्यावरण का नाम लेते ही प्रकृति में जो कुछ भी परोक्ष या प्रत्यक्ष है यथा पृथ्वी, सूर्य, वायु, आकाश, जल, अग्नि, वनस्पति, मृदा, पक्षी, मानव आदि का स्मरण हो आता है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ हैं चारों ओर से घेरने वाला। यह दो पदों से मिलकर बना है परि+आवरण। परि शब्द का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ घेरा। इस घेरे में ही सजीव और निर्जीव सभी तत्व विद्यमान है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है चारों ओर से घेरने वाला।

आधुनिक मानव समाज की मुख्य समस्या प्रदूषित पर्यावरण है। स्वस्थ पर्यावरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर असंख्य प्रयास किये जा रहे है। दुर्भाग्य से सामान्य भारतीय मानसिकता ऐसे संकट के समाधान हेतु पश्चिम का मुँह ताकती है। जबकि हमारे प्राचीन ज्ञान कोष में इसका प्रभावी उपाय उपलब्ध है। वैदिक साहित्य पर्यावरणीय संरक्षण और संवर्धन की विषय सामग्री का अथाह भण्डार है।

प्रकृति का प्रत्येक कार्य एक स्वाभाविक और नियमित प्रणाली का श्रेष्ठ रूप है। जिसे विरूप करने का अर्थ ब्रह्माण्ड की परम सत्ता को चुनौती देना है। इस युग के मानव ने अपनी प्रगतिशील सभ्यता और संस्कृति से प्राकृतिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर पर्यावरण की अनेंक समस्याओं को आमन्त्रित किया है। परिणाम स्वरूप पर्यावरण चिन्तन का विषय सम्पूर्ण विश्व के लिए एक गम्भीर प्रशन बन गया है।

वेदों ने विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। अणु, ऊर्जा आदि की चर्चा हजारों वर्ष पहले वेदों में कर दी गई है। वेदों के महत्व को स्वीकार करते हुए आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ मानव के आध्यात्मिक दृष्टिकोण भी विकसित किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त कथन से वेदों के अध्ययन की प्रासंगिकता प्रतीत होती है। जो सम्भवतः वर्तमान और भविष्य की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके तथा पर्यावरण सुधार की सार्वभौमिक नैतिकता को स्पष्ट कर सके।

वेदों में पर्यावरण चेतना

डॉ० केदारनाथ शर्मा
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय,जम्मू

पर्यावरण चिन्तन आज के समय का ज्वलन्त विषय है। औद्योगिकीकरण एवं तीव्र भौतिक विकास के परिणाम स्वरूप प्रकृति एवं मानव के मध्य उत्पन्न असन्तुलन के कारण वैश्विक पर्यावरण घातक रूप से प्रदूषित हो रहा है, जो मानव एवं मानवेतर प्राणियों के जीवन के लिये अनेक संकटों का कारण बनता जा रहा है। विश्वमानव को आज ऐसे मार्ग की आवश्यकता है, जिसमें चलकर वह प्रकृति का समुचित दोहन करते हुए पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के साथ-साथ भौतिक विकास के मार्ग में भी अग्रसर होता रहे। पर्यावरण चेतना ऐसे ही मार्ग के अन्वेषण का परिणाम है। पर्यावरण प्रदूषण का भय एवं उसके संरक्षण की चिन्ता के परिणाम स्वरूप पर्यावरण विज्ञान का अस्तित्व भले ही इक्कीसवीं शताब्दी में अस्तित्व में आया हो, परन्तु हमारे मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने पर्यावरण के महत्व को हजारों वर्ष पहले पहचान लिया था। स्वच्छ, शान्त प्रकृति के क्रोड में अपना जीवन यापन करने वाले वैदिक ऋषियों के समक्ष यद्यपि आज की जैसी पर्यावरण समस्या नहीं थी, तथापि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नदियां, पशु-पक्षी, वृक्ष आदि प्राकृतिक उपादानों का स्तवन कर पर्यावरण के महत्व एवं प्रकृति तथा मानव के मध्य अपेक्षित अपरिहार्य सन्तुलन की आवश्यकता विवेचन कर दिया था। गौतम ऋषि की यह प्रार्थना किः

संसार में वायु मधुर बहें, नदियाँ मधुर हों। रात मधुर हो, प्रभात मधुर हो और हमारा पिता द्यौ मधुर हो। वनस्पतियाँ मधुर हों। सूर्य मधुर हो और गायें मधुर हों। यह स्वच्छ पर्यावरण की कामना ही है।

ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त (10.75) ही नदियों की स्तुति में है। अथर्ववेद में भी भूमि, जल, वायु, अग्नि, पर्जन्य, आकाश आदि की जिन प्राकृतिक शक्तियों की उपासना की गई है, उनका पर्यावरण के साथ सम्बन्ध स्पष्टतः द्रष्टव्य है। बड़े-बड़े बाँधों, पक्की सड़कों, गगनचुम्बी भवनों के निर्माण एवं परमाणु परीक्षण आदि के कारण पृथिवी में होने वाले प्रदूषणों की हानियों से बचने की शिक्षा देता अथर्वा ऋषि का यह पृथ्वी स्तवन पर्यावरणविदों के लिए कितना प्रेरणादायक है -

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥ (अथर्व १२.१.३)
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (अथर्व १२.१.१२)

वेदों की रचना यद्यपि विविध देवी देवताओं एवं प्राकृतिक शक्तियों की स्तुति करने के

लिए हुई है, परन्तु इन मंत्रों में पर्यावरण संरक्षण के लिए सूत्ररूप में जो विचाराङ्कुर निहित हैं, उनके पल्लवन संवर्धन द्वारा पर्यावरण चेतना के भावों को उपबृंहित किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में वेदों विशेषतः ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि प्राकृतिक उपादानों से सम्बद्ध ऋचाओं को उद्धृत कर इनकी पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाएगा।

सावित्री उपनिषद् में पर्यावरण

डॉ. साधना मिश्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद का कर्मकाण्ड पक्ष पर्यावरण वैज्ञानिक तत्त्वों से परिपूर्ण है। कर्मकाण्ड के उर्द्धव पुत्र में ज्ञान और मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद् ग्रन्थ सात्त्विकता की पराकाष्ठा का प्रकाशन करते हैं। सत्त्व (सत्य भी) एवं सात्त्विकता की रीति निष्कलुष पुरुषार्थ का आधारभूत आयाम है। इस आधारभूत आयाम का नित्य नैमित्तिक प्रयोग सावित्री मन्त्र के माध्यम से लोक विश्रुत हुआ है ऊँ तत्त्व आत्मा का साक्षात्कार कराता है तो भू भुवः और स्वः तीन व्यावृत्तियाँ तीनों लोकों को आत्मसात करती हैं। इस त्रैलोक्य को उज्ज्वल सावित्र तेज से परिप्लावित करते हुए मन्त्र की प्रयोगिता अपनी बुद्धियों को निर्मल करना चाहता है। परिशुद्ध आत्मा वाले मानव ही पर्यावरण की शुद्धि में तत्पर और समर्पित हो सकते हैं।

दिये गये तथ्य का पर्याप्त भाव मन्थन करते हुए सावित्री उपनिषद् में शुद्धता एवं वैश्विक पर्यावरण की श्रेष्ठता के लिए सम्यक् विचार किया गया है।

माध्यन्दिनसंहितायां पर्यावरणचेतना

प्रो मानसिंह
पूर्व प्रोफेसर संस्कृत विभाग
रूड़की, हरिद्वारम्

सामाजिको मानसिकः प्राकृतिकश्चेति भेदैः परिवेषो विभज्यते त्रिधा। तत्र मानवसमाजसम्बद्धस्तु सामाजिको, मानवमानसविषंयको मानसिकः, प्राकृतिकत्त्वसम्बद्धश्च प्राकृतिकः। माध्यनिदनसंहितायामृषीणां त्रिविधस्यापि परिवेषस्य सम्यक् चिन्तनं समलोक्यते। ऋषिभिः समाजशान्त्यै रक्षसाममित्राणां, द्वेषमत्सरपरायणानां, कुटिलाचाररतानां, स्तेनाद्युपद्रवकारिणाञ्च दुष्टजनानां बाधनमपनोदनं विनाशनञ्च चिकीर्ष्यते, देवाश्च तदर्थं प्रार्थ्यन्ते।

अनेकेषु मन्त्रेषु शोभनस्वाथ्याय दीर्घायुष्याय धनसम्पत्त्यर्थञ्चाभिलाषोऽभिव्यजयते। एवमेव च विविधवर्णेभ्यो विविधवर्गीयजनेभ्यः सौमनसमभिव्यक्तिविषयतां नीतम्। विशुध्दो मानसिकः परिवेषस्तु सर्वाधिकं महत्त्वं भजते। माध्यन्दिनसंहितायां प्राकृतिकपर्यावरणस्यापि चिन्ता दृग्गोचरीभवती। पृथ्व्यन्तरिक्षद्युलोकानां प्रदूषणेन जाताया हिंसायाः प्रतिषेधः, जलवायुनदीसमुद्रादीनां दूषणेन समुत्पन्नाया हिंसाया निषेधः; पशुरक्षा, वृक्षाणामोषधीनाञ्च परिरक्षणं सम्यगुपदिष्टम्। इत्थं शुक्लयजुर्वेदीयायां माध्यन्दिनसंहितायामृषीणां तत्त्वदर्शिनां पर्यावरणविषयणी चेतना चिन्तना चातिसूक्ष्मा, व्यापिका, सर्वतोभद्राकाङ्क्षिणी च विद्यते।

शोधपत्रेऽस्मिन् पर्यावरणतत्त्वानां माध्यन्दिसंतिालोके समुचित मन्त्रोद्धरणपूर्वकं मीमांसा विहिता, ऋषीणां पर्यावरणचिन्तनस्य च सम्यङ्मूल्याङ्कनं कृतम्।

वेदेषु जीवनस्याधारः वायुः

हरीश चन्द्र गुरुरानी
प्रोजेक्ट फैलो, संस्कृत-विभागः
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 हरिद्वारम्

अखिलेऽस्मिन् ब्रह्माण्डे विविधानां विद्यानामाधानं वेदाःएव सन्ति। यत्र सार्वभौमिकसार्वकालिकानन्त ज्ञानराशिः प्रवाहमानो वर्तते। यत्रखलु विविधानां समस्यानां समाधानं निहितं वर्तते।

विश्वे सम्प्रति वहव्यः समस्याः उत्पन्नमानास्सन्ति तासु पर्यावरण प्रदूषण समस्याऽपि प्रभूता विद्यते। किन्नाम पर्यावरणम् ? अस्मान् परितः आवृत्यं संस्थितं तत्त्वजातन्नाम पर्यावरणम्। तत्र जल-वायु-भूमि-तेजस्-खमिति भौतिकतत्त्वारणेषु जीवनस्याधारः वायुरस्ति।

शतपथब्रह्मणे सृष्टेः मूलभूततत्त्वस्य रूपे प्राणवायोः प्रतिपादनंकृतमस्ति-**प्राणो वाऽइदं सर्वं योऽयं पवते स प्राणः।** **(शतपथा व्रा० ११.१.६.१७)** अर्थात्-यत्किमपि दृश्यते सः प्राणः यत् प्रवाहमानमस्ति तत् प्राणतत्त्वमेवास्ति। वेदेषु पवन शब्दस्य कृते वायुः वातश्च नामद्वयं प्राप्यते।

वायोः पर्यावरणेनसह अस्माकं जीवनेन सह च घनिष्ठस्सम्बन्धो वर्तते यतोहि वायुरेव श्वासपश्वास प्रक्रियायाः समेषां प्राणिनाञ्च जीवनाधारोऽस्ति। वायुना जीवनस्य निर्माणं भवति। अतः वायोः विविधानि नामनि सन्ति।

वायोःस्वरूपम्-वेदेषु वायोः विभिन्नानि नामानि प्राप्यन्ते

वायुर्भुत्वा (प्रजापतिः) प्रजानां प्राणोऽभवत् (जैमनीय ब्राह्मण-1/314) अर्थात् जैनीयब्रह्मणानुसारं प्रजापतिरेव वायुर्भूत्वा प्रजायां प्राणरूपेण विद्यमानोऽस्ति।

अयं वै वायुर्विश्वकर्मा योऽयं पवत एष हीदं सर्वं करोति।।

(श०ब्रा० ८.१.१.७)

अर्थात् शतपथब्राह्मणांनुसारं अग्निपदार्थस्य मूर्तरूपस्य निर्माणं करोति वायु तस्मिन् गतिं प्रददाति। एतदर्थं वायुः विश्वकर्मा संज्ञात्वं वर्तते।

ऋग्वेदे शुद्धवायुः विश्वभेषजोऽस्ति ऋषिभिः विश्वभेषजस्यकृते प्रार्थना कृता वर्तते

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।

(ऋग्-१०/१३७/३)

अर्थात् वायुः विश्वभेषजं वर्तते, वायुरेव सर्वान् रोगान् दूरिकृत्य औषधिमानयाति। जगतः रक्षार्थं वायुः देवानां दूतस्वरुपं परिभ्रमति, वायुरेव प्राणानां मुख्यं साधनमस्ति, अन्तरिक्षस्यः पर्यावरणस्य पोषकः, स्वास्थवर्धकः, आयुष्यवर्धकः सुखकारकश्चास्ति। शोधपत्रेस्मिन् सर्वाणि तथ्यानि विवेच्यन्ते।

TRADITIONAL KNOWLEDGE SYSTEM FOR ENVIRONMENTAL PROTECTION IN VEDIC INDIA

Dr. Ramesh C. Sharma
Professor and Head
Deptt. of Environmental Sciences
H.N.B. Garhwal University, Srinagar

Exponential growth in industrialization, technolegical expansion, use of fertilizers and pesticides, human population explosion and excessive deforestation and insatiable desire for ever-exploitation of natural resources have caused several environmental problems resulting the planet Earth inhospitable for the sustenance of life. There is a cross-cultural and international debate that the solution of these environmental problems lies with the revival of traditional Knowledge system of our ancestors. Therefore, an attempt has been made to look afresh on various contemporary environmental problems and their solution in the light of Vedic thoughts and traditions. The Vedas are the oldest source of Indian culture and traditions. The Vedic people translated the principles and prescriptions of sustainable exploitation of species and ecosystem and enjoyed a happy life of one hundred years. Over the centuries, the Vedic traditions branched out into many schools or philosophy and religious thoughts, the foundation of which guides, checks and regulates all social and religious activities. Despite tremendous upheavals and foreign subjugation, these

glorious traditions have survived thousand of years due to their dynamism and resilience. These traditions have been interpreted and re-interpreted from time- to-time in accordance with contemporary needs. The basic objective of the present contribution is to explore the knowledge of Vedic people on environment and their way to protect it, and finally to find out the relevance of this traditional knowledge of Vedic people for solving the contemporary environmental problems. The message of harmony of man with nature of Vedas comes to us with its inspiring force of guidance for the sustainable exploitation of natural resources. All life in the cosmos is interrelated, interwoven and the process of transmutation and cyclic degeneration and regeneration, of life is an accepted postulate in the Vedic view. The Bhumisukta of Atharveda is one of the oldest and the most important sources of information on the relationship of man to his environment and to his duty to protect it. In the Vedic view, sustenance of the ecological balance was regarded as the first and last duty of man, since only then the moral order of the world (Rta) can be sustained. The Vedic traditions is continuous and it imbibes in itself the way we live in and think, our individual social, religious and philosophical life as well. The tradition of Advaita Vedantic philosophy teaches us to develop a healthy balance of enjoyment and renunciation. The Vedic traditions for the conservation of various natural resources (water, forest, soil and wild life) have been interpreted in the light of modern concepts of Environmental Sciences for assessing their relevance for the protection of environment.

ECOLOGICAL AWARENESS IN VEDIC WORKS

Dr. Sachidananda Mohapatra
Head of the Deptt. of Sanskrit
Govt. College, Sundargarh, Orissa

Ecology is defined as a branch of biology that deals with the habits of living things, especially their relations to the environment. परिवेश (or पर्यावरण) is the word in Sanskrit for ecology which is defined as follows :-

वातेन मण्डलीभुताः सुर्यचन्द्रमसोः कराः।
मालाभा व्योम्नि तनुते परिवेशः प्रकीर्तितः॥ (वाचस्पत्यम्)

Environment plays a vital role in the lives of both man and animals and as well as of plants. When this environment becomes polluted either by deforestation or by heavy industrialization or by any other means, it cause ecological imbalance in the Earth. Now-a-days, the problem of ecology has become a global phenomenon as well as a great challenge for the people all over the world.

The Vedic people were well aware of this fact which can be known from the different Vedic verses. To pacify the different aspects of ecology like the earth, the atomoshphere, the water, the animals and the plants etc. the Vedic seers have prescribed SantiPathas as follews :- द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथिवी शान्तिराप: शान्तिराषधय: शान्ति: वनस्पतय: शान्तिर्विश्वेदेवा: शान्तिर्ब्रह्म शान्ति: सर्वशान्ति: शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।

The Vedic people were the worshippers of nature. The natural phenomena like the earth, water, air, fire, sun, and moon, rivers and monutains ect. are treated as vedic deities and are propitiated by them. We find a large number of invocations to these deities in Vedic suktas.

The sun gives us light and is an aspect of ecology. Because no living beings, both plants and animals can exist without sun-light. So the sun is said to be the Deelcee (vital force) of all the living beings and invoked as follows :-

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने:।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्व।। १/२५ऋ.

Likewise, वायु or clean air works like medicine in our body and is necessary for long life. The veda proclaims :-

वात् आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूँषि तारिषत् ।। (Rv.X. 1861)

The plants which are vital aspects of ecology are treated as mother. They are prayed for healthy longivity of the people. The mantra is :-

शतं वो अम्ब धामानि सहस्त्रमुत वो रुहः।
अधा शातक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ।। (Rv.X. 97.2)
ओषधी: प्रतिमोदध्वं पुष्पवती: प्रसूवरी:।
अश्वा इव सजित्वरीवीरूध: पारयिष्णव:।। (Rv.X. 97.3)

Besides these, we also find invocations to other aspects of ecology like the water, rivers, mountains, forests etc. The Vedic people, being the nature-worshippers were taking care of all the nature aspects which have much impact in our life.

Thus, it can safely said that the ancient Aryans were aware of the ecology in those days and it is our sacred duty to follow their path in propecting all the aspects of Nature to establish a healthy society free from all sorts of pollutions.

Conservation of Environment in Vedic Yuga

Seema Nirwal
Kanya Grukul Mahavidyalaya, Haridwar

In this paper I am presenting the *Conservation of environment in Vedic Yuga* and after the deep study of Vedic literature it is clear that the Vedic Aryas always worshipped nature and accepted with heart the importance of Yagya and Havana. And in Indian ethos specially in Upnishada , the earth is considered as a body of God and the heaven is the mind, the moon and the sun as eyes and sky as a heart. So, in this way to deforestation and to make what resources polluted is a kind of cruelty with that supreme power. In the same way, to make a scientific experiment in the sky is to desecrate the heart of god. The Aryas do not consider nature as only a surrounding but a form of God. It is the tradition of Aryas to worship the trees and water resources. In short they were highly devoted towards nature. So, here I am trying at my level best to reveal the value and conservation of environment in Vedic Yuga.

काव्यसौन्दर्यम्

ऋक्संहितायां ध्वनिकारोक्तमुख्यकाव्यभेदस्थितिः

डॉ० भारतेन्दुपाण्डेयः
वरिष्ठप्रवक्ता, संस्कृतविभागः
नानकचन्द-आंग्लसंस्कृतमहाविद्यालयः, मेरठम्

वेदो नाम सनातनं काव्यम्। यदि लौकिकपुरुषकृतकाव्यस्य एतावन्महिमा गीयते कविभिराचार्यैश्च, यदि च रसालंकाररीतिध्वनिवक्रोक्त्यौचित्यादिप्रस्थानेषु तदेव निधाय तैर्व्याख्यायतेऽनन्तप्रकारेण, तर्हि का कथा परमपुरुषविहितवेदविग्रहकाव्यस्य अनादिनिधनस्याक्षरब्रह्मणः। तात्पर्यमिदमस्ति यद् यावद्भिरपि सिद्धान्तैर्यावतीभिरपि विश्लेषणपद्धातिभिः साधारणमेतत्काव्यं विवेच्यते, सर्वैरेव तैर्विधिभिर्वेदोऽपि व्याख्यातुं शक्यते। तत्तत्सम्प्रदायप्रवर्तितानि निखिलान्यपि काव्यतत्त्वानि तत्र वेदेऽपि सम्पूर्णवैभववन्ति अनुसन्धातुं सम्भाव्यन्ते। प्रत्युत वस्तुत्वंत्वित्थमस्ति यत् तेषां काव्यतत्त्वानां मौलिकी स्थितिर्वेद एव वर्तते तथा च तत (वेदतः) एव तानि (काव्यतत्त्वानि तद्बीजानि वा पौरुषेयकवितासु अवतीर्य लोके शास्त्रे च प्रथां प्रापुः।

यथा विदितमस्ति यद् आनन्दवर्धनो ध्वनिकृद् द्विधा वेवेक्ति काव्यम्- प्रतीयमानप्राधान्यमयं ध्वनिकाव्यं तदप्रधान्यमयं गुणीभूतव्यंग्यकाव्यं चेति (प्रसंगतश्चित्रतापि चित्रिता काचित् तेन तस्य) दर्पणकारो विश्वनाथोऽक्षरशोऽनुसमर्थयते तम् (यद्यपि ध्वनिप्रस्थापकपरमाचार्यो मम्मटोऽपि तमेवानुधावति, तथापि तद्विहितम् अवरतादि काव्यस्यार्हति कांचित् परीक्षाम्)।

अस्तु। एतादृशः काव्यविग्रविशेषविच्छित्त्योऽपि प्राचुर्येणोपलभ्यन्ते वेदे। ततस्तासामनुसन्धानं नूनं वहु मोदावहम्। परम विपुलो भगवान् वेदो लघीयांश्चायं लेखावकाशोऽत ऋक्संहितामेवादाय ध्वनिकद् ध्वन्यादिकाव्यविभागसंज्ञाभिः तत्रत्या ऋचोऽत्रानुसन्धीयन्ते केवलाः।

वेदेषु काव्य तत्त्वानि

(छन्द एवं ध्वनि आदि के सापेक्ष में)

डॉ० कमला जोशी
रीडर अध्यक्षा संस्कृत विभाग
राज. स्ना. महा., रुद्रपुर

छन्द एवं ध्वनि आदि के सापेक्ष में प्रस्तुति :-

वेदों में न केवल आर्यों की आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक निधि ही सुरक्षित है, बल्कि इसका काव्य सौन्दर्य भी अद्भुत रोचक एवं हृदयहारी है। वेदों में तद्युगीन बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है, वेद मंत्रों की व्याख्या के लिये सर्व प्रथम ब्राह्मणों आरण्यकों एवं

उपनिषदों की रचना हुई तथा इन्हीं के माध्यम से वेदों के अर्थों का भी प्रकाशन किया गया। वेदों में काव्य तत्त्वात्मक बहुआयामी स्वरूप की जिस इन्द्रधनुषी छवि की बाँकी झाँकी देखने को मिलती है। वैसी तत्कालीन, अन्य साहित्य में नहीं दिखायी पड़ती। वेद के लक्षण से प्रारम्भ कर मंत्र उनका विनियोग, ऋषि छन्द, देवता, वेदत्रयी, वेद के पाठ, संहिता, सूक्त, उनका वर्गीकरण औपनिषद ब्रह्म विद्या, अन्यान्य सूक्ष्माति सूक्ष्म विषयों पर पर पारंपरिक विश्लेषण पाठक को वैदिक काव्य तत्त्वों के रहस्य से अवगत करा देता है।

वेदों में सामासिक भाषा का प्रगयोग प्रायः कमतर देखने को मिलता है। वेदों की भाषा में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के कारण आश्चर्यजनक संगीतात्मकता और ऋग्वेद के अनेक स्थलों जैसे- उषा सूक्त, यम-यमी संवाद सरमा-पाणि संवाद पुरूरवा उर्वशी संवाद आदि में आह्लादक काव्यात्मक सौंदर्य है।[1] यहाँ तक कि सृष्टि उत्पत्ति जैसे गंभीर विषयों को भी सौन्दर्यमयी स्वरूप दिया गया है।

वेदों का प्रत्येक स्वरूप ज्ञानमयी होने के साथ-साथ सौन्दर्याधायी भी है। पाठक वेदों को जिस भावना से देखेंगे उसका स्वरूप उन्हें वैसा ही दिखायी देगा। यदि वह उसे कृषक गान समझेगा तो कृषकों का गान और परमेश्वर की स्तुति समझेगा तो परमात्मा की स्तुति प्रार्थना ही विदित होगी। वास्तव में वेदों में इस प्रकार कहा है- ऋग्वेद छन्दोबद्ध है। निरुक्तकार ने 'छन्द' शब्द की रचना 'छेद' धातु से बताई है, जिसका अर्थ है आवृत करना। अर्थात् छन्द वेदों के आवरण है। शब्दों को विशिष्ट आवरण में बाँधे रखने वाले छन्द होते हैं, वेद मंत्रों का पढ़ते हुये ऋषि देवता और छन्दों को जानना प्रथमेव अत्यावश्यक है।[2]

वैदिक साहित्य में प्रतीक-संक्षिप्त विवेचन

डॉ० निधि सिन्हा
रीडर हिन्दी-विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.)कॉलेज, देहरादून

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (गीता-४/७)

तात्पर्य यह है कि जब-जब वैदिक सत्य विद्या अज्ञान के आवरण से आवृत्त होने लगती है तब-तब कोई न कोई शक्ति प्रकट होकर उस सत्यविद्या को राहु-ग्रास से मुक्तकर अज्ञान का समूल नाश कर देती है। 'वेद' ईश्वरीय ज्ञान है। वह ऐसी दिव्य वाणी हैं, जो देश काल इतिहास की सीमाओं में बंधकर समान रूप सें सदैव सबको कल्याण की ओर अग्रसर करती रही है। वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। उनमें निहित ज्ञान हमें निर्माण कल्याण और उत्थान की ओर

अग्रसर करता है। सत्य, न्याय और नैतिकता के पोषक, दिव्य ज्ञान से ओतप्रोत इस विशाल संग्रह को तप:पूत ऋषियों की आदर्श कृति माना जाता है। वैदिक ज्ञान और मंत्र अपौरुषेय माने जाते हैं। तप:पूत महर्षियों की दीर्घकालीन तप:साधना और आध्यात्मिक प्रेरणा के फल ही ये 'वेद' हैं। वेदों में निहित सत् चित् और आनन्द स्वरूप परब्रह्म की अनुभूति रहस्यात्मक है। इस गुह्यता के कारण ही वेदों में प्रतीकों का प्रयोग अति प्राचीन है। वेद ने स्वयं स्वीकार किया है पढ़ लिखकर भी वाणी के गर्भ को तो बिरले ही समझते हैं।[1] अन्य लोगों के लिए वाणी उस वृक्ष के समान है जो फल और पुष्प रहित है।[2]

इस प्रकार प्रतीकों का प्रयोग वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में "**ऊँकार**" का उल्लेख है, जो वेदों का सार है। कठोपनिषद् में कहा गया है। कि समस्त वेद जिस पद (परमात्मा) का वर्णन करते हैं जो सम्पूर्ण तपों की प्राप्ति का साधन है, जिसकी इच्छा से लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुम्हें संक्षेप में वर्णन करता हूँ। कठोपनिषद् के एक अन्य मन्त्र में यह प्रणवात्मक अक्षर ब्रह्मस्वरूप ही है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ (कठोपनिषद्-१/१२/१६)

सन्दर्भः-

1 ऋग्वेद 10/71/4
2 ऋग्वेद 10/71/5

स्फोटवाद : काव्यशास्त्रीय ध्वनि-सिद्धान्त का आधार

डॉ० निरुपमा त्रिपाठी
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
कानपुर विद्यामन्दिर महिला (पी0जी0) महा0, कानपुर

भारतीय मान्यता के अनुसार अखिल ज्ञानराशि वेदों में ही समस्त विद्याओं का मूल प्राप्त होता है। अपौरुषेय वेद सभी प्रकार के मानवीय दोषों से सर्वथा रहित हैं। अतः वेदोक्त किसी भी विद्या की सिद्धि या सार्थकता हेतु अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। व्याकरण का मूल भी वेदों में ही विद्यमान है। आचार्य भर्तृहरि और राजशेखर आदि व्याकरण को स्मृति मानने के पक्षधर हैं।

किसी भी शास्त्र के पण्डित के लिए व्याकरण का ज्ञान होना अनिवार्य है। वस्तुतः साहित्यशास्त्र का तो 'पदवाक्यप्रमाणक्य' होना प्रसिद्ध ही है। आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ में व्याकरण की उपयोगिता को विस्तार से वर्णित किया है। इनके अनुसार व्याकरण से सभी विद्याओं की पुष्टि होती है। आचार्य भर्तृहरि के अनुसार भी शब्दों का तत्त्वज्ञान व्याकरण के बिना नहीं हो सकता।

व्याकरण ने काव्यशास्त्र के अनेक सिद्धान्तों पर अपना प्रभाव डाला है। किन्तु प्रमुख रूप

में काव्यशास्त्र का ध्वनि सिद्धान्त तो व्याकरण के स्फोटवाद का ऋणी है। आचार्य आनन्दवर्धन 'प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति......।।' का उद्घोष करते हुए अपने ध्वनि सिद्धान्त का आधार स्फोटवाद को कहते हैं। आनन्दवर्धन के प्रबल समर्थक आचार्य मम्मट भी अपने ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में 'बुधैर्वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरुपव्यङ्ग्यवव्ययञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि..।' इत्यादि भावों से आनन्दवर्धन की मान्यता की ही पुष्टि करते हैं। व्याकरण आचार्य शब्द की नित्यता के प्रसङ्ग में स्फोट सिद्धान्त की विवेचना करते हैं। इस सिद्धान्त का प्रारम्भ कब हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। स्फोट का व्युत्पत्तिनिमित्तक अर्थ है ऐसा शब्द जिसमें अर्थ प्रस्फुटित हो। महाभाष्यकार के अनुसार शब्द के दो रूप होते हैं स्फोटरूप एवं ध्वनिरुप। ध्वनि स्फोट का व्यञ्जक होता है। स्फोट स्वरूपतः अपरिवर्तित रहता है। कालादिकृत भेद का उसमें अभाव होता है। वृद्धि एवं ह्रास आदि धर्म केवल ध्वनि के होते हैं। आचार्य भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीय में स्फोट के समस्त पक्षों का विवेचन किया है। इनके अनुसार ध्वनि शब्दों से व्यङ्ग्य स्फोटरूप शब्द अर्थ बोध कराते हैं।

आनन्दवर्धन, मम्मट आदि ध्वनिवादी आचार्य ऐसे काव्य विशेष को ध्वनि की संज्ञा देते हैं जहाँ अभिधा से बाधित अर्थ तिरस्कृत हो जाता है (दब जाता है) तथा प्रधान्येन व्यङ्ग्यार्थ की ही प्रतीति होती है क्योंकि उसी में सहृदयहृदयाह्लादकता है। इसी कारण मम्मट ऐसे काव्य को उत्तम काव्य की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार ध्वनिवादी आचार्यों की मान्यता के अनुसार ध्वनि का संक्षिप्त अर्थ होगा व्यङ्ग्य किन्तु पारिभाषिक रूप में उसका वाच्यातिशायी होना अनिवार्य है। तभी वह वाच्य की अपेक्षा अतिरमणीय होगा।

वेदों-काव्य तत्वों में रस प्रवाह

डॉ० रमेश चन्द्र मुरारी
वरिष्ठ प्रवक्ता
श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकेडमी, द्वारका

सम्पूर्ण सृष्टि की रचना तथा उसका संचालन किसी न किसी व्यवस्थित नियमों में आबद्ध है। वे नियम उस जगत् नियन्ता परमात्मा के अधीन हैं जिसके स्वासों से "वेद" की उत्पत्ति हुई है। कभी वह परब्रह्म अपने अंश रूप में मानव देह धारण कर उन नियमों का स्वयं पालन करता हुआ आनन्द लेता है। जिसमें वह विचार करके सृष्टि पैदा कर, मानव को कुछ देना चाहता है वही दी गई वस्तु है यह "रस"।

रस्यते आस्वादते इति रसः रस को आस्वाद से जाना गया है रसं जानाति पण्डितः (ऋग्वेद 1/91/3) यह रस वेद, वैदिक संहिताओं, वेदाङ्गों में व्याप्त है। वेद के उन मर्मों, ऋचाओं तथा उन

महामनीषियों की वाणी में यह सदैव रहता है। यजुर्वेद में कहा गया है आ विवासन्ति कवयः सुयमाः (यजु सं० 7/35) यह वाणी रूपी कामधेनु रस की मधुरता जीवन में देती रहती है। वह ईश्वर रसपूर्ण है पूर्णमदः पूर्णमिदम् इत्यादि जहाँ से वैदिक क्रम ऋग्वेद का प्रारम्भ हुआ वह ''अग्निमीळे'' (1/1/1) समस्त काव्य गुण व रसों को समाये हुए है।

वेदाऽहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेतिनाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनायः। (यजुर्वेद ३१/८)

इस जगत् की अद्‌भुत रचना और उसमें शृंगारादि रसों का प्रवाह सत्वगुणी, रजोगुणी को भी आस्वाद कराता रहता है वैदिक साहित्य के साथ ही लौकिक साहित्य की विधाओं में कहीं तो अखंड, रसमय, सत्व, ब्रह्मास्वादु सहोदरः कहीं ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः'' कहीं चमत्कार करने वाला 'रसे सारश्चमत्कारः' रूप में माना गया है। यह वेदों से निकला रस उन मानसपुत्रों, महाकवियों, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, कालीदास, आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त से विश्वनाथ तथा पंडितराजजगन्नाथ तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। इसी रस की प्रधानता का अवलोकन कर नाट्याचार्य भरत ने इसी की विशद व्याख्या सूत्रात्मक ढंग से करके आचार्य, शंकुक, अभिनवगुप्त, भट्टनायक तथा भट्ट लोल्लट को इस ओर प्रेरित किया होगा।

रीतिः

डॉ० विद्यानन्द झा
रीडर, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
श्री रणवीर परिसर (जम्मू)

रीतेः किं स्वरूपं किं महत्वं, काव्ये कीदृशं स्थानमित्यादिविविधाविषयमवलम्ब्य प्रारम्भादेव अलङ्कारशास्त्रे अनेकविधो विचारः समालोचक विचक्षणैः कृतः। ऋग्वेदे मार्गधारागत्याद्यर्थेषु प्रयुक्तात् रीतिशब्दात् ''नाट्यशास्त्रे'' नानादेशवेषभाषाचाराद्यर्थे प्रयुक्तात् प्रवृतिशब्दाच्च प्रेरणामादाय आचार्यः अलङ्कारशास्त्रे मार्गप्रस्थान रीत्यादयः शब्दा व्यवहृताः। भोजराजः अस्य सम्बन्धे कथयति

वैदभीर्दिकुतः पन्थाः काव्ये मार्ग इतिस्मृतः।
रीङ्गताविति धातोः सा व्युत्पत्या रीतिरुच्यते॥ (सरस्वीकण्ठाभरणे-२/५१)

भोजराज प्रतिपादितदिशा रीयन्ते परम्परया गच्छन्ति अनया इति व्युत्फ्त्या दैवादिक रीङ्गतौ धातोः करणे क्तिनि निष्पन्नः रीतिशब्दः वैदर्भादिमार्गस्य बोधको भवति।

नीलकण्ठदीक्षितः रीतेरुपयोगितासम्बन्धे कथयति नहिइति वृत्तमात्रनिर्वाहेण कवेरात्मपदलाभः। चमत्कृतिं वैशिष्ट्यं रम्यत्वं आसादयितुं रीतिरनिवार्या भणितिभङ्गी एव कवेः वैशिष्ट्यं साधयति। रीतिः कलात्मिकयाः प्रवृत्तेर्मूलम्।

यथा
सत्यर्थे सत्सु शब्देषु सति चाक्षरसम्बरे।
शोभते यं विना नोक्तिः सपन्था इति घुष्यते।।

अर्थात् रमणीयाऽभिव्यक्तिः का काव्यम्। रमणीयत्वं च काव्ये चमत्कृतिम् आदधाति। रमणीयत्वस्य मूलं चरीतिः।

ऋग्वेद में शैली गाम्भीर्य

डॉ० (श्रीमती) बीना विश्नोई
प्रवक्ता संस्कृत - विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

हमारे वैदिक युग के कवियों ने मानव जीवन को अंशतः नहीं स्वीकार किया उसे समग्र रूप में देखा। मानव पिता हैं, पुत्र है, भ्राता है, स्वामी है, कृषक है, सेनानी है, व्यवसायी है, छात्र है, गुरु है और ऋषि और जो भी हो सकता है उसकी समस्त सीमा ऋग्वेद में निर्धारित की गई है। नास्तिक असुर, राक्षस, पिशाच आदि लोगों के पक्ष एवं कार्यों से ऋग्वेद के ऋषि असावधान नहीं है। साथ ही संघर्षशील जगत् में मानव की आयु निर्धारित है। इतने अल्प समय में मानव का अपनी जिज्ञासा का उपशमन भी है एवं परम पद अथवा शान्ति की प्राप्ति भी करनी है। इस हेतु ऋग्वेद के ऋषियों ने अपने प्रतिपाद्य विषयों को नाना प्रकार से विभक्त किया एवं विषय के अनुरूप प्रतिपादन की शैली अपनायी।

कहीं कथोपकथन के द्वारा विषय की प्रतिपादन शैली को प्रसन्न पदावली में अभिव्यक्त किया गया। सरमा पणि के संवाद, यम यमी सूक्त, पुरूरवा उर्वशी के प्रश्नोत्तर, वामदेव एवं अदिति के संल्लाप, अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के कथोपकथन आदि के इस प्रकरण के सुन्दर उदाहरण है। इन्द्र की दूती सरमा जिस कठोर एवं निर्भीक वाणी में इन्द्र का सन्देश सुनाती है, उसी के चारु उत्कर्ष हमें रावण के प्रति हनुमान के वचनों में दृष्टिगोचर होता है। दूत निर्भय स्वामिभक्त, राष्ट्रप्रेमी एवं आत्मवादी होना चाहिए। इसका सुन्दर उदाहरण सरमा ने निभाया है यम यमी सूक्त में लोकज्ञ एवं शास्त्रज्ञ बन्धु अपनी सीमा एवं मर्यादा की रक्षा करता है। साथ ही अपनी बहन को दैवी विधानों के प्रति नियन्त्रित रहने के लिए उपदेश देता है। पुरूरवा एवं उर्वशी के संवाद से नारी की सीमा निर्धारित कर दी गयी है। नारी लोक व्यवस्था के लिए सब कुछ है पर मानव सीमा से परे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में यह चंचल पाथेय है। माता अदिति ने स्वयं अपने पुत्र इन्द्र के महान् माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा है कि इन्द्र की समता कोई नहीं कर सकता जहाँ माँ का अपने पुत्र के प्रति इतना स्नेह एवं विश्वास है ऐसी मां पांच पुत्रों की मां बन कर अपने को सुपूजित करती है, ऐसे स्थलों पर ओज पूर्ण शैली का सुगम निदर्शन है। इस प्रकार ऋग्वेद में चारु शैली, सहज शैली प्रभविष्णु शैली, ओजस्विनी शैली, अलंकार शैली, समास शैली, व्यास शैली व उदात्त शैली का

सुन्दर समावेश मिलता है। ऋग्वेद के [illegible] मन्त्रों में जहाँ भाव शैली व कला नैपुण्य पर ध्यान दिया गया है वहाँ पर जीवनोपयोगी शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की गई है।

ऋग्वेद के ऋषियों ने अवसर एवं विषय की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए भी भाषा एवं शैली का चुनाव किया है। रचना कौशल की विशिष्टता के कारण ऋग्वेद के छोटे छोटे अध्याय सूक्त (सु·उक्त) अथवा शोभन कथन कहलाये हैं। इसी कारण ऋग्वेद की भाषा अब तक सहृदयों एवं क्रान्त भावनाओं को उत्तेजित एवं सुसज्जित करती है।

ऋग्वेदे वक्रोक्तिचिन्तनम्

डॉ० हरिशंकर पाण्डेय
अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम - विभाग:
संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय:, वाराणसी

सामान्यवचनादण्यतिरिक्तरसानुभूतिसंचारणसमर्थोक्ति: वक्रोक्तिरिति अवधारणीयम्। क्रान्तधर्मलसित: विलक्षणप्रतिभाविशिष्टश्च कवि: स्वकीयवाणीषु चमत्कारमादधान: सामान्यवचनातिरिक्तोपमादि अलंकार शब्दवैशिष्ट्य पर्यायचारुत्वसम्पन्नशब्दानामुपयोगं कृत्वा सहृदयहृदयेषु चमत्कारमुपस्थापयति। सा विशिष्टगुणसंवलितोक्तिरेव वक्रोक्ति:। वैदग्ध्यभणितिभङ्गी वक्रोक्ति:। वक्ति कुन्तकाचार्य: वक्रोक्ति: प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी वैदग्ध्यभङ्गीभणिति:। विदग्धं विदग्धं भाव: कविकर्मकौशलं तस्य भङ्गीविच्छिति: तया भणिति: विचित्रेणवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते। वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितितिरुच्यते (वक्रोक्ति जीवितम् 1/10) शास्त्रादिषु प्रसिद्धसामान्यशब्दार्थभिन्न असामान्य प्रयोगैव वक्रोक्ति:। सा तु काव्यनिर्माणकौशलस्य शोभा। अतिक्रान्तप्रसिद्धव्यवहारसरणि प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकी वैचित्र्यमिति वक्रोक्ति:

सा वक्रोक्ति - वर्णविन्यास पदपूर्वार्द्धपरार्द्धवक्रतादि भेदेनैकविधा। रूढ़ि पर्याय विशेष्य विशेषण क्रिया उप चारवक्रताद्यवलम्ब्य ऋग्वेदस्य प्रथम सूक्तस्य वक्रोक्तिविचारणीयमिति। यथा प्रथमो मन्त्र:

अग्निमीळेपुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं। होतारं रत्नधातमं।। (ऋग्वेद 1/1/1)

अत्र अग्निशब्द: विशेष्यपर्यायवक्रतयोरुदाहरणम् ईळे इतिक्रियाव क्रताया: शेषं तु विशेषणवक्रतायाश्च। अग्निशब्दस्य साभिप्रायविशेष्यत्वात्: परिकरांकुर: पुरोहितादिशब्देषु साभिप्रायविशेषणत्वात् परिकरालंकारश्च। अग्ने समृद्धिवर्णनत्वादुदात्तालंकारोऽप्यत्र। गायत्री छन्द:। आदौ रगण प्रयोग: अथ शब्दस्य प्रथमोच्चारणम्।

अग्निशब्द: पर्यायवक्रतावयारुदाहरणं वैश्वानरादि पर्यायेभ्यार्थ वैलक्षण्यत्वात्। भ्वादिगणीय अगि गतौ धातौ: अङ्गेनलोपश्च (उ. सूत्र) इत्यौणादिकेन निनलोपश्च अग्नि इति। सर्ववरेण्योऽग्नि: सर्वपूज्यत्वात् सर्वव्यापकत्वाद्वा। गत्यर्थका: ज्ञानर्थकाश्चेति। ज्ञानात्मकोऽग्नि: सर्वप्रकाशकत्वात्

प्रसिद्धभाषाचार्यः श्रीयास्क [illegible] निर्वक्ति ' अग्नि अग्रणी भवति अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते। सर्वकार्यप्रयत्नादिषु अग्नि: आत्मानं अग्रगामित्वं करोति। आचार्य दुर्गा एवं परिभाषति सर्वेषु अर्थेषु अयमात्मानं अग्रं नयति कर्मफलं वा अग्रे नयति। कर्माधिपत्ये व्यवस्थित: इत्यसौ अग्रणीर्भवति मुख्य:। यथा श्रुति अग्निर्हि देवानां सेनानी अङ्गं नयतीति सन्नममान:। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीवि। न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्य: आख्यातेभ्य: जायते इति शाकपूणि: 'इतात्' अक्तात् दग्धात् वा नीतात् स खल्वेते रकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नी: परस्तस्यैषा भवति। इत्थमग्निशब्दस्याद्यप्रयोगेन मंगल ज्ञान सर्वव्यापक सर्वप्रकाशक सर्वहितकारक सर्वसमर्थतत्त्वस्यावबोधोऽवधारणं वा (भासति) माधुर्यगुणविलसित रसोद्भावनासमर्थाहलाद्यकमनीयबिम्बस्य ग्रहणमपि अवधारितमस्ति आद्याकारोच्चारणेण सर्वाव्यापकसर्वशक्तिसम्पन्नस्याभ्यर्थनमपि स्वीकृतमस्ति यतोहि अक्षराणामकारोऽस्मि 'अ वै सर्वावाक्' अकारो परमब्रह्मेति श्रुति:।।

एवं सहृदयहृदयाहलादकवक्रोक्तिप्रयोगदिशा शोधनिबन्धोऽयं निबन्धित:। विस्तरेण पर्याय विशेषणक्रियोपचारवक्रतानां अग्निमीळे इति सूक्तदृशा विवेचनं करणीयमिति।

वैदिक वाङ्मय की काव्यशास्त्रीय दृष्टि

बैकुण्ठ नाथ शुक्ल
शोध छात्र , संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वैदिक वाङ्मय समस्त ज्ञानराशि का चूडान्त निदर्शन है। साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से भी वैदिक वाङ्मय की गुणवत्ता असन्दिग्ध है। काव्यात्मक सौन्दर्य के सन्दर्भ में वेदों के मूल्याङ्कन की प्रक्रिया तो निरुक्त से ही प्रारम्भ दिखलायी देती है, किन्तु विगत अर्धशती में यह अधिक तीव्र हुई है। विद्वानों की यह मान्यता सुदृढ़ होती जा रही है कि वेद स्वयं काव्यरूप हैं और उनमें सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। काव्य सौन्दर्य के आधायक रस, भाव, गुण, रीति और अलंकार प्रभृति सभी तत्त्व मूल रूप से वेदों में पाये जाते हैं। इन सभी का क्रमिक एवं सूक्ष्म निरूपण आवश्यक है।

रस-निष्पत्ति और भाव-वैभव :-

नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की वैदिक उपजीव्यता को उद्घाटित करते हुए कहा है

> **" जग्राह पाठयमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।**
> **यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।"**

अर्थात् ऋग्वेद से संवादों का, सामवेद से गीतों का, यजुर्वेद से अभिनयों का और अथर्ववेद से रसों का ग्रहण कर नाट्य रचना सम्पन्न हुई। पुरुरवा और उर्वशी के संवाद में विप्रलंभ श्रृंगार

के अनेक हृदयद्रावक प्रसंग सन्निहित हैं। उर्वशी पुरुरवा से कहती है।

"उपप्तातम वसतेर्वयो रथा रिणन्त्वा भृगवो मन्यमानाः।
पुरुरवः! पुनरस्तं परेहि आ मे मनो देवजनाः अयान्त्स्युः॥"

प्रणय प्रसंग में इससे बढ़कर और क्या त्रासदी हो सकती है कि प्रिय और प्रेयसी दोनों एक दूसरे की मनोदशाओं से परिचित हैं। एक दूसरे के सामने खड़े हैं, किन्तु विचित्र विडम्बना है कि एक दूसरे के प्रणय पाश में आबद्ध नहीं हो सकते।

जहाँ शब्द शक्तियों का प्रयोग है वैदिक वाङ्मय में अभिधा का प्राधान्य है चूँकि काव्य में अभिधा का विशेष महत्त्व नहीं होता अतः स्थान स्थान पर ऋषि कवि ने लक्षण का आश्रय लिया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में लाक्षणिक प्रवृत्ति को निरुक्तकार तक ने इंगित किया है।

"बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि" (७/२४)

'शृणोत ग्रावाणः आदि प्रयोग लक्षणा के उदाहरण हैं। जहाँ तक व्यञ्जना की बात है, वैदिक वाङ्मय में उसके अस्तित्व को मीमांसकों ने मान्यता नहीं दी है।

अलंकारों में उपमा और रूपक आदि का प्राचुर्य स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। उपमा का वेद के सन्दर्भ में सर्वप्रथम विवेचन यास्काचार्य ने निरुक्त में किया है

"ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा अप्रख्यातं वा उपमिमीते"

(नि. ३/३/१३)

उपमा के पश्चात् सर्वाधिक प्रयोग रूपक अलंकार का हुआ है। इसका सर्वाधिक सुन्दर उदाहरण है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥"

(ऋग्वेद १/१६४/२०)

ऋग्वेद में विविध रस

डॉ. डॉली जैन
प्रवक्ता-संस्कृत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ ,टोंक, राजस्थान

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का नितान्त गौरवपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता का भव्य तथा विशाल प्रासाद श्रुति की दृढ़ आधारशिला पर ही प्रतिष्ठित है।

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार वेद सब सत्य विद्याओं के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। इसी दृष्टि से साहित्यशास्त्र के मूल तत्त्वों का वेदों में अन्वेषण किया जाता है। काव्य सौन्दर्य के

आधायक विविध रस भी वेद में पाए जाते हैं। यथा इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति में करुण रस अविर्भूत होता है। इसमें स्थायी भाव शोक होता है।

''इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
शोकोऽत्र स्थायिभाव -- साहित्यदर्पणम् -३/२२२

ऋग्वेद में इस रस का अनेकत्र उल्लेख है, यथा कोई नारी अपने पति की मृत्यु पर शोकविह्वल होकर शव के निकट बैठी है। उसके कुटुम्बी उसे समझा रहे हैं कि हे नारी! तू जीवित लोगों को लक्ष्य करके उठ खड़ी हो।

तू तो इस निष्प्राण के पास है। उठो! पाणिग्रण करने वाले तथा पालक पति की सन्तान को लक्ष्य करके उसके साथ रह :

''उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेपमुप शेष एहि
हस्तग्राभस्य दिग्धिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ।। ऋग्वेद -१०/१८/८

यहाँ स्थायी भाव शोक है। मृत पति आलम्बन है। शोकाभिभृत होना अनुभाव है। तथा अचेत हो जाना व्यभिचारी भाव हैं। इनसे उत्पन्न रस करुण है।

इसी प्रकार अन्य रसों के उदाहरण भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। इसके आधार पर कहा जा सकता है। कि वेद स्वयं काव्य रूप हैं और इसमें काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है

वैदिक मंत्रों में अलङ्कार

डॉ० जयप्रकाश नारायण
प्रवक्ता, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
लखनऊ

वैदिक साहित्य केवल भारत का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार का सर्वप्राचीन साहित्य है। वैदिक साहित्य की रचना भारत के प्राचीन कवियों द्वारा की गई है। यद्यपि परम्परागत मान्यताओं के अनुसार भारतीय दार्शनिक मीमांसक, नैयायिक और वेदान्ती वेदों को अपौरुषेय मानते हैं तथा आधुनिक युग के स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी इस मत का समर्थन किया है।

वेदों को भारतीय साहित्य का आधार माना जाता है अर्थात् परवर्ती संस्कृत में विकसित प्रायः समस्त विषयों का स्रोत वेद ही है। सरस साहित्य की दृष्टि से भी वेदों का स्थान महत्वपूर्ण है कविर्मनीषी परिभूः स्व यम्भूः आदि वेदवाक्यों में वैदिक, ऋषियों को ही कवि माना गया है और समग्र संसार का देव काव्य कहा गया है- पश्य देवस्य काव्यम्।

वस्तुतः वेदों के मंत्रद्रष्टा ऋषि इस मानव सृष्टि के सबसे पहले कवि थे। वेदों में स्थल-स्थल पर काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ मिलती है। काव्य के क्षेत्र में उषा देवी की रमण्सीय शोभा का, देवताओं के स्वरूप का वर्णन में, मानवीकरण का उपमादि अलंकारों के प्रयोग का तथा भाषागत प्रवाह का विन्यास ऋग्वेद की विशिष्टता है। वैदिक ऋषियों की वाणी में उपमा अलंकारों का गुम्फन बड़ी सहजता के साथ मिलता है। ऐसा लगता है कि वैदिक ऋषियों की वाणी के माध्यम से कविता के अवतरण के साथ ही उपमा अलंकार भी अवतरित हुआ। उपमा अलंकार यहां अपने सर्वोत्कृष्ट एवं मार्मिक रूप में देखा जा सकता है। अलंकार विधान के प्रति वैदिक कवि जागरूक थे। यहाँ तक कि वैदिक 'अरंकृत' शब्द अलंकार का ही मूल रूप समझा गया है। ध्वन्यालोक में आचार्य आनन्दवर्धन जिसे 'अपृयग्यत्न निर्वत्य' कहते हैं। वास्तव में अलंकार वैदिक कवियों की रचनाओं में सहजभाव से अनुस्यूत प्रतीत होते हैं। उनके विमोचन से उनकी वाणी अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी है। न केवल उपमा और रूपक अपितु अन्य अलंकार जैसे अतिशयोक्ति व्यतिरेक, समासोक्ति आदि भी वहाँ उपलब्ध होते हैं। उपमा अलंकार की छटा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः॥

(ऋ०१/१२४/७)।

वैदिक छन्दः शास्त्रार्थ परम्परा

टेकचन्द मीना
शोध छात्र
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्राचीन तथा आधुनिक विद्या के क्षेत्र में संस्कृत साहित्य का स्थान सर्वविदित है। संस्कृत की आधारशिला वैदिक वाङ्मय है। वेद का महत्व केवल मंत्रों तक ही सीमित नहीं है, अपितु विभिन्न शास्त्रों के उत्स के रूप में भी है। प्राचीन काल में जब लेखन विद्या का आविष्कार नहीं हुआ था, तब वेद की इन विशेषताओं को बचाकर रखना कठिन कार्य था। अतः श्रुति और स्मृति परम्परा का विकास हुआ, जिसके अन्तर्गत वैदिक मंत्रों को गुरु के श्रीमुख से बार-बार सुनकर शिष्य यथारूप उसे अपने अन्तस् का विषय बनाता था। इस प्रकार यह वैदिक ज्ञान अक्षुण्ण रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाता था और यह प्रक्रिया हजारों वर्षों तक चलती रही जब तक लेखन कला का विकास नहीं हो गया। इस प्रक्रिया में अनेक शास्त्रों का विकास हुआ जिसके माध्यम से श्रुति-स्मृतिगत वैदिकशास्त्र का ज्ञान,

उच्चारण तथा अर्थ किसी भी रूप में भ्रष्ट न हो, यह सुनिश्चित किया जाता था। छन्छ शास्त्र इसी प्रक्रिया का एक वैज्ञानिक पहलू है। इसलिए वेद के अर्थावगम में साक्षात् उपकारक षड्ङ्गों में छन्द का महत्वपूर्ण स्थान है।

छन्द शास्त्र के उदय का इतिहास यथार्थतः बतलाना जटिल समस्या है परन्तु सम्बन्धित शास्त्र ग्रन्थों में अनेक प्राचीन तथ्यों के आधार पर छन्द शास्त्रीय युग का यत्किञ्चित् परिचय प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक छन्द शास्त्रियों का सामान्य परिचय तथा उनका योगदान यथातथ्य निरूपित किया जाएगा।

छन्दः शास्त्राचार्य परम्परा

डॉ० प्रकाश चन्द्र पन्तः
शिक्षाचार्यच्छात्रः
श्रीलाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली

अखिलेऽस्मिन् जगतीतले वेदानां वैशिष्ट्यं को नाम न विजानाति। सुविदितमेवास्ति तत्र भवतां सरस्वती समाराधन तत्पराणां विदुषां यद् ऋग्यजुःसामाथर्वणाख्येषु चतुर्षु वेदेषु सर्वाः सत्य विद्याः सन्तीति भारतीयानामेव नहि सम्पूर्ण विश्वस्य विश्वासो वर्तते। वेदेष्वेव मानव जीवनोपयोगीज्ञानविज्ञानं कला वा मूलरूपेण वर्तते। वेदेषु सर्वमपि ज्ञानं मंत्ररूपेण विद्यते। तेषां मन्त्राणां ज्ञानार्थं षड् वेदाङ्गानि विलसन्ति। अतएव वेदाङ्गानामपि महत्वं स्वयं सिद्धम्।

छन्दो नाम तावत् वेदाङ्गेष्वन्यतममिति, यतोहि वेदमन्त्रैः सह छन्दसां घनिष्ठः सम्बन्धो भवति। रुचिरा, लययुक्ता, श्रुतिप्रिया हि वाणी छन्दो नाम्नाऽभिधीयते। छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः। तत्र भवता यास्काचार्येण छन्देति शब्दस्य व्युत्पत्तिः- छद् आच्छादने, आवरणे वेति कृता वर्तते।एतरेयारण्यके निगदितमस्ति यत्- यदस्मायमान् पापात् वारयति रक्षति तदेव छन्दः छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात् कर्मणः इति छन्दः।'' अतः छन्दः शास्त्रस्यापि महत्वं गौरवायते।

अस्य शास्त्रस्य प्राचीनमभिधानं छन्दोविचिति वर्तते। अस्यार्थो भवति सो ग्रन्थो यस्मिन् छन्दसां विशेषरूपेण चयनं, सङ्ग्रहो वा भवति। अस्याभिधानस्य प्रयोगः कौटिल्यस्यार्थशास्त्रे समुपलभ्यते तद्यथा - शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तश्च्छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि (कौ0अ0शा0 1-3) इतोप्यस्यछन्दोऽनुशासनम्, छन्दोविवृत्तिः, छन्दोमानप्रभृति नामानि सन्ति।

छन्दःशास्त्र ज्ञानं वेदलोकरुभयोः कृते परमावश्यकं वर्तते। प्रत्येकं वैदिकमन्त्रस्य कृते

छन्दोज्ञानं भवत्यावश्यकम्। वेदमन्त्राणामुच्चारणार्थं तेषामर्थबोधाय च छन्दोज्ञानं नितान्तमावश्यकमिति। छन्दो वेदपुरुषस्य पादस्थानीयो वर्तते। यथा पद्भ्यामेव पुरुषस्य गतिस्थितिर्वा भवति, तथैव वेदोऽपि छन्दसामाधारेण तिष्ठति, यतोहि निखिलोऽपि वेदः छन्दोमयो विग्रहो वर्तते। उक्तमप्यस्ति तत्र पाणिनीय शिक्षायाम् छन्दः पादौ तु वेदस्य। अनेन छन्दः शास्त्रस्य महत्वं स्वयं सिद्धं भवति।

वेदों में रस का स्वरूप

कर्मानन्द आर्य
शोध छात्र, हिन्दी विभाग
गु0का0 विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सम्पूर्ण विश्व का समग्र ज्ञान वेदों में मूल रूप से विद्यमान है। जिस भांति पतित पावनी गंगा गोमुख से अनादि काल से पतितों का उद्धार करते हुए सागर में जा मिलती है, ठीक उसी प्रकार से परमात्मा का अमर ज्ञान वेद सृष्टि के आरम्भ से आज तक अपनी रसमयी धारा की अजस्र ऊर्जा से महामानव का निर्माण करता आ रहा है। वेद में जब हम **'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'** को अन्वेषित करने का प्रयास करते हैं, तो वैदिक साहित्य सम्पूर्ण रूप से कसौटी पर खरा उतरता है।

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत तथा शान्त आदि रसों की प्रस्तावना में वैदिक साहित्य विश्व के सम्पूर्ण लौकिक और अलौकिक साहित्य में सरस और चमत्कार पूर्ण है। वैदिक साहित्य में सौन्दर्य की विवेचना करने के लिए वैदिक ऋषियों ने रस, छंद, एवं अलंकारों की उद्भावना की थी। वेदों की प्रत्येक ऋचा में आनन्द रूप रस की धारा प्रवाहित है।

विभिन्न रसों की व्यंजना निम्न रूपों में वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होती हैं -

१. **हास्य रस** : स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं यो न विजानात्यर्थम्'

अर्थात् वेद रटकर जो अर्थ नहीं जानते वह गधे की तरह लदे है। वे चूल्हे में रखे हुए ईंधन से दाल पकाना चाहते हैं, जिसमें आग नही लगी है।

२. **करुण रस** : निष्ट्वक्तासश्चिव दिन्नरो भूरितोका वृका इव।
विध्यस्यन्तो बबाशिरे शिशिरं जीवनायकं।। (ऋग्वेद)

अर्थात् कपडे पास ना होते हुए भी जो गरीब गृहस्थ और जिनके बहुत से बाल-बच्चे है वे जाडे से कांपते हुए कराह रहे है जैसे भेड भेडिया के सामने गिडगिडाती है।

३. **वीभत्स रस** : लोमभ्यः स्वाहा। त्वचे स्वाहा। लोहिताय स्वाहा। मेदोभ्यः स्वाहा

मांसेभ्यः स्वाहा। स्नावभ्यः स्वाहा। अस्थिभ्यः स्वाहा। मज्जभ्यः स्वाहा। (यजुर्वेद अ. 39)

४. **अद्भुत रस** : 1. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथर्व
2. स नो बन्धुर्जनितां स विधाता। ऋक्.

५. **शान्त रस** :

1. कस्मै देवाय हविषा विधेम।
2. त्र्यंबकं यजामहे। ऋक्. 7/59/12
3. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। ऋक्. 5/82/5

वैदिक सूक्तों में काव्यतत्त्व

डॉ० निहारिका पटेल
प्राध्यापिका
एस0बी0आर्टस कॉलेज, अहमदाबाद

वैदिक सूक्तों में काव्यतत्व प्रायः ऋग्वेद के सूक्तों में सविशेष पाया जाता है। ऋग्वेद की प्राचीनता देखते हुए कहा जा सकता है कि मानव जाति की आदी कविता वेद में छुपी है। अलवत वैदिक सुक्तों में मिलती कविता Primitive Poetery है।

प्रस्तुत लेख में भिन्न भिन्न देवताओं और पृथ्वी को मद्देनजर रखते हुए रचित सूक्तों द्वारा देवताओं के चरित्रों के साथ प्राकृतिक घटनाओं का जो संकलन किया गया है वह वतानेका प्रयास किया है। इन घटनाओं ने पीछे से अवतारकथा का स्वरूप धारण किया। कतिपय सूक्तों में स्तोत्र काव्य के लक्षण पाये गये हैं। जैसे वैदों में कर्मकाण्ड, संग्राम, सामूहिक प्रार्थनाओं में समूहगान देखने को मिलता है। अक्षरमेल छन्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है यथा गायत्री, त्रिस्टुभ्, जगती, अनुष्टप् इत्यादि। वैदिक सूक्तों में अलंकार का सहजरूप से ईस्तेमाल किया गया है यथा सहसः पुत्रः की जगह सहसः सुनुः, कन्या दिवः की जगह दिवो दुहिता शब्द प्रयोग किया गया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा स्वभावोक्ति अंलकारों का पठन भी किया गया है।

ऋक्संहितायां ध्वनितत्त्वम्

डॉ० (श्रीमती) प्रीति सिन्हा
रीडर, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेदवाङ्मयं भारतीयसंस्कृतेः कालजयि सार्वभौमिकं प्राचीनतमञ्च। एतत् कर्मकाण्डज्ञानकाण्डगतविषयाणां प्रतिपादनेन एकतः सामाजिकजागरणस्य पुरुषार्थचतुष्टयमहत्त्वस्य च परिचायकमपरतस्तु दिव्यकाव्यमाध्यमेन[1] रसध्वनिरतिगुणालङ्कारादिकाव्यशास्त्रीयतत्त्वानामुत्कर्षस्याप्युदाहरणम्। अत एव एतादृग्व्यापकदृष्टिसमन्विता ऋषयः स्वकीयक्रान्तदर्शित्त्वाद् द्रष्टार उच्यन्ते, न तु कर्तार इति। क्रान्तदर्शित्वमेव कवित्वहेतुं स्वीकृर्वता भट्टतौताचार्येणोक्तं यत् कविस्तु ऋषिः यतो हि तेन जगदेतत् सम्यक् दृश्यते। भट्टतौतमतेन सूक्ष्मातिसूक्ष्मभावानां धर्मांशानामव्यवहितरूपेणावलोकनमेव दर्शनम्।

नानृषिः कविरित्युक्तमृषिश्च किल दर्शनात्।
विचित्रभावधर्मांशतत्त्वप्रख्या च दर्शनम्॥
स तत्त्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठितः कविः।
दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः॥[2]

काव्यस्य प्राचीनतमोदाहरणरूपेण ऋक्संहितैव परिगणयितुं शक्यते। भारतीयसंस्कृतेः धर्ममूलत्वात्, संहितायामस्यां यद्यपि देवतास्तुतीनामेव प्राधान्यं तथापि ऋषीणां सहजोद्गारत्वादत्र विविधा विषयाः प्राप्यन्ते यथा हि स्तुतिरेव नाशीर्वादः, शपथभिशापौ, कस्यचिद् भावस्याचिख्यासा, कस्माच्चिद्भावात् परिदेवना, निन्दाप्रशंसे चेत्युक्तं यास्केन निरुक्तस्य दैवकाण्डे।[3]

ऋक्संहितायामेते विषयाः साक्षात्कृतधर्माणामृषीणां व्यक्तित्ववैविध्यात् विविधरूपेषु प्रस्तुतास्सन्ति। एते सर्वे भावाः कुत्रचिदलङ्कारमाध्यमेन वर्णिताः, कुत्रचिद्रसानुरूपरीतिगुणमाध्यमेन, कुत्रचित्तु प्रतीयमानार्थमाध्यमेन। उदात्तादिस्वराणां प्राधान्याद् ऋक्संहिता यद्यपि प्रभुसम्मिता शब्दप्रधाना च तथापि ऋषीणां सहजोद्गारत्वात्, तेषां तन्मयीभावान्वितप्रस्तुतित्वात् क्रान्तदर्शिन्यभिव्यक्तित्वाद् कान्तासम्मितवाक्यवद्व्यञ्जनाप्रधानाद् हृदयाह्लादिनीरूपत्वाच्च काव्यमिति वक्तुं शक्यते।

काव्यसमालोचनदृष्ट्याऽद्य ऋक्संहितायाः यद्यपि न कस्याश्चित् काव्यशास्त्रीयव्याख्यायाः समीक्षायाश्चोल्लेखः प्राप्यते, न च तत्कालीनकाव्यशास्त्रीयग्रन्थोऽप्युपलभ्यते कश्चित्, तथाप्यलौकिककाव्यत्वात् संहितायामस्यां ध्वनिरीतिगुणालङ्कारादिकाव्यशास्त्रीयतत्त्वानां व्यावहारिकः पक्षोऽपलभ्यते। निबन्धेऽस्मिन् भेदोपभेदपुरस्सरं ध्वनितत्त्वमाश्रित्य ऋक्संहितायां तस्य प्रयोगवैशिष्ट्यस्य च समीक्षाऽत्र प्रस्तूयते।

वेदेषु काव्यतत्त्वानि

डॉ० धनीराम अवस्थी
प्रवक्ता संस्कृत
केन्द्रिय विद्यालय ,लखनऊ

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै वाणीयं वेदसंज्ञिता' भारतीय परम्परा की दृष्टि से वेद सृष्टि क्रम की प्रथम वाणी है। सभी सत्य विद्याओं की उत्पत्ति वेदों से हुई है। वेदों को श्रुति भी कहा जाता है। वैदिक परम्परा में आचार्य से सुनकर शिष्य गुरु का अनुकरण करते हुए उसी प्रकार उच्चारण करके वेद मन्त्रों को याद करते थे। कालक्रम के अनुसार एक व्यक्ति को सम्पूर्ण वेद याद रखना असम्भव हो गया। इसलिए महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने एक ही वेद को चार भागों में विभक्त कर दिया। इन चारों वेदों को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की संज्ञा प्रदान की गयी। महर्षि वेदव्यास ने अपने चार शिष्यों को इन्हें पढ़ाया। पैल नामक शिष्य को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद और सुमन्त को अथर्ववेद पढ़ाया

''तत्रगविद्धरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः।
वैशम्पायनः एवैको निष्णातो यजुषामुत।
अथर्वाङ्गिरसामासीत् सुमन्तुर्दारूणो मुनिः॥''

शिष्य परम्परा के कारण चारों वेद के विभाग भी शाखाओं तथा प्रशाखाओं में विभक्त हुए। वेदों की प्रत्येक शाखा किसी अन्य शाखा की अपेक्षा नहीं रखती। निरपेक्ष भाव से स्वोपदिष्ट कर्मों का पूर्ण विधान करती है। एक शाखा का अध्ययन ही उस वेद का पूरा अध्ययन माना जाता है-

'अतएव च एक शाखाध्ययनेनैव एकस्य वेदस्य समग्राध्ययनम्' वेदों में काव्यतत्त्व का अवलोकन करने के लिए ऋग्वेद पर प्रथमतः दृष्टिपात करना समीचीन प्रतीत होता है। काव्य के उत्कर्ष कारक तत्त्वों में रस, अलंकार, गुण, रीति औचित्य, ध्वनि इत्यादि की गणना की जाती है। इन तत्त्वों को दृष्टि में रखकर ही वेदों का अध्ययन करना हमारा अभीष्ट है। वेदों को देवताओं का अमर काव्य कहा है-**'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।''**

वेद के निर्माता परमात्मा के लिए वेदों में अनेक जगह 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए वेद स्वयं काव्यरूप है। और उसमें काव्य का सर्म्पूण सौन्दर्य पाया जाता है। इसलिए काव्यसौन्दर्य के निरूपक साहित्यशास्त्र में काव्यसौन्दर्य के आधायक जिन गुण, रीति, अलंकार, ध्वनि आदि तत्वों का विवेचन किया गया है। वे सभी तत्व मूल रूप में वेदो में पाये जाते हैं। वेदों में माधुर्य, ओज और प्रसादादि गुणों के उदाहरण अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं। गुणों के आधार पर ही रीतियों का निर्धारण होता है।

वेदों में अलंकार

केशव दत्त बलियानी
शोध छात्र
गुरुकुल कांगड़ी वि. वि.,हरिद्वार

अलंकारो का उद्भव -

अलंकार क्या है? ''अलंकृति अलंकार:'' अलं पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर अलंकार शब्द निष्पन्न होता है। अलंक्रियतेऽनेनेति अलंकार:' अलं पूर्वक कृ धातु से करण में घञ् प्रत्यय करने पर भी अलंकार शब्द बनता है। जिस प्रकार संसार में शरीर को अलंकृत करने वाले आभूषण अलंकार कहे जाते हैं उसी प्रकार काव्य को शब्दार्थ द्वारा अलंकृत करने वाली रचना को काव्यशास्त्र में अलंकार कहते हैं। अलंकार उभयात्मक कहे गये हैं।

ऋग्वेद में श्लेषालंकार - विद्वानों ने शब्दालंकारों के सम्बन्ध में श्लेषादि 6 अलंकारों की गणना की है जिनमें मुख्यत: वेदों में श्लेष, अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास आदि अलंकार दृष्टिगोचर होते हैं। जैसा कि काव्यप्रकाश टीकाकार सोमेश्वर महोदय ने शब्दालंकार के सम्बन्ध में कहा है-

वक्रोक्तिरप्यनुसो यमकं श्लेषचित्रके।
पुनरुक्तवदाभासः शब्दालंकृतयस्तु षट्॥

श्लेषालंकार के लक्षण के विषय में विद्वानों ने अपने मत इस प्रकार प्रस्तुत किये है।

वाच्यभेदेन भिन्ना यत् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा॥

अर्थात् श्लेष अलंकार वह अलंकार है जिसमें अर्थभेद के कारण आपस में भिन्न शब्दों में उच्चारण सारूप्य के कारण एक रूपता प्रतीत होती है। श्लेषालंकार के मूल में जो स्थिति अदृश्य होती है वह भिन्नार्थक शब्दों के पारस्परिक भेद की अप्रतीति ही जिसका कारण है। ऐसे शब्दों में वर्णों की समान आनुपूर्वी होने से उच्चारण की समानता होती है।

ऋग्वेद में छेकानुप्रास -

उप नो हरिभि: सुतं याहि मदानां पते। उप नो हरिभि: सुतम्॥

उपरोक्त मंत्र में उप नो हरिभि: शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है अत: यहाँ छेकानुप्रास अलंकार दृष्टिगोचर हो रहा है।

यजुर्वेद में श्लेषालंकार -

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रूचम्॥

ऋग्वेद में सौन्दर्य

श्रीमती मिनाक्षी हुड्डा
व्याख्याता
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

ऋग्वेद आर्यो का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें रचनाकाल के विषय में अनेक मतभेद है। डॉ0 व्रिण्टरनिट्ज ने विभिन्न मतों की समीक्षा करके अन्त में ऋग्वेद का समय 2000 2500 ई0पू0 से लेकर 750 500 ई0पू0 तक के मध्य माना है। ऋग्वेद का रचनाकाल अनिश्चित होते हुए भी इतना तो निश्चित ही है कि ऋग्वेद आर्यों का आदि ग्रन्थ हैं। ऋग्वैदिक ऋषियों के उद्गारों में भारतीय काव्यधारा का मूल स्रोत निहित है। ऋग्वेद आर्य संस्कृति के उद्गम व प्रारम्भिक विकास क्रम की विशद रूप रेखा ही नही प्रस्तुत करता, अपितु तत्कालीन जीवन की स्फूर्ति, उमंग और सहज प्रवृत्तिशीलता के साथ ही प्राकृतिक परिवेश की विविधता और अनन्त का भी काव्यमय चित्र प्रस्तुत करता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों की विपुलता और सहज उपलब्धि के कारण तथा सभ्यताजंन्य सामाजिक जटिलताओं और मानसिक उलझनों के अभाव के कारण वैदिक जीवन सादा, उल्लासपूर्ण, ग्रन्थिहीन, क्रियाशील और आशापूर्ण प्रतीत होता है।

भारतीय नाट्य परम्परा एवं वेद

डॉ० दुर्गा प्रसाद मिश्र
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचावे। इसके लिए वह साधारणतया शब्दों का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त कभी कभी इंगित से तथा कभी नृत्य गीत आदि के द्वारा वह अपने भाव प्रकट करता है। मनोरंजनार्थ दूसरों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। अतएव धनञ्जय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाट्य का मूल माना है। दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका रूपक नाम स्वीकार किया है-

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। रूपकं तत्समासरोपात् (दश0 1.7) इस अनुकरण को जब कथनोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भावभंगिमा आदि से समन्वित कर देते है तथा उसे नाट्य

का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य तथा श्रव्य दोनों हो और जिसको सभी वर्ण के लोग समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पांचवे वेद अर्थात् नाट्यवेद की सृष्टि की। ब्रह्म ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्वों को लिया-

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। नाट्य० १.१६-१७

इस प्रकार दैवी सिद्धान्त को नाट्य का मूल मानने वाले आचार्य भरत इसके विकास में वेदों को ही स्रोत के रूप में स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त कथन की प्रामाणिकता पर सन्देह किया जा सकता है। किन्तु वैदिक साहित्य में आए संवादात्मक सूक्तों या कुछ आख्यानों पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि नाट्य के स्रोत के रूप में ये सूक्त निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं। भारतीय आलोचकों के अतिरिक्त अनेक पाश्चात्य आलोचक भी इसी सिद्धान्त के पोषक हैं कि नाट्य की उत्पत्ति वैदिक संवाद सूक्तों से हुई है। प्रो0 मैक्समूलर, डॉ0 विण्टरनित्ज, प्रो0 लूडर्स, वान श्रोएडर, प्रो0 सिलवा लेनी, डॉ0 हर्टल, ए0बी0 कीथ आदि पाश्चात्य विद्वान भी किसी न किसी रूप में वैदिक संवाद सूक्तों को नाट्य साहित्य का प्रारम्भिक रूप स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद में संवादसूक्त कई हैं यथा- यमयमी सूक्त (ऋग्0 10.10), पुरुरवा उर्वशी संवाद सूक्त (ऋग्0 10-95), सरमा-पणि संवाद (10-108), इन्द्र मरुत संवाद (1-165), विश्वामित्र नदी संवाद (3-33), इन्द्र इन्द्राणीवृषाकपि संवाद (10-86), अगस्त्य लोपामुद्रा संवाद (1-179) आदि। इन सूक्तों में नाटकोंपयोगी संवाद का तत्व बहुत सुन्दर रूप से प्राप्य है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत आदि सूक्तों में नाटकोंपयोगी पाठ्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

आज के एकालाप नाटकों के मूल भी वैदिक सूक्त हैं। 10.119 सूक्त में इन्द्र सोमपान करके नशे में चूर होकर अपना गुणगान करते दिखाई देते हैं जो एकालाप का स्रोत माना जा सकता है। अथर्ववेदीय संवादसूक्त 5.11 तथा शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयिसंहिता के पुरुषमेध प्रकरण में सूत, शैलूष आदि शब्द आए हैं जो नाट्य की सूचना देते हैं। पं0 सीताराम चतुर्वेदी, डॉ0 दशरथ ओझा आदि संवाद सूक्तों को नाटकों का मूल स्वीकार करते हैं। कीथ का मत है कि यदि हम संवाद सूक्तों को छोड़ भी दें तो भी वैदिक कर्मकाण्ड में नाटक के बीज अवश्य प्राप्त होंगे।

पिङ्गल छन्दःसूत्र का महत्व : एक विवेचन

डॉ० विजेन्द्र कुमार तोमर
प्राचार्य
कृषक पी.जी. कॉलेज, मेरठ

छन्दःशास्त्र की परम्परा वैदिक काल से लेकर अब तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। विवेच्य आचार्य पिंङ्गल के 'छन्दःसूत्र' से पूर्व छन्दःशास्त्र के अनेक प्रवचनकर्ता हुए हैं, यथा - शिव, पार्वती, नन्दी, गुह, सनत्कुमार, बृहस्पति, इन्द्र, शुक्र, कपिल, माण्डव्य, वसिष्ठ, सैतव, भरत, कोहल, कौण्डिन्य, ताण्डी, अश्वतर, कम्बल, काश्यप, बाभ्रव्य पाञ्चाल, पतञ्जलि, रात, क्रोष्टुकि, उक्थकार, शौनक, यास्क और आश्वलायन आदि। पिङ्गल के परवर्ती आचार्यों में पूज्यवाद (देवनन्दी), जयदेव, गणस्वामी, दण्डी, पाल्यकीर्ति, दमसागर मुनि, जयकीर्ति कालिदास, केदारभट्ट, हेमचन्द्र और गङ्गदास की प्रमुखता से गणना की जाती है। यद्यपि मन्त्रार्थज्ञान और छन्द के ज्ञान में ऋक्प्रातिशाख्य, ऋक्सर्वानुक्रमणी, निदानसूत्र, उपनिदानसूत्र, शाङ्खायन श्रौतसूत्र, ऋगर्थदीपिका (छन्दोऽनुक्रमणी) और जयदेव के छन्दःसूत्र का भी महत्वपूर्ण योगदान है तथापि आचार्य पिङ्गल ने जितनी विशदता, संक्षिप्तता एवं सारगर्भितता के साथ वैदिक और लौकिक छन्दों के विषय में अपने विचार व्यक्ति किये हैं, उनका कोई प्रतिवाद नहीं है। उनके विचारों में मौलिकता के साथ-साथ अर्थवैविध्य को समझाने की सूक्ष्म दृष्टि भी है। यही तो छन्दः नामक वेदाङ्ग की वेदार्थ की रक्षा में सार्थकता है कि जिससे मंत्रों के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक और आधियाजिक आदि विविध अर्थ यथाप्रसंग अभिव्यक्त होते हैं। यदि ऐसा न होता तो मंत्रों में अर्थानुसारी छन्द और पादव्यवस्था न होती। वेद के एक भी अक्षर में कहीं कोई दोष, कोई निरर्थकता नहीं। निरुक्तकार यास्क ने मन्त्रार्थ में जिस भक्तिसाहचर्य (देव, लोक, सवन, ऋतु, छन्द, स्तोम, साम, देवगण और स्त्रियों) का उल्लेख किया है, वह पिंङ्गल के ऋषि, गोत्र, देवता, छन्द, स्वर और वर्ण के विनियोग से मेल खाता है। पिङ्गल की यही गहन परख की विशेषता उसे अन्य छन्दकारों से अप्रतिम और सर्वातिशायी बनाती है। बिना इस विधान के सूक्ष्म अर्थों का ज्ञान, अर्थ में परिवर्तन और छन्दों की मूल उत्पत्ति की दार्शनिकता आदि के गम्भीर चिन्तन का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता था। अतः छन्दःशास्त्र में पिङ्गल के छन्दःसूत्र की महत्ता सर्वोपरि है, अन्यों में उसकी कोई तुलना नहीं है।

पिङ्गल (वि0सं0 से 2900 वर्ष पूर्व) महान् वैयाकरण पाणिनि के छोटे भाई थे। इनके छन्द सूत्र में पाणिनि की अष्टाध्यायी के समान आठ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः वर्ण, गण, लघु, गुरु के नियम, दैवी (एकाक्षर) गायत्री से लेकर उत्कृति (104 अक्षर) तक के वैदिक एवं लौकिक छन्दों (समविषम वृत्तों) के साथ-साथ, प्रस्तार और मेरुप्रस्तार आदि का भी आधिकारिक विवेचन किया गया है। पिङ्गल के छन्दःसूत्र के कई भाष्यकार हुए हैं, यथा हलायुध भट्ट,

यादवप्रकाश, भास्करराय, श्रीहर्ष शर्मा, दामोदर, वाणीनाथ, पं0 अखिलानन्द शर्मा और आचार्य मेधाव्रत। हलायुध के छन्दों के उदाहरण शृंगारी एवं अश्लील होने से हेय है। पं0 अखिलानन्द शर्मा ने छन्दःसूत्र पर संस्कृतभाष्य लिखा है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री विरजानन्द दैवकरणि द्वारा किया गया है जो विशद् सारगर्भित महत्वपूर्ण टिप्पणियों, वृत्तचित्रों एवं कई परिशिष्टों से युक्त होने के कारण प्रशंसनीय उपयोगी एवं संग्रहणीय है। इस वेदार्थ रक्षा के लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। पं0 युधिष्ठिर मीमांसक की वैदिक छन्दोमीमांसा पुस्तक भी छन्द:शास्त्र पर शोधपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इसमें मीमांसक जी ने आचार्य पिङ्गल को छन्द:शास्त्रकारों में सर्वोपरि मानते हुए उनके अनेकों मन्तव्यों की सार्थकता सिद्ध की है। अत: इसक्षेत्र में आचार्य पिङ्गल का विशिष्ट योगदान है। उनकी महत्ता सदैव बनी रहेगी।

वेदेषु काव्यतत्त्वानि

डॉ० शुचि अग्रवाल
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
मेरठ कॉलेज, मेरठ

काव्य, साहित्य की वह विधा है जिसमें कवि अपने मनोभिलिषित भावों को कुछ चुने हुए मनोरम शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की क्षमता रखता है तथा समय-समय पर वह अपने भावों की तीव्रता के कारण अभिव्यक्ति के लिए अनेकानेक काव्यतत्वों यथा रस, छन्द, अलंकार, ध्वनि आदि का विधान करके अपनी रचना में और अधिक रोचकता उत्पन्न करता है। वेदों में भी काव्यतत्वों से समन्वित यह रोचकता स्पष्टत: प्राप्त होती है।

वस्तुत: वेद हमारी आदि सभ्यता अर्थात् आर्यों की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हैं। सम्भवत: वैदिक काल में आर्यों ने जब भी भावविभोर होकर सम्मिलित मनोरंजन या स्तुति की होगी। तभी उनके मुख से अचानक गीत फूट पड़े होगें, जिनमें कुछ लयबद्धता और छन्दोबद्धता का होना स्वाभाविक है। इस प्रकार स्वत: स्फूर्त लयबद्ध मंत्रों में काव्य तत्वों का समावेश भी स्वत: ही हो गया। यह बात भिन्न है कि उन लोगों को काव्य तत्वों के विषय में ज्ञान नहीं था।

वेदों में ऋग्वेद प्राचीनतम है, जिसमें प्रकृति के तत्वों का देवीकरण करके उनकी स्तुतिपरक मंत्र प्राप्त होते हैं, जो कविता के रूप में स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सके। किन्तु इसमें निहित मानवीय भावों की सहज अभिव्यक्ति को देखकर तथा उपमा आदि अलंकारों का अनुभव कर उनके कवित्व पक्ष को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार वेदों के सूक्तों में ऋषियों के द्वारा नाना देवताओं से यज्ञ में पधारने के लिए भावोच्छ्वासित हृदय के उद्गार अभिव्यक्त किए गए हैं, जो किसी न किसी रूप में

छन्दोबद्ध है। उनके रूपों का भव्य वर्णन कवि कला का विलास है, तो उनके भीतर सुकुमार प्रार्थना के अवसर पर कोमल भावों तथा हार्दिक भावनाओं की रुचिर अभिव्यजंना है। जहां एक ओर उषा के मंत्रों में उनकी सौन्दर्य दृष्टि झलकती है तो दूसरी ओर इन्द्र के मंत्र तेजस्विता से सराबोर हैं एवं वैदिक ऋषियों के द्वारा रसों के शृंगार वीर तथा अद्भुत आदि नामों के संम्बंन्ध में अपनी जानकारी व्यक्त नहीं की है, तथापि उन्हें कविता में उनकी स्थिति का आभास अवश्य था।

इस प्रकार वैदिक मंत्रों में काव्यगत गुणों का पर्याप्त दर्शन होना काव्य जगत् की कोई आकस्मिक या आश्चर्यचकित कर देने वाला विषय नहीं है, अपितु वेदों में इनका विशाल भण्डार हैं।

इसी संदर्भ में वेदों के काव्य तत्वों को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास मैं अपने इस शोधपत्र वेदों में काव्यतत्व में करूँगी।

वेदेषु ध्वनिः

सुन्दरलाल

श्री लाल बहादुरशास्त्री

राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

भावाभिव्यक्ति के सभी साधनों में भाषा ही सर्वप्रमुख साधन माना जाता है। भाषा के माध्यम से ही मनुष्यों के मध्य सामाजिक सम्पर्क बना हुआ है।

भाषा का आधार ध्वनि हैं। ध्वनि से ही भाषा का निर्माण हुआ है। प्रत्येक भाषा की ध्वनियों की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। ध्वनियों का सम्बन्ध उच्चारण से है। इसलिए किसी भी भाषा के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है जब उस भाषा में प्राप्त होने वाली ध्वनियों की उच्चारण प्रक्रिया का अच्छी प्रकार से अनुशीलन किया जाए।

ध्वनि के अध्ययन का प्रारम्भ अत्यन्त प्राचीन काल में ही हो गया था। विश्व की संबसे प्राचीन भाषा के रूप में उपलब्ध होने वाली वैदिक भाषा स्वयं ही इस बात को प्रमाणित करती है कि उस प्राचीन काल में भी भाषा का रूप अत्यन्त प्राञ्जल था।

यदि उच्चारण इस अच्छा होगा तो ध्वनि ठीक निलेगी। उच्चारण प्रकार होना चाहिए यथा -

व्याघ्री यथाऽ हरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत्।।

एक अन्य उदाहरण यथा :-

न कराली न लम्बोष्ठा नाव्यक्तो नानुनासिकः।
गदगदो बद्धजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति।।

ध्वनि क्या है? ''शब्दोनाम ध्वनिः'' ध्वनि वह गुण जिसका ग्रहण श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा किया जाता है। प्रातिशाख्यों में ध्वनि के अर्थ में 'शब्द' शब्द का प्रयोग प्राप्त हुआ है। प्रातिशाख्यों के भाष्यकारों ने शब्द का अर्थ ध्वनि किया है।

वैदिककाव्यसौन्दर्ये छन्दसामुपादेयता

डॉ. व्रजेन्द्र कुमार सिंहदेव
प्राचार्य विभागाध्यक्ष
गुरुकुल महाविद्यालय (पी.जी.)कॉलेज ज्वालापुर, हरिद्वार

अस्ति वैदिकसंहितासु छन्दसां स्थानं सर्वोच्चतमम्। अतो वैदिककायसौन्दर्येऽपि एतेषां छन्दसां बहूपादेयतास्त्र नास्ति कोऽपि संशयः। अनेन छन्दसां किं स्वरूपम्? छन्दसां कतिभेदाः? का चोपादेयता? कदा तेषां विकासः संजातः ? विदद्भिः छन्दोविषये कदा विचारः प्रारब्धः? एतेषां प्रश्नानां समाधानार्थम् अत्रायमवसरः।

अथ छन्दःशब्दस्य का व्युत्पत्तिरिति जिज्ञासायां यास्काचार्येण निरुक्ते प्रतिपाद्यते-

''छन्दांसि छाद्नातु'' इति।

छन्दःशब्दः छद्धातोनिष्पन्नो जायते, यस्यार्थ आच्छादनमिति, महर्षिपाणिनी यत्र सामान्य कथोपकथनं भाषाहेतोः भाषशब्दस्य प्रयोगं कृतवान् तत्र वैदिक भाषायाः कृते तस्य महर्षेः छन्दशब्दस्य प्रयोगो विहितः। यथा-

''बहुलं छन्दांसि।''

कात्यायनऋषिणा सर्वानुक्रमण्यां छन्दशब्दस्य लक्षणं प्रतिपादितम् यथा हि-

''यदक्षरपरिमाणं तच्छद्धः''।

छन्दसां प्रयोगजन-विषयविचाराश्च-

ननु मनसि प्रश्नमुपजायते छन्दसः प्रयोजनं किमिति जिज्ञासायां सामान्यमुत्तरं प्रस्फुरति छन्दोज्ञानमिति। कोऽपि सामान्यो जनः किमपि कर्मं कर्त्तुं तदैव प्रवृत्तौ भवति यदा तस्य कमर्णः उद्देश्य् तेन स्पष्टं ज्ञायते। ऋग्वेदप्रातिशाख्यस्यउवंटभाष्ये प्रतिपादितं यत् गायत्र्यादिछन्दांसि यैः पुरा सोमः आहृतः, तानि इदं कृत्स्नं सचराचरं त्रैलोक्यं सन्ति अतः तेषां छन्दसां ज्ञानं त्रैलोक्य-विषयज्ञानमेव।

अपि च तत्रैव उव्वटभाष्य-

स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वृद्धिकरं शुभम्।

कीर्तिमृध्यं यशस्यं च छन्दसां ज्ञानमुच्यते।

एतदनुसारं वैदिकछन्दोज्ञानं निम्नलिखितानि उद्देश्यानि चरितार्थयति पूरयति वा

1. स्र्वप्राप्तिः 2. यशः प्राप्तिः 3. दीर्घायुष्प्राप्तिः

पुण्यप्राप्तिः 5. वृद्धिः 6. शुभप्राप्तिः

छन्दो वै सः

डॉ० रूप किशोर शास्त्री
अध्यक्ष-वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पाणिनीय शिक्षानुसार छन्दों को वेदरूपी पुरुष के पाद कहे गये हैं। सत्य भी यही है कि पुरुष तत्व का कात्स्र्न्य बिना पाद के नहीं है। मैत्रायिणीसंहिताकार ने जहाँ **छन्दांसि वै धुरः** कहा है, वहीं इन्हें **छन्दांसि वै सः** कहकर वेदों को केन्द्रीभूत एवं अपने गर्भ में मंन्त्रों के रहस्यों को निगूढ़ित करने वाला बताया गया है। ऋषि यास्क ने अपने निरुक्त शास्त्र में मन्त्र एवं छन्द दोनों पदों एवं उनकी निरुक्ति की एक ही स्थान पर रखा है यह संयोग मात्र है अथवा गहन रहस्य है, इन दोनों के प्रगाढ़ साहचर्य भाव की अभिव्यक्ति का संकेत यास्क ने किया है। मन्त्र एवं छन्दस् का प्रयोग एवं औचित्य शास्त्रकारों की दृष्टि में समष्टि तत्व व आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में समाहित है। वस्तुतः छन्दस् तत्व का मन्त्राबद्ध स्थिति की प्रविधि के रूप में प्रतिष्ठा है, यही उनका नियामकत्व एवं छन्दसत्व है।

वैदिक संहिताओं में अलंकार

डॉ० विनोदचन्द्र विद्यालंकार
पूर्वसहनिदेशक प्रकाशननिदेशालय
गोविन्द वल्लभ पन्त कृषि वि.वि., पन्तनगर

भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकारों का अभ्युदय वैदिक वाङ्मय से ही माना गया है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, निरुक्त, व्याकरण आदि में विविध अंलकारों के दर्शन होते हैं। राजशेखर ने तो काव्यमीमांसा में अलंकार को वेद का एक अतिरिक्त अंग ही माना है और कहा है कि इसके स्वरूप का ज्ञान न हो तो वेदार्थ की अवगति नही होती।[1]

संस्कृत-वाङ्मय के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में 'अरंकृत' 'अरंकृति' तथा 'अरंकृत्' शब्दों का प्रयोग मिलता है।[2] वेदों के प्रख्यात भाष्यकार सायण ने 'अरंकृताः' का अर्थ 'अलंकृताः'

किया है।[3] एवमेव 'अरंकृते' का अर्थ 'अलंकुर्वते' किया गया है। निरुक्तकार यास्क ने 'अरंकृत' शब्द का पर्याय 'अलंकृत' दिया है।[4] शतपथ ब्राह्मण[5] तथा छान्दोग्यपोनिषद्[6] में स्पष्टतः 'अलंकार' शब्द का ही व्यवहार किया गया है। यही नहीं, वेदों में उपमा या 'उपम' आदि पदों का भी उल्लेख मिलता है; जो अनेकार्थक हैं। यथा-**'पदं यद्विष्णोरुपमम्'**[7] में 'उपम' पद गुह्य और अगम्य अर्थ में; **'उपमं वरूथम्'**[8] में उपमा पद श्रेष्ठार्थ में; 'यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा'[9] में 'उपम' पद तुल्य अर्थ में तथा 'का अस्य पूर्वीरुमातयो ह'[10] में उपमातयः दान अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'अस्मा इदु त्यमुपमम'[11] में सायण 'उपम' पद की व्याख्या करते हुए कहते हैं-'उपमीयतेऽनेनेति उपमः, तम्' अर्थात् इससे समानता की जाती है, इसलिए यह उपम (उपमान) है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में उल्लिखित उपमा शब्द का सायणाचार्य ने उपमान या दृष्टान्त अर्थ किया है।[12] इन पदों का प्रयोग होने मात्र से हम वेदों में अलंकार-सिद्धान्त या उपमा अलंकार के शास्त्रीय विवेचन की कल्पना नहीं कर सकते।

तथापि वैदिक संहिताओं में अर्थालंकारों, शब्दालंकारों एवं उभयगतम अलंकार की भव्य एवं रमणीय छटा पदे-पदे दृष्टिगत होती है। इनमें उपमा अलंकार का तो प्रचुरता से प्रयोग हुआ ही है। साथ ही श्लेष, रूपक एवं उत्प्रेक्षा की भी बहुलता पायी जाती है। इसके अतिरिक्त अर्थालंकारों में तुल्ययोगिता, दीपक, अर्थान्तरन्यास, उल्लेख, विरोधाभास, विभावना, समासोक्ति आदि; शब्दालंकारों में अनुप्रास एवं यमक तथा उभयगत अलंकारों में संसृष्टि एवं विशेषोक्ति के भी सुन्दर उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

1. "उपकारकत्वादलंकारः सप्तममंगम् इति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः"। काव्यमीमांसा अध्याय 2

2. द्रष्टव्य : ऋग्. : 1.2.1, 7.29.3, 2.1.7, 8.5.6.3, 1,14,5

3. द्रष्टव्य : ऋग्. 1.2.1 का सायणभाष्य 4. 'दर्शनीया इमे सामा अरङ्कृताः' निरुक्त 10.1

5. श.ब्रा.: 10.8.4 6. छा. उ. : .8.8.3, 5 7. ऋग्. : 5.3.3 8. ऋग्. : 7.30.4

9. ऋग्. : 7.62.3 10. ऋग्. : 4.13.3 11. ऋग्. : 1.61.3 12 द्रष्टव्यः ऋग् : 1.31.15 और 5.34.9 तथा इनका सायणभाष्य।

वैदिक वाङ्मय में रस निरूपण

डॉ० विजयवीर विद्यालंकार
पूर्व अधिष्ठाता- प्राच्यभाषा संकाय
उस्मानिया वि.वि., हैदराबाद

नाट्यशास्त्र-प्रणेता आदि रसाचार्य भरत मुनि ने चारों वेदों की उपयोगिता को स्वीकार कर अपने नाट्यशास्त्र का निर्माण किया है। अभिनयदर्पणकार नन्दिकेश्वर के अनुसार ब्रह्म ने सर्व प्रथम भरत को नाट्यवेद दिया था।[1] नाट्यचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के लिए ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस का ग्रहण किया है।[2]

यद्यपि चारों वेदों में विभिन्न अर्थों में रस सम्बन्धी मन्त्र उपलब्ध होते हैं तथापि विशेष रूप से अथर्ववेद से रस का लिया जाना विचारणीय विषय है। गीतिपकर होने से सामवेद से गीत का लिया जाना और कर्मकाण्ड परक होने से यजुर्वेद से अभिनय का लिया जाना स्वतः स्पष्ट है। ऋग्वेद का पाठमात्र होता था, उसका गायन या तदाधारित कर्मकाण्ड का कोई रूप प्रचलित नहीं था। अतः उससे पाठ्य का लिया जाना कहा गया है। विभिन्न रस-सम्बन्धी मन्त्र यद्यपि चारों वेदों में उपलब्ध हैं तथापि विशेष रूप से अथर्ववेद से ही रसों का लिया जाना सहेतुक है क्योंकि विविध मन्त्रों में रस के विविध अर्थ इसी वेद में उपलब्ध हैं। ब्रह्मविद्या का स्पष्ट वर्णन अथर्ववेद में ही पाया जाता है।[3] अतः अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा जाता है।[4]

भैषज्य का सम्बन्ध भी रस से ही है तथा अथर्ववेद भैषज्यवेद रूप में भी प्रथित है। विभिन रोग-औषधियों का वर्णन भी अथर्ववेद में उपलब्ध है।[5] सम्भवतः भरत ने अथर्ववेद के आधार पर अपने नाट्यशास्त्र में नाना व्यंजनौषधियों के दृष्टान्त द्वारा नाट्यरसों का व्याख्यान किया है।[6] भरत-नाट्यशास्त्रानुसार शान्त रस से ही रति आदि आठों स्थायी भावों की उत्पत्ति होती है और उनका विलय भी शान्त में ही होता है।[7]

भरत का कथन है कि मोक्ष और आध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है, उसको शान्त रस नाम दिया जाता है।[8] नाट्यशास्त्रोल्लिखित शान्तरस का आधार भी अथर्ववेद ही है।[9] इसी प्रकार श्रृंगार, वीर, रौद्र आदि कतिपय अन्य रसों का वर्णन भी अथर्ववेद में मिलता है। इससे विदित होता है कि नाट्यशास्त्रप्रणेता भरत ने तत्सम्बन्धी श्लोक में जो 'रसः' शब्द का प्रयोग न कर 'रसान्' कहा है, उसका उद्देश्य जीवनोपयोगी नाट्यरसों का प्रतिपादन एवं उनको महत्व प्रदान करना है। नन्दिकेश्वर कृत अभिनयदर्पण में भी 'रसान्' शब्द का ही पाठ मिलता है।[10]

कतिपय आधुनिक विद्वान्[11] इस मत से सहमत नहीं है कि 'काव्यरस' के शास्त्रीय अर्थ में रस का स्पष्ट प्रयोग वैदिक वाङ्मय में मिलता है। इन विद्वानों द्वारा मान्य दृष्टिकोण को यथार्थ भी मान लिया जाए तो प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आदि रसाचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में 'रसानाथर्वणादपि' कह कर जिन रसों का उल्लेख किया है, वे रस कौन से हैं? जब कि

ऋग्यजुसामवेद में रस शब्द नाना अर्थों में प्रयुक्त है तब अथर्ववेद से ही रस ग्रहण की बात क्यों कही गयी हैं?

भरतमुनि ने कदाचित् अथर्ववेदोक्त सद्यः प्रसूता गौ के हृदय में अपने नवजात वत्स के प्रति जो अनुराग-चेतना (वात्सल्य) उमड़तीं है, उसी को आधार बनाकर और उसके अंगरूप में प्रकट होने वाले विविध मनोविकारों को दृष्टि में रखकर वात्सल्य को आधाररूप रस और शेष को उसी में उत्पन्न विभिन्न रसों के रूप में स्वीकार किया है। गौ में अपने वत्स के प्रति उमड़ती भाव चेतना नाना रसों के लिए कारणभूत बन जाती हे। अपने वत्स को हर स्थिति में सुरक्षित रखने की दृष्टि से सद्यः प्रसूता गौ रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्साद्भुतादि रूपों को अपनाकर सामाजिक के विभिन्न अनुभूतियों का प्रदर्शन करती है, जो नाना रसों के रूप में परिणत हो जाती हैं। निश्चय ही वात्सल्य समस्त रसों का आधारभूत है।[12]

1- नाट्यवेदं ददौ पूर्वं भरताय चतुर्मुखः, नाट्योत्पत्तिः, 2

2- जग्राह पाठ्यर्मृवेद .... नाट्यशास्त्र 1/17

3- अथर्ववेद 10/2, 2-1, 10/7-8, 11/7-8, 13/2-4/1-6, 15/1-4, 6-18

4- अथर्ववेद 19/42, 15/6/8

5- अथर्ववेद 1/12/25, 1/22, 2/3, 2/8, 2/27, 2/30, 4/4, 17-20, 37

6- नानाव्यजनौषधि .... नाट्यशास्त्र, अ 6

7- स्वं स्वं निमित्तम् .... नाट्यशास्त्र, अध्याय 6 श्लोक 5

8- अथ शान्तो नाम .... शान्तो रसो भवति नाट्यशास्त्र अध्याय 6

9- अथर्ववेद 19/9, 10, 11/1-3

10- ऋग्यजुः सामवेदेभ्यो .... अभिनव दर्पण श्लोक 7

11- द थ्योरीज़ ऑफ रस एण्ड ध्वनि सम एस्पेक्ट्स ऑफ संस्कृत अलंकाररास डॉ. शंकरन पृ. 5, रस सिद्धान्त डॉ. नागेन्द्र पृ. 6

12 अथर्ववेद 7/73/4-8

Pathetic Pleasure (Karuna Rasa) in Shakespeare 's "King Lear"

Dr. Manjusha Kaushik
Lecturer of English
Kanya Gurukul Mahavidyalaya,Haridwar.

The object of this paper is to show the pathetic pleasure in the context of Shakespeare's King Lear. King Lear has been acclaimed to be most tragic of all his tragedies. There is unplumbed depths of tragic emotion. The hero is the author of his own misery and ultimate doom. His suffering effect the purgation of emotion of spectators. Lear is so obsessed with the idea of filial ingratitude. He feels that people can be miserable only on account of the ingratitude of their daughters. The Pathetic outbursts of Lear in the night storm on the health are heart-rending. But there is something noble and sublime about the way he faces the indecency of elements on the health at night. His fortitude evokes the emotions of terror, Pathos, and pity in the heart of audience.

Raudra rasha its use and effect on Shakespeare's play (Hamlet and Othello)

Priyanka Tyagi
Kanya Gurukul Mahavidyalaya, Haridwar

The object of this paper is show the effect of Raudra Rasa in Shakespeare's play Othello and Hamlet. The main progressive point of these Rasa is loss,anger insult and condemn. In these plays we observe that how the hero came in the contect of these aspects and suddenly changed his temprament and due to this all the tragic incidents take place. In this paper I have tried a lot to co-relate the Raudra Rasa in the context of Othello and Hamlet. Any serious crime which is committed by the any enemy party and other bad person is the provoking deed in these Rasa.

Theory of Rasa in John Keats's Ode to Nightingale

Dr. Mudita Agnihotri
Sr. Lecturer, Deptt. of English
K.G.M. Gurukul Kangri University, Hardwar

This paper aims to study *Rasa* in Keats' "Ode to Nightingale". The theory of *Rasa* is not only applicable to in the literary perusals but in everyday life also. The pleasures of arts are known as *Rasa.* The piece of creative writing which enables us with *Rasa* is an ideal writing. To receive the communicated feeling of the writer is to know the real *Rasa* in literature. The immortal "Ode to Nightingale" of Keats gives a pleasure which leads to *Karuna Rasa.* For this the reader has to presume himself to be a sympathetic receiver of the pure notions of the poet or a creative writer. The sense of pleasant feeling is awakened through the readings of fine literature. And classification of that sense decides the deal of pleasure in that piece of writing. In Indian theory of *Rasa, Karuna Rasa* explores the inward views of the poet and no doubt, Keats through the association of ideas goes far to gloomy moments of his life.

वैदिक शिक्षा

वैदिक शिक्षा का आदर्श और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता

डॉ. लता गर्ग
रीडर एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग
मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका
गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर

भारतीय संस्कृति और साधना का मूल है वेद। प्राचीन ऋषियों के ज्ञान-प्रज्ञान वेदों में प्रतिफलित हैं जिनका उन्होंने गहन साधना के पश्चात् अपने अन्तस्तल में साक्षात्कार किया था। सम्भवतः इसीलिए प्रबल मेधा सम्पन्न व्यास मुनि ने वेदों को प्रत्यक्ष और स्मृतियों को अनुमान कहा। वेद सत्य विद्या के भण्डार हैं। इस विद्या का कोई अन्त नहीं यह सर्वदा मानव जाति को जीवन, प्रेरणा और ज्ञान देने वाला शाश्वत स्रोत है।

ऋषियों का शिक्षा के प्रति उच्च आदर्श इन वेदों में वर्णित हैं। शिक्ष् धातु से 'अ' और टाप् प्रत्यय द्वारा व्युत्पन्न शिक्षा शब्द सफल मानव जीवन के लिए अपेक्षित सभी चतुर्दश विद्याओं का वाचक है। जिसका उद्देश्य इस लोक सें संर्वागीण अभ्युदय और परलोक में परम निःश्रेयस की प्राप्ति कराना है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में आदर्श शिक्षा की परिकल्पना यही है। वैदिक शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं है। अपितु ''आत्मचिन्तन'' का मार्ग भी प्रशास्त करती है। इस आदर्श की पूर्ति के लिये वैदिक ऋषियों ने कुछ मानदण्ड निर्धारित किये। यथा -शिक्षा का उद्देश्य योग्य पात्र, शिक्षा का विषय, शिक्षालय, आचार्य के गुण और कर्त्तव्य, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, तथा शिक्षण विधि आदि।

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य शिष्य का सर्वविध विकास था। शारीरिक विकास के लिए तप और साधना के पालन पर बल दिया जाता था। मानसिक विकास के लिये चिन्तन, मनन, ध्यान आदि का प्रावधान था। जिससे आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति सम्भव थी। आध्यात्मिक ज्ञान को यजुर्वेद में 'विद्या' शब्द से सम्बोधित किया गया।

ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान के लिये एक परिवेश की आवश्यकता थी। वह था गुरुकुल। जो नगर के कोलाहल से दूर शान्त वनस्थली के एकान्त में बनाये जाते थे। गुरुकुल वर्ग, जाति अथवा सम्प्रदायगत भिन्नता से रहित होते थे। शिक्षार्थियों के लिये सबसे आवश्यक और आचरणीय तत्व था ब्रह्मचर्य क्योंकि इसी के द्वारा उनका शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास सम्भव था। वैदिक ऋषियों का उद्घोष था -

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'

वास्तव में [illegible] सकता।

इसी प्रकार आचार्यो के लिये भी कुछ मानदण्ड निर्धारित थे। दूसरों का चरित्र निर्माण करने वाला स्वयं जितेन्द्रिय और सच्चरित्र न हो ऐसा कैसे हो सकता है? अतः आचार्य के लिए भी आचार शुद्धि तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन आवश्यक था

'आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।'

इसके अतिरिक्त नीरक्षीर विवेकी, तेजस्वी, सरल, स्वभावापन्न गुरु ही उदात्त मार्ग का दर्शक हो सकता था।

शिक्षाशास्त्रीयपरम्परायामयोगवाहादिध्वनयः

भवानी शंकरः शर्मा 'महाजनीयः'
व्याख्याता संस्कृत विभागः
मूलचन्द्रः
व्याख्याता संस्कृत विभागः
राजकीयः लोहिया-महाविद्यालयः, चूरू

भारतीयायां शिक्षाशास्त्रीयपरम्परायां यादृशं ध्वनिचिन्तनं विहितमस्ति, तच्चकितचकितान् करोति सर्वानध्येतृन्। ध्वनिचिन्तनस्येयं परम्परा प्राचीनतमाऽस्ति, निश्चप्रचम्। ऋग्वेदादिषु प्राचीनतमेषु ग्रन्थेषु ध्वनिचिन्तनविषयकाऽभिरुचिर्दरीदृश्यते, यस्याश्चरमोत्कर्षः प्रातिशाख्यादिषु अभवत्। ऋग्वेदे 'ओंकारः' इत्यस्य ध्वनेर्विषये यदुक्तं तदस्ति प्रमाणम्

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते।" (1/164/39)

एवमन्यान्युदाहरणान्यपि दातुं शक्यन्तेऽत्र।

वस्तुतः सुस्पष्टं ध्वनिचिन्तनन्तु प्रातिशाख्येषु सर्वप्रथमं समुलभ्यते। तदनन्तरं शिक्षाशास्त्रेषु विहितमालोडनमस्मिन् विषये। ग्रन्थेष्वेषु चतुःषष्टिर्ध्वनयो विवेचिताः सम्यक्। यथोक्तं पाणिनीयशिक्षायाम्

"त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।"

सकला अपि वर्णाः सर्वेषु ग्रन्थेषु प्रायः परस्परमुच्चारणविषयकं साम्यं दधति, किन्तु केषांचित् वर्णानामुच्चारणे सन्ति बह्व्यो विप्रतिपत्त्यः। तादृशानामयोगवाहादीनामत्र क्रियते संक्षेपेण विवेचनम् । यतोहि भवन्त्यनर्था अशुद्धोच्चारणैः यथोक्तम्

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं निहस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोपराधात्।।

उच्चारणस्य मतभेदेषु यममधिकृत्य कंचन विद्वान्सः कथयन्ति "कुं खुं गुं घुं इति चत्वारो यमाः" पुनरपरे प्रतिपादयन्ति यत् प्रतिवर्गमाद्येभ्यश्चतुर्भ्यः पंचमे वरे मध्ये यः पूर्वसदृशो वर्णाग्निरित्यादौ वेदे प्रयुज्यते स यमः।"

अपञ्चमैश्चैकपदे संयुक्तं पञ्चमाक्षरम्।
उत्पद्यते यमस्तत्र सोऽङ्गं पूर्वाक्षरस्य हि॥ (याज्ञः प्रकीर्ण)

एतादृशं वैमत्यं चिन्त्यमस्ति मदीयेन शोधलेखेन सप्रमाणम्। इत्यलं विस्तरेणात्र शोधसारे।

वैदिक सूत्रों की शैक्षणिक उपादेयता

किरण पुरोहित
नेहरु मेमोरियल विधि महाविद्यालय
हनुमानगढ़, राजस्थान

शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को संस्कृत करना ही वैदिक शिक्षा दर्शन का सर्वोपरि उद्देश्य है। शिक्षा संस्कार से संस्कृत मानव शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा इन चारों पर्वों में निर्दोष, गुणवान, उदार विलक्षण, नीरोग एवं पूर्ण बनता हुआ राष्ट्र सेवा, संस्कृति सेवा, विश्व सेवा आदि कार्यों में उपयोगी होता है। वैदिक शिक्षा के स्वरूप में गुरुकुल एवं आश्रम व्यवस्था का अत्यन्त महत्त्व था। महर्षि वाल्मीकि कण्व, व्यास, भारद्वाज, परशुराम, सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि, वशिष्ठ आदि के आश्रमों के वर्णन मिलते हैं। आश्रमों में हवन की अग्नि प्रज्ज्वलित होती रहती थी, पुण्यात्मक वैदिक मन्त्रों के पाठ होते रहते थे। आश्रमों में विविधा दार्शनिक विषयों पर विद्यार्थियों के लिए व्याख्यान दिये जाते थे और वेद वेदांगों पर शास्त्रार्थ होते थे।

वैदिक शिक्षा सम्बन्धी दर्शन में विविध संस्कारों का विशेष महत्त्व है। इनमें चार संस्कार प्रमुख हैं विद्यारम्भ, वेदारम्भ, उपनयन एवं समावर्तन। विद्यारम्भ संस्कार के विशेष कार्यक्रम में सर्वप्रथम गणेश और सरस्वती का पूजन किया जाता है। विद्यारम्भ संस्कार के समय गुरु सर्वप्रथम अक्षर ज्ञान का बोध कराता है। यह संस्कार उपनयन संस्कार की महत्वपूर्ण पूर्वभूमि थी। उपनयन संस्कार से ही ब्रह्मचर्य आश्रम प्रारम्भ होता था। ब्रह्मचारी बालक का यज्ञोपवीत धारण करना, आचार्य के समक्ष पहुँचना, आचार्य द्वारा ब्रह्मविद्या का ज्ञान प्रदान करना उपनयन संस्कार की सम्पूर्ण प्रक्रिया में निहित है। उपनयन संस्कार के अनन्तर वेदारम्भ संस्कार प्रारम्भ होता था। गायत्री मंत्र की दीक्षा लेकर किसी वेद की शाखा विशेष या वेदों के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन हेतु जो व्रत छात्र या

छात्रा लेते थे, उसे वेदारम्भ कहा जाता था। समावर्तन गुरुकुल से शिक्षा समाप्त करके लौटने का संस्कार है। स्नातक को विदा करते समय शिष्यों को आचार्य अन्तिम दीक्षान्त उपदेश देते थे, जो उनके जीवन के लिए उपयोगी होता था।

वेदों के शिक्षाप्रद आख्यानों का अप्रतिम योगदान माना गया है, जिनका प्रचुर प्रयोग ऐतरेय, कौषीतकि, शतपथ, तैत्तिरीय, जैमिनीय, जैमिनीयोपनिषद्, जैमिनीयार्षेय, आर्षेय, वंश, संहितोपनिषद्, देवताध्याय, ताण्ड्च, षड्विंश, सामविधान, छान्दोग्य एवं गोपथ इत्यादि ब्राह्मणों एवं पुराणों में पदे पदे दृष्टव्य है। च्यवन सुकन्या आख्यान, बलि वामनावतार आख्यान, इन्द्र दधीचि आख्यान, पुरुरवा उर्वशी आख्यान, सरमा परवा आख्यान, अगस्त्य लोपामुद्रा आख्यान, यम यमी आख्यान, इन्द्र अहल्या आख्यान, मनु मत्स्य आख्यान, सूर्य चन्द्र और राहु केतु आदि आख्यान में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं में व्यवहार्य एवं औचित्य निहित है। इन आख्यानों से अनेक प्रकार के अधिदैविक,आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन होता है।

आधुनिक सन्दर्भ में भी वैदिक शिक्षा का महत्त्व सर्वथा प्रासंगिक है। वैदिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र निर्माण, सहिष्णुता, सौहार्द, सत्यनिष्ठा और व्यवहार कुशलता आदि मानवीय गुणों का सांगोपांग विकास करना है। वैदिक पाठ्य क्रम में भौतिक विद्या तथा अध्यात्म विद्या का समन्वय है। वैदिक ऋषियों ने शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग कहा हैं। शिक्षा से मनुष्य का जीवन परिष्कृत, सुविधायुक्त, समुन्नत और सुखद होता है। अतः वैदिक शिक्षापद्धति के मूलभूत सिद्धान्त ही समसामयिक परिवेश में शैक्षणिक अवमूल्यन के सन्दर्भ में यथार्थ 'मानव शिक्षा' की अपेक्षित अवधारणों को ठोस स्वरूप प्रदान करके शिक्षा सम्बन्धी विविध जटिल समस्याओं का सार्थक समाधान कर सकते हैं। यद्यपि वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में वैदिक शिक्षा प्रणाली यथावत् नहीं अपनाई जा सकती क्योंकि देश, काल और वातावरण के सन्दर्भ में सामाजिक मूल्य सापेक्षिक होते हैं तथा तद्नुसार परिवर्तनशील है। किन्तु वेदकालीन आधारभूत एवं सनातन मानवीय मूल्य आज भी प्रासंगिक है तथा आवश्यक रूप से अनुकरणीय है।

प्रमुख प्राचीन भारतीय आचार्यों का शिक्षा-चिंतन

उमेश चन्द्र पुरोहित
शोधछात्र संस्कृत विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

भारत में ऋषि-मुनि प्रातः स्मरणीय हैं। उनके द्वारा प्रणीत इतिहास-पुराणों को देखने से प्रतीत होता है कि पूर्व काल में भारत राष्ट्र सभी प्रकार से उन्नति-अभ्युदय के शिखर पर था। ज्ञान विज्ञान, बल बुद्धि, ऐश्वर्य-वैभव आदि प्रत्येक विषय में इस देश ने अत्यधिक विकास करके कल्पनातीत सामर्थ्य प्राप्त किया था। प्राचीन काल में ऐसे अनुपम एवं अद्भुत शक्ति सामर्थ्य के प्राप्त होने का कारण यह था कि यहाँ के लोग अध्यात्मवादी ज्ञानपरायण थे। उनकी वेद-शास्त्रों में अटल श्रद्धा थी।

शास्त्रों में मनुष्य के लिए गुरु के घर में रहकर विद्याभ्यास करने का निर्देश होता है। हमारे प्राचीन प्रमुख भारतीय आचार्यों के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में चिंतन करके शिक्षा रूपी जिस अमृतधारा को प्रवाहित किया, उस अमृतधारा से हमारे पूर्वज व हमारी भावी संतानों के जीवन में ज्ञान रूपी प्रकाश की ज्योति फैली थी एवं फैलेगी।

प्रमुख भारतीय आचार्यों में वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, भारद्वाज, आदि गुरु शंकराचार्य, पाणिनि, वाल्मीकि, तुलसीदास, कालीदास, विद्यारण्य आदि कई महान् विभूतियाँ हुई। उन्होंने शिक्षा प्रदान करके भारतीय मानव समाज व संस्कृति को उजागर किया तथा शिक्षा के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किये।

शिक्षा शब्द का प्रयोग **''शिक्षा विद्योपादाने''** धातु से विद्या ग्रहण अर्थ में भारतीय शास्त्रों में किया गया है। शिक्षा को वेद पुरुष की नासिका कहा गया है **''शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य।''** इस शिक्षा की गणना वेदांग में भी की गई है।

''शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरण निरुक्तः छन्दसां गतिः।''

शिक्षा के लक्ष्य ज्ञान-विज्ञान एवं दर्शनों से आत्मा में एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न करना विद्या है।

''विद्यास्ति ज्ञान विज्ञान दर्शनः संस्क्रियात्मानि।। ब्रह्मसमन्वय।।

दूसरे शब्दों में आत्मा को संस्कृत करना ही शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है। विद्या से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। **'विद्ययामृतमश्नुते' (ईशोप. १४, मनुस्मृति १२/१४०)**

वेद व्यास शिक्षा के संदर्भ में कहते हैं - **शास्त्रयोनित्वात् (वेदान्त सूत्र १/१/१)**

अर्थात् भगवान् के स्वरूप निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण है। परमानन्दस्वरूप भगवान् हैं या नहीं, स्वप्नरूप संसार है या नहीं, इसका निर्णय भी शास्त्र करते हैं। अतः वे परमात्म प्रतिपादक हैं और परमात्मा स्वयं 'शास्त्रयोनि' है अतः सभी शास्त्रों में परिपूर्ण शिक्षा भी वेद व्यास परमावश्यक मानते हैं।

शिक्षासाहित्य विमर्श:

डॉ. (श्रीमती) विजयलक्ष्मी
प्रवक्ता-एस.डी. महाविद्यालय:
मुजफ्फरनगर

तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षास्वरूपं वर्णयन् कथयत्युपनिषत्कार:

वर्ण: स्वर:। मात्रा बलम्। साम सन्तान:।

इत्युक्त: शिक्षाध्याय:। (प्रथमा वल्ली) द्वितीयोऽनुवाक:।

वेदाङ्गेषु प्रथमं स्थानं भजते शिक्षासाहित्यम्, यतो हि शिक्षाशास्त्रमधीत्यैव अन्यानां वेदाङ्गानां वेदादिग्रन्थानामध्ययने पठने मनने विचारणे जनस्य गतिर्भवति इत्यासीदाचार्याणामवधारणा। अतएवोक्तम् 'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य।' प्राक्तना अस्माकमाचार्य: शिक्षाविषये अतीव बद्धादरा आसन्, वर्णोच्चारणविषयकं तेषां चिन्तनं निगूढञ्चासीत्। अतएव तै: अतीवस्वल्पायस्यापि शिक्षाशास्त्रस्य बहुमाहात्म्यमुद्गीतम्, प्रयत्नेन पालितं शास्त्रम् रक्षितस्साधितश्च वर्णोच्चरणप्रकार:। प्रायश: शिक्षासम्बन्धिन: शताधिका: ग्रन्था: वेदस्य विभिन्नाभि: शाखाभि: संहिताभि: सम्बद्धा: वर्त्तन्ते, सामान्यं वर्णोच्चारणमादाय त्रय: शिक्षाग्रन्था उल्लेखनीया: सन्ति, इत्यस्ति विदुषां विचारणा। (शिक्षा सूत्राणि, सम्पादक: पं. युधिष्ठिरो मीमोसक:, भूमिकायां प्र0 02) प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे आपिशलि पाणिनि चन्द्रगोमि प्रभीतीनामाचार्याणां शिक्षाग्रन्थानां चिन्तनं कर्त्तुं मम प्रयास: तत्र तेषां किं किं वैशिष्ट्यं को को भेद: परस्परं शिक्षाग्रन्थानाम्, आधुनिके युगे तेषां किमस्त्यौचित्यमस्माकं समाजस्य कृते इति।

भारतीयाचार्य्याणां शिक्षाविषयकं चिन्तनम्

डॉ० धर्मेन्द्र शास्त्री
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
श्री गुरुतेग बहादुर खालसा, महाविद्यालय, देवनगर, नई दिल्ली

शिक्ष-विद्योपादाने इत्यस्माद्धातो: टाप् प्रत्यये कृते 'शिक्षाशब्द:' सिध्यति। यस्यार्थोऽस्ति ज्ञानप्राप्ति:, अधिगमोऽध्ययनं वा। शिक्षानुरूपमेव विद्याशब्दोऽस्ति। विद् ज्ञाने श्त्यस्माद क्यापि प्रत्यये कृते सिध्यति विद्याशब्द:। शिक्षाशब्दंनाद्यत्वे ज्ञानं विद्या, उपदेशादीनाम् बहूनां शब्दानां प्रयोग: प्राचुर्येण उपलभ्यते। अंग्रेजी भाषायाम् शिक्षाशब्दस्य कृते Education शब्द: प्रयुज्यते। अस्य शब्दस्य उत्पत्ति: लेटिनभाषाया: एभित्रिभश्शब्दै: साध्यते। (1) Education अस्यार्थोऽस्ति Act of teaching or training संवर्द्धनम् - 'प्रशिक्षणम्' (2) Educare अस्यार्थो भवति 'To Educate' 'To bring up' To raise'

(3) 'To Educare' 'To bring gorth' To lead out' पथप्रदर्शनम् ।। एवम्प्रकारेण निश्चप्रंच वक्तुमिदं कथ्यते यत् शिक्षा शब्दस्यार्थो भवति बालकस्य सर्वेषां मानवीय गुणानाम् विकासः।

यतो हि ज्ञानस्यावश्यकता सर्वदैव भवति।

ज्ञानं बिना मानवः पशु समान एव।

(क) शिक्षायाः परिभाषा विस्तृता व्याख्या च।
(ख) वेदेषु शिक्षाविषयकं चिन्तनम्
(ग) उपनिषत्सु शिक्षाविषयकं चिन्तनम्
(घ) भारतीया चार्येषु शिक्षाविषयकं मतम्
(1) स्वामी दयानन्दस्य मतेन शिक्षायाः स्वरूपम्, उद्देश्यच।
(2) रवीन्द्रनाथ टैगोर ,, ,, ,,
(3) स्वामी विवेकानन्दस्य मतेन ,, ,,
(4) श्री अरविन्दमहोदयाभिमतम्
(5) पण्डितप्रवरणानाम् मदनमोहनमालवीयानां चिन्तनम्।
(6) महात्मा गांधी महोदयस्य मौलिकं चिन्तनम्।।

उपसंहार :- सर्वेषामाचार्याणां अभिप्रायः
शिक्षायाः सामान्य कार्याणि शिक्षायाः उद्देश्यानि

भारतीयाचार्याणां शिक्षा विषयकं चिन्तनम्

डॉ० उर्मि गौतम
बरेली

वेद भारतीय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति, साहित्य, दर्शन और सदाचार के मूल हैं। सुदीर्घ काल तक वेदों का अध्ययन-अध्यापन और याज्ञिक अनुष्ठान श्रुति परम्परा से ही होते रहे। काल क्रम से वेद दुर्बोध प्रतीत होने लगे, तो उनके अध्ययन-सौकर्य के आग्रहवश वेदांगों की आवश्यकता हुई। ब्राह्मण काल के अनन्तर लोक भाषा के अधिक विकास होने पर संहितात्मक वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण कठिन हो गया। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये प्रातिशाख्य ग्रन्थों, शिक्षा ग्रन्थों और अनुक्रमणिका ग्रन्थों की रचना हुई।

अनुक्रमणी ग्रन्थ से तात्पर्य है प्राचीन वैदिक साहित्य के विभिन्न अंशों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक सूक्ष्म विवेचन और तत्सम्बन्धित सभी ज्ञेय विषयों का मार्गदर्शन एवं दिग्दर्शन कराने वाला सहायक ग्रन्थ। अनुक्रमणियों में सूक्त प्रतीक, ऋषि, ऋक्, संख्या, छन्द और देवता के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता बताई गई है।

ऋग्वेद के प्राचीन अनुक्रमणीकारों में प्रमुख आचार्य हैं शौनकाचार्य, कात्यायन और वेङ्.कटमाधवाचार्य। शौनकाचार्य कृत दस अनुक्रमणियाँ तथा कात्यायन कृत 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। वेङ्.कटमाधव कृत 'ऋग्वेदानुक्रमणी' उनके ऋग्वेद भाष्य ऋगर्थदीपिका की भूमिका का ही कारिकाओं में सङ्कलन है। ऋग्वेद के अष्टकों के अनुसार आठ मुख्य प्रतिपाद्य विषयों को स्वर, आख्यात, निपात, शब्दावृत्ति, ऋषि, छन्द, देवता तथा मन्त्रार्थ में निर्धारित किया गया है।

यद्यपि शिक्षा विषयक ज्ञान असीम है तथापि लाघव दृष्ट्या छन्द विषयक चर्चा अवलोकनीय है, जो कि शिक्षा ग्रन्थों का महत्वपूर्ण अंग है। कात्यायन मुनि ने कहा है यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः अर्थात् जो अक्षर का परिमाणं है, वह छन्द है। कोश के अनुसार छन्द शब्द का अर्थ आह्लाद है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में छन्द पद का विर्वचन ''आच्छादित करना'' अर्थ वाली छन्द (छद्) धातु से किया है।

शिक्षा का लक्ष्य-दैवी सम्पत्

डॉ० बबीता शर्मा
प्रवाचिका, दर्शन विभाग
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय,
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

इसे काल का प्रभाव कहें या मनुष्य की निरंकुश इच्छाओं का अनियन्त्रण कहें अथवा भौतिक पर्यावरण का परिवर्तन कहें, कुछ भी हो - यह सत्य है कि आज शिक्षा कालक्ष्य, शिक्षण पद्धति और शैक्षणिक मूल्य सभी कुछ परिवर्तित हो गया है। इस बात को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि विद्या को अर्थकरी होना ही चाहिए। शास्त्र कहता है तब तक जीवन है तब तक स्वयम् को अजर और अमर समझ कर विद्या और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये- **''अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्''**। किन्तु इस कथन का जो दूसरा भाग है कि **''गृहीत एव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्''** अर्थात् धर्म का आचरण मनुष्य को प्रतिक्षण यह सोचकर करना चाहिये कि मानो मृत्यु ने केशों को पकड़ा हुआ है। पता नहीं कब अपने साथ लेकर चल दे- इस भाग को मनुष्य ने भुला दिया है। अर्थ के साथ धर्म, यही तो है विद्या का मूल्य।

प्रायः शिक्षा और विद्या को एक ही अर्थ में गृहीत किया जाने लगा है। किन्तु वस्तुतः इन दोनों का अर्थ पृथक्-पृथक् है। शिंक्षा साधन है विद्या उसका साध्य है। अर्थात् शिक्षा से

विद्या की प्राप्ति की जाती है। शिक्षा बहिरंग है जो व्यवहार में दृष्टिगोचर होती है, विद्या अन्तरंग विषय है जो अन्त:करण के माध्यम से चेतन में प्रवेश करती है। विद्या बाहर दृष्टिगोचर नहीं होती। बाहर तो उसका कार्य दिखाई देता है। शिक्षा से भौतिक संसाधन जुटाये जा सकते हैं दैवी सम्पत् अर्जित नहीं की जा सकती।

शिक्षा और विद्या में स्वरूपगत अन्तर भले ही हो किन्तु दोनों का लक्ष्य एक ही होना चाहिए। शिक्षा और विद्या के लक्ष्यों में जो एक अन्तराल आ गया है उसे दूर किये बिना मूल्यों की रक्षा नही की जा सकती। दैवी सम्पत् की प्राप्ति ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये और यही लक्ष्य विद्या का भी है। शिक्षा और विद्या का समन्वय हुए बिना इस लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है।

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था

डॉ० प्रेरणा गोयल
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

वैदिककालीन भारत में शिक्षापद का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में किया जाता था। अक्षरों तथा पदों के विशिष्ट उच्चारण कर ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा का अर्थ होता था। इस विषय पर पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ अति महत्वपूर्ण है। शिक्ष विद्योपादाने (धातु, पाठ-13-1)। प्राचीन समय में वेदों के सस्वर पाठ को बहुत महत्व दिया जाता था। किस अक्षर का किस प्रकार उच्चारण करना है, किस पद और वाक्य का किस स्वर में उच्चारण करना है, इसका विशेष ज्ञान शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को कराया जाता था। छ: वेदांगों शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त:, छन्द और ज्योतिष में शिक्षा को प्रथम स्थान दिया जाता था। विद्या पद् में ज्ञान, विज्ञान, अध्ययन, शिक्षण,दर्शन कला, शिक्षा शास्त्र, साहित्य आदि भावों का अन्तर्भाव निहित था। आचार्य योग्य छात्रों को शिक्षा प्रदान करते थे। शिक्षा मनुष्य का सबसे बड़ा धन समझा जाता था। यह कल्पलता के समान था।

विद्या प्राप्त करने के अनेकों प्रयोजन माने जाते थे। सामान्यत: मनुष्य अपने समाज देश और जाति की संस्कृति को सुरक्षित रखे। इस संस्कृति और सभ्यता का रक्षक छात्र माना जाता था। तथा समाज में सुख और प्रसन्नता का संचार करके सांस्कृतिक तत्वों की रक्षा करना भी समझा जाता था। भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति में भी विद्या का विशिष्ट योगदान था। अत: शिक्षा निम्न उद्देश्यों के लिए प्रदान की जाती थी।

चरित्र का निर्माण करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना।

2. ईश्वर के प्रति आस्था और धार्मिक भावना को बढ़ाना।
3. व्यक्तित्व का निर्माण करना।
4. आत्म संयम का विकास।
5. आत्म विश्वास को उत्पन्न करना।
6. तीनों ऋणों का ज्ञान और उससे मुक्त होना।
7. सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना।
8. आर्य संस्कृति और परम्पराओं की रक्षा करना।

वैदिक शिक्षा पद्धति में शिक्षा के उद्देश्य बहुत अधिक उदार और गौरवमय माने जाते थे। इससे सारा संसार प्रभावित था। भारतीयों ने देश और विदेशों में भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य का प्रचार प्रसार किया था।

पंचमुखी शिक्षा- वैदिक शिक्षा का लक्ष्य

जितेन्द्र सिंह
शोध छात्र, दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

शिक्षा किसी भी देश की सभ्यता और संस्कृति का अनिवार्य अंग है। शिक्षा के द्वारा न केवल व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है, वरन् सामाजिक एवं सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण भी इसी शिक्षा से होता है। शिक्षा ज्ञान की साधना है। ज्ञान आत्मा का प्रकाश है। शिक्षा के उद्देश्य मनुष्य जीवन के उद्देश्यों से भिन्न नहीं हैं। शिक्षा एक प्रणाली है जिससे जीवन के उद्देश्य प्राप्त होते हैं। शिक्षा मानव की उन अन्तर्निहित शक्तियों, कुशलताओं एवं गुणों का विकास करती है जिनसे वह अपने जीवन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है। मानव जीवन का लक्ष्य है, ''धर्माचरण के द्वारा अर्थ और काम पुरुषार्थों की साधना करते हुए परम पुरुषार्थ 'मोक्ष' अर्थात् सत्, चित्त, आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करना''। भारतीय दृष्टि से विद्या का मुख्य उद्देश्य भी यही बताया गया है। ''सा विद्या या विमुक्तये'' इस परमलक्ष्य की प्राप्ति हेतु व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा भी आवश्यक मानी गयी है। इशोपनिषद् में इसका उल्लेख है

''विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥
अन्धं तमः प्रवशन्ति ये विद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥''

भारतीय आचार्यों की दृष्टि में शिक्षा का लक्ष्य जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्रनिर्माण है। शिक्षा मानव को शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, आन्तारात्मिक एवं आध्यात्मिक पूर्णता प्रदान करती हो। इन उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुये इसे हमने ''पंचमुखी शिक्षा'' कहा है

जो निम्नलिखित हैं।
1. शारीरिक शिक्षा 2. व्यावसायिक शिक्षा 3. मानसिक शिक्षा 4. नैतिक शिक्षा 5. आध्यात्मिक शिक्षा
उपर्युक्त विषय को ही मैंने अपने शोधपत्र का विषय बनाया है।

वैदिक शिक्षा में गुरु शिष्य परम्परा का स्वरूप

अलका राठौर
शोध छात्रा
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

तैतिरीय उपनिषद् में **मातृदेवोभव, पितृदेवोभव** के साथ **आचार्य देवोभव** कहकर गुरु का महत्व माता पिता के तुल्य बताया गया है। इतना ही नहीं अनेक स्थानों पर तो गुरु साक्षात् परब्रह्म कहकर उसकी सर्वोपरिता को भी स्वीकार किया गया है। वस्तु स्थिति भी ऐसी ही है। बच्चे के पालन-पोषण का कार्य माता पिता करते है, किन्तु संस्कारवान बनाकर सुसभ्य मानव बनाना आचार्य की जिम्मेदारी है। इस महान उत्तरदायित्व के कारण ही गुरु मनुष्य समाज का देवता है उसकी महत्ता पर जितना लिखा जाए उतना कम है।

वैदिक शिक्षा पद्धति के अनुसार जैसे ही बालक की बुद्धि का विकास प्रारम्भ हो, उसे योग्य गुरु को सौंप देने का विधान है। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थी पूर्ण शिक्षित होने तक अपने गुरु के समीप रहकर जहाँ अक्षराभ्यास, भाषाबोध, व्याकरणसाहित्य, दर्शनादि का अध्ययन करते थे वहां उन्हें चरित्र, सदाचार, पवित्रता, आन्तरिक निर्मलता, अतिथि सेवा, भ्रातृभावना, सहयोग, सहानुभूति और परोपकार की शिक्षा भी दी जाती थी। गुरु के सानिध्य में रहकर शिष्य साधना का तेजस्वी जीवन बिताते थे। तपोवेष्ठित होने से उनका शरीर स्वर्ण जैसा देदीप्यमान होता था। संसार की कठिनाइयों से संघर्ष करने की उनमें शक्ति होती थी। साधना और स्वाध्याय के सम्मिश्रण से उनको आत्मज्ञान की अनुभूति हो जाती थी। विद्यार्थी केवल गुण-पुंज या ज्ञान-पुंज ही नहीं शक्ति पुंज भी होकर निकलते थे। फसस्वरूप उन्हें भौतिक सुखों की कोई आकांक्षा नहीं होती तब वे अधिकार नहीं कर्त्तव्य मांगतें थे। सेवा को व्रत समझते थे। साहस और कर्मठता उनमें कूट कूट कर भरी होती थी। मनुष्य शरीर के रूप में उनमें स्वयं देवत्व निवास करता था, ऐसे मेधावी पुरुषों से भारतभूमि भरी पूरी थी। यहाँ सुख और समृद्धि की वर्षा हुआ करती थी।

स्वामीदयानन्दसरस्वती-महोदयस्य शैक्षणिकविचारधारा

डा० लोकमान्य मिश्रः
शिक्षाशास्त्रविभागाध्यक्षः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मुम्बई परिसरः, मुम्बई

शिक्षादर्शनम्- स्वामीदयानन्दो वैदिकधर्मस्य संस्कृतेश्च मूलस्तम्भ आसीत्। सः स्वकालिकानां जनानां दुर्दशां वीक्ष्य दुःखितः आसीत्। सः तान् एतस्याः दशायाः विमुक्तये स्वकीयां शिक्षायोजनाम् आश्रमधर्मे आधारितं कृतवान्। यद्यपि बालकस्य औपचारिकीशिक्षायाः प्रारम्भः उपनयनसंस्काराद् भवति तथापि अनौपचारिकी शिक्षा तु गर्भावस्थायामेव आरम्भा भवति। तस्य कथनमस्ति यत् माता स्वकीयाय बालकाय पञ्चवर्षपर्यन्तं शिक्षादानं करोतु तथा च पिता अष्टवर्षाणि यावत्, तदनन्तरं बालकः विद्यालये प्रेषणीयः।

शिक्षादर्शनस्याधारभूतसिद्धान्ताः आवश्यकतत्त्वानि च

1. बालकानां पञ्चमे वर्षे बालिकानाञ्च अष्टमे वर्षे ज्ञानार्जनारम्भः करणीयः।
2. शिक्षासंस्थाः कोलाहलाद् दूरे परस्परञ्च क्रोशद्वये भवेयुः।
3. बालकानां शिक्षणसंस्थासु शिक्षकाः कर्मचारिणः पुरुषाः एवं बालिकानां संस्थासु स्त्रियः भवेयुः।
4. बालकबालिकानां कृते शिक्षया सह शारीरिकशिक्षा अपि प्रदेया।
5. बालकानां बालिकानाञ्च कृते ब्रह्मचर्यं सेवनीयम् अनेन ज्ञानं प्राप्नुवन्ति।
6. बालकबालिकासु यज्ञप्रार्थनाप्राणायामद्वारा कामप्रवृत्तौ नियन्त्रणस्य क्षमतां प्रादुर्भावयेत्।
7. बालकेभ्यो बालिकाभ्यश्च वरिष्ठकनिष्ठं प्रति व्यावहारिकी शिक्षा प्रदेया।
8. बालकबालिकासु सत्यनिष्ठायाः सहनशक्तेः अनुशासनस्य च विकासः करणीयः।
9. सर्वेषां कृते भेदभावं विना शिक्षा प्राप्तेः समानधिकारो भवेत्।

शिक्षायाः उद्देश्यम्

स्वामिदयानन्दमते शिक्षायाः प्रमुखम् उद्देश्चयं धर्माचरणं वर्तते। तस्य मतानुसारं प्रत्येकछात्रः वेदेषु पारङ्गतो व्यवहारे च प्रशिक्षितो भवेत्। स्वामिनो मतानुसारं मुख्योद्देश्यानि-

1. वैदिकसंस्कृतेः पुनरुत्थानम्।
2. मनुष्याणां विशुद्धचरित्रस्य निर्माणम्।
3. मानवेषु सांस्कृतिकवैयक्तिकतायाः विकासः।
4. जनानां मानवीकरणम्।
5. मनुष्येषु सदसद्विभेदशक्तेः विकासः।
6. मनुष्येषु राष्ट्रियैकतायाः विश्वबन्धुत्वस्य च भावनायाः विकासः।

शिक्षायां स्वामिविवेकानन्दस्य योगदानम्

डॉ० गणेश शंकर विद्यार्थी
प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र विभाग,
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, लखनऊ परिसर: लखनऊ

देशस्य राजनैतिकचेतनया सह सांस्कृतिक धार्मिकभावनानां विकासे स्वामी विवेकानन्दस्य महत्वपूर्णं स्थानं वर्तते। अनेन कर्मोद्योगपरिश्रमस्य पाठ: पाठित:। रूढिवादस्य पुरातन शृङ्खलां विनष्टीकृत्य धर्मस्य मूलतत्वं प्रकटितम्। स्वामीविवेकानन्देन शिक्षाया: महत्वं स्वीकृतम्। 'भारतस्य निर्धनताया: एकं कारणम् अशिक्षा वर्तते' इति स्वामिना स्वीकृतम् स्वामिविवेकानन्द: तात्कालिक शिक्षा प्रणाल्या दु:खित: आसीत्। तां शिक्षां तेन 'निषेधात्मकशिक्षा' इति कथिता। स्वामिनो मतानुसारं शिक्षा केवलं सूचनापर्यन्तं सीमिता नास्ति। व्यक्तौ ज्ञानं स्वत: निहितं वर्तते, ज्ञानं स्वयं सिद्धं वर्तते। गुरु: केवलं प्रेरणां ददाति।

शैक्षिकोद्देश्यम्

स्वामीविवेकानन्दस्य मते शिक्षाया: प्रमुखमुद्देश्यं चरित्रनिर्माणं वर्तते। मानसिकसमस्त वृत्तीनां समवाय: चरित्रं भवति। चारित्रिकदृष्ट्या सुखदु:खयो: समानरूपेण महत्वं भवति। यदा कदा दु:खं सबलशिक्षकत्वेन भवति।

चरित्रनिर्माणं सत्संस्कारै: भवति। कुत्सितकार्याणि कुत्सितसंस्कारं ददति। य: कुत्सित शब्दं शृणोति, कुत्सितविचारं करोति, कुत्सितकार्यञ्च करोति तस्य मन: कुसंस्कारै: परिपूर्णं भवति। तादृश: जन: कुसंस्कारप्रभावात् कुकर्म करोंति। एवमेव सत्संस्कारयुक्तो जन: सत्कर्मणि प्रवृत्तो भवति। य: सत्संस्कारेण सत्कार्यं करोति तस्य चरित्रं सुगठितं भवति, इदं चरित्रगठनमेव शिक्षाया: उद्देश्यं वर्तते।

शिक्षणविधि:

स्वामीविवेकानन्दस्य मतानुसारं केवलमेकैव मार्ग: 'एकाग्रता' वर्तते। मनस: एकाग्रतया एव शिक्षणं भवितुमर्हति। एकाग्रताया: शक्तिप्राप्त्यर्थं ब्रह्मचर्यम् आवश्यकं भवति। ब्रह्मचर्येण बौद्धिकाध्यात्मिकशक्ति: प्राप्यते, अत: बालकै: ब्रह्मचर्यस्य अभ्यास: करणीय: स्वामिन: समर्थितशिक्षणविधौ पुस्तकीयशिक्षाया: प्राधान्यं नास्ति।

शिक्षक: शिष्यश्च

स्वामिन: मतानुसारं शिक्षा 'गुरुगृहवास:' शिक्षकस्य चरित्रम् अग्नि इव प्रकाशमानं स्यात्।

ज्ञानस्य दानं त्यागं विना न सम्भवति अतः गुरुः (शिक्षकः) त्यागी भवेत्। शिक्षकस्य शिष्यान् प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहारः भवितव्यः, यतोहि शुद्ध प्रेम्णा आध्यात्मिकता जागृता भवति। शिष्यस्य गुरौ विश्वासः स्यात् तस्य पूजा ईश्वरदृष्ट्या करणीया।

जनसमूहस्य शिक्षा स्त्रीशिक्षा च

स्वामीविवेकानन्देन कथितमस्ति यत् भारतस्य अवनतेः प्रमुखं कारणं स्त्रीणाम् अशिक्षा वर्तते। वर्तमानबालिकाः एव भविष्ये जननी भविष्यन्ति। स्त्रियः शक्तेः सजीव प्रतिमाः भवन्ति। स्त्रीणाम् अनेकसमस्यानां समाधानं शिक्षया भवितुमर्हति। स्त्रीणां शिक्षायाः केन्द्रं कर्म भवेत्, तासाम् आदर्शः सीतायाः चरित्रं भवेत्।

जनसमुदायं प्रति स्वामिनः हृदये अपारस्नेहः आसीत्। तस्य मतमासीत् यत् जनसमूहस्य उपेक्षा महान् राष्ट्रियपापः वर्तते। भारतवर्षस्य उन्नतेः आधारः जनसाधारणस्य शिक्षायां निहितो वर्तते।

वेदाङ्ग में शिक्षा

अंशिता मिश्रा
शोध-छात्रा, संस्कृत प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेदाङ्ग में शिक्षा का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है, इस बात का अनुमान मुण्डकोपनिषद् की वेदाङ्ग सूची में शिक्षा के प्रथम उल्लेख से लगाया जा सकता है। वेद पुरुष का यह घ्राणस्थानीय है।

सायण के शब्दों में-

"स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।"

शिक्षा वस्तुतः ध्वनिविज्ञान है, जिसके अन्तर्गत वर्णों, स्वरों, मात्राओं, उच्चारण स्थानों तथा उच्चारण प्रकारों का विवेचन है। यज्ञों में तथा अन्यत्र स्वाध्याय, पारायण आदि में भी पूर्णफल के लिए मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण पर विशेष बल दिया जाता था। यज्ञ में मन्त्र का अशुद्ध उच्चारण होने से यज्ञ असफल हो सकता था, ऋत्विज और यजमान दोनों का भयंकर अनिष्ट हो सकता था। याज्ञिकों का ऐसा दृढ़ विश्वास था कि स्वर वर्ण, मात्रा आदि किसी भी दृष्टि से अशुद्ध उच्चारित मन्त्र यजमान को वज्र बनकर नष्ट कर देता है। इसलिए मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण प्रकार की जानकारी के लिए शिक्षा वेदाङ्ग की उपयोगिता थी। अपरं च सभी शाखाओं संहिताओं की

उच्चारण प्रक्रिया एक समान नहीं थी। शाखा संहिताओं के उच्चारण सांकर्य को रोकने के लिए यह आवश्यक था कि शाखा प्रवचनकार स्वयं या उनके शिष्य अपनी शाखा संहिता के उच्चारण प्रकार को सुव्यवस्थित रूप देकर शिष्यों के लिए सुबोध बनायें। इसी प्रयोजन से अलग अलग शाखा संहिताओं के उच्चारण वैशिष्ट्य को बताने के लिए शिक्षा वेदाङ्ग का अभ्युदय हुआ।

वैदिक शिक्षा प्रणाली में मानवाधिकार एवं आधुनिक शिक्षा-पद्धति

डॉ० के०पी० सिंह
एम0पी0एन0पी0जी0
कालेज मुलाना, अम्बाला

अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। राष्ट्र का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है, जिसके लिए राष्ट्र के द्वारा व्यक्ति को कतिपय सुविधाएं प्रदान की जाती हैं और प्रदान की जाने वाली इन बाह्य सुविधाओं का नाम ही अधिकार है। मानवाधिकारों का अभिप्राय उन नैतिक अधिकारों से है, जिनके बिना मनुष्य, मनुष्य ही नही रह जाता और जिनसे युक्त होकर वह अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। अमरीकी तथा फ्रांसीसी क्रान्तियों के पश्चात् मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। भारतीय संविधान के मूल अधिकार भी मानवाधिकार प्रसंविदा के प्रावधानों के अनुरूप ही हैं जिनमें-

1. समानता का अधिकार
2. स्वतंत्रता का अधिकार
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार
4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
5. संस्कृत और शिक्षा का अधिकार
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

वैदिक संस्कृति की शिक्षा आदर्श पूर्ण शिक्षा

रुचि मिश्रा
शोध छात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शिक्षा का महत्व चिरकाल से अक्षुण्ण रहा है क्योंकि शिक्षा का लक्ष्य मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को विकसित करना है। शिक्षा न केवल भौतिक विकास करती है, वरन् यह आध्यात्मिक विकास भी सम्पन्न करती है। हमारे पूर्वज इससे भली भांति अवगत थे अत: वे यह कामना करते थे कि

'धियो यो न: प्रचोदयात्'

अर्थात्, हे ईश्वर बुद्धि को सत्मार्ग की ओर लगाओ। इतना ही नहीं

'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम: उक्तिं विधेम'।

अर्थात्, हे अग्निदेव हम सन्मार्ग से होकर विश्व की ओर बढ़ें। आप हमें उधर ले ही नहीं चलें, अपितु आप हमारे हृदय से दुर्गुण एवं पाप भावनाओं को निकाल दें। जिससे कि हमारी बुद्धि द्वारा सम्पादित होते हैं। यदि बुद्धि निष्पाप है तो कार्य भी निष्कलुष होंगे।

इतना ही नहीं वैदिक संस्कृति का एक आदर्श यह भी था 'सत्य शिवं सुन्दरम्' के साथ विश्व कल्याण की कामना। इस प्रकार वैदिक शिक्षा के आदर्श आज भी मानव जीवन को उच्च पथ की ओर ले जा सकने में समर्थ हैं। उस समय की आध्यात्मिक व भौतिक उन्नति ही नहीं, आज भी जीवन के प्रत्येक पहलू की उन्नति इन आदर्शों द्वारा संभव है।

शिक्षाशास्त्र के उपजीव्य उपनिषद्

डॉ० अर्चना शर्मा
रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग
सदानन्द डिग्री कालेज, छिवलहा, फतेहपुर

सारस्वतसाधना के उद्गम उपनिषदों के आधार पर मनीषियों ने शिक्षाशास्त्र के भव्य प्रासाद को प्रतिष्ठित किया तथा उस उज्ज्वल भविष्य की नींव डाली जिसके हम भोक्ता तथा अधिकारी

हैं। निःसंदेह शिक्षाशास्त्र के उपनिषद् ही हैं, जिसमें भारतीय शिक्षादर्शन के मूलभूत सिद्धांत उदात्त रूप में विद्यमान हैं। भारतीय शिक्षा दर्शन के मूल तत्वों को हृदयंगम करने के लिये उपनिषदों का आश्रय अपरिहार्य है। उपनिषदों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचते हैं कि उनमें शिक्षा संबंधी अप्रतिम सामग्रीसमूह विद्यमान है। निष्पक्ष तथा वैज्ञानिक भाव से चिंतन करने पर यह ज्ञात होता है कि शिक्षा की विशिष्ट परिभाषाओं तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उपनिषदों का शिक्षा संबंधी परवर्ती चिंतन पर स्थायी प्रभाव है। सूक्ति, सांकेतिकता, विलक्षण मनोवैज्ञानिक विश्लेष्ण आदि की दृष्टि से उपनिषदों ने शिक्षाविदों को विमुग्ध किया है।

औपनिषद् शिक्षा दर्शन मानवतावादी है तथा संसार की अभ्युन्नति करने की उदात्त भावना से युक्त है। यह दिग्भ्रमित मानवता के सच्चे पथ प्रदर्शक के रूप में परमोपयोगी है। उपनिषदों में आध्यात्मिकदीप्ति तथा कक्षादक्षता से युक्त शैक्षिक विचारों की प्राणवान् तथा प्रगतिशील प्रवृत्तियों का वर्णन स्मरणीय तथा अनुकरणीय शब्दों में गुम्फित है। तैत्तिरीय उपनिषद् के तीन प्रपाठकों में प्रथम शिक्षावल्ली के द्वारा प्रस्तुत आचार्यकुल का आदर्श तथा शिक्षा संबंधी सिद्धांत किसी भी दृष्टि से महत्तम हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। समावर्तन संस्कार के अवसर पर आचार्य द्वारा उपदिष्ट तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्यों को आज भी आधुनिक शिक्षा संस्थानों तथा विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोहों में उच्चारण कराना आवश्यक समझा गया। चित्ताकर्षक विशद् कल्पनाओं, कोमल अभिव्यंजनाओं तथा मार्मिक उक्तियों से परिपूर्ण उपनिषदों की परिधि अत्यन्त व्यापक तथा विस्तृत है, जिनमें मानवता का इतिहास, मानव जीवन की व्याख्या, भारतीय मनोवेगों का उदात्त स्वरूप तथा शिक्षाशास्त्र संबंधी शाश्वत सिद्धान्त अपने श्रेष्ठतम् रूप में विद्यमान हैं। जीवन की घनीभूत विशदतम निगूढ़ अनुभूतियों को उपनिषद् अपने महाकालेश्वर में समेटे हुए हैं तथा मानवीय उच्चादर्शों को उद्भाषित करते हैं। विविधताओं से युक्त उपनिषदों में शिक्षाशास्त्र संबंधी ज्ञान का अनन्तकोश विद्यमान है। शिक्षाशास्त्र की आधारभूमि उपनिषदों में अन्तर्निहित शाश्वत शैक्षिकतत्व विकल्पग्रस्तचित्त आधुनिक शिक्षाविदों के लिये अद्यावधि प्रासंगिक तथा उपादेय हैं।

समकालीन शिक्षा पद्धति और वेद
(एक दार्शनिक दृष्टि)

बबलू वेदालंकार
दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि.,हरिद्वार

समकालीन शिक्षा पद्धति के ऊपर विचारकों शिक्षाविदों ने अनेक प्रश्नों को उठाया है। इन प्रश्नों की झड़ी उस समय तीव्र हो जाती है जब परीक्षा व परीक्षा परिणाम के समय विद्यार्थी तनाव व आत्महत्या तक की ओर बढ़ जाते हैं। विद्यार्थियों की इस समस्या से उनके शुभ चिन्तक व

माता पिता भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

ये समस्याएं उत्पन्न क्यों हुई तथा इनका समाधान क्या है? यह प्रश्न चिन्तन को और शिक्षाविदों को प्रेरित करता रहा है। इन प्रश्नों को वैदिक शिक्षा के दृष्टिकोण से देखें तो समाधान प्राप्त हो जाता है। वेद आध्यात्मिक व भौतिक, दोनों प्रकार की शिक्षाओं को समान रूप से महत्व प्रदान करता है। यजुर्वेद व ईश उपनिषद् का कथन है कि केवल भौतिकवाद अनर्थ का कारण है और केवल अध्यात्मवाद उससे भी अधिक अनर्थकारी है। भौतिकवाद जीवन की ज्वलन्त समस्याओं को हल करता है अध्यात्म अमरत्व एवं आत्मिक शान्ति प्रदान करता है। वर्तमान की शिक्षा से इसलिए अनर्थ उत्पन्न हो रहा है क्योंकि यह मात्र भौतिकवादी है। अत: इसके साथ अध्यात्म की आवश्यकता है। केवल अध्यात्म की शिक्षा भी पूर्ण नहीं है क्योंकि वह आत्मिक शान्ति तो प्रदान करती है, परन्तु आज के समय में उत्पन्न ज्वलन्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाती। सरल शब्दों में कहें तो आज दार्शनिक व योगी को ही वैज्ञानिक, प्रशार्मनिक अधिकारी व राजनेता बनने की आवश्यकता है तथा इनको योगी व दार्शनिक।

वेदों में शिक्षा का स्वरूप

डॉ०रवीन्द्र सिंह
वरिष्ठ प्रवक्ता
देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, शांतिकुंज, हरिद्वार

भारतीय आचार्यों ने मनुष्य के चरित्र निर्माण, कर्तव्य अकर्तव्य के बोध एवं ऐहलौकिक और पारलौकिक नि:श्रेयस को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया। शिक्षा के द्वारा मनुष्य लौकिक उपयोगिता के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके लिए प्राचीन काल में विशेश शिक्षा प्रणाली एवं शिक्षणालयों की स्थापना की गई थी। प्राचीन समय में ये शिक्षणालय गुरुकुल या आश्रम कहलाते थे और आबादी से दूर वनों में होते थे। इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों की भौतिक आवश्यकताओं का प्रबन्ध आचार्य द्वारा बिना किसी शुल्क के किया जाता था। आचार्य छात्रों को सांसारिक कर्तव्यों का उपदेश देते थे। यह एक सर्वांगपूर्ण लोक कल्याणकारी शिक्षा पद्धति थी।इसमें ज्ञान विज्ञान अध्यात्म सभी का समावेश था। यह जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ थी और साथ में आध्यात्मिक एवं आत्मिक उत्कर्ष में भी। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा की सर्वाधिक अभ्यर्थना की गयी है, कहा गया है कि इस संसार के ज्ञान से बढ़कर पवित्र वस्तु और कोई नहीं है अत: अन्य सब विषयों की उपेक्षा कर विद्या प्राप्त करो। यह जीवन को सफल बनाने का सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है।

सृष्टि की रचयिता परमात्मा ने इस संसार में असंख्य पदार्थों का निर्माण किया परन्तु सबसे सुन्दर और बुद्धिमान रचना मनुष्य के रूप में की है। प्रश्न है कि मनुष्य कौन है? **'मत्वा कर्माणि**

सीव्यति इति मनुष्यः' अर्थात् जो बुद्धिपूर्वक विचर करके कार्य करे वह मनुष्य है। इस मनुष्य की बुद्धि के विकास के लिए तथा उसके सम्यक् प्रयोग के लिए शिक्षा आवश्यक है क्योंकि यही एक साधन है जो मनुष्य को ज्ञानवान बनाकर उसे मनुष्य कहलाने योग्य बनाती है। इसीलिए कहा गया है कि **'विद्या विहीनः पशु'** अर्थात् विद्या विहीन व्यक्ति पशु के समान है। स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा वह है जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की वृद्धि होवे और अविद्या आदि दोष छूटें। शिक्षा ग्रहण करने से मनुष्य में अच्छे और बुरे चिन्तन के साथ साथ धार्मिकता आ जाती है। अथर्ववेद कहता है कि विद्या प्राप्त करने वाला स्नातक इस पृथ्वी पर अतिशय शोभित होता है। भाव यह है कि मनुष्य को मानसिक और बौद्धिक दोनो दृष्टियों से समर्थ बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है। मानवीय चेतना जिन दो प्रकार के मूल्यों की परिधि में पल्लवित होती है। इनमें कुछ शाश्वत मूल्य कहा जा सकता है और कुछ परिवर्तनशील। शिक्षा को जीवन का शाश्वत मूल्य कहा जा सकता हैं, क्योंकि कोई अज्ञानी अथवा अशिक्षित व्यक्ति अपने जीवन को विकासशील नहीं बना पाता। ज्ञान की इस अनिवार्यता को ऋषियों ने अपनी गहन समाधि बोध से जाना है।

अतः वेदों की शिक्षा का उद्देश्य था यथार्थ का ज्ञान। वस्तुतः दुनिया वैसी नहीं है जैसी कि हमें दिखाई देती है या बतायी जाती है। व्यक्ति और समाज की समस्याएं वहीं नही हैं जिनकी चर्चा की जाती रही है। यथार्थता की तली तक पहुँचने के लिए किस प्रकार की गोताखोरी की जानी चाहिए इसी कला को सिखाना शिक्षा का उद्देश्य है। भ्रान्तियों, विकृतियों और कुरीतियों के बन्धन से छुटकारा पाकर स्वतंत्र चिन्तन की क्षमता प्राप्त करने और जीवन तथा विश्व का यथार्थ स्वरूप समझ सकने के योग्य तीक्ष्ण दृष्टि प्राप्त करने का नाम मुक्ति है। तत्वदर्शियों केअनुसार इसी मुक्ति को कार्यगत बनाना शिक्षा का मूलभूत प्रयोजन है।

वैदिक ऋषियों के अनुसार शिक्षा का सीधा अर्थ सुसंस्कारिता का प्रशिक्षण है उसे नैतिकता, सामाजिकता, सज्जनता, प्रमाणिकता आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। वेदों में वर्णित गुरुकुल रूपी विकसित एवं परिष्कृत शिक्षण संस्थानों में छात्र के व्यक्तिगत को इन्हीं गुणों के साथ प्रखर एवं ओजस्वी युक्त बनाया जाता था। वैदिक मनीषी इस लक्ष्य से भली भांति परिचित थे। अतः समाज व जीवन में सुसंस्कृत आचरण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।

पातञ्जलशिक्षातत्त्वम्

डॉ० रमाकान्तमिश्रः
प्राध्यापक
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, शृङ्गेरी, (कर्णाटकम्)

संसारेऽस्मिन् वर्तमानेषु बहुविधव्याकरणग्रन्थेषु आचार्यपाणिनिविरचिताष्टाध्यायी ग्रन्थः महत् स्थानं भजते। तत्र हि पाणिनीयसूत्राणां याऽत्युत्कृष्टा व्यावहारोपयोगिनी सरला व्याख्या महामुनिना भगवता पतञ्जलिना विरचिता, सा संस्कृतजगति महाभाष्यनाम्ना प्रचक्ष्यते।अत्र व्याकरणस्य शुष्कविषया सरसया सरलया रीत्योपस्थापिताः, यां मुक्तकण्ठेन प्रशंसन्ति सर्वे विद्वांसः। अस्य रचनासौष्ठवं मञ्जुलम्। वस्तुतो महाभाष्यमेतन्न केवलं पाणिनीयव्याकरणेऽतिमहत्वसाधकमस्ति, अपि तु समस्ते संस्कृतवाङ्मये इदमेकमद्भूतं प्रामाणिकं ग्रन्थरत्नमस्ति। महाभाष्य हि प्रायः पाणिनीयसूत्राणां पदानां विवेचनं कृतं वर्तते। वैयाकरणा ही सूत्रवार्तिकभाष्याणां सति परस्परविरोध महाभाष्यमेव प्रमाणत्वेन मन्यन्ते। तेनैव भगवता पतञ्जलिना शिक्षायाः सार्वकालिकत्वमुद्देश्यं मनसि निधाय स्वप्रणीते व्याकरणमहाभाष्ये नैकानि शिक्षातत्त्वानि स्पष्टीकृतानि वर्तन्ते। अत्र कानिचिदेव शोधपत्रे संवर्ण्यन्ते।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा-दर्शन

डॉ० आशारानी राय
प्राचार्या
कानपुर विद्या मन्दिर
महिला महाविद्यालय, कानपुर

प्रीति शुक्ल
कानपुर विद्या मन्दिर
महिला महाविद्यालय, कानपुर

महर्षि दयानन्द के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों का पुनरूत्थान करके धर्माचरण करना है। इन्होंने व्यवहारभानु में लिखा है कि विद्या के बिना मनुष्य को निश्चय ही दुःख मिलता है, अतः धर्मार्थ मोक्ष के लिए विद्या अभ्यास करना चाहिए। वह यजुर्वेद के अनुसार शिक्षा के पक्षधर थे कि मनुष्य विद्या एवं अविद्या दोनां को जानता है, अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को और विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करना है। निश्चित ही शिक्षा का तात्पर्य उस विद्या से है, जिससे यथार्थ के ज्ञान की प्राप्ति होती है, सद् असद् का ज्ञान होता है तथा व्यक्ति में सद्भावना एवं परकल्याण की भावना आती है और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास का प्रारम्भ शतपथ ब्राह्मण के वचन से किया है। जन्म के पॉच वर्ष तक माता शिक्षा देवें 5 से ८ वर्ष तक पिता शिक्षा देवें,

और नौवें वर्ष के प्रारम्भ में द्विज अपनी सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों, वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें।

Ideas and Ideals of Education in the Atharvaveda

Dr. Shashi Tiwari
Reader Deptt. of Sanskrit
Maitriyi College, Delhi University, Delhi
General Secretary, (WAVES), India

Various Aspects of education are discussed in many Vedic Texts. But among them Atharvaved provides maximum references to know the ideals of Vedic education established by the Vedic seers. Brahmacharya Sukta elaborates Brahmacharya as basic means of education. Medhajanana and Medhavardhana hymns prescribe development of intellect as the main purpoe of education. Diligence, carefulness, righteousness and sacrifice are some important principles for a seeker of knowledge. Atharvaveda describes several types of understanding by the use of different words for intellect such as medha, Dhi, Sumati, Anumati, Pramati etc. Ideas of Vedic seers on the concepts of a teacher, student, and relation of student with his teacher, sentiments of a teacher for his student, aim of teaching and teaching technique are deliberated upon in the verses directly or indirectly. In general over all progress of a student was the core objective of education according to the Atharvaveda.

आयुर्वेद:

अथर्ववेद में प्रतिपाद्य आयुर्वेद

भास्कर प्रसाद द्विवेदी
वरि0- अनु0 अध्येता संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

आयुर्वेद वह शास्त्र है जो जीवन की उत्कृष्टता के लिये व्याधियों से मुक्त करने वाली औषधियों का ज्ञान प्राप्त कराता है। आधि और व्याधियों की चिकित्सा आयुर्वेद द्वारा ही संभव हैं। वेद समस्त विद्याओं के भण्डार हैं। वेद में आयुर्वेद विषयक सैकड़ों मन्त्र हैं जिनमें विविध रोगों की चिकित्सा वर्णित है। अथर्ववेद को भेषज अर्थात् भिषग्वेद भी कहा जाता है। चरक और सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग (उपवेद) बताया है। चरक के अनुसार ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इन चारों वेदों में अथर्ववेद को ही आयुर्वेद की आत्मा कहनी चाहिये। क्योंकि अथर्ववेद में कहे हुए स्वस्त्ययन, बलिदान, मंगलकर्म, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास और मंत्र आदिकों से ही चिकित्सा का निर्देश किया गया है। अथर्ववेद में सर्वाधिक 288 औषधियों का उल्लेख मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि अथर्ववेद और आयुर्वेद में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

चूंकि अथर्ववेद का एक अभियान अथर्वाङ्गिरस भी है और वह अंगिरस अंगों के रसों अर्थात् तत्त्वों का वर्णन किये जाने के कारण अंगिरस कहलाता है। इसलिये वह अंगिरस या अथर्ववेद प्राणविद्या या शरीर विज्ञान से भी संबंधित है। यही कारण है कि गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है। 'येऽथर्वाण: तद् भेषजम्'।

आचार्य चरक ने आयुर्वेद का लक्षण बताते हुए कहा है 'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः'।

वेदों में आयुर्वैदिक शल्य-चिकित्सा

डॉ० उमा जैन
रीडर संस्कृत-विभाग
मुन्नालाल एवं जयनारायण खेमका, गर्ल्स कॉलेज, सहारनपुर

वेद आदि काल से ही मानव जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। उनमें ज्ञान विज्ञान का अनन्त भण्डार विद्यमान है। अतएव मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय कहा है।[1] आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से अनुशील करने पर ज्ञात होता है कि वेदों में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों और उपांगों का विशद वर्णन हुआ है। सुश्रुत ने आयु के हितकर और अहितकर तत्त्वों का विचार करने वाले को आयुर्वेद कहा है।[2] चरक का कथन है- 'आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः।' अर्थात् जो आयु का ज्ञान कराता है,

वह आयुर्वेद हैं स्वास्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के रोग को दूर करना आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य है।[4] ऋग्वेद और अथर्ववेद में आयुर्वेद के द्वारा मृत्यु के कारणों को दूर कर हम दीर्घायु प्राप्त करें।[6] अथर्ववेद में भिन्न भिन्न रोगों के उत्पादक कीटाणुओं का विवेचन एवं शरीर के अंगों की नीरोगता और आत्मा की अजेयता की प्रार्थना की गयी है।[8]

वेदों में आयुर्वेदिक आठ प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख मिलता है।[9] 1 कायचिकित्सा 2 बालचिकित्सा, 3 ग्रहचिकित्सा, 4 ऊर्ध्वांगचिकित्सा, 5 विषचिकित्सा, 6 रसायनचिकित्सा ,7 वृष चिकित्सा, 8 शल्य चिकित्सा आदि।[10] वेदों में शल्यचिकित्सा के विशिष्ट रुप द्रष्टव्य है। इनमें तीक्ष्ण औजारों द्वारा चीर-फाड़ करके दूषित तत्त्वों को बाहर निकाल दिया जाता है। साथ ही कटे हुए अंगों को पुनः जोड़ देना या उनके स्थान पर कृत्रिम अंगों का संधान कर दिया जाता है। इस अतिरहस्यात्मक विद्या में निष्णात अश्विनी कुमारों ने अथर्वा के पुत्र दधीचि के कटे हुए सिर के स्थान पर एक घोड़े का सिर लगा दिया था।[11] उन्होंने ही ऋग्वेद में असुरों द्वारा श्याव ऋषि के शीरर के काटे गये तीन टुकड़ों को जोड़कर उसे पुनः स्वस्थय और नीरोग बनाया था।[12] राजा खेल की पत्नी विशपला की टॉग युद्ध में कट जाने पर लौह कह बहुत हल्की टॉग लगा दी जाने पर वह चलने योग्य हो गयी थी। निःप्रति जंघा विशपलाया अधत्तम्।[13]

शरीर के विभिन्न अंगों के विषय में भी शल्य चिकित्सा के विशेष चमत्कार उल्लेखनीय हैं। अश्विनी कुमारों ने अन्धे राजर्षि ऋज्राश्व और ऋषि कण्व को नेत्र ज्योति प्रदान करके उन्हें चलने-फिरने योग्य बनाया।[14] नृषद् के पुत्र बहरे नार्षद ऋषि को श्रवण शक्ति प्रदान की।[15]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में सुख प्रसव का भी वर्णन है।[16] जिसमें अंग प्रत्यंगों से विकसित एवं मन-बुद्धि से युक्त गर्भस्थ बालक को गर्भाशय चीरकर बाहर निकाला गया।[17] अश्मरी रोगों में मूत्राशय में रुके हुए मूत्र को शल्य-चिकित्सा द्वारा बाहर किया है। जैसे झील में रुके हुए जल को बांध तोड़कर बाहर निकाला जाता है। उसी प्रकार मेहन (पौरुष ग्रन्थी) में रुके हुए मूत्र को बाहर निकालता हूँ।[18] अथर्ववेद में अंगों में चुभे हुए बाण, डंडे, रगड़ आदि से होने वाले घाव, चोट, फोडे फुन्सी, चर्मरोग, कॉख आदि की गिल्टियों के रोगों को दूर करने में भी शल्य चिकित्सा पूर्णतया सफल रही है।[19]

सन्दर्भः

1- मनुस्मृति 2/6
2 सुश्रुत सूत्र 1/23
3- चरक सूत्र. 30/23
4- चरक सूत्र. 30/26
5 ऋक्. 10/18/2, अथर्व. 12/2/30
6- वही
7 अथर्व. 9/8/12
8 अथर्व. 19/60/12
9 सुश्रुत. 1/6, चरक. 30/28, अष्टांग सूत्र 1/5/6

वैदिक वाङ्मय में चिकित्सा विज्ञान

डा० आशा गुप्ता
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
रणवीर रणञ्जय स्नात0 महा0, सुल्तानपुर

इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक साधन स्वरूप वेदों में मानव जीवन को स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित रखने के लिए चिकित्सा विज्ञान पर गहन चिन्तन किया गया है। जिस शास्त्र के ज्ञान द्वारा हमें दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है उसे आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद शब्द की व्याख्या सुश्रुत संहिता में संहिताकार ने इस प्रकार दी है 'आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वा आयुर्विन्दितीति आयुर्वेदः।'

वेदों में मानव-जीवन की सुरक्षा तथा रोगों से मुक्ति कि लिए प्रकृति के विभिन्न रूपों जल, अग्नि, वृक्ष, वन आदि के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। यजुर्वेद में कर्मकाण्ड के द्वारा चिकित्सा विज्ञान एवं स्वस्थ जीवन पर विचार किया गया है। सामवेद में दीर्घायु व स्वस्थ रहने का गान है। अथर्ववेद मानता है कि रोगी की चिकित्सा के लिए चिकित्सक एवं अनेक वनस्पतियों के साथ साथ उसके चारों ओर चिकित्सकीय वातावरण बनाकर ही रोगों का निदान किया जा सकता है। वैदिक मन्त्रों में प्रकृति के विभिन्न उपादानों को ही ओषधि के रूप में चुना गया है। सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी को विभिन्न रोगो को दूर करने के लिए तीक्ष्ण औषधि माना गया है, जिसका आज अत्याधुनिक युग में भी विशेष महत्त्व है।

अष्टविध शल्य प्रक्रियाओं का स्पष्ट संकेत वेदों में प्राप्त होता है। वैदिक वाङ्मय में वर्णित अग्निहोत्र यज्ञ एक अद्‌भुत चिकित्सा विज्ञान से पूर्ण होता हुआ विश्व के समग्र प्राणियों के निमित्त आरोग्य, पुष्टि, ओजस्विता, एवं दीर्घायुष्य प्रदान करने वाला है। वैदिक वाङ्मय में इस यज्ञीय चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन किया गया है।

ज्ञान की अक्षयनिधि ''वेदों'' में चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित विविध विषयों का उल्लेख है। मनु महाराज वेद को सब प्रकार के ज्ञान विज्ञान का आकर मानते हैं। उन्होंने कहा है कि ''परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के शब्दों के द्वारा ही सब पदार्थों व प्राणियों के नाम, कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की।'' निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि चिकित्सक वेदों में वर्णित रीतियों के अनुसार उपचार करने का प्रयास करें तो सम्भवतः उन्हे अनेक असाधारण रोगों पर विजय प्राप्त हो सकती है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्ही बिन्दुओं को किञ्चित् प्रकाशित करने का प्रयत्न मेरे द्वारा किया गया है।

।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।। मनु० १/२१

वेदों में स्वास्थ्य एवं सुखपरक-भारतीय दृष्टिकोण
(आयुर्वेद में स्वस्थ-वृत्त एवं सद्वृत्त के संदर्भ में)

डॉ० छाया रानी
वरि() प्रवक्ता एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
राज() स्नात() महाविद्यालय, अगस्त्यमुनि, रुद्रप्रयाग

भारत एक भौगोलिक तथ्य है, उत्तर में हिमालय और दक्षिण में सागर से घिरे इस क्षेत्रफल में रहने वाले सभी भारतीय हैं- 'तद्वर्षभारतं नाम भारतीय यत्र सन्तति'

विविध उद्यमों एवं स्रोतों से निर्गत लोग भारत आये और इसकी संस्कृति को प्रभावित किया, तथापि-'एकैव मानुषी जातिः' तथा 'भ्रातरो मानवाः सर्वे।' यही उद्घोष वसुधैव कुटुम्बकम् की सर्वजनीन, हितकामना के साथ मंगल मैत्री की भावना को जाग्रत करता है।

''सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत।।

वेद तो प्रारम्भ में एक ही था अध्ययन सौकर्य के लिए श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा इसे चार भागों में बांटा गया जो क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद है। ऋग्वेद के एक स्थल पर औषधियों के विषय में कहा गया हैं कि-

'या ओषधीः पूर्व जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनैनु बभ्रुणामहंशतं धामानि सप्त च।।' ऋ०, १०/९७/१

वेदों में आत्मा, मन, शरीरादि विषयों की व्याख्या की गई है और यह कहा गया है कि इनके द्वारा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष नामक साक्ष्यों की प्राप्ति होती है। इसीलिए वेदों को महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु मनुष्य आरोग्यता के अभाव में पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः स्वास्थ्य एवं सुख सम्बंधी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। यजुर्वेद में कतिपय मन्त्रों में औषधियों का प्रयोग यज्ञकर्म एवं स्वास्थ्य के लिए किया गया होगा। सामवेद में गायनोपासना के द्वारा श्वास एवं प्राण सम्बंधी रोगों के नियंत्रण पर विचार किया गया है। अथर्ववेद में चिकित्सा सम्बंधी वर्णन विशद रूप में प्राप्त होता है। साथ ही भैषज्यानि, आयुष्याणि, पौष्टकानि आदि सूक्तों का वर्णन स्वतंत्र रूप से भी है। चारों वेदों के उपवेदों का उल्लेख करते हुए चरण व्यूहकार ने ''ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेद इत्याह भगवान् व्यास स्कन्दो वा'' वाक्य द्वारा आयुर्वेद को उपवेद बतलाया गया है।

वेदों में आयुर्विज्ञान

डॉ. आर. के. जखमोला
अनुसन्धान अधिकारी
गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर

वेद भारतीय ज्ञान विज्ञान की गंगोत्री हैं। जहाँ मानव जीवन के परिशीलन हेतु ज्ञान विज्ञान की समस्त शाखा प्रशाखाओं की अभिव्यक्ति का बीजारोपण हुआ है। वेद मानव जीवन के प्राचीनतम सभ्यता संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के अपौरुषेय ग्रन्थ माने जाते हैं, इसीलिए भारत में ही नहीं अपितु विश्व में वेदों का अद्वितीय स्थान है, मानव आदिकाल से ही विविध रोगों के प्रतिकार हेतु निरन्तर संशोधन कार्य में जुटा है, नीरोग एवं दीर्घायुष्य ही आयुर्वेद का ध्येय है। चारों वेदों में आयुर्वेद का समुचित प्रकथन हुआ है किन्तु अथर्ववेद में त्रिस्कन्द सहित अष्टाङ्ग आयुर्वेद का सम्यक् विवेचन किया गया है, इसलिए आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद कहा गया है।

वेदों में आयुर्वेद की उत्पत्ति के कारण, मन का स्वरूप शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों का वर्णन, दीर्घायुष्य, रोगोत्पत्ति के कारण, सदवृत्त, भिषक् स्वरूप विविध प्रकार के रोगों का वर्णन, औषधि ज्ञान, चिकित्सा आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। ऋग्वेद में सृष्टि उत्पत्ति के कारणभूत तीन अनादि पदार्थों जीव, ब्रह्म और प्रकृति बताये हैं। जिनमें जीव अपने कर्मफल प्राप्त करने हेतु विभिन्न योनियों में जाता है। तथा परमात्मा चेतन और साक्षी है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषवजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं (स्वाद्वत्त्यनरश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।) ऋगवेद 1/164/20

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस शरीर में सुख 'दु:ख का भोक्ता जीव है जो मन और इन्द्रियों के साथ सुख दु:ख का अनुभव करता है, जीव मानव देह में आता है तो स्वाभाविक रूप से सुख और दीर्घायु की अभिलाषा करता है। किन्तु मानसिक और शारीरिक आधियाँ और व्याधियाँ जीवन में बाधायें उत्पन्न करती हैं, ये आधियां और व्याधियां उत्पन्न ही न हों, यही आयुर्वेद का प्रयोजन है, यदि मनुष्य रुग्ण हो तो उपचारार्थ भी विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

आथेर्वणीराङ्गिरसी दैंवी मनुष्यजा उत।
ओषधय: प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि'' अथर्ववेद

अर्थात् हे प्राण! जब तक तुम प्रेरणा करते हो तभी तक आर्थर्वणी आङ्गिरसी देवी और मनुष्यकृत औषधियाँ सफल होती है।

अथर्ववेद में आयुर्वेदीय चिकित्सा का विधान

डॉ० चरण सिंह
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर

अथर्ववेद में अनेक प्रकार के रोग दोष औषधि चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है। इनमें धमनियों में विष संचार को दूर करने के उपाय का उपदेश तथा शरीर के समस्त अवयवों की व्यथा को दूर करने के उपाय का उपदेश किया गया है।[1] पांव, जानु श्रोणी, पेट, कमर मस्तक कपाल, हृदय तथा अन्य अवयवों के रोगों का सूर्य किरण द्वारा दूर करने का स्पष्ट उल्लेख है।[2]

उसके अलावा गर्भाधान और प्रजनन विद्या, सर्पविष चिकित्सा कफ रोग निदान और चिकित्सा, वीर्यवती औषधियों के संग्रह करने का उपदेश किया गया है। जल के द्वारा हृदय रोग की चिकित्सा, जल से ओषध, जल से दोषों के नाश जल, चिकित्सा, का वर्णन प्राप्त होता है।

कण्ठमाला रोग का निदान और चिकित्सा तथा निन्यानवें प्रकार की गंडमालाओं को दूर करने का उपदेश किया गया है। रोग की चिकित्सा में विषाणुका नामक ओषधि के योगदान के विषय में कहा गया है कि यह ओषधि वात विकार से होने वाले सब रोगों का निवारण करने वाली तथा हृदय रोग व रक्तार्श पर भी गुणकारी है।

मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाले क्षयरोग (यक्ष्मा) तथा उसकी चिकित्सा का उल्लेख प्राप्त होता है। अनेक प्रकार की औषधियों जैसे मधुवल्ली, रोहणी ओषधि पिप्पली पृश्निवर्णी, श्यामा, दशवृक्ष, अपामार्ग ओषधि तथा केशवर्धनी आदि औषधियों के विषय में चर्चा है।

शरीर को हानि पहुँचाने वाले, तथा रोगों को उत्पन्न करने वाले कृमियों को नष्ट करने का उपदेश किया गया है। अथर्ववेद में इन कृमियों की प्रजातियों के बारे में कहा गया है जो कृमि काली भुजा वाले और अनेक वर्ण वाले हैं उनका नाश करना चाहिए। ये कृमि भी अनेक प्रकार होते हैं। कोई तीन सिर वाले तीन उच्च भाग वाले, होते हैं कई कृमि विचित्र रंग वाले तथा श्वेत रंग वाले भी होते हैं। इनमें कुछ दिखाई देनेवाले और न दिखाई देने वाले जो मनुष्य को कष्ट देते हैं। ऐसे कृमियों का नाश करना चाहिए।

1. अथर्व 6/90/2 2. अथर्व 9/8/21-22

अथर्ववेदीय चिकित्सा-विज्ञान

अनुराधा जायसवाल
शोध छात्रा
संस्कृत व प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत में चिकित्सा विज्ञान का आरम्भ ऋग्वेद काल में ही हो गया था। पूर्व वैदिक युग में यद्यपि कुछ शारीरिक व्याधियों और औषधियों का संकेत मात्र ही मिलता है, किन्तु अथर्ववेद तक आते आते भैषज्य विज्ञान का विशद प्रसार हो गया था। शरीर रचना और क्रिया विज्ञान के साथ साथ अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने के उपायों, औषधियों और उनके रंग रूपों, चिकित्सा पद्धतियों, क्रिमियों तथा उनकी रोग कारकता का उस सुदूर प्राचीन युग में इतना सूक्ष्म विवरण हमें विस्मय विस्फारित कर देता है। अर्थवेद के विभिन्न मन्त्रों में शरीर के प्रत्येक अङ्ग में होने वाले नाना रोगों का उल्लेख और इन्हें दूर करने की प्रार्थना औषधियां को सम्बोधित करके की गई है। रोग क्रिमियों का विस्तृत वर्णन इसी प्रसङ्ग में है।

औषधि चिकित्सा के अतिरिक्त दीर्घायुष्य की प्राप्ति पुंसत्व-प्राप्ति आदि में मन्त्र, रक्षा कवच, मणियों और विशिष्ट औषधियों की चिकित्सा भी थी, जिसका विस्तृत वर्णन चरक आदि चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अथर्ववेद काल में प्राकृतिक पदार्थों के द्वारा चिकित्सा कार्य पर अधिक बल दिया जाता था। इस प्रकार अथर्ववेद का चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारणवश आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद भी कहा जाता है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

अथर्ववेद में वर्णित आयुर्विज्ञान

डॉ० मन्जू नारंग
रीडर एवं अध्यक्षा- संस्कृत विभाग
एम.के.पी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

प्रत्येक जीवधारी दीर्घायु की प्राप्ति हेतु यथा सम्भव प्रयास करता है, किन्तु दीर्घ जीवन की प्राप्ति एक विद्या है, जिसका ज्ञान आवश्यक है। आयुर्विज्ञान का ज्ञाता मृत्यु के पाश को भी विखण्डित करने में समर्थ हो जाता है। अथर्ववेद में एतत् विषयक गहन चिन्तन उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में वर्णित है कि राजसिक अर्थात् भोगमय जीवन तथा तामसिक अर्थात् अज्ञानी जीवन से

दूर रहने वाला व्यक्ति मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। "अमुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्र मेष्ठा:"[1] अर्थात् हे मनुष्य! मैं तुम्हारे अन्दर प्राण तथा जीवन को पुनः स्थिर करता हूँ। तुम मृत्यु को प्राप्त मत हो। दीर्घायु की प्राप्ति हेतु शरीर में प्राण का स्थिर रहना अत्यावश्यक होता है। प्राण की अशक्तावस्था में दीर्घ जीवन सम्भव नहीं होता है। वेद कालिक ऋषि इस तथ्य से सुपरिचित थे, अतएव उन्होंने कामना की है "अग्निमिव जातमभि एं धमामि"[2] अर्थात् जिस प्रकार अग्नि की अल्प सी ज्वाला भी वायु के द्वारा प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी में विद्यमान प्राण को भी विविध उपायों से उद्दीप्त किया जाता है। अतएव दीर्घायु की प्राप्ति हेतु प्राण को अपने शरीर के समस्त अवयवों में कार्य करने हेतु सक्षम बनाना आवश्यक होता है।

दीर्घायु प्राप्ति के विभिन्न उपायों में ओषधि का सेवन महत्वपूर्ण होता है। अथर्ववेद में वर्णित है कि योग्य ओषधि के यथोचित सेवन से रोगों से मुक्ति होती है तथा नीरोगिता का विकास होता है। अथर्व वैदिक ऋषि ने कामना की है "आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते"[3] अर्थात् हे मानव! तुम इस अमृत रस रूपी ओषधि के पान से दीर्घायु को प्राप्त हो। वृद्धावस्था तक तुम अविच्छिन्न एवं भोग रहित जीवन को प्राप्त हो। वैदिक ऋषि ने कामना व्यक्त की है कि वृष्टि से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियाँ सुखदायक हों "वर्षाणिं तुभ्यं स्योनानि येषु वर्धन्त ओषधी:" अथर्ववेद के अष्टम काण्ड के सप्तम सूक्त में ओषधि विषयक सविस्तर वर्णन उपलब्ध हैं।

अथर्ववेद में जल चिकित्सा, विविध प्रकार की मणियों के प्रयोग से चिकित्सा, सूर्य की किरणों से चिकित्सा, वर्ण चिकित्सा, हृदय रोग तथा कामिला रोग की चिकित्सा का विवरण प्राप्त होता है। इन विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि अथर्ववेद में आयुर्विज्ञान विषयक गहन चिन्तन उपलब्ध होता है।

सन्दर्भ :-

1. अथर्ववेद 8/2/1 2. अथर्ववेद 8/2/4, 3. वही 8/2/4, 4.वही 8/2/22

आयुर्वेद में पञ्चकर्म चिकित्सा-पद्धति

राधा चतुर्वेदी
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में प्रदूषण का स्तर बढ़ता जा रहा है जिसके कारण मानव जीवन और स्वास्थ्य से जुड़ी समस्त व्यवस्था दूषित होती जा रही है। इसी को हम जल प्रदूषण,

नि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, अन्न प्रदूषण के रूप में साक्षात् विकराल अवस्था में देख रहे हैं। यह प्रदूषण धीरे धीरे सम्पूर्ण मानव जाति के लिए भयानक रूप धारण करता जा रहा है। इस लिए यह आवश्यक है कि मानव जाति को इससे बचाने के लिए किसी ऐसी चिकित्सा पद्धति को अपनाया जाय जो शत प्रतिशत लाभकारी हो एवं समस्त प्रकार के दुष्प्रभावों से रहित हो। हजारों वर्षों से जांची परखी ऋषि मुनियों द्वारा प्रतिपादित आयुर्वेद में वर्णित चिकित्सा ही एक मात्र ऐसी पद्धति है, जिसको व्यवस्थित ढंग से अपनाने पर निश्चित रूप से लाभ मिलता है।

आयुर्वेद एक विस्तृत चिकित्सा शास्त्र है, जिसके अनुसार पञ्चकर्म चिकित्सा पद्धति के द्वारा मानव शरीर का उनके रोग एवं दोष के अनुरूप शोधन करके पूर्णरूपेण रोग मुक्त बनाने एवं स्वास्थ्य रक्षा का वर्णन किया गया है।

आयुर्वेद में वर्णित ये पञ्चकर्म निम्नवत् हैं-

"वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम्।
एतानि पञ्चकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः" (शारंगधर संहिता/६४)

वेदों में कौमारभृत्यम् विशेषतः षोडश संस्कार

डॉ० कल्पना पटेल
रीडर एवं विभागाध्यक्ष कौमार भृत्यविभाग
आई0पी0टी0जी0 एण्ड आर0ए0, जामनगर

डॉ० अच्युत भट्टाचार्य
डॉ० लोकेश

वेद संसार की प्रचीनतम ज्ञानराशि हैं। वेद अर्थात् ज्ञान वेद ज्ञान विज्ञान का आगार हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो0 मैक्स मूलर के शब्दों में 'Regveda is the oldest book in the library of man kind.' अर्थात् मानव पुस्तकालय की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद हैं। वेद विश्ववाङ्मय में ज्ञान विज्ञान के आदि स्रोत हैं।

वैदिक धर्म का वास्तविक उद्देश्य मानव का निर्माण हैं। वैदिक संस्कृति में षोडश संस्कारका वर्णन हैं। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया हैं। आयुर्वेद में 'संस्कारो हि गुणान्तराधानम्।' बताया हैं। संस्कार एक प्रक्रिया होती हैं जिससे गुणों का आधान होता हैं। शुभ संस्कारों का नया रंग चढता हैं। 'संस्कार' शब्द का अन्य भाषा में अर्थ करना मुश्किल होता हैं। आंग्ल भाषा में संस्कार Ceremony सेरीमनी और लेटिन भाषा में Cuerimonia सिरीमोनिया फिर

भी ये संस्कार शब्द का अर्थ व्यक्त करने की क्षमता नहीं रखते। वैदिक साहित्य में पोडश संस्कार बताये गये हैं जो प्राग्जन्म से लेकर मृत्यु तक महत्व रखते हैं। इन पांडश संस्कारों को तीन विभाग में, उसकी प्रयोग अवस्था के अनुसार विभाजित कर सकते हैं।1. प्राग्जन्म संस्कार 2. वाल्यावस्था के संस्कार और मृत्युपश्चात् संस्कार।

1. प्राग्जन्म संस्कार	2. वाल्यावस्था के संस्कार	3. मृत्युपश्चात् संस्कार
1. गर्भाधान संस्कार	4. जातकर्म संस्कार	16. अन्त्येष्टि संस्कार
ऋग्0 10/104/1-2	5. नामकरण संस्कार	
अथर्ववेद 14/2/31	ऋग्0 10/55/2	
2. पुंसवन संस्कार	10/91/1	
अथर्व0 /23/2	6. निष्क्रमण संस्कार	
3. सीमन्तोन्नयन संस्कार	7. अन्नप्राशन संस्कार	
8. चूडाकरण संस्कार	9. कर्णवेधन संस्कार	
10. विद्यारम्भ संस्कार	11. उपनयन संस्कार	
12. वेदारम्भ संस्कार	13. केशान्त संस्कार	
14. समावर्तन संस्कार	15. विवाह-संस्कार	

इनमें से कोई संस्कार का सामाजिक महत्त्व है, कोई का धार्मिक महत्त्व है; तो कोई संस्कार का वैज्ञानिक महत्त्व हैं। इनमें से जातकर्म नामकरण, निष्क्रमण, चूडाकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेधन ये सव संस्कार वाल्यावस्था में आवश्यक संस्कार हैं। संस्कार करने से बाल्यकाल वृद्धि एवं विकास अच्छा होता हैं।

इसके सिवा और भी संस्कार हैं जैसे कि डोलाशयन संस्कार, फलप्राशन संस्कार, उपवेशन संस्कार हैं जो व्यवहार में प्रचलित हैं और फलप्राशन तथा उपवेशन संस्कार कश्यप संहिता जो कौमारभृत्यका मुख्य आधारभूत ग्रंथ हैं, उसमें भी बताया गया है।

यजुर्वेद में औषधि-विमर्श

विवेक जगदीश बिडवई
ग्रामीण आयुर्वेद महाविद्यालय
पातूर, अकोला (महा.)

दीर्घायुस्तऽ ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम्।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात्।। यजु. १२/००

हे ओषधे आपके खननकर्ता चिरंजीवी हों, जिस रोगी के रोगोपचार हेतु आपका खनन करें. वह भी दीर्घजीवी हो तथा आप भी दिर्घायु को प्राप्त करें, असंख्य अंकुरों से युक्त हो।

वेंदों में जगत् का तथा मानवीय जीवन के प्रत्येक अंग का ज्ञान उपलब्ध है। स्पष्ट है कि, वैद्यक शास्त्र भी उसमें अंतर्भूत है। यद्यपि आयुर्वेद या वैद्यक शास्त्र का संबंध अथर्ववेद से जोडा जाता है, फिर भी अन्य संहिताओं में भी इस विषय की चर्चा उपलब्ध है। यह बात तो स्पष्ट है कि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है तो अथर्व संहिता में वैद्यकशास्त्र या औषधि विज्ञान के बारे में विस्तृत विचार किया है। किन्तु यजुर्वेद में भी औषधियों के सन्दर्भ के कुछ स्थानों में वर्णन प्राप्त होता है। ओषधियों के ज्ञान के संदर्भ में स्वतः संहिता में ही प्रमाण उपलब्ध है।

या ओषधी पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामह शतं धामानि सप्त च।। १२/७५

सृष्टि के प्रारम्भ में जो औषधियाँ देवताओं द्वारा बसन्त, वर्षा, शरद इन तीन ऋतुओं में उत्पन्न हुई है पककर पीत वर्षा से युक्त उन सैकड़ों औषधियों और व्रीभी यवादि सप्त धान्यों की सामार्थ्यों का ज्ञान हमें है।

औषधियों के संदर्भ में संहिता का परिशीलन करें तो उपरोक्त विषय का वर्गीकरण कुछ बिन्दुओं में इस प्रकार किया जा सकता है।

औषधियां किसके द्वारा प्रकाशित हुयी है।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विवनोर्वाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्याम्
सं वपाभि सामापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन।। १/५

औषधियाँ का प्राप्ति स्थान

तासाभास्थानादुज्जिहतामोषहार्यः सुषिप्पलाः। ११/३८

औषधियों का उपयोग

इसमें औषधियों के हवन से तथा प्रत्यक्ष सेवन से लाभ की चर्चा की गयी है। कतिपय

स्थानोंपर आदी रोगों के उल्लेख के साथ औषधियों के गुणों की चर्चा है।

औषधियों की स्तुति

इस विषय में प्राप्त मंत्रों में अधिकांश भाग औषधियों की स्तुति से व्याप्त है, जिसमें उनके दिव्य गुणों की प्रशंसा है, स्वास्थ्यलाभ तथा आरोग्यरक्षा की प्रार्थना जिनमें महत्त्वपूर्ण है।

औषधियों की सुरक्षा की कामना या चिंता

अनेकों मंत्रो में औषधियाँ सुरक्षित रहे सदा अंकुरित रहे ऐसी कामना की गयी है। कही पर उन्हें कुछ हानि न हो ऐसी चिंता भी व्यक्त हुयी है।

औषधियों के प्रयोक्ता

औषधियों का उपयोग प्राय: अश्विनीकुमार और सरस्वती देवी द्वारा इन्द्र के लिये करने की बात अनेक स्थानों पर उपलब्ध है।

इस प्रकार औषधि का विमर्श यजुर्वेद में उपलब्ध है।

वेदों में चिरपुरातन आयुर्वेद

डॉ० आरती मिश्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आयुर्वेद परम्परा हमारी सतत सनातन भारतीय वैदिक वाङ्मय का अभिन्न अंग है। मनुष्य के शरीर की समस्याओं का प्राकृतिक जड़ी बूटी के द्वारा निदान करना ही आयुर्वेद नहीं है अपितु आयुर्वेद का अर्थ है ऐसा वेद जो शरीर की समस्त व्याधियों चाहे वह भौतिक हों या मानसिक,को दूर करना तथा आयु की वृद्धि करना है। चरणव्यूह तथा प्रस्थानभेद में आयुर्वेद शब्द का प्रयोग हुआ है और वहाँ इसे ऋग्वेद का उपवेद माना गया है जबकि चरक, सुश्रुत, काश्यप आदि आयुर्वेद का सम्बन्ध अथर्ववेद से मानते हैं।

ऋग्वेद में आयुर्वेद से सम्बन्धित मंत्रों से यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में औषधियों और मंत्रों द्वारा चिकित्सा की जाती थी। ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों को 'देवानां भिषजौ' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। देवताओं के मुख्य शल्य चिकित्सक अश्विनी कुमारों ने विश्पला की टूटी जांघ जोड़ दी थी, ऋजाश्व की आंखें बनाई थी। रुद्र देवता को भी श्रेष्ठतम चिकित्सक के रूप में स्वीकार किया गया है भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि। (ऋग्वेद 2/33/4) ऋग्वेद में आयुर्वेद के आचार्यों का उल्लेख मिलता है। इनमें प्रमुख हैं दिवोदास और भारद्वाज। इन्होंने काय, और शल्य चिकित्सा का प्रचार प्रसार किया। (ऋग्वेद 1/8/11) ऋग्वेद में आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त का भी संकेत है। मंत्र (1/183/1) में त्रिधातु (वात, पित्त और कफ) का उल्लेख प्राप्त होता है।

आयुर्वेद में सृष्टि प्रक्रिया

आराधना पाण्डेय
शोध छात्रा
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, इलाहाबाद

भैषज्य विज्ञान का मूल स्रोत अथर्ववेद है। अथर्ववेद में पर्याप्त रूप में भैषज्य विज्ञान का मूल प्राप्त होता है। इसी कारण आयुर्वेद के संहिताकारों ने अथर्ववेद से अपना सम्बन्ध बताया है।

आयुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य

आचार्य चरक की उक्ति है -

तत्र चेत् प्रष्टारः स्युश्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्व वेदानां कं वेदमुपदिशन्त्यायुर्वेदविदः तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।

ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राप्त सूक्तों में प्रमुख सूक्त वे हैं जो सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करते हैं जैसे पुरुषसूक्त (10,90) हिरण्यगर्भ सूक्त (10,121) नासदीय सूक्त (10,129)। तैत्तरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली प्रथम अध्याय में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन मिलता है।

आयुर्वेद में वर्णित सृष्टि प्रक्रिया का कुछ सीमा तक सांख्य की सृष्टि प्रक्रिया से साम्य है। आयुर्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का जो स्वरूप निरूपित किया गया है, वह अपने आप में परिपूर्ण एवं अद्वितीय है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि आयुर्वेद ने सृष्टि के विषय में अधिक गहराई में न जाकर तथा उसकी सूक्ष्मता को ग्रहण न कर सरल स्थूल एवं बुद्धिगम्य स्वरूप का विवेचन किया है। आयुर्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण सांख्य दर्शन की भाँति ही अव्यक्त माना गया है।

अथर्ववेद एवं चिकित्सा तत्त्व

जयप्रकाश वर्मा
शोध छात्र
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, इलाहाबाद

वेद मानव संस्कृति, सभ्यता, धर्म एवं ज्ञान विज्ञान की दृढ़ आधारशिला हैं। इन्हें सर्वज्ञानमय एवं सभी धर्मों का मूलग्रंथ कहा गया है

'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनुस्मृति-२/७)
'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्' (मनुस्मृति-२/६)

'मानव धर्मों का पालन स्वस्थ शरीर द्वारा ही सम्भव हैं, इस तथ्य को यह उक्ति 'शरीर माद्यं खलु 'धर्म साधनम्' (कुमार सं0 5/33) एवं (चरकसंहिता 1/15) पुष्ट करती है। यद्यपि चारो वैदिक संहिताओं में मानव स्वास्थ्य से सम्बद्ध विचार सहज प्राप्य हैं तथापि अथर्ववेद में चिकित्सा एवं औषधि तत्वों का विशद उल्लेख मिलता है।

अथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि।। (अथर्व० ११/४/१६)

उक्त सूक्त के अनुसार अथर्वाणी, आङ्गिरसी दैवी एवं मनुष्यजा चिकित्सा की बीज रूप यही चार विधियाँ वैदिक काल में प्रचलित थी। इनके कुशल एवं उचित प्रयोग द्वारा तात्कालिक मानव जीवन अनामय था। संक्षेप में हम इनके विषयों को इस प्रकार जान सकते हैं-

१. आथर्वणी चिकित्सा-इस पद्धति को अथर्वा ऋषि द्वारा दृष्ट एवं प्रवर्तित माना गया है। इसमें अथर्ववेदोक्त मंत्रों के प्रयोगों से रोगों का शमन किया जाता रहा है। रोगी के शरीर का सम्बन्ध इस पद्धति में अनपेक्षित था। इसके अन्तर्गत मानस चिकित्सा विधि (Psycho-Therapy) तथा स्वसंकल्प चिकित्सा (Auto-Suggestion) विधि आते हैं। मन को ही मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण माना गया है इसलिए मानसिक विकारजन्य रोगों का उपचार मानस-चिकित्सा द्वारा ही सम्भव हैं।

२. आङ्गिरसी चिकित्सा- इसका सम्बन्ध अंगिरस् या अंङ्गिरा ऋषि द्वारा दृष्ट एवं प्रवर्तित पद्धतियों से है। वस्तुतः अंगो के रस (Blood & Harmons) से होने वाली चिकित्सा के कारण इसे आङ्गिरसी चिकित्सा पद्धति कहते हैं। शरीर में वाह्य रसों, क्रियाशील तत्वों, पोषण तत्वों एवं वनस्पति तत्वों को पहुँचाकर रोगी की चिकित्सा की जाती थी। अंगिरा ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्रों में व्रण चिकित्सा, शत्रुनाशन, शत्रुवल नाशन एवं समस्त रोगनाशन विधियों का विधान किया गया है। यह विधि आधुनिक एलोपैथिक (Allopathic) चिकित्सा विधि के समतुल्य ही है।

३. दैवी चिकित्सा- इस पद्धति का सम्बन्ध 'देव' से है वैदिक ग्रंथो में तैंतीस प्राकृतिक देवों का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद में इन देवों का सम्बन्ध चिकित्सा के क्षेत्र में उपलब्ध है अतः इसे दैवी चिकित्सा कहते है। इनके माध्यम से मृत् चिकित्सा आदि का विधान किया गया है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार इसे प्राकृतिक चिकित्सा (Naturopathy) कह सकते है।

४. मनुष्यजां या मानवी चिकित्सा- इसके अन्तर्गत मनुष्यों द्वारा तैयार की गयी औषधियों के प्रयोग से रोगी की चिकित्सा की जाती है साथ ही साथ स्वास्थ्य लाभार्थ स्वच्छ वातावरण, सेवा शुश्रूषा आदि का विधान किया गया है। अथर्ववेद में इस पद्धति द्वारा सर्पचिकित्सा, नेत्ररोग चिकित्सा, विषचिकित्सा, कृमि चिकित्सा शिरोरोग चिकित्सा, केश रोग चिकित्सा,

हृदयरोग चिकित्सा, राज्यक्षमा चिकित्सा एवं वातव्याधि इत्यादि चिकित्सा का विधान किया गया है। आधुनिक विज्ञान में इसे औषधि चिकित्सा विधि (Drug Therapy) कहा जाता है।

अथर्ववेदे अपामार्गस्य महत्वम्

डॉ० अहल्या नायक
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

अथर्ववेदः विविधज्ञानविज्ञानामादिस्रोतः। अस्मिन् विविधौषधिवनस्पतीनां मार्मिकवर्णनं दृश्यते। वानस्पतिक शोधानुसारेण ऋग्वेदे सप्तषष्ठिः यजुर्वेदे एकाशीति अथर्ववेदे च द्विशतनवाशीति वनस्पतीनां वर्णनं दरीदृश्यते तेषु द्विशतनवाशीतिवनस्पतिषु अपामार्ग वनस्पतेः विशिष्टं महत्वं विद्यते।

अत्र अपामार्गवनस्पतेः विषये किञ्चित् वर्ण्यते। अपामार्गशब्दस्य निरुक्तिस्तु अपहृत्य दोषान् शरीरं मृज्यते अनेन इति अपामार्गः। शब्दकल्पद्रुमानुसारेण अपमृज्यते रोगोदूरीक्रियते अनेन इति। अपामार्गशब्दः अप+आ पूर्वात+मृज धातोः करणे+घञ् प्रत्येयन सिध्यति। अपामार्गवृक्षविशेषः अपामार्गस्य विविधनामानि परिलक्ष्यन्ते। वैद्यकग्रन्थानुसारेण अपामार्गः त्रिविधः रक्तः श्वेतः कृष्णश्चपरन्तु श्वेतरक्त्यापामार्गस्य वर्णनम् अत्यधिकं प्राप्यते कृष्णापामार्गस्य प्रायेण वर्णनं न दृश्यते।

अपामार्गवनस्पतेः गुणानां वर्णनं वैद्यग्रन्थानुसारेण तिक्तोष्णः,कटुः कफनाशकः, कण्डू, अर्शः, रक्तरोगनाशक अस्ति।

ऋग्वेदे आयुर्विज्ञानम्

वेदव्रत
शोध छात्र संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

वेदो हि नाम अशेषविश्वविज्ञानविशेषपरिज्ञानप्रदं शाश्वतिकमपौरुषेयम् शास्त्रम्। ते च वेदाः आसर्गोत्पत्तेः मानवसंस्कृतेः मूलाधाराः सन्ति। तत्र सर्वज्ञानमयेषु वेदेषु विविधानां विज्ञानानां वर्णनं प्राप्यते य- यथा कृषिविज्ञानम्, वृष्टिविज्ञानम्, विमाननविज्ञानम्, आयुर्विज्ञानादिकम्

स्वाध्यायसंलग्नैः धर्मधुरन्धरैः कैश्चित्विद्वन्मनीषिभिः आयुर्वेदः ऋग्वेदस्य उपवेदत्वेन स्वीक्रियते। तथा च आह महर्षिः व्यासः -

तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो भवन्ति, ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः वर्तमानपरिप्रेक्ष्ये सर्वविज्ञानेषु आयुर्वेदविज्ञानस्य

सर्वाधिकावश्यकता सर्वत्रानुभूयते। तत्र ऋग्वेदे आयुर्वेदस्य उद्देश्यम्, वैद्यानां गुणकर्माणि, विविधौषधीनां लाभः विविधचिकित्सापद्धतीनाञ्च वर्णनं दृश्यते। यथा –

यत्रौषधि समग्मत राजानः समिताविव। विप्रः स उच्यते भिषक् ऋक् १०/ ९७/०६

एवमेव ऋग्वेदे रोगाणां रोगोत्पादकतत्त्वानां, रोगनिर्गमस्थानां च बहुत्र प्रतिपादनमस्ति। कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा, ऊध्वांगचिकित्सा द्रष्टाचिकित्सा, जराचिकित्सा, वृर्षचिकित्सा, शल्यचिकित्सादीनां विषये विवेचनं ऋग्वेदे बहुत्र समुपलभ्यते।

साम्प्रतं समस्तभूतानि नैकविधव्याधिभिः विविधतापसन्तापैश्च सन्त्रस्ताः सन्ति। समेभ्यरेभ्यः तापसन्तापेभ्यः शान्त्यर्थं तापसन्तापान् प्रशमयितुं वा वेदाः एव शरणम्।

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय

ऋग्वेद में वर्णित औषधी विज्ञान

तृप्ति गोस्वामी
शोध छात्रा
रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ एवं समृद्धशाली जीवन की कुंजी है। वर्तमान समय में भारतीय चिकित्सा प्रणाली में अभूतपूर्व उन्नति हुई है तथा आज हमारे समक्ष अपने जीवन को स्वस्थ एवं संयमित बनाने के लिये अनेकों वैज्ञानिक साधन एवं उपकरण विद्यमान है।

वैदिक कालीन जन समुदाय भी अपने स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण सजग थे। हमारी संस्कृति 'जीवेम शरदः शतम्' की मूल अवधारणा पर अवलम्बित थी।

यद्यपि हमारे चारों वेदों में ही स्वस्थ जीवन की कामना करने वाले बहुपयोगी मंत्रों का प्रणयन किया गया है। किन्तु अथर्ववेद चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट स्थान पर विराजित है। इसी कारण अथर्ववेद को भेषज वेद नाम से भी अलंकृत किया गया है। प्रस्तुत वेद का सम्यक् अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि उस समय अनेक मिषक गण येतथा अनेकों प्रकार की औषधियाँ भी प्राप्त होती थी–

शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः।

भिषक्गण में आथर्वण एवं अंगिरस ब्राह्मणों का ही मुख्य स्थान था। आथर्वण अजाश्रृङ्गी नामक औषधी से राक्षसों को दूर करते थे। अंगिरस् भिषको के द्वारा जागिंड नाम औषधि को खोजा गया। इनके अतिरिक्त जमदग्नि, कण्व, कश्यप, अत्रि आदि के द्वारा भी चिकित्सक रूप में कार्य किया गया।

भैषज्य विज्ञान का आदि स्रोत प्रकृति को ही माना जाता है। विभिन्न बहुमूल्य औषधियों को भिषकगण ने पशु-पक्षियों, फूलों, फलों, वृक्षों आदि द्वारा प्राप्त किया।

वेदों में स्वास्थ्यरक्षा

सुदर्शनदेवार्य व्रती
प्रधानाध्यापक
गुरुकुल आश्रम आमसेना, उड़ीसा

ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद ज्ञान का कोष है। वेद प्रत्यक्ष एवं अतीन्द्रिय सब प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि का आदि स्रोत है। वेद मनुष्य के अभ्युदय एवं निःश्रेयस् सिद्धि के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण ज्ञान का भी अक्षय भण्डार है। उस सर्वज्ञानमय वेद में मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त होना लिखा है। यह भी निर्विरोध सत्य है कि मुक्ति तभी सम्भव है जब शरीर स्वस्थ व रोगरहित होगा। तभी तो लोक एवं साहित्य में ये उक्तियां प्रसिद्ध हुई **''पहला सुख नीरोगी काया।'' ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्''** (कालिदास, कुमारसंभव) धर्म का प्रथम साधन शरीर ही है, **धर्मार्थकाममोक्षाणमारोग्यं मूलतुत्तमम्** (चरक. सू. स्था. 1/15) धर्म, अर्थ काम, मोक्ष का प्रंधान कारण आरोग्य है। अब विचारणीय विषय यह है रोग और आरोग्य (स्वास्थ्य) है क्या चीज? इसका उत्तर एक पंक्ति में इस प्रकार है 'रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्यमरोगता (अ. हृ.सू. 1/20) अर्थात् दोषों का विषय हो जाना रोग है, ओर इनका सम्यक् याने साम्यावस्था में होना आरोग्य अर्थात् स्वास्थ्य है। वात पित्त और कफ ये तीन जब साम्यवस्था में होते है, तब इन्हें धातु कहा जाता है। तब मनुष्य स्वस्थ रहता है। जब ये कम अधिक यानि विषमावस्था में होते हैं, तब ये दूषित होने से दोष कहलाते हैं। आर्थात् धातुओं का इस प्रकार विषमस्थिति को प्राप्त होना रोग का कारण है। शरीरस्थ दोष ही आयुर्वेद के **स्थावरं जङ्गमं कृत्रिमं च** (सुश्रु. कल्पस्थान 2/30) के कथानुसार स्थावर जङ्गम और कृत्रिम ये तीन प्रकार के विषयों मे से किसी एक विषय के अन्तर्गत आ जाते है। यहीं से रोग का आरम्भ होता है, तथा इस शारीरिक व मानसिक रोग के कारण मानव का जीवन जीना अत्यधिक जटिल हो जाता है। जीवन का ध्येय बदल जाता है, और समस्त ध्यान इसकी निवृत्ति में ही लगा रहता है। मनुष्य चाहता हुआ भी इससे दूरी नहीं बना पाता। अतः वेदों एवं इसके उपवेदों विशेष आयुर्वेद में स्वास्थ्य को बनाये रखने एवं रोगी पुरुष के विकारों को शमन करने के लिए अनेक उपाय पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। जैसे चरक संहिता में कहा गया-**त्रय उपस्तम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नों ब्रह्मचर्यमिति** (सू. 11/32) शरीर रूपी भवन को स्थिर रखने के लिए आहार (ऋत्, मित एवं हिताहार) निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीन आधार स्तम्भ हैं। इनमें से एक के दुर्बल होने से शेष दोनों भी दुर्बल हो जायेंगे। इस प्रसंग में वेद के निम्नोक्त मन्त्र द्रष्टव्य हैं। **यदश्नासि यत्पिबसि धान्यां कृष्णाः पयः। यदाद्यं सर्वं अन्नमविषं कृणोमि** (अथर्व

8/2/19) महवैद्य परमपिता परमेश्वर मनुष्यमात्र के लिए कहंते हैं–हे मनुष्य! कृषि से उत्पन्न हुए धारण और पोषण करने के साधनरूप चावल जौ, अन्न फलादि जो भी खाते हो, जो कुछ भी जल तथा पीते हो, खाने योग्य भोजनरूप पका अन्न या पका भोजन और जो भी भोजन से अतिरिक्त वस्त्र-पात्र, स्थानादि उपकरण का प्रयोग करते है। सबको तुम्हारे लिये विषदोष से रहित करता हूँ तथा अन्यत्र और भी कहा गया **यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवो चमहं त्वत्** (अथर्व. 9/8/10) अर्थात् मैं समस्त रोगों के विषों को तुम्हारे अन्दर से दूर करता हूँ। यहां मन्त्रों का अभिप्राय स्पष्ट है कि यदि तुम्हारा स्वस्थ जीवन के लिए यतत् अभिलाषा एवं पुरुषार्थ रहा साथ में सन्तुलित आहार एवं प्राकृतिक जीवन भी रहा तो अवश्य सभी चीजे तुम्हारे लिये विषदोष से रहित होंगी। वेद एवं आयुर्वेद असावधानी से किसी को कोई रोग आ भी घेरा तो इससे मुक्त होने के लिए अनेक उपाय बतायें हैं जैसे (1) सूर्यकिरण चिकित्सा (2) प्राण चिकित्सा (3) यज्ञ चिकित्सा (4) जल चिकित्सा (5) मानसिक चिकित्सा (6) मन्त्र चिकित्सा (7) हस्तस्पर्श चिकित्सा (8) उपाचार चिकित्सा (9) मृत चिकित्सा (10) औषधीय चिकित्सा आदि हैं, इनका विस्तृत संगोष्ठी में पढ़े जाने वाले शोधपत्र में किया जायेगा। अस्तु!

इतिहास के थपेड़ो से एवं अन्य घटित घटनाओं के कारण हम वेद और वेद हमसे दूर हो चुका था। मध्यकालिन विद्वानों ने वेद मन्त्रों को यज्ञार्थ ही ले लिया था, महर्षि दयानन्द जी की कृपासे वेदों की ओर हमारा ध्यान पुनः आकृष्ट हुआ। रोग, रोगनिदान एवं उपचार के क्षेत्र में वेदों की प्राचीन पद्धति विलुप्त प्राय हो चुकी थी। किन्तु उत्साहजनक तथ्य यह है कि आज परिस्थितियों से बाध्य हो कर पश्चिमी जगत् इस दिशा में काफी उत्साहित एवं सक्रिय है।

अथर्ववेद में मनश्चिकित्सा

डॉ. सुधा जैन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

अथर्ववेद का वर्ण विषय अन्य वेदों से भिन्न होने के साथ-साथ महत्वपूर्ण भी है। क्योंकि इसमें वैदिक स्तुतियों के अतिरिक्त सांसारिक विषयों का विवेचन भी प्राप्त होता है। मन को नीरोग, प्रसन्न और स्वस्थ कैसे बनाया जा सकता है, इन सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर हम अथर्ववेद में ढूँढ सकते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि अथर्ववेद सामान्य व्यक्ति का वेद है जिसमें सामान्य समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है।

शारीरिक रोगों को दूर करने के लिए विभिन्न सूक्त अथर्ववेद में उपलब्ध होते हैं,

जैसे भैषज्यानि सूक्त, आयुष्याणि सूक्त आदि। किन्तु मानसिक पीड़ा की उपशान्ति के लिए ऐसे पृथक् सूक्त नहीं है। अपितु सम्पूर्ण वेद में यत्र तत्र इस प्रकार के वर्णन विकीर्ण हैं। यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अथर्ववेद में केवल जादू- टोना, मारण-मोहन, उच्चारण आदि का ही उल्लेख है किन्तु यह सत्य नहीं है। अभिचार मन्त्र जादू नहीं है। अपितु किसी लक्ष्य तक पहुँचने के साधन मात्र है। ये मन्त्र मनुष्य में सकारात्मक भावनाओं को जन्म देते हैं और ये भावनाएं रोगी के मन पर अनुकूल प्रभाव प्रभाव डालती है। जिससे मानसिक शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त होती है। इन मन्त्रों से जो मनोबल उत्पन्न होता है वह विराट रूप पाने पर शत्रु का नाश भी कर सकता है।

मन की सामान्य शिवसंकल्प शक्ति के उल्लेख के साथ-साथ उनकी असामान्य अवस्थाओं का भी विवेचन इस वेद में उपलब्ध होता है। उन्माद और अपस्मार जैसे भयंकर रोगों की चिकित्सा विधि के अतिरिक्त क्रोध, मोह, शोक और दुःस्वप्न जैसी अवस्थाओं पर भी विजय पने के उपायों का उल्लेख वहाँ प्राप्त होता है।

अथर्ववेद के ये मन्त्र व्यक्ति के अन्दर मानसिक बल और शक्ति का संचार करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भी हम यह कह सकते हैं कि मन्त्रों का महत्त्व यथावत् विद्यमान है। प्रस्तुत शोधपत्र में अथर्ववेद में उपलब्ध मनश्चिकित्सा से सम्बन्धित मन्त्रों पर विचार किया जायेगा।

वैदिक वाङ्मय में मानव आयु एवं उपभोग के उपाय

डॉ० सुभाष चन्द्र शास्त्री

राज. स्नात. कन्या महाविद्यालय, बाराँ (राजस्थान)

ईश्वर ने संसार में मानव को ही सभी प्राणियों से श्रेष्ठ बनाया है। किसी मनीषि ने कहा भी है-"नहि मानुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्"। यदि मानव अपने जीवन की पद्धति को उचित रीति से आगे बढ़ाता है तो उसकी आयु भी सभी प्राणियों से अधिक है। मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ इसीलिए है कि ईश्वर ने उसे श्रुति दी है ज्ञान के लिए, मति दी है विज्ञान के लिए जिसके द्वारा वह राष्ट्र को समाज को कृति एवं संस्कृति दे सके। मानव अन्यों से श्रेष्ठ इसीलिए भी है कि उसे जो मिला है वह किसी को नहीं मिला और वह वाणी और पाणि। स्तुति के लिए आयु विषय में कहा-

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतम्।

जीवेम शरदः शतम्। श्रृणुयाम शरदः शतम्। प्रब्रवाम शरदः शतम्।

अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात्।''

मनुष्य की आयु सौ वर्ष है। सौ शरद् ऋतुओं को देखे, सुने और उससे भी अधिक। वेद इससे भी अधिक कहता है ''त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।''

कौषीतकि ब्राह्मण कहता है- **शतायुर्वै पुरुषः।**

शतपथ ब्राह्मण कहता है- अपि हि भूयांसि शतवर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।

इतिहास प्रमाण है कि युद्ध के समय भीष्म पितामह भी लगभग दो सौ वर्ष के थे और ब्रह्मा और इन्द्र का कथानक भी जो चार सौ वर्षों तक अध्यापन एवं अध्ययन किया।

इस प्रकार आयु तो ईश्वर ने मनुष्य को लगभग उसके ही अधीन कर दी है। अब उसके ऊपर है कि वह कितना और किस प्रकार जीना चाहता है। किसी कवि ने कहा

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्।।

जो विद्वानों, वृद्धों के प्रति अभिवादनशील है उसकी आयु बढ़ती है। वेद में कहा -''आयुर्यज्ञेन कल्पताम्'' यज्ञ के द्वारा आयु की वृद्धि होती है परन्तु यज्ञ के स्वरूप का चिन्तन करना पड़ेगा जैसा कि पाणिनि ने कहा है- ''यज देवपूजा सङ्गतिकरणदानेषु'' तीनों शब्दों की गहराई तक जाने पर यज्ञ स्वरूप प्रकट होगा।

वेदों में आयुर्वेद

महेश चन्द्र बहुगुणा
प्रवक्ता वेद विभाग
ऋषिकुल विद्यापीठ संस्कृत महा., हरिद्वार

वेद ईश्वरीय ज्ञान के साथ-साथ सम्पूर्ण ज्ञान के कोष भी हैं, वेद मनुष्य के अभ्युदय एवं निःश्रेयस् सिद्धि के लिए अपेक्षित सम्पूर्ण ज्ञान का भी अक्षय भण्डार है, सर्वज्ञानमय वेद में मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त करना है। यह नितान्त सत्य है, मोक्ष तभी सम्भव है जब शरीर स्वस्थ एवं रोग रहित होगा। महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भव में कहा है ''शरीर माद्यं खलुधर्म साधनम्''(कुमार सम्भव-5/33) अर्थात् धर्म का प्रथम साधन शरीर ही है। अतः शरीर को स्वस्थ बनाकर दीर्घायु को प्राप्त करना चाहिए। ''आत्मानं सततं रक्षेत्'' शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए वेदों में वर्णित औषधियों का प्रयोग मानव जीवन को सुखी बनाने में सहायक होता

है। तैत्तरीय संहिता के अनुसार पंचमहाभूतों के बाद औषधियाँ व अन्न उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् मानव की उत्पत्ति हुई (तै0 सं0-2.1)

वेदों में सोमतत्व

(आयुर्वेद के अन्तर्गत)

डॉ० प्रतिभा पुरन्धि

संस्कृत प्राध्यापिका गोविन्द नगर अम्बाला

शास्त्रों में सोम के अनेक अर्थ हैं जिनमें प्रमुख अर्थ है-'ओषधि' निरुक्तकार यास्क ने भी सोम का अर्थ ओषधि बताते हुए लिखा- 'ओषधि: सोम: सुनोते: यदेनमभिषुण्वन्ति। गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है-'सोमो ओषधीनामधिराज:' 'सोमो वीरूधांपति: स मामवतु' सुश्रुतसंहिता में ओषधिरूप में सोम का विस्तृ वर्णन प्राप्त होता है। सुश्रुत का चिकित्सित स्थान का 29वाँ अध्याय विशेष द्रष्टव्य है। वहाँ इसके विविध वर्ण, आकृति, गुण और उसके विविध उत्पत्ति स्थान वर्णित हैं। सुश्रुत में यह भी स्पष्ट लिखा है-'एते सोमा: समाख्याता: वेदोक्तैनामिभि: अर्थात् ये सभी नाम वेद से ही गृहीत हैं।

सभी सोमलताओं की पन्द्रह पत्तियाँ होती हैं और वे चन्द्रकला के अनुसार घटती बढ़ती रहती हैं जिस दिन चन्द्रमा की जितनी कलाएँ होगी उतने ही उस दिल लता के पत्ते होंगे। शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा को पूरे पन्द्रह पत्ते हो जाते है। पुन: उसके पश्चात् एक एक दिन में एक एक पत्ता घटते अमावस्या में पत्तों से रहित लता ही शेष रह जाती है।

ऋग्वेद १०/८५/५ में कहा-

हे सोमदेव! जब तुझे चन्द्रमाँ की कलाएँ एक एक कर के पी लेती है तब तूम पुन: बढ़ते हो। वायु सोम की रक्षा करती है। सोम से वर्ष बनते हैं। श्येनवायु सदा सोम के साथ रहती है और उसके लिए निरन्तर रस का आहरण करती है।

सोम की उत्तपत्ति-

वेद में सोम की उत्पत्ति पर्वत के ऊँचे स्थान पर बताई गई है। साम0पू0 5/1/1, साम पू0 5/1/9, साम उ0 7/6/1

सोम का वर्ण-

साम0पू0 1/1/5, साम0 उ0 7/1/1/1, साम0 पू0 5/8/8 साम0उ0 13/2/1/ 1 के अनुसार साम का वर्ण हरा, भूरा तथा अरूण है।

सोमरस की निर्माण विधि-

सोम के पत्तों को पर्वत से लाकर पत्थरों पर कूटा जाता है। कूटकर उसका रस निकाला जाता

है। रस के अत्यन्त गाढ़ा होने के कारण इसमें पानी मिलाया जाता है। इसमें रेशे होते हैं इसलिए इसे भेड़ के बालों की छलनी से छाना जाता है। छानते समय वेदमन्त्रों का उच्चस्वर में पाठ किया जाता है। छानने के पश्चात् इसमें गाया का दूध, दही, घी तथा मधु मिलाया जाता है। इस प्रकार सोमरस तैयार होता है। पहले इसकी यज्ञ में यथाविधि आहुति दी जाती है पुनः इसे याज्ञिक पीते हैं।

गोपथ ब्राह्मण में सोमयाग का विस्तृत वर्णन मिलता है।

सोम का स्वाद-

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्य सोम धारया। साम०पू० १/१/२

सोम स्वादिष्ठ तथा मस्त कर देने वाला है। सोम को वेदों में मधुर बताया हैं। 'मधो अर्षन्ति धारया' साम0पू0 5/2/9

सोम की विशेषताएँ-

वेद में कहा है-जैसे खेवट नदियों के अथाह जल से अपने करिश्मो द्वारा नाव को पार लगा देता है उसी प्रकार यह हृदयहारी रस सृष्टि करता हुआ नाड़ियों के बलों को बिना प्रयत्न चमत्कारी बलों से युक्त कर देता है।

वेद में इसकी विशेषताएँ बतलाते हुए कहा- यह सैंकड़ो और हजार शक्तियों का दाता है। यह बल और बुद्धियों को बढ़ाने वाला है। जो लोग तेजस्वी बनना चाहते हैं वे सभी सोम को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यह उत्साह और जागृति पैदा करने वाला है। सोम द्युलोक, पृथ्वीलोक, अग्नि सूर्य, इन्द्र विष्णु सब की शक्तियों को उत्पन्न करता है।

वेद में सोम के मदाः, मत्सरः, मदिष्ठया आदि शब्दों को देखकर कई लोग सोम का तात्पर्य नशीला पेय जो कि सर्वथा अग्राहय तथा अपेय है करते हैं। वस्तुतः उपर्युक्त शब्द मदीहर्ष मदतृप्तियोगे, मदीहर्षग्लेवनयोः धातु से बने हैं जिनका अर्थ है-प्रसन्नता देने वाला, तृप्ति देने वाला। सोम को बुद्धि, बल, शक्ति, तेज तथा ऋतम्भरा मेधाबुद्धि को बढ़ाने वाला कहा गया है। जबकि नशीले पेय तो सामान्य बुद्धि को भी नष्ट कर देते हैं-'बुद्धि' लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते।' अतः सोम कदापि मादक द्रव्य नहीं हो सकता। कुछ वर्ष पूर्व भारतीय राज्य की ओर से नियुक्त डा0 रोक्सवरो ने हिमाचलप्रदेश में इस सोम का पता लगाया था। वह बिल्कुल नशीला नहीं था। उसका स्वाद शिंकजवी जैसा था।

सुश्रुत में सोम के सेवन की विधि अद्भुत दर्शायी है। तदनुसार यमनियमों का पालन करते हुए ही इस का सेवन करना चाहिए। इसमें तीन मास तक विशेष नियमों का पालन करना होता है। तब यह सोम विधि समाप्त होती है। उसके पश्चात् सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

Depression-Prevention and cure in vedic way

Dr. (Mrs.) Lalita Kuppuswamy
Reader, Deptt. of Sanskrit
Daulatram College, Delhi University, Delhi

According to modern medical reports, it is depression that tops the list of fatal factors responsible for terminating the human life. the victims range from school students, farmers, house wives, business men and ordinary people.

Depression is a state of mind where a person feels deprived, helpless and insecure. Psychologically depression means either getting what one does not, or not getting what one wants. Though depression is an effect, it, in turn becomes a cause too. Today in the materialistic world, man cut off from his joint family, self-centerd has no time for himself, with the result depression becomes a very common phenomenon.

Like in medicine, there are two measures in overcoming depression preventive and curative. Preventive ones are cultivating a healthy positive attitude towards life, understanding the nature of mind and controlling it, eating sattvic food, practice of prayer, meditation etc.

MEDICINAL PLANTS USED BY TRIBALS OF ORISSA IN GYNAECOLOGICAL DISORDERS AN APPRAISAL

Dr. Neha P. Pandya
Lecturer
Foreigners B.A.M.S., G.A.M. Jamnagar

Women Health is the basic need for the society as it affects the progeny who is the future of country. Ayurvedic Gynaecology (Stree Roga) concentrates on the conditions that affect the reproductive system of the woman. Ideals with mainly thrive main disorders (Vyapads), like menstrual disorders (Artava Vyapad) disorders of reprodictioe tract (yoni Vyapad) breast disorders (stanavyapad) and some specific diseases like Vandhyatwa (Infertility), sonaroga (Urogenital disease) etc.

Ayurveda with its immense potentiality in the field of Gynaecology offers many effective remedies for the management of the diseases of reproductive and uro genital system as well. Indian system of Medicine Chiefly depends on various kinds of medicinal plants available in many parts of the Indian Peninsula since time immemorial. Orissa has dense forests with natural plant resources. The different tribals residing deep inside the forest are still depending on medicinal plants for primary health care and treatment of diseases. Orissa state has 62 categories of tribal. These ethnic communuties have acquired good knowledge on medicinal uses of plants in the course of their life time association with plants and animals. There are so many ethnobotanical surve has done and so many falk claims are already come into knowledge but it is a matter of sarrow / till today it has not come to notice of every body, mainly all the persons Ayurvedic facilities or Ayurvedic Gynaecologist and no such type of noticible scientific study has been taken by research scoln from gynaecology department of different P.G. Institute in CCRAS in the field of Obstetic and Gynaecology.

Agian among these medicinal plants which so many also described in Ayurvedic texts which can manage the diseases of reproductive and uro genital system, STD menstrual disorders, brust diseases etc in a natural way without having side effect. Such as Angemone Mexicana L. (Papareraceae), Brudhadanak (Angyria nervosa), Panairi (Anistoloichia bracteata), Kanta Malati (Barlaria, Prionitis), Apamarga (Achyaranthus aspara), Panki (cordia macleodii), Rakta Chitnak (Plumbayo Indica) were tried by tribal peoples on various gynaecological disorders and the out come is encouraging.

In the present paper an attempt has been made to highlight all the falk medicinal plants used by different tribes of various parts of orissa in the field of Gynaecology which will provide a new research idea to the research scholars of gynaecology department.

निरुक्तम्

निर्वचन प्रक्रिया

डॉ० रामनारायण शास्त्री
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग:
राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय:
सिरोही

मन्त्रार्थप्रतिपादनेन यदुपकरोति वेदस्य तच्छास्त्रं निरुक्तमित्यभिधीयते। प्राचीनवाङ्मये बहव आचार्या निरुक्तशास्त्रस्य प्रवक्तार: स्मर्यन्ते, परन्तु सम्प्रति तेषां प्रवचनानि नोपलभ्यन्ते। अद्यत्वे तु यास्कीयेन निरुक्तशास्त्रेणैकाकिना प्रणितेयं समुहती निर्वचनविद्या कथञ्चित्। निर्वचनशास्त्रस्यास्य द्वाववयवौ- प्रथमोऽध्यायापञ्चमयात्मक: सूत्ररूपो व्याख्येय: समाम्नायो निघण्टुरिति प्रख्यायते, द्वितीयश्च द्वाद्वशध्यायात्मकं सपररिशिष्टं निरुक्तमिति व्याहि्रयते। तदेवं सप्तदशाध्यायी सपरिशिष्टा निरुक्तमित्यभिधीयते।

महर्षियास्केन विरचितं निघण्टु-निरुक्तं कोशशास्त्रे भाषाविज्ञानक्षेत्रे चाद्यापि प्रकाशस्तम्भ इव परं चकास्तीति नास्ति परोक्षं प्रेक्षावताम्। निघण्टुनाम्नि ग्रन्थे पर्यायशब्दानां प्राचीनतमं संग्रथनमेकत्र समुपलभ्यते। निरुक्ते तु शब्दानाममीषां विविधारकं विविधौपयिकं च वर्गीकरणम्, अथ च विविधनिगमोद्धारणपुर:सरं निर्वचनं सम्प्राप्यते। एवञ्च क्षेत्रयोरेतयो: प्रथमं प्रतमं च ग्रन्थद्वयं समं विदुषां चेतसि चमत्कारमाविष्करोति।

महर्षिर्यास्कोऽनेकेषां शास्त्राणां पारदृश्वा पण्डित आसीत्। तेन कहि शब्दनिर्वचनप्रसङ्गे चतुर्णां वेदनाम् पदपाठानाम्, तैतिरीय-मैत्रायणी-काठकादिशाखानाम् ऐतरेयगोपथकौषीतकीशतपथादिब्राह्मणग्रन्थानाम्, प्रातिशाख्यानाम् अथ च विविधोपनिषदाम् उद्धरणं प्रादायि। अपि च तेन नैरुक्तसम्प्रदाय वैयाकरणसम्प्रदाय याज्ञिकसम्प्रदाय ऐतिहासिकसम्प्रदाय-नैदानसम्प्रदायाद्याचार्याणां नामग्राहम् उल्लेखो व्यधायि। सर्वमेतद् यास्कस्य महद्वैदुष्यम् अवद्योतयति।

एतेषां ग्रन्थानामालोके महर्षिरसौ शब्दनिर्वचनसिद्धान्तान् सविस्तरं प्रत्यपादयत् प्रश्नांश्चानेकान् समादधात्। शब्दनिर्वचनक्रमे तान् सिद्धान्तान् यथाविधि न्ययोजयत्।

स्वामिदयानन्दस्य वेदार्थदिक् तदाधारश्च

डॉ० जितेन्द्र कुमार
रीडर- संस्कृत विभाग
दयानन्द कॉलेज, अजमेर

पुराकालतो वेदस्याध्ययनमर्थान्वेषणञ्च मुनिभि: ऋषिभि: विद्वद्भिश्चाजस्रमद्य यावत् क्रियते। वेदभाष्यपरम्परायां बहवो वेदज्ञा: स्व-स्वभाष्यै: व्याख्याभिश्च वेदार्थं प्रतिपेदिरे। इदानीमेकोनविंशति वेद भाष्यकाराणां नामान्युपलभ्यन्ते। तेषु वेदभाष्येषु विंशतितमशताब्द्यामन्यतमं प्रशस्यतमञ्च भाष्यं

स्वामिनो दयानन्दस्य वेदभाष्यम्। आचार्योऽयं पूर्वाचार्याणामाधारं स्वीकृत्याग्रेसरति, अथ चाधुनिकसमाजेऽपि बहूपयोगिनी व्यावहारिकीं च वेदव्याख्यां प्रस्तौति। केपुचित् स्थलेपु भाष्यकारोऽयं पूर्वभाष्यकाराणां बहूपयोगिनी व्यावहारिकीं च वेदव्याख्यां प्रस्तौति। केपुचित् स्थलेपु भाष्यकारोऽयं सायणादीनां बहूपयोगिनीं व्यावहारिकीं च वेदव्याख्यां प्रस्तौति। केपुचित् स्थलेपु भाष्यकारोऽयं सायणादीनां मन्तव्यानि सप्रमाणं सोदाहरणं खण्डयति। यतो हि ताः व्याख्याः पूर्वभाष्यकाराणां सायणादीनां मन्तव्यानि सप्रमाणं सोदाहरणं खण्डयति। यतो हि ताः व्याख्याः विरोधाभासत्वेन, कर्मकाण्डमात्रत्वेन, कालदोषप्रसङ्गत्वेन, स्वप्रतिज्ञाभङ्गत्वेन च दूषिताः कलुषिताश्च तस्मात्ता अश्रद्धेयाः। स्वामिदयानन्द आचार्ययास्कं प्रमुखाधाररूपेणाङ्गीकृत्य स्वमन्तव्यान् वेदभाष्ये दाक्षिण्येन प्रतिपादयाम्बभूव। तथापि बहव एतादृशाः मन्त्राः सन्ति येषां मन्त्राणां भाष्यमाचार्ययास्कंनापि निजं निरुक्तनाम्नि ग्रन्थे विहितं किन्तु स्वामिना तेषामेव मन्त्राणां तेभ्योऽतिरिक्तो भिन्नो वार्थः प्रस्तुतः परन्तु तस्य वेदभाष्यस्य पद्धति सैव वर्तते या ऋषिभिर्मुनिभिश्चानुमोदिताभिनन्दिता च। स्वामिदयानन्दस्य वैशिष्ट्यमिदं विद्यते यदसौ भाष्यकारः व्यावहारिकमर्थमधिकं विदधाति। स हीश्वरस्य सर्वपदार्थानां कर्तृत्वं स्वीकृत्य तेषां प्रयोजनं प्रमुखत्वेन प्रतिपादयति। ऋग्वेदादिभाष्भूमिकायां स्वामिदयानन्दः प्रतिजानीते "अत्र चत्वारो वेदविषयाः सन्तिः, विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात्। तत्रादिमो विज्ञानविषयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति। तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्य्यन्तपदार्थेषु साक्षाद्बोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुतः? अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्।

स्वामिदयानन्दस्यैषा सुदृढा बलवती च धारणा विद्यते यद् वेदस्योभे प्रयोजने स्तः। एतयोर्मध्ये अन्यानि सर्वाणि प्रयोजनानि समाहितानि सन्ति। प्रमाणरूपेणोपनिषद्वाक्यमुद्धरति स्वामी- "(तत्रापरा) वेदेषु द्वे विद्ये वर्तेते, अपरा परा चेति। तत्र पृथिवीतृणमारभ्यप्रकृतिपर्य्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणं क्रियते सा अपरोच्यते। यया चादृश्यादि विशेषणयुक्तं सर्वशक्तिमद्ब्रह्म विज्ञायते सा परा अर्थादपरायाः सकाशद् अत्युत्कृष्टास्तीती वेद्यम्।।"

निरूक्ते दैवतचिन्तनम्

डॉ० सुधा शुक्ला
शोध सहायिका, संस्कृत एवम् प्राच्य भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेदाङ्गेषु निरुक्तमन्यतममिति नास्ति तिरोहितं पश्चिदपाशचिमेभयः। तदेव वेदार्थज्ञानस्य सर्वोत्तमं साधनमिति विदुषां निश्चयः। महर्षिर्यास्कोन्याभांत्सित् निरुक्ताभिधान ग्रन्थम्। निरुक्तेऽस्मिन् त्रीणि काण्डानि सन्ति। तत्र चरमकाण्डं दैवतकाण्डम्। काण्डस्यादावेव महर्षि यास्कः प्रतिज्ञानीते 'तद्यानि' नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते इति। किञ्च यस्मिन्मन्त्रे ऋषिर्या देवतां स्तौति सा मन्त्रस्तद्दैवतो भवति। स्तुतिश्चाऽत्र चतुर्विधा। तत्संबन्धिन्य ऋच अपि त्रिविधा भवन्ति परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताः आध्यात्मिक्यश्च। एदतद्दृब्धाः सर्वप्रकाशचत्य ऋचः तास्ता देवता

अधिकृत्य महर्षिणातत्र तत्र उदाहृता:। तासां देवतानां स्वरूपाद्यवगतिविषये महर्षियास्को वर्यक्ति यज्ञा: कल्पना कर्माणि आत्मा च सन्ति साधनानि।

देवतानां संख्यानिर्दिधारयिषु:। सोऽभिधन्ते यदग्निवायुसूर्याख्यास्तिस्र एव देवता: मुख्यास्सन्ति अन्ये च तत्सहचारिण:। प्रसङ्गत: सो देवतानामाकारमपि निर्वक्ति। किञ्च तासां स: भक्तीनि साहचर्याण्यपि निरूपयति! प्रश्नोत्तराणामपि माध्यमेन देवतानां स्वरूप रूप कर्मादिकानां ज्ञानं संपद्यते।

निरुक्तकार: दैवतचिन्तनकाण्डेऽस्मिन् यां देवतां यस्तौति तत्संबंन्धिन: मन्त्रान्नापि तुस्तूयं तेषां मन्त्राणां भाष्याण्यपि प्रस्तौति येन तस्या: देवताया: स्वरूपादिकं सुलभतया ज्ञातं भवेत। महर्षिरयं काण्डामिदं त्रयोदशाध्यायेषु विभज्य दैवतत्त्वं विचारायतीति शम्।

निरुक्तस्य महत्वमुपयोगिता च

डॉ० हरेश ऐ जोशी
भक्ति पार्क, भावनगर-गुजरात

वैदिक साहित्य के ज्ञानोपार्जन के लिये वेदों के तथा वेदों के सम्यत्र् ज्ञानोपार्जन के लिये वेदांगो के ज्ञानोपार्जन की महती आवश्यकता है। ये वेदांग शरीर के अंगो की भांति वेद के अनिवार्य भाग है। वेदाङ्ग छ: होते हैं।...............

''अङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि''।
शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति-३.३.५ मुण्डक उप
छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महियते।। (४३,४२ पाणिनीय शिक्षा)
अक्षॉऽवबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्र उक्तं तद् निरुक्तम्।

एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवचपार्था: यत्र नि:शेषशोच्यन्ते तन्निरुक्तम्। (आचार्य सायण)

वेदों के अध्ययन को सरल एवं सुगम बनाने के लिये ही इन छ वेदांगों का प्रणयन हुआ।

महर्षि दयानन्दानुसारं- वेदार्थस्य समस्याः

श्रीमती आरती
शोध छात्रा, संस्कृत
गु0कॉ0वि0वि0, हरिद्वार

वेदाः आर्याणां गौरवग्रन्थाः सन्ति। तेषां सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान दर्शन धर्मसंस्कृति आस्था एवं विश्वासंन सम्बन्धित आधारभूतमान्यतानां स्रोत वेदाः सन्ति। परन्तु वेदमूलतः संस्कृतभाषायाः ग्रन्थाः सन्ति यः केवलं वर्तमान संस्कृतेन भिन्न अस्ति। अपितु तस्मात् अधिकं जटिल एवं दुरूहः अपि प्रतीयते। अस्य प्रमुख कारणम् एतद् अस्ति यत् लौकिक संस्कृते उत्तरोत्तरं परिवर्तनम् अभवत्। यद्यपि वेदानां भाषा देशकालस्य परिवर्तनेन अधुनापर्यन्तम् अप्रभाविता अस्ति।

वेद मन्त्रेषु प्रयुक्तः शब्दानां एवं तेषां अर्थानाम् अध्ययनं मननेन च ज्ञायते। यत् वैदिक शब्दाः स्व वच्यार्थ प्रकृतिः एवं प्रत्ययस्य आधारे प्रकटीकुर्वन्ति। अनेन कारणेन वैदिक शब्दाः यौगिकाः सन्ति। यास्काचार्यस्य शब्देषु ''तत्र नामाख्याजातानि शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च व सर्वाणीति गार्ग्यः वैयाकरणानां च। यौगिक शब्दः युज्, धातुना निष्पन्नः भवति। यद् शब्दःस्व वाच्यार्थं योगवृत्तयास्पष्टीकुर्यात सः यौगिकः कथ्यते। यौगिक शब्दः स्व अर्थ निर्णयस्य कृते तस्य धातोऽपरि निर्भरं कुर्वन्ति। यस्मात् तस्य शब्दः विशेषस्य निष्पत्तिः भवति। अस्य कारणं यौगिक शब्दाः कश्चिद वस्तुः व्यक्तिः या गुणस्य बोधकाः भवन्ति। अनेन कारणेन यौगिकशब्दाः वैदिक परम्परायां येषां ऋषि मुनीनां उल्लेखोलभते। तैः सर्वेऽपि एकेन स्वरेण यौगिकवादं मन्त्रार्थस्य सन्दर्भे स्वीकृतम् अस्ति।

आधुनिक युगे महर्षि दयानन्देन स्ववेद भाष्ये यौगिकवादस्य प्रयोगः कृत्वा वेदभाष्यं कृतम् अस्ति। अस्य वेदभाष्य प्रणालिकायाः मूले एतद् दृष्टिकोणः दृष्यते यत् वेद ज्ञानस्य भण्डाराः सन्ति। वैदिक दर्शनानां कृते अन्यत् भारतस्य महत् चिन्तकानां कृते प्रामाण्यः अस्ति। ऋषिभिश्च दृष्टायैः च तेषां मन्त्राणां सुसंगतः अर्थः भवेत् तेषा अर्थः भावस्य च व्यंजनेषु ज्ञान अनुभव, मूल्यानां श्रेष्ठ, उच्चतमा भूमिका लक्षिताः भवेयुः अस्यैव दृष्टिकोणस्य आधारे महर्षि दयानन्देन वेदमन्त्रेषु निहित रहस्याणां अनावृतिः करणस्य वर्णनं कृतं अस्ति। यद्यपि निरुक्त कारेणाऽपि वैदिक शब्दानां अर्थस्य यौगिक अर्थस्य समर्थनं कुर्वन् तेषा प्रधानतः तिस्र अर्थान् स्वीकृतम् अस्ति। 1. आध्यात्मिक 2. आधिभौतिक 3. आधिदैविक।

यास्क और नैरुक्ताचार्य परम्परा

डा० रामसेवक दुबे
उपाचार्य, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वैदिक वाङ्मय विश्व का आदिम साहित्य है और इस पर भारत वर्ष को महान् गौरव है। परमात्मा के श्वास निःश्वासभूत इस वैदिक साहित्य की अक्षुणता अद्यावधि बनी हुई है।, धर्म, दर्शन और विज्ञान की विविध धाराओं का स्रोत मंत्रब्राह्मणात्मक शब्दराशिभूत यह वेद गद्यात्मक, पद्यात्मक और गीत्यात्मक शैली में प्रवहमान होने के कारण त्रयी की संज्ञा से भी विभूषित किया गया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सकल पुरुषार्थ इससे ही सिद्ध होते हैं। जड जंगम जगत् और परमपिता परमेश्वर का समग्र बोध कराने वाला सर्वज्ञ कल्प वेद ही है। यही बोध वेदार्थबोध है। निश्चित ही वेदार्थबोध करना एक जटिल बौद्धिक कार्य है। वेदार्थबोध में वेदांगों की भूमिका अनिवार्यतः स्वीकार की जाती है। चतुर्दशशास्त्रों में वेदांगों की गणना इनके माहात्म्य को संवर्धित करती है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त और ज्योतिष् इन छः वेदांगों के बोध के बिना वेदार्थ का सम्यक् बोध असम्भव है। इन वेदांगो में एक एक का पृथक् रूप से ओर समग्र का समवेत रूप से बोध वेदार्थबोध का कारण बनता है। निरुक्त का स्थान वेदांगवाङ्मय में अन्यतम है। इसे वेदपुरुष का 'श्रोत्र' कहा गया है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत प्रयुक्त दुरूह एवं अनेकार्थक पदों का यथार्थ निर्वचन निरुक्त का विवेच्य विषय है। यद्यपि अनेक निघण्टुओं और निरुक्तों की चर्चा तथा प्रमुख निरुक्तकारों के रूप में निरुक्ताचार्यों की चर्चा आती है तथापि आचार्य यास्ककृत निरुक्त जो उपलब्ध है, का अप्रतिहत योगदान वेदार्थबोध में मनीषयों के द्वारा स्वीकार किया जाता है। निरुक्त के ज्ञान के बिना वेदार्थबोध में आने वाली कठिनाईयों और वेदार्थ के अन्यथाबोध से उपस्थित होने वाली विसंगतियों के कारण निरुक्त निरतिशय महत्वपूर्ण हो जाता है। निरुक्त के अन्तर्गत निर्वचन प्रक्रिया का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह अद्भुत है। निर्वचन प्रक्रिया की कुछ मौलिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए और निर्वचन के ज्ञान के बिना वेदार्थ ज्ञान की असम्भाव्यता का उल्लेख करते हुए यास्ककृत निर्वचन वैविध्य के द्वारा निरुक्त के महत्त्व और उसकी उपयोगिता 'में उनके साथ अन्य अनेक नैरुक्ताचार्यों की परम्परा का गवेषणात्मक उल्लेख करना निश्चय ही गम्भीर विषय है। इसके अन्तर्गत यास्क के अतिरिक्त औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूणि, और्णवाभ, तैटिकि, गालव, स्थौलाष्ठीवि, कौष्टुकि, कास्थक्य और कौत्स इत्यादि कुल चौदह निरुक्तकारों की परम्परा प्राप्त होती है, जिन्होंने अपने अपने निघण्टु की रचना की और उस पर निर्वचन लिखा। यास्क सबसे अन्त में हुए और निःसन्देह उन्होंने पूर्ववर्ती समस्त आचार्यों से सहायता प्राप्त की। निरुक्ताचार्यों की इस परम्परा का विशद गवेषणात्मक विवेचन ही इस शोधपत्र का विषय है जिसका विस्तृत स्वरूप शोधपत्र में प्रस्तावित है।

निर्वचन-प्रक्रिया

डॉ० रीना अस्थाना
प्राचार्या
सुभाष चन्द्र बोस महाविद्यालय, हरदोई

वेदों का ठीक-ठीक उच्चारण और उनका सही अर्थ समझने के लिए ही वेदाङ्गों का प्रादुर्भाव हुआ है। वेदाङ्गों में निरुक्त को वेद पुरुष का श्रौतरूप अंग माना जाता है। "निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते" निरुक्त के अध्ययन के बिना मनुष्य वेद के सम्बन्ध में कानों के होते हुए भी बहरा ही है इसके अभाव में व्यक्ति स्वयं भी वेदार्थ नहीं समझ सकता है। आधिभौतिक जगत् में विचरने वाला पुरुष प्रायः आधिभौतिक संस्कारों से ही ओत प्रोत रहता है वह प्रत्येक मन्त्र के अर्थ को भौतिक दृष्टि से ही सोचने समझने का यत्न करता है। अर्थज्ञान के लिए स्वतन्त्र रूप से जहाँ पदों का समूह कहा गया है वह निरुक्त है सायण के अनुसार – . अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्"

यास्क ने निर्वचन की दृष्टि से स्वर-विकार, कण्ठ्य और तालव्य वर्णो के संबध व्यञ्जनों के दोहरे प्रयोगों स्वरों तथा व्यंजनों के पारस्परिक सबंध वर्णो के द्वित्व तथा विभिन्न सन्धि नियमों से सुपरिचित है। निर्वचन की प्रक्रिया में वैज्ञानिक दृष्टि की वे उपेक्षा नहीं करते। अधिकृत और औपचारिक रीति से तो यास्क ने निरुक्त के द्वितीय अध्याय के द्वितीय पाठ से निर्वचन करना प्रारम्भ किया है किन्तु अनौपचारिक रूप से उन्होंने प्रारम्भ से ही निघण्टु शब्द की व्याख्या के माध्यम से इस कार्य का श्रीगणेश कर दिया है।

इस शब्द की व्युत्पत्ति में उन्होंने 'नि' उपसर्गपूर्वक तीन धातुओं गम् हन् तथा हृ का उल्लेख किया है। उनकी व्युत्पत्तियाँ अत्यन्त रोचक भी हैं उदाहरण के लिए श्वः (आगामीकल) का अभिप्राय है उपाशंसनीय (आशा करने योग्य) काल। कर्ण 'कृन्त' धातु से बना है क्योंकि उसका द्वार कटन है। आग्रायण ने इसे ऋच्छ गमनार्थक धातु से निष्पन्न माना है क्योंकि शब्द कानों में जाते हुए से ज्ञात होते हैं। 'नरक' का अभिप्राय है वह स्थान जहाँ थोड़ा सा भी रमणीक स्थान न हो। यास्क कहीं कहीं बडे विचित्र प्रश्न उठाते हैं 'पृथिवी' की व्युत्पत्ति उन्होंने 'प्रथ' (फैलाना) से मानी है अपने विरोधियों की इस आशंका का उत्तर देते हुए कहते हैं कि पृथिवी देखने में तो फैली हुई लगती है न भले ही इसे किसी ने न फैलाया हो सभी वस्तुओं का नामकरण लोक में देखकर ही तो किया जाता है। यास्क की निर्वचन प्रक्रिया पर ,आपत्तियों का समाधान तर्कयुक्त ढंग से किया है। 'अश्व' और 'तृण' के निर्वचनों पर आपत्ति करते हुए जब आपत्ति उठायी गयी कि सभी नाम आख्यातज होते तो जो चीज भी वह काम करती उसे वैसा ही कह देते हैं। यास्क का उत्तर है कि समानार्थक शब्दों में से कुछ का उस प्रकार से नामकरण होता है और कुछ का नहीं. जैसे सभी लकड़ी काटने वाले 'तक्षा' नहीं कहे जाते हैं और न सभी घूमने वाले परिव्राजक ही कहलाते हैं। यास्क ने लोक-व्यवहार को निर्वचन प्रक्रिया में विशेष स्थान दिया है।

वेदार्थ में निरुक्त का महत्त्व

डॉ० रघुवीर वेदालंकार
रीडर, रामजस कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

निरुक्त का मुख्य प्रयोजन निघण्टु में समाम्नात वैदिक शब्दों का निर्वचन करना है। निर्वचन के माध्यम से ही यास्व ने उन शब्दों के विविध अर्थ प्रदर्शित किए है। यथा गौ, पशु, धनुष की डोरी, पृथिवी, रश्मियाँ आदि अनेक पदार्थों को गौ कहते हैं। जब तक हम शब्दों का अर्थ नहीं जानेंगे, तब तक मन्त्रार्थ भी स्पष्ट नहीं हो सकेगा। अत: यास्क ने निर्वचन के माध्यम से वैदिक शब्दार्थ को ही स्पष्ट करने का यत्न किया है। इसके साथ ही यास्क यह भी कह रहे हैं। ' अथापी दमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्ययो न विद्यते। इस प्रकार मन्त्रार्थ का ज्ञान कराना निरुक्त का प्रमुख प्रयोजन है।

यास्क यह भी कह रहे हैं कि जब तक मन्त्रार्थ या शब्दार्थ ज्ञान नहीं होगा, तब तक शब्दों के स्वर तथा संस्कार का ज्ञान भी भली-भांति नहीं हो पायेगा। स्वर-संस्कार का ज्ञान करना यद्यपि व्याकरण का प्रयोजन है, किन्तु यह तब तक पूर्ण नहीं होगा, जब तक कि शब्दार्थ ज्ञान न हो जाए, तथा यह कार्य निरुक्त का है। इसलिए यास्क निरुक्त को व्याकरणस्य कात्स्नर्यम् भी कह रहे हैं, किन्तु निरुक्त का क्षेत्र केवल यहीं तक सीमित नहीं है। इसीलिए यास्क यह भी कहते हैं 'स्वार्थ साधकं च'। अर्थात् व्याकरण को पूर्णता देने के साथ ही साथ निरुक्त का अपना मूल प्रयोजन वैदिक शब्दों का निर्वचन करना तथा उसके माध्यम से मन्त्रार्थ की दिशा बतलाना है। यह कार्य अन्य किसी भी वेदाङ्ग द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसलिए वेदार्थ ज्ञान में 'निरुक्त का ज्ञान अपरिहार्य है। शब्द तीन प्रकार के होते हैं। इनमें से प्रत्यक्ष वृत्ति शब्दों के अर्थ का ज्ञान तो व्याकरण करा देता है। परोक्ष वृत्ति शब्दों के साधुत्व के लिए उणादि सूत्र हैं जबकि अतिपरोक्षवृत्ति शब्दों के अर्थ ज्ञान का एक मात्र माध्यम निरुक्त ही है। यास्क तथा समूचा नैरुक्तसम्प्रदाय नाम पदों को आख्यातज मानता है। उनकी तथा आख्यतजता तभी सिद्ध की जा सकती है जबकि उनका निर्वचन किया जाए। इसलिए वेदार्थ ज्ञान में निरुक्त ज्ञान अपरिहार्य है।

निरुक्त: एक परिचय

डॉ. हेम बाला पाण्डेय
बरेली

वेद हमारी भारतीय संस्कृति के आधार भूत तत्त्व हैं। वेदों को भारतीय धर्म में अत्यन्त आदर तथा पवित्रता की दृष्टि से देखा जाता है। वेदों के स्वरूप को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने तथा उसमें प्रतिपादित तथ्यों के समुचित ज्ञान के लिये 'वेदाङ्ग' साहित्य की रचना हुई है। वेद स्वयं में भाषा तथा भाव की दृष्टि से अत्यन्त दुरूह है अत: वेदो के अध्ययन को सरल

तथा सुगम बनाने के लिये वेदाङ्गों की रचना हुई है। यास्काचार्य के अनुसार ''जब केवल उपदेश या प्रवचन से काम चलना कठिन हो गया तब विद्यार्थियों की विशेष सुविधा की दृष्टि से वेदाङ्गों का समाम्नाय किया गया।

अङ्ग शब्द का अर्थ है- 'उपकारक' **''अंगयन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अङ्गानि''** अर्थात् जिनके द्वारा किसी वस्तु के स्वरूप को जानने में सहायता प्राप्त होती है उन्हें अङ्ग कहते हैं। वेदाङ्ग छ: कहे गये हैं, 1- शिक्षा, 2- कल्प, 3 -व्याकरण, 4-निरुक्त, 5-छन्दस्, 6-ज्योतिष्। वेदरूपी पुरुष के यह मुख्य अङ्ग है। इन छ: वेदाङ्गों की सहायता से वेदों का मूल पाठ, उच्चारण की शुद्धता तथा वैदिक मन्त्रों का सटीक अर्थज्ञान होता है। अत: वैदिक साहित्य में वेदाङ्गों का अत्यन्त महत्व है।

निरुक्त इन वेदाङ्गों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। पाणिनीय शिक्षा में निरुक्त को वेद पुरुष का श्रोत्रेन्द्रिय कहा गया है।

''निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते (पाणिनीय शिक्षा)''

निरुक्त यास्क द्वारा रचित है निरुक्त का आधार निघण्टु नाम का वैदिक शब्द कोश है। वेदों में से कठिन शब्दों को निकालकर उन्हें पहले निघण्टु में संकलित किया गया था। निघण्टु में वेद के कठिन शब्दों का निर्वचन यास्क ने अपने निरुक्त में किया है। इस प्रकार निघण्टु वैदिक शब्द कोश है और इस कोश का भाष्य निरुक्त माना जाता है। अत: वैदिक मन्त्रों के अर्थ ज्ञान में निरुक्त अत्यन्त सहायक है।

वेद-व्याख्यान परम्परा में दयानन्द सरस्वती, महर्षि अरविन्द योगी एवं श्रीपाददामोदरसातवलेकर का योगदान

ब्रजेश कुमार शुक्ल
शोधछात्र , संस्कृत- विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

वेद उस आदि कालीन अन्तर्ज्ञानात्मक और प्रतीकात्मक मनोवृत्ति की रचना है जो मनुष्य के परवर्ती मन के लिए एक सर्वथा अपरचित वस्तु बन गयी है। आचार्य शंकर आदि आचार्यो ने वेदों के ज्ञान को प्रमाणिक ईश्वर प्रदत्त माना है। महर्षि दयानन्द ने इस युग में आकर वेद के सम्बन्ध में जो भ्रान्त धारणाएं उत्पन्न हो गयी थी। उन्हीं भ्रान्त धाराणाओं का खण्डन ऋग्वेद भाष्य भूमिका सत्यार्थ प्रकाश तथा वेदों का भाष्य रचकर किया है। वेदों के भाष्य की परम्परा में रावण से लेकर स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वररुचि, भट्टभाष्यकर, महीधरभट्ट, उव्वट और सायण आदि मध्यकालीन भाष्यकार और वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द,श्री अरविन्द, जयदेव विद्यालंकार धर्म देव, स्वामी ब्रह्ममुनि तथा श्री पादसातवलेकर प्रभृत्ति विद्वान् उल्लेखनीय है।

उक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखकर शोध पत्र प्रस्तुंत करने का प्रयास करूगाँ।

निरुक्त में वर्णित शैक्षणिक तथ्य

डॉ० रेखा शुक्ला
उपाचार्य एवं अध्यक्षा संस्कृत विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

निरुक्त को वेदों का श्रोत्र कहा गया है। अन्य वेदाङ्ग जहां वेदों के बाह्य स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं वहीं निरुक्त वेद विज्ञान के आन्तरिक स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। अथर्ववेद में प्राप्त मेधाजननम् (1.1) तथा मेधावर्धनम् (6.108) सूक्तों से स्पष्ट है कि वैदिक शिक्षा का आदर्श बुद्धि (मेधा) का संवर्धन माना गया है। धारणावती बुद्धि को ही मेधा कहते हैं। मेधा का संवर्धन गुरु द्वारा शिष्य को प्रदत्त शिक्षा के द्वारा होता है। तैतित्तरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली इस ज्ञान सम्प्रदाय रूप शिक्षा विधि की पराकाष्ठा है। वैदिक शिक्षा प्रणाली गुरुकुलीय एवं यज्ञप्रधान थी। ऋग्वेद में आचार्य शब्द का प्रयोग नहीं प्राप्त होता है। किन्तु गुरु शब्द का उल्लेख कई बार हुआ है। अथर्ववेद के ब्रह्मचारी सूक्त (11.5) में आचार्य शिष्य संबंध का विशद प्रतिपादन किया गया है। वहाँ आचार्य को मृत्यु, वरुण, सोम, ओषधि पयः इत्यादि कहकर आचार्य के विविध गुणों को प्रकाशित किया है। अथर्ववेद (11/5/3) के अनुसार आचार्य तथा शिष्य का संबंध माता तथा गर्भस्थ शिशु के समान होता है।

निरुक्तकार ने गुरु शिष्य संबंध, परम्परा तथा भाषा आदि के वैज्ञानिक स्वरूप को प्रस्तुत किया है। निरुक्तकार ने आचार्य को शिष्य का उपकारक तथा सत्पृथप्रदर्शक कहा है। आचार्य पद की परिभाषा करते हुये वे कहते हैं। आचारं ग्राहयतीत्याचिनोत्यर्थानाचिनोतिबुद्धिमिति। यास्क ने आचार्य के तथा शिष्य के तीन स्तर प्रस्तुत किये हैं। (1) साक्षात्कृतधर्माणः (2) असाक्षात्कृतधर्माणः (3) उपदेशाय ग्लायन्तः। शैक्षणिक तथा साहित्यिक प्रक्रिया को भी त्रिगुणात्मक स्वरूप में प्रस्तुत किया है। (1) सम्पूर्ण मन्त्रों का वर्गभेद निरूपण करते हुए व्यवस्थित करना (2) गूढ़ तथा दुर्बोध शब्दों को सूचीबद्ध करना तथा (3) वैदिक अध्ययन के कतिपय पक्षों को नियमबद्ध करना तथा सम्यक् उच्चारण, व्याकरण, शब्दव्युत्पत्ति की अभिव्यक्ति। वैदिक कर्मकाण्ड में मन्त्रों का उच्चारणकाल तथा प्रयोग का नियमन वे शिक्षा आदान प्रदान के विनिमय के लिए पात्रता को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने वैदिक भाषा (आम्नाय) तथा लौकिक भाषा के अन्तर को स्पष्ट करते हुये उनके वैज्ञानिक स्वरूप को प्रस्तुत किया। उन्होंने वेदों के सम्यक् ज्ञान के लिए निरुक्त तथा व्याकरण के अन्योन्याश्रय संबंध को स्वीकार किया है। वेदविद्या को अलौकिक कहकर पाठ्यक्रम में उसकी अनिवार्यता को माना है। विद्यार्जन का अधिकारी कौन होगा इस विषय में ऋग्वेद के विद्यासूक्त को संग्रहीत करके अपने मत को स्पष्ट किया है जो आधुनिक युग में भी शिक्षक शिक्षार्थी के लिए आदर्श मापदण्ड है।

विष्णु शब्द की निरुक्ति एवं स्वरूप

डॉ.अर्चना लाल सिंग
प्रपाठक संस्कृत विभाग प्रमुख
सीताबाई कला महाविद्यालय, अकोला

वेदों में निहित गूढ़ अर्थ को सम्यक् रूप से समझने के लिए यास्ककृत निरुक्त का आधार लेना परम आवश्यक है। निरुक्त में वेदों से संबंधित सभी तत्त्वों की वैज्ञानिक व शास्त्रीय चर्चा की गई है। वैदिक देवतावाद, उनका वर्गीकरण एवं उनकी संख्या के बारे में निरुक्त ही प्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध हुआ है।

देवानां भद्रा सुमतिऋजूयतां देवानां रातिराभि नो नि वर्तताम्। १/८९/२

निरुक्त के अनुसार वैदिक देवों का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

1. पृथिवी स्थानीय देवता 2. अस्थानीय देवता तथा
3. अन्तरिक्ष देवता। द्युस्थानीय देवताओं में विष्णु का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है यास्क कृत निरुक्त में (12/18) विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति प्रवेश करना (विश) अथवा वि+अश (व्याप्त) धातु से मानी जाती है।2

बृहद्देवताकार के मतानुसार यह शब्द व्याप्ति अर्थयुक्त विष, विश अथवा वेविष (विष्लृ) धातुओं से बना है। सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित कर लेने तथा प्रत्येक वस्तु में व्याप्त (प्रविष्ट) रहने के कारण सूर्य को ही विष्णु कहते हैं।

विष्णुर्निरुच्यते सूर्यः सर्व सर्वान्तरश्च यः। २/६

विविध पुराणों में विष्णु के इसी पक्ष पर अधिक महत्त्व दिया गया है।

जगद्विष्टम्भना चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे
व्याप्त त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचरा चरम्।।१

महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ने निष्णु की उत्पत्ति के विषय में अपना अभिमत स्पष्ट किया है। विश प्रविष्ट किया है। विष व्याप्त करना एवम् विश प्रविष्ट होना, इन धातुओं के अलावा ष्णु प्रस्रवण करना धातु से वि उपसर्ग पूर्वक विष्णु शब्द की सिद्धि किया है। दीप्ति अर्थ में प्रयुक्त होने वाली चुरादि गण के विच्छ धातु विष्णु के प्रकाशशील स्वरूप को सिद्ध करती है। बृहद्देवताकार के अनुसार सूर्य ही विष्णु है और प्रकाशपुंज का उद्गिरण करने वाले तेजस्वी सूर्य मण्डल से सम्बन्ध देवता के नाम में मूलतः इन भावों का होना स्वाभाविक है।

तुदादिगण के एक अन्य गत्यर्थक विच्छ धातु शब्द की निरुक्ति प्राप्त होती है। जिसमें अन्त में समस्त सृष्टिचली जाती है। ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु की एक अत्यन्त प्राचीन निरुक्ति प्राप्त होती है।

विष्णुशब्द पित्र बन्धने धातु से बना है --विस्तृत मुक्त, स्वतंत्र या खुला हुआ है।

स्यन्दतां कुल्या: विषिता: पुरस्तात वे 5/83/2 खोण्डा के मतानुसार यह विष्णु की प्राचीनतम विशेषताओ को ही इंगित करता है। ऋग्वेद के कुछ स्थलों में विष्णु को इन्द्र की वृत्रवध में सहायता करते हुए उल्लेख किया है।

वस्तुत: विष्णु के प्रारम्भिक एवं मूलस्वरूप की सम्यक् वैज्ञानिक व्याख्या परम्परा प्रस्तुत करती है। उतनी अन्यत्र नहीं होती। बृहद्देवता तथा निरुक्त के उल्लेख से और विष्णु की आदित्यगण में गणना किए जाने से स्पष्ट होता है कि विष्णु का मूलरूप से किसी न किसी प्रकार अवश्य संबन्ध था। सूर्योदय के पश्चात् जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक उसे प्रकृति की प्रत्येक वस्तु प्रकाश से आवृत्त दिखाई पडती है।

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं य: पार्थिवानि विममे रजांसि।। ऋ. वे. १/१५४/१

वेदार्थ के समझने में निरुक्त का महत्त्व और उपयोगिता

रुद्रेतपाल आर्य
शोध छात्र,
सर एम. यू. टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, एटा

वेद प्रभु की पवित्र वाणी है जो आदिसृष्टि में जीवों के कल्याणार्थ संसार के अन्य भोज्यपदार्थो की भांति, कर्मो की यथावत् व्यवस्था के ज्ञानार्थ, तदनुसार आचरण करने के लिए, परम पवित्र ऋषियों द्वारा प्रदान की गयी। निरुक्त उसी वेद का अङ्ग होने से वेदाङ्ग है। यह प्रत्येक आर्य को आबालवृद्ध विदित है। वेद का अध्ययन अङ्गोपाङ्ग सहित यथावत् हो सकता है। महर्षि पतञ्जलि महाभाष्य में स्पष्ट लिखते हैं-

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म: षडङ्गो वेदोध्येयो ज्ञेयश्च। (महाभाष्य प्रथम पस्पशाह्निक)

यास्कमुनि अपनी भूमिका (निरु0 1/15) में निरुक्तशास्त्र का प्रयोजन दर्शाते हुए लिखते हैं-

''अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। अर्थतप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देश: तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यम् स्वार्थसाधकं च।''

अर्थात् इस निरुक्तशास्त्र के विना मन्त्रों में अर्थ का परिज्ञान नहीं होता। जो अर्थ नहीं जानता वह स्वर संस्कार (प्रकृति प्रत्यय रूप) का यथावत् अवधारण नहीं कर सकता। अत: यह शास्त्र अर्थ परिज्ञान का साधक होने से निर्वचन विद्या का स्थान है। तथा व्याकरण शास्त्र की पूर्णता करने वाला और मन्त्रार्थबोध का साधक है। इससे स्पष्ट है कि-

1. निरुक्तशास्त्र के विना वेदमन्त्रों के अर्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता।
2. जो अर्थ करने की ठीक-ठीक शैली को नहीं समझ लेगा, वह केवल व्याकरण के प्रकृति प्रत्यय की योजनामात्र से मन्त्रों के ठीक-ठीक अभिप्राय तक नहीं पहुँच सकता।

निरुक्त और वेद

डॉ० मनुदेव बन्धु
प्रोफेसर वेद विभाग
गु0का0 विश्वविद्यालय, हरिद्वार

''निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'' की उक्ति के अनुसार निरुक्त वेदाङ्गो में श्रोत्र की तरह है। वेद को हम निरुक्त से सुन सकते हैं। संस्कृत साहित्याकाश में महर्षि यास्क विरचित निरुक्त शास्त्र का अम्बरमणिरिव स्थान है। यह ग्रन्थ अपने ढंग का निराला है। इस ग्रन्थ में वैदिक भाषा की रचना का वर्णन करते हुए वेदों के अध्ययन-सम्बन्धी नियमों का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है। वैदिक शब्दों के अर्थ किस प्रकार करने चाहिए? इस बात को सहस्रों वैदिक शब्दों की निरुक्ति और व्याख्या करके समझाया गया है। प्रसंग से सैकड़ों वेदमन्त्रों के अर्थ पर विचार किया गया है। वेदों में वर्णित अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं पर विचार किया गया है। इस ग्रन्थ का गम्भीर अध्ययन किये बिना कोई भी मनुष्य वेद को समझने की क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता। इतना महत्त्वपूर्ण यह निरुक्त ग्रन्थ है। निरुक्त की वेदों के सम्बन्ध में जो सम्मतियाँ है, उसे जान लेने से वेदों के प्रति हमारी आस्था और अभिरुचि बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। यास्क कहते हैं-

''साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृद्धर्मभ्यः उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुः। उपदेशेन ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च''।। निरुक्त 1/1

सृष्टि के आरम्भ में ऐसे ऋषि उत्पन्न हुए थे जो साक्षात्कृद्धर्मा थे अर्थात् जिन्हें परमेश्वर की प्रेरणा से वेदमन्त्रों और उनके अर्थों का साक्षात्कार अर्थात् दर्शन हुआ था। वे साक्षात्कृद्धर्मा ऋषि अपने पीछे आने वाले असाक्षात्कृत धर्मा ऋषियों को जिन्हें परमेश्वर द्वारा वेदार्थ बोध नहीं हुआ था, अपने उपदेश द्वारा वेदमन्त्र सिखाते रहे। अर्थात् वेद को समझने के लिए निरुक्त और वेदांगों को ग्रन्थ रूप में संगृहीत किया।

ऋग्वेद में चित् निपात का अर्थपरिशीलन

अवधेश कुमार उमराव
शोध छात्र,वेद विभाग
गु. का. वि. वि., हरिद्वार

उच्चावचेषु अर्थेषु निपतन्तीति निपाताः यह आचार्य यास्क का कथन है। आचार्य यास्क के अनुसार उपमा, अर्थोपसंग्रह और पदपूर्ति अर्थों में निपातों का प्रयोग होता हे। इव न चित नु,च, आ,

वा, अह, उ, हि, किल, मा, खलु, शश्वत, नूनम, सीम, त्वः, त्वत्, कम्, ईम्, इत, आदि निपात निरुक्त में आचार्य यास्क ने सोदाहरण दिखाये हैं। इनमें से चित् निपात वेदों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त है। इसीलिए यास्क ने कहा है चिदित्येषो अनेक कर्मा। ऋग्वेद की शाकल संहिता में उपमा, पूजा, समुच्चय अवधारण, अपि, एव पदपूरण, प्रतिषेध, सप्तमी, अवकुत्सित आदि दस अर्थों में लगभग 786 बार इसका प्रयोग हुआ है, ऐसा अनुमान है। यह संख्या वैदिक संशोधन मण्डल पूना द्वारा सम्पादित सायणभाष्य समुपेत ऋग्वेद संहिता पर आधारित है।

अतः जो शोध पत्र लिखा जायेगा वह उपमार्थक चित् निपात पर आधारित होगा।

सृष्टि-उत्पत्ति-विषयक वेदमंत्रों के अर्थ निश्चय के उपकरण

डॉ० कमलेश कुमार सी. चोकसी
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

वेद में दो प्रकार के मंत्र देखे जा सकते हैं। एक प्रकार के मंत्र पादान्त वाक्य वाले हैं। अर्थात् कुछ मंत्रों में एक या एकाधिक वाक्यों की प्रतीति सरलतया देखी जाती है। तद्यथा पुरुष सूक्त के प्रथम मंत्र सहस्र शीर्षा...01 में प्रथम चरण (अस्ति क्रिया पद के अध्यातत कर लेने पर) एक वाक्य है और दूसरा चरण दूसरा वाक्य है। इस प्रकार मंत्र में वाक्य की स्पष्ट प्रतीति होने से इसके अर्थ निश्चय का मार्ग सरलता से प्राप्त हो जाता है। पर, दूसरे प्रकार के मंत्रों में पादान्त वाक्य की रचना दृष्टिगोचर नहीं होती। अर्थात् कुछ मंत्रों में जिन पदावलि को हम पाते हैं, उनमें वाक्य की प्रतीति करना सरल नहीं होता। यदि क्रियापदों के अभिज्ञान द्वारा वाक्य की प्रतीति कर ली जाए, तो एकाधिक वाक्यों के होने की स्थिति में उन वाक्यों का पूर्वापर सम्बन्ध लगाना सरल नहीं होता। ऐसी स्थिति में वेद मंत्रों के भाष्यकार बाह्य उपकरणों की सहायता लेते हैं। ऐसे उपकरणों के उचितानुचित होने का तथा उपकरणों की अनेकता से मंत्रों के अर्थों की जो अनेकता बन पड़ती है; उस पर इस लेख में विमर्श किया गया है। एतादृश विमर्श ऋग्वेद के सृष्टि उत्पत्ति विषयक मंत्रों के सन्दर्भ में है; जो सम्पूर्ण ऋग्वेद के मंत्रार्थ विमर्श पर लागू हो सकता है।

वेदों में पुनरुक्ति

डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री,
रीडर, वेद विभाग
गु0कॉ0वि0वि0, हरिद्वार

किसी बात को बार-बार कहना पुनरुक्ति कहाती है। वह शब्द और अर्थ भेद से दो प्रकार की होती है। जब किन्हीं शब्दों को बार-बार कहा जाता है तो वह शब्द पुनरुक्त कहाता है। जब भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा एक ही अर्थ को बार-बार कहा जए तो वह अर्थ पुनरुक्त कहाता है। पुनरुक्ति पद, पाद, अर्थ, मंत्र और सूक्त भेद से पांच प्रकार की होती है।

वेदों में पुनरुक्ति के ये सभी भेद बहुतायत में प्राप्त होते हैं। अतः वेदों पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि वेदों में पुनरुक्त दोष है। पुनरुक्त दोष होने से न तो बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे को स्वीकार किया जा सकता है और न उसके रचयिता को भ्रम, प्रमाद विप्रलिप्स आदि दोषों से मुक्त कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में वेद के प्रामाण्य का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः पुनरुक्त दोष के कारण होने वाली इन आपत्तियों का समाधान इस पत्र के माध्यम से करने का प्रयास किया जायेगा। जिसमें ईश्वरोक्तता, सप्रयोजनता, सार्थकाभ्यासोपपत्ति आदि युक्तियों को जहाँ आधार बनाया जायेगा वहीं अन्य युक्तियों को भी वेद में पुनरुक्ति की दोषता को सिद्ध करने के लिए आश्रय लिया जायेगा। जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं-

1. भूयस्त्व (प्राबल्य) दिखाने के लिए।
2. भावोद्रेक होने से।
3. भय, शोक, अनुकम्पा आदि के प्रदर्शन के कारण।
4. काव्य का उत्कर्ष सिद्ध होने से।
5. विशिष्ट अर्थ को प्रकट करने से।
6. प्रकरण भेद से भिन्न अर्थ सिद्ध होने से।
7. वेदभेद से अर्थभेद होने के कारण।
8. ऋषि, देवता, स्वर और छन्द भेद के कारण अर्थ भेद होने से।
9. समस्त विद्याओं के एक दूसरे पर आश्रित होने से।
10. धातुओं के अनेकार्थक होने से।
11. विभिन्न कार्यों में विनियोग होने से।
12. अर्थ समान होने पर भी भाव की विशिष्टता होने से।

अपने इस विवेचन में हम जहाँ यास्क, सायण, वेङ्कटमाधव, स्वामी दयानन्द आदि के वैदिक साहित्य को आधार बनायेंगे। वहीं पाणिनि, दण्डी, महिमभट्ट आदि के लौकिक संस्कृत साहित्य से भी व्यापक रूप में सहाय्य लेंगे।

निरुक्त में उद्धृत युद्धोपकरण देवता

सरिता श्रीवास्तव
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
लखनऊ-परिसर:

वेदाध्ययन के सन्दर्भ में छः वेदाङ्गो (छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा तथा व्याकरण) का अपना महत्व है। इसमें भी व्युत्पत्ति तथा अर्थ की दृष्टि से निरुक्त नामक वेदाङ्ग की विशेष उपयोगिता है। पाणिनि ने निरुक्त नामक वेदाङ्ग को वेद रूपी पुरुष के कान माना है। वर्तमान समय में केवल एक ही निरुक्त उपलब्ध है जिसके प्रणेता यास्क मुनि है। यह निरुक्त चौदह अध्यायों में विभक्त है। चौदह अध्यायों में प्रथम, द्वितीय, तृतीय अध्याय नैघुण्टुक काण्ड, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ अध्याय नैगम काण्ड, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश अध्याय दैवत काण्ड के नाम से तथा अन्तिम त्रयोदश, चतुर्थदश अध्याय परिशिष्ट के रूप में जाने जाते हैं।

यास्क ने निरुक्त नामक ग्रन्थ में ''सर्वाणि नामानि आख्यातज़ानि'' के सिद्धान्त के आधार पर अनेक विषयों को स्पष्ट किया है। जैसे-कहीं निपातों को, कहीं एकार्थक अनेकार्थक शब्दों को तो कहीं दैवत प्रकरण के अन्तर्गत स्थान भेद के आधार पर देवता विभाजन इत्यादि प्रकरण को स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र का शीर्षक है- **''निरुक्त में उद्धृत युद्धोपकरण देवता''**। इस शीर्षक के अन्तर्गत निरुक्तगत युद्धोपकरण देवताओं का उल्लेख किया जा रहा है। यास्क ने युद्धोपकरण देवताओं का उल्लेख करने के पूर्व कहा है कि यज्ञ के संयोग से राजा स्तुति को प्राप्त करते हैं तथा राजा के संयोग से युद्ध के उपकरण स्तुति को प्राप्त करते हैं।[1] यास्क के इन कथनों से यह तात्पर्य निकलता है कि यज्ञादि कर्म से राजा स्तुति को प्राप्त करते हैं और राजा के संयोग से, युद्धोपकरण स्तुति करते है। क्योंकि राजा एक क्षत्रिय होता है। राजा का कर्म ही युद्ध करना होता है। राज़ा युद्ध कर्म के लिये उपकरणों को प्राप्त करता है ये उपकरण राजा द्वारा धारण किये जाने पर ही स्तुति योग्य होते हैं।

यास्क के उपर्युक्त कथन ऋग्वेद के, निम्नलिखित मन्त्र द्वारा उचित प्रतीत होते हैं :-

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहु राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥[2]

युद्धोपकरण देवताओं की संख्या बाइस (22) है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं - रथ, दुन्दुभि, इषुधि, हस्तघ्न, अभीशव, ज्या, इषु, अश्वाजनि, उलूखल, धनु, वृषभ, द्रुघण, पितु, नद्य,

आप, ओषधय, रात्रि, अरण्यानी, श्रद्धा, पृथिवी, अप्वा तथा अग्नायी हैं।

यहाँ पर उपर्युक्त सभी बाइस (22) युद्धोपकरण देवता का उल्लेख न करके किन्ही दो देवताओं को ही प्रस्तुत किया जा रहा है। अन्य सभी देवताओं का उल्लेख शोधपत्र में किया जायेगा।

---

1. यज्ञसंयोगाद्धारा स्तुतिं लभेत। राजसंयोगायुद्धोपकरणानि।।निरु0 9/2/11
2. ऋ0 10/90/12

निरुक्तशास्त्रे दैवतचिन्तनम्

डॉ० वेदप्रिय आर्य

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, ऊर्जानगर, झारखण्ड

'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'- अर्थात् षड् वेदांगों में यास्काचार्य द्वारा रचित निरुक्त का श्रोत्ररूपी श्रेष्ठ स्थान है। निरुक्त में पदविभाग, मन्त्रार्थबोध और देवता-परिज्ञान का उपदेश दिया गया है। परन्तु निरुक्त का परमप्रयोजन देवता का परिज्ञान ही है। मन्त्रों में देवता परिज्ञान के विषय में दैवतकाण्ड में कहा गया है-

''यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्
स्तुतिं प्रयुंक्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।।'' (निरु. ७/१)

अर्थात् जिस किसी पदार्थ की कामना करता हुआ ऋषि जिस किसी देवता के विषय में अपने अभीष्ट पदार्थ का अधिष्ठातृत्व अर्थात् यह देवता मुझे अमुक अर्थ प्रदान करें इस इच्छा से देवता की स्तुति करता है। वह उस मन्त्र का देवता है।

दैवतकाण्ड में देवताओं का वर्गीकरण अधिदैवत प्रक्रिया के अनुसार पृथिवीस्थानीय देवता अग्नि, अन्तरिक्ष स्थानीय देवता वायु अथवा इन्द्र और द्युलोक स्थानीय देवता सूर्य है। प्रत्येक देवता का आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक पक्ष का चिन्तन है। अग्नि, इन्द्र मित्र, वरुण आदि भिन्न-भिन्न नाम एक ही परमात्मा के गुणवाचक नाम है। (ऋ. 1-11-46)

इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

इस प्रकार दैवतकाण्ड में 151 देवताओं का विस्तृत विवेचन हुआ है। यम-यमी संवाद, सरमा-पणि संवाद, त्वाष्ट्री-सरण्यू इतिहास आदि आख्यानों के माध्यम से लोक में प्रचलित रूढ़ि अवधारणाओं का सत्यान्वेषण हुआ है।

वेदार्थावगमने निरुक्तस्य महत्तवमुपयोगिता च

अर्चना मिश्रा
शोध छात्रा
जुहारीदेवी कॉलेज, कानुपर

भारतीय धर्म तथा तत्वज्ञान को भली-भांति समझने के लिए वेदों का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। भारतीय व्यक्ति के लिए, जन्म के भी पूर्व से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले सोलह संस्कारों का अत्यधिक महत्व है और इन संस्कारों का सम्पादन वेद मंत्रों के बिना कदापि संभव नहीं है। हमारी दैनिक प्रार्थना, हमारे देवी देवता, हमारी उपासना, हमारे अनुष्ठान, हमारे पर्व, हमारे यज्ञ, हमारी मान्यतायें तथा हमारी परम्पराएं सभी देवों से प्रमाणित हैं। परम धार्मिक श्री लोकमान्य तिलक ने तो हिन्दू धर्म का लक्षण ही **'प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु'** किया है। अत: वेदों का स्वाध्याय करना अत्यन्त आवश्यक तथा उपादेय है। **यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददन् लोकं जयति त्रिभिस्तावन्तं जयति, भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरह स्वाध्यायमधीते तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। (शत० ११/५/६/१)**

वेदों के अध्ययन को सरल तथा सुगम बनाने के लिए छह वेदांगों का प्रणयन हुआ है। महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार ऋग्वेद का अध्ययन तथा ज्ञान प्रत्येक ब्राह्मण का सहज कर्म होना चाहिये-ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च। ये छः वेदांग हैं- 1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरुक्त 5. छन्द और 6. ज्योतिष।

शिक्षा ग्रन्थों में उदात्त, स्वरित आदि स्वरों तथा वर्णों के उच्चारण के नियम बताये गए हैं। कल्प ग्रन्थों में कर्मकाण्ड सम्बन्धी विविध विधि-विधानों की व्यवस्था वर्णित है। व्याकरण के ग्रन्थों में, शब्दों के प्रकृति प्रत्यय आदि की कल्पना करके शब्दों को व्याकृत संसिद्ध अथवा निष्पन्न किया गया है। छन्द: शास्त्र के ग्रन्थों में छन्दों के विषय में विवेचन किया गया है। ज्योतिष के ग्रन्थों में यव आदि की दृष्टि ऋतु, मास, नक्षत्र, वर्ष आदि के ज्ञान का उपाय बताया है।

व्याकरण के समान निरुक्त ग्रन्थों की भी एक लम्बी परम्परा रही है जिसके पर्याप्त प्रमाण आज अन्वेषकों को उपलब्ध हो चुके हैं। इन निरुक्त ग्रन्थों में प्रधानतः वैदिक तथा प्रसंगतः लौकिक दोनों प्रकार के दुरूह अथवा रूढ़िभूत शब्दों का निर्वचन किया गया था।

दर्शनम्

वैदिकवाङ्मयानुसारं मोक्षस्वरूपविमर्शः

प्रो० महेश झा
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
भागलपुर विश्वविद्यालय, मुंगेर

सर्वमपिज्ञानविज्ञानं वेदमूलकमेवेति मन्यन्ते पण्डिताः। वैदिकवाङ्मये ऋषयः वैदिकदर्शनविषयान् आधारीकृत्य बहुधा विचारयन्ति। पुरुषार्थ सम्बन्धे ऋषीणां चिन्तनम् सर्वथा दर्शनेषु उपयोगि विद्यते।

जन्तवो यदधिगच्छन्ति ततोऽधिकम् अभिलषन्ति। जन्तूनामेवं स्वभाव एव भवति यत् यावत् सुखं तैरधिगतं ततोऽधिकं तैरभिलष्यते। एवमेव यावद्दुःखनिवृत्तिः तैर्लब्धा तदतिरिक्ताप्यधिगन्तुमिष्यते। वस्तुतः उक्तम् सुखं सातिशयं, उक्ता दुःखनिवृतिश्चातिशया एव। यदधिगम्य किमप्यभिलषणीयं न तिष्ठेत्, तत्सुखमेव निरतिशयम्। तादृशी दुःखनिवृत्तिरेव निरतिशया। उक्तावस्थांगतवताम् जनानां न किमपि वाञ्छनीयं तिष्ठति। इयमेव अवस्था मोक्षपदव्यदेश्या भवति। एतद्विषये श्रुतिभिरमिधीयते-

सोऽश्नुते सर्वान् कामान् (तैति० २/१/१)
सोऽभयं गतो भवति (तै० २/७/१)
अमृतत्वं च गच्छति (का० ६/८)
न स भूयोऽभिजायते (अ०वि० ३८)
अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये
स्पृशतः (छान्दो० ८/१२/१)
यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन
कं पश्येत् (बृ० २/४/४)

एवं मोक्षस्वरूप विषये वैदिकवाङ्मये बहवो विमर्शाः विद्यन्ते। तानाधारीकृत्यैव दर्शनेषु मोक्षविषये मतवैविध्यं दृश्यते। अस्मिन् शोध लेखे इत्येव विचार्यते।

वेदस्य वेदता

सुष्मिता पाण्डेय
मीरा भवन, सिविल लाइन, प्रतापगढ़

विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद्लृ लाभे, विद् सत्तायामिति धातोघञ्प्रत्ययेन निष्पन्नो वेदशब्दः समग्रज्ञानस्य विचारस्य लाभस्य सत्तायाश्च बोधको विद्यते। **'विद्यन्ते धर्मादयः साधनोपाया यैस्ते वेदाः'**, ऋक्प्रातिशाख्ये। **'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः'**- तैत्तिरीयसंहितायां सायणभाष्ये-1/1/1 इत्यादि कथनैर्वेदस्य महत्त्वमतितरां स्पष्टम्। वेदे प्रयुक्ताः शब्दनिवहाः पद्यात्मका गद्यात्मका वा मन्त्रशब्देनाख्यान्ते। त एवं वेदे प्रयुक्ता मन्त्रा अर्थवन्तो निरर्थका वेति विद्वतिद्भर्विचारितम्।

वेद न केवल भारतीय वाङ्मय का अपितु समस्त विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य है। प्रमाणों से अनधिगत अर्थो का परिज्ञान वेदों के माध्यम से ही होता है।

वेद्यन्ते वोध्यन्ते प्रमाणैरनधिगता दृष्टादृष्टफलकाः क्रियाकलापा एभिरिति वेदाः।

- ऋग्वेदप्रातिशाख्यवृत्यारम्भे विष्णुमित्रेण वेद शब्दस्य व्युत्पत्तिः कृता। वेद इष्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परिहार के उपायों को प्रतिपादित करते हैं।

इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। -तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिका

वेद आर्य धर्म की आधार शिला हैं। मानव धर्म शास्त्र रूप **मुनस्मृति** के रचयिता आदि मानव मनु का कथन हैं।

(क) 'वेदोऽखिलोधर्मम् नम्' –मनुस्मृति–2/6
(ख) 'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाण परमं श्रुतिः' –मनुस्मृति–2/13
(ग) 'वेद एवं द्विजातीना निःश्रेयस्करः परः' –मनुस्मृति–1/40
(घ) 'वेदो धर्ममूलम्' –महर्षि गौतम

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोरुभे स्मृतिर्वरा॥

वेदों को सर्वज्ञानमय, समस्त विद्याओंका आधार एवं स्रोत स्वीकार किया गया हैं क्योंकि वेद सर्वज्ञानमय हैं।

वेदेषु पुनर्जन्मनः अवधारणा

भाव प्रकाश
शोधच्छात्र
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय , हरिद्वारम्

आप्राचीनादेव कालाद् वैदिकी संस्कृतिः वैदिकं वाङ्मयञ्च भारतस्य गौरवं दिक्षु प्रसारयत् चकास्तितराम्। यदि भारतीय संस्कृतेर्मूलस्त्रोतोऽनुसन्धीयते तर्हि वेदाः एव तमूलस्त्रोतत्वंनापेतिष्ठन्ति। वेदशब्दः ऋग्यजुसामाथर्वनामभिः प्रचलितानां चतसृणां वेदसंहितानां बोधकः। एतेषां वेदानां शास्त्रीयं महत्त्वं सर्वतोमुखं वर्तते। 'सर्वज्ञानमयो हि सः' इति निगदता मनुना वेदानां सर्वविधज्ञाननिधानत्वमङ्गीकृतम्। एवं वेदेषु सर्वविधं ज्ञानं निहितं वर्तते इति मत्वा बुधैः मानवजन्मनः पूर्वापरकालिकरहस्यानपि वेदेष्वनुसन्धातुं प्रयत्नो विहितः। अनया दृशा वैदिकतन्त्रेषु क्वचिद स्पष्टरूपेण क्वशिन स्पष्टरूपेण सर्वेषां सिकृान्तानां मूलमारोप्यते, एतेष्वेव सिद्धान्तेषु पुनर्जन्मसिद्धान्तः प्रमुखत्वेन गण्यते।

वेदानां परिप्रेक्ष्ये तथ्यमिदमस्ति यद् शरीरस्य मृत्योरनन्तरमेव शरीरस्थ आत्मनः मृत्युः न भवति। एषः आत्मा अस्मिन् देहे प्राप्तसंस्कारैः सार्धमपरस्मिन् देहे गच्छति सः एव पुनर्जन्मनाम्नाभिधीयते। संक्षेपतः शरीरस्य मृत्योः प श्चात् आत्मनः पुनः अपरदेहे गतिरेव पुनर्जन्म इत्युच्यते। वेदेषु विभिन्नस्थानेषु पुनर्जन्मनः अनेकानि सिद्धान्तवाक्यानि उपलभ्यन्ते। यथा ऋग्वेदे

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुत श्ररति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः॥

एतस्य पुनर्जन्मनः विवेचनं वैदिकसाहित्यरूपेण नीयमानेषु ब्राह्मणग्रन्थेषु, आरण्यकग्रन्थेषु, उपनिषत्सु, स्मृतिशास्त्रेषु, सूत्रसाहित्येषु च यत्र तत्र सर्वत्रोपलभ्यते।

उपनिषत्सु दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकाः

डॉ. वेणीशास्त्री जोशी
संस्कृत प्राध्यापक
कनार्टक आर्ट्स कॉलेज, धारवाड़, कनार्टक

''सर्वासामुपनिषदां आत्मयाथात्म्य-निरूपणेनैवोपक्षयात् गीतानां मोक्षधर्माणां च रावं परत्वात्।'' इति श्रीशङ्कराचार्य श्रीचरणानां ईशावास्य भाष्योदितरीत्यां ब्रह्मैव सर्वास्वप्युपनिषत्सु पराध्र्येन दार्ष्टान्तिकत्वेन परिगृयत इति तु निश्चप्रचं वचः। उपनिषद्वाक्यवारेषु तावत् ब्रह्मस्वरूपस्य निपुणं निरूपणमेव प्राग्रहोद्देश्कूयत्वेनोपलभ्यते। गम्भीरं तत्त्वं गभीरतर शब्दसरण्या प्रतिपाद्यते चेत् तत्त्वमसुलभवेद्यं भवेदिति

धिया प्रायश्चोपनिषत्सु ब्रह्मविद्या प्रतिपादकेषु वाक्यविसरेषु मनोहरष्टान्ता उपयुज्यन्त इति नैव तिरोहितं प्रेक्षावताम्। काव्यसौन्दर्यस्य च वैशिष्ट्येन परिवाचं ब्रह्मस्वरूपं यथाशक्ति सुलभसरणिमवगाहते जिज्ञासूनां कृते उपनिषद्वाक्येष्विति मन्यन्ते विचारचातुरीधुरीणाः

केषांचित् दृष्टान्तानां पुनरुच्चारणप्रक्रियायां मन्त्राणां जामिता नास्तीत्यप्यवगम्यते। ब्रह्मतत्त्वांशानां वैविध्येन प्रतिपिपादयिषया केचन दृष्टान्तः पुनरावर्तिता इव प्रतीपिपादयिषया केचन दृष्टान्ताः पुनरावर्तिता इव प्रतीयन्ते ब्रह्मप्रतिपादकेषु शब्दसमुदयेषु।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इति तैत्तिरीयोपनिषद्वाक्येन ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणं तावत् प्रतिपाद्यते। "मायां तु प्रकृति विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं" इति श्वेताश्वरतरोपनिषद् वाक्ये तावत् माया शक्तिविशिष्टं ब्रह्मैव ईश्वरशब्दवाच्यो भवति। "आत्मन आकाशः" सम्भूतः, "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" .... इत्यादिना ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं निगद्यते। सर्वथा अभिन्ननित्तोपादानकारणत्वं प्रतिपिपादयिषुरयमुपनिषद्- ग्रन्थः तन्तुवायदृष्टान्तेन हृद्गतमेवं चिकीर्षति। तथाहि-

यथोर्णनाभिः सृजते मृह्णते च, यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाक्षरात् संभवतीह विक्रवम्।। (मुण्डक-१/७)

रावमेव विविधैरनेकैदृष्टान्तैः परमात्मनश्र परःशतान् विविध स्वरूपांशान् मनोज्ञमेवोपनिषदः प्रतिपिपादयिषन्ति जिज्ञासूनाभुपचिकीषयेति जेगीयते। ते च मत्र्जुलांशा मितंपचपतीनामपि मनांसि सुखायन्ते किंपुनः सहृदयहृदयानि? प्रतिभाप्रदर्शनचातुरी धुरीणा अनन्तरकवयोऽपि स्वकीयकाव्य-सौभाग्य संपादनाय उपनिषदां रमणीयांशान् अचूचुरन्निव प्रतिभाति।

अथर्ववेदे जीवतत्त्वस्यावधारण

प्रो०राजेश्वर मिश्रः
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयः, कुरुक्षेत्रम्

वैदिकमन्त्रेष्वनेके दार्शनिकतत्त्वविषयका विचारा उपलभ्यन्ते तेष्वतादृशः तत्त्वस्यापि चिन्तनमस्ति यच्छरीरं प्रेरयति, सञ्चालयति, नियमयति चापि। तत्त्वमिदं जीवो जीवात्मरूपो वा मन्यते, योऽविनाशी अस्ति शरीरे नष्टे सत्यपि न विनश्यति। अथर्ववेदस्यैकस्मिन्मन्त्रे ऋषिरेतादृशमेकं तत्त्वं पश्यति यत् तीव्रगतियुक्तं, श्वसमानं चेष्टमानञ्च देहे तिष्ठति। अमर्त्यमेतत् तत्त्वं मर्त्ये शरीरे विद्यमाने सत्यपि स्वधाभिरात्मानं नश्वरे देहे क्रामति (अथर्व. 9/15/8) सायणदृशाऽपि मन्त्रेऽस्मिन् देहस्यानित्यत्वं जीवस्य नित्यत्वं च प्रतिपादितम्। एवमेवास्य वेदस्य "पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्या : पुरुष उच्यते"(अथर्व.10/2/28) इत्यनेन मन्त्रेण एष जीवात्मा ब्रह्मणः आवासभूतेन देहेन

सह सम्बद्धादेव 'पुरुषः' अपि उच्यते। अत्रैव अन्यस्मिन्मन्त्रेऽपि त्रिभिर्गुणैरावृते नवद्वारे पुण्डकरीके देहे स्थितः एष एवं 'यक्षः' कथ्यते यं केवलं ब्रह्मविद एव जानन्ति (अथर्व 10/8/43)

अथर्ववेदस्यानेनचिन्तनेन जीवतत्त्वस्य पृथक् - सत्ता स्वीकृता प्रतीयते या परवर्तिकाले दार्शनिक सम्प्रदायेषु प्रतिपादितस्य द्वैतवादस्य मूलं प्रतिभाति। शोधपत्रेऽस्मिन् अथर्ववेदीयऋषिणा प्रोक्तस्य जीवतत्त्वस्य विशदं विवेचनं विवेचनीयं वर्तते।

ऋग्वेद में मोक्ष की अवधारणा

डॉ० उमाकान्त यादव
रीडर- संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्राचीन भारतीय परम्परा मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करती है। भारतीय दर्शनों में दुःखों से सर्वथा मुक्त हो जाने को अपवर्ग, कैवल्य अथवा मोक्ष कहा गया है।

यद्यपि ऋग्वेद में मोक्ष सिद्धान्त का विकसित दार्शनिक रूप नहीं परिलक्षित होता तथापि ऋषियों द्वारा देवताओं से की गयी दुःख एवं बन्धनों से मुक्ति की प्रार्थनाओं में तथा पुरुष, प्रजापति, विश्वकर्मा एवं हिरण्यगर्भ के रूप में की गयी परमतत्त्व की परिकल्पनाओं में हम इस सिद्धान्त है कि मूल प्रवृत्ति के दर्शन कर सकते हैं। विष्णु की परम पद प्राप्ति की कामना में भी पुरुषार्थ मोक्ष के सिद्धान्त का बीज देखा जा सकता है।

ऋग्वेद का ऋषि जब यह प्रार्थना करता है कि मैं पके खरबूजे की भांति मृत्यु के बंधन से छूट जाऊँ, अमृत से नहीं (ऋ0 7/99/12) तो यहाँ मृत्यु बन्धन से मुक्ति की भावना मोक्ष को ही प्रदर्शित करती है। ऋचाओं में अन्तर्निहित अमृतत्त्व प्राप्ति की कामना भी उक्त तथ्य को ही द्योति करती है। देवयान एवं पितृयाण विषयक ऋग्वैदिक अवधारणा में देवयान मोक्ष मार्ग है, जिसमें प्रयाण करते हुए जीव पुनः जन्म मरण के चक्र में नहीं आता।

ऋग्वेद में अमर ज्योति, अभय ज्योति आदि को प्राप्त करने की कामना भी मोक्ष की अवधारणा को ही पुष्ट करती है। इसके अतिरिक्त आत्म चिन्तन से मनुष्य तत्ववेत्ता ज्ञानी होता है। (ऋ0 8/6/28), सूर्य की पुत्री श्रद्धा ने उस ब्रह्म का साक्षात्कार कराया (ऋ0 9/113-3) जो ब्रह्म को जानते हैं वे अमरत्व को प्राप्त करते हैं (ऋ0 1/164/23) ईश तुम मनुष्य को यश के लिए मोक्ष देते हो (ऋ0 1/31/7) आदि सन्दर्भों में भी मोक्ष की भावना परिलक्षित होती है। यद्यपि ऋग्वेद में मोक्ष मान्यता का वह विकसित रूप नहीं प्राप्त होता है जो उपनिषदों एवं भारतीय दर्शनों में वर्णित है तथापि वह सामग्री ऋग्वैदिक मन्त्रों में यत्र-तत्र बिखरी हुई अवस्था में अवश्य प्राप्त होती है जो मोक्ष सिद्धान्त के निर्माण में सहायक है।

वेदों में कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म की अवधारणा

डॉ० आशा रानी राय
प्राचार्या
कानपुर विद्यामन्दिर स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, कानपुर

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार ''पुनर्जन्म और कर्मफल स्पष्ट रूप से वेद मन्त्रों में दृष्टिगोचर होते हैं।'' कर्मफलों के परिणाम स्वरूप ही मनुष्य और अन्य मनुष्येतर प्राणी इस संसार में भोगों को सुख - दुखात्मक रूप से भोग रहे हैं।

कर्म शब्द चारों वेदों में विभिन्न विभक्तियों में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त 'अकर्म' और 'सुकर्म' आदि रूपों में भी इसका प्रयोग स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, अथर्ववेद के ग्यारहवे काण्ड, आठवें सूक्त के द्वितीय मन्त्र में कर्म की उत्पत्ति का विवाह द्वारा आलंकारिक वर्णन हुआ है। प्रलयकाल में जब समस्त कार्य रूप जगत्, कारण में लीन था। तब कारण रूप को कार्य रूप में परिणत करने के लिये सर्वप्रथम कर्म की आवश्यकता पड़ी क्योंकि कर्म के अभाव में किसी भी कार्य को कारण रूप से कार्य रूप में परिवर्तित करना सम्भव नहीं है। वेद में जहाँ सुकर्मों का परिणाम अन्नादि सुखः समृद्धि की प्राप्ति का वर्णन है, वहीं अनेकशः ऐसे भी सन्दर्भ होते हैं जिनमें बुरे कर्म करने वाले दुर्जनों को सुखों से वंचित रहने का उपदेश किया गया है।

ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त में मृतक की आत्मा को विभिन्न स्थानों से लौटाने की बात कहीं गयी है। यजुर्वेद के 12:38 मन्त्र के द्वारा यह ध्वनित होता है कि मनुष्य का शरीर जिन पांच तत्वों के द्वारा निर्मित होता है। उन्हीं पांच तत्त्वों में भस्मान्त होने पर विलीन हो जाता है तथा पुनः कर्मफलानुसार जीवात्मा विभिन्न योनियों में आकार प्रकाशित होता है। अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त करता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र के द्वारा 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' ने भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में पुनर्जन्म को प्रमाणित किया है।

जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फलस्वरूप अनेक उत्तम शरीरों के फल को धारण करता है। जो पूर्वजन्म में किये हुए पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभाव युक्त जीवात्मा हैं यह पूर्व शरीर को छोड़ कर वायु के साथ रहता है। पुनः जल, ओषधि और प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है। तदन्तर गर्भाशय में स्थित होकर पुनर्जन्म लेता है जो जीव अनुदित वाणी अर्थात् वेदानुसार सत्यभाषण को जानकर बोलता है, धर्म में यथावत्, स्थित रहता है। वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है तथा जो अधर्माचरण करता है। वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट पतंग पशु आदि शरीर को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है। यही कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म की अवधारणा की सार्थकता है।

यजुर्वेद में दार्शनिक विचारधारा

श्रीमती वन्दना सिंह
शोधछात्रा- संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जिज्ञासा एवं सन्देह की भावना में ही दर्शनशास्त्र का बीज निहित है। वैदिक चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता है भौतिक एवं अध्यात्म का समन्वय। यह जगत् स्वयं में ही भौतिक अध्यात्म के समन्वय का ज्वलन्त उदाहरण है। वैदिक द्रष्टाओं ने भौतिक जगत् की संरचना विशेषता तथा उनके समस्त भौतिक उपलब्धियों का चित्रण करने के अतिरिक्त भौतिक जगत् से ऊपर उठकर सृष्टि के परमतत्व अथवा जगत् के आधारभूत अध्यात्म तत्व की जिज्ञासायें वेद मंत्रों में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त की है। यद्यपि वेदों में देवस्तुति, याज्ञिक कर्मकाण्ड की प्रमुखता है फिर भी वैदिक वाङ्गमय में दर्शन और उनके सिद्धान्तों का विवेचन मिलता है।

वैदिक ऋषियों ने ब्रह्म के विषय में अपनी जिज्ञासाओं को प्रस्तुत करके अपनी अनवरत साधना से इनके समाधान की खोज भी की है और सृष्टि के मूल में एक ही 'आधारभूत परमात्मा, परमब्रह्म, प्रजापति अथवा हिरण्यगर्भ को परमतत्व के रूप में स्वीकार किया है। (यजु. 33/1)। इसी प्रकार माया, पुनर्जन्म सिद्धान्त, तथा मोक्ष की अवधारणा भी स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

वैदिक अद्वैत-दर्शन

डॉ० (श्रीमती) सुधा गुप्ता
रीडर, संस्कृत-विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

ब्रह्म के प्रतिपादक वेद के शिरोभाग अथवा अन्त में प्राप्त होने वाली मीमांसा उत्तरमीमांसा, वेदान्त तथा उपनिषद् के नाम से जानी जाती है। वेद के अंगभूत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यकों में से ही अद्वैत (ब्रह्म) तत्व-प्रतिपादक भागों को पृथक् कर उनको ही 'उपनिषद्' नाम दिया गया है, जो कि बड़ा ही सार्थक है। कारण, उप समीपं निषीदति प्राप्नोति इति उपनिषद् अर्थात् जिसके द्वारा परम समीपभूत, एकमात्र नित्य चेतन सत्ता एवं जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादान कारणभूत तथा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप अद्वैत ब्रह्म का साक्षात्कार हो, उसे उपनिषद् कहते हैं। अतः मेरे शोध पत्र का सीधाः सम्बन्ध उपनिषदो अर्थात् वेदान्त से है। एक-एक वेद में अनेकानेक उपनिषदें प्राप्त होती है। ये सभी उपनिषदें एकमात्र अद्वैत ब्रह्म का ही निरूपण करती हैं। एक ब्रह्म ही परमार्थ सत्य

है। दृश्यमान् जगत् परमार्थ सत्य नहीं है। स्वप्न में देखे गये पदार्थ की तरह मिथ्या है। जीवात्मा और ब्रह्म एक ही हैं, दो नहीं - यही उपनिषद् सिद्धान्त है, जिसे श्रीशंकराचार्य जी ने श्लोकार्द्ध में ही कह दिया है -

> **''श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।**
> **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः॥''**

जीव और ब्रह्म के इसी अभेद अथवा अद्वैतता का उपनिषदों में यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टान्त, रूपक संकेत तथा विधि-निषेधात्मक विविधात्मक विविध वाक्यों द्वारा विविध युक्तियों, अनुभूतियों द्वारा दर्शाया गया है। छान्दोग्योपनिषद् का 'तत्वमसि' महाकाव्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है - जिसमें आरुणि और श्वेतकेतु के माध्यम से अनेकानेक युक्तियों द्वारा एकमात्र अद्वैत ब्रह्म में तात्पर्य निर्दिष्ट किया गया है।

वैदिक संहिताओं में पुनर्जन्म की अवधारणा

डा० अनीता जैन
वरि0 प्रवक्ता संस्कृत विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

संसार चक्र में जीवात्मा द्वारा अपने पूर्व शरीर का त्याग और नवीन शरीर का ग्रहण सतत् चलता रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तथा पूर्व जन्म के अदृष्ट संस्कारों को साथ लेकर वह नवीन शरीर धारण करता है। सामान्यतः आत्मा का इस प्रकार एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण करना ही पुनर्जन्म है।

पारिभाषिक रूप में - ''प्रेत्यभावः पुनरुत्पत्तिः'' अर्थात् यहाँ से ज़ाकर फिर होना पुनर्जन्म है। जन्म मरण के अनुक्रम का कारण बताते हुए कहा है- ''पुनर्जन्म-सिद्धिः आत्मनित्यवात्'' अर्थात् आत्मा के नित्य होने से पुनर्जन्म की सिद्धि होती है। यदि आत्मा अनित्य होता तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता।

वैदिक संहिताओं में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। ऋग्वेद[1] में प्राणवाहिनी देवी असुनीति से पुनः प्राण, चक्षु आदि इन्द्रियाँ तथा भोगापवर्गार्थ पुनर्जन्म देने की प्रार्थना की गई है ताकि हम उगते हुए सूर्य को देख सकें। इसके अतिरिक्त पृथिवी, अन्तरिक्ष, सोम व पूषा से भी प्रार्थना की गई है कि वह हमें पुनः शरीर तथा प्राण प्रदान करें। यहीं जीवात्मा की मरणोत्तर गतियों का भी उल्लेख मिलता है।[2] यजुर्वेद में भी मन, प्राण, देहयुक्त आत्मा एवं इन्द्रियों के पुनः प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है।[3] यहाँ जीवात्मा द्वारा विभिन्न योनियों में जन्म ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है।[1] अथर्ववेद[2] में भी उत्तम शरीर और इन्द्रियों का सामर्थ्य अर्थात् मनुष्य शरीर

एवं ब्रह्मज्ञान को पुनः- पुनः प्राप्त कराने की प्रार्थना की गई है। उक्त वेदानुसार पूर्वजन्म के संस्कारों से अनूपदिष्ट वाणी को जानने की बात कही गई है।³ देहान्तरप्राप्ति के विषय में 'बृहदारण्यकोपनिषद्'⁴ में भी चर्चा मिलती है। ब्रह्मसूत्र⁵, गीता⁶ तथा निरुक्त⁷ भी जीवात्मा के पुनर्जन्म ग्रहण एवं मरणांतर गतियों का स्पष्ट उल्लेख करते हैं। कठोपनिषद्⁸ में नचिकेता का उक्त कथन कि मर्त्य तो सस्य की तरह पैदा होता है और पक कर नष्ट होता है तथा पुनः पैदा होता है, और पक कर नष्ट होता है तथा पुनः पैदा होता है, पुनर्जन्म की ही पुष्टि करता है।

इस प्रकार वेदों में पाप ओर पुण्य कर्मों का फल इहलोक या परलोक के जन्मों में भोगा जाना माना है। तथा साथ ही एक ऐसे मार्ग का भी उल्लेख मिलता है जिस पर चलकर जन्म मरण का बन्धन समाप्त हो जाता है और जीवात्मा मोक्ष का भागी बनता है।

1 ऋग्वेद 10.16.5. 2 वही 10.88.15
3 यजुर्वेद - 4.15 1 यजु0 - 19.47
2 अथर्ववेद - 7.67.1 3 अथर्ववेद - 5.12
4 बृहदा0 - 6.2.9.16 5 ब्रह्मसूत्र - 4.3.1-6
6 गीता - 8.23 - 27 7 निरुक्त 14.8 - 9
8 सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यामिवाजायते पुनः। कठो0 1.1.6

सृष्टि की उत्पत्ति एवं ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त

डॉ० मधु अग्रवाल
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
रानी भाग्यवती स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजनौर

ऋग्वेद के अनेक सूक्त ऐसे हैं जो दर्शन सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन करते हैं। वस्तुतः दर्शनशास्त्र का प्रारम्भ ही सन्देह अथवा जिज्ञासा से होता है। इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? इसकी उत्पत्ति से पूर्व की स्थिति क्या थी? इत्यादि जिज्ञासाओं से ऋग्वेद में दार्शनिक सूक्तों का सूत्रपात हुआ है। जो एक ऐसा विषय है, जिस पर यह इस प्रकार हुआ इस प्रकार का कोई अन्तिम निर्णय किया जाना सम्भव है, न हुआ है। ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त सृष्टि उत्पत्ति विषयक तथा सृष्टि पूर्व क्या था इन शंकाओं के सम्बन्ध में वर्णन करने वाला अनन्यतम सूक्त है, जबकि की उत्पत्ति के उपरान्त का वर्णन करने वाले दो सूक्त ऋग्वेद में और हैं। इस दृश्यमान सृष्टि के विषय में जानना कठिन है, तदपि नासदीय सूक्त वैदिक आर्यों की गवेष्णात्मक प्रवृत्ति के गम्भीर एवं सूक्ष्म तात्विक चिन्तन से ओत-प्रोत है। इसमें सृष्टि, पूर्व की अवस्था का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, इसी तारतम्य में सृष्टि उत्पत्ति के तथ्यों को सूक्ष्मता से विवेचित किया गया है यह सत् (अव्यक्त से) सत् व्यक्त

सृष्टि का कार्य उत्तरोत्तर इतनी शीघ्रता से हुआ कि कब गर्भ धारण, कब सृष्टि ने जन्म ले लिया, यह पता ही नहीं लगा।

इस दृश्यमान सृष्टिके विषय में यह भी जानना भी कठिन है। यह कब हुई? कैसे हुई इसका उपादान कारण कौन है, इसका निमित्त कारण कौन है, यह सब बतलाने वाला कोई नहीं है। देवता स्वयं इसके बाद हुए अतः वे भी इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं बता सकते हैं। अतः वेदोक्त इस मत के अतिरिक्त अपने अनुमान लगानें से कभी भी इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता है कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे और कहाँ हुई। यह अनुमान का विषय भी नहीं है क्योंकि उसके योग्य हेतु या दृष्टान्त का भी अभाव है। अतः यह अत्यधिक गंभीर गहन परमार्थ तत्व केवल वेद के द्वारा ही समधिगम्य है।

आधुनिक समय में वैज्ञानिक इस विषय की चर्चा और शोधों में निरन्तर रत हैं किन्तु वैदिक ऋषियों ने तो वैदिक काल में ही इस तथ्य का उत्तर ढूंढ लिया था, जो उस परम तत्व की तुलना में मानव मात्र की ग्रहणीय शक्ति की संकीर्ण क्षमता तथा अल्प विचारण शक्ति के कारण वेदों से प्राप्त तथ्यों में अनेक प्रश्न चिन्ह लगाता हुआ सदा विचिकित्सा का विषय बना और नए-नए शोधों सृष्टि की उत्पत्ति और इससे पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध में को जन्म देता रहेगा। वेदों के इस चिन्तन को संज्ञान में लाकर सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर हम सदा से इनके ऋणी हैं जब मन में कोई जिज्ञासा उठती है वेद ही देते हैं इसका उचित समाधान, इसमें कोई सन्देह ही नहीं।

उपनिषदों में वाक् का स्वरूप

सुजेता शास्त्री
शोधछात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

"वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते", निखिल विश्व के प्रायः समस्त व्यवहार वाणी-व्यापार पर ही निर्भर हैं। वाणी केवल विचारों के विनिमय का ही माध्यम नहीं अपितु विश्व में यत्किमपि सत्यं शिवं सुन्दरम् है उन सबका भी व्यञ्जक है। इसी वाणी का दूसरा प्राचीन नाम 'वाक्' है। उपनिषदो में जहाँ जीव तथा जगत्-सम्बन्धी अनेक गूढ़ तथ्यों का विवेचन है वहाँ वाक् पर भी यथावसर प्रकाश डाला गया है। अवश्य ही मुख्य प्रतिपाद्य न होने के कारण किसी स्थानविशेष पर वाक् पर क्रमबद्ध विवेचना नहीं मिलती पुनरपि उपनिषदों ने वाक् के प्रत्येक अंग पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। लोक जीवन में वाक् का जितना महत्त्व उपनिषद् के ऋषियों ने दिखाया है उससे वाक् की महत्ता परिवर्धित ही होती है। उनके लिए वाक् केवल जिह्वा व्यापार न होकर अन्तरात्मा की

पुकार है। वह दैवी है। आज का भौतिक विज्ञान भी ध्वनि के अनेकानेक व्यापक रहस्यों के उद्घाटन मे व्याप्त है। भाषा-विज्ञान वाक् के नित्य नवीन विश्लेषण में निरत है। इस प्रकार हम देखते है कि वाक् की उपासना आवैदिककालात् अद्यावधि होती आ रही है। अन्त में भवभूति के शब्दों में ''विन्देय देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्''।

ऋग्वेदीय नासदीयसूक्त-परिशीलनम्

आचार्य डॉ० नागेश चन्द्र पाण्डेयः
शास्त्र चूडामणि विद्वान्
वी0 एन्0 मेहता संस्कृत महाविद्यालय, प्रतापगढ

पूर्वाम्नायपुरीपीठ से सम्बन्धित ऋग्वेदान्तर्गत दशम मण्डल का एक सौ उन्तीसवाँ नासदीयसूक्त है। इसमें सात मन्त्र (ऋचाएँ) हैं। इस सूक्तको सात संदर्भो में विभक्त किया जा सकता है। 'मायाशेषसंदर्भ' के अन्तर्गत प्रथम मन्त्र को, 'मायाश्रयस्वप्रकाश-परब्रह्मशेषसंदर्भ' के अन्तर्गत द्वितीय मन्त्र को, 'स्रष्टव्यपर्यालोचन संदर्भ' के अन्तर्गत तृतीय मन्त्र को, 'सिसृक्षा संदर्भ' के अन्तर्गत चतुर्थ मन्त्र को 'सर्गक्रमदुर्लक्ष्यतासंदर्भ' के अन्तर्गत पञ्चम मन्त्र को, 'जगत्कारणदुर्लक्ष्यतासंदर्भ' के अन्तर्गत षष्ठ मन्त्र को और 'दुर्धरदुर्विज्ञेयतासंदर्भ' के अन्तर्गत सप्तम मन्त्र को गुम्फित करना उपर्युक्त है। ध्यान रहे, नासदीयसूक्तमें विवक्षावशात् मायाको नौ नामों से अभिहित किया गया हैं 1-नसत्, 2-न असत्, 3-स्वधा, 4-तमस्, 5-तुच्छ, 6-आभु, 7-असत् 8-मनस् और 9-परमव्योम। परमात्मा का मन मायारूप है। परमव्योमका अर्थ जहाँ सच्चिदानन्दरूप परमात्मा है, वहाँ 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्' (तैत्तिरीयोपनिषद् 2/1)-की शैली में अव्याकृतसंज्ञक माया भी है। कठरुद्रोपनिषद् (10-11)-ने भी माया को परमव्योम माना है-

संसारे च गुहावाच्ये मायाज्ञानादिसंज्ञके।।
निहितं ब्रह्म या वेद परमे व्योम्नि संज्ञिते।
सोऽश्नुते सकलान् कामान् क्रमेणैव द्विजोत्तमः।।

नासदीयसूक्तमें विवक्षावशात् ब्रह्मको 1-आनीदवात और 2-अध्यक्ष-इन दो नामोंसे अभिहित किया गया है। जीवको 1-रेतोधा और 2-प्रयति (प्रयतिता)-इन दो नामों से अभिहित किया गया है। जगत् को 1-स्वधा, 2-सत् 3-विर्सजन और 4-विसृष्टि-इन चारो नामों से अभिहित किया गया है।

नासदीससूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि महाप्रलय में शशशृङ्गादि-तुल्य निरुपाख्य 'असत्' नहीं था, न आत्मा और आकाशादि-तुल्य निर्वाच्य (निरूपण करने योग्य) सत् ही था। उस

समय शशशृङ्गादि-तुल्य असत् ही होता तो उससे अर्थ-क्रियाकारी आकाशादि की उत्पत्ति ही कहाँ सम्भव होती? उस समय यदि सर्गदशाके तुल्य आ 0काशादि की विद्यमानता ही होती तो महाप्रलयकी प्राप्ति ही कहाँ होती? परिशेषसे यही सिद्ध होता है कि सत् और असत् तथा इनसे विलक्षण रजोरूप कार्यप्रपञ्चसे विरहित स्वाश्रयसापेक्ष स्वाश्रयभावापन्न अनिर्वचनीया माया ही महाप्रलय में शेष थी। उस समय रज:संज्ञक लोक नहीं थे। अभिप्राय यह है कि महाप्रलय में चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड नहीं था। क्या आवरक (आवर्यक, आच्छादक) था? नहीं। जब आवर्य (आवरणका विषय, आवरण करने योग्य) ही कुछ नहीं था, तब आवरक कहाँ से होता! वह देश भी तो नहीं था, जिसमें स्थित होकर आवरक आवर्यका आवरण करता। अभिप्राय यह हैं कि आवरक को आवरण करने के लिए आश्रय देने वाला देश भी उस समय नहीं था, जिसमें स्थितिलाभ करके यह आवर्यको आवृत करता। किस भोक्ता जीव के सुख-दु:ख साक्षात्काररूप भोग के निमित्त वह आवरक आवर्यका आवारण करता? उस समय भोक्ता जीव भी तो देहेन्द्रिय प्राणान्त:करणरूप उपाधि से विरहित ईश्वरभावापन्न होकर ही अवशिष्ट था। क्या दुष्प्रवेश और अत्यन्त अगाध जल था? नहीं। जल तो केवल अवान्तर-प्रलयमें ही रहता है। महाप्रलय में उसका रहना सम्भव नहीं। आवर्य चतुर्दशभुवनगर्भ ब्रह्माण्ड के तुल्य आवरक पृथिव्यादि महत्तवपर्यन्त उपादानात्मक तत्व भी कार्यकोटि के होने से महा प्रलय में ब्रह्माधिष्ठिता मायारूप से ही अवशिष्ट रहते हैं। आभूषणरूप आवर्यके न रहने पर भी सुवर्णरूप आवरक शेष रहता है। परन्तु महाप्रलय में कोई भी आवरक शेष नहीं रहता। 'तमसा गूल्हमग्रे', 'तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्' इस वक्ष्यमाण वचन के अनुसार बीज में संनिहित अंकुरादि को बीज से समावृत्त करने के तुल्य असत्कल्प तमस् में संनिहित जगत् को तमस् से समावृत कहा गया है। कार्य की अपेक्षा कारण में निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता, विभुता और प्रत्यग्रूपता होती है। यही कारण है कि आवर्य और कारण आवरक बन जाता है। कारण के बोध में प्रतिबन्धक होने से कार्य आवरक माना जाता है, जैसे कि मृद्धट मृत्तिका-दर्शन में प्रतिबन्धक होने से आच्छादक मान्य है। कारण कार्य में अनुगत होने से आच्छादक मान्य है, जैसे कि मृत्तिका अपनी अनुगतिसे घटादिकी आच्छादिका मान्य है।

वेदों में परम तत्व

विशाल भारद्वाज
व्याख्याता संस्कृत विभाग,
गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय,
अमृतसर (पंजाब)

वेद धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं सभ्यता के आदि स्रोत हैं। वैदिक चिन्तन की सबसे बड़ी विशेपता है- भौतिक एवं अध्यात्म का समन्वय। वेदों का सम्यक् रूप से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनमें परमतत्व रूपी परमेश्वर को 'एक' माना गया है। 'ऋग्वेद' के एक मन्त्र का कथन है-

''विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥''

(ऋग्वेद-10.81.3)

'ऋग्वेद' में ही इसी परमतत्त्व रूपी परमेश्वर को सबका एकमात्र राजा कहा गया है-

''एको विश्वस्य भुवनस्य राजा....................।'' (ऋग्वेद-3.46.2)

'यजुर्वेद' में कुछ और अधिक स्पष्ट रूप में अग्नि आदि देवताओं को एक ही परमतत्त्व का अभिधायक कहा गया है-

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदु वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥

(यजुर्वेद-32.1)

अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वही सर्वत्र प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक (प्राणरूप) वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् (शुद्ध व पवित्र) शुक्र, श्रेष्ठ, उत्कृष्ट पथ-प्रदर्शक ब्रह्म, सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के पालक (भी) हैं।

वेदों में अद्वैततत्व

रिपु दमन सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक धर्म अद्वैततत्व के ऊपर अवलम्बित है, नाना के बीच में एकता की भावना, भिन्नता के बीच अभिन्नता की कल्पना दार्शनिक जगत् में मौलिक तत्व है और इसी निगूढ़तम तत्व के अनुसंधान करने का समस्त गौरव हमारे वैदिक कालीन आर्षचक्षुः सम्पन्न महर्षियों को निःसन्देह

प्राप्त है। इसके अतिरिक्त उनका परमपद है जहाँ विष्णु का सूक्ष्म रूप निवास करता है उस लोक में विष्णु के भक्त लोग अमृतपान करते हैं। आनन्दानुभव किया करते हैं उसमें मधुचक्र है।

उस परमपद को ज्ञान सम्पन्न जागरणशील विप्रलोग विद्वज्जन ही जानते है विष्णु के परम पद की प्राप्ति ब्रह्म की ही उपलब्धि है, इस लिए श्रुति विष्णु को हमारा सच्चा बन्धु बतलाती है।

सर्वव्यापी सर्वात्मक ब्रह्मसत्ता का निरूपण ही ऋग्वेद का प्रधान लक्ष्य है। कारण सत्ता कार्य वर्गों में अनुप्रविष्ट होकर सर्वत्र भिन्न भिन्न आकारों से परिलक्षित हो रही है, प्रकृति की कार्यावली के मूल में एक ही सत्ता है, एक ही नियन्ता है एक ही देवता वर्तमान है अन्य सकल देवता, इस मूल सत्ता के विकास मात्र है। इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन भिन्न भिन्न प्रकारों में वैदिक ऋषियों ने किया है।

ऐतरेय आरर्ण्यक ने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि एक ही महती सत्ता की उपासना ऋग्वेदी उक्थ में किया करते है, उसी को यजुर्वेदी याज्ञिक अग्नि के रूप में उपासना किया करते हैं और सामवेदी महाव्रत नामक याग उसी की उपासना करते हैं।

एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसन्त एतमग्नीवध्वर्यव एतं महाव्रते छन्दोगाः

(एतरेय आरण्यक ३/२/३/१२)

यास्क के अनुसार इस जगत् के मूल में एक ही महत्वशालिनी शक्ति विद्यमान है, जो निरतिशय ऐश्वर्यशालिनी होने के कारण ईश्वर कहलाती है, वह एक और अद्वितीय है।

यजुर्वेद में वर्णित ऋत एवं सत्य शब्दों का ख्यापन

पूनम शर्मा
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

यजुर्वेद के अध्वयनोपरान्त यह विदित होता है कि इस वेद में आदि से लेकर अन्त तक ऋत एवं सत्य, इन दो शब्दों का बहुविध, प्रयोग किया गया है। व्यावहारिक जीवन में इन दोनो शब्दों को एक दूसरे का पर्याय माना जाता है, जबकि "ऋतं बृहत्" से यह निगमित होता है, ऋत् सत्य से बृहत है, एवं "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसः" में भी, परिणाम तथा साधनों की दृष्टि से सत्य की अपेक्षा ऋत सूक्ष्म भावनाओं का निदर्शक सिद्ध होता है। निघण्टु के प्रथम अध्याय में ऋतम्, सत्यम्, इत्येकशतमुदकनामानि तथा इसी के तृतीय अध्याय में वट्-त्रत् सत्रा, श्रद्धा इत्था ऋतमिति सत्यनामानि में ऋत् सत्य के अपर नाम रूप में वर्णित मिलता है, जबकि यजुर्वेद में वर्णित विविध

मंत्रों यथा इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि, ऋतश्च, सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च, ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च रथीर्ऋतस्य बृहतोबभूथ, ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विधानं, के अतिरिक्त योगसूत्र के ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा, आदि से ऋत् सत्य की अपेक्षा सूक्ष्म एवं श्रेष्ठतर माना जाता है। सत्यं वै देवा, अनृतं मनुष्या:, ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति के अनुसार तो ऋषि ऋत् वक्ता होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ऋत आत्मज्ञानी ऋषियों की वाणी से नि:सृत होता है। कठोपनिषद् के ''ऋतं पिबन्तौ'' के सन्दर्भ से इसे प्रमाणित भी माना जा सकता है, जबकि सत्य मानव समाज की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के कारण विविध रूपों में प्रकट होता है, लेकिन ऋत् हमेशा एक रूप में रहता है। सारांशत: सत्य देव मनस्वी विद्वानों की वाणी से अनृत सामान्य मनुष्यों की वाणी से एवं ऋत ऋषियों की वाणी से सिगमित होता है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में वर्णित है।

वैदिक रहस्यवाद का पाश्चात्य साहित्य पर प्रभाव

डॉ० अर्चना श्रीवास्तव
प्रवक्ता-संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

सृष्टि-रहस्य, ईश्वर, ब्रह्म, माया एवं जीव-जगत् से सम्बन्धित चिन्तन ही ''Mysticism'' या ''रहस्यवाद'' है, जिसे भारतीय प्रज्ञा आध्यात्मिक चिन्तन के रूप में वैदिक युग से ही विश्लेषित करती रही है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ग्रीक धातु ''Mystes'' या ''Mustes'' से बना है, जिसका अर्थ जीवन-मृत्यु के रहस्यों की खोज करना है। वैदिक तत्वेत्ताओं ने रहस्यानुभूति को परमानन्द ब्रह्मानन्द, ब्रह्मानुभूति आदि अनेक संज्ञाओं से अभिहित किया है। वाणी जहां से लौट आती है, मन जहाँ तक पहुँच नहीं पाता वह आनन्द रूप ब्रह्म जो सत्, चित्, आनन्दस्वरूप है, उसे जो जान लेता है, वह निर्भयता को प्राप्त करता है-

आनन्द ब्रह्मणो विद्वान्। न विभेति कदाचनेति।

रहस्यानुभूति का दिव्य रस है- ''परमरस'' 'रसौ वै स:

रहस्यवाद हमें विश्वातीत और विश्वात्मक दोनों का बोध कराता है। प्रश्नवृत्ति अथवा जिज्ञासा धर्म, दर्शन, विज्ञान इत्यादि की ही नहीं अपितु रहस्यवाद की भी जननी हैं। 'क्वासि?' अथवा 'कस्मै देवाय?'' का स्वर शाश्वत है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है। महादेवी वर्मा के अनुसार 'असीम और

समीम' का मिलन ही रहस्यवाद है।

रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले 'जैकब दे मार्क्वे' के मतानुसार पूरे विश्व में सर्वाधिक प्राचीन रहस्यवाद भारत कां है। महर्षि अरविन्द की दृष्टि में वेद का अर्थ रहस्यात्मक तथा निगूढ है। वेद में वे रहस्य-वचन 'निण्या वचांसि' (ऋ0 4/6/16) हैं, जो पवित्रात्मा एवं अन्तर्चक्षु रखने वाले महापुरुषों के लिए कहे गये हैं।

रहस्यों के रहस्य, प्रश्नों के प्रश्न, आदि रहस्य परमात्मा विश्व का जटिलतम एवं गहनतम विषय है- 'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो नो न विद्मो न विजानीमो (केनोपनिषद् 1/3)

रहस्यवाद में अद्वय की स्थिति का बहुत महत्व है, ब्रह्म और जीव की एकता ही स्यवाद की साधना का अन्तिम सोपान है। रहस्य स्थिति का आनन्द अनिर्वचनीय है। ऋग्वेद में उस परमतत्व के वर्णनातीत स्वरूप की हीं चर्चा की गई है।

स्वामी दयानन्द दर्शन की वेद मूलकता

रञ्जना शर्मा
शोध छात्रा-अंग्रेजी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अनादिकाल से ही मनुष्य की यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि वह दृश्यमान् पदार्थों/जगत् के अन्वीक्षण (देखे हुए के पीछे देखने) का प्रयत्न करता रहा है। किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः।'' (ऋग्वेद 10.81) ''पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्या पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः'' (ऋग्वेद 1.164.34 अथर्व 9.10.13 यजु0 23.61) तथा को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आ जाता कुतइयं विसृष्टिः (ऋग्वेद 1.129.6) इत्यादि सन्दर्भ इसी ओर संकेत करते हैं। इस चिन्तन के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं :-

1. सृष्टि की उत्पत्ति
2. परमात्मा-सृष्टिकर्ता
3. जगत् के पदार्थो का भोक्ता जीव
4. मुक्ति और मुक्ति के साधन
5. मुक्ति से पुनरावृत्ति
6. पुनर्जन्म तथा सुख-दुःख आदि।

19वीं शती में 'महर्षि दयानंद सरस्वती' के आगमन से पूर्व भी विचारकों ने उक्त प्रश्नों

पर विवेचना की है। इसलिए इन प्रश्नों के चिन्तन के आधार पर ही अनेक सम्प्रदाय जैन, बौद्ध आदि अस्तित्व में आये हैं। जिनके चिन्तन का मूल वेद से जुड़ा रहा। वह न्याय, वैशेषिक आदि षड्दर्शनों को मानते रहे तथा शेष की चिन्तन शैली इनमें स्वतन्त्र स्वरूप में चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि नाम से प्रचलित है। उक्त षड्दर्शन मानने वालों में भी विचार भिन्नता के कारण अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि अनेक सम्प्रदाय हैं। उदाहरण के लिए 'सांख्य' को ही लें। 'कपिल' प्रोक्त इस दर्शन को कोई आचार्य निरीश्वरवादी स्वीकार करते हैं तो अन्य ईश्वरवादी। यही अवस्था 'अद्वैत' आदि विषयों को लेकर वेदान्त दर्शन की भी कही जा सकती है। ऐसी स्थिति में 'षड्दर्शन को प्रमाणिक मानते हुए उनकी वेदमूलकता का प्रतिपादन कर छहों दर्शनों का परस्पर समन्वय प्रस्तुत करना 'स्वामी दयानन्द' का पुरुषार्थ व दर्शन के क्षेत्र में मौलिक योगदान है।

ऋग्वेद में आत्मतत्त्व

डॉ० लेखराज शर्मा
व्याख्याता-दर्शनशास्त्र
सनातनधर्म आदर्श संस्कृत महाविद्यालय, ऊना

वेद भारतीय धर्म तथा दर्शन के प्राण हैं। भारतीय धर्म में जो जीवनी शक्ति दृष्टिगोचर होती है उसका मूल कारण वेद ही हैं। वेद अक्षय विचारों का मानस रोवर है जहाँ से विचारधारा प्रवृत्त होकर भारतभूमि के मस्तिष्क को उर्वर बनाती हुई निरन्तर बहती है तथा अपनी सत्ता के लिए उसी उद्‌गमभूमि पर मानवमात्र के इतिहास में इनसे बढ़कर प्राचीनतम ग्रन्थ की अभी तक उपलब्धि नहीं हुई है। भारतीय धर्म तथा तत्त्वज्ञान की आकृति तथा प्रकृति, उद्‌गम तथा विकास के समुचित अनुसन्धान के लिए इन ग्रन्थमणियों का पर्यालोचन नितान्त आवश्यक है। परन्तु श्रुति सम्मत दार्शनिक विचारों की रूप रेखा के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। वेदों का अध्ययन आजकल दो प्रकार से किया जाता है प्राचीन पद्धति से तथा अर्वाचीन पाश्चात्य रीति से। पाश्चात्य पद्धति वेदार्थ परिशीलन के लिए अन्य देशों के साहित्य की सहायता की अपेक्षा रखती है। प्राचीन पद्धति इतिहास पुराण को वेदार्थ का साधन मानती है। यथा-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

(महाभारत, आदिपर्व 1.268)

(क) ऋग्वेद में आत्मतत्त्व का निर्देश -

ऋग्वेद में आत्मतत्त्व का निर्देश किसी एक निश्चित शब्द द्वारा नहीं किया गया अपितु आत्मन्, जीवन तथा कुछ विद्वानों के अनुसार प्राण एवं मनस् शब्दों द्वारा इसका संकेत किया गया प्रतीत होता है। यथा-

मैक्डानल वैदिक माइथोलाजी पृ. 166

मूर ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट वाल्यूम 5 पृ. 313

एस.एन. दासगुप्ता, ए हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी वाल्यूम 1, पृ. 26

ऋग्वेद में आत्मन शब्द प्रायः देह, श्वास तथा चेतन एवं सारतत्त्व आदि अर्थों में आया है और प्राण, असु एवं जीव शारीरिक जीवनी-शक्ति के सूचक हैं। मनस् शब्द यहाँ प्रमुख रूप से प्रज्ञा या बुद्धि का वाचक है। इस प्रकार यद्यपि इन शब्दों द्वारा ऋग्वेद में व्यापक रूप से औपनिषदिक अध्यात्म-तत्त्व का अभिप्राय ग्रहण नहीं किया जा सकता, तथापि यह कहा जा सकता है कि उपनिषद् में प्रतिपादित अध्यात्म-तत्त्व या अद्वैत-तत्त्व की धारणा के विकास में इन शब्दों से पर्याप्त सहायता मिली होगी।

(ख) ऋग्वेद में (आत्मन) शब्द का प्रयोग एवं अर्थ-

"आत्मन्" शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में कुल मिलाकर लगभग 22 बार स्वतन्त्र रूप से नाना विभक्तियों में तथा लगभग 8 बार संयुक्त रूप से हुआ है। यथा - द्रष्टव्य-ऋग्वेद संहिता, सूची खण्ड (पंचम भाग) जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यह शब्द पृथक्-पृथक् ऋचाओं में देह, श्वास, चैतन्य, सारतत्त्व आदि विभिन्न अर्थों का द्योतक है।

उपनिषदों में मोक्ष की अवधारणा

पवन कुमार
प्रोजेक्ट फैलो
गुरुनानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर

उपनिषद् का अर्थ-अध्यात्मविद्या। 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक सद् धातु के क्विव् प्रत्यय जोड़ने पर 'उपनिषद्' शब्द निष्पन्न होता है। जिसके परिशीलन से संसार की कारणभूता अविद्या का नाश हो जाता है, गर्भवासादि दुःखों से सर्वथा छुटकारा मिल जाता है और परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, उसी का नाम उपनिषद है।

आत्मा को जानकर सारे बन्धन कट जाते हैं, क्लेशों के क्षीण होने पर जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है। दु:खों के मूल का नाश हुए बिना दु:खों का आत्यन्तिक नाश नहीं बनता। यद्यपि कर्म-उपासना आदि विषय तत्काल प्राप्त होने वाले कुछ न कुछ दु:खों की निवृत्ति तो करते हैं तथापि जिससे दु:ख की पुन: उत्पत्ति न हो, इस प्रकार की दु:खों कीअत्यन्त निवृत्ति तो त्रिविध दु:खों के मल की निवृत्ति हुए बिना सम्भव नहीं। दु:ख का मूल क्या है? विद्वानों के अनुसार दु:ख का मूल जन्म है। जब तक शरीर बना हुआ है, तब तक सुख और दु:ख का निवारण नहीं हो सकता। इस प्रकार श्रुति मुख्यत: जन्म को ही दु:ख का मूल कारण प्रतिपादन करती है। जन्म का मूल कारण कर्म है। यदि मनुष्य कर्म से विराम ले ले, तो उसके लिए अत्यन्त दु:ख निवृत्ति हस्तामलकवत् हो जाय। अत: मुमुक्षजनों को दूसरे उपायों के अनु सरण में संलग्न नहीं होना चाहिए, परन्तु असमें यह सन्देह उठ सकता है कि पूर्वजन्मों में और इस जन्म में अब तक किये जाने वाले कर्मों का जो मूल हैं, उसका नाश किए बिना कर्म कवराम का संकल्प केवल कथन मात्र ही रह जाएगा। कर्म का मूल कारण राग और द्वेष है। जिस किसी वस्तु में जब तक राग द्वेष होता है, तब तक वस्तु की प्राप्ति या परित्याग के लिए प्रयत्नरूप कर्म करते हुए ही लोग देखे जाते हैं। जब तक भय रहता है, तब तक मनुष्य उस भय से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न ही है। इस दोष का मूल क्या है? अपने से अतिरिक्त दूसरे का भान होने ही दोष का मूल है। जैसा कि वृहदारण्यक उपनिषद् का वाक्य है-

द्वितीयाद्वै भयं भवति। (१-४-२)

निश्चय ही दूसरे से भय होता है। यदि दूसरी वस्तु का भान ही नहीं होगा तो कर्म के मूलभूत भय, द्वेष अथवा राग का कोई आधार न रह जाने के कारण भय आदि का प्रसंग ही नहीं होगा। इस द्वैत का हेतु मिथ्या ज्ञान है और वह मिथ्या ज्ञान ही समस्त संसार का बीज है। द्वितीय वस्तु की प्रतीति में कारणभूत अज्ञान को दूर करने वाला एकत्वसाक्षात्कार रूप ज्ञान ही है। वह ज्ञान ब्रह्म ज्ञान है। उपनिषद् में कहा है -

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्योपनिषद् ३-१४-१)

अत: यह प्राणियों के लिए परमपुरुषार्थ स्वरूप है। इसका ज्ञान कराने वाली उपनिषद् भी परम प्राणियों के लिए सहस्रों माता-पिताओं की अपेक्षा भी परम प्रिय है। इसीलिए उपनिषद् परम उपकारी है।

वेदों में प्राण का स्वरुप

डॉ. सोम देव शतांशु
रीडर संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद समस्त विद्याओं का निधान है। वैदिक साहित्य में प्राण तत्व का साङ्गोपाङ्ग वर्णन उपलब्ध होता है। प्राण सृष्टि: रचना से लेकर प्रत्येक स्थावर जङ्गम के सर्वाधिक क्रियाकलाप में अनुप्रविष्ट है। सम्पूर्ण सृष्टि का आधार यही प्राणतत्व है। अथर्ववेद के प्राणसूक्त में प्राण की महत्ता विस्तार से वर्णित है।

प्राणार्थक अन धातु से निणपन्न प्राण शब्द प्राणवत्ता को द्योतित करता है। जिसके द्वारा हम सब प्राणवान् हैं वही प्राण है-

तद्यत् प्राणेत तस्मात् प्राण: (जैमिनीय ब्राह्मण 2/5/7)

शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है ''यद्वै प्राणेनान्तरात्मन्प्रणयते तत्प्राणस्य प्राणत्वम्'' 12/9/1/14 परमेश्वरीय प्राण शक्ति से इस वायु की उत्पत्ति हुई है यही वायु ही पृथ्वीस्थानीय प्राण है। और यही प्राण हमारी आयु है। (प्राणाद्वायुरजायत ऋ.वे. 10/9/13) आयुर्न. प्राण: ऋ. 1/66/11. आग्नेय प्राण और सौम्य प्राण मिलकर रस समस्तसृष्टि का निर्माण करते है। प्राणों से कर्म वैविध्य या गुण वैशिष्टय के आधार पर जैमिनीय ब्राह्मण में इनकी संख्या नौ, गोपथ ब्राह्मण तेरह, एतेरेय में आरण्यक में बारह प्राण तथा शतपथ ब्राह्मण में तेरह बतायी गयी है। यह प्राण अक्षय अमृत स्वरूप हैं। अक्षीयं वा अमृतमेते प्राणा: (शतपथ ब्रा. 3/1/11/6) यह प्राण ही सब औषधियों की औषधि है। (अ.वे. 11/4/9) यजुर्वेद प्राणो यज्ञेन कल्पताम् कहकर प्राण शक्ति का यज्ञ से यज्ञीय योगादि आचरण संवर्द्धन का उपाय निर्दृष्ट करता है। इस विश्वव्यापक प्राणशक्ति का सम्यक् उपयोग कर हम अमृतत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

वैदिक सूक्तों में दर्शन

डॉ० उर्वशी सी. पटेल
सी. यु. शाह आर्टस कॉलेज
लालदरवाजा, अहमदाबाद(गुजरात)

वैदिकज्ञान के प्रति मनुष्यों को अपरंपार श्रद्धा है। वेद में जो सनातन धर्म का निरुपण किया गया है उससे जगत की भौतिक, नैतिक और पारलौकिक उन्नति निश्चितरुप से होंती है इसी लिये कहा गया है कि-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य देवता ॥

वेद के सुक्तों में जो दर्शन है उनकी तात्विकदृष्टि, समाजोपयोगिता और वेदपंश्चातकालीन ग्रंथों में इन विचारधाराओं का विकास कैसे हुआ? उनका चिंतन इस शोधपत्र में करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक वाङ्मय में दार्शनिक तत्त्व

डॉ0 इन्द्रेश 'पथिक'
वेद विभाग, शान्तिकुंज, हरिद्वार

संसार का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है। इसी प्रकार का विस्तृत रूप संहिता, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद्, वेदङ्ग एवं सूत्रग्रन्थ और दर्शन है। मनुष्य की सत्यान्वेषण की जिस जिज्ञासा से दर्शन का जन्म हुआ, उसका मूल वेद ही है। शब्द वैभिन्न्य से यह भी कहा जा सकता है कि वेदों में ही वे प्रश्न बीज रूप से समाहित है, जिन के उत्तरों की प्राप्ति हेतु दर्शन का जन्म हुआ।

दर्शन शब्द का अर्थ:- दर्शन शब्द संस्कृत की **दृश्** धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अभिप्राय हैं कि जिसके द्वारा देखा जाये वह दर्शन है अथवा जो देखा जाये वह दर्शन है। **दृश्यते अनेनेति दर्शनम् अथवा दृश्यते यत् तद्दर्शनम्** तात्पर्य यह है कि जिस दृष्टि से वास्तविकता का अन्वीक्षण होता है, वह दर्शन है। महर्षि पाणिनि प्रकृष्ट रूप से ईक्षण को ही दर्शन कहते हैं। उनकी दृष्टि में **'दृशिर प्रेक्षणे'** धातु से **ल्युट्** प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न दर्शन शब्द का अभिप्राय अन्तश्चक्षुओं से देखकर मनन करके, किसी विषय को तर्क पूर्वक सिद्ध करके उसके निष्कर्ष का निराकरण करना है।

दर्शनों की संख्या :- भारतीय संस्कृति में कहीं 16, कहीं 12, कहीं 10 दर्शनों का उल्लेख मिलता है। इन तीनों ही वर्गो में जो सर्वमान्य और प्रमाणिक हैं, वे षड्‌ दर्शन ही है। वैदिक और अवैदिक के भेद से दर्शन के दो भेद हैं। इनमें वैदिक दर्शन के अन्तर्गत **सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त** ये षड्‌दर्शन हैं।

दर्शन का विषय :- भारतीय षददर्शनों के अन्तर्गत जिन विषयों का अन्वीक्षण किया गया है वे प्राय: **ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, सृष्ट्युत्पत्ति, स्वर्ग नरक एवं मोक्ष, पुनर्जन्म और कर्मफल का सिद्धान्त** आदि है। वैदिक वाङ्मय में इन दार्शनिक तत्त्वों का विशद रूपेण समावेश हुआ है। प्रस्तुत होने वाले शोध पत्र में निम्न विषयों पर प्रकाश डाला जायेगा।

वैदिक वाङ्मय में विभिन्न दार्शनिक तत्त्व

1. वेदों में ईश्वर।

वेदों में आत्म तत्त्व पर प्रकाश।
2. वेदों में प्रकृति।
3. वेदों में सृष्टि उत्पत्ति का स्वरूप।
4. वेदों में स्वर्ग नरक एव मोक्ष चिन्तन।
5. वैदिक ग्रन्थों में पुनर्जन्म एवं कर्मफल का सिद्धान्त।

6. इस प्रकार विभिन्न वैदिक सन्दर्भों द्वारा वैदिक वाङ्मय में दार्शनिक तत्त्व दिग्दर्शन कराते हुए शोध पत्र में यह बताने का विनम्र प्रयास किया जायेगा कि दर्शन से ही वस्तुतः सत् तत्त्वों का दर्शन होता है, जिससे व्यक्ति जीवन के परम लक्ष्य आनन्द और मोक्ष को प्राप्त करता है।

वैदिक देवता तत्त्व विमर्श

डॉ० रामकृष्ण आचार्य
संस्थापक/कुलाधिपति
गुरुकुल आश्रम, लखनऊ

वेदार्थ प्रक्रिया में देवता और उनके अर्थ निर्णय की महती भूमिका होती है। इनका ज्ञान अत्यन्त उद्यम के बिना असम्भव है।

पवित्र होते हुए जो मन्त्रों के देवता को जानता और स्वाध्याय करता है, वह स्वर्ग में यज्ञ-सत्र में बैठे हुए के समान, ऐसों के द्वारा भी प्रशंसित होता है जो इस प्रकार के सत्र में बैठे होते हैं।

जप और होम में आवश्यक हैं-ऋषि, छन्द, देवता और उनके अन्यथा प्रयोग करने यहाँ व्यक्ति उनके फल से हीन हो जाता है।

ऋषि, छन्द, देवता इत्यादि के यज्ञादि द्वारा अर्जित श्ररन के सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि इनके आश्रित होने से यहाँ प्राण को देखने की दृष्टि स्थापित होती है।

ऋषि, छन्द, देवता और योग के ज्ञान कि बिना ही जो अध्यापन अथवा जप करता है, वह पापी हो जाता है।

सूक्त तथा मन्त्र के देवता का ज्ञान अत्यधिक यत्न साध्य है। ऋग्वेद भाष्यकार वेंकट माधव स्वयं अपनी असमर्थता इन शब्दों में व्यक्त करते है:-

देवता तत्त्व विज्ञानं महता तपसा भवेत्। शक्यते किमस्माभिर्याथतथ्येन भाषितुम्।।

इस सम्बन्ध में बृहद्देवताकार आचार्य शौनक का कथन भी विचारणीय है-

योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्धया बहुश्रुतेन तपसा नियोगैः।
उपास्यास्ताः कृत्स्नशो देवता या ऋचो ह यो वेद स वेद देवान्।
यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञान् सामानि यो वेद स वेद तत्त्वम्।।
मन्त्राणां देवताविद्यः प्रयुङ्क्ते कर्म कर्हिचित्।
जुषन्ते देवतास्तस्य हविर्नादेवताविदः।। बृह० दे० ८/१३०-१३१।।

इन सभी देवताओं की योग, दक्षता, दम बुद्धि, पाण्डित्य तप तथा नियोग के साथ उपासना करनी चाहिए। जो ऋचाओं को जानता है वह देवताओं को भी जानता है।

उपनिषदों में कर्म-सिद्धान्त

प्रो० महावीर
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक विद्या के प्रतिपादक श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। ये भारतीय दार्शनिक विचारधारा के अक्षय स्रोत हैं। उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव महर्षि बादरायण, शंकर रामानुज, महर्षि दयानन्द, अरविन्द, डॉ0 राधाकृष्णन् आदि अनेक भारतीय विद्वानों की तरह प्लेटो, टॉलस्टाय, शॉपन हावर आदि पाश्चात्य विद्वानों पर भी व्यापक रूप से दिखाई देता है।

उपनिषदों में ब्रह्म, संसार, मुक्ति आदि धारणाओं के साथ-साथ जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय का प्रभावशाली रूप में प्रतिपादन किया गया है, वह है कर्म सिद्धान्त। यह सिद्धान्त भारतीय आध्यात्मिक चिन्तनधारा का मूलाधार है। कर्म शब्द 'कृ' धातु से निष्पन्न है, जिसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है- क्रियते यत्तत् कर्म। अर्थात् जो किया जाये वह कर्म है। भगवद्गीता के अनुसार केवल कर्मेन्द्रियों द्वारा किया जाने वाला कार्य ही कर्म नहीं है, अपितु प्रत्येक कायिक, वाचिक या मानसिक क्रिया भी कर्म है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में कर्म के विविध स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक कर्मकाण्ड को कर्म कहा गया है। कर्म एक स्वतन्त्र प्रक्रिया है, किन्तु उत्तरकालीन आस्तिक दर्शनों में अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर की सत्ता की चर्चा की गई। वैशेषिकों का अदृष्ट और मीमांसकों का अपूर्व कर्म के ही समकक्ष सिद्धान्त हैं। कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक हैं, अतएव इन की दार्शनिक जगत् में प्रतिष्ठा है।

उपनिषदों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय ब्रह्मविद्या अर्थात् जन्म-मरण तथा संसार के बन्धन अथवा अज्ञान का उच्छेद कराने वाली एवं मोक्ष प्रदान कराने वाली विद्या है। अतएव उपनिषद् ज्ञान को ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, अध्यात्म विद्या, पराविद्या इत्यादि नामों से अभिहित किया जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का विवेच्य विषय उपनिषदों में कर्म सिद्धान्त होने के कारण उपनिषदों की दृष्टि से कर्म शब्द के अर्थ पर विचार करना प्रासङ्गिक होगा।

ईशावास्योपनिषद् के द्वितीय मन्त्र में कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की बात कही है। आचार्य शंकर ने इस कर्म शब्द का अर्थ अग्नि होत्रादि किया है, और मन्त्र में विद्या और अविद्या का उल्लेख प्राप्त होता है।

इसमें आचार्य शंकर ने विद्या का अर्थ ज्ञान तथा अविद्या का अर्थ ज्ञानविरोधी कर्म किया है।

ज्ञान विरोधी से अभिप्राय कर्मकाण्ड से ही है।

कर्म अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं, इन अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है और फल भोगने के लिए जन्म धारण करना पड़ता है। और इस प्रकार यह जीवन-मरण चक्र चलता रहता है।

केनोपनिषद् में कर्म का विधान तप-दया आदि के साथ किया गया है जो ब्रह्मज्ञान में सहायक माना गया है। शंकर के अनुसार दया मन को वश में करना तथा वेदोक्त अग्निहोत्रादि एवं धर्मशास्त्र में प्रतिपादित सदाचार आदि कर्म ब्रह्मज्ञान के साधन हैं।[1]

कठोपनिषद् में आध्यात्मिक यज्ञकर्म का उल्लेख किया है और इसे ब्रह्म कहा है। दोनों अरणियों के मध्य जो अग्नि उपस्थित है तथा जिसे नित्यप्रति होम सामग्री प्रदान की जाती है, वह ब्रह्म ही है। शंकराचार्य ने कर्मकाण्ड के प्रबल विरोधी होते हुए भी उपनिषद् वाणी का समर्थन करते हुए आध्यात्मिक यज्ञ को महत् कर्म के रूप में स्वीकार किया है तथा उसे ही ब्रह्म कहा है।

योग:

वेदों में योगविद्या

डॉ० जया तिवारी
रीडर, संस्कृत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

सर्वज्ञानमयो हि सः वेद समस्तज्ञान के स्रोत हैं। ज्ञान अथवा विद्या आध्यात्मिक और लौकिक से दो प्रकार की है। देवविद्या, निधिविद्या, पितृविद्या, ब्रह्मविद्या, राशिविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या, भूतविद्या, देवजनविद्या ये आध्यात्मिक विद्याएं हैं तथा राजनीति, अर्थशास्त्र, भूगोल, आयुर्वेद, योग, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, वाणिज्य ये सभी लौकिक विद्याएं हैं। उक्त सभी विद्याओं में योगविद्या दुःखनिवृत्ति का हेतु है **योगो भवति दुःखहा**। योगविद्या मानव के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करती है। बिना योगविद्या के ज्ञान असम्भव हैं **योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्**।। त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्।।

योग के बिना विद्वान् का भी कोई यज्ञ-कर्म सिद्ध नहीं होता, यह योग चित्तवृत्तियों का निरोध करना है **यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन धीनां योगमिन्वति**।। ऋग्वेद।। यजुर्वेद में योगविद्या का महत्त्व प्रतिपादित है। तथा- **'योगाय योक्तारम्'**-अर्थात योग के लिए युक्त करने वाले की हम प्रशंसा करते हैं।। शुक्लयजुर्वेद।। सामवेद में योग समाधि अर्थ में प्रयुक्त है स घा नो **योग आभुवत् स राये स पुर ध्याम्। गमद वाजेभिरासनः** अर्थात् वही परमात्मा हमारी समाधि के लिए अभिमुख हो। अथर्ववेद में भी योगविद्या को महत्त्व देते हुए ब्रह्मयोग, क्षत्रयोग, इन्द्रयोग, सोमयोग एवं अप्सुयोग का उल्लेख है-यथा- **'जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि। जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वे। जिष्णवे योगाय इन्द्रयोगैर्वो युनज्मि। जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि। जिष्णवे योगाय अप्सुयोगैर्वोयुनज्मि।**

वेद का ज्ञानकाण्ड ही उपनिषद्रूप में निबद्ध है अतः उपनिषद् में वर्णित योग स्थिरइन्द्रिय धारणा है- **तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्**। श्वेताश्वर उपनिषद् में योग की विधियों का वर्णन है। **धर्म ते विरत जोग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद वेद वखाना**-अर्थात् ज्ञानप्राप्ति का मार्ग योग ही है। संयोगो य़ोग इत्युक्तो जीतात्मा-परमात्मनो-अर्थात् जीवात्मा-परमात्मा के संयोग का नाम योग है।। याज्ञ0स्मृ0।।

वैदिक तत्त्व चिन्तन और विविध चक्र

योगेश कुमार व्यास
शोधछात्र संस्कृत विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

वेदों का वेदत्व, विश्व की अनुपम धरोहर है। सृष्टि-ज्ञान की अमूल्य निधि है। सौरमण्डल से उत्पन्न उरुज्योति की प्रथम रश्मि है। परम व्य ोम में विराजमान अधयक्ष की अद्भुत तथा मनोहर कल्पना है। मानव-समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक परिवेश की अप्रतिम अभिव्यक्ति है।[१] वेद के स्वरूप के विषय में किया गया प्रत्येक चिन्तन अल्पज्ञ का प्रयास मात्र बन कर रह जाता है, वेदरूपी सूर्य की ज्ञान-रश्मियों के रूप-रंग अनन्त हैं। विश्व-वाङ्मय के प्राचीनतम अवशेष वेद विश्व के सभी तत्त्व-दर्शन का आदि स्रोत है।

वैदिक तत्व चिन्तन में अनेक चक्रों का उल्लेख है। जैसे एक चक्र, द्विचक्र, त्रिचक्र, पंचचक्र, षड्चक्र, सप्तचक्र और अष्टचक्र। इन चक्रों में रूपात्मक एवं प्रतीकात्मक समीकरणों के माध्यम से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पक्षों का गूढ़तम रहस्य समाहित है। ये चक्र व्यक्त ब्रह्माण्ड शरीर में भी माने जाते हैं और अखिल ब्रह्माण्ड में भी इनकी सत्ता मानी जाती है। व्यक्त ब्रह्मांड या दृश्यमान ब्रह्मांड उसी क्रम परम्परा में वर्णित है। वेदों में सृष्टि के रहस्य को अनेक विधाओं में समझाया गया है।

इन समस्त चक्रों के वर्णन से उत्तरवर्तीकाल में विविध शास्त्रों की सृष्टि हुई है। आयुर्वेद, गणित, ज्योतिषशास्त्र, विद्युत्-विद्या आदि अनेक वैज्ञानिक तत्त्वों का प्राचीन ऋषियों ने अनुसंधान किया था। इन्हीं तत्त्वों के निर्धारण या उनके वैज्ञानिक ज्ञान से अति प्राचीन काल में भारद्वाज ऋषि ने विमान विद्या का वर्णन ही नहीं किया अपितु नाना विमानों के बनाने का विधान बतलाया है। उनके निश्चित सिद्धांत आज भी आकाश-विद्या के जानने के लिये प्रासंगिक है। इसी प्रकार विविध चक्रों के माध्यम से वेद मर्मज्ञ ऋषियों ने सृष्टि उद्भव, ग्रह-नक्षत्र परमाणु संरचना, अंतरिक्ष विज्ञान आदि के गहन एवम् सूक्ष्म रहस्यों को प्रतिपादित किया है। अतः वर्तमान सन्दर्भ में चक्रवाद का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन एवं शोध अत्यन्त आवश्यक है।

वेदों में नियम (योगाङ्ग) का स्वरूप

डॉ० देवेन्द्र सिंह सोलंकी
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
संजय गाँधी स्नात0 महा, सरूरपुर, मेरठ

वेद संसार का प्राचीनतम दुर्लभ ग्रन्थ है। भारतीय मनीषा वेद को अपौरुषेय स्वीकारती है। द्रा दृष्टा एवं वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती तो सर्व सत्य विधाओं का आदिमूल परमेश्वर को ही स्वीकारते हैं और वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक मानते हैं। अतः संसार में जितनी भी विद्याएं और जितने भी शास्त्र विद्यमान हैं उन सबको मूल वेद ही है। अतः संगहत, कला, साहित्य, विज्ञान, तकनीकी औषधिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, भूगर्भ विज्ञानशास्त्र, एवं दर्शन शास्त्र जैसे जितने भी शास्त्रों में कल्पना की जा सकती है। वे सभी सत्य शास्त्र वेदों में विद्यमान हैं। जहाँ तक दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध है योग दर्शन उन सभी भारतीय दर्शनों का मूल वेदों में विद्यमान है। योग दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है। इतना ही नहीं स्वयं हिरण्यगर्भ (ईश्वर) ही योग का प्रणेता वेदों में स्वीकारा गया है। योगदर्शनकार पतञ्जलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि आठ तत्वों को योग के अङ्ग स्वीकार किया है। प्रकृत लेख में दूसरे योगाङ्ग अर्थात् नियम को वेदों में स्वरूप को दर्शाने का अल्प प्रयास किया गया है।

योग के साधक को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रहादि यमों के साथ ही शौच, सन्तोष तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधा पांच नियमों का पालन भी योगदर्शनकार ने आवश्यक बताया है, उक्त नियमों का स्पष्टतः योगाङ्गों के रूप में एक साथ तो उल्लेख नहीं है परन्तु प्रत्येक वेद में स्थल-स्थल पर शौच सन्तोषादि नियमों का पर्याप्त उल्लेख है। यजुर्वेद में यम नियमों की उपमा पक्षी के दो पंखों से दी है। योगाङ्ग नियम के प्रथमम अङ्ग शौचवाची पूता, पावन, पवित्र, पवमान, शुद्धिशुद्धा, शुन्घामि शुचि आदि शब्दों के प्रत्येक दिखाई देते हैं। एवमेव सन्तोषवाची तोषमाना, तुषयन्ती, तोषतमाः इत्यादि पदों के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं। इसी प्रकार से तप शब्द को तप सन्तापे तप एश्वर्ये एवं तप दाहे आदि धातुओं का प्रयोग वेद में उपलब्ध होता है। तप से तात्पर्य मानसिक वाचिक एवं दैहिक आदि तीनों प्रकार के तप से है। नियम के चतुर्थ प्रकार स्वाध्याय के विषय में पदे-पदे प्रेरणा मिलती है। पातञ्जल योग के योगाङ्ग नियमों में अन्तिम अङ्ग ईश्वर प्रणिधान है। जिसका अर्थ है परमगुरु परमेश्वर में अपने सब कर्मों का अर्पण करना। कर्मों को मन, वचन, एवं शरीर से ईश्वर के प्रति समर्पित करना ही ईश्वर प्रणिधान है। जिसके तत्व वेद में इतस्ततः बिखरे पड़े हैं।

वैदिक वाङ्मय में योग का महत्व

डॉ० रमेश सिंह
प्रवाचक-शारीरिक शिक्षा
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, श्री रणवीर परिसर, जम्मू

वैदिक वाङ्मय में योग का महत्त्व सर्वविदित और अकथनीय है। स्वयं को जान लेना मोक्ष कहलाता है और मोक्ष को ही परम-पुरुषार्थ करने माना गया है। लेकिन मोक्ष को सफल बनाने अर्थात् सार्थक करने में केवल योग विद्या ही सहायक है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि वैदिक वाङ्मय में निहित सभी शास्त्र (दर्शन शास्त्र, धर्मशास्त्र, वेद उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि सभी योग का महत्त्व को मुक्त कण्ठ से वर्णन) करते हैं। अन्य सभी विषयों पर विद्वानों में मतभेद मिलते हैं लेकिन योगविद्या पर लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। योग विद्या विवादों से रहित परम पद प्रदान करने वाली और माँ के समान सभी जीवों पर वात्सल्य का आँचल फैलाए हुए है। वैसे तप, ज्ञान, और कर्म के द्वारा भी श्रेय की सिद्धि होती है, किन्तु इन तीनों से योग श्रेष्ठ है। इसे भगवान् श्री कृष्ण जी ने गीता में स्वीकारते हुए कहा है:- ''तपस्वियों शास्त्रज्ञानियों और सकाम कर्म करने वालों में योगीं श्रेष्ठ है।''

योगी परम पद को प्राप्त करने में सक्षम होता है। जो मानव योग साधना के द्वारा चातक पक्षी की तरह ध्यान लगा कर केवल प्रभु को स्मरण करता है। उसे ही भगवान् सुलभ होते हैं। भगवत् गीता में श्रीकृष्ण जी ने कहा है:-

''योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने में तथा तप और दानादि के करने में जो पुण्य फल कहा है। उन सबको निःसन्देह उल्लंघन कर जाता है। और सनातन परमपद को प्राप्त होता है।

योग क्या है? इसके लिए जितने विद्वान् उतने ही मत पाये जाते है:

जीव की आत्मा का परमात्मा से संयोग ही योग है।

सूर्य, चन्द्र, ईश, पिङ्गला का संयोग ही योग है।

सिद्धि असिद्धि का समत्व ही योग कहलाता है।

इस प्रकार अनेक परिभाषाएं मिलती हैं, लेकिन ये सभी पतञ्जलि द्वारा परिभाषित चित्त वृत्ति का निरोध ही योग है, में अन्तर्निहित हो जाती हैं।

वेदों में योग

आभा शुक्ला
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय वाङ्मय में आध्यात्मिक और धार्मिक सन्दर्भ में योग शब्द विशेष महत्व रखता है। यह योग आत्मा, ब्रह्म, जीव, मोक्ष, निर्वाण, धर्म और ईश्वर की भांति उन थोडे से गिने-गिनाये शब्दों में से है, जिनका प्रयोग इस प्रसंग में सर्वाधिक होता है। योग शब्द दिवादिगण की ''युज समाधौ'' धातु में घञ् प्रत्यय, के योग निष्पन्न माना जाता है। ''युज'' धातु का अभिप्राय है समाधि और समाधि का अर्थ होता है भगवान् के साथ जुड़ जाना या संयुक्त हो जाना। इस प्रकार ब्रह्म एवं जीव का एक हो जाना ही योग है। जीव-अस्तित्व का भगवत् स्वरूप हो जाना, परिपूर्ण एकत्व प्राप्त कर लेना तथा द्वैत का अद्वैत रूप बन जाना ही योग है। योग चित्तवृत्तियों का ऐसा निरोध है जो कर्म मात्र में निश्चय ही समाहित है। महर्षि पतञ्जलि ने भी चित्तवृत्तियों के निरोध को ''योग'' कहा है।

''योगश्चित्तवृत्ति निरोधः''

लोक में एक जनश्रुति है कि शेषनाग ने जीवों के शरीर, वाणी और चित्त के दोषों को दूर करने के लिए तीन ग्रन्थों की रचना की। जिसमें चित्त के दोषों को दूर करने के लिये पतञ्जलि ने योगसूत्र की रचना की। जिसमें कुल 195 सूत्र है। लिसके योग को आठ अंगों में विभाजित किया गया है।

''यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।''

इस प्रकार इन आठों अंगों का नियमित रूप से पालन करते हुए असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति ही योग का परम लक्ष्य है। इसी असंप्रज्ञात समाधि को हम ''कैवल्य'' के नाम से जानते है 'तदध्यासपूर्वकं हि चित्तं निरालम्वेनभाव प्राप्तिमिव भवतीत्येव निर्बीजः समाधिरसम्प्रज्ञाताः।

वेद में योग विमर्श

डॉ० विनोद कुमार पाण्डेय
प्रवक्ता-संस्कृत विभाग
डी0ए-वी0 कालेज, कानपुर

वेद ऋषियों के प्रत्यक्ष ज्ञान का अक्षय भण्डार है जिसमें आर्यो की सभ्यता-संस्कृति, समाज और धर्म संभी कुछ प्राप्तव्य द्रष्टव्य हैं। धर्म के क्रमिक विकास तथा आर्य भाषा के मूल स्वरूप का ज्ञान भी इसी साहित्य से प्राप्त होता है। वेद किसी एक साहित्य का नाम नहीं है प्रत्युत वेद उस समस्त वाङ्मय का नाम है जो सहस्त्राब्दियों में ऋषियों द्वारा उपलब्ध हुआ है।

वेदों में यत्र-तत्र योग का स्वरूप एवं महत्व भी वर्णित हुआ हैं। यहाँ योग, संयोग,समाधि और संयमन सभी रूपों साक्षात् और प्रकारान्त से उपलब्ध होता है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है

'यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन
स धीनां योगमिन्वति'॥ (ऋग्वेद-१/१८/७)

अर्थात् जिन देवताओं के बिना प्रकाशपूर्ण ज्ञानी का जीवन यज्ञ भी सफल नहीं होता उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धियाँ एवं कर्मो का योग करना चाहिए। ऐसा करने से ज्ञानियों की बुद्धि देवों की बुद्धि के साथ तदाकारिता को प्राप्त कर लेती है। वस्तुतः यही योग है क्योंकि योग केवल साधन न होकर साध्य भी है। चित्त का संयमन अथवा समाधि में स्थित होना कैवल्य, मोक्ष अथवा ब्रह्मक्यता के लिए है। इसका अभिप्राय यह है कि चित्त का संयमन अथवा समाधि में स्थित होना भी योग है और आत्मा के साथ एकता भी योग है। शोध-आलेख में विस्तार के साथ इसका वर्णन किया जायेगा।

अथर्ववेदे योगमार्गः

डॉ. रजनी शर्मा
संस्कृत विभाग
श्री भगवान् शिव महाविद्यालय, एटा

मानव सदैव ही आत्यन्तिक शान्ति के अन्वेषणार्थ वाह्य जगत् उपादानों के संग्रह के लिए निरन्तर ही भटकता रहता है। यद्यपि ये मरणशील, अनित्य उपादनों और दृष्ट जगत् के चमचमाते स्वरूप एवं माया जन्म उपभोग की अभिएषणा उसे व्यथित बनाये डाल रही है, उस आत्यन्तिक एवं आध्यात्मिक उपशम की अध्याप्ति के लिए वेदों में निर्दिष्ट तत्वज्ञान आवश्यक है। यों तो समस्त ज्ञान राशि तथा धर्म विषयक ज्ञान की उपलब्धि चारों वेदों से ही होती है, तथापि अथर्ववेद में ब्रह्म का और अध्यात्म का विस्तृत और विशद वर्णन प्राप्त हुआ है।

अथर्ववेद में योगाभ्यास अर्थात् ध्यान यज्ञ के लिए उग्र श्रद्धा, लगन, उग्र अभ्यास, उग्र वैराग्य, आदि साधनों की अपेक्षा होती है। तद्यथा-द्रष्टव्य है।

'यत पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत'' - अथर्व0 19/6/10 अतः स्पष्ट है कि जिस मानस ज्ञान यज्ञ तथा ध्यान यज्ञ को विस्तृत करते हुए ध्यानी तथा विद्वत्-जन सर्वद्रष्टा परमात्मा को हृदय में बांधते हैं। वह स्थिर इन्द्रियों की धारणा ही योग की संज्ञा से अभिहित है। ''योगिजनों की आत्माओं का उत्पतन अर्थात् उत्क्रमण हुआ करता है और संसारी व्यक्तियों की आत्माओं का अवक्रमण होता है, अर्थात् उनको नीचे की ओर पृथिवी पर आना पड़ता है। तद्यथा 'ईजानश्चितमारूक्षदग्निं

नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत् पतिष्यन्।'' अथर्व 18/4/14

योगाभ्यासी जब अपनी शारीरिक चेष्टाओं और मानसिक संकल्प-विकल्पों को परमेश्वर के प्रति भेंट रूप में चढ़ा देता है। तब वह परमेश्वर के भेषज रूप को जान पाता है। तद्यथा-

''यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम्''- अथर्व0 11/6/23 अर्थात् शरीर, मन तथा कर्म में निरन्तर संयम का अभ्यास करते हुए संयमित मन वाले योगी को इस भौतिक अस्तित्व की समाप्ति पर ही मुक्ति या अलौकिक आनन्द परम तत्त्व की प्राप्ति होती है। वेदों में (श्वेताश्वतर उपनिषद् 3.8) भी हम पाते हैं-

तमवे विदित्वाति मृत्युमेति अत: केवल ब्रह्म को जानने पर ही जन्म मृत्यु के पथ को जीता जा सकता हैं दूसरे शब्दों में, योग की पूर्णता संसार से मुक्ति प्राप्त करने में है। इन्द्रजाल अथवा व्यवसाय के करतबों द्वारा अबोध जनता को मूर्ख बनाने में नहीं।

योगदर्शन में प्राणायाम विज्ञान

अविनाश कुमार राव
शोध छात्र
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतीय दर्शन में योग का अत्यधिक महत्त्व है। तत्त्व साक्षात्कार या आत्मसाक्षात्कार के लिए योग साधना की आवश्यकता प्राय: सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक सम्प्रदायों द्वारा मुक्त कण्ठ से स्वीकृत है। सविकल्प बुद्धि को निर्विकल्प प्रज्ञा में परिणत करने हेतु योगसाधना की उपादेयता निर्विवाद रूप से स्वीकृत है। संहिता, आरण्यक, वेद एवं उपनिषद् में योग की महनीयता का वर्णन उपलब्ध है। योग के कई प्रकार हैं। गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग तथा, ध्यान योग वर्णित हैं। राजयोग एवं हठयोग भी प्रसिद्ध हैं। शीर्षकानुसार अष्टाङ्ग योग में चतुर्थ पर अर्थात् यम, नियम, आसन, के पश्चात् अपनाने वाले प्राणायाम पर दृष्टि डालना है। जो महर्षि पतञ्जलि द्वारा रचित 'योगसूत्र' में वर्णित है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि ये योग के आठ अङ्ग है।

''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (योग. २/२९)

समाधि के इच्छुक इन सात सीढ़ियों से होते हुए ही समाधि को प्राप्त करते हैं। अष्टाङ्ग योग दो भूमिका में हैं प्रथम यम प्रत्याहार, तक बहिरङ्ग भूमिका तथा द्वितीय धारणा ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग भूमिका में हैं।

प्राणायात दो शब्दों के योग से बना है। प्राण+आयाम, यहाँ प्राण का अर्थ श्वास,जीवन शक्ति

से तथा आयाम का अर्थ निग्रह, नियन्त्रण से है। इस प्रकार प्राण वायु को नियन्त्रण करने को प्राणायाम कहते हैं। योग को सुसम्बद्ध क्रमवद्ध दार्शनिक रूप प्रदान करने वाले महामुनि पतञ्जलि के द्वारा प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार है-

''तस्मिन् सति श्वासप्रवाश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायातः।' योग सूत्र २/४९

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति के अवरोध हो जाने का नाम प्राणायाम है। बाहरी वायु का भीतर प्रवेश करना श्वास है और भीतर की वायु का बाहर निकालना प्रश्वास है, इन दोनों के रुकने का नाम प्राणायाम है।

'बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः।'

(यो. 2/50)। देश काल और संख्या (मात्रा) के सम्बन्ध से बाह्य, आभ्यान्तर और स्तम्भवृत्ति वाले ये तीनों प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म होते हैं।

वैदिक वाङ्मय में योग की अवधारणा

डॉ० नाहीद आबिदी
प्रवक्ता
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,वाराणसी

योग, शब्द की निष्पत्ति युज् समाधौ धातु से धञ् प्रत्यय करने पर होती है। अतः इसका अर्थ संयोग न होकर समाधि हुआ। ऋग्वेद में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चित श्चन।
स धीनां योगमिन्वति।[१]

अर्थात् योग के बिना विद्वान् का कोई भी यज्ञकर्म नहीं सिद्ध होता । वह योग, चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्म मात्र में व्याप्त है। अतः साधक प्रत्येक यज्ञ में इन्द्र का आह्वान करता है-

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये।[२]

योग की सिद्धि में ईश्वरानुकम्पा आवश्यक है, अतः -

स धा नो योग आभुवत् सराये स
पुरध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः।[३]

इसी प्रकार ऋग्वेद के युज्जवे मन उव युज्जते में भी ईश्वरानुकम्पा का ही वर्णन है। योगसूत्रकार पतंजलि ने योग का लक्षण 'चित्तवृत्तिनिरोध'[5] बताया है और उन्हीं का समर्थन करते हुए योगभाष्यकार व्यास ने भी योग को समाधि बताकर[6] चित्तवृत्ति निरोध को एकार्थक

माना है। किन्तु भोजवृत्ति में योग की परिभाषा वियोग[7] दी गयी है। आचार्य शंकर ने योग शब्द को अत्यन्त व्यापक अर्थ में लिया है। जैसे-योग समाधि[8] समाधान[9] मनः समाधान[10] एवं चित्तसमाधान[11]।

दर्शनों में सांख्य तथा योग का युग्म है। सांख्य ज्ञान है तो योग उसका , क्रियान्वयन। सांख्य के निरीक्षण के साथ योग का परीक्षण भी चलना चाहिए। निरीक्षण ज्ञानात्मक है, परीक्षण क्रियात्मक है। निरीक्षण में अभिव्यक्ति नहीं है पर परीक्षण में अभिव्यक्ति होती है। अभिव्यक्ति भी अन्तः तथा बाह्य दो प्रकार की होती है। बाह्य अभिव्यक्ति आचरण सम्बन्धी है, जिससे सभ्यता का जन्म होता है। अतः अभिव्यक्ति में आन्तरिक प्रकाश होता है जो संस्कृति का जनक है। प्रकाश बाहर भी है पर जब भीतर प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगे तब मनुष्य सांस्कृतिक विकास में प्रगति करने लगता है। केवल अन्तः अभिव्यक्ति का आन्तरिक प्रकाश ही मनुष्य के सांस्कृतिक विकास का अन्तिम स्तर नहीं है, अपितु उसके आगे भी कई पड़ाव अथवा भूमिकाएँ आती है।

---

1. ऋग्वेद मण्डल 1, सूक्त 18 मन्त्र 7 । 2. ऋग्वेद, 1/30/7 शुक्लयजुः, 1/14 सामवेद उ0 1/2/11/1, सामवेद पू0 2/2/7/9, अथर्ववेद 19/24/7 एवं 20/26/1
3. ऋग्वेद, 2/5/3, सामवेद उ0 1/2/10/3, अथर्ववेद 20/69/1
4. ऋग्वेद 5/8/11, 5. योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। - योगसूत्र, 1/2
6. योगः समाधिः। - योगसूत्रभाष्य, 1/1, 7. पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यथा । भोजवृत्तिः 1/1
8. योगः समाधिः। - गीता शांकरभाष्य, 2/1, 9. समाधानं योगः। - तैत्तिरोयोपनिषद्
10. योगं यज्जन् मनः सम्मधानं कृर्वन्। - गीता शांकरभाष्य, 2/4
11. योगः चित्तसमाधानम्। - वही, 6/1

वेदों में अष्टांग योग विद्या

मनीषा गर्ग
शोध छात्रा
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

योग शब्द 'युज्' धातु से सिद्ध होता हैं। 'युज्यतेऽसौ योगः' जो युक्त करे मिलावे उसे योग कहते हैं। महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के मंत्र का भावार्थ करते हुए बतलाया है कि योग के करने वाले मनुष्य तत्व अर्थात् जब अपने मन को पहले परमेश्वर में युक्त करते हैं तब परमेश्वर उनकी बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय करके यथावत् धारण करते हैं। योग दर्शन के चार पाद है 1. समाधि पाद 2. साधन पाद 3. विभूति पाद 4. कैवल्य पाद। मनुष्य के हृदय में शुद्धि और अशुद्धि दोनों का समावेश होता हैं। अशुद्धि

होने से तम और रज गुणों से हृदय भरपूर रहता है। परन्तु शुद्ध हो जाने पर केवल सत्वगुण का प्रकाश उनमे रहने लगता है इसलिये शुद्धि के क्षय के लिये योग के नियमादि 8 अंगों का अनुष्ठान करना चाहिये। जिसे अष्टांग योग कहते है। इन नियमों के अनुष्ठान से अशुद्धि दूर होकर ज्ञान का प्रकाश होते-होते वह अन्तिम ज्ञान जिसे विवेकख्याति कहते हैं, योगी के हृदय में आकर हृदय को प्रकाशित कर देता है।

योग मानव को सांस्कारिक दुखों, क्लेशों, कष्टों से ऊपर ले जाने वाला मार्ग है। महर्षि दयानन्द अपने अनुभव से इस परिणाम पर पहुँचे कि अष्टांग योग ही वास्तविक योग है और योग दर्शन का व्यास भाष्य ही अधिक लाभदायक है। महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना विषय में स्पष्ट लिखा है कि ईश्वर की उपासना अष्टांग योग द्वारा ही हो सकती है।

वेदों में योगविद्या

मीनू तलवाड़
शोध छात्रा हिन्दी विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

योग भातीय सनातन धर्म, दर्शन, एवं संस्कृति का अभिन्न अंग है। वेदों से लेकर सभी पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र, इतिहास, काव्य, नाटक, कोष, नीतिग्रन्थ यहाँ तक कि सूर, तुलसी, कबीर, आदि संतो के काव्यों में तथा किं बहुना समस्त भारतीय वाड्.मय में योग की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इतना ही नहीं भारत के छः आस्तिक दर्शनो में योग दर्शन भी एक है जिसके प्रवर्तक महर्षि पतजंलि है। योग का मूल रूप वैदिक संहिताओं में सूत्र रूप में उपनिबद्ध है योग के बीज का वर्णन 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'काठक' शाखा में इस प्रकार उपलब्ध है।

''पूर्णो वे प्रजापतिः समृद्धिभिः। ऊनो व्यृद्धिभिः। पूर्ण पुरुष कामैः। ऊन समृद्धिभिः'' अर्थात् प्रजापति समृद्धियों से पूर्ण है, परन्तु वह व्यृद्धियों से ऊन है इसके विपरीत पुरुष कामनाओं से परिपूर्ण है परन्तु समृद्धियों से हीन है। पुरुष की यह समृद्धियों से हीनता एवं परमात्मा की समृद्धियों से पूर्णता ही योग का बीज बनी है।

योग विद्या भारतवर्ष की अमूल्य सम्पत्ति है जो सुदूर अतीत काल से अविच्छिन्न रूप में गुरु शिष्य परम्परा पूर्वक चली आ रही है। युग-युग से चला आया यह योग वस्तुतः भारतीय ऋषि मुनि तथा यति योगियों का अध्यवसाय एवं साधनालब्ध अन्तर्जगत् का महत्वपूर्ण अन्तर्विज्ञान हैं। इसी योग समाधि के द्वारा वैदिक काल में कितने ही ब्रह्मोपासक, मंत्रद्रष्टा ऋषि हुए हैं। वेदों में ऐसे अनेकाकनेक मंत्र हैं जो योग का ही प्रतिपादन करते हैं। यथा ऋग्वेद 10.177.3, 10.13.1, 5.81.1 तथा अथर्व 19.8.2 सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि जो यह कहा गया है

'ऋषिदर्शनात्' जो मंत्रद्रष्टा है वहीं ऋषि है मंत्रों का दर्शन बिना योग समाधि के नहीं हो सकता। तत्वदर्शी महर्षियों ने परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय 'ध्यान' और 'योग' ही बताया हैं

''ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्'' **(श्वेता उप० १.११)**

योग के प्रधान लक्षण का प्रतिपादन यजुर्वेद के 11वें अध्याय के प्रथम पांच मंत्रों में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में किया गया है।

''युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय शक्त्या''

अर्थात् हम लोग सबको उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की आराधना रूप यज्ञ में लगे हुए, मन के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयत्न करें।

तनाव कारण एवं मुक्ति

डॉ० सी पी० खोखर
रीडर, मनोविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

आज 21वीं सदी में मानव ने अपनी भौतिक सुख सुविधाओं के काफी साधन जुटा लिये हैं। जीवन उत्तरोत्तर साधन सुलभ होता जा रहा है इस साधन उपलब्धता को 'विकास' की संकल्पना में भी जोड़कर देखा जा सकता है। जहाँ पर वर्तमान में वैश्वीकरण के इस युग में विकास के नवीन एवं अभिनव कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं, वहीं पर मानव जीवन उत्तरोत्तर जटिल एवं विभिन्न मानसिक, शारीरिक व्याधियों से भी ग्रसित हो गया है।

इस प्रकार से देखा जाए तो विकास की एक बड़ी विडम्बना यह भी है कि मानव अधिक सुविधा सम्पन्न होने के साथ साथ विभिन्न स्तर पर मानसिक जटिलताओं से ग्रसित होकर, जीवन के प्रति एक अनिश्चितता की मन:स्थिति का निर्माण हो रहा है। मानव एवं विकास का परस्पर संबंध जहाँ पर एक तरफ सकारात्मक पक्ष रखता है, वहीं पर इसका एक नकारात्मक पक्ष यह भी है कि इस विकास की अंधी दौड़ में मानवीय जीवन से मूल्यों का वृहद स्तर पर ह्रास हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि नई दुनिया विकास की परत दर परत खोलती जा रही है, परन्तु साथ ही एक अति महत्त्वपूर्ण मानवीय सरोकारों से जुड़ा पक्ष भी उपेक्षित हो गया है। विकास की गति ने मनुष्य को मानवीय बनाने की अपेक्षा यान्त्रिक बना दिया है। सामाजिक नैतिक मूल्यों का ह्रास उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। यह स्थिति देखकर तो नहीं लगता है कि मनुष्य के अन्दर मानवीय संवेदना अधिक समय तक जीवित रह पायेगी।

विकास की प्रक्रिया मनुष्य की जिज्ञासा का ही परिणाम है, परन्तु क्या यह जिज्ञासा प्रवृति क्या कभी सम्पूर्ण ईश्वरीय देन के रहस्य को भी अवलोकित कर पायेगी। यह वर्तमान में एक

सार्थक बौद्धिक विमर्श का विषय हो सकता है।

मानव निरन्तर जीवन की जटिलता को देखकर एक विचित्र सी छटपटाहट महसूस करता है, यद्यपि यह जटिलता स्वयं उसके द्वारा निर्मित है। प्रायः सभी लोग कष्ट की परिस्थितयों से गुज़र रहे हैं। यह स्थिति थोड़ी कम अथवा अधिक अवश्य है। लेकिन हम सब इससे प्रभावित हैं, यह निश्चित है।

वर्तमान में अनुसंधान का विषय क्षेत्र मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिगत कल्याण पर केन्द्रित रहा है। जहाँ तक मानसिक कल्याण का प्रश्न है, यह व्यक्तिगत अनुभवों की देन है, जिसे व्यक्ति समाज एवं परिवार के परिपेक्ष्य में उनके प्रति उपजी अपनी संवेगात्मक एवं संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं के मूल्यांकन से प्राप्त करता है।

वेदों में योग

ऋतु तलवाड
प्रवक्ता
डी()ए()वी() कॉलेज, जालन्धर

योग भारतीय धर्म साधना का मेरुदण्ड है। हमारी जीवन व्यवस्था तथा तत्त्व चिन्तामणि की आधारशिला है। डायसन के अनुसार यह भारत के धर्मजीवन की सबसे विलक्षण वस्तु है। यही एक ऐसी विद्या है जिसमें वाद-विवाद को कहीं कोई स्थान नहीं है, यही वह कला है जिसकी साधना से अनेक लोग अजर-अमर होकर देह रहते ही सिद्ध पदवी को पा गये। अतः इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय तत्त्व ज्ञान के कोष को पाने के लिये योग की कुंजी पाना परमावश्यक है। ज्ञानसंकलिनी तन्त्र का कथन है कि चारों वेदों तथा सब शास्त्रों को मथकर सारभाग योगियों ने पी लिया तथा छाछ विद्वान् पी रहे हैं-

''मथित्वा चतुरोवेदान् सर्व शास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिबन्ति पण्डिताः।।ज्ञान.५२

श्रुति साहित्य में प्राणविद्या

रोहित आर्य
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

अनादि काल से ही विद्वत् जन महर्षि, तपस्वी आदि श्रुति को अर्थात् वेदों को ईश्वर की वाणी के रूप में श्रुति प्रमाण मानते आए हैं। विद्वान् लोग कहते हैं कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक हैं। मनु महाराज कहते है कि **वेदोऽखिलो धर्म मूलं स्मृति शीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव**

साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।। मुण्डकोपनिषद् में भी आया तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः' तथा स्वयं वेद अपने को प्रमाणित करते हुए यजुर्वेद में आया-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।। यजु० ४०

जो विद्या है अर्थात् आध्यात्मिक विद्या जो मोक्ष की ओर ले जाने वाली है और जो अविद्या है अर्थात् भौतिक विद्या जो जड़ जगत् की ओर ले जाने वाली है। वह सब वेद में ही समाहित है। अविद्या मृत्यु को तथा विद्या अमृतत्व को प्राप्त कराने वाली है। संसार की विविध विद्याओं में प्राण विद्या भी एक है। वेद प्राण को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि

ओं प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्व प्रतिष्ठितम्।। अथर्व ११/४/१

अर्थात् उस प्राण को मनस्कार है जिसके वशीभूत यह सारा संसार है और उसी प्राण में सब प्रतिष्ठित है। केनोपनिषद् में भी आया

यत् प्राणेन न प्राणिति, येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।

शतपथ ब्राह्मण **'प्राणो हि प्रजापति'** कहकर प्राण को प्रजापति बताते है तथा महर्षि याज्ञवल्क्य वृहदारण्यकोपनिषद् में प्राण को ब्रह्म बताते हैं। अतः प्राण विद्या अपने आप में विशिष्ट विद्या है।

वैदिक वाङ्मय में प्राण विद्या

डॉ० वन्दना वागीश्वरी
सुभाषनगर, जम्मू

वेद भारतीय संस्कृति की शाश्वत निधि है। वेदों में अन्य विषयों के साथ-साथ प्राण विज्ञान के विषय में भी व्यापक चिन्तन किया गया है। यह प्राण ही जगत् का आधार है, इसे हमारा नमस्कार है। यही सब लोक लोकान्तरों का प्रकाशक है यही समस्त सृष्टि का आधार है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।
अर्थवेद ११/४/१५

प्राण हमारे जीवन का अनिवार्य तत्व है। प्राण से ही आहार का पाचन, सात धातुओं

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि हड्डी, मज्जा, व्यर्थ पदार्थों का शरीर से विसर्जन, बोलना, उठना, चलना, बैठना, मनन, चिन्तन, स्मरण आदि समस्त स्थूल व सूक्ष्म क्रियाएं होती हैं। प्राणों की सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर ही प्राचीन ऋषि ने भाव विभोर हो यह प्रार्थना की है 'नसोर्मे प्राणोऽस्तु' (पार0 2/3/25) हे ईश्वर ! मेरी नासिका में सदा प्राणों की अवस्थिति रहे।

वेदों में योग

कुञ्जदेव मनीषी
उपाचार्य
महाविद्यालय गुरुकुल आश्रम आमसेना, उडीसा

मनुष्य जीवन का लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना और अन्यों को प्राप्त करवाना है। इस उद्देश्य की सार्थकता योग से सम्भव है। प्राचीन मनीषियों की चिन्तनधारा योगादेव तु कैवल्यम् इसी उपरोक्त बात की ओर ही संकेत करता है। महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के योगश्चित्तवृत्तिनिरोध सूत्र 1/2 में चित्त के वृत्तियों को रोकने को ही योग (समाधी) कहा। योग शब्द युज् समाधौ दिवादिगणीय धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, अत: योग शब्द का शाब्दिक अर्थ समाधि अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध है। यद्यपि योग शब्द युजिर् योगे तथा युज् संयमने धातुओं से भी सिद्ध हो सकता है। किन्तु वहां योग शब्द का अर्थ यथक्रम योगफल जोड़ तथा नियम होगा। जो कि योगदर्शन के योगश्चित्तवृत्तिनिरोध सूत्रोक्त योग की परिभाषा के अन्तर्गत होने से अभीष्ट नहीं होगा। अत: युज् समाधौ धातु से निष्पन्न योग शब्दार्थ ही यहां स्वीकार्य है।

कठोपनिषद् में यमाचार्य जी भी योग की परिभाषा में चित्तवृत्तियों को निरोध करना योग कहा है।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिधारणाम्।
अप्रमत्त्स्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥६/११॥

इन्द्रियों की स्थिर धारणा को योग कहते हैं, जिसकी इन्द्रियां स्थिर हो जाती है, वह अप्रमत्त हो जाता है, प्रमादहीन हो जाता है, सावधान हो जाता है, योग का अभिप्राय है, प्रभाव तथा अप्यय। शुभ संस्कारों की उत्पत्ति होना प्रभव कहलाता है, तथा अशुभ संस्कारों का नाश अप्यय कहलाता है।

योग के साथ मनुष्यों का सम्बन्ध अनन्त काल से है, योग के बिना मुक्ति अर्थात् अपरमित आनन्द की कल्पना करना खपुष्प के समान है। लघुकाय चीटीं से लेकर बृहत्काय व्हेल मछली तक (इनमें मनुष्य भी शामिल है।) सबकी चाह आनन्द को प्राप्त करना है। तथा आनन्द योग से

सम्भव है। भौतिक सुख सुविधा, धन, मान, सम्मान, सम्पत्ति से नहीं। सांसारिक भौतिक साधनों से सुख की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। क्योंकि सुख का अर्थ जिन साधनां से इन्द्रियां तृप्त होती है। किन्तु सांसारिक साधनों से आत्मा को तृप्त नहीं किया जा सकता। आत्मा को तो परमात्मा रूपक रसास्वादन की आवश्यकता है, जिसके सेवन से आत्मा आनन्दी कहलाता है। (रसो वै. सः रसं ह्वायं लब्ध्वानन्दी भवति) अतः आनन्द गुण की प्राप्ति के लिए, जन्म मरण के बन्धनों से छूटने के लिये, परमात्मा के गोद में बैठने के लिए सबको योग साधना को समझना एवं अपनाना अत्यन्त आवश्यक है। योग का अर्थ आज व्यायाम, आसन, प्राणायाम को ले लिया गया। किन्तु से सब योग के अंग मात्र है। वास्तविक योग का अर्थ तो चित्तवृत्तियों को निरोध करने के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि का नियमित अनुष्ठान करना है। जिससे असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है एवं जीवात्मा 31 नील 10 खरब 40 अरब वर्ष तक परमात्मा के आनन्द में रहता है। योग सम्बन्धित विस्तृत तत्त्व महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योददर्शन में समाहित है जो कि निम्नोक्त वेद से निःसृत है।

१. **युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्यबृहतो विपश्चितः।**
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुति। ऋग् ५/८१/१॥

२. **युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियम्।**
अग्रेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत। यजु. ११/१॥

३. **योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे।**
सखाय इन्द्रमूतये। यजु. ११/१४॥

इन मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि योग विद्या का मूल स्रोत वेद ही है। और वेदों में योग निहित है। तथाच महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रणीत योगदर्शन में प्रतिपादित योग विद्या वेदों से आयी है। इस विषय में विस्तृत चिन्तन शोधपत्र में किया जायेगा।

वेदों में योग

सुभा सिंह
शोधछात्रा-संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वैदिक साहित्य से लेकर ब्राह्मण काल, आरण्यक काल उपनिषद् काल सूत्र काल रामायण काल, पुराण काल, महाकाव्य काल तथा आधुनिक काल पर्यन्त जहाँ कहीं पर भी जिस रूप में हम योग का नाम सुनते हैं उसके आधार में मात्र वेदों की ही मुख्यतः आधार शिला कही जा सकती है प्रथमः योग वह नीव है जिसके ऊपर इस शरीर रूपी भवन का निर्माण करके इसे फलता हुआ देखते है। योग शब्द क तात्पर्य मुख्यतः एक से अनेक चीजों को संयमित करना है जैसे

साधारण भाषा में दो और दो को जोड़ देने से उनका योग चार हो जाता है इसी प्रकार योग में भी कई वस्तुओं को समन्वित करके जीवन को सदुपयोगी बनाते है। प्राचीन समय में इसी के माध्यम से ऋषि लोग एक स्थान पर स्थिर होकर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार कर लेते थे।

इस प्रकार योग शब्द युज् धातु से रुधादि प्रकरण से निष्पन्न होता है। इसका प्रथमतः वर्णन ऋग्वेद के पंचम मण्डल के ८1 सूक्त के प्रथम मंत्र में आया है। जहाँ पर इसका अर्थ विज्ञ लोगो के साथ पुरोहित एवं यजमान अपने मन को केन्द्रित करते हैं। एक अन्य स्थल में इसका ये अर्थ भी प्राप्त होता है कि योग को सदसस्पति अर्थात् अपने विचारों में विराजमान या स्थिर रहने को कहा गया है।

ऋग्वेद में प्रयुक्त योग शब्द परवर्ती साहित्य के लिए आधार है अर्थात् परवर्ती साहित्य वैदिक साहित्य का ऋणी है।

अथर्ववेद में भी इन्द्र को वृत्र का घातक कहा गया है और यहाँ पर योगाभ्यास के द्वारा ही दैत्यों का काटने मारने का उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेद में क्रियायोग से योग की प्राप्ति के लिए ईश्वर भक्ति की आराधना की गयी है इसका विशद् वर्णन हमने अपने निबन्ध या शोध पत्र में किया है वेदों में प्राणायाम के विषय में अनेकशः वर्णन प्राप्त होता है जैसे कि ऋग्वेद में कहा गया है

''प्राणाद्वायुरजायत।''

अर्थात् पुरुष के प्राणों से वायु प्रकट हुई। तैत्तिरीय संहिता में भी पंच प्राणों का उल्लेख किया गया है। इसका विशद् वर्णन शोध-पत्र में किया जायेगा।

VIBHUTI-YOGA IN VEDA

Saloni
Deptt. of Sanskrit
Guru Nanak Dev University, Amritsar

The Bhagvad Gita, in two remarkable chapters (IXth the Xth), describes successively Rājayoga (The Mystical Path) and Vibhuti-Yoga (The Path of Splendour), the one taking us deep into the secret heart of Reality and the other exhibiting the glory and wonder of its external menifestation.

The Lord Krishna says-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योर्तिषां रविरंशुमान्।

मरीचिर्मरूतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।। (Bhagvad Gita, 10/20-21)

It is very interesting to find that this very mode of describing the Supreme Being has been used in the Rigveda. In fact, such a method is found in the Veda and the Bhagvad Gita alone and does not appear to have been followed in the Upanishads or other literature to any appreciable extent. The Rigveda says in the same style as we find in the tenth chapter of the Gita about the Supreme Being-"The Soma flows the generator of praises, the generator of heaven, the generator of the earth, the generator of Agni, the geberator of the Sun, the generator of the Indra and the generator of the Vishnu. The Brahma among the Gods, the leader of Poets, the saga among the wise, the Buffalo among the wild animals, the Falcon of the vultures, the Svadhiti (tree) in the forest, the Soma passes through the filter with a roar."

In other of the Rigveda, we find Indra speaking in the first person like Krishna, as the Supreme Being-

अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवां ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्य मा।।
अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्।।

(RV. IV. 26.1-2)

In another part of the Rigveda, we find Vak Goddess speaking like Krishna as the Supreme Being.

So, these correspondences are surprising and cannot but establish the fact that the Gita quotes the Samhita. It also proves that what the Gita calls Vibhuti-Yoga, exists in its technical form in the Veda. In Veda, the poetry of Vibhuti Yoga is more objective and more powerful and its measures are more stately. This Vibhuti-Yoga combines poetry and religion into a powerful literary expression.

यज्ञः

यजुषि यज्ञस्य यूपः

डॉ० अञ्जू रानी

मोदीनगर, गाज़ियाबाद

अध्यक्षं राजमाना परिषदि विबुधा देवभूमौ समन्ताद्
देशाद्देशाद् विभिन्ना बहुविदमतिभिर्ज्ञानवन्तः स्वकृत्यैः।
तेषामग्रं यजुर्भिः स्वयजनयजये प्राप्य यूपप्रणालीं
प्रस्तौत्यञ्जूः स्वमानैर्विरचितविधिभिर्वेदगोष्ठयां स्वयत्नैः।।1।।
यूपो यज्ञस्य काले कथमथ नु भवेद् तस्य साक्षात् विधानं
मन्त्राणां मन्थनात् वा मथनगणनया भाति यूपस्वरूपम्।
मन्त्रो मन्त्रः स्वमानैः कथयति नितरां नूतनां ज्ञानचर्चां
पश्यन्त्वज्ञैव चित्रं परिषदि सफलं मेप्रयत्नप्रभावैः।।2।।
मन्त्रो तन्त्रो यजुर्भिर्यजन यवनिका यूपरूपेण लब्धा
यज्ञेभ्योणऽसा नितान्तं विरचितरणनैः खण्डपिण्डैर्विभाति।।।
यत्सौन्दर्यं यथा वै जगति हि सफलं प्राप्य नारीं प्रसिद्धां
यज्ञस्तम्भस्तथैवात्र बहुविधविधिभिः साधु रीत्याऽथवेदे।।
चित्रं दृष्ट्वा धरायां रचयतु मनुजो यज्ञयूपं स्वजापैः
यज्ञात् कार्यस्य सिद्धिर्भवि सरलतया भो विभातीहनित्यम्।
तस्मात् कुर्वन्तु सर्वे जगति सुविधिभिर्यूपनिर्माणनिष्ठां
यज्ञाः सिद्धा नराणां सपदि तु सफला वेदरीत्या प्रभावैः।।4।।
काले कालेऽथ मर्त्या बहुमतमतिभिर्यज्ञयूपस्य रूपं
भक्त्या शक्त्या स्वरीत्या विरचित विधिभि र्येऽथ कुर्वन्ति भिन्नम्
साक्षात् दृष्ट्वाऽधुना ते सपदि हि यजये साधु कार्यस्य सिद्धौ
भूमौ शास्त्रप्रणाल्या श्रुतिवरनिपुणैः तत् विरच्याथ भान्तु

वैदिक वाङ्मय के आधार पर यज्ञ और आयु का परस्पर सम्बन्ध

डॉ० ब्रह्मानन्द पाठक
संस्कृत तथा प्राकृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक धर्म, संस्कृति और चिन्तन का आधार स्तम्भ यज्ञ ही है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में यज्ञ को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में याज्ञिक विधि विधानों की परिकल्पना अपनी चरम सीमा पर हैं। कल्पसूत्र उसका सर्वांगीण और विशद विवेचन करते हैं। वैदिक यज्ञ का स्वरूप विवेचन बहुत से वैदिक ग्रन्थों का प्रतिपाद्य है। विद्वानों के विवेकानुसार वैदिक यज्ञ आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों, रूपों में ग्रहणीय है। यज्ञ प्रक्रिया ही सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति का आधार है। यज्ञ वह विधि है जिससे प्रकृति और प्राकृतिक जगत् में आवश्यक सन्तुलन बना रहता है। प्राकृतिक यज्ञ विश्व में प्रतिक्षण चलता रहता है। अतएव यजुर्वेद और अथर्ववेद में यज्ञ को सृष्टि चक्र या विश्व की नाभि कहा गया है।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। ऋग्वेद १/१६४/३५, यजुर्वेद २३/६२

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। अथर्ववेद ९/१०/९४

यज्ञ की अनेक प्रकार से व्याख्याएं की गयी हैं। यज्ञ को श्रुति में सर्वश्रेष्ठ कार्य घोषित किया गया है। यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म (श. ब्रा. 01/7/1/4) यज्ञ को सम्पूर्ण भुवन में निश्चय ही ज्येष्ठ बताया गया है। यज्ञों वै भुवनेषु ज्येष्ठः (को. ब्रा.) श्रीमद्भगवद्गीता (4/24 32) के अनुसार यज्ञ बहुत वितत है। वहां अनेक प्रकार के यज्ञ बताये गये है। यज्ञ की परिकल्पना वैदिक महर्षियों की सर्वोत्कृष्ट देन है।

यज्ञ का अग्नि से साक्षात् सम्बन्ध है। अग्नितत्त्व की प्रधानता जीवनी शक्ति का सार है अतः यज्ञ कर्म को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का मानना तत्त्वतः वैज्ञानिक दृष्टि से प्रेरित विचार है। ऋग्वेद (3/10/3) के एक मन्त्र में अग्नि को सम्बोधित करते हुए जीवनी शक्ति, सामर्थ्य , पुष्टि और इनसे समवेत आयुष्य का आधार जातवेदस् में प्रतिदिन समिधाएं प्रदान करना कहा गया है। अथर्ववेद (5/28, 8/1/2) में दीर्घायु के उपायों का प्रकाशन सूक्त होते हैं, जिनका देवता आयु है। अथर्ववेद के 19 वें काण्ड में प्राप्त दीर्घायुत्वम् सूक्त का देवता सूर्य है। उसमें सौ वर्षो तक देखने, जीवित रहने, पुष्ट रहने की कामना व्यक्त की गई हैं यज्ञ की महिमा गाने वाले तीन सूक्त अथर्ववेद के 19वें काण्ड (19/1/, 58-59) में मिलते हैं।

इस प्रकार वैदिक मन्त्रों में यज्ञ और आयु का सम्बन्ध अनेकशः दर्शाया गया है। जिसका विस्तृत विवेचन इस शोध पत्र में करने का प्रयास करूँगा।

वैदिक ज्ञान का स्वरूप-यज्ञ

कविता आर्या
शोध छात्रा
दिगम्बर जैन महाविद्यालय, बड़ौत, बागपत

वेद भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। विशेष रूप से भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। प्राक्तन काल से भारतीय समाज का वैयक्तिक जीवन सामाजिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय संगठन भगवती श्रुति की दृढ़ आधारशिला पर अवलम्बित रहा है। वेदों का शाश्वत निर्भ्रान्त ज्ञान मानव मात्र की श्रद्धेय सरणी पर आरोहण का सुगम सोपान है।

वेदों का समस्त ज्ञान भण्डार अकेले एक 'यज्ञ' ही में चरितार्थ है। वेदों में जो कुछ कहा गया है, वह यज्ञ के ही लिए है। वैदिक ज्ञान यज्ञों में ही ओत प्रोत है। वेदों में यज्ञ प्रक्रिया के इस महत्त्व को दृष्टिगत करते हुए मैंने अपने शोध-पत्र में यज्ञ की उपयोगिता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

वैदिक साहित्य में यज्ञ का महत्त्व

ओम् प्रकाश शर्मा
शोध छात्र, संस्कृत-विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमोदैवो बलिर्भूतो नृयज्ञो अतिथिपूजनम्॥ (मनु ३/७०)

अग्नि सोमात्मकं जगत् मन्त्र के द्वारा यज्ञ-विज्ञान के स्वरूप को बताते हुए कहा गया है कि अग्नि में घृताति सोम प्रधान द्रव्यों की आहुति देना यज्ञ कहलाता है। यज्ञ के तीन अर्थ है- देवपूजा, संगतिकरण और दान, यत् देवा अकुर्वन तत् करवाणि' अर्थात् जो देवों ने किया वह मैं करूँ, इस अभिलाषा से देवतत्व अर्थात् श्रेष्ठ गुणों की अभिवृद्धि हेतु कामना करता हुआ 'देर्वाचना' नामक यज्ञ का विधान करता है, 'यजीयमान अर्थ्वः प्रतिष्ठति' अर्थात् यज्ञ करने वाला सदा उन्नत शिखा में रहता है। अर्थात् उसके आत्म, तेज में निरन्तर अभिवृद्धि होती रहती है। 'स ज्योतिषां ज्योति' से स्पष्ट है कि तेज से तेज की अभिवृद्धि होती है यह भी यज्ञ ही है। यज्ञ की हेतु यही है कि इससे सब तेजों का संगठन हो और सबकी तेजस्विता बढ़े 'यज्ञ बन्धु मनुष्यः चेतयत्' मन्त्र द्वारा ऋग्वेदीय महर्षि ने संगतिकरण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यज्ञ अर्थात् संगठन के कार्यो से प्रेम करने वाला ही मनुष्य को ज्ञान दे सकता है।

वेदों में यज्ञ विज्ञान का निरूपण

नबिता जम्वाल
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

चारों वेद भारतीय संस्कृति के संवाहक माने जाते हैं, जिनमें तत्कालीन ऋषि मुनियों के साथ गृहस्थों की दैनन्दिनी का प्रधानकर्म यज्ञ-सम्पादन हुआ करता था। ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र भी यज्ञ कर्म को महनीयता देता दिखता है- यथा ऊँ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। शुक्लयजुर्वेद में "यज्ञेन यज्ञमयन्त देवा:, अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि:" तथा अथर्ववेद में यज्ञा: पृथिवीं धारयन्ति एवं यज्ञों विश्वस्य भुवनस्य नाभि: रूप में यज्ञ को भगवान् का अपर रूप माना गया, एवं यह तथ्य स्वीकार किया गया कि यज्ञ ही समस्त लोकों का केन्द्र है। तथा वही पृथ्वी को धारण किये हुए है। पृथ्वी पर आश्रित जीवों के जीवनधारण के लिए अग्नि, शुद्ध वायु, जल (वृष्टि), एवं अन्न की महती आवश्यकता होती है, एवं इन सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति यज्ञ के द्वारा तत्कालीन समय में सम्भव मानी जाती थी, शायद इसीलिए वृष्टि वर्षण के लिए यज्ञ आयोजन तत्कालीन समय में भी प्रचलित थे, एवं आज भी ग्रामीण परिवेश में इसकी मीमांसा उपस्थित दिखती है। यज्ञ से उत्पन्न धूम द्वारा पर्यावरण की शुद्धता तो बढ़ती ही है, मानव का स्वास्थ्य संरक्षण भी होता है, ठीक उसी विधा में जैसे डाक्टर किसी मरीज का स्वास्थ्य संरक्षण करते हैं। शायद तभी अथर्ववेद में यहाँ तक कह दिया गया कि "अयज्ञियों हतवर्चा भवति" अर्थात् यज्ञ न करने वाले पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है। एवं उपनिषद् तो यज्ञ को संसार सागर से पार होने के लिए नौका रूप मानते हैं। जिससे यज्ञों का मानव दैनन्दिनी में प्रभाव स्वत: सिद्ध हो जाता है। सम्पूर्ण विवेचन शोधपत्र में अभिहित किये गए हैं।

यज्ञों का दार्शनिक स्वरूप-यजुर्वेद के सन्दर्भ में

अनीता मिश्रा
व0अ0अ0, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

यज्ञ के उत्स एवं विकास पर विहगंम दृष्टि डालने से पता चलता है कि यज्ञ उतना ही प्राचीन है जितना मानव जीवन। ईश्वर की अनन्त शक्तियों में दो ही प्रमुख शक्तियाँ हैं 'ज्ञान' एवं कर्म। ज्ञान का सम्बन्ध 'वेद' से तथा कर्म का सम्बन्ध 'यज्ञ' से है। वेदों में कर्म का तात्पर्य 'यज्ञ' से ही है-

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। (जयुर्वेद 1/1)

वेद के मंत्रों का 80 प्रतिशत भाग कर्म काण्डों से सम्बन्धित हैं शेष भाग उपासना एवं ज्ञान से सम्बन्धित हैं। अत: स्पष्ट है कि वेद में यज्ञ से सम्बन्धित भाग की प्रधानता है। फलत: सम्पूर्ण वाङ्मय यज्ञ तत्व के पोषण अनुरक्षण हेतु ही दिखाई देता है। वस्तुत: यज्ञ कर्मकाण्डों का संकलन मात्र नहीं बल्कि अपने अंतर्निहित मूल्यों के अतिरिक्त दिव्य और चैतन्य पूर्ण कृत्य हैं। जिससे ऊर्जा उद्भूत होती है।

ऋग्वेद में यज्ञ की व्यापकता मूलत: दिव्य शक्तियों के साथ संलग्न है। वहाँ हम उन्हीं दिव्य शक्तियों को स्वीकार करके यज्ञ से उनका समन्वय स्थापित करते हैं। किन्तु यजुर्वेद में यज्ञ साधनभूत जो भी सामग्रियाँ हैं उन सबका दैवीकरण किया गया है और इस प्रक्रिया में अनन्त दिव्य शक्तियों के साथ भौतिक वस्तुओं का तादात्म्य उपस्थित किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद का प्रारम्भ दर्शपौर्णमासीय मंत्रों से होता है, जहाँ एक मंत्र 'श्रेष्ठतमाय कर्मणि की चर्चा है जिसकी व्याख्या शतपथ ब्राह्मण 'यज्ञो' वै श्रेष्ठतमं कर्म' की प्रतिष्ठा करता है। हम विशिष्ट कर्मों के परिप्रेक्ष्य में जैसे व्रत ग्रहण को, यज्ञीय सन्दर्भ में यज्ञ के पूर्व अनशन पूर्वक दिन भर उस सम्पूर्ण यज्ञकर्म को पूर्ण करने का संकल्प और तत्सम्बन्धी नियमों का निर्वाह है। व्रत ग्रहण के पश्चात् सभी कर्मों का किसी न किसी वस्तु से और किसी न किसी दिव्य शक्ति से सम्बन्ध है। जैसे हविर्धान को सामान्य स्थिति में अलुण्ठित और अहिंसित नहीं कहा जा सकता किन्तु यज्ञीय सन्दर्भ से समन्वित होकर अलौकिक स्थिति को प्राप्त कर लेता है। पवित्री करण में कुश को विष्णु स्वरूप तथा दो कुआओं को एक साथ ग्रहण कर धरती और आकाश को उपलब्ध रूप में ग्रहण किया गया है। हविष्कण्डनकर्म में कृष्णजिन (मृगचर्म) विद्वानों से सम्बन्धित विचार धारा दार्शनिक संकेतों से परिपूर्ण है। शाखा-उपगूहन, इस कर्म के साथ सृष्टि की गत्यात्मकता द्योतित करता है। गो आहरण क्रिया में गो पृथ्वी स्वरूपा है। जिससे गो की अखण्डनीयत्व का संकेत मिलता है। इस प्रकार प्रत्येक यज्ञीय कर्मकाण्डों के पीछे उनकी दार्शनिकता और वैज्ञानिकता छिपी है।

वस्तुत: वाह्य जगत् में सूक्ष्म से लेकर स्थूल पर्यन्त क्षण प्रतिक्षण जो भी क्रिया प्रतिक्रिया हो रही है उसका सम्यक् दर्शन यज्ञों में होता है। अग्नि में देहाभिमान को अनन्त ब्रह्माण्ड नायक के चरणों में हवन कर शुद्ध तत्व में प्रतिष्ठित होना यज्ञ का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध पत्र में यजुर्वेद में दर्शपूर्णमास, अग्न्याधान, अग्निष्टोम, वेदिचयन, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेघ, पुरुषमेघ, प्रर्वग्य कर्म आदि से सम्बिन्धत जो मूल दार्शनिक प्रति पत्तियाँ हैं उनके परिप्रेक्ष्य में यज्ञों की दार्शननिक विचारधारा का अनुशीलन किया गया है।

वेदों में यज्ञ चिकित्सा

डॉ० प्रदीप कुमार
प्रवक्ता, वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

वैदिक काल में आरोग्य वृद्धि और रोग निवारण के लिए यज्ञ होते थे। उनको भेषज यज्ञ कहते थे। यज्ञ का ब्रह्मा आरोग्य शास्त्र का मर्मज्ञ होता था, जो यह जान लेता था कि रोगी के शरीर में कौन सी व्याधि उत्पन्न हुई है, कौन से तत्व घट बढ़ गये हैं। उनकी पूर्ति के लिए किन औषधियों की आवश्यकता है। वैसी ही औषधियों की सामग्री बनाकर उसी प्रकृति के मंत्रों से आहुतियाँ दिलाकर हवन कराया जाता था। तदनुसार वह रोगों से छुटकारा पाता था। अथर्व0 1/8/21 में कहा गया है

इदं हविर्यातु धानान्नदी फेनमिवा वहत्।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुंवता जनः॥ अथर्व० १/८/२१

अग्नि में डाली हुई हवि रोग कृमियों को उसी प्रकार दूर बहा ले जाती है जिस प्रकार नदी पानी के झागों को। जो कोई स्त्री पुरुष इस यज्ञ को करे उसे चाहिए वह हवि डालने के साथ-साथ मंत्र उच्चारण द्वारा अग्नि का स्तवन भी करे-

अग्नि कृणोतु भेषजम् अथर्व० ६/१०६/३
यज्ञाग्नि औषधि का भी कार्य करती है।
सहस्व मे अरातीः सहस्व प्रतनायतः।
सहस्व सर्व पाप्नात् सहमानास्थ्रेषधेः। यजु० २१/९९

अर्थात् - हे औषधि तू रोगों को दूर करने वाली है, अतः मेरी शान्ति हरने वाले रोगों को दूर कर। युद्ध की तरह शरीर में हलचल मचाने वाले सब रोगों को पराजित कर, दूर कर।

यज्ञ द्वारा रोग निवारण शास्त्रों की कोरी कल्पना या उड़ान मात्र नहीं है, यज्ञ करना एक बड़ा चिकित्सालय खोलने के समान है जिससे अगणित रोगग्रस्तों तथा भविष्य में बीमार पड़ने वाले लोगों का इलाज घर बैठे ही हो जाता है। चिकित्सा पर जो धन, समय, श्रम, चिन्ता, काम में हानि आदि की कठिनाई होती है, उससे बचा जा सकता है। इस प्रकार यज्ञ करना एक चिकित्सालय खोलने से भी अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है।

वेदों में यज्ञ-विधान

अन्जू रानी
शोध छात्रा, संस्कृत
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

भारतीय संस्कृति और वेद पुराणों में यज्ञों की अपार महिमा निरूपित है। यज्ञ ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य है। 'यज्ञ' शब्द यज·नङ्[1] (भावे) प्रत्यय करने से देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थ में निष्पन्न हुआ है। यथा 'देवानां संगतिकरणं यज्ञः'। करण कारक अर्थ में नङ् प्रत्यय इज्यन्ते देवा अननेति यज्ञः, अधिकरण अर्थ में नङ् होकर इज्यन्ते देवा अस्मिन्निति यज्ञः। इज्यन्ते देवेभ्योऽस्मिन्निति यज्ञः। इज्यन्ते = तृप्ति लभ्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञः होता है। अथर्ववेद में कहा गया है "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः" अर्थात् संसार की उत्पत्ति स्थान यह यज्ञ ही है।

मनुष्य को अपने जीवन के सर्वाधिक कल्याणार्थ यज्ञ धर्म को अपनाना चाहिये। मानव जाति के जीवन का प्रारम्भ ही यज्ञ में होता है। 'श्रीमद्‌भगवद् गीता' में कहा गया है

"सहयज्ञाः प्रज्ञाः ....
.........................परमवाप्स्यथ" (३/१०/११)

वेद अपौरुषेय हैं और वेद में यज्ञ होने के कारण ये भी अपौरुषेय एवं अनादि हैं। वेद में सम्पूर्ण यज्ञों का विधान निहित है। "यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्" अर्थात् ऋग्वेद में भी यज्ञ को प्रतिपादित किया है। यज्ञों में विशेषतः 'श्रौत यज्ञ' एवं 'स्मार्तयज्ञ' प्रधान हैं।

1. यज्ञ याच यत विच्छ रक्षो नङ् 3/3/90

कल्पसाहित्ये विविधाः यज्ञाः

डॉ० (श्रीमती) प्रतिभा श्रीवास्तव
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

'कप्प' शब्द क्लृप् धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ विधि।

आचार्य सायण ने कल्प का अर्थ दिया है- जिन ग्रन्थों में यज्ञ सम्बन्धी विधियों का समर्थन या प्रतिपादन किया जाता है उन्हें 'कल्प' कहते हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्य की टीका में विष्णुमित्र ने कहा है कि जिन ग्रन्थों में वैदिक कर्मो का सांगोपांग विवेचन किया जाता यह उन्हें 'कल्प' कहते हैं। अभिप्राय यह है कि वेदों में वर्णित छोटे और बड़े यज्ञों के सर्वाङ्गपूर्ण विधि विधान का जिन ग्रन्थों में वर्णन किया जाता है उन्हें 'कल्प' ग्रन्थ कहते हैं। ये सूत्र रूप में लिखे गये हैं अतः इन्हें सूत्र कहते हैं। कल्पसूत्र चार प्रकार के हैं -1. श्रौत सूत्र 2. गृह्य सूत्र 3. धर्मसूत्र 4. शुल्व सूत्र

यज्ञ- यह शब्द यज् धातु नङ् प्रत्यय से निष्पन्न है। यज् धातु का अर्थ प्रयोग, पूजा, आराधना तथा हवन करने के अर्थ में होता है। जिस विधान में देवताओं को हविष् दी जाती है अथवा जिसमें देवताओं की पूजा की जाती है उसे यज्ञ शब्द से अभिहित किया जाता है।

अत: किसी द्रव्य का जब देवता के उद्देश्य से त्याग किया जाता है तो 'याग' कहते हैं। श्रौतसूत्रकारों ने यज्ञ की परिभाषा लिखी है

'द्रव्यं देवता त्यागः' (का0 श्रौत 1/2/21) द्रव्य, देवता, त्याग इन तीन शब्दों से यज्ञ शब्द का अर्थ पूरा होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में सम्पूर्ण मानव जीवन यज्ञमय ही बताया गया है यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।2

विविधाः यज्ञाः

'ऐतरेय ब्राह्मण में समस्त श्रौतयाग पाँच प्रकार के माने गये हैं

''स एव यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासी चातुर्मास्यनि पशुः सोमः''

संहिता ब्राह्मण और कल्पसूत्रों में (श्रौत = गृह्य धर्मसूत्रों) में जितने प्रकार के यज्ञों का विधान उपलब्ध होता है वे श्रौत, स्मार्त भेद से दो प्रकार के हैं। श्रौतयज्ञ दो प्रकार के कहलाते हैं जिनका विधान श्रुति (संहिता ब्राह्मण) में होता है। स्मार्त यज्ञ उनको कहते हैं जिनका विधान गृह्य सूत्रों एवं धर्मसूत्रों में मिलता है। गृह्यसूत्रों में प्रधान तथा संस्कार, गृहस्थ उपयोगी कर्मो का विधान और धर्मसूत्रों में मानव समाज के विभाग एवं विभागशः विशिष्ट कर्त्तव्यों का निरूपण किया है। श्रौत और स्मार्त दो भागों में विभक्त यज्ञों के नित्य, नैमित्तिक और काम्य से पुनः तीन भेद हैं नैत्यिक कर्म निष्काम भाव से (केवल कर्त्तव्य बुद्धि से क्रियमाण होने से इसका फल आत्मशुद्धिपूर्वक मोक्ष प्राप्ति है।)

नैमित्तिक कर्म जो गृहादि के दाह, भीषण भूकम्प आने, अतिवृष्टि आदि के निमित्त किये जाते हैं।

काम्य कर्म जो ग्राम प्राप्ति पशु प्राप्ति, धन प्राप्ति, यशः प्राप्ति आदि की कामना से किये जाते हैं।

वैदिक वाङ्मय में यज्ञों का पर्यावरणीय महत्वः एक समीक्षा

मयंक शेखर पाण्डेय
संस्कृत विभाग
के0बी0पी0जी0कालेज, मिर्जापुर

चन्द्र प्रकाश शुक्ल
वनस्पति विज्ञान संकाय
टी0डी0पी0जी0कालेज,जौनपुर

वैदिक वाङ्मय में यज्ञों का अत्यन्त महत्त्व है। यज्ञ हमारी प्रकृति का संतुलन बनाए रखने में विशेष सहायक हैं। प्राचीन मनीषियों ने समग्र वातावरण को शुद्ध बनाये रखने के लिए यज्ञों के विधान पर विशेष बल दिया। आज विज्ञान प्राघौगिकी की चकाचौंध में भी पर्यावरणशास्त्री यज्ञों के पर्यावरणीय महत्व को स्वीकार रहे हैं क्योंकि यज्ञ जहाँ पर्यावरण की सुरक्षा करते हैं वहीं मानव

को स्वस्थ रखने का भी कार्य करते हैं। यज्ञ के द्वारा पर्यावरण की स्वच्छता, वायुमण्डल की पवित्रता, विविध रोगों का नाश, शारीरिक, मानसिक उन्नति तथा रोगोपशमन के कारण दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है। यज्ञ के द्वारा मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण तथा इनसे जनित अनेकानेक रोगों का उपचार सम्भव है। यज्ञ को वैदिक साहित्य में ''अग्निहोत्र'' शब्द से विहित किया गया है। यज्ञ ही वह विधि है जिसके द्वारा प्राकृतिक संतुलन बनाए रखा जा सकता है।

यज्ञ ही वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वायुमण्डल बनाए रखा जा सकता है। यज्ञ ही वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वायुमण्डल में ऑक्सीजन (O_2) तथा कार्बनडाई ऑक्साईड (CO_2) का संतुलन बना रहता है। प्रकृति एक चक्र की व्यवस्था है इसी के आधार पर ऋतु चक्र, वर्षचक्र अहोरात्र चक्र, सौर चक्र, चान्द्रचक्र आदि प्रवर्तित होते हैं। पारिभाषिक शब्दावली में इस प्रकृति चक्र का वर्णन करते हुए कहा गया है- ''यत पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत, वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।'' अर्थात् वर्षचक्र रूपी यज्ञ में वसन्त ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु ग्रीष्म के बाद शरद् ऋतु, इस प्रकार से वर्ष चक्र को पूर्ण करते हैं। (ऋग्वेद 10.90.6, यजु0 31.14)। यह प्रकृति परिणमनशील है जिससे सृष्टि चक्र निरन्तर चलता रहता है। परमाणु में नाभिक की भाँति "यज्ञ" भी सृष्टि चक्र का नाभिक है अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः (यजुर्वेद 23.62)।

वैदिक यज्ञ-विधि और रुद्राष्टाध्यायी

अरुण कुमार मिश्र
शोध छात्र
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में अधिकांश (कुछ सीमातक ऋग्वेद को छोड़कर) संहिताएं यज्ञों के सम्प्रदाय सम्बन्धी स्वरूपों के आधार पर गठित हैं। विभिन्न यज्ञों के लिए विभिन्न पुरोहितों की आवश्यकता पड़ती थी और ये विभिन्न पुरोहित अपने पास विभिन्न मन्त्रों के संग्रह रखते थे। वैदिक यज्ञों के सम्यक् ज्ञान के लिए कतिपय वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों एवं श्रौतसूत्रों का सावधानी पूर्वक अध्ययन अपेक्षित है। प्राचीनकाल में किये जाने वाले यज्ञों का वर्णन श्रौतसूत्रों में विशद रूप से पाया जाता है। श्रौतसूत्र तो वैदिक यज्ञ करने वालों के लिए मानो व्यावहारिक चर्चाएँ या पद्धतियाँ हैं जिनमें प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथों के उद्धरण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। वैदिक यज्ञ में जब तक कहा न जाए याज्ञिक को सदैव उत्तराभिमुख रहना चाहिए, पल्थी मारकर बैठना चाहिए। यज्ञिय उपकरणों (यज्ञ के उपयोग में आने वाली सामग्री, यथा कुश आदि) को पूर्वाभिमुख करके रखना चाहिए। जब तक निवीत या प्राचीनावीत ढंग से पहनने को न कहा जाए तब तक यज्ञोपवीत को उपवीत ढंग से पहने रहना चाहिए।

यज्ञों की सार्वभौमिकता

डॉ० मीरा वाणी
वरि0 प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बी.एस.वी.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

''सर्वं यज्ञमयं जगत्'', यह सम्पूर्ण जगत् यज्ञमय है। प्रकृति सहचरी के सुरम्य आंचल में निवसित मानव जीवन के कल्याणार्थ तथा स्वास्थ्यवर्द्धनार्थ यज्ञों की महत्ता सार्वभौमिक है।

भौतिकवाद के युग में मानव अपनी प्राचीनतम विद्या यज्ञों को विस्मृतप्राय करके मृगतृष्णावत् इतस्ततः भ्रमित होकर पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण कर रहा है। आज मानव गतिविधियों तथा प्राकृतिक सन्तुलन को बनाने में यज्ञ विद्या को अपनाना ज़ितान्त आवश्यक हो गया है। यज्ञों को वेदों में सर्वत्र कल्याणकारक तथा सृष्टिसंरक्षक कहा गया है। **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'** अर्थात् समस्त कर्मों में यज्ञ ही श्रेष्ठतम है। **'सर्वेषां देवानाम् आत्मा यद् यज्ञः।'** अर्थात् यज्ञ को समस्त देवों की आत्मा कहा गया है। इतना ही नहीं प्रकृति सन्तुलन की क्षमता यज्ञ में निहित है। अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर्मों को प्रदूषण निवारक माना गया है। वायु को प्रदूषित करने वाली गैसे नाइट्रोजन डाई ऑक्सांइड़, सल्फर डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड़ आदि को अग्निहोत्रादि यज्ञों के द्वारा जलवायु को शुद्ध करने की विधा प्राचीनतम है। आज वायु प्रदूषण एक गम्भीर समस्या बन गयी। जिसके कारण लोगों को श्वास सम्बन्धी बीमारियों से लेकर, फेफड़े के कैंसर व हृदय सम्बन्धी अनेकों बीमारियों का शिकार होना पड़ रहा है। इन समस्याओं के मूलरूप से समाधान हेतु अग्निहोत्रादि यज्ञों को प्रत्येक घर में करने पर बल देना चाहिए। तभी मनुष्य स्वस्थ तथा दीर्घायु को प्राप्त होगा। **'जीवेम शरदः शतम्।'** अ0 19/67/2 टाटलिक एवं त्रिले नामक विद्वानों के अनुसंधान से यह बात सिद्ध हो गयी है कि हवन सामग्री के प्रज्वलित होने से उत्पन्न धूप, गैस आदि से अनेक प्रकार के कीटाणुओं का सर्वनाश होता है तथा वातावरण शुद्ध होता है। यज्ञानुष्ठान से प्रकृति सन्तुलन बना रहा है तथा पर्जन्य वृष्टि द्वारा विश्व के समस्त जीव जन्तुओं का पोषण होता है। यज्ञाग्नि से एक हजार की विद्युत निकलती है जो आकाश तत्व से मिलकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म वरमाणुओं के रूप में हमारे शरीर को लाभान्वित करती हैं। विश्व सृजक एवं पालन में यज्ञ प्रक्रिया के ही प्रतिफल है। यज्ञ सृष्टि नियमों के क्रियान्वयन में सहायक भी हैं।

अतः यज्ञानुष्ठान करने से त्रिविध तापों- आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक, का विनाश होकर जगत् में सुख-शान्ति-समृद्धि का साम्राज्य होगा। ''निष्कामः कुरुते यज्ञं स परंब्रह्म गच्छति।''

वैदिक यज्ञ विज्ञान

डॉ. वत्सला उपाध्याय
व्याख्याता
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़, राजस्थान

यज्ञ वैदिक संस्कृति का प्रधान अङ्ग है। वेद हिन्दुओं के सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऐसी मान्यता है कि मानव जीवन दुर्लभ है। दुर्लभ मानव तन धारण करते ही मानव तीन ऋणों का ऋणी हो जाता है। ये ऋण त्रय है-ऋषि ऋण, देव ऋण, एवं पितृ ऋण। इन ऋणों से क्रमशः ब्रह्मचर्य के द्वारा, यज्ञ के द्वारा एवं संतति के द्वारा मानव उऋण हो पाता है। ऋण त्रय के अपाकरण के लिए निर्धारित कर्म से ही गतिमान होता है। तीनों का अपना अपना महत्व है।

यज्ञ एक महत्वपूर्ण कर्म है। वेदों में कर्मकाण्ड में ही यज्ञादि क्रियाओं का प्रयोग होता है। यज्ञ ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। यज्ञों में वेद मन्त्रों का प्रयोग (उच्चारण) किया जाता है। मंत्रों का सार्थक प्रयोग यज्ञों में होता है। यज्ञ ही वेद मन्त्रों की प्रयोगशाला है। वेद और यज्ञ एक दूसरे के पूरक है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र **'अग्निमीळे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्'** में यज्ञ पद पहले आया है। मनुस्मृति (1/25) के अनुसार यज्ञ सिद्धि हेतु प्रभु ने तीन वेदों की रचना की अतः सिद्ध होता है कि यज्ञ वेद से भी प्राचीन है या वेद और यज्ञ दोनों साथ साथ अस्तित्व में आए होगें।

यज्ञ को ऋषियों ने सार्वभौम बनाया। यज्ञ को व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि न करके 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना से किया जाता था। यज्ञ में दी जाने वाली आहुती सम्बन्धित लक्ष्य तक अग्नि के द्वारा पहुँचायी जाती है। इससे सम्पूर्ण वातावरण भी परिष्कृत हो जाता है। सभी लाभान्वित होते हैं। यज्ञ के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्राप्तियाँ सम्भव हैं। यज्ञ से ही सृष्टि चलती है। यज्ञ के द्वारा ही समस्त संसार का कल्याण होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है-'यज्ञोऽपि तस्यै जनतायै कल्पते'। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है। जो यज्ञ के द्वारा प्राप्त न हो सकें। अतः यज्ञ मानव जीवन के लिए अति आवश्यक है।

संस्कृतिः

भारतीय संस्कृतौ वृक्षाणां पवित्रता

डॉ. राम सुमेर यादव
रीडर, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय साहित्ये संसारवृक्ष: उपमारूपेण परिगणित: वनेषु निसर्गस्य सानिध्ये प्राचीन मानवस्य हृदये वृक्षान् प्रति न केवलं स्नेह: अपितु श्रद्धापि जागृता परिलक्षते। तं केवलं सांसारिकं मित्रं न आसन् देवानां आश्रयत्वात् आत्मनां आधारा: अपि आसन्। प्रत्यंका संस्कृति: विकासस्य प्रथमावस्थायां अनेकान् वृक्षान् श्रद्धया चिनोति। भारते इमे वृक्षा: सन्तिपिप्पल: वट उदुम्बरश्च।

''ऋग्वेदे'' सुपलाशवृक्षस्योल्लेख: प्राप्यते। यस्मिन् मधुरं पिप्पलफलं भवति। तथा च यत्र द्वौ सुपर्णधारिणौ खगौ निवसत:। (मुण्डक 3/1/1) ईश्वरस्य मानवात्मन: तुलना पिप्पले उषित्वा तस्य फलं भोक्तृभि: पक्षिभि: सह करोति। अपर: मधुरं फलं अत्ति। तत्रैव प्रथम: अखादन्नपि दिव्यतन्द्रायां निवसति। अथर्ववेदे'' अश्वत्थ: (वृक्ष:) देवतानां गृहमि विद्यते। बालगङ्गाधरेण गीता रहस्ये कथितम् यत् पिप्पल: सूर्यस्य वृक्ष: अस्ति। न्यग्रोध: वरूणस्यास्ति। प्राचीन भारतीय परम्परायां अश्वत्थ वटश्च संसारवृक्षस्य प्रतिनिधित्वेन स्वीकृतौ। श्वेताश्वरोपनिषदि केवलं संसारवृक्ष: उल्लिखित:। महाभारतं मार्कण्डेय ऋषे, कथां उद्घाटयति। यस्मिन् ब्रह्मतत्त्वं प्रलयकाले शिशुरूपे अव्यये न्यग्रोधे पश्यति। चीनदेशात् समागत: ह्वेनसांगमहोदय: य: सप्तम्यां शताब्दौ भारते आसीत्। स: गङ्गायमुनयोर्सङ्गमे प्रयागे स्थितस्य प्राचीन वटस्य वर्णनं करोति। स: अक्षयवटत्वेनाभिधीयते। आद्यापि स्थित: पूजितश्च। पद्मपुराणानुसारेण भगवान् विष्णु: एकदा अम्बरीश ऋषिणा अभिशप्तो भूत्वा अश्वत्थ- वृक्षरूपेण जन्म लेभे। गीतायां भगवान् श्री कृष्ण: ''अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणाम् इति निगद्य तस्य महत्त्वं प्रकटयति। श्रीमद्भगवदगीता महाभारते दशमपर्वणि उल्लिखिता-

ऊर्ध्वमूलमध: शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।

तथा च -

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला:।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि, कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। इति

वेदेषु मानव जीवनदर्शनम्

प्रवीण कुमार
शोध छात्र
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

वेदा: विविधज्ञानविज्ञानराशय: कर्तव्याकर्तव्यबोधका: जीवनपथप्रदर्शका: आचारसंचारका: विश्वस्य पुरत: विराजन्ते। मुख्यत्वेन वेदशब्द: ऋग्यजुसामाथर्वनामभि: प्रचलितानां चतसृणां वेदसंहितानां बोधक:। वेदोऽखिलो धर्ममूलम् इति समुद्घोषयता मनुना समग्रस्यापि वेदनिधेर्धर्माधाररूपेण प्रतिष्ठापिता:। मानवस्याखिलं जीवनं कृत्यजातं वेदमनुसृत्यैव प्रवर्तते तस्मादेव कारणात् आचारसंहितारूपेण वेदा: प्रमाणीक्रियन्ते।

सर्वेऽपि विद्वद्तल्लजा: दार्शनिका: आचारव्यवहारशिक्षणप्रवरा: स्मृतिकारा:, शब्दतत्वमीमांसका: वैयाकरणा: अन्ये च विविधशास्त्रकारा: वेदानां परमप्रामाण्यमङ्गीमकुर्वन् वेदेषु, मानवजीवनदर्शनत्वानि परिपश्यन्ति। वेदानांमाचारशिक्षादृष्ट्या नैतिकजीवनदर्शनरूपेण चातिमहत्वपूर्ण स्थानं वर्तते। कर्तव्यबोधकरूपेण तेषां परमं प्रामाण्यं विद्यते। किं कर्म किमकर्मेति इति प्रश्ने समुपस्थिते वेदा एवादर्शरूपेण प्रस्तूयन्ते। अत एव मनुनोच्यते -

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मम् अनुतिष्ठन् हि मानव:।
इहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।। (मनु० २.९)

अत एव वेदेषु पदे पदे मानवस्य जीवनदर्शनं कार्यकलाप:, आचारविचार: नैतिकं सामाजिकं च चरितं प्राप्यते। मानवानां विविधजीवनकर्तव्यादीनां निर्धारणं तत्र विशदतयोपलभ्यते।

नैतिकता का मूलाधार-ऋग्वेद

डॉ (श्रीमती) मनोरमा गुप्ता
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग
कानपुर विद्या मन्दिर महिला (पी0 जी0) महाविद्यालय, कानपुर

ऋग्वेद क्रान्तद्रष्टा ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा की पावन परिणिति है। धर्म की मूलनिधि है। देवीवाक् दिव्य मनीषा हैं, विश्वजनीन तथा सार्वकालिक ज्ञान है। मानव सभ्यता, संस्कृति तथा ज्ञान का आदि सूर्योदय वेद से ही हुआ है।

ऋग्वेद में मानव जीवन की सुख समृद्धि का आधार ''ऋत'' को माना है। राष्ट्र की प्रतिष्ठा का आधार ऋत ही है। ऋत शब्द परमात्मा के शाश्वत विधान के साथ साथ नैतिक मूल्यों का भी वाचक है, जिस पर चलकर मानव देवत्व एवं अमृतत्व की प्राप्ति कर सकता है। ऋग्वेद में 'सत्य' को इतना महत्त्व दिया गया है कि उसे विश्व का नियन्त्रण करने वाला माना गया

''ऋतं च सत्यं चाभीद्धातपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।[1]

''अहिंसा परमोधर्मः'' का सिद्धान्त ऋग्वैदिक देन कहा जा सकता है। ऋग्वेद 1/114/1 में बाल, वृद्ध, माता-पिता तथा पशुओं की भी हिंसा का सर्वथा निषेध है।[2] 'विश्व बन्धुत्व' की भावना का मूल वेद है- संगच्छध्वं संवदध्व से वो मनांसि जानताम्'' आदि अन्त्रों में एकता, समानता तथा वैदिक आदर्श ही संसार को एक परिवार की भावना में बांधने का मूलमन्त्र है।

1- ऋग्वेद 10/160/1 2- वही 07/67/5

वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता

शिव शंकर स्वामी
शोधछात्र
बी.जे.एस. रामपुरिया जैन महा0, बीकानेर

भारत की आत्मा भारतीय संस्कृति में निहित है। संस्कृति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वेद में किया गया है। वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। यह वैदिक संस्कृति सबसे प्रथम की है। अतः वह 'विश्वास' अर्थात् समस्त संसम द्वारा वरण करने योग्य हैं। सभ्यता और संस्कृति मानव विकास के दो पक्ष हैं। वन्य जीवन से लेकर खेतिहर, औद्योगिक और अणुयुग की भौतिक समृद्धि का उत्तरोत्तर विकास सभ्यता की लम्बी कहानी है। निःसन्देह वेदों की ऋचाएं संसार की जीवन-पद्धति सम्बन्धी आध्यात्मिक अनुभूतियों एवं नैतिक नियमों की आदि स्रोत हैं। ऋचा का मूल अर्थ 'स्तुति' है। वेदों द्वारा प्रतिपाद्य ज्ञान त्रिकाल अबाधित है। वह काल-भेद से परिवर्तित नहीं है। उससे परे है। वेद अपरिमित ज्ञान राशि के अमूल्य एवं अक्षय भण्डार हैं। वे आर्यों के उदात्त धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं सभ्यता के विश्व भर में सबसे पहले और प्रमुख आधार है।

ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त के यज्ञ से विश्व की उत्पत्ति बताई गई है। अतः मूल सृष्टि ब्रह्मावर्त अथवा आर्यावर्त्त अर्थात् भारत में हुई। आदिकाल से भारत भूमि आर्य भूमि कही जाती है। यह वेद की इस उक्ति से स्पष्ट है जो ईश्वर के आदेश के रूप में है-मैंने यह भूमि आर्यों के लिए दी है। यह कथन स्पष्ट करता है कि सबसे पहले ईश्वर ने जिन मानवों को उत्पन्न किया है वे आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष कहलाए और उनको ही भूमि प्रदान की तथा उनको श्रेष्ठ मनुष्य बनकर रहने की व्यवस्था की। आर्यावर्त्त शब्द का अर्थ ही-आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का देश है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्माजी सृष्टि के स्रष्टा माने जाते हैं। सृष्टि इस देश में हुई। अतएव आर्यावर्त्त के अतिरिक्त इसे ब्रह्मावर्त्त भी कहा जाता था। कालान्तर में जनपदों की स्थापना के उपरान्त उनमें से कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल और शूरसेन जनपद ब्रह्मर्षि देश कहलाते थे। इन दोनों देशों के निवासी आर्य कहलाए।

वैदिक संस्कृति का आदर्श

आभा तिवारी
शोधछात्रा, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

किसी भी देश या समाज की पहचान उसकी संस्कृति से ही होती है। संस्कृति का अर्थ है उसकी जीवन शैली या समाज में किये जाने वाले उसके व्यवहार जिससे सामान्य जन या उसके स्वजन और अन्त में पूरा राष्ट्र प्रभावित होता है। संस्कृति ही उसकी पहचान को एक पृथक् स्वरूप प्रदान करती है जिससे वह समाज में स्थान पाता है।

हमारा देश आर्यावर्त आर्यो की वैदिक संस्कृति से ओत प्रोत था। वेद ही उनके जीवन का आधार था उनके सम्पूर्ण क्रियाकलाप वेदानुकूल ही थे। अर्थात् 'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'। हम यह भी कह सकते हैं कि आर्यो की संस्कृति धर्म प्रधान संस्कृति थी। धर्म से च्युत हो जाने पर उन्हें राक्षस की संज्ञा दे दी जाती थी। मातृदेवोभव, पितृदेवोभव, आचार्यदेवोभव. अतिथिदेवोभव, नारी सम्मान, इत्यादि वैदिक संस्कृति के मूल अंग है। ऋग्वेद प्राचीन भारतीय संस्कृति का द्योतक आकर ग्रन्थ है। इसमें भारतीय संस्कृति के सभी तत्व धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और दार्शनिक सम्मिलित हैं। ऋग्वेद के अध्ययन से इन सभी बातों पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। इसमें विभिन्न विरोधी गुणों का समन्वय है। इसमें एक ओर धर्म है, तो दूसरी और राजनीति, एक ओर अर्थ है, तो दूसरी ओर मोक्ष, एक ओर समाज सर्वस्व है तो दूसरी ओर व्यक्ति, एक ओर समृद्धि अभीष्ट है तो दूसरी ओर त्याग, एक ओर समस्यायें हैं तो दूसरी ओर समाधान, एक ओर राजतन्त्र है तो दूसरी ओर जनतंत्र।

ऋग्वेदकालीन धर्म यज्ञ-प्रधान है। इसमें विविध देवों - द्युस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय, और पृथ्वीस्थानीय की स्तुति और उपासना वर्णित है। यज्ञों में इन देवों का आह्वान किया जाता था। यज्ञ देवों को प्रसन्न करने का प्रमुख साधन था। यज्ञ में घी, सामग्री, अन्न, सोम, क्षीर, समिधा डाली जाती थी। यज्ञों में पशु-मांस सर्वथा वर्जित था। यज्ञों से प्रसन्न होकर देवगण यजमान की सभी कामनाओं की पूर्ति करते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वेदकालीन (वैदिक) संस्कृति का उच्चतम आदर्श है।

वेद और 'कामायनी' की 'श्रद्धा'

डॉ० मृदुल जोशी
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हरिद्वार

जयशंकर प्रसाद कृत कामायनी हिन्दी की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक है। प्रलयोपरान्त सृष्टि की नवल सर्जना में संलग्न मनु, श्रद्धा व इड़ा प्रमुख भूमिकाओं में दृष्टिगत होते हैं। श्रद्धा की उपस्थिति दो रूपों में है एक ओर सशक्त नायिका के रूप में तो दूसरी ओर मानव जाति की प्रबल प्रेरणादायिनी भावना के रूप में। वेदों में भी मानसिक भावना तथा मानसिक वृत्तियों के प्रतिनिधि रूप में नवीन देवताओं की उपस्थिति है। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में श्रद्धा कामायनी का अनुपम वर्णन मिलता हैं-

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि। (ऋ० में १०/ सू० १५१/१)

(श्रद्धा से यज्ञाग्नि का प्रजज्वलन होता है। श्रद्धा के साथ यज्ञ में हवि दी जाती है। ऐश्वर्य्य के ऊर्ध्व स्थान पर निवास करने के लिए हम लोग वचन द्वारा श्रद्धा की स्तुति करते हैं।) आचार्य बलदेव उपाध्याय यहाँ 'अग्नि' को 'ज्ञानाग्नि' का प्रतीक मानते हैं।

श्रद्धा की स्तुति देवता रूप में इस प्रकार की गई हैं-

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।। (ऋ० मं १०/१५१/५)

(हम प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में श्रद्धा का आह्वान करते हैं। हे श्रद्धे! तू हमें इस लोक में श्रद्धायुक्त कर।)

श्रद्धा का शाब्दिक अर्थ है- 'सत्यं धीयते यस्याम्' अर्थात् जिसमें सत्य प्रतिष्ठित है। वस्तुतः श्रद्धा का तात्पर्य है- किसी वचन विशेष में, कार्य विशेष में या व्यक्ति विशेष के प्रति हृदय से आदर की भावना। श्रद्धा के बिना संसार का कोई भी कार्य उत्कृष्ट रूप से निष्पादित नहीं हो सकता।

वेद में एक अन्य सूक्त भी कुछ इस प्रकार हैं-

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धा हृदय्यऽयाकूत्वा श्रद्धया विन्देते वसु।। (ऋ० मं. १०/सू० १५४/४)

जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य कामयनी में 'श्रद्धा' एक केन्द्रीय पात्र के रूप में है। इसका स्वरूप महती प्रेरणादायिनी शक्ति के रूप में मानव-मन को आध्यात्मिक विकास के उच्चतम शिखर अमरत्व की ओर उन्मुख करता दृष्टिगत होता हैं।

वैदिक संस्कृति में जीवन का स्वरूप

डॉ. श्यामा व्यास
व्याख्याता
श्री नेहरु शारदा पीठ महाविद्यालय, बीकानेर

वैदिक जीवन दर्शन का केन्द्रिय चिन्तन है सत्य, प्रकाश और अमरत्व की खोज। अत: मानवीय जीवन पद्धति एवं जीवन की व्याख्या सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान, सदुपदेश एवं सत्प्रेरणाएँ वैदिक ऋचाओं में निहित हैं। वैदिक संस्कृति का जीवन यज्ञमय, प्रगतिशील, जागरूक, व्रत दीक्षित, सत्यमय, आध्यात्मिक, निष्पाप, मधुर, सौहार्दमय, तेजस्वी, यशस्वी और शांति का अनुगामी है। वैदिक जीवन की कतिपय अन्य विशेषताएँ दानशीलता, कर्मण्यता, आशावाद, तपस्या, ब्रह्म क्षत्र का समन्वय, आसुरी शक्तियों पर विजय आदि भी हैं, जिनकी प्रेरणा वेद हमें निरन्तर दे रहे हैं।

वैदिक जीवन दर्शन में गार्हस्थ्य-सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माता पिता, भाई बहिन, पति पत्नी आदि के समुदाय का नाम कुटुम्ब है। उसके साथ सर्वत: प्रथम हम सब मानवों का कैसा धर्ममय प्रशस्त आदर्श होना चाहिये, इसके लिये वेद उपदेश देते हैं - कि अपने अपने माता पिता के प्रति हम सब मानवों का स्वस्तिमय सद्भाव एवं प्रशस्त आचरण होना चाहिये। वेदों में पति एवम् पत्नी के मध्य परस्पर प्रेम एवम् दायित्व का भी उपदेश है। परिवार के सभी सदस्य भाई बहन, सास बहू, देवरानी जिठानी आदि भी अच्छे मनवाले बनकर परस्पर शुभाचरण रखते हुए सुख सम्पादक भद्रवाणी ही बोलते रहें।'

वेद साहित्य में नीति-विषयक दर्शन

श्रीमती भावना स्वामी
शोधछात्रा संस्कृत विभाग
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

वैदिक साहित्य में नीति के लिये 'ऋत' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है 'नियम' अथवा 'सुव्यवस्था'। हमारे ऋषियों ने अपनी उग्र तपस्या, ऋतम्भरा प्रज्ञा, सहजबोध तथा ध्यान द्वारा प्राप्त निर्मल चेतना और अनुभव के द्वारा नीति के अनेक मौलिक तत्वों का साक्षात्कार किया। नैतिक आचरण का वर्गीकरण सामान्य, विशिष्ट, नैमित्तिक, आपद्धर्म आदि भी वैदिक दर्शन की मौलिक सूझ है। लौकिक और परलौकिक-उभयलोक की कल्याण कामना से जो निर्णय या सिद्धान्त लिया जाता है वही नीति सुनीति कही जाती है। विषय-भेद से नीतियाँ भी अनेक हो जाती

हैं राजनीति, दण्डनीति, अर्थनीति, वाणिज्यनीति, [illegible] तथा व्यवहारनीति आदि। धर्मशास्त्रग्रन्थों में आचाराध्याय, व्यवहाराध्याय तथा प्रायश्चित्ताध्याय आदि जो विभाजन किये गए हैं, वे तत्तद्विषयविशिष्ट नीतियाँ ही हैं।

वैदिक दर्शन में नीतिशास्त्रीय सूत्र प्रचुर मात्रा में है। सत्य, धर्म, अंहिसा, परिवार, समाज, राष्ट्र, श्री वृद्धि, जन-कल्याण, संगठन, अभ्युदय तथा विश्वबन्धुत्व आदि विषयों से सम्बद्ध वैदिक नीतिसूत्रों का विशेष महत्त्व है। इसके अतिरिक्त वेदों में प्रतिपादित राजनीतिक आदर्शों में राष्ट्र रक्षा की प्रभूत प्रेरणा भी समाहित है। वेदोक्त राजनीतिक आदर्शों की सर्वाधिक मुख्य विशेषता है राज्यशक्ति निरकुंश एंव स्वेच्छाचारी न होकर नियन्त्रित एवं संयमित होनी चाहिए। इन वैदिक मन्त्रों का आशय यह है कि राष्ट्र की रक्षा के लिये तपस्या, ब्रह्मचर्य और साधन की महती आवश्यकता है। यदि व्यक्ति-विशेष का जीवन संयम एवं साधन के अभाव में असफल हो जाता है तो व्यक्ति समूह, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिये राष्ट्रनायकों एवं नागरिकों द्वारा संयम तथा नियमानुकूल आचरण और भी अधिक वाञ्छनीय है। इन मन्त्रों के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि 'राष्ट्र' एवं 'विधि के शासन' (Rule of Law) की अवधारणाएँ यूरोपीय सभ्यता की देन नहीं, वरन् भारतीय धरोहर हैं।

वैदिक मन्त्रों की महानारदीयपुराण में स्थिति

डॉ० महेश दत्त शर्मा

उपाचार्य एवं अध्यक्ष संस्कृत-विभाग,

एन.एम.एस.एन. दास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदायूँ

समस्त शाश्वत धर्मों और मानवीय वैज्ञानिक स्थितियों का निरूपण करते हुए पतञ्जलि का कथन है कि अचेतनपदार्थों में भी यह स्थिति देखी जाती है कि जिस तरह ऊपर को फेंका गया लोष्ट (मृत्पिण्ड) वायु के प्रवाह में जाकर न तो तिरछा जाता है और न ऊपर को चढ़ता है; क्योंकि वह ढेला पृथिवी का विकार है, अतः अपने स्थानीय सम्बन्ध से पृथिवी की ओर ही जाता है। इसी तरह जो ये अन्तरिक्ष में विद्यमान सूक्ष्मजल (जल-बिन्दुएँ) हैं उसी जल का विकारभूत धूम (कुहरा, नीहार) है, वह धूम निवात आकाश में न तो तिरछा जाता है और न नीचे की ओर जाता है, परन्तु जल का विकार होने से स्थानीय सम्बन्ध के कारण [illegible] अर्थात् जल समुदाय समुद्र की ओर ही जाता है। इसी प्रकार अग्नि (ज्योति) का विकार [illegible] (अर्चि, स्फुलिङ्ग आदि) निवात आकाशदेश में अच्छी तरह प्रज्वलित और चमकता [illegible] न तो तिरछा जाता है न नीचे की ओर बढ़ता है, अग्नि का विकार ज्योति की ओर [illegible] ऊपर विद्यमान सूर्य की ओर ही स्थानीय सम्बन्ध से जाता है, सूर्य के प्रकाश में मिल

जाता है। यहाँ आचार्य पतञ्जलि का कथन इस प्रकार है

"अचेतनेष्वपि तद् यथा। लोष्ट: क्षिप्तो वायुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्छति नोर्ध्वमारोहति पृथिवीविकार: पृथिवीमेव गच्छत्यान्तर्यत:। तथा या एता आन्तरिक्ष्य: सूक्ष्मा आपस्तासां विकारो धूम: स धूम आकाशदेशे निवाते नैव तिर्यग् गच्छति नावागवरोहति अब्विकारोऽप एव गच्छत्यान्तर्यत:। तथा ज्योतिषो विकारोऽर्चिराकाशदेशे निवाते सुप्रज्वलितो नैव तिर्यग् गच्छति नावागवरोहति ज्योतिषो विकारो ज्योतिरेव गच्छत्यान्तर्यत:"। ('स्थानेऽन्तरतम:' पा.सू. 1.1.50 पर महाभाष्य)

हमारे द्वारा निर्दिष्ट महाभाष्य के उक्त सन्दर्भ का आशय यह है कि वेदांत्तरवर्ती समस्त ज्ञानधाराएँ वेदमूलिका हैं, वेदानुप्राणिता हैं। भले ही कुछ विद्वान् पुराणग्रन्थों की वेदानुगामिता में अपना भिन्न मत रखते हों अथवा वे अल्पांशतया पुराणों के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हों, परन्तु मेरा यह वैयक्तिक मत है कि प्राय: अधिकांश पुराण वेदमन्त्रों और वेदसिद्धान्तों के अनुगामी हैं।

लोक संग्रह रूपी कर्म रहस्य

डॉ० उदय सरकार
श्री गुरु विरजानन्द गुरुकुल महाविद्यालय
करतारपुर, जालन्धर

संसार मानवों की कर्मभूमि है। इस कर्मभूमि में सभी मानव दु:खों से आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये कर्म करना अनिवार्य है। इसके साथ साथ यह भी सत्य है कि इस कर्मभूमि में मानव कर्म करने में स्वतन्त्र है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि कर्म कैसे करने चाहिएँ, आसक्तियुक्त कर्म या आसक्तिरहित कर्म? यदि आसक्ति युक्त कर्म करते हैं, तब हमें कर्म बन्धन में फँसकर उन कर्मफलों को भोगने के लिये इस संसार में रहना पड़ेगा तथा मृत्यु के पश्चात् दूसरी बार आना पड़ेगा। अर्थात् जन्म मरण के चक्र में बँध जाना पड़ेगा। इस तरह के कर्म से हमें मुक्ति नहीं मिल सकती।

प्रत्येक मानव को ऐसा कर्म करना चाहिए जन्म-मरण रूपी चक्र से बाहर होकर मुक्तात्मा में अनन्त आनन्द का अनुभव कर सके। कर्म के विषय में ईशोपनिषद् में कहा गया है तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्। यजु0-40/1 श्रुति में उपदेषित मन्त्र की भावना को समझकर गीताकार कहते हैं-

सक्ता कर्मण्यविद्धांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्यात् विद्वांस्तथासक्त: चिकीर्षु: लोकसंग्रहम्।। गीता-३/२५

यहाँ यह निर्देश दिया गया है कि निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। किसी प्रकार आसक्ति युक्त कर्म करना अर्थात् कर्म बन्धन में फँसना। आसक्तिहीन कर्म को गीताकार ने

लोकसंग्रह नामक संज्ञा से विभूषित किया है। ईशोपनिषद् के दूसरे मन्त्र में कहा गया है-

कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।यजु०-४०/२

इस श्रुतिवचन के अनुसार कर्म बन्धन से मुक्त होने के लिए कर्म करना चाहिए न कि कर्मफल भोग करने के लिए कर्म करना चाहिए। कर्म करेंगे तो फल अवश्य भोगेंगे। चाहे शुभ कर्म का फल हो या फिर अशुभ कर्म का फल हो। कर्म का फल तो अवश्यमेव भोगना है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि लोकसंग्रह में नैतिकता की स्थापना कैसे संभव है? क्योंकि मनुष्य सामाजिक जीव, समाज में रहना नियत नियति है, कृतज्ञ होकर कर्म करना ही इसका परम ध्येय है। इस प्रकार ध्येय से अपना अस्तित्व संकट में पड़ जाता है, अपना अस्तित्व न होने से समस्त नैतिकता सामाजिकता आध्यात्मिकता सब व्यर्थ प्रतीत होती है।

इस समस्या का निराकरण करने के लिए कहा जा सकता है कि दूसरों का उपकार करके इहलौकिक संसार में तथा पारलौकिक संसार में जाने के लिए पाथेय रूप में लोकसंग्रह प्राप्त करना नियत है। यह भारतीय कर्म, ज्ञान एवं संस्कृति की विशेषता है। कर्म निस्वार्थभाव से करके ही परमानन्द को प्राप्त कर सकते हैं। अनन्त आनन्द ही मनुष्य को अस्तित्ववान् बना देता है। इस प्रकार अस्तित्वान् मनुष्य, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जगत् में अपने सभी प्रकार के दुःखो से मुक्त हो सकता है। यही लोकसंग्रह का परम उद्देश्य है।

यजुर्वेद में वामनावतार का निरूपण

रोशी गुप्ता
शोधछात्रा संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

अवतारवाद की गवेषणा से सभी मानव परिचित हैं। इस जगत् में अशुभ एवं अनैतिक प्रवृत्तियों के कारकों के विनाश के लिए जगन्नियन्ता परमेश्वर ने सभी कालों या युग विशेष में अपना नीवन रूप धारण कर पृथ्वी में नैतिक मूल्यों की स्थापना की थी। नैतिक मूल्यों की स्थापना के क्रम में विष्णु ने बलि को छलने के लिए वामन रूप भी धारण किया था, और तीन पगों से तीन लोकों को नापा था। यह कथा वामनपुराण में विशिष्ट रूप से गवेषित है लेकिन यह कथा यजुर्वेद (5/15) में भी वर्णित मिलती है यथा-

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढस्य पाँसुरे स्वाहा ।। लेकिन वहाँ पर न तो वामन का संकेत है, न बलि का और न ही छलने का। केवल तीन पगों के उल्लेख मात्र से महीधर ने अवतार का संकेत माना है, जबकि भाष्यकार उव्वट इस प्रसंग को अवतार की संज्ञा नहीं देते। आचार्य महीधर अपने भाष्य में लिखते

हैं "विष्णु त्रिविक्रमावतारं कृत्वा इदं विश्वं विचक्रमे, विभज्य क्रमते स्म। तदे वाह। त्रेधापदं निदधे भूभावेकं पदमन्तरिक्षे द्वितीयं दिवि तृतीयमिति क्रमादग्निवायु सूर्यरूपेणटत्यर्थः।" परन्तु उव्वट एवं स्वामी दयानन्द यजुर्वेद में वर्णित उपर्युक्त संदर्भ को अवतारवाद की मीमांसा नहीं मानते। वास्तव में पौराणिक कथा की इस विद्या को यदि मान्यता दी जाये, तो यही निष्कर्ष निकला है कि वामनावतार के स्रोत यजुर्वेद से ही निरूपित किये गए है, भले ही भाष्यकारों ने अपनी विचारधारा के अनुसार इस प्रसंग को अलग-अलग रूप दिया हो। सर्वांग विवेचन शोधपत्र में अभिहित हैं।

वेदों में काम

डॉ० प्रणव शर्मा
प्राध्यापक हिन्दी
उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत

वेद सम्पूर्ण वाङ्मय का बोधक शब्द है। ऋषियों ने जिस परमात्मस्वरूप ज्ञान का साक्षात्कार किया वह दीप्तिपुञ्ज वेद भारतीय ज्ञान-गंगा का उत्स है, जो सर्वप्रथम ऋषि महर्षियों ने खोजा अथवा साक्षात्कृत किया।

वेद अपौरुषेय और अनादि है इसलिये वे स्वयंभूत, स्वयं प्रकाश और स्वतः प्रमाण है। भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। अपने प्रतिभा चक्षु के सहारे साक्षात्कृत धर्म ऋषियों के द्वारा अनुभूत आध्यात्मशास्त्र के तत्वों की विशाल शब्दराशि का ही नाम वेद है। लौकिक वस्तुओं का साक्षात्कार करने के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है उसी प्रकार अलौकिक तत्वों के रहस्य को जानने के लिए वेद की उपयोगिता है। इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को निर्दिष्ट करने वाला ग्रन्थ वेद ही है। वेद का वेदत्व इसी में है कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है।

'सर्वज्ञानमयो हि सः' वेदों को सभी विद्याओं का आधार माना जाता है। वेदों में दार्शनिक सिद्धान्त, राजनीति, समाजशास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा विविध कलाओं का अनेक स्थानों पर वर्णन हैं।

ऋग्वेद के पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त में पुरूरवा और उर्वशी का सम्वाद है। पुरूरवा मनुष्य है और उर्वशी उसकी प्रेमिका अप्सरा। दोनों का चार वर्ष प्रणय सम्बन्ध रहता है। उनके आयु नामक पुत्र होता है। अन्त में उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर चली जाती है। पुरूरवा शोकाकुल होकर आत्महत्या के लिए उद्यत होता है। उर्वशी उसे समझाती है और आत्महत्या करने से रोकती है। उसका कथन है कि स्त्रियों का प्रेम चिरस्थायी नहीं होता और वे केवल धन लोलुप होती हैं

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति, सालावृकाणां हृदयान्येता।। -ऋग्वेद १०-९५-१५

अन्यत्र, यम और यमी भाई-बहिन हैं। यमी, यम से सृष्टि के लिए प्रणय की याचना करती हैं। यम इसे अनैतिक और अनुचित बताकर इस प्रार्थना को अस्वीकार कर देता है :

पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् -ऋग्वेद १०-१०-१२

श्यावाश्व सूक्त (ऋग्वेद 5-61) में श्यावाश्व और राजा रथवीति की कन्या का प्रणय वर्णन है। श्यावाश्व रथवीति की कन्या से प्रेम करता है, किन्तु रथवीति की पत्नी किसी सुयोग्य विद्वान् से अपनी कन्या का विवाह कराना चाहती है :-

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।। ऋग्वेद १/१२४/७

अर्थात् जिस प्रकार मातृविहीन कन्या वस्त्रालंकार के लिए पिता का आश्रय लेती है अथवा विधवा स्त्री पति की सम्पत्ति में अपना भाग लेने के लिए न्यायालय की शरण लेती है, अथवा पति-सहवास की इच्छा करने वाली स्त्री, सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित हो पति के समीप जाती है।

अन्यत्र सृष्टि की उत्पत्ति होने के समय सबसे पहले वह काम अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुई। जो परमेश्वर के मन में सबसे पहला सृष्टि का बीज रूप कारण हुआ अस्तित्व रूप से विद्यमान जगत् के बन्धन के कारण को कान्तदर्शी ऋषियों ने अपनी बुद्धि से हृदय में विचार कर भाव से विलक्षण अभाव में खोजकर पाया :-

काम स्तदग्रे समवर्तताधि
मनसोः रेतः प्रथमम् यदासीत्।
सतः बन्धुम् असति निरअविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयः मनीषा।।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानव मात्र से सम्बन्धित कर्तव्यों का ज्ञान कराने के निमित्त सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ ''वेद'' ही हैं। इसी कारण वेदों को भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत माना गया है। यज्ञो पर अटूट विश्वास, एकदेवतावाद, एकपत्नीव्रत, निष्काम-कर्म, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्ञान एवं कर्म मार्गों का समन्वय, भौतिकता के प्रति उदासीनता, मानव जीवन का प्रधान लक्ष्य चतुर्थ पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि का ज्ञान वेदों से अथवा वेदों के आधार पर रचित वैदिक साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थों द्वारा ही हमें उपलब्ध होता है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

प्रभाकान्त त्रिपाठी
गनपत सहाय पी0जी0 कॉलेज, सुलतानपुर

वेद विश्व का सर्वोच्च और अनादि ज्ञान है जिस शब्दात्मक वेद को सुनते और पढ़ते हैं यह यद्यपि भौतिक और देशकाल की सीमा में आबद्ध है, पर उसका सूक्ष्म या अभौतिक रूप, जिसको परावाक् कहा जाता है, अनादि और अनन्त है। वह उसी परब्रह्म का गुण है जिसके इस पंच भौतिक विश्व का अविर्भाव होता है, जिस प्रकार विश्व का प्रत्येक स्थूल पदार्थ ब्रह्मा की तन्मात्राओं से प्रकट होता है। उसी प्रकार वहाँ का ज्ञान भण्डार भी उसी अनन्त ज्ञान स्रोत से आता है। इसी प्रकार वेदों को ईश्वरीय ज्ञान कहा गया है जिसकी वास्तविकता तत्वज्ञों की दृष्टि से असंदिग्ध है।

धार्मिक श्रद्धा रखने वाले भारतवासी ही नहीं वरन अन्य देशों के बुद्धिवादी विद्वान् भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि वेद सागर के सबसे प्राचीन धर्मग्रन्थ हैं और सृष्टि विद्या के जिन मूल तत्वों का वर्णन किया गया है वे पूर्णतः विज्ञान और तर्क सम्मत है। यह सत्य है कि उनका बहुत बड़ा भाग उपासना और कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखता है तो भी स्थान-स्थान पर विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त होने, आत्मा और जीव, समाज संगठन आदि के मूल सिद्धान्त स्पष्ट रूप में बड़ी धार्मिकता के साथ प्रतिपादित किये गए है और उनकों लक्ष्य में रखते हुये मानव जीवन के उन कर्तव्यों का निरूपण किया गया है जिनके बिना उसकी असफलता असम्भव है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह हैकि वे किसी जाति, सम्प्रदाय या देश के विचार में नहीं किये गए हैं, वरन् मानव प्रकृति को ध्यान में रखकर मनुरू मात्र के कल्याणार्थ उनकी योजना निर्मित हुई है। इसी से **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** की सार्थकता सिद्ध होती है।

ऋषि दयानन्द की धर्म विषयक वैश्विक दृष्टि

डॉ० सोहनपाल सिंह आर्य
रीडर, दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

ऋषि दयानन्द आधुनिक भारतवर्ष के उन महान मनीषियों में अग्रगण्य स्थान रखते हैं, जिन्होंने भारतीय समाज एवं राष्ट्र में उन्नयनकारी परिवर्तन का आह्वान किया और सार्वत्रिक अज्ञानता पाखण्ड एवं पराधीनता के पतनकारी आधार को छिन्न-भिन्न करके सर्वत्र सत्य, ज्ञान, धर्म

तथा स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया। ऋषि के इस महान् सुधारवादी राष्ट्रीय अभियान के मूल में वैदिक ज्ञान पर आधारित आर्ष परम्परा दृष्टिगोचर होती है। उनका कथन है ''वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं, जिनको कि मैं भी मानता हूँ और सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ''

किन्तु ऋषि की धर्म सम्बन्धी शिक्षाओं का परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय सीमाओं को पार करता हुआ वैश्विक स्तर तक विस्तारित है। उनके अनुसार 'सत्य' धर्म का प्रचार कर, सबको एकमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके, सबसे सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।'' यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत होजावे उनकी दृष्टि में सर्वत्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये है। उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं जिसका विरोधी कोई भी न हो। ऋषिवर ने इसी धर्म विषयक वैश्विक अवधारणा को वैदिक परम्परा से सम्पुष्ट किया है। जिसे वैदिक परम्परा में पुरुषार्थ चतुष्टय धर्मर्थकाममोक्षाणां सद्य सिद्धिर्भवेन्न: के अन्तर्गत आधारभूत पुरुषार्थ माना जाता है। वर्णाश्रम व्यवस्था, नित्य व नैमेत्तिक कर्म, आपद्धर्म तथा ऋणत्रय का सिद्धान्त आदिका शास्त्रीय विधान ऋषि की धर्म विषयक विश्व दृष्टि को समझने में सहायक है। किन्तु मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षणों के साथ साथ अहिंसा को भी उन्होंने स्वीकार किया है। स्वभावत: ऐसा वैश्विक धर्म न तो किसी काल और देश की सीमा में सीमित किया जा सकता है, और न मानवीय विकास की समन्वित दृष्टि से उसे अप्रासंगिक माना जा सकता है।

ऋषि के इस वैश्विक धर्म का अनुपालन करते हए मनुष्य अभ्युदय एवं नि:श्रेयस की सिद्धि कर सकताहै। जैसा कि वैशेषिक दर्शनकार का मन्तव्य है। ऋषि की धर्म विषयक प्रेरणा का मूलाधार वेद है। जिनमें सं गच्छध्वं 'सं वदध्वं समानो मंत्र समिति: समानी' के साथ-साथ श्रम,तप, व्रत, श्रद्धा, सत्य, ऋत को भी मानव मात्र के लिये समान रूप से अनुकरणीय बतलाया गया है। वीर्य, ओज, तेज, मन्यु, सहिष्णुता के लिए वैदिक प्रेरणायें देशऔर सम्प्रदायों की सीमां से परं मानव मात्र के लियि कल्याणकारी है। वर्तमान दौर में आतंक जेहादी हिंसा तथा वैश्विक पूँजीवादी उत्पीड़न के दृष्टिगत ऋषि दयानन्द की धर्म विषयक वैश्विक दृष्टि पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना आज अधिक प्रासंगिक हो गया है।

पुरातात्विक संस्कृतियों के आधार पर वैदिक कालीन अधिवास परंपरा का अध्ययन

डॉ० ममता पाण्डेय,
प्रवक्ता इतिहास विभाग,
राजकीय स्ना0महाविद्यालय, ऋषिकेश

जगमोहन भटनागर
शोध छात्र, इतिहास विभाग
राजकीय स्ना0महाविद्यालय, ऋषिकेश

अधिवास पुरातत्व (Settlement Archaeology) पुरातत्व के अध्ययन के विषय अपेक्षाकृत नवीन किंतु सुपरिचित शब्द है। मानव सभ्यता की कहानी के अध्ययन विभिन्न पहलुओं में अधिवास प्रक्रिया का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। अधिवास शब्द का आशय 'मानव के द्वारा अपने आवास के लिए समुचित आवास का चुनाव एवं उसके मूल में तत्सम्बन्धी समस्त अनुकूलताएं साथ ही संचरणगत व्यवस्थाओं को हम अधिवास प्रक्रिया के अन्तर्गत रखते हैं। वैदिक काल के तिथिक्रम से मेल खाने वाली संस्कृतियों का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि गैरिक मृदभांड संस्कृति (ओ0सी0पी0, 1700-1500बी0सी0) काले व लाल मृदभांड (बी0एंड रेड0, 1500 1200 बी0सी0), चित्रित धूसर मृदभांड संस्कृति (पी0जी0डब्लू0, 1200-800 बी0सी0), उत्तरी काली पॉलिश मृदभांड संस्कृति (एन0बी0पी0डब्लू0, 800-200 बी0सी0) संस्कृतियाँ वैदिक काल के समकालीन मानी जाती हैं। अब प्रयन यह है कि ये संस्कृतियाँ वैदिक कालीन अधिवास से किस प्रकार सम्बन्धित हैं या इनका क्या प्रभाव वैदिक समाज व संस्कृति पर हुआ।

गैरिक मृदभांड (ओ0सी0पी0) तिथिक्रम की दृष्टि से तो ऋग्वेद के समकालीन है। किंतु इस संस्कृति के आज तक ज्ञात स्थानों में से बहुत कम ही सप्तसैंधव क्षेत्र में हैं जो कि ऋग्वेदीय सभ्यता का केन्द्र था। अधिकांशतः ये स्थल गंगा-यमुना दोआब में केंद्रित हैं। अभी तक गैरिक मृदभांड संस्कृति के स्थलों से स्थायी अधिवास से कोई अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं, परन्तु फिर भी इसके महत्व को सिरे से नकारा नहीं जा सकता।

अगर हम उत्तर वैदिक कालीन पुरातात्विक संस्कतियों पर नजर डालें तो वैदिक साहित्य में उपलब्ध लोहे का उल्लेख निराधार नहीं है। उत्तर भारत में प्रयुक्त होने वाले लौह युग के आगमन के जो भी संकेत मिले हैं वे न केवल उत्तर वैदिक साहित्य की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत हैं, अपितु उसके तिथिक्रम के भी अन्तर्गत आ जाते हैं। चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृतियों से जिस ग्राम्य जीवन एवं लौह-प्रयोक्ता संस्कृतियों का आभास होता है, उसकी झलक उत्तर वैदिक साहित्य में भी मिलती है। गैरिक मृद्भांड अथवा काले व लाल मृद्भांडों की तुलना में चित्रित धूसर मृद्भांड एवं उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्भांडों की संस्कृति के अवशेष कहीं अधिक स्थायी जीवन की ओर संकेत करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं संस्कृतियों के विश्लेषण के आधार पर वैदिक कालीन अधिवास परंपरा को परिभाषित करने का प्रयास किया गया हैं।

अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में आश्रम व्यवस्था

महेन्द्र कुमार
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। चारों वेदों में अथर्ववेद अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण होने के साथ ही सांस्कृतिक, दार्शनिक आध्यात्मिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रत्न है क्योंकि संस्कृति और सभ्यता का जितना विशद विवेचन अथर्ववेद में प्राप्त होता है, उतना अन्य किसी वेद में नही। भारतीय समाज में आदि काल से ही सुचारु आश्रम व्यवस्था के दिग्दर्शन होते हैं अथर्ववेद जिसका पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है। परन्तु अथर्ववेद में चार आश्रमों में से मुख्यतया दो ही आश्रमों का वर्णन प्राप्त होता है यथा: ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थ। वहाँ आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति '' आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रमः'' अर्थात् ऐसी जीवन प्रक्रिया जिसमें व्यक्ति खूब परिश्रम करता है।

अथर्ववेद के आलोक में वर्ण व्यवस्था

परवीन बाला
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेद चतुष्टयी में अथर्ववेद का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। यह वैदिक वाङ्मय का शिरोभूषण है। यद्यपि गौरव, यज्ञोपयोगिता और मन्त्र संख्या की दृष्टि से ऋग्वेद प्रथम स्थान पर प्रतीष्ठित है परन्तु सांस्कृतिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं समाज शास्त्रीय दृष्टि से अथर्ववेद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति एवं सभ्यता का जितना विशद विवेचन अथर्ववेद में प्राप्त होता है, उतना अन्य किसी वेद में नहीं।

अथर्ववेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसमें चारों वर्णों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का एक साथ उल्लेख हुआ है। 19वें काण्ड के 6ठे सूक्त के 6ठे मंत्र में ब्राह्मण विराट् पुरुष का मुख, क्षत्रिय को बाहू, वैश्य को मध्य भाग और शूद्र को पैर कहा गया है। अथर्ववेद के ब्रह्मगवी और ब्रह्मजाया सूक्तों के अनुसार ब्राह्मण देवबन्धु है तथा उसकी वाणी श्रम और तपस्या से निर्मित होती है ब्राह्मण समाज का नेता मूर्धन्य और अधिपति है। ब्राह्मण के लिए विप्र शब्द का प्रयोग हुआ है।

वैदिक साहित्य में ऋणत्रय

ओमकार सिंह त्यागी
वरिष्ठ प्रवक्ता एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
पी.जी. कॉलेज, रासना, मेरठ

वैदिक युग में समाज के प्रत्येक नागरिक के मन पर पहिले ही से ये भाव अंकित कर दिये जाते थे कि जन्म लेते ही उस पर कितना महान् उत्तरदायित्व आ जाता है, वह पूर्णरूपेण स्वतन्त्र होकर जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। यद्यपि कर्म करने में वह स्वतंत्र है तथापि कुछ व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का उसे निश्चितरूपेण निर्वहण करना है। उसे अपने जीवन में तीन ऋण चुकाना अनिवार्य था। पितृऋण का सम्बन्ध पारिवारिक जीवन से था तथा ऋषिऋण व देवऋण का सम्बन्ध सामाजिक तथा धार्मिक जीवन से था।

यद्यपि इन तीनों ऋणों का प्रत्यक्ष उल्लेख ऋग्वेद में नहीं है, तथापि यदि तत्कालीन पारिवारिक जीवन शैक्षणिक व्यवस्था, धार्मिक जीवन आदि का आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो स्पष्ट होगा कि ऋणत्रय के अन्तर्निहित भाव तत्कालीन समाज में वर्तमान थे। ऋणत्रय का स्पष्ट उल्लेख तैत्तिरीय संहिता में आता है, जहाँ यह कहा गया है कि ब्राह्मण उत्पन्न होते ही तीन प्रकार के ऋणों से ऋणवान होता है, ब्रह्मचर्य से ऋषियों के प्रति, यज्ञ से देवताओं के प्रति व प्रजा से पितरों के प्रति। जो पुत्रवान् व यज्ञ करने वाला होता है तथा ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करता है, वह ऋणमुक्त हो जाता है। तैत्तिरीय संहिता के इन शब्दों में ऋषि ऋण, देवऋण तथा पितृऋण का महत्व एवं उनसे उन्मुक्त होने की विधि स्पष्टतया समझाई गई है। ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्ययन, विद्यादि प्राप्ति द्वारा ऋषिऋण, यज्ञों द्वारा देवऋण तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण चुकाया जा सकता है। मन्वादि स्मृतियों में भी इस सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन किया गया है।

पितृऋण, ऋषिऋण व देवऋण के सिद्धान्त के द्वारा वेदकालीन समाज में अनुशासन व नियमबद्धता द्वारा सच्चे नागरिकता के भाव को जागृत किया जाता था। समाज में कोई व्यक्ति उच्छृंखल न हो जाए अतः शुरू से ही उसे अपने कर्तव्यों व उत्तरदायित्वों का सम्यक् रूप से बोध कराया जाता था, जिनके निर्वहण में व्यक्ति अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता था। उक्त तीनों ऋणों में जीवन के विभिन्न अंगों से सम्बन्धित कर्तव्यों का पूर्ण समावेश हो जाता है। ऊपरिलिखित तीनों ऋणों से मुक्त होने के कार्य में व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का विकास हो जाता था। इस प्रकार समाज भौतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में अग्रसर हो जाता था। यही कारण हैं कि वेदकालीन समाज सर्वांगीण सांस्कृतिक विकास के मार्ग में अग्रसर हो सका। ऋणत्रय भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण मौलिक विशेषता तथा उपलब्धि है।

Dharma and Artha in the Vedic Literature

Dr. M.N. Joshi
Lecturer
PG. Deptt. of Sanskrit,
Karnatak University, Dharwad

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । (Regveda v.51.2)

The Vedic literature has deeper meaning for life and in the most natural language, it has tried to cover almost all phases of human activities, its purposefulness and attainments. The Vedas do not accept the demarcation, between the mundane world, and the world of Absolute Reality. Whatever is born, movable or immovable, changing and changeless-the whole of it is isavasya, or pervaded by the Supreme Reality and is charged with the existence of the Highest Self. The entire creation exists within Him, and in his extensions. He is far beyond the creation He is this all, that has been and that will be, And he is the lord Isanah of immortality, which he grows beyond through food, Rtu niyamah are creted by his only. Rtuniyamah are called Dharma. Dharma, as a world and concept, is unique to sanskrit. There is no equivalent of the world in any language. Even in the other Indian languages, There is no tatsam world. It is derived from (1) dhrn awasthane-to stay (2) Dhrj dhrijigatau-to go, (3) Dhratra Dharane-to caphold, to Nourish, or support.

The world dharma occurs not less then fifty six times in the Rgveda, mostly in neuter gender. In Rgveda dharma is used in the sense of religious ordinances or rites. In the Brahmanas leading a life of duty and responsibility, with the three rnas (debts). In the society of large dharma denoted the sacred law administered by the king and interpreted by the Risis. It has multiple connotations Gautama Dharmasutra says, dharma means Sasanam vidhih nyayam niyamah naitika bhavavana etc In cancient times, dharma alone was the Guiding spirit for human life. It in cludes the rules of behaviour or the code of conduct based on the ethical and religious norms recognised by a so ciety.

समाजः

वैदिक वर्णव्यवस्थाया वैज्ञानिक आधारः

डॉ० हरिगोपाल शास्त्री
प्राचार्य
गुरुकुल महाविद्यालयन, हरिद्वार

इदं नास्ति तिरोहितं समस्तशास्त्राटवीपरिभ्रमणलब्धमहाविभूतीनां महतां सतां विदुषां यत् निर्धारितविषयघटकानां पदानां व्युत्पत्तिनिमित्तं प्रवृत्तिनिमित्तं वा यावज्जनो न जानीयाद् तावत् असौ विपन्नो वराको वक्ता यदा स्वमपि बोधयितुं न शक्नुयात् कथं तावत् परान् प्रत्यययायितुमसौ प्रयतेत। प्रथमं मया वैज्ञानिक आधारःइति निर्धारितविषयघटकपदमध्ये वैज्ञानिक पदस्य तात्पर्यम् कियतीं सीमामाटीकते इति सम्यक् विचारयतैव अग्रे धावितुं पार्येत नान्यथ।

प्रथममहम् वैज्ञानिक शब्दरहस्य जातमेव स्वलेखनी प्रचारणेन प्रकटयामि। वैज्ञानिक शब्दस्तावत् दाक्षिपुत्रानुसारेण समस्ताष्टाध्यायी घटकेन प्रयोजनम् इति सूत्रेण प्रसिद्धिमाप्नोति, तेन न विज्ञानम् - प्रयोजनम् अस्य इति समुचितां व्युत्पत्तिमनुसरन् विज्ञान शब्दः प्रतीतिपथमलङ्करोति।

समस्त सारस्वतपारावारीणेन तत्र भवता भगवता महाभाष्यकृता गोनर्दीयेन सूत्रेऽस्मिन् भणितं यत् प्रयोजनं फलं च कारणञ्च। तच्चेत्थम् प्रयोजयते तत् प्रयोजनम् उताहो प्रयोज्यते अनेन तदीय प्रयोजनम्। फलं साधनञ्च व्युत्पत्तिरियं प्रतीतिपथं अवतरत्येव शाब्दिकदार्शनिकालंकारिकादि समस्त शास्त्रार्णव मन्थायमान बुद्धिदण्डानामपरोक्षोऽयमर्थः।

इदं तावत् अतिस्फुटं यत् विचारविषयतायाः संदिग्धतायश्च कश्चनातिनिकटो अविनाभावसम्बन्धो धूम धूमध्वजयोरिवास्ति। तथा च न्यायविदां रहस्यमय वचनम् नासंदिग्धोविचार्यते। परन्तु विलसतिभिः तर्कप्रमाण युक्तिभिः प्रमाणयितुं साधयितुमिदं शक्यते यद् वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्थाया वैज्ञानिकता अनिच्छद्भिरपि सर्वैर्मानयितव्या। यदा भवद्भि वैदिक वर्णव्यवस्था इति कथ्यते तदा अमुष्या प्रमाणिकता सुतरामेव स्वतः सिद्धा सम्पद्यते।

यतोहि वेदे भवा वैदिकी इति अध्यात्मादिभ्यः ठञ्' इति ठञ् प्रत्ययेन वैदिकी शब्दो सिद्ध्यति, वेदानां स्वतः प्रामाण्यम् समेऽपि उच्चैश्शिरसो दार्शनिका मन्यन्ते एव। यदा च प्रतिपादकस्य प्रामाणिकता कस्यापि नास्ति संदिग्धा तदा प्रतिपाद्यस्य वर्णव्यवस्थादिकस्य प्रामाणिकता विषये सन्देहोऽपि न जागर्ति कुतो विचारणीयता। बहवः खलु उच्चावच यज्ञानुष्ठानादयः मानवानां दैनन्दिनिक नित्य नैमित्तिक आचारादयः आत्मानात्ममोक्षविद्या प्रभृतयः ऐहिकामुष्मिक फलकाः अनेके अन्ये च सिद्धान्ता विषयाश्च वेदे प्रतिपादिता, समेऽपि विषया सहृदयैर्विद्वद्भिरहमहमिकया स्वीक्रियन्ते विशिष्टज्ञानजनकाः विलक्षणज्ञानफलकाः चामी इति

मन्यन्ते। यथाहि दार्शनिकानां तत्त्वमस्यादि महावाक्यानां परिशीलनेन सर्वैरपि निरतिशय सुखरूपं मोक्षफलं बुध्यते।

ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत एवं प्रभृतिभि: ऐहिक पारलौकि फलं प्रयच्छद्भि: अनुष्ठाने प्रतिपादितम् सम्पन्नञ्च फलं सत्यमेव असंदिग्धमेव मन्यन्ते भवन्त: तर्हि किमपराद्धम् वैदिकवर्णव्यवस्थाया वैज्ञानिकता भवनेन।

महानुभावा विद्वांस: मदीय विचारसरण्याम् इदमेव केवलं एकं विदुषां महनीयम् कर्तव्यमस्ति इत्याभाति यद् जनतासु तत्तद् विषये प्रसृता प्रसारिता च भ्रान्तिरेव अपसारणीया। तथा च वैज्ञानिक शब्दस्य यथा मया शब्दानुशासन शास्त्रमनुसरता व्युत्पत्तिर्निवेदिता तदनुसारेण संक्षेपेण वैज्ञानिकतालंकृताया वर्णाश्रम व्यवस्थाया वैज्ञानिकता वैज्ञानिक शब्दान्वर्थकता च सुतरामेव विलसति। अनयैव व्यवस्थाया अनेकशोभारतस्य भारतस्य प्राचीना दार्शनिका: औपनिषदिका: कर्मकाण्डविषयकाश्च पन्थान: अनादिकालत: प्रचलिता:। अद्यावधि यावत् रेखामात्रमपि स्वावलम्बितम् अध्वानं न विमुञ्चन्ति। यदा तु एतादृशीभि: व्यवस्थाभीरहीतानां अन्येषां पश्चिमादि देशानां प्राचीना व्यवस्था: कश्मिंश्चिदन्धकारगर्ते निमग्ना न खलु जगति स्वजीवित चिह्न धारयन्ति। अमूषु वर्णाश्रमादि व्यवस्थासु स्वार्थान्धैरेव कैश्चिद् स्वदुरभिसन्ध्या जनतासु व्यामोहो वितान्यते। उचितं तु इदं यत् सम्प्रति सौमनस्य समन्वितया यथा व्यवस्थया प्रजासु स्नेहस्य परस्पर भ्रातृभावस्य प्रबल: समुन्मेषो भवेत् सा सरणि: सर्वैरपि सज्जनै जनै: सम्मिलित प्रयासेन अङ्गीकर्तव्या अङ्गीकरणीया च। नास्ति जगति इदृशोरोगो यस्य न स्यान्निदानम्। अस्मिंस्तु लघुतम लेखे विचारणीय विषयस्य सत्यपि बाहुल्य विस्तरादहम् विभेमि। अत: यथा समयं व्याख्याय विषयं विरमामि। इत्यलम्।

वेदेषु समाज व्यवस्था

डॉ० अन्नपूर्णा
आचार्या
द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरुकुल, देहरादून

परमात्मन: विरचितायां सृष्टौ सुरम्यक्रम: दृश्यते, ब्रह्माण्ड्स्य सुव्यवस्था ईश्वरेण कृता। अत: संसारस्य प्रारम्भकालादारभ्यसाम्प्रतमपि सा व्यवस्था प्रचलति अग्रेऽपि एवं प्रकारेण चलिष्यति। समाजस्य सुव्यवस्थार्थम् वेदेषु बहव: मन्त्रा: दरिदृश्यन्ते। गुण कर्मानुसारेण वर्णव्यवस्थाऽपि परिलक्ष्यते यथा

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहु: राजन्य: कृत: इत्यस्मिन् मन्त्रे विद्यादि ज्ञान द्वारा समाजस्य मार्ग

निर्देशका: याज्ञिका: ब्रह्मज्ञान लब्धा: ब्राह्मणा: श्रेष्ठा: भवन्ति। ते मुखवद् मुख्य भूमिका आवहन्ति। राष्ट्र रक्षार्थं क्षत्रियंवर्गा: योग्या: भवन्ति बाहूवत् रक्षणे समर्था: ते राजन्या: सन्ति। व्यापारे वाणिज्ये च ततः वैश्या: उरुवत् प्रतीयन्ते। अन्ये सेवा परायणा: शूद्रा: सेवक पदं प्राप्नुवन्ति। कर्मानुसारेण वर्णव्यवस्था वेदानुसारेण आसीत्। परन्तु इदानीं तत् न परिलक्ष्यते। समाजे सर्वे सर्वान् रक्षन्तु, भद्रं पश्यन्तु इति महत् सूत्रं वेदे निहितं यथा

"पुमान पुमांसं परिपातु विश्वत:"

अर्थात एक: व्यक्ति अपरं रक्षतु। सर्वेषा कृते कल्याणी भावना तत्र वेदेषु विराजते।

यथा

"शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे",

अहिंसाया: निर्देश: वेदेषु अस्ति। अत: हिंसा न करणीया। यथा "मा हिंसी: पुरुषं जगत्"। वैदिक समाज व्यवस्थायाम् आदर्श व्यवहारस्य सदुपदेश: वेदे एव परिलक्ष्यते।

यथा

"अन्योन्यमभिहर्यता वत्सं जातमिवाघ्न्यां"

वर्ण व्यवस्था वत् आश्रम व्यवस्थाया: वर्णनमपि वेदेषु प्रतीयते। वैदिक समाज व्यवस्थायाम् षोडश संस्काराणां अपि महत्वं वरीवर्त्ति। वैदिक चिन्तने संगठनस्य महत्वं अत्यधिक परिलक्ष्यते। अत: ऋग्वेदस्य संगठन सूक्तं समाजे महत्वपूर्ण स्थानं आवहति।

यथा-

"संगच्छध्वं संवदध्वं"

"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे"- इत्थं वैदिक सामाजिक व्यवहारस्य मुख्यअंग रूपेण प्रतिभाति।

पुनश्च-

"येन देवा न वियन्ति नोचविद्विषते मिथः।
तत् कृण्मे ब्रह्म वोगृहे सज्ञानं पुरुषेभ्यः॥"

समाज व्यवस्थायाम् केन प्रकारेण व्यवहार करणीय: तत् सर्वं निर्दिष्टम्। यथा-

"अनुव्रत: पितु: पुत्र"

सर्वे सदस्या: सर्वै: सह अनुकूलाचरणं कुर्यु: इति शिक्षा लभ्यते। समाजे नारीणां स्थानमपि अत्युच्चे स्यादिति वैदिक संहितासु उपलभ्यते। सा राष्ट्रस्य आधार भूताअस्ति। यथोक्तम् - राष्ट्रीय प्रार्थनायाम् -

"आब्रह्मन् ब्राह्मणो.........इत्यादि मंत्रे दृश्यते पुनश्च विवाह संस्कारे ऋग्वेदस्य मन्त्र: आशीर्वाद रूपेण प्रतीयते। यथा-

"सम्राज्ञी श्वशुरेभव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव। ननान्दरि साम्राज्ञीभव साम्राज्ञी अधिदेवृषु नारीणां स्थानं परिवारे सम्राज्ञी रूपेण अस्ति। समाजे च नारीणां स्थानं ध्वजवत् अस्ति।" यथा-

अहं केतुरहमुर्धा......इत्यादि।

समाजस्य सुव्यवस्थार्थं प्रशासनस्य व्यवस्था वेदेषु विद्यते। अतः सभा समितिनां क्रमः अत्र परिलक्ष्यते। राजधर्मः वेदेषु लभ्यते। शिष्टानां सम्यक् पालनं दुर्जनानां कृते दण्ड़ विधानं समाजे सर्वदाभवेत इतिशास्त्रस्य नियमः। समाजे दण्ड़ व्यवस्थाऽपि स्यात्। सर्वे जनाः पशुपक्षिणां अपि रक्षां कुर्युः, वृक्षवनस्पतिनां अपि रक्षा सर्वे करणीया। एवं प्रकारेण सर्वेषां प्रयत्नेन सामाजिकी व्यवस्था सुदृढ़ा, सुरम्या, कल्याणकारिणी च भवेत्। अतः वैदिक समाजिक व्यवस्था सर्वोपरि तिष्ठति। सम्पूर्ण विश्वस्य कृते अनुकरणीया अस्ति।

सामाजिक क्षेत्र में ऋग्वैदिक ऋषिकाओं का योगदान

डॉ. अर्चना कुमारी दुबे
प्रवक्ता- संस्कृत विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

वेद मानव जाति का प्रथम ग्रन्थ है। ऋग्वेद संहिता में रोमशा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, शश्वती, आपाला, सिकता-निवावरी, शिखण्डिनी-काश्यपी, यमी, वाक्, वसुक्रपत्नी, घोषा, अगस्त्य, स्वसा, अदिति, सूर्यासावित्री, उर्वशी, दक्षिणा, सरमा, जुहू, रात्रि गोधा, इन्द्राणी, श्रुद्धा इन्द्रमातरः शची एवं सार्पराज्ञी वेद मंत्रों की द्रष्ट्री ऋषिकाएं मानी गई हैं। वेद में नारी का गौरव अनेकशः हैं "स्त्री हि ब्रह्म बभूवित" अभिप्राय यह है कि स्त्री ब्रह्मज्ञान की अधिष्ठाता है। वह जगन्निर्मात्री है। नारी के पास वे सम्पूर्ण शक्तियां हैं, जो संसार में किसी के पास नहीं हैं। पुराणों में जहाँ कहीं देवासुर संग्राम का उल्लेख मिलता है। वहीं देवताओं के पराजित होने पर कोई देवी (शक्ति) किसी रूप में उनकी सहयोगिनी बनकर सामने आती हैं और उन्हें विजयी बनाती रही है। स्त्री की प्रतिष्ठा उनके गुणों एवं योग्यता के आधार पर ही है।

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि उस युग में स्त्री-शिक्षा का यथेष्ट प्रचार था। स्त्रियाँ न केवल अध्ययन करती थीं। मन्त्रों का दर्शन भी करती थी। इन मन्त्रों से ऋषिकाओं की सामाजिक भूमिकाओं पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद मानव-जाति का प्रथम ग्रन्थ है। जो महिलाओं के आदि प्रातिभ ज्ञान का प्रमाण हैं तथा कारयित्री प्रतिभा की दृष्टि से स्त्रियों की, पुरुषों के साथ, समकक्षता को सिद्ध करती है। दस मण्डलों में विभक्त ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल, से यद्यपि 20 ऋषिकाओं का सम्बन्ध है, जिसे आधुनिक विद्वान् अपेक्षाकृत परवर्ती मानते हैं। किन्तु इस ग्रन्थ के प्रथम मण्डल में भी ऋषिकाओं के मन्त्र मिलते हैं। प्रथम, पंचम व अष्टम मण्डल से सम्बद्ध सात ऋषिकाएं हैं, जो आधुनिक विश्लेषकों के मतानुसार भी प्राचीनतर है। इस दृष्टि से प्रथम मण्डल की रोमशा और लोपामुद्रा संसार की प्राचीनतम महिला विदुषी औरर शब्दकार हैं। जो जीवनाभिलाष, अमित प्रेम और कर्म के प्रति विश्वास से भरी हैं। नारी के अनेक रूपों माता, पुत्री, भगिनी, पत्नी, प्रिया व गृहिणी आदि का उदात्त रूप ऋग्वेद के मन्त्रों में प्रस्तुत हुआ है। तथा वात्सल्य, श्रद्धा,

प्रेम, उदारता, हितैषिता व भक्ति आदि कोमल भावों की अभिव्यक्ति हुई है। पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों की मधुरता, पवित्रता, तथा उत्तमता के दर्शन होते हैं। मानवीय दोषों लोभ, कृपणता, स्वार्थवृत्ति, घृणा और छलकपट आदि से विलग रहने तथा उन्हें त्यागने की भावना मिलती है। सौन्दर्य, शूरता, तेजस्विता के प्रति इन ऋषिकाओं का सहज आकर्षण है। सदाचार की श्रेष्ठता और व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के अभ्युदय की आकांक्षा उनमें सर्वत्र दृष्टिगत होती है। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में ऋग्वैदिक ऋषिकाओं का महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है।

वेदों में समाज शास्त्र - एक विश्लेषण

गिरिराज सिंह
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

वेद हिन्दू धर्म के मूल सामाजिक व्यवस्था का ग्रन्थ हैं। वेद शब्द का वास्तविक अर्थ 'ज्ञान' है। वेद चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सोमवेद और अथर्ववेद। इन वेदों में जो मन्त्र हैं, वे हमारे ऋषियों के दिव्य ज्ञान का प्रकाश हैं। ऋषियों पर मानव-कल्याणार्थ अपनी विश्वासपूर्ण व्यवस्थाएं दी हैं। वेदों का उद्घोष 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' है।

वैदिक काल की सामाजिक व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसोर संचालित थी। यह व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच में समन्वय का अच्छा उदाहरण है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थ वेदों में भारतीय चिन्तन का व्यवस्थित रूप देखने को मिलता है। उस समय की सामाजिक व्यवस्था पर धर्म का गहरा प्रभाव था। वैदिक कालीन समाज में विकासात्मक उत्पादन-कार्य और श्रम की अनेकता के कारण श्रम का विभाजन शुरू हुआ। अलग-अलग कार्यो को करने वाले अलग-अलग वर्णों में बट गये। ऋग्वेद (10-19-12) और यजुर्वेद (31-11) के 'पुरुषसूक्त' में वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के विभिन्न अंगो से बताई गई। वेदों के अन्तर्गत ही प्राचीन भारत में सामाजिक विचार धारा का एक क्रमबद्ध विकास सम्भव हुआ एवं अनेक ऋषि-मुनि और आचार्यों ने धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक जीवन के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में अपने विचारों व आदर्शों को प्रस्तुत किया। जैसे धर्म, सृष्टि से मुक्ति तक, आत्मा कर्म सिद्धान्त, दान, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, परिवार, विवाह, स्त्रियों की स्थिति, शिक्षा व्यवस्था, व्रत-पर्व एवं लोक जीवन आदि। यही वेदों में समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक विचार धारा क्रे विश्लेषण की संक्षिप्त रूप रेखा है।

कल्प साहित्य व उसकी विधायें एवं विविध यज्ञ

शैलेन्द्र कुमार
शोधार्थी, संस्कृत विभाग
आर0 आर0 पी0जी0 कॉलेज, सुल्तानपुर

प्राचीन वैदिक धर्म में याज्ञिक कर्मकाण्ड तथा संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान था। ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसी प्रयोजन से की गई थी, जिससे याज्ञिक विधि विधान का निरूपण किया जा सके, और साथ ही यह भी प्रतिपादित किया जा सके कि उनमें वेद मन्त्रों का किस प्रकार विनियोग किया जाता है। बाद में यह आवश्यकता अनुभव की गई कि याज्ञिक विधि विधानों और संस्कारों आदि का निरूपण किया जाए क्योंकि क्रियात्मक दृष्टि से यह अधिक उपयोगी था। वेद विहित कर्मो (यज्ञ सम्बन्धी कर्मकाण्ड तथा विविध संस्कार) का जिस शास्त्र में क्रम बद्ध रूप में प्रतिपादन किया जाता है वही 'कल्प' अथवा 'सूत्र' साहित्य है। सायणाचार्य के अनुसार कल्पसूत्र मन्त्रों का विनियोग बताकर याज्ञिक अनुष्ठान की विधि का प्रतिपादन करते हैं और यही उनकी उपकृति है। कल्प वेदाङ्ग के ये ग्रन्थ सूत्रों के रूप में हैं। सूत्र उसे कहते हैं जिसमें अक्षर कम हों समस्त बातें सार के रूप में कह दी गई हों, और अभिप्राय को असन्दिग्ध रूप में प्रकट किया गया है। कल्प वेदाङ्ग के तीन भाग हैं श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। कतिपय विद्वानों ने शुल्व सूत्र को कल्प वेदाङ्ग के चौथे भाग के रूप में प्रतिपादित किया है। शुल्व सूत्र में यज्ञ के वेदि के निर्माण की विधि तथा माप आदि विषयों का प्रतिपादन किया जाता है, जिनका सम्बन्ध श्रौत सूत्र विषय के साथ ही है,। इसलिए इसे श्रौत सूत्र के अन्तर्गत ही मानना उचित है। वेदाङ्गो में कल्पसूत्र का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत शोधपत्र में कल्प साहित्य व उसकी विधाएं एवं विविध यज्ञों का वर्णन किया गया है।

सन्दर्भ :-

1. अतः कल्पसूत्रं मन्त्रविनियोगेन क्रत्वनुष्ठान मुपदिश्य उपकरोति।
2. अल्याक्षरमऋन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
   अस्तोममनवद्यं च सूत्रविदो विदुः।। (विष्णुर्मोत्तर)

ऋग्वेद में समाज शास्त्र

योगेन्द्र कुमार शास्त्री
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

संसार के लगभग सभी बुद्धिजीवी इस विषय में एक मत हैं कि संसार की सर्वप्रथम भाषा संस्कृत ही है। संस्कृत साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी प्राचीनता। ऋग्वेद केवल भारतीय भाषा परिवार की ही नहीं अपितु समस्त विश्व की तथा मुनष्य मात्र की प्रथम पुस्तक है। यह निर्विवाद रूप सें सिद्ध हो चुका है कि विश्व के पुस्तकालय में ऋग्वेद से प्राचीन कोई भी पुस्तक नहीं है। ऋग्वेद में हमें मानव मस्तिष्क के सर्वप्रथम उद्‌गार मिलते हैं। अनेक विद्वानों ने ऋग्वेद को ऋषियों मुनियों का कहा हुआ पहला शब्द बतलाया है।

ऋग्वेद का प्रधान विषय तो समाज व्यवस्था ही है। मुख्य समाज पुरुषों तथा स्त्रियों का समूह होता था। मगर समूह मात्र से ही इसकी समाज संज्ञा नहीं होती। इसके लिए तो स्त्री तथा पुरुष के कुछ दायित्व भी निर्धारित किये गए होते थे। यह तो ठीक है कि मनुष्य के जनक तथा जननी स्त्री तथा पुरुष ही होते थे। मगर ऋग्वेद कालीन समाज में सन्तान उत्पन्न करने मात्र से ही समाज का निर्माण नहीं हो सकता इसके लिए ऋग्वेद में मूलभूत कर्तव्यों का भी विधान किया गया है। ऋग्वैदिक दृष्टि से प्रथम मनुष्य जाति सब की एक ही थी। यह प्रमाण हमें चारों वेदों के अध्ययन से उपलब्ध होता है स्वामी दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में यही लिखा है कि इस पावन पृथ्वी पर सर्वप्रथम एक ही जाति का प्रादुर्भाव हुआ था, वह मनुष्य जाति ही थी। कालान्तर ने सम्पूर्ण संसार को दो विभागों में विभक्त कर दिया था। 1. आर्य और 2. दस्यु

1. आर्य : आर्य जाति वह होती थी जो श्रेष्ठ स्वभाव और क्रियाशील, मननशील, धर्मानुसार कार्य करती थी आर्यसमाज धर्म की मर्यादाओं से बन्धा हुआ था और अपने धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखता था।

2. दस्यु : दस्यु जाति के लोग दमन शील, एवं दूसरों का सदा उत्पीड़न करते थे। दस्यु समाज के लोग लुटेरे, डाकू, चोर इत्यादि स्वभाव वाले मनुष्य होते थे। "असुर्या नाम ते लोका" इस मन्त्र से देव और असुर अर्थात् विद्वान् और मूर्ख ये दो ही तरह के लोग होते थे। इन दोनों के विरोध को देवासुर संग्राम कहते थे। ऋग्वेद कालीन समाज प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करता था। ऋग्वैदिक समाज में मुख्य व्यवसाय कृषि ही होता था। ऋग्वैदिक समाज में मुख्य व्यवसाय कृषि ही होता था। ऋग्वेद में स्वयंवर विवाह की भी प्रथा थी।

ऋग्वेदकालीन समाज में चार आश्रमों का निर्माण भी किया गया था। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी आश्रम से सम्बन्धित होता था इसके पश्चात् सम्पूर्ण समाज को गुण, कर्म, स्वभाव एवं योग्यता के अनुसार चार भागों में विभक्त कर दिया गया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ऋग्वेदकालीन समाज में इनके पृथक् पृथक् कार्य निर्धारित किये गए थे। चारों वेदों में किसी भी

वर्ण के व्यक्ति को वेद पढने का निषेध नहीं किया गया है। अर्थात ऋग्वेद की दृष्टि से भी प्रत्येक मनुष्य को चारों वेद पढ़ने का अधिकार होता था।

वेदों में सामाजिक जीवन का स्वरूप

अजय प्रताप सिंह
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद ज्ञान का अथाह सागर है, ज्ञान की सीमा के अन्तर्गत जो कुछ भी है वह सब वेदों में अक्षरश: विद्यमान है। वैदिक कालीन समाज एक आदर्श को प्रस्तुत करता है। वैदिक कालीन समाज पितृसत्तात्मक था, पिता या ज्येष्ठ पुत्र ही परिवार के मुखिया होते थे। जिन्हें कुलय कहा जाता था। और नारी के बारे में यह माना जाता था कि नारी परमात्मा की ऐसी अद्‌भुत कृति है जिसके अभाव में सृजन असम्भव है। वैदिक साहित्यों में नारी के प्राय: चार उत्कृष्ट स्वरूप सामने आते हैं। जिनमें माता, ग्रहणी या जाया, बहन व कन्या प्रमुख है। ऋग्वेद में माता, जननी, अम्बा, और नना के नाम से माता के लिए चार शब्द प्रयुक्त हुए है। वैदिक युग का पारिवारिक जीवन पारस्परिक आत्मीयता और कर्तव्यनिष्ठा पर आधारित था। पिता, पुत्र, पितामह, पत्नी, माता, अन्य पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति आदर एवं सस्नेह प्रेमभाव, का बाहुल्य था। परिवार के संगठन और उसकी खुशहाली के लिए प्रयत्न करते रहने का निर्देश देते हुए ऋग्वेद के 10/85/43 मंत्र में कहा गया है कि किसी से भी वैमनस्य न करते हुए सुखपूर्वक गृहस्त आश्रम में निवास करना चाहिए। अथर्ववेद के 3/26/3 मंत्र में ऐसे परिवारों का उल्लेख किया गया है जिनमें परिवार के सदस्य मधुरभाषी और शिष्ट आचरण करते थे। ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में दृहितर प्रसंग में पुत्री को स्नेह का पात्र कहकर कन्या के प्रति समाज की मधुर भावनाओं का संकेत किया गया है।

भारतीय सामाजिक जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं है। जहाँ वेदों का प्रामाण्य न प्राप्त हो। वेदों में सामाजिक जीवन एवं उनकी उन्नति का पर्याप्त वर्णन है। जिनका उद्‌देश्य मानव जीवन को समाज में व्याप्त समस्त बुराइयों से मुक्ति दिलाना है। वेद मंत्र समाज में भेद भाव नहीं अपितु एकता, सम्पन्नता और पोषण की प्रस्तावना करता है एक आदर्श गृहस्थ एवं सामाजिक जीवन के अनेकों उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं। वैदिक कालीन सामाजिक जीवन अत्यन्त विकसित था, यही कारण है कि आज भी हमारे सामाजिक जीवन पर उसका प्रभाव प्रतिविम्बित होता है।

वेदों में सामाजिक स्थिति

डॉ. रेणु गुप्ता
संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

किसी भी राष्ट्र के विकास में तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि के साथ साथ सामाजिक स्थिति का भी अनिवार्य महत्त्व है। मानव कि सीभी काल में समाज की उन्नति तथा अवनति के क्रम में स्वयं को अछूता नहीं रख सकता। वैदिक काल में सामाजिक वर्गीकरण की दृष्टि से 'वर्ण' शब्द का प्रयोग प्रथमत: रंग की भिन्नता के रूप में हुआ है। जिसके अंतर्गत प्रजातिगत सांस्कृतिक भिन्नताएं निहित हैं। महाभारत में शूद्रों और आभीरों का निवास सरस्वती के निकट बताया गया है! शूद्रों को द्विजों की श्रेणी में न रखा जाना इस बात की तरफ स्पष्ट प्रमाण करते हैं कि यह वर्ग प्रमुख रूप से विजित तथा आर्याश्रित अनार्य समुदाय से निर्मित था। शत. ब्रा. के अनुसार ब्राह्मण त्रयी विद्या (ऋग्वेद, साम. यजु.) के सम्पूर्ण ज्ञाता हुआ करते थे। सामाजिकता के अन्तर्गत स्मृति आदि सूत्रग्रंथों ने केवल ब्रह्मचारियों तथा यतियों के लिए ही भिक्षा की व्यवस्था की है। बहुत ही सीमित दशाओं में अन्य लोगों को भी भिक्षा माँगने का अधिकार था। यद्यपि शूद्रों का वेदाध्ययन करना मना था। परन्तु वे इतिहास (महाभारत आदि) एवं पुराण सुन सकते थे। महाभारत (शांतिपर्व 328/41) ने लिखा है कि चारों वर्ण किसी ब्राह्मण पाठक महाभारत सुन सकते हैं। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के मध्य सम्पर्क तथा सम्बन्ध केवल धार्मिक तथा राजनैतिक अधिकार व्यवहार के बीच सम्बन्धों तक ही सीतित नहीं था। क्योंकि इस काल में ऐसे अनेक ब्रह्मविद् राजाओं (अथवा) क्षत्रियों का उल्लेख मिलता है, जिनसे ब्राह्मण तक ज्ञानार्जित करते थे। यथा-याज्ञवलक्य ने जनक से, उद्धालक-अरुणि तथा अन्य दो ब्राह्मणों ने प्रवाहण जाबालि से, गार्ग्य ने अजातशत्रु से तथा अरुण के नेतृत्त्व में पांच ब्राह्मणों ने अश्वपति कैकेय से ज्ञान प्राप्त किया था। उत्तर वैदिक काल तक अनार्य देवता शिव और वैदिक रुद्र का एकीकरण हो चुका था। इस काल में आर्यों ने अपने और अनार्य शूद्रों के बीच एक अनुलंघनीय सीमा के निर्धारण का प्रयास किया। जिसके पीछे सांस्कृतिक स्वत्त्व की रक्षा की भावना विद्यमान थी। अन्त में शत.ब्रा. तथा अन्य समकालीन वैदिक साहित्य के आधार पर सामाजिकता तथा वर्ण विवेचन के द्वारा यह तथ्य निश्चित रूप से पूणतया: स्पष्ट हो जाता है कि स्थिरीकरण तथा प्रतिबन्ध की प्रक्रियाओं के चलते तत्कालीन समाज पूर्ण रूप से चतुर्जातियों मे विभक्त हो चुंका था। सारांश में उपरोक्त वर्णन शोधपत्र में बाद में पूर्णतया विस्तार से किया जाएगा।

वेदोक्त आदर्श समाज

बिजेन्द्र शास्त्री
सहा0-अध्यापक (विद्यालय विभाग)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

"महर्षि दयानन्द ने वेदोक्त आदर्श परिवार के विषय में उपदेश करते हुए लिखा है कि वेद का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है, इसी के अनुसार वेद के स्वाध्याय को अपना परम धर्म मानकर नित्यप्रति उसका स्वाध्याय करें, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करें। समय-समय पर ज्ञानी, वेदज्ञ, विद्वानो एवं संन्यासी महात्माओं को अपने परिवारों में बुला-बुला कर उनके प्रवचन करायें, जिससे कि हमारी आने वाली सन्तति वेद को सुने, समझें और उसके अनुकूल आचरण करें।

वेद में पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए सामूहिक रूप में तथा व्यक्तिगंत रूप में भी बहुत सी सुन्दर प्रेरणाएँ दी गई हैं। अथर्ववेद के "साम्मनस्य" सूक्त में परस्पर मिलकर द्वेष भाव को छोड़कर इस प्रकार कार्य करने का उपदेश दिया है जिससे कि हम सब में "साम्मनस्य" उत्पन्न हो, सबके मन में एकीकरण की भावना हो, सहृदयता हो, अर्थात् एक दूसरे के दुःख में दुःख और सुख में सुख अनुभव करने की भावना सदा बढती रहे, इस प्रकार के विस्तृत सामाजिक जीवन का आरम्भ घर से ही होता है कुटुम्बीजन किस प्रकार परस्पर सहृदयता, साम्मनस्य और अद्वेष की भावना को अपने मन में उत्पन्न करें। इसी का उपदेश अथर्ववेद का "साम्मनस्य" सूक्त करता है।

पुरुष सूक्त में वर्णित समाज एवं आधुनिक भारतीय सामाजिक संरचना

डॉ० गीता शर्मा
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

सृष्टि के आरम्भ से ही समाज की संरचना एक जटिल विषय रहा है। देश, काल व स्थान चाहे कोई भी रहा हो परन्तु समाज के नियमन को लेकर सदैव बुद्धिजीवियों, धर्मगुरुओं और तथाकथित समाज-नियन्ताओं में वादविवाद होता रहा है। प्रत्येक खेमा अपने पूर्वाग्रहों के साथ कभी जन्म से और कभी कर्म से समाज को विभक्त करता रहा है। हर युग का अपना सत्य प्रत्येक नियम निर्धारण में मुख्य भूमिका निभाता है। नियोन रोशनियों में जगमगाते

भूमण्डलीकरण व नई आर्थिक व्यवस्था में बाजार हमारे समाज का नियन्ता बन बैठा है परन्तु परम्परा की चिरन्तन धारा में भारतीय समाज को अपनी निजता का निर्धारण अवश्य करना है जो किसी भी राष्ट्र की जीवन्तता की पहली शर्त है।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में प्रयुक्त 'पुरुष सूक्त' वस्तुतः भारतीय सामाजिक, चिन्तन का प्रथम पड़ाव है। दिव्य पुरुष के रूप में उसी आलौकिक सत्ता अथवा ईश्वर का वर्णन है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि निःसतृत हुई है

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहसाक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम।।

अर्थात् वह परम् पुरुष विराट् परमेश्वर हजारों सिरवाला, हजारों आंखों वाला और हजारों पैरों वाला है। वह भूमि को चारों ओर से व्याप्त करके दस अंगुल परिमाण में ब्रह्माण्ड को पार करके स्थित है।

यह सूक्तांश ईश्वर की दिव्य व्यापकता का द्योतक है। जड़ - चेतन के प्रत्येक अंशमें वही सत्ता समाहित है। कर्म से समाज का विभाजन और कार्यव्यापार की सक्षमता ऋग्वेद कालीन ऋषियों की परिकल्पना थी और यही उन्नति के लिये परम आवश्यक था। इसी दिव्य पुरुष के विराट् स्वरूप से समाज के विभिन्न रूप निःसृत माने गए-

ब्राहमणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत्।।

अर्थात् पूर्वोक्त पुरुष का मुख ब्राह्मण हुआ, भुजाओं को क्षत्रिय बनाया गया, जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई।

कर्म से वर्णित सामाजिक संरचना को जन्म से मान लेने पर भारतीय समाज में अवरोध आए और सम्पूर्ण गहन मनन के अभाव में सामाजिक ढांचा चरमराने लगा। आधुनिक समय में पुरुष सूक्त का आधार और वर्तमान सत्य परस्पर कितने समान व विरोधी हैं - यह विचार करना मेरे शोधपत्र का विषय है।

आधुनिक भारतीय समाज में वैदिक ज्ञान की प्रासंगिकता

सचेन्द्र कुमार सिंह
शोध छात्र, समाज शास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आधुनिक भारतीय समाज का बौद्धिक वर्ग यह मानता है कि व्यक्ति का सामाजिक जीवन तार्किक वैज्ञानिक चिंतन पर आधारित प्रगति का सूचक है। यह वर्ग इस तार्किक चिंतन के केन्द्र में पदार्थ (मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद चिंतन एवं पूंजीवाद का मूल विचार) को

मुख्य रूप से रखता है। अतः आजादी के पश्चात् भारतीय समाज का अधिकांश बौद्धिक चिंतन (जिसने समाज की दिशा तय करते हुए) पूंजीवाद, औद्योगिक विकासवाद, समाजवाद एवं साम्यवाद के सम्मुख शरणागत हो गया। परिणाम स्वरूप भारतीय समाज के सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन, आर्थिक जीवन एवं राजनीतिक जीवन में जो भी परिवर्तन अब तक दिखायी देते हैं उनकी दिशा भौतिक समृद्धि एवं पादार्थिक चिंतन के विकास की ओर रही है।

वेदों में या वैदिक ज्ञान के मूल में ईश्वरीय चिंतन एवं चेतना (आत्मा) का ज्ञान समाहित है। चारों वेद इनके उपवेद तथा वेदांगों के छः स्वरूप मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन को सम्पूर्णता से जीवन व्यतीत करने का आधार प्रदान करते हैं। वैदिक ज्ञान का लक्ष्य समाज की केवल भौतिक समृद्धि ही नही है बल्कि समाज के आध्यात्मिक एवं धार्मिक जीवन को भी उन्नतिशील बनाना है। वैदिक ज्ञान में सामाजिक जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए जो नियम (वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था आर्थिक एवं राजनीतिक नियम) प्रतिपादित किये गए है, यदि मनुष्य अपने जीवन में इन नियमों को ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा रखते हुए आत्मसात का आचरण करना है तो वह एक सुव्यवस्थित परिवार, सुव्यवस्थति नातेदारी सम्बन्धों को सुव्यवस्थित राज्य एवं राष्ट्र को बनाये रखता हैं। इसीलिए वैदिक ज्ञान की उपयोगिता, सार्थकता, प्रासंगिकता एवं महिमा सार्वकालिक एवं सर्वदेशीय है।

सामाजिक मूल्यों के स्रोत-वेद एवं उपनिषद्

हेमलता शर्मा
प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अगस्तमुनि, रुद्रप्रयाग

रविन्द्र कुमार सैनी
प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
गोपेश्वर, चमोली

वैदिक संहिताओं का पाठन करने पर उनमें निहित व्यापक जीवन-दर्शन का ज्ञान होता है। त्याग, भावना एवं सभी के कल्याण की भावना इसके मूल प्रेरणा स्रोत हैं। वेद केवल आध्यात्मिक स्रोत ही नहीं है अपितु जीवन के प्रत्येक अंग में सम्पूर्णता लाते हैं। भारतीय ऋषियों ने जीवन को 100 वर्ष का मानते हुए उसे चार भागों में विभाजित किया था- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। प्रत्येक आश्रम 25-25 वर्षों का मानकर पुत्र-पौत्रों के साथ 'जीवेम शरदः शतम्' की कल्पना की गई थी। समाज में अनैतिक दुराचार न हो इसके लिए वैदिक ऋषि गृहस्थाश्रम धर्म का पालन अनिवार्य मानते थे। अतः हमारे दैवीय ग्रन्थ, वेद और उपनिषदों में मानव को सत्य, अहिंसा, दान, दया, शील पवित्रता, विवेकशीलता, कर्मण्यता, परस्परहित, कल्याण की भावना, वृद्ध जनों की सेवा, माता-पिता, अतिथि का सत्कार चरित्र की नैतिकता जैसे शाश्वत गुणों से युक्त होने की पवित्र प्रार्थना पग-पग पर मिलती है।

वैदिक काल में भारतीयों का सामाजिक जीवन

शशि बाला वर्मा
शोध छात्रा, संस्कृत
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में तत्कालीन भारतीय समाज का जो चित्र अंकित है उसके विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वह अत्यन्त सुख सौमनस्यपूर्ण समता और समरसता मूलक तथा स्वस्थ विकास की आधार भित्ति पर प्रतिष्ठित था। समाज का वर्गीकरण विभिन्न व्यवसायों के आर्थिक आधार पर किया गया था। परिवार संयुक्त होते हुए भी विकास की भावना से अनुस्यूत थे। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों में खींचतान की प्रवृत्ति न होकर पारस्परिक दायित्वों की ग्रहणशीलता और सहयोग की दृष्टि निहित थी।

वैदिक साहित्य में वर्ण व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता हैं चारों वर्णों की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त चारों आश्रमों का भी वर्णन किया गया है। चार पुरुषार्थ एवं सोलह संस्कारों को मानते हुए मनुष्य कर्म प्रधान जीवन व्यतीत करता था।

वैदिक आर्यो का व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था। वैदिक आर्यों का भोजन सीधा-साधा, स्वास्थ्यवर्धक तथा सात्विक होता था एवं उनका प्रधान पेय रस 'सोमरस' था। उनके वस्त्र और परिधान ऊनी, सूती और रेशमी हुआ करते थे।

वेदों में सामाजिक चिन्तन

डॉ० सन्त कुमार मिश्र
शिक्षा विभाग
श्री माधव कालेज आफ एजुकेशन एण्ड टेक्नो0, हापुड़

समाज का उद्भव मानव की उत्पत्ति से मानी जाती है, किन्तु यह तथ्य उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि समाज की स्थापना मनुष्य ने आपसी सहयोगी के लिये किया था। भारत की प्राचीनतम संस्कृति को वैदिक संस्कृति के नाम से संज्ञापित किया जाता है। वेद क्या है, उनका ध्येय क्या है और उनकी उत्पत्ति किन लक्ष्यों की पूर्ति के लिये हुई है, यह लंबे समय से विद्वानों के मध्य चर्चा का विषय रहा है। सर्वमान्य भाष्यकार सायण के अनुसार वेद शब्द वस्तु का प्रतीक है, जिसकी सहायता से मनुष्य अपने इष्ट को प्राप्त करता है और दुर्गुणों, अनाचारों और अवांक्षनीय वस्तुओं अथवा व्यवहारों से अपनी रक्षा करता है।' इस प्रकार वेदों द्वारा हमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता, जीवन और दर्शन का ज्ञान प्राप्त होता है। वेद हमारी वे थाती हैं जो मानव-जीवन के लक्ष्य

को अपने में पूर्ण रूप से संजोए हुए हैं। वेदों में इस प्रकार की विश्व व्यवस्था की कल्पना की गयी है, जिसे 'ऋत्' कहा गया है। 'ऋत्' ही धर्म का ऋग्वैदिक स्वरूप है। इस व्यवस्था के नियामक वरुण की प्रार्थना में कहा गया है कि यदि हम अपने मित्रों, अतिथियों, बन्धु बांधवों या परिवार के सदस्यों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न करें तो वरुण हमें दण्ड दें। यदि हमनें भूल से भी किसी को धोखा दिया है तो आप हमें मुक्त करें। ऋग्वेद में ही अन्यत्र धर्म का प्रयोग विश्व को धारण करने के अर्थ में हुआ है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म या ऋत् का मुख्य उद्देश्य समाज में व्यवस्था स्थापित करना था। समाज में संतुलन बनाये रखने के लिये मर्यादा और व्यवस्था स्थापित करनी पड़ती है। मनुष्य विश्वव्यापी समन्वय का एक अंग है। वह अपने को इस विश्वव्यापी समन्वय के अनुरूप बनाने के लिये अपनी वासनाओं, भावनाओं, विचारों, प्रवृत्तियों और आवश्यकताओं का संतुलन करके अपने व्यक्तित्व को व्यवस्थित करता है। दूसरी ओर अपने बंधुओं के साथ अपने व्यवहार, आचार अपने व्यक्तित्व को व्यवस्थित करता है दूसरी ओर अपने बंधुओं के साथ अपने व्यवहार, आचार, व्यापार, सम्पर्क और संबंध को ठीक कर समाज को संगठित करता है। यह समन्वय कुछ मान्यताओं पर आधारित होता है। यदि ये मान्यताएं बुद्धि संगत और ज्ञानगर्भित न हों तो निश्चल अंधविश्वासों और कट्टर दुराग्रहों में बदलकर समन्वय में बाधक हो जाती हैं। इन ज्ञान, समन्वित कर्मपरक मान्यताओं को ही धर्म कहते हैं।

वैदिक समाज-एक अध्ययन

डॉ० देवेन्द्र प्रताप सिंह
प्रवक्ता संस्कृत विभाग
गनपत सहाय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुल्तानपुर

कोई भी साहित्य अपने काल के समाज का दर्पण स्वरूप हुआ करता है। कवि या रचनाकार जिस समाज का अवलोकन जिस रूप में करता है, अपने साहित्य में समाज को उसी प्रकार प्रस्तुत कर दिया करता है:- ''जित देखूं तित श्याम मयी रे'' (सूरदास)। कवि वर्णन की दृष्टि से पूर्णतः स्वतन्त्र होता है, इसी भाव से युक्त होकर वह अपने काव्य जगत् की सृष्टि कर देता है। इसी कारण से कवि को काव्य जगत् हेतु प्रजापति ब्रह्मा की उपाधि से मण्डित किया गया है:-

ओ3म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।यद् भद्रंतन्नऽआसुव।। (यजुर्वेद अ030/मं.03)

मनुष्य जिन घटनाओं में दिव्यता तथा अलौकिकता का परिदर्शन करता है उनसे देव शास्त्र की गाथाओं की अवधारणाओं का उद्भव होता है। प्राकृत मनुष्य चराचर में निहित शक्तियों तथा

गोचर घटनाओं को जब विश्लिष्ट करने का प्रयास करता है तब अनेक अचेतन पदार्थों को रूपायित होना पड़ता है। कथाकार मनुष्य अपने कथा के सूत्रों में समूचे परिवेश को चिन्मय कर पिरो देता है। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति की विविध घटनाओं में मानवीय चेतना को आरोपित किया है। प्रकृति के वे सभी उपसर्ग जिनसे मनुष्य को भय मिला अथवा प्रीति, संस्पर्श का अनुभव हुआ, वही वैदिक ऋषियों के आराध्य बन गये।

आर्यों ने प्रमुख ग्रन्थ के रूप में वेद को ही स्वीकार किया है तथा उनका समय भी वैदिक समय ही था। वैदिक काल में आर्यों ने तीन महत्वपूर्ण कार्य किये पहला-देश की विजय करके अनार्यों को वनों और पर्वतों की ओर धकेल दिया और अनेक को दास बना लिया। दूसरा उन्होंने विजित प्रदेशों के अतिरिक्त अन्य निकटवर्ती भागों का उपनिवेशीकरण किया और तीसरे देश को एक संस्कृति प्रदान की। इस प्रकार वैदिक अध्ययन का समय स्वर्णकाल था। इस प्रकार वैदिक समाज में सुन्दरता और रहस्य तथा जीवन के आनन्द का वर्णन है इसके साथ ही ऋचाओं में आज के समाज की दशा का वर्णन है।

वैदिक समाजशास्त्र

श्रीमती हिमांचल कुमारी
शोध छात्रा
चौ0 चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है, इस बात को यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कुछ इस तरह व्यक्त किया है Man is the Social animal यदि यह कहा जाए कि समाज शास्त्र ही मानवधर्म है अथवा मानव धर्म का ही अपर पर्यायवाची शब्द समाज शास्त्र है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कतिपय प्रगतिवादी समाज शास्त्री मानव समाज को जाति के आधार पर बॉटने का तथा सामन्जस्य व सौहार्द बिगाड़ने का आरोप वेदाधारित ब्राह्मणवादी सोच पर लगाते हुए नहीं थकते। ऐसा करें भी क्यों न? वेद की व्याख्याओं की श्रृंखला में महर्षि दयानन्द से इतर व्याख्याकारों ने वेद की इसी तरह की व्याख्याएं की कि ब्राह्मण तो परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ इसलिए सर्वश्रेष्ठ है तथा क्षत्रिय वैश्य क्रमशः भुजाओं व जंघाओं से उत्पन्न हुए हैं तथा शूद्र क्योंकि परमात्मा के चरण से उत्पन्न हुआ इसिलिए चरणों में ही उसका स्थान है। इस प्रकार जन्माधारित जाति व्यवस्था को वेद द्वारा प्रमाणित कर प्रस्तुत किया गया और इस धारा के व्याख्याकार इतने पर ही संस्तुष्ट नहीं हुए अपितु स्त्री व शूद्र को वेद पढ़ने या सुनने तक का अधिकार न देना अपनी बड़ी उपलब्धि मानते थे। जबकि वेद जिस समाज के निर्माण की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं वह सर्वथा व्यावहारिक सर्वहितकारी एवं सर्व स्वीकार्य है। क्योंकि समाजमें कर्माधारित वर्ण व्यवस्था वेद को स्वीकार्य है।

वेद के अनुसार यह जड़ जगत् भी एक व्यवस्था में रहता है। इस विशाल ब्रह्माण्ड का संगठन एक परिवार ही है। इस परिवार का स्वामी स्वयं परमात्मा हैं। संसार की विविध शक्तियाँ

उसके अंगरूप है। अथर्ववेद में आता है सूर्य एवं चन्द्र उस महान विराट् ब्रह्म के नेत्र तुल्य हैं अग्नि मुख तुल्य है, उस परब्रह्म को हमारा श्रद्धापूर्वक अभिवादन है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जड़ पदार्थ भी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार सृष्टि का संचालन करने में योगदान दे रहे हैं उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि वे अपनी–अपनी योग्यता एवं पात्रता के आधार पर अपना अपना कार्य एवं जीवन निर्वाह करके समाज के एक विशाल जीवन में एक दूसरे के अंगांगी बनकर, एक दूसरे के सहयोगी बनकर एवं एक दूसरे के पूरक बनकर एक ऐसे समाज का निर्माण करें जहाँ आपस में टकराव न हो प्रेम हो, ईर्ष्या न हो सौहार्द हो, स्वार्थ न हो समर्पण हो। वेद का आदेश है ए मनुष्य तू इस मानव देह को प्राप्त कर मनुष्य बन, मननशील बन। (मनुर्भव ऋ0 10.53.6)

वेद मनुष्य के लिए केवल मानववाद का उपदेश देता है। मानव, मानव की सब प्रकार से, सब ओर से सब साधनों से प्रीतिपूर्वक अच्छी प्रकार रक्षा करने का प्रयास करें (पुमान् पुमान्सं परिपातु विश्वतः यजु0 29.51) जबकि आज संसार में मनुष्य अनेक प्रकार के वादों वर्गवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद आदि में विभक्त हो गया है एवं एक दूसरे को विनष्ट करने के लिए उद्यत है। इस वर्ग, जाति, क्षेत्र, विचार, सम्प्रदाय आदि से ऊपर उठकर उच्च समाज बनाने को आदेश वेद देता है। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रतिपाद्य वैदिक समाज शास्त्र ही है जिससे समाज को समज बनने से बचाया जा सके।

वेदेषु समाजशास्त्रम्

आँचल गुप्ता
शोध छात्रा, पालीभीत

वेद कहने मात्र से ही हमें ईश्वरीय ज्ञान का साशय होता है। हिन्दू धर्म की परम्परा के अनुसार ऋषि मुनियों ने सर्वप्रथम जिसको खोजा वह ज्ञान ही वेद कहलाये। वेद ज्ञान के वे मानसरोवर है जहां ज्ञान की विभिन्न धारायें विभिन्न मार्गों से वहकर भारत के ही नहीं, समस्त जगत् के प्रदेशों को उर्वर बनाती हैं। वेद ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त करने के लिए तत्कालीन समाज को जानना अति आवश्यक है। वेदकालीन समाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलने के लिए वर्ण व्यवस्था को चार भागों में बॉटा गया था – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण व्यवस्था का उल्लेख ऋग्वेद में इस प्रकार किया है–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। (ऋग्0 10/90/12)

वेदकालीन समाज पितृमूलक समाज था अर्थात् पिता ही परिवार का मुखिया होता था और माता गृहस्वामिनी। तत्कालीन शिक्षा सुव्यवस्थित रूप से छात्रों को दी जाती थी। पुत्र के साथ पुत्रियों को भी शिक्षा प्रदान की जाती थी।

उस समय विवाह सुव्यवस्थित प्रथा थी। विवाह के लिये माता-पिता की सम्मति का होना आवश्यक था। अभ्रातृका कन्या का विवाह बहुशः नहीं होता था क्योंकि उसका पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी न होकर अपने नाना की सम्पत्ति का अधिकारी होता था।

वैदिक साहित्य में समाज की अवधारणा

ओजोव्रत
शोधछात्र, लखनऊ वि0वि0, लखनऊ

व्यक्ति माता के गर्भ में एकल रूप में ही प्रादुर्भुत होता है। परन्तु धरती पर अवतरित होते ही असंख्य संबंध जैसे माता-पिता, पितामह चाचा मामा इत्यादि उसके साथ सन्निहित हो जाते हैं। भावी जीवन का वर्तन उसको उन्ही सम्बन्धों की परिधि में रहकर करना पड़ता है। जब वह बाल्यकाल में प्रवेश करता है उसके साथ ही इनके अतिरिक्त बाह्य अपरिचित व्यक्तियों के साथ ही उसका व्यवहार प्रसरित होने लगता है। उसके जीवन में कई खट्टे-मीठे अनुभव जुड़ने लगते हैं। कालान्तर में सोंचने के लिए विवश हो जाता है कि वह किस तरह का व्यवहार तथा कैसे लोगों का संग करें। यदा-यदा सही दिशा निर्देश के अभाव में कुपथ पर चल पड़ता है। लोग उसे असामाजिक कहकर तिरस्कृत करने लगते हैं। अतः समाज के अनुरूप समात, सहयोग सहानुभूति तथा संवेदनशीलता का व्यवहार करके वह एक सामाजिक प्राणी बनने के योग्य हो सकता है। वास्तव में समाज और सामाजिक व्यवहार कैसे होने चाहिए इस विषय पर किञ्चित् विचार करना उचित है।

समाज का अर्थ- 'समम् अजन्ति जना: यस्मिन् स समाज:'
जहाँ व्यक्ति समानता के साथ एक होकर गति करते हैं वह समाज है।

ऋग्वेद के शब्दों में

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

समाज वही है जहाँ सभी लोग परस्पर मिलकर विचारकर सत्यासत्य का निर्णय लेकर प्रीतियुक्त व्यवहार करें।

Socio-cultural impacts of Science and Technology vis-a-vis Sustainable Development

Dusyant Singh ,
GKU, Haridwar

Ayaz Ali
D.A.V. College, Muzaffarnagar

Although we have a rich scientific heritage for a thousand of years but due to some socio-cultural transformations and contamination of our culture with intrusions, our scientific base weakened to some extent which renders us isolated from the global scientific streams So it become pre-requisite to maintain

our scientific temper and its co-relation with social, economic, administration, and cultural aspects to ensure the multi-dimensional development of the nation and prove our scientific potential globally. This paper reflects how multi-disciplinary aspects of science and technology affects society, nationally and globally to ensure the pace of sustainable development. Further this paper also includes the future prospects of Science and Technology linked with global development stream seeking sustainable development.

This paper also speak about the co-evoluation of science and society ; scientists and technocrats benefited the society multidimensionally positively as well as negatively although positive aspects are quite unavoidable and highly appreciable. It is not to say that this paper also reflects about the need of socio-cultural orientation in science and technology and how the socio- cultural orientation in science and technology can play a crucial role in developing a integrated cultural system nationally as well as globally. This integrated cultural system would initiateco-action between various cultures of the world and coevoluation of a composite culture globally.

अध्यात्म

कैवल्योपनिषदि ब्रह्मात्मानुसन्धानम्

डॉ० उमारानी त्रिपाठी
आचार्या, संस्कृत विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सर्वोपनिषदः वेदानां मथितार्थभूताः। उक्तमपि मुण्डकोपनिषदि-'तिलेषु तैलवद् वेदेषु वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः' अर्थात् वेदेषु वेदान्तदर्शनं सर्वात्मना अनुस्यूतं वर्तते। उपनिषत्सु तत्त्वदर्शीनां ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रकाशिता। अत्र तत्त्वसाक्षात्कारकृद्भिः स्वकं अपरोक्षानुभवात्मकं ज्ञानं तत्प्राप्तिसाधनञ्च प्रतिपादितम्। उपनिषदवाङ्मये कैवल्योपनिषद् विलक्षणमपूर्वञ्च वर्तते। आचार्य-भगवत्पादेनापि प्रमाणत्वेन समादृता एषा लघुकलेवराऽपि वेदान्तस्यनिगूढात्मकं तत्त्वज्ञानं दधाति।

शोधपत्रेऽस्मिन् ''कैवल्योपनिषदि ब्रह्मात्मानुसन्धानम्'' इति विषयमधिकृत्य समीक्षा प्रस्तूयते। अत्र विचार बिन्दवस्सन्ति-

1. कृष्णयजुर्वेदीयेयमुपनिषद् वेदान्तविज्ञानेन सुनिश्चितार्थानां बुद्धाद्वैतज्ञानिनां कृते संन्यासयोगादेव ब्रह्मात्मलोकाभिगमनं प्रतिपादयति।
2. अत्र एकस्यैव सद्वस्तुन अद्वितीयत्वं निगदितम्। ततश्च सकलं कार्यकारणात्मकं जगत्प्रपञ्चं प्रसूतम्। सः परमात्मा स्वकीयया मायया परिमोहितः जीवरूपेण विविधशरीरमास्थाय सर्वाणि कर्माणि करोति। पुनश्च, जन्मान्तरकृतकर्मजन्यसंस्कारादेव सुषुप्त्यादिदशायां विषयोपभोगैः परितृप्तिमेति।
3. स एव परमात्मा सकलजगत्प्रपञ्चजातस्याधिष्ठानः सर्वानुस्यूतत्वात्। यत्र स्थूलादिपुरत्रयं प्रलीयते। जगत्यस्मिन् भोग्यभोक्तृभावेन स एव अनुवर्तते।
4. अत्र ब्रह्मात्मैक्य विज्ञानं प्रकाशयन् निगदितं यच्च जगदधिष्ठानभूतं कार्यकारणात्मकं सुसूक्ष्मं नित्यं परमतत्त्वं वर्तते। तत्त्वमसि तदेवाहमिति तत्त्वानुसन्धानमेव कैवल्यप्रदं भवति।
5. ब्रह्माभिन्नोऽहं चिन्मयः विश्वसाक्षी सदाशिवः। मयि सर्वं जगत् प्रतिष्ठितं मय्येव सञ्जातं मयि च सर्वं लयमेति तद् ब्रह्मद्वयमहमस्मि इति ब्रह्मात्मानुसन्धानमेव आत्मनः ब्रह्मात्मकं विराट् स्वरूपं प्रकाशयति। तदा वेदैरनेकैरहमेव वेद्यः वेदज्ञः वेदान्तकृदिति ज्ञात्वा नरः शुभाशुभकर्मजन्य पुण्यपापेभ्यः निर्लिप्तो भवति। अनेन तत्त्वज्ञानेन संसारबन्धन निवृत्तिपूर्वकं कैवल्यमाप्नोति।
6. अत्र तत्त्वज्ञानोपलब्धये तु श्रद्धा, भक्तिः, ध्यानं योगश्च साधनत्वेनाङ्गीकृतम्। अस्यामेव प्रणवजपमातहात्म्यं प्रथयन् मोक्षकामानां कृते अन्तःकरणमुत्तरारणिं प्रणवञ्चोर्ध्वारणिं कृत्वा ज्ञानंमन्थनाभ्यासाद् बन्धकारकानां कर्मणां दग्धबीजत्वमप्यङ्गीकृतम्।

इत्थं स्पष्टं भवति यत् कैवल्यलाभाय ब्रह्मात्मानुसन्धानात्मकं ज्ञानं निश्चप्रचमनिवार्यम्।

मन्त्र एवं उनकी रहस्यात्मक शक्तियाँ (ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के आधार पर)

विनीता कुमारी
शोधछात्रा, बरेली कॉलेज, बरेली

बहुत प्राचीन काल से यह विश्वास चला आ रहा है कि ऋषियों ने योगबल एवं तपोबल से प्रथम बार वेदों का दर्शन किया। वेद-मन्त्रों का प्रथम बार दर्शन करने वालों का नाम आगे चलकर ऋषि पड़ा, जिनमें पुरुष और महिलायें दोनो थे।

मन्त्र वैदिक ज्ञान-ऋचाओं अर्थात् मन्त्रों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। जैसे दर्शन ग्रन्थों का ज्ञान कारिकाओं के द्वारा प्रतिपादित हुआ है, जिस प्रकार व्याकरण ग्रन्थों का समग्र ज्ञान करके सूत्रों में समाविष्ट है और जैसे काव्यों-महाकाव्यों का विषय-प्रतिपादन मन्त्र हैं। ऋषियों ने जिस महान् ईश्वरीय ज्ञान का साक्षात्कार किया वह ज्ञान जिन शब्द नियमों या वाक्य समूहों में निबद्ध है उन्हीं शब्द समूहों एवं वाक्य समूहों का अभिधान मन्त्र है।

वैयाकरणों ने मन्त्र शब्द का परम्परागत संगत्यर्थ तीन प्रकार से किया है - ज्ञानार्थक विचारार्थक और सत्कारार्थक। दिवादिगण की ज्ञानार्थ प्रतिपादक 'मन' धातु में 'ष्ट्रन' प्रत्यय जोड़ देने से 'मन्त्र' शब्द व्युत्पन्न होता है, जिसका अर्थ निकलता है - 'मन्यते (ज्ञायते) ईश्वरादेशः अनेन इति मन्त्रः। अर्थात् मन्त्र उसको कहते हैं जिससे ईश्वरीय आदेशों की जानकारी प्राप्त हो।

ऋग्वेद के सप्तम मण्डल में वसिष्ठ ऋषि को हर प्रकार के विष के प्रभाव को दूर करने की रहस्यमयी शक्तियों से युक्त कहा गया है चाहे वह विष किसी पौधे, खनिज, कीट या सरीसृप के हों। ये सतत अनिद्रा के रोग को अपनी दिव्य शक्तियों से नियंत्रित करने में सक्षम हैं जिनके द्वारा ये मनुष्यों व पशुओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी शयन हेतु बाध्य कर सकते हैं।

वेदों में वर्णित विज्ञानवाद, अध्यात्मवाद एवं रहस्यवाद की अवधारणा

दयाशंकर मिश्र
शोध छात्र संस्कृत- विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद के तत्त्वों में आधुनिक विज्ञान से भी उदात्ततर वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। वेदार्थ की उपेक्षा करने के कारण ये तत्त्व हमारे लिए विस्मृतप्राय हो गये हैं। वर्तमान विज्ञान का मूल आधार विद्युत् शक्ति है। वैदिक विज्ञान का मूल आधार प्राण शक्ति है, यह प्राण शक्ति विद्युत् शक्ति

की अपेक्षा बहुत व्यापक है। विद्युत शक्ति भी प्राण शक्ति का ही एक भेद है किन्तु इस प्रकार अनन्त भेदों का समावेश प्राण शक्ति में हो जाता है। प्राण के ही भेद ऋषि पितृ देवता, गन्धर्व, असुर आदि हैं, जिनका संकेत स्थान स्थान पर मन्त्रों और ब्रह्मणों में प्राप्त होता है। ये भेद न केवल संसार के कुछ सर्वोकृष्ट और गम्भीरतम धर्मो के, अपितु उनके कुछ सूक्ष्मतम पराभौमिक दर्शनों के भी सुविख्यात आदिस्रोत के रूप में माने जाते है। वेद यह उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य के लिए माना हुआ नाम हे जहाँ तक कि मनुष्य के मन की गति हो सकती है। स्वयं ऋग्वेद मानव विचार के उस प्रारम्भकाल से आया एक बड़ा भारी विविध उपदेशों का ग्रन्थ है जिस विचार के ही टूटे फूटे अवशेष ये ऐतिहासिक एल्सिनियन तथा ऑफिफ रहस्य वचन थे। ऋषि सूक्त का वैयक्तिक रूप से स्वयं निर्माता नहीं था, वह तो द्रष्टा था एक सनातन सत्य का और एक अपौरुषय ज्ञान का।

वेदों में वर्णित शरीर

डॉ० सुमन शर्मा
व() प्रवक्ता संस्कृत विभाग
देव समाज कॉलेज फॉर वूमैन, फिरोजपुर

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' हमारा यह शरीर धर्म कर्म का प्रथम साधन है। प्रथम साधनभूत इस शरीर का निर्माण कैसे हुआ? इसका स्वरूप कैसा है, सर्वप्रथम हम श्रुतिसम्मत स्थूल शरीर के अन्नमयकोश विज्ञान पर दृष्टिपात करते हैं।

चारों वेदों में भिन्न भिन्न रूप से उस -उस प्रसंगवश स्थूल शरीर के अंगों का वर्णन उपलब्ध होता है।

ऋग्वेद के आठवे मण्डल में शरीर विज्ञान के वर्णन में चक्षु कर्ण मुख हस्त पैर तथा मुख में स्थित रसना का देवत्व प्रतिपादित किया गया है। इन्द्रियों में अपने ही तेज से प्रकाशित चक्षु को प्रधान स्थान प्रदान किया है।[1] कर्ण को कर्ण देव की संज्ञा प्रदान कर वर्णित किया गया है कि कर्ण देव मन के सहयोग से शब्द सुन कर ग्राह्य को ग्रहण कर मन के माध्यम से आत्मदेव तक पहुँचाता है। मुखदेव तीव्र आयुधरूप दांतों से भोज्य पदार्थों को पीसता है अतः उसे सुखदायक भेषज्यधारी की संज्ञा प्रदान की है।[2] हस्तदेव अन्य देवों के मार्गो की रक्षा करता है। चोर के समान देवों में निहित निधियों को देख लेता है तथा कष्ट निवारण करता है।[3] चरणदेव सूर्य के समार्थ्यवाला होने के कारण विस्तीर्ण के कारण विस्तीर्ण कीर्तिवाला है, चरणदेव के गमन सामर्थ्यवाला होने के कारण विस्तीर्ण कीर्तिवाला है, चरणदेव के गमन सामर्थ्य से अन्य सभी देव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।[4]

मुख को भी देव की संज्ञा प्रदान कर उपमा स्वरूप कहा गया है। यथा मुखदेव के दर्शन अपने पराये का परिचय प्राप्त होता है। मुख के भीतर स्थित रसना घृतादि खाद्य पदार्थों का आस्वादन करने का मुख्य काम करती है।[5]

स्थूल शरीर अथवा अन्नमयकोश के प्रभेद

ज्ञानेन्द्रियां	कर्मेन्द्रियाँ
चक्षु	हस्त
श्रोत्र	पाद
नासिका	वाक्
रसना	पायु
त्वचा	उपस्थ

स्थूल शरीर के आश्रित अन्नमयकोश के अंग प्रत्यङ्गों का वर्णन वेदों में विशद रूप से उपलब्ध होता है।

सन्दर्भः-

1 योनिमेक आ ससाद द्योतमोऽन्तर्देवेषु मेधिरः।। ऋग् 3/29/2
2 तिग्ममेको विभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः।। ऋग् 3/29/5
3 पथ एकः पीपाय तस्करो यथा एष वेद निधीनाम्।। ऋग् 3/29/6
4 त्रण्येकः उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति।। ऋग् 3/29/7
5 सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरा सुती।। ऋग् 3/29/9

आचार्यों का दैवत चिन्तन

डॉ० सत्येदव निगमालंकार
रीडर, श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

प्रस्तुत लेख में विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रतिपादित देव अथवा देवता पद के अर्थों पर विस्तृत अर्थ विचार किया गया है। आचार्य दयानन्द ने आचार्य यास्क द्वारा प्रतिपादित देवता पद का विस्तृत अर्थ गृहीत करते हुए वेद का भाष्य प्रतिपादित किया है। स्वयं वेद में अनेकानेक देवताओं की चर्चा है तथा वहीं अनेकत्र एक ही देवता का वर्णन भी प्राप्त होता है। आचार्य शौनक का दैवतलक्षण यास्क की ही छायासे प्रतिबिम्बित है। लेखक ने दुर्ग महेश्वर आदि के दैवत चिन्तन को भी प्रस्तुत किया है।

यह शोध पत्र दैवत चिन्तन को नवीन प्रकाश विश्लेषणात्मक शैली में प्रदान करता है।

वेदों में दार्शनिक अध्यात्म तत्त्व

डॉ० धीरजकुमार
रमाला, बागपत

प्रति सर्गारम्भ में सच्चिदानन्द परमेश्वर मानव कल्याणार्थ वेद का प्रकाश करते हैं। वेद सब सत्य विद्याओं का आदिस्रोत है। वेदाश्रय से ही समस्त ज्ञान, विज्ञान, का संसार में प्रसार हुआ है। दर्शन विद्या का मूल भी वेद में विद्यमान है। वेदों में दार्शनिक अध्यात्म तत्त्वों का पर्याप्त वर्णन मिलता है। शरीर पंचभौतिक है। पंचभूत जड़ एवं ज्ञान शून्य हैं। आत्मा के सान्निध्य से ही शरीर में ज्ञान, प्रयत्न आदि गुण प्रकट होते हैं। ऋग्वेद के 1/164/37 और 1/177/3 मंत्रों में आत्मा के इच्छा द्वेष, सुख-दु:ख, ज्ञान एवं प्रयत्न इन छः गुणों का वर्णन मिलता है। वेद जीवात्मा को अमर्त्य अर्थात् अविनाशी कहता है। आत्मा बाल के अग्र भाग से भी सूक्ष्म और संख्या में अनेक हैं, जो अपने कर्मों के अनुसार फलस्वरूप सुख-दु:ख का भोग करती है।

आत्माओं से परम अर्थात् उत्कृष्ट परमात्मा है। आत्मा और परमात्मा का व्याप्य वयापक सम्बन्ध है। परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, वह अद्वैत है, वही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है। ईश्वर जीवों को उसके कर्मानुसार फल प्रदान करता है। ईश्वर में अनन्त गुण कर्म हैं। जबकि आत्मा के गुण कर्म परिमित हैं।

आत्मा के द्विविध करण दशेन्द्रियाँ बहिष्करण और मन बुद्धि, चित्त अहंकार अन्तःकरण है। वेद के शिवसंकल्प सूक्त में इनका विषद वर्णन मिलता है। अन्त:करण का वेदो में प्रायः 'मन' शब्द से ही कह कर वर्णन किया गया है। मन ही जीवात्मा के बन्धन और मुक्ति का कारण है। मुक्ति जीवन का परमोद्देश्य है। वेदों में दु:खों से निवृत्त होकर अमृत की प्राप्ति को मुक्ति कहा गया है। मुक्ति सान्त है, क्योंकि वह जन्य है। वेद मुक्ति से पुनरावृत्ति का समर्थन करते हैं।

Relevance Vedic-Medication in mordern era. : an analytical study

Dr. Shalini Shukla
Lecturer H.O.D.
Govt. P.G. College, Kotdwar

Everybody wants to be happy and the greatest happiness has been recognised a health disease- free body. So naturally foremost and contineous endeavour of the mankind has been to find out remedies for the various pains and diseases afflicting them. This gave birth to different systems of medicines in differ-

ent regions like Ayurveda, Allopathy, Unani, Homeopathy etc.

The vedic people had a very positive attitude towards life and believes in joyful living. The very first prerequisits of sound health free from ailmouts. In Prashopanishada's shantipath's hymn this feeling is well expressed.

ऊँ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँ सस्तनुभिर्व्यशेम हि देवहितं यदायुः॥

Vedic society was very close to nature. They used natural herbs as medicines for curing ailments. They tried to find out the nutritonal and medicinal properties of various food items and other natural things - plants, flowers, leaves etc.

Stress in life and remedy Through Vedic Teachings

Dr. Suchitra Mitra
Reader Deptt. of Sanskrit
Allahabad University, Allahabad

In psychology the term stress means tension but metaphysically this word can be used in the sense of bondage which leads to sorrow and suffering. According to vedic gospel when human soul (real man) who is actually the part of omnipresent sprit, is hidden the apparent man by his evil deeds then he feels stress.[1] Because he is then sorrounded by bondage of ignorance.[2] It is a state of a compact darkness which conceals the illumination of God, i.e. the eternal joy.[3] It is said in veda that a person who does what is enjoined by vedas gets the good result like heaven and enjoys happiness.[4] Buts one who indulges in prohibited acts sin and experiences misery.[5] This ignorance comes through evil forces. It is evident from the vedic myths that there is an inseperable pair of creation[6] They are good (सत्य) and evil (अनृत).[7] God is good,[8] he is considered as ever merciful, ever powerful, ever blissful, all poewerful and all knowing.[9] Evil is the reverse of good.[10] Evil always interferes with normal functioning of good actions.[11] These evil forces are supposed to cause harm and create numerous stresses in life. The vedic rishis entreated to God like this "Keep far from us all feeble, worthless sacrifice and drive away disease and every evil dream."[12] By worshipping God human soul can free from bondage which is nothing but stress in self. A man creates stress in life by his own deeds. When one indulges in activities prompted by impulses, passions and desires and these are not fulfilled, he is trapped into a mental state of stress or bondage. So Vedics Rishis always try to control the mind and the senses which is absolutely necessary inorder to realize himself They prayed ''असतो मा सद्गमय'' 'From evil lead me to good', तमसो मा ज्योतिर्गमय From darkness lead me to light'[13] Vedas emphasised that human soul always seek for that happiness which is eternal.[14]

1. न साम्पराय: प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्त वित्तमोहेन मूढम्।
   अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुन: पुनर्वशमापद्यते।। (Kath. UP. 1/2/6)
2. अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बाला:।
   यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुरा: क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।। (Mund UP 1/2/9)
3. अविद्यायामन्तरे वर्तमाना: स्वयंधीरा: पण्डितं मन्यमाना:।
   जङ्धन्यमाना: परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धा:।। (ibid 1/2/8)
4. प्र स: मित्र मर्त: अस्तु प्रयस्वान् य:ते आदित्य: शिक्षतिव्रतन।
   न हन्यते न जीयते त्वा ऊत: न एनम् अंह: अश्नोति अन्तित:न दूरात् Rigveda III/59/2,
5. Rigveda X/164; Atharva XII/5
6. द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। Shatpatha Brahmana I/I/I/3
7. Shatpatha Brahmana I/I/I/3
8. स्त्यमेव देवा: (ibid).
9. ever inerciful मीढ्व: Rigveda II/33/14; everpowerful (घोर: Rigveda II/12/5); ever merciful (सुशेव: Rigveda III/59/4); all knowing कविक्रतु: /I/I/5 Rigveda).
10. अनृतं असत्यमभूत.........Rigveda X/124/5 Sayanas commentry.
    तं सत्यं इन्द्रं उ स्तवाम न अनृतम् (Rigveda VIII/62/12).
11. असच्च अशुभम् अशनिपातनादिकं सत् वर्षणादिकं शोभनं कर्म (Rigveda VI/24/5).
12. अस्मत् अनिराम अनाहुतिं च अमीवां अन सुव दु:स्वप्नयं अप सुव। (Rigveda X/37/4).
13. Brh. Upanishad 3/28
14. यंत्रानन्दाश्च मोदाश्च मद: प्रमुद:। कामस्य यत्राप्ता: कामास्तत्र मामृत कृधि।। Make me immortal in that realm where happiness and transports where joys and felicities combine and longing wishes are fulfilled. (Rigveda IX/113/9).

Role of Upanisads in Social Reformation

Prof. K.V.Venkateswara Rao
Chirman P.G. Board of studies in Sanskrit
Andhra University, Visakhapatnam

nityas' are praised as the roots of the Aryan culture, which was the most civilised one of the world. The root 'vid' means to know. Therefore, Veda means that which serves as a means to get knowledge. It does not mean a simple knowledge but a knowledge that is complete and perennial is conveyed through 'vidajnane'. These are held by the Indians as the sacred sources of knowledge.As per Yajnavalkya, all the sastras are originated from the Vedas and all the Vedas are the sources of Dharma which means justice, law, righteousness and religion.

The text of each of the four Vedas have four parts namely Samhita, Brahmana, Aranyaka and Upanisad. The Samhita portion refers to the passages which are hymns of praise and which are required to be recited or sung during the performance of the sacred rites. The Brahmana portion refers to the passages which are explanatory of the ritualistic aspect of the hymns. The Aranyaka portion refers to the passages which are concerned with the rites to be performed by a man when leading a life of retirement in a forest. The Upanisadic portion represents the final stage containing the philosophical doctrines which are to be imparted to worthy disciples only.

Jnana through Karma is the guiding principle of the Vedas which was adopted in the Bhagavadgita also later. Detachment from Karma starts in the part of Aranyaka and once that is there the seeker rushes towards obtaining Jnana, the Upanisadic part. The superiority ofJnana when compared to Karma is evident but these two are interdependents. It is difficult to obtain Jnana without Karma. So much involvement in Karma makes one crave for Jnana, the real goal. This has been taught in the Upanisads and hence the importance of the Upanisads.

Great philosophers deem the Upanisads as the authentic sources of the Brahmavidya. Of the above ten Upanisads, available, the Mandukyopanisad is very small in size the Brhadaranyaka, as its name conveys, is very big. Whether big or small, all the Upanisads teach the philsophy of the Supreme soul. It is with this reason that these Upanisads arl:om the highest position. The sage Vyasa composed the Brahmasutras in .;)rder to expose the meanings of the Upanisads. Sri Sankara wrote .:ommentary on the Upanisads and the Puranas and Itihasas all came to exist to make available the vitals of the Upanisads to the world.

The principal subject in the Upanisads is the philosophy of the Paramatman. All the Upanisads expose the true nature of the Self and show to the world how to realize the philosophy of Atman. While this is the main object of the Upanisads, to achieve this object is not easy for the common people because of their relation to the study of the Vedas. The study of the Vedas has become very rare nowadays and naturally a doubt arises about the relevance of the Upanisads to the existing society, which is quite pertinent.

Though the Upanisads basically impart the Supreme knowledge of Paramatma and means to attain salvation, they also teach a wide variety of ethical knowledge which helps the human world to get benefit in multifarious ways. People seldom realize that their own deeds lead them to either good or bad. The injunctions that are preached in our Upanisads are to be obeyed like the orders of a king.

Nonadherence of ethical values, indifference to vital issues in life, disbelief regarding the life after death and consequences, ,all these are the reasons for the erring nature among people. The Upanisads show them that the theory of cause and effect applies here also. If good deeds are performed, good results come without fail. If all the people follow the ideals of the Upanisads whole- heartedly, a multifarious upliftment is assured. Even common men without the deeper knowledge of philosophy can benefit from the good sayings available in the Upanisads and lead a just life, which in turn guide them to the Ultimate.

Opposites in the Kathopanisad : A Complementarity View

Dr. S.C. Goswami

Pitampura, Delhi

The Upsnisads in general are the products of the revelatory and intuitive minds of the sages of ancient India. The structure and imagery of the Upanisadic literature are a proof of the illumined experience of the Rsis of the Vedic age who saw, felt and lived the One Truth (ekam sat) manifesting Itself as Many, That is why the Upanisads are unique in their approach towards seemingly opposite concepts, viz., Life and Death; Knowledge and Ingnorance; Localized and Delocalized; One and Many; etc. that one encounters particularly in the Isa and Katha. They assert the simultaneous validity of such opposites.

That opposites are complementary and not contradictory is also the foundation of modern science. In fact, one of the most revolutionary concepts of modern seience, emerging from quantum physics is that of complementarity formulated by the Danish physicist Niels Bohr. The main feature of this concept is the joining together in a creative synthesis of contrary properties like the wave and particle natures of light. Complementarity of opposites is thus the undercurrent of not only modern science but also of the Upanisadic Wisdom.

The Vedic Thought Samadarsana (Even Eyedness) Paves the way for Peaceful Living

Dr. Trinath Hota

Lecturer in Deptt. of Sanskrit

Acharya Harihar Mahavidyalaya, Bhubaneswar.

"Mitrasya ma caksusa sarvani bhutani samiksantam Mitrasyaham caksusa sarvani bhutani samikse Mitrasya caksusa samiksamahe"

May all creatures look upon me with the eye of a friend. Look upon all creatures with the eye of a friend. (Abandoning violence and enmity) may we treat one another as friends) " (Vajasaney is amhita 36/18)

The word veda (Vid+nic+ac) derived from the verbal root vid to Know mean knowledge. The vedic sanskrit Literature is vast and occupies a very significant position in the regligious and cultural history of the world. It is very difficult to present the values of vedic education in detail. But the utility of Samadarsana in human life has a great value.

Most of us are prectical men of the practical world. We do not want to trouble ourselves with metaphysics. For us, only what is of assistance to us in our practical life, has only value. We are unwilling to waste time thinking about samadarsana.

But if we think deeply and consider properly, our practical experience it self will reveal to us how useful Samadarsana is in everyday life. We need it to live in peace and happiness. But in case of person who lives in the forest alone can live without it.

The basic tenet of even-eyedness is that 'I' am alone, I am not 'I' ness comprises the entire world. This 'I' ness even axtends to the limits of the Universe Each part of the universe is analogous to a part of me. To exclude any part of it is to exclude a part of myself. So in Vajasaneyi Samhita 40.7 it is told-

"The wise man to whom all living things in the world are but different parts of a single life, has no sorrow, no grief and no illusion"

Samadarsana is therfore of great value to a practical person. So the Bhagavad gita teaches samam pasyan hi sarvatra samavasthitamiivaram nahina styatmanatmanam to yati param gatim. (Gita-13/28)

(Just as the soul residing in the body inhabits all parts of it to an equal degree, even so the single life which inhabits the world inhabits each of its parts equally. He who has realised this does not strike himself.)

नारी

वेदों में नारी उत्थान

डॉ० ममता गंगवार
रीडर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास
महिला महाविद्यालय(परा.), कानपुर

मानव जीवन पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है। सृष्टिक्रम में नारी का महत्वपूर्ण स्थान तथा उसका प्रभूत योगदान है। नारी किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का मापदण्ड मानी जाती है। सामाजिक परम्पराओं के अनुसार प्राचीन भारत में नारी का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण व गरिमामय था। नारी को सम्पूर्ण मानव जीवन का आधार माना गया है। विश्व की अन्य किसी भी प्राचीन जाति में नारी का इतना सम्मान न था जितना कि भारत में वैदिक कालीन नारी का था। नारी जीवन की दृष्टि से भारतीय इतिहास में वैदिक काल स्वर्णयुग माना जा सकता हैं। ऋग्वेद में नारी को ब्रह्मा, सरस्वती रूपा तथा सम्पूर्ण जीवन की आश्रय दाता कहा गया है। ऋग्वेद में ही नारी को शुभ लक्षण, उत्तम यश, उत्तम लाभ एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने वाली घोषित किया गया हैं, यजुर्वेद में नारी को सूर्य के तुल्य तेजस्विनी, ध्रुव के समान निश्चल भूमि के समान सव गृहस्थ धारण करने वाली सभी गुणों से युक्त कुल का प्रकाश करने वाली घोषित किया गया हैं तथा पुत्र के समान पुत्री की दीर्घायु की भी कामना की गई हैं तथा बताया गया हैं कि नि:सन्तान लोग दूसरों के पुत्रों को गोद ले लिया करते थे।

वैदिक वाङ्मय में नारी शिक्षा की यथेष्ट व्यवस्था तथा प्रचार था। उच्च स्तर के परिवारों में बालिकाओं का उपनयन संस्कार होता था फिर उन्हें सुव्यवस्थित शिक्षण दिया जाता था। साधारणत: गृह कार्य, कताई, बुनाई, ललित कलाओं, काव्य कला, संगीतकला, नृत्य कला, वाद्य यंत्र तथा अभिनय आदि की शिक्षा दी जाती थी। ब्रह्मवादिनी छात्राएं ब्रह्म चिन्तन तथा ब्रह्म विषयक व्याख्यान में अपना तपपूर्ण जीवन ब्रिताती, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म तत्व के व्याख्यान तथा परिष्कार में जाने माने दार्शनिकों के साथ शास्त्रार्थ करती थी। ऋग्वेद के अनुसार स्त्रियां वेदाध्ययन करती, कविताएं बनाती अनेक सूक्तों की रचनाएं करती, अध्याय कार्य करती तथा यज्ञ जैसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करवाती थीं। वेद मंत्रों में अनेक ऋषिकाएं होने का श्रेय ऋषि नारियों को है। मेघनी गार्गी, घोषा, अपाला, सिक्ता, निवावरी, विश्वास, लोषामुद्रा, अनुसूया मैत्रेयी, अरून्धती, मातंगी, सुलभा तथा कात्यायनी आदि पंडिता एवं वेदों में पारंगत नारियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

वैदिक वाङ्मय से ज्ञात होता हैं कि नारियों की सहभागिता घर से लेकर युद्ध के मैदान तक होती थी। ऋग्वेद में विष्पला का संदर्भ मिलता है कि वह लड़ाई के मैदान में घायल हुई थी तथा अश्विनों ने उसकी चिकित्सा की थी। उस समय स्त्रियां खेलकूद प्रतियोगिताओं में भी भाग लेती हैं। मुद्गल अपनी पत्नी मुदग्लानी के कारण रथ दौड़ प्रतियोगिता में विजयी हुआ था।

वैदिक संहिताओं में नारी के अधिकार

डॉ० प्रतिभा सक्सेना
व्याख्याता, संस्कृत विभाग
श्री बालाजी महिला स्नात0 महा0, मेंहन्दीपुर बालाजी (दौसा)

संहिता वाङ्मय के साक्ष्य के आधार पर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि तत्कालीन नारी सुरक्षित नही स्वरक्षित थी। सुसमाज की संरचयित्री नारी की सौम्यता, सौष्ठव का सौरभ सम्पूर्ण समाज को सुरक्षित करता था। वह नर के साथ कदम से कदम मिलाकर चलती थी व पुरुष वर्ग के समान विविध अधिकारों व अपने गृहस्थ जीवन में यज्ञादि अधिकारों से सुसज्जित व अंलकृत थी ''शुद्धापूता'', ''यज्ञिया'' विशेषण इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि उस समय मारी समाज यज्ञ में भाग लेने एवं योग्यतानुसार यज्ञ करने की अधिकारिणी थी। वह स्वेच्छया संन्यासाश्रम में प्रवेश करने की भी अधिकारिणी थी। ऋक्सहिता में अरण्यानी शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है-संन्यासाश्रम को प्राप्त या उसकी जिज्ञासा प्राप्त करने वाली सुशिक्षिता नारी-

''वृषा वृक्षारवाय खाटा वदते यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते। ऋक् १०/४६/२

प्रशासन के क्षेत्र में भी नारी को विधान निर्मात्री, न्यायकर्त्री व युद्ध करने का अधिकार प्राप्त था। ऋकसंहिता में यह स्पष्ट संकेत है कि महर्षि मुद्गल के गोधन अपहरण होने पर उसकी पत्नी मुद्गलानी ने रथारोहण किया-

''रथीरभून्मुद्गलानी गविस्टौ भरे। १०/१०२

विद्याटिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका आदि में सहभागी होती हुई संहिताकालीन परामर्शदात्री नारी दौत्य कर्म में भी निपुण थी। इनके अतिरिक्त उसे अन्य अधिकार जैसे ज्योतिर्विद्, भूगर्भविद् प्रशिक्षिका अपधि आदि अधिकार भी प्राप्त थे।

इस प्रकार संहिता कालीन नारी यज्ञ, प्रशासन, न्याय, युद्ध, दौत्य आदि सभी कार्यो को सुसम्पादित करने में सक्षम अधिकारिणी थी इसके अतिरिक्त ज्ञान के विविध स्रोतों में भी उसकी पैठ थी जिसके कारण वह राष्ट्र के श्रेय और प्रेय में नर की सहयोगिनी बनकर उसके कंधे से कंधा मिलाकर भाग लेती थी, यही कारण है कि संहिताकालीन पुरुष नारी को ''कुलपा'' (अथर्व. 1/14/3) कुलका पालन करने वाली ''ध्रुवा'' (यजु. 12/53) दृढ़संकल्प वाली, ''पुरन्धिः'' (यजु. 12/53) दृढ़संकल्प वाली, ''पुरन्धिः'' (यजु. 14/2) समाज की नेत्री, ''प्रतरकी'' (अथर्व. 14/2/26) जीवन की पतवार, ''शिवा'' (अथर्व. 19/40/2) कल्याण कारिणी, ''सुमंगली'' (अथर्व. 14/2/26) मंगलकारिणी आदि उन विशेषणों से सम्बोधित कर उसकी श्रेष्ठता और ज्येष्ठता को स्वीकार करता है।

वैदिक समाज में नारी की गरिमा

सुजाता मंगोत्रा
शोधछात्र
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वैदिक साहित्य में नारी से सम्बन्धित उल्लेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक सामाजिक जीवन में नारी का स्थान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण था। जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरुष का कार्य अपूर्ण रहता है उसी प्रकार स्त्री के बिना पुरुष का जीवन अपूर्ण रहता है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था इसी तथ्य को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। वैदिक साहित्य में स्त्री को पुरुष की अर्धाङ्गिनी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि पत्नी, पति की आत्मा का आधा भाग है और पुरुष पत्नी को प्राप्त कर पूर्ण हो जाता है। स्त्री व पुरुष पारिवारिक जीवन के दो पहलू हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक जीवन में दो प्रकार की जिम्मेदारियाँ रहती हैं आन्तरिक जीवन सम्बन्धी व बाह्य जीवन सम्बन्धी, जिनसे क्रमशः स्त्री व पुरुष सम्बन्धित रहते हैं। पारिवारिक सुख व शान्ति के लिए दोनों प्रकार के जीवन का सुचारु संचालन आवश्यक है। इन दो में से किसी एक में भी कमी रह जाए तो जीवन दुःखमय हो जाता है।

वेदकालीन समाज में स्त्री का सम्बन्ध केवल पारिवारिक जीवन से ही नहीं था बल्कि सामाजिक जीवन में भी उसे अपना विकास करने का पूर्ण अवसर दिया जाता था। वैदिक युग में लड़कों के समान लड़कियों की शिक्षा की भी सुचारु व्यवस्था थी। स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था के कारण शिक्षित स्त्रियों की कमी नही थी। वैदिक युग में स्त्रियाँ ऋषि पद को भी प्राप्त होती थी। स्त्रियाँ सेना में भी भर्ती होती थीं। ऋग्वेद में स्त्री योद्धाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक काल के सामाजिक जीवन में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था और पुरुषों के समान उन्हें भी शारीरिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास के अवसर प्रदान किए जाते थे। लेकिन कुछ तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरवैदिक काल में नारियों की दशा धीरे धीरे दयनीय हो गई और उनपर अनेक प्रकार की पाबन्दियाँ लगा दी गई।

उपर्युक्त तथ्यों का सम्पूर्ण विवरण शोध-पत्र में दिया जाएगा।

वैदिक वाङ्मय में नारी-विमर्श

सूरज राव
वरि0 शोध अध्येता
प्राकृत एवं जैनागम विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

श्रुत ज्ञान के अक्षयकोश वेद वङ्मय संसार में व्याप्त जड़ एवं चेतन-तत्त्वज्ञान के आदि स्रोत हैं। लोक व्यवहार से अध्यात्म के उच्च शिखर परमसत्ता से साक्षात्कार से समष्टि उपक्रमों का उल्लेख वेद वाङ्मय के लोक-कल्याणकारी स्वरूप के द्योतक हैं। वेद वाङ्मय से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में समाज में नारी का स्थान सर्वोपरि था। वैदिक काल में नारी ने अपने आचरण, कार्य और गुणों के कारण समाज में इस प्रकार की ख्याति प्राप्त कर ली थी कि उसके अभाव से समाज का धार्मिक एवं आर्थिक कार्य परिपूर्ण रूप से सम्पादित नहीं हो सकते थे। नारी का परिवार के प्रति समर्पण भाव-त्याग, संयम एवं सुगृहस्थ संचलन की सृकृत्यों के कारण श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थी। मानवीय जीवन को पूर्णताः प्रदान करने की अद्भुत क्षमता से परिपूर्ण वेद वाङ्मय में नारी का गौरव प्रतिष्ठित हैं। वैदिक-युग में नारी समाज एवं परिवार के परिष्करण एवं परिवर्धन की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं थी अपितु समाज एवं संस्कार की प्रत्येक गतिविधि में पुरुष की समान रूपा सहयोगिनी थी।

ऋग्वेद में वर्णित है-

अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते।
अताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥

-ऋग्वेद 10.86.9

यहाँ नारी वीर-प्रसूता जननी एवं वीरतापूर्ण कार्य सम्पादित करने वाली शक्तिरूपा के रूप में वर्णित है। वेदवाङ्मय में नारी को सुख-समृद्धि का कारक माना गया। ऋग्वेद में नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित करते हुए उसे कल्याणीजाया अर्थात् मंगलकारिणी स्त्री कहा है। साथ ही कहा गया है कि उसके घर में संगीत की मधुर ध्वनि होती है, घर में घोड़े-रथ आदि होते हैं।

जगत् के प्रौढ़ एवं प्राचीनतम साहित्य वेद-वाङ्मय में ही कहा गया है कि स्त्री ही ब्रह्म का स्वरूप है-

स्त्री हि ब्रह्मा वभूविथ॥

वेदों में नारी आदर्श

रवीश कुमार सिंह
शोध छात्र, समाज शास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

यह घोर विडम्बना है कि पुरुषों के जन्म का कारण स्त्रियाँ हैं और स्त्रियों के बहुआयामी शोषण और उनके साथ होने वाले अत्याचारों का कारण पुरुष ही हैं। सृष्टि में संख्या की दृष्टि से स्त्री एवं पुरुष समान हैं फिर भी उन्हें सदैव गौण तथा द्वितीय स्थान दिया जाता रहा है तथा शोषण और अन्याय का विषय मान लिया गया है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता कहकर उन्होंने जो वाचिक सम्मान नारी के प्रति प्रकट किया था, उसका प्रत्यक्ष अनुभव मध्यकालीन नारी कभी नहीं कर सकी। इसीलिए आधुनिक सुधारवादियों ने नए सिरे से नारी के जिस सम्मान और बराबरी की बात की जा रही है वही बात वर्षों पहले वैदिक साहित्य में की जा चुकी है। वैदिक नारी जीवन का एक अभिन्न अनिवार्य तथा आनंदमय अंग समझी जाती थी।

वैदिक मान्यताओं के अनुसार नारी के बिना यह सम्पूर्ण विश्व सार शून्य है। नारी की इस महत्ता तथा आवश्यकता के कारण ही वैदिक साहित्य में इसकी कामना और समुचित पालना प्रत्येक गृहस्थ से किये जाने का विधान है। ऐतरेय उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि नारी हमारी पालना करती है। अतः उसकी पालना करना हमारा कर्तव्य है। भारतीय नारी की दयनीय स्थिति का प्रमुख कारण प्राचीन भारतीय साहित्य तथा संस्कृति से विमुख होना है। हमें वेद तथा वेदांग के महत्व को समझना होगा। अन्यथा वेद जैसी इस अमूल्य निधि के होते हुए भी हम सदैव अज्ञान रूपी अंधकार में भटकते रहेंगे। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक नारी की गौरवमयी स्थिति का वर्णन किया गया है जो कि वर्तमान परिदृश्य में एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

वैदिक परिवार में नारी

डॉ० पूजा श्रीवास्तव
प्रवक्ता-संस्कृत विभाग
महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर

वैदिक साहित्य में नारी को बहुत आदरणीय स्थान दिया गया है। नारी का स्थान समाज के लिए सांख्यशास्त्र की प्रकृति के समान् है। जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरुष का कार्य अपूर्ण ही रहता है। उसी प्रकार नारी के बिना मनुष्य का जीवन ही अपूर्ण है। नारी का सम्मान केवल वैदिक युग में ही नही बल्कि उपनिषद् काल और स्मृतिकाल में भी था। आचार्य मनु की यह उक्ति

नारी जाति के प्रति धर्मशास्त्र प्रणेताओं के दृष्टिकोण को व्यक्त करती है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रियाः।।

पूर्व वैदिक समाज में मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी परिवार में स्त्री का एकाधिकार होता था। वह परिवार की मुखिया होती थी। उसके आदेशानुसार ही परिवार के सभी सदस्य कार्य करते थे। वंश परम्परा पुरुष के नाम पर न चलकर स्त्री के नाम पर चलती थी। वैदिक युग पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था लेकर आया। तब भी नारी अधिकारियों की दृष्टि से नारी को उच्चतम स्थान प्राप्त था। वैदिक परिवार में स्त्री की प्रधानता थी।

ऋग्वेद में पत्नी को गृहपत्नी अर्थात् गृहस्वामिनी कहा गया है– ''गृहं पत्नी यथासः''

वैदिक युग में नारी नर के अधिकारों के काफी निकट पहुँच जाती है। परन्तु धीरे-धीरे नारी की अवस्था काफी दयनीय होती जा रही थी। उपनिषद् काल के अन्त तक नारी की स्थिति काफी गिर चुकी थी और मुस्लिम युग में आते आते नारी अवस्था अत्यन्त कारुणिक हो गई। स्त्री को समाज में स्वाधीनता प्रदान करने वाली सुविधाओं का अन्त कर दिया गया, साथ ही बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, जैसी कुरीतियां प्रभावशाली हुई। आधुनिक काल में नारी की इस दयनीय स्थिति को दूर करने के लिए अनेक सरकारी, गैर सरकारी प्रयत्न किये गए आज नारी घर बाहर सभी जगह आत्मविश्वास व स्वाधीनता के साथ कार्य कर रही है। परन्तु वास्तव में देखा जाए तो वह इस पुरुष प्रधान समाज में पूर्णरूपेण सुरक्षित नही है। वैदिक समाज में नारी को लक्ष्मी कहा जाता था पर आज उसी लक्ष्मी को दहेज जैसी कुप्रथा के रहते प्रताडित किया जाता है, जला दिया जाता है इस तरह आज की स्थिति को देखते हुए कह सकते है कि वास्तव में वैदिक युग या वैदिक परिवार का इतिहास नारी भावना का स्वर्णिम युग था।

वैदिक समाज में स्त्री की भूमिका और आज की स्त्री

डॉ० अखिलेश कुमार दुबे
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लोहाघाट

वेद भारतीय संस्कृति परम्परा का मूलाधार है, लेकिन आज जैसे ही वेद का उल्लेख होता है कुछ तथाकथित प्रगतिशील कहे जाने वाले लोगों के मुख का स्वाद कड़वा हो जाता है। उनकी दृष्टि में वेद गैर -- प्रगतिशील, पुरातन पंथी, रूढ़ियों को पोसनेवाली परम्परा है। उनका विश्वास है कि वेद की स्त्री दलित, व्यक्तित्वहीन और दुःखी है जबकि वास्तविकता इसके सर्वथा उलट

है। वेदों में स्त्री व्यक्तित्व सम्पन्न, निर्णय लेने में स्वतंत्र और परिवार व समाज के लिए अनिवार्य स्तम्भ है। वेदों में ऐसे बहुत सारे प्रमाण हैं जो तथाकथित प्रगतिशीलों के उन आरोपों का खण्डन करते हैं जिनमें वे कहते हैं कि वेद में पुत्री जन्म काम्य नहीं है या वेद बहुपत्नी प्रथा का समर्थन करता है या वेद बहुपति प्रथा के हिमायती हैं या नारी को यज्ञादि जैसे धार्मिक कार्यों में बराबरी का हक नहीं है। मैं यहाँ कुछ प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो में दुहिता विराट्। (मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों और पुत्री तेजस्विनी हो)

यज्ञादि, धार्मिक कार्यों में स्त्री की बराबर की भूमिका पर प्रकाश डालने वाली वैदिक उक्तियों इसप्रकार है- आधत्त पितरो गर्भम्। 2 और प्रघासिनो हवामहे।3

वेद तो विधवा स्त्री के भी पुनर्विवाह की बात करते हैं। सती प्रथा या सह मरण का समर्थन किसी भी वेद में कहीं नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वेद वर्णित समाज में स्त्री की भूमिका निर्णायक है। वह परिवार और समाज के लिए उतनी ही उपयोगी है जितना कि पुरुष। वेद कहीं भी उसे हीन दशा वाली नहीं कहता है। उसमें स्पष्ट उद्घोष है कि नारी साम्राज्ञी है -

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।४

(तू श्वसुर की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, सास की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, ननद की दृष्टि में सम्राज्ञी हो, देवरों की दृष्टि में सम्राज्ञी हो।)

वैदिक समाज में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका आज के विवादास्पद स्त्री विमर्श के लिए प्रकाश का कार्य कर सकती है। उसे उचित दिशा दे सकती है।

1- ऋग् 0.10. 159. 3
2. यजुर्वेद- 2. 33
3- वही- 3. 44.
4- ऋ0 10. 85. 46

सूत्र साहित्य में नारी

डा० मुकेश शर्मा
गुरूकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार

डा० देवेन्द्र कुमार गुप्ता
रीडर, प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरा0 विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

सूत्रयुग में नारी का गृहस्थी में बड़ा महत्व था। दुहिता के रूप में तथा पत्नी या माता के रूप में वह सर्वथा सम्मान भाजन थी। **'जायैवास्तम्'** अर्थात् जाया ही घर है तथा 'गृहिणी **गृहमुच्यते'** की भावना सूत्रयुग में प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। स्त्री सहधर्मिणी थी, उसी के संग में धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान सम्पन्न होता था। सूत्रकालीन ऋषि पत्नी के गुणों, पति प्रेम तथा

दैनिक परिचर्या के गीत गाते कभी नहीं थकते थे। स्त्री का प्रेम अपने पति के लिए आदर्श था। वह समरसता की प्रतिमूर्ति मानी जाती थी। समस्त गृह्यकर्म की वह स्वामिनी थी। वह गृहलक्ष्मी थी जिसकी सम्म पत्ति महनीय अवसरों पर सदा ली जाती थी। कन्याओं को सुयोग्य वधू के रूप में परिणत करने के लिए उदार शिक्षा का प्रबन्ध था। सूत्रकालीन नारियों में नैतिकता पूर्णरूपेण विद्यमान थी। शोभनीय आचरण तथा सदाचार के लिए सूत्रकालीन नारी सर्वत्र प्रसिद्ध थी। बाल विवाह का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। सोलह साल की उम्र प्राप्त करने पर ही कन्याएं विवाह योग्य होती थी। पत्नी रहित व्यक्ति यज्ञ का अधिकारी नहीं होता था। उस समय अमर्यादित आचरण करने वाला कोई पुरुष नही था।

निष्कर्ष यह कि नारी के उदात्त चरित्र, नैतिक आदर्श, शिक्षण-योग्यता और सामाजिक सहयोग की दृष्टि से सूत्रयुग अपने पूर्ववर्ती संहिता युग से विशेष दूर नहीं था।

STATUS OF WOMEN IN INDIA

(A comparative study of Vedic period and Modern period)

Vernika
Nidhi Vats
K.G.M. Gurukul Kangri University, Hardwar

In the present paper, it is intended to make a comparative study of women in Vedic period and Modern period. India, in ancient tjme had enough reverence for women. As in the Vedic period, women were given a very high status. Education, social activities and religious ceremonies were open to them. There have been no *Purdah* system. Like men, *Upnayan sanskara* were also held for women. They got admission in the *Brahmacharya Ashram* and used to receive all kinds of spiritual and cultural knowledge. In the age, many learned ladies have Come over with their knowledge like Gargi, Vishvadhara, Apala, Sikta, Romesha etc. Women were given right to choose their life partners and marriages were performed on an adult age. In one of the *shloka* of *Rigveda*, women are commanded to reign on her in-laws like an emperoress. Presence of women was must in the religious activities and they could d0.-rituals alone. WIdow-remarriage and *Niyog* were popular in the society. *Sati*, child marriage, and *purdah* were not held. In fact to which extent the condition of women was good in this age was not in the later ages.

The improved environment for welfare of women and children.

Aparna Sharma
Kanya Gurukul Mahavidyalaya,Haridwar.

The present topic "The improved environment for welfare of women and children" shows the condition of women and children in the vedic period or in the present day. The general health conditions of common people have deteriorated due to environmented degradation, men and children together constitute over three-fourth of the world population. Malnutrition is a major contributer to diseases and death of children. The welfare of human socities is intimately linked with the welfare of it's children and woman. The welfare of women and children is strongly connected with the health and status of their environment. Environment often have higher levels of our pollutants than their open surroundings both in rural as well as urban.

अर्थशास्त्रम्

वैदिक मन्त्र-संहिताओं में आर्थिक सर्वोदय-दर्शन

डॉ० ओमप्रकाश पाण्डेय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय स्वस्थ, सुदृढ़ तथा सर्वहित की भावना से परिपूर्ण उल्लासप्रद, प्रेरक एवं वर्धिष्णु आर्थिक विचारों का प्रस्तावक है। आज का हिन्दू समाज जिस प्रकार व्यक्ति निष्ठ दिखलाई देता है, उससे यह पूर्णतया विपरीत है। वैदिक चिन्तन सम्भूय समुत्थान की भावना का उत्प्रेरक है, जिसमें सम्पूर्ण अनुष्ठान सामूहिक से ओतप्रोत हैं। वैदिक सर्वोदय दर्शन में ईश्वर के उस गुण को सर्वोपरि प्रतिष्ठा दी गई है, जिसमें वह नंगे लोगों को वस्त्रावेष्टित करता है, रोगग्रस्तों तथा घायलों की चिकित्सा करता है। अन्धे व्यक्ति को वह दृष्टि सुलभ कराता है और लंगड़े व्यक्ति को चलने योग्य बना देता है -

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत् तुरम्।
प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ ऋ. सं० ८.७९.२ ॥

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि समृद्ध और शक्तिसम्पन्न लोगों को चाहिए कि वे अभावग्रस्त लोगों की आर्थिक सहायता करें। उन्हें जीवनपथ को केवल अपने तक ही नहीं, अपितु आगे भी दूर तक देखना चाहिए-

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसुमनुपश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः॥
(ऋ.सं. 10.117.5)

अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार प्रबुद्ध जनों को चाहिए कि वे गिरे हुए अर्थात् पतित लोगों को बार-बार उठाएँ- **उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः॥** (अथर्व0 सं0)

इस प्रकार वैदिक मन्त्र-संहिताओं में समृद्धि के सम्पूर्ण समाज प्रसार हेतु प्रभावोत्पादक चिन्तन की उपलब्धि होती है। इस चिन्तन की एक झलक ही प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य है।

यजुर्वेद में वर्णित अर्थनैतिक संकेत

डॉ० सविता भट्ट
रीडर, संस्कृत विभाग
डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादून

आदि मानव ने विराट् प्राकृति के बीच आँखें खोली। प्रकृति के पालने में झूलकर उसने शैशव बीताया। उसके सामने दिग्-दिगन्त तक पसरी धरती थी जो अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक चेतनशील मानव किशोर को क्रीड़ा और कर्म के लिए सन्देश तथा निमन्त्रण साथ-साथ दे रही थी। इस प्रकार अस्तित्व काल से ही प्रकृति धात्री का पोषण का मानव यात्रा प्रारम्भ हुई। भूख जैसी नैसर्गिक प्रवृत्ति का शमन प्रकृति करती ही थी। धीरे-धीरे उसने जीवन को पहचाना तथा सुविधा एवं सुख के लिए साधन खोजने शुरू कर दिए। कहना न होगा-**भूख के अनुभव के साथ ही अर्थ का जन्म हो गया और बाद में सभ्यता और संस्कृति के पहियों से चलने वाली जीवन-रथ का सारथि अर्थ बना**। भारतीय चिन्तन के जीवन का वैज्ञानिक विश्लेषण कर त्रिवर्ग तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की स्थापना की। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष मानव के जीवन-मूल्य बनकर उभरे और उनमें से भी अर्थ जीवन से प्रत्यक्षतः जुड़ा।

वैदिक काल से ही जीवन की पद्धतियां और परम्पराएं विकसित हो चुकी थीं। यजुर्वेद का अनुशीलन करने पर पाते हैं कि वैदिक ऋषियों की दृष्टि में **अर्थ** का असंदिग्ध महत्त्व था। बाद में **कौटिल्य** आदि शास्त्रकारों ने अर्थ की महत्ता प्रतिपादित की। **यजुर्वेद** में **अर्थ** शब्द के लिए राय-रयि शब्द का प्रयोग है। **रयि** अथवा अर्थ का तात्पर्य केवल रुपये पैसे से ही नहीं है अपितु इसके अन्तर्गत-सन्तान, कृषि, पशु, भोजन, आवास, व्यवसाय, शिक्षण, व्यापार, शिल्प, हस्तकारी, उद्योग एवं कलाएं आदि वे सभी तत्त्व सम्मिलित हैं जो मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और उसे आत्म निर्भर बनाते हैं।

यजुर्वेद में **पृथिवी माता** (यजु0 2/10) आदि कहकर भूमि को माता मानकर उसकी सेवा करने का भाव है। यजुर्वेद के **इन्द्रं कर्मस्वावतम्** (यजु0 10/33) आदि मन्त्रों से प्रतीत होता है कि उस समय कृषि वैश्य वर्ग के अधिकार में थी। पशु धन का भी वर्णन मिलता हैं उस काल के कृषक अनेक अनाजों से परिचित थे।

वेदों में मुद्रा

डॉ. ऋचा तिवारी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में मुद्राओं के नाम तथा स्वरूप का वर्णन प्रायः प्राप्त जाता है। यद्यपि वैदिक काल में अर्थ विनिमय का साधन गायें थीं और गायों की बहुलता ही धन समृद्धि का द्योतक थी। परन्तु स्वर्ण के बने हुए कतिपय टुकड़े न केवल मुद्रा अथवा अर्थ पक्ष को द्योतित करते हैं, अपितु वे आभूषणों के रूप में भी व्यवहृत होते थे। आवश्यकता पड़ने पर इनसे धन का विनिमय किया जाता था। वेदों में निष्क, हिरण्य, कार्षापण, पुण्य, रूप, कृष्णल, शतमान, तथा चन्द्र आदि शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। परवर्ती वैदिक वाङ्मय में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वस्तुओं के लिए धातुओं को अदला-बदली की जा सकती थी। स्वर्ण, अयस्, लौह, श्याम तथा त्रपु धातुओं के माध्यम से कतिपय वस्तुओं का क्रय वैदिक वाङ्मय में समुल्लिखित है। वैदिक साहित्य में मुद्रा के सन्दर्भों की ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध कराने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है। इनमें अनन्त सदाशिव अल्तेकर, डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल तथा श्री विश्वम्भरणशरण पाठक आदि प्रमुख हैं। निष्क मुद्रा का प्रयोग आभूषण के रूप में, दक्षिणा, उपहार तथा शुल्क और क्रय विक्रय के रूप में तथा 'हिरण्य' कदाचित् स्वर्ण खण्ड के रूप में वैदिक साहित्य में प्रचलित है। 'कार्षापण' तथा 'पण्य' क्रय विक्रय की प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली मुद्रा है। 'रूप' चाँदी का सिक्का हो सकता है। अथवा यह एक रजत खण्ड रहा होगा। आधुनिक 'रुपया' इसी शब्द से निकला है। मैत्रायणी संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'कृष्णल' के दान का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में 'शतमान' देने का वर्णन अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर प्राप्त होता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय संहिता और काठक संहिता में 'चन्द्र' नामक विनिमय के साधन रूप किसी मुद्रा का उल्लेख है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में आर्थिक विनिवेश के रूप में इन मुद्राओं का सुष्ठु उल्लेख तत्कालीन मुद्रा प्रचलन को दर्शाता है। ये सभी मुद्राएं वैदिक काल में प्रायः स्वर्ण धातु से निर्मित की जाती थीं।

वैदिक युग की अर्थव्यवस्था

डॉ० अजय कुमार
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
बी0डी0 इवनिंग कॉलेज, पटना

वैदिक युग अपने में भारतीय इतिहास के लगभग हजार वर्ष (1500 600 ई0पू0) समेटे हुए हैं। इस युग को दो मुख्य भागों पूर्व वैदिक युग (1500-600 ई0पू0) और उत्तर वैदिक युग

(1000 से 600 ई0पू0 तक) में विभक्त किया जा सकता है। इन कालों में उत्तर भारत में सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र में बहुत अधिक परिवर्तन और विकास हुआ। सभ्यता के इस विकास के साथ आवश्यकताएं बढ़ती गयी और आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अधिक धनार्जन करने की बाध्यता होने लगी।

शोध पत्र का उद्देश्य आर्थिक क्षेत्र में आये विकास एवं उसकी व्यवस्था, वैदिक युग के विभिन्न चरणों में किस तरह की रही, इसी पर विवेचन है। जैसा की ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक वैदिक काल के आर्य मानव समाज की आरम्भिक अवस्था पार कर कहीं कहीं अपना निश्चित वास बसाने लगे थे। समाज के परिपोषण हेतु पशुपालन तथा खेती उनकी जीविका के मुख्य आधार बन गये थे। कृषि का महत्व समाज में बहुत बढ़ गया था। कृषि के सिंचाई के साधन का अभाव था। इस कारण वर्षा ही इसका मुख्य आधार रहा। किन्तु नदीय तटों पर इनका वास होने से आवागमन एवं कृषि में नदी सहायक सिद्ध होते थे। पशुओं में गाय, बैल और अश्व का विशेष स्थान था। विभिन्न तरह का अन्नोत्पादन वे सीख लिये थे।

उत्तरोत्तर उनका आर्थिक विकास होता गया एवं विभिन्न तरह के शिल्प एवं शिल्पकार बढ़ते गये। समाज बढ़ता गया, आपस की दूरी बढ़ती गयी जिससे विनिमय के विभिन्न उपाय का विकास हुआ। उद्योग एवं व्यापार का भी विकास विस्तृत होता गया। जिनका पूर्ण विवरण हम शोध परक आलेख में अवलोकन करेगा।

अथर्ववेद में गोधन

डॉ० रेणू बाला
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
गुरुनानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

आज के मशीनी युग से पूर्व समाज में गोधन को सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता था। सभी वेदों में गौ महिमा को प्रतिपादित किया गया है। वैदिक आर्यों के द्वारा अपने गोष्ठ में स्वस्थ, सुन्दर तथा कल्याणमयी गायों को रखने एवं उनके सवत्सा होने की बात की गई है, क्योंकि गाएं सबको समान रूप से लाभ पहुँचाती हैं। देव, मनुष्य, राक्षस सभी गोदुग्ध से लाभ उठाते हैं-

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वसमवत् यावत्सूर्यो विपश्यति।। अथर्व. १०.१०.३४

गौओं की समाज में सदा से ही पूजा होती आई है। इसीलिए गोजाति को 'अध्न्या' कहा गया है।

'अध्न्या इति गवां नाम क एनां हन्तुमर्हति।'

'गोजाति अध्न्या है, इसे कौन मार सकता है। यज्ञफल का मूल कारण भी गाय ही है, गौओं में ही यज्ञ प्रतिष्ठित है-

गावो यज्ञस्य हि फलं गोषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः।

गाय को 'हविर्दुधा' भी कहा गया है। क्योंकि यज्ञ में प्रयुक्त हविष्य गोदुग्ध से ही तैयार होता है। यज्ञ में हवन के लिए आवश्यक गोघृत एवं पंचगव्य की प्राप्ति गो के बिना नहीं हो सकती। यही कारण है कि अथर्ववेद में गोधन के संरक्षण पर विशेष महत्त्व दिया गया है।

किसी भी देश का विकास गोवंश पर ही निर्भर करता है। गोधन के अभाव में कृषि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यातायात, सामान ढोना, भूमि से जल निकालना, शर्करा उद्योग, चमड़ा उद्योग आदि गोवंश पर ही आधारित हैं। घर के फर्श की लिपाई और ईंधन की उपलब्धि भी गो से ही होती है।

ईंधन के रूप में गोबर का प्रयोग करने से वनों का संरक्षण तो होगा ही क्योंकि यदि गोबर से ईंधन की प्रतिपूर्ति हो रही है तो ईंधन में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी स्वतः ही बच जाएगी। गोबर से चलने वाले Biogas Plants द्वारा आजकल जहाँ Cooking एवं प्रकाश करने का काम हो रहा है, वहीं इस विधि द्वारा गोबर की खाद के रूप में उत्पादकता भी सुरक्षित रहती है।

वेद में प्रतिपादित इस अवधारणा की आज भी उपयोगिता है। अथर्ववेद में कृषि पर बहुत बल दिया गया है। कृषि भी गोवंश पर ही आधारित है। गोधन के अभाव में कृषि की कल्पना भी नहीं की ज़ा सकती। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है-

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्ट सवितायमर्यः। अथर्व. १०.३४.१३

अथर्ववेद के गो अनुसार सारा विश्व ही गौ रूप है, इस प्रकार स्पष्ट है कि गौ के सामाजिक महत्त्व के कारण ही गौ को पूज्या, अध्न्या तथा परिपाल्या कहा गया है। वर्तमान युग में हो रहे गोवंश के ह्रास के दुष्परिणाम हमारे सामने आने शुरु हो गए हैं।

इसलिए वेदनिर्दिष्ट गोपालन की ओर समाज को अग्रसर होना ही पड़ेगा।

वेदों में अर्थशास्त्र

अर्चना आर्या
शोध छात्रा
महर्षि दयानन्द वि0वि0, रोहतक

अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य का विकास करना, उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा उसके कल्याण में वृद्धि करना है। मनुष्य दिन में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि अनेक क्रियाएँ करता है। किन्तु वह अपने जीवन का अधिकतम भाग आर्थिक क्रियाओं पर व्यतीत करता है। अतः अर्थशास्त्र एक ऐसा विषय है जो मनुष्य की केवल आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन करता है।

परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र अर्थ का विज्ञान है। अर्थशास्त्र की विषय

सामग्री धन के उपभोग, उत्पादन, विनिमय और विज्ञान संबंधी क्रियाओं तक सीमित है। जबकि कल्याणवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार अर्थशास्त्र में सामाजिक व्यक्ति की उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जिनका संबंध भौतिक कल्याण के लिए धन की प्राप्ति और उसके उचित उपभोग से है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार भी मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए अर्थशास्त्र का अध्ययन करता है। इस प्रकार आवश्यकता - प्रयत्न-धन और संतुष्टि का आर्थिक चक्र निरंतर चलता रहता है। इस आर्थिक चक्र के अंतर्गत मनुष्य जो क्रियाएँ करता है। वही, अर्थशास्त्र की विषय सामग्री है। इस आर्थिक चक्र का समुचित परिवर्तित रूप वेद में मिलता है।

वैदिक साहित्य में आर्य जाति की प्रतिभा के अपरिमित प्रमाण मिलते हैं। आर्यों का एक मात्र धन ब्रह्मचर्य- तेज था। ऋग्वेद में कहा गया है कि बृहस्पति, विलक्षण धन अर्थात् तेज हमें दो।" इसी ब्रह्मचर्य तेज में आर्यों के अभ्युदय का रहस्य छिपा हुआ है।

आर्यों का उदघोष था कि जिसका मन उदात्त नहीं है उनका भोजन करना व अन्न ग्रहण करना वृथा है। जो न तो देवता को देता है, न मित्र को देता है परन्तु स्वयं ही भोजन करता है, वह केवल पाप ही खाता है 'केवलाघो भवति केवलादी। स्पष्टतः स्वार्थी का जीवन पापमय और घृणित है। आधुनिक अर्थशास्त्र का विनिमय विभाग इसी तथ्य की पुष्टि करता है।

वैदिक अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। इसमें समाज के आवश्यक कार्यवाहक वर्ग भी थे। स्वर्णकार, तंतुवाय, माली, वैद्य, नापित, व्यापारी सैनिक, संगीतज्ञ, आभूषण, वस्त्र, रथ, विमान, अस्त्र-शस्त्र, जलयान आदि से संबंधित मंत्र विद्वानों को पर्याप्त सामग्री प्रदान करते है। इसका वैयक्तिक ही नहीं सामाजिक महत्त्व भी है।

ऋग्वेद में दान और दक्षिणा की महिमा के लिए दो सूक्त हैं- दक्षिणा सूक्त और दान सूक्त। इससे आर्यों की उदारता और परदुखकातरता परिलक्षित होती है।

आर्य धार्मिक और आर्थिक दोनों दृष्टियों से गौ के अनन्य भक्त थे। चिरंजीविनी गायों का दुग्ध-सेवन उनकी उत्तम अभिलाषा थी। इसके लिए ऋग्वेद के तीन 'गो' सूक्त अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। जिससे व्यावहारिक अर्थशास्त्र की पुष्टि होती है।

अर्थशास्त्र में केवल मानवीय क्रियाओं और उनमें भी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जिनमें, प्रेम, स्नेह, भवनाएँ प्रमुख होती हैं। इस दृष्टि से शुक्ल यजुर्वेद में यज्ञ-विधान का उल्लेख आता है। जो मानवीय कर्त्तव्यों में सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है।

अर्थशास्त्र की विनिमय प्रणाली (Exchangi) के अंतर्गत वस्तुओं के आदान-प्रदान का अध्ययन किया जाता है यजुर्वेद के एक मंत्र में 'देहि में ददामि ते' तू मुझे दे, मैं तुझे देता हूँ कहाँ गया है। समाज में यही सिद्धान्त चलता है। जीवन व्यवहार की सफलता इसी लेने देने पर अवलम्बित है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्थ तत्त्वीय मीमांसा

डॉ. योगेश शास्त्री
प्राध्यापक -संस्कृत, विद्यालय विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,हरिद्वार

वैदिक साहित्य में 'ब्राह्मण' शब्द के अनेक अर्थ उपलब्ध होते हैं। ब्राह्मण शब्द में तीन तद्धितार्थक 'अण्' प्रत्यय के योग से 'ब्राह्मण' शब्द निष्पन्न होता है। शतपथ के अनुसार 'ब्रह्म' ही मन्त्र अर्थात् वेद है। मेदिनी-कोश में 'ब्रह्म' के सन्दर्भ में 'ब्राह्मण' शब्द का प्रतिपादन है। ब्रधा का का अर्थ परिवृहण (वितान) यज्ञ, आदि रूपों में यज्ञ विज्ञान के गूढ़ और अस्पष्ट स्थलों की मीमांसा है, जहाँ ब्रह्म को यज्ञ का पर्याय माना गया है।

अर्थ. शब्द 'ऋग्' धातु से निष्पन्न होता है। जो गति का वाचक है, जिससे जीवन गतिमान् है, वहीं अर्थ है। मनुष्य के भोग आरोग्य एवं धर्म का मुख्य साधन अर्थ ही है। भूमि, धन विद्या, कला और कृषि आदि आजीविका सम्बन्धी सभी वस्तुएं अर्थ ही हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय में भी अर्थ मूलतः दृष्टिगत् होता है।

ब्राह्मण साहित्य में 'भूमि अर्थ है।, देवता भूमिरूपी अर्थ. चाहते हैं यज्ञ अर्थ को सामूहिक, हितकारी और उद्देश्यपूर्ण कोटि में लाता है। ब्राह्मण साहित्य में यज्ञों के नाना रूप और विभिन अनुष्ठानों का परिचय मिलता है। वर्णाश्रम व्यवस्था, पुरुषार्थ योजना, पंचमहायज्ञ, और संस्कार विधान आदि सभी अर्थ-तन्त्र के प्रमुख साधन हैं।

पुरुषार्थ-चतुष्टय में अर्थ पुरुषार्थ समाज के अर्थ स्रोत और साधनों का संचालन इसी के अन्तर्गत है। अर्थ के बिना धर्म और काम की सिद्धि असम्भव है। मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की व्यावहारिक संज्ञा अर्थ है। जो जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।

कौटिल्यानुसार मनुष्य की वृत्ति, आजीविका ही उसका अर्थ है। ब्राह्मण कालीन अर्थ तन्त्रीय विकास के चार प्रमुख स्रोत हैं। कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, और खनिज।

ब्राह्मण काल में अर्थ के दो प्रमुखतः साधन है - कृषि और पशु वाणिज्य, और व्यवसाय कृषि के सहायक रूप में है। शतपथ में कृषन्तः वपन्तः लुनन्तः और मृणन्तः वैज्ञानिक क्रियाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

अर्थ चिन्तन के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों में अर्थ तत्त्वीय मीमांसा प्राप्त होती है।

ऋग्वेद : वाणिज्य के परिप्रेक्ष्य में

आभा द्विवेदी
शोध छात्रा
दीनदयाल उपाध्याय गो.वि.वि., गोरखपुर

'सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति' इस मनुस्मृति के वचनानुसार इस दृश्यमान् स्थावर, जंगम, जगत् का मूल कारण वेद ही है।

'अभ्यर्हितं पूर्वं' इस न्यास से वेदों में प्रथम स्थान पर प्रतिष्ठित ऋग्वेद में वर्णित तत्कालीन जीवन के भौगोलिक संरचना का उल्लेख मिलता है। किसी भी प्रदेश की स्थलीय संरचना वनस्पति, जलाशय, जलवायु आदि प्राकृतिक वनस्पतियो का प्रभाव वहाँ के मानवों के आर्थिक जीवन पर पड़ता है, दूसरे शब्दों में सभी भौगोलिक दशाएं मानवीय (आर्थिक) प्रक्रियाओं को नियन्त्रित एवं निर्धारित करती हैं। वाणिज्य जो किसी भी सुदृढ़ समाज का एक महत्वपूर्ण पक्ष होता है, को मैने अपने शोधपत्र का विषय बनाया है।

ऋग्वेद: वाणिज्य के परिप्रेक्ष्य में इस शोध पत्र के शीर्षक के माध्यम से मैंने ऋग्वेदिक वाणिज्यिक व्यवस्था को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिससे समाज का प्रत्येक पक्ष अवगत हो सके।

वैदिक अर्थव्यवस्था

अर्चना श्रीवास्तव
शोध छात्रा-संस्कृत
लखनऊ विर्श्वविद्यालय, लखनऊ

मनुष्य के आर्थिक जीवन का प्रारम्भ सृष्टि के प्रारम्भ से ही हो गया था। वेदों में अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ एवं सुव्यस्थित वर्णन किया गया है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास एक दूसरे के पूरक हैं। अर्थ के अन्तर्गत व्यक्ति की भौतिक स्थिति और समृद्धि आती हैं। मनुष्य एक भौतिक प्राणी हैं, वह प्रकृति और पुरुष (आत्मा) के संयोग से बना है। शरीर की रक्षा और शरीर का ऊर्जावान होना भौतिक समृद्धि पर ही निर्भर करता है। अत: अर्थ के उपार्जन् संग्रह और व्यय को भारतीय संस्कृति ने मनुष्य के द्वितीय पुरुषार्थ के रूप में माना है।

मानव जीवन की सफलता के लिए ''धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष'' इन चार पुरुषार्थ में धर्म के बाद अर्थ का दूसरा स्थान है।

धर्मस्य मूलमर्थः

अर्थात् अर्थ ही धर्म का मूल है। धन के महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए वेद मन्त्रों में अनेक स्थलों पर धन प्राप्ति की प्रार्थनाएं व कामनाएं की गई हैं -

'दा नो अग्ने धियारायिं सुविरं स्वपत्यां सहस्य प्रशस्तम्' (ऋग्वेद ७/१/५)
'वयं स्याम पतयो रयीणाम्।' (यजुर्वेद १०/२)
'मूर्धाऽहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् (अथर्ववेद १६/३/१)

इस प्रकार अर्थ-वेद का अमर सिद्धान्त ही राष्ट्र एवं विश्व में समता, ममता एवं सौहार्द की स्थापना का मूलाधार है।

वेदों में आर्थिक चिन्तन

बीना
शोध छात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक चिन्तन अपने में परिपूर्ण है। वेदों में मानवोपयोगी किसी भी वस्तु की उपेक्षा नहीं की गयी है। धर्म के साथ-साथ अर्थ को पर्याप्त महत्व दिया गया है। वेद मन्त्रों में धनसम्पत्ति की प्रार्थनाएं की गई हैं।:-

मा नो अग्ने धिया रयिं (ऋग्वेद ७/१/५.)
वयं स्याम पतयो रयीणाम्। (यजु० १०/२)
स नो वसून्याभर। (यजु० १५/३०)
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्॥ (यजु० ७/४३)
मूर्धाऽहं रयीणां नाभिः अथर्ववेद (१६/३१)
नाभिरहं रयीणां मूर्धा अथर्ववेद (१६/४/१)

'अर्थ' के विषय में वैदिक प्रार्थनाएं अधिकांश रूप से बहुवचन में हैं, जिससे वैदिक चिन्तन की उदारता के साथ-साथ वेदों में निहित सार्वजनिक व सामुदायिक समृद्धि के सिद्धान्त की भी पुष्टि होती है।

मानव जीवन की सफलता के लिए ''धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष'' इन चार पुरुषार्थों में धर्म के बाद अर्थ का दूसरा स्थान है। अथर्ववेद का यह अमर सिद्धान्त ही राष्ट्र एवं विश्व में समता ममता एवं सौहार्द्र की स्थापना का मूलाधार है। धनार्जन के लिए वेदों में सुपथ पर चलने का निर्देश है।

कृषि प्रधान भारत वर्ष में गौ आदि पशु देश की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ आधार रहे हैं।

वेदों का अर्थशास्त्रीय अवलोकन

डॉ० जगत नारायण ठाकुर
प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग,
एस.के.जे.एम. कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बिहार

वर्तमान परिवेश की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, व्यापारिक , राजनीतिक, वाणिज्यिक जो भी व्याख्या दिखलाई पड़ रही है। वह हजारों वर्ष पूर्व पौराणिक काल में ही विकसित हो चुकी थी। जिस का प्रभाव विश्व के तमाम देशों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था पर देखा सकता है। उस काल में भी सत्य पर, न्याय पर मूल्य पर, मर्यादा पर, आचरण पर, आहार-व्यवहार पर काफी बल दिया गया था। वर्तमान 21वी सदी में हम जिन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक मूल्यों की बात करते हैं। उन मूल्यों पर वैदिक कालीन चिंतकों ने भी काफी चिंतन किया था। फर्क सिर्फ इतना दिखलाई पड़ता है कि उन दिनों विज्ञान अपना क्षितिज तैयार नहीं कर पाया था अन्यथा तत्कालीन परिवेश में हर प्रकार की व्यावस्था के मूल में वैज्ञानिक चिंतन की सूक्ष्म प्रक्रियाएं अपनी जड़े स्थापित करने लगे थे। इसलिए हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि जिस प्रकार यूनान में सुकरात, प्लेटो, अरस्तू आदि महान चिन्तकों ने ज्ञान की जिस दीपशिखा को प्रज्वलित किया था। कदाचित् उससे बेहतर प्रकार से भारत भूमि पर वेदकालीन चिंतको ने मानवमूल्यों पर आधारित दर्शनों को, सामाजिक-आर्थिक मूल्यों को, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को एवं आर्थिक राजनीतिक व्यवस्था को विकसित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

वेदों में वर्णित वर्णव्यवस्था जिसे आज मूल रूप से जाति व्यवस्था का स्वरूप समझा जाता है। वह वास्तव में सामाजिक व्यवस्था नहीं थी। वह वैदिक काल की आर्थिक व्यवस्था का रूप है। जिसमें एक ही परिवार के विभिन्न लोग विभिन्न कार्यों को करते हैं। जैसा कि ऋग्वेद के श्लोक-9/112/3 में द्रष्टव्य है। तथा इसकी पुष्टि करते हुए ऋषि कहते हैं कि मैं बढ़ई हूँ, मेरा बाप वैद्य है और मेरी माता चक्की पीसती है। इस प्रकार यह परिवार विविध कला-कुशलता वाला परिवार है। जो अपनी रूचि एवं मनोवृत्तियों के अनुरूप आर्थिक कार्य करने के लिए स्वतंत्र है और इसी आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को समान व्यवहार का अधिकारी माना गया है।

वैदिक युगीन कृषि व्यवस्था

डॉ० अखिलेश कुमार शुक्ल
भा0 प्रा0 इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में प्राचीन समय में आर्यों के आर्थिक जीवन का विशिष्ट वर्णन उपलब्ध होता है। वै दिक साहित्य का अनुशीलन करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक आर्यों को कृषि का समुचित ज्ञान था। उनकी जीविका का प्रधान साधन खेती तथा पशुपालन था। कृषि एवं कृषक सम्बन्धी विवरण सर्वप्रथम ऋग्वेद में उपलब्ध होता है ''अक्षैर्मा दीव्या: कृषिमित् कृषस्व: ऋग्वेद (10/34/13) आर्य कृषि को बहुत महत्त्व देते थे। वैदिक उपदेश है-जुआ मत खेलो और खेती का अभ्यास करो। प्रस्तुत शोध पत्र में ''वैदिक कालीन कृषि'' व्यवस्था पर प्रकाश डाला जा रहा है। जिसमें निम्न विचार बिन्दु हैं:-

1. खेत दो प्रकार के होते है। उपजाऊ तथा बंजर। ऋग्वेद के अनुसार खेत सतर्कता पूर्वक नपे होते थे। यह तथ्य कृषि के लिए भूमि पर वैयक्तिक प्रभुत्व का संकेत करता है।
2. जहाँ तक फसल सम्बन्धी निर्णय का प्रश्न है। राजा गांवों पर राजकीय विशेषाधिकार अपने प्रिय पात्रों को प्रदान कर देता था।
3. वैदिक कालीन कृषि कर्म पर दृष्टि पात करने पर ज्ञात होता है कि खेती उस समय भी आज की ही भांति होती थी। नि:सन्देह ईरानियों से पृथक होने से पूर्व ही भारतीय कृषि कर्म से सुपरिचित था।
4. वैदिक युग में खेत को हलों से जोतकर उर्वरक बनाया जाता था। हल का नाम लांगल था, जिसके अगले नुकीले भाग को फाल कहते थे। हल खीचने वाले बैलों की संख्या छ: से आठ तक होती थी। वैदिक काल में प्राय: वैश्य ही खेती करते थे। खेत उर्वरक होते थे। खेतों की उर्वरता क्षमता बढ़ाने के लिए गोबर के खाद का प्रयोग किया जाता था।
5. कृषि की ऋतुओं का भी तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख किया गया है। जौ, चावल, मास, मिल के बौन और पकने के समय का वर्णन किया गया है। वर्ष में दो बार फसल काटी जाती थी।
6. वैदिक आर्य कृषि कर्म के लिए कृषि कर्म पर ही अवलम्बित रहते थे। वैदिक देवता मण्डल में इन्द्र की प्रमुखता का रहस्य आर्यो के कृषि तीवी होने की घटना में दिया है।
7. वैदिक काल में सिंचाई के अन्य प्रबन्ध भी किए जाते थे। (ऋग्वेद 7/49/2) एक मन्त्र में जल दो तरह का बताया गयां है- खनित्रिमा, तथा स्वयंजा।

उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि वैदिक कृषि व्यवस्था काफी सुनियोजित ढंग से सम्पन्न होती थी। वैदिक आर्य को अत्यधिक महत्त्व देते थे।

भूगोल:

वेदों में भूगोल

डॉ. अर्चना विश्नोई
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
एस.आई.जी. (पी.जी) कॉलेज, सरधना, मेरठ

आधुनिक भूगोल विषय में जिन उप विषयों का अध्ययन किया जाता है वे सभी वैदिक साहित्य में अपने मूलांकुरों से वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। वेद और वैदिक साहित्य समस्त ज्ञान, विद्या व विषयों की ज्ञान राशि है। वैदिक ऋषिगण व्यापक राजनैतिक, आर्थिक, भौतिक औद्योगिक, वाणिज्यिक भूगोल से परिचित थे।

१. **खगोलीय भूगोलः**- ऋग्वेद के अधमर्षण सूक्त में वर्णन है ''ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसो अध्यजायन्त ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रः अर्णवः / समुद्रात् अर्णवादधि सवत्सरो अजायत'' अर्थात् परम तेजोमय परमेश्वर से परमाणुओं में व्याप्त आकाश की उत्पत्ति हुई। परमाणुओं से परिपूर्ण आकाश में क्षोभक्रिया उत्पन्न होने के बाद सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि नक्षत्रों का उदय हुआ। उपनिषदों में तैत्तिरीयोपनिषद् में भी आकाश वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि, औषधि और अन्न की उत्पत्ति का उल्लेख है।

२. **भौतिक भूगोल** :- अथर्व वेद में हिमालय पर्वत का, यजुर्वेद में मुन्जवान पर्वत व नदियों का वर्णन, ऋग्वेद में नदी सूक्त में नदियों का वर्णन है। ऋग्वेद में जिस देश का वर्णन है वह अफगानिस्तान से गंगा यमुना तक और पामीर हिमालय से कच्छ तक का है। उसमें कुम्भा, सुवास्तु, क्रमु, गोमती आदि नदियों के नाम मिलते है जिनसें ज्ञात होता है कि आर्य सर्व प्रथम अफगानिस्तान में बसे। सिन्धु नदी के किनारे उनकी बस्तियां अधिक थी। वेदों में इनका निवास स्थान सप्तसैनधव कहा गया है। सात नदियों से यहाँ तात्पर्य केवल सात नदियों से लेना सर्कसंगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि सात से अधिक नदियों के नाम स्वयं ऋग्वेद में उपलब्ध है।

३. **आर्थिक भूगोलः**- कृषि पुरातन वैदिक संस्कृति का आर्थिक आधार था। वही उनका मुख्य व्यवसाय था। पशु पालन भी समानान्तर रूप से आर्थिक आधार बना रहा। ऋग्वैदिक भारतीय कृषि क्रियाओं जैसे कुल्याओं से सिंचाई, वनों की कटाई, भू समतलीकरण करके कृषि कर्म, खेतों की नपाई करके कई भागों में विभक्त करना, ऋतु के अनुसार जलापूर्ति बीज व खाद से परिचित थे। अथर्व वेद के अनुसार वर्ष में आर्य कई-कई फसले उगाते थे। यहाँ कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले पशुओं का वर्णन है।

४. **राजनैतिक भूगोल** :- ऋग्वेद में रथकारों, काष्ठशिल्पकारों, लौहकारों के वर्णन है। वासस्, क्षौम व ऊनी परिधानों के उद्योग. के साथ साथ युद्ध सामग्री निर्माण का भी वर्णन है।

५. **वाणिज्य भूगोल** :- ऋग्वेद व अथर्ववेद में पशु व वस्त्र व्यापार का उल्लेख है। सामुद्रिक व्यापार का ऋग्वेद में अथर्ववेद में वर्णन उपलब्ध है।

वैदिक भूगोल और खगोल विद्या

डॉ० महेन्द्र कुमार मिश्र
रीडर -संस्कृत विभाग
श्री वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़

संस्कृत साहित्य के पुरणादि अन्य ग्रन्थों की भांति वैदिक साहित्य में भौगोलिक प्रतिमानों एवं समुद्र, पर्वत, नदियों, देशों का विस्तृत वर्णन यद्यपि वैदिक साहित्य में प्राप्त नहीं होता है। तथापि इनका सूक्ष्म विवरण अवश्य प्राप्त होता है। ये वर्णन यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण हैं कि वैदिक मनीषा भूगोल दिग्विधा से अनभिज्ञ नहीं थी। वैदिक साहित्य में समुद्र, पर्वत, नदी, देश, प्रदेश, नगर, पशु-पक्षी, वृक्ष, अन्य धातु आदि का जो विवरण प्राप्त होता है वह निश्चित ही हमें कुछेक नवीन आनुसंधानिक सूचनाएं प्रदान करता है। जैसे आर्यवर्त्त चारों ओर समुद्र से घिरा था। वैदिक आर्य जाति का राज्य अफगानिस्तान, विलोचिस्तान, सिंध से लेकर उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ था। यहाँ अनेक नदियां, पर्वत बड़े-बड़े देश-प्रदेश और नगर स्थित थे। आर्य प्रतापी योद्धा थे, समुद्ध थे, हजार स्तम्भों वाले महल भी बनवाते थे। सभी आर्य आस्तिक विनीत और ऐश्वर्य-सम्पन्न थे।

यहाँ समय पर वर्षा होती थी, क्योंकि आर्य यथादिविधि यज्ञ संपन्न करते थे। यहाँ अभ्युदय चरम सीमा पर था। यहाँ पाप-ताप, शोक संताप का नाम भी नहीं रहा होगा। वैदिक राष्ट्र के आदर्श एवं इसकी अवधारणा अद्‌भुत एवं प्रेरक थी। यहाँ के व्यवसायी व्यापारी हेतु भौगोलिक एवं प्राकृतिक उत्पादों का व्यापार सुदूर देशों में थल, जल-मार्ग से किया करते थे।

उन विवरणों से भारतीय भौगोलिक संपदा की समृद्धि आँकी जा सकती है।

वैदिक खगोल विद्या के अनुसार विश्व के तीन विभाग हैं भूः भुवः और स्वः। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, सूर्य चन्द्र एवं अन्य ग्रहों के अतिरिक्त अन्तरिक्ष अपः मरुत, हिरण्यगर्भ, सूर्यरश्मियों, दिनरात एवं अग्नि ज्योतिषिकबिन्दु काल गणना आदि का खगोल शास्त्रीय विवेचन किसी भी प्रकार वैज्ञानिक विवेचन की अपेक्षा रखता है। वैदिक मनीष ने कितने ही अगम्य विषयों का आविष्कार कर मानव ज्ञान-विज्ञान को निश्चित ही यह गति प्रदान की है। निश्चित ही इसका अभिनन्दन किया जाना चाहिए।

वेदों में राजनीति, भूगोल एवं दर्शन की अवधारणा

डॉ. दीपा गुप्ता
प्रवक्ता, प्रा0भा0 इतिहास संस्कृति एवं पुरात्व विभाग
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0 हरिद्वार

आज संसार के सभी विद्वान् निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं कि वेद मानव जाति प्राचीनतम ग्रंथ है। महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तथा सर्वाधिपति परमेश्वर के आदेश के रूप में मान्यता दी है। भारतीय विद्वान् जन वेदों को विविध विधाओं का मूल स्रोत मानते है। 'मनुस्मृति' में वर्णित है कि 'सर्वज्ञान' 'मयो हि स:' कि वेद संपूर्ण ज्ञान का भण्डार है। प्रस्तुत शोधपत्र में वेदों में प्रमुखत: राजनीति, भूगोल एवं दर्शन की आवधारणा क्या है? इसका विवचनात्मक रूप से वर्णन किया गया हैं।

राजनीति के संदर्भ में वैदिक ऋषियों की अपनी एक कल्पना है। उनकी दृष्टि में स्वराज्य मूलक शासन प्रजा को मिलना चाहिए। ऋग्वेद के एक मंत्र में आये ''त्रीणि सदांसि'' का आशय यह है कि शासन तीन सदनों वाला होना चाहिए। 1- राज्यसभा, 2- धर्मसभा, 3- विद्यासभा।

''ऋग्वेद'' में राजा और प्रजा के परस्पर संबंध गुरु शिष्य अथवा पिता पुत्र के समान बताये गये है। वैदिक शासन तंत्र का मुख्य आधार प्रजा है। प्रजा ही सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति को राजा चुनती है। अत: राजा पर प्रजा का पूर्ण अंकुश रहता है। सो वैदिक शासनतंत्र में राजा कदापि स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता। वैदिक शासन व्यवस्था जनता का राज्य कहलाता है। वैदिक शासन व्यवस्था में ब्राह्मण अर्थात् (बुद्धि) और क्षत्रिय अर्थात् (बल) मिलकर चलते है, जिससें राज्य की आर्थिक समृद्धि निशचित है। ऋग्वेद में कितने ही ऐसे राजाओं का उल्लेख है जिन्होने कि इन्द्र की सहायता से अपने अनेक शत्रुओं को परास्त किया था। ऋग्वेद में राजाओं के दान देने की भी प्रशंसा की गई है।

वेद के अनुसार परम ऐश्वर्यवान, शत्रु को पराजित करने वाला, गुण कर्म स्वभाव से युक्त, सत्कार योग्य, कल्याण करने और अभय देने तथा जो शत्रुओं से रहित हो उसी को राजा बनाना चाहिए। हमारे प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में कुछ ऐसे शब्द अवश्य है जो भारत के पर्वतों, नदियों तथा प्रदेशों के पुराने नाम थे। अर्थात् ऋग्वेद में भौगोलिक इतिहास से संबंधित भी कतिपय , संकेत विद्यमान है।

''ऋग्वेद'' में हिमालय पर्वत का उल्लेख है। मूजवन्त नामक एक अन्य पर्वत शिखर का 'ऋग्वेद' में उल्लेख है। जिसके विषय में यह कहा गया है कि वहाँ सोम प्रचुरता से उत्पन्न होता है। वैदिक संहिताओं में कुल मिलाकर 31 नदियों का उल्लेख है, जिनमें से 25 ऋग्वेद में भी उल्लेखित हैं।

ऋग्वेद में नदियाँ : एक परिशीलन

डॉ० कमला अग्रवाल
रीडर, संस्कृत विभाग
दिगम्बर जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़ौत

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् वेद-शास्त्र के तत्व को जानने वाला व्यक्ति चाहे किसी भी आश्रम में निवास करता हुआ कार्य का सम्पादन करता हो, वह इसी लोक में रहते हुए भी ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

हमारे पूर्वजों से रिक्थरूप में जो वस्तुऐं प्राप्त हुई हैं, उनमें वेद सबसे अधिक मूल्यवान हैं। वेद केवल हमारे धर्म के ही आदि स्रोत नहीं है, वरन् हमारे साहित्य और हमारी सभ्यता के किसी भी पक्ष का पूर्ण ज्ञान वेदों के अध्ययन के बिना प्राप्त किया जाना सम्भव नहीं है। वेदों में, विशेष रूप से ऋग्वेद में, हमारे प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण के लिये भी अत्यन्त मूल्यवान भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन उपलब्ध होते हैं। वेदों में प्रथम तथा सबसे महत्वपूर्ण ऋग्वेद है। जिसमें हमारी सभ्यता के आदिकाल का गौरवशाली इतिहास सुरक्षित है। भारत के जिस प्रदेश में उस काल में आर्य बसे हुए थे, उसकी नदियों, पर्वतों, समुद्रों आदि का बड़ा सुस्पष्ट चित्र इस ग्रन्थ में मिलता है। इन सब भौगोलिक वस्तुओं में नदियों का महत्व सबसे अधिक है।

जिन शब्दों से यहाँ लोक की नदियाँ पुकारी जाती हैं, वेदों में उन्हीं शब्दों के कई अर्थ होते हैं। उन शब्दों का धात्वर्थ है चलने वाला-बहने वाला- वेगवाला आदि। नदियों का प्रायः यह गुण प्रसिद्ध ही है। वे भी बहने वाली, चलने वाली और वेग वाली हैं, इसीलिये वे शब्द लोक में केवल नदियों के लिये रूढ़ हो गये हैं, जबकि वेद में उन शब्दों से प्रसंगानुसार किरण, नदी, वाणी आदि अनेक अर्थो एवं भावों का ग्रहण किया गया है। तात्पर्यार्थ को स्पष्ट करने के लिये एक उद्धरण प्रस्तुत है - वेद में सूर्य की दश रश्मियों का वर्णन है।

प्रस्तुत शोध लेख में नदियों के विषय का दिग्दर्शन इसी दृष्टि से करने का प्रयास किया जा रहा है कि वेद मंत्रों में ऐतिहासिक नदियों के वर्णन में दूसरे अलौकिक वर्णन वाले अर्थों को खोजा जा सके।

ऋग्वैदिक भूगोल

प्रतिमा त्रिपाठी
शोधछात्रा
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वेद शब्द विद् धातु से घञ् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है ज्ञान, अपौरुषेय त्रयी का प्रत्येक मंत्र अभूतपूर्व ज्ञान से समृद्ध है। सभी प्रकार के ज्ञान को वेदों में अभिहित किया गया है और सर्वज्ञान के मूल स्रोत वेदों से ही निःसृत होते हैं।

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्त्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः॥

आदि वेद ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक को भूगोल का ज्ञान था। ऋग्वेद में विद्यमान अनेक भौगोलिक तथ्य सप्तसैन्धव प्रदेश को ही आर्यो की निवासभूमि सिद्ध करते हैं। सप्तसैन्धव प्रदेश की धरातलीय संरचना में हिमालय जैसे पर्वत, प्रवाहप्रणाली में सिन्धु, वितस्ता, असिक्नी, परुष्णी, शुतुद्रि, विपाशा, सरस्वती, कुभा, क्रुमु, गोमती सुवास्तु प्रभृति नदियाँ तथा इनसे अपृथक् मानवीय क्रियाकलापों में यदु, अनु, दुह्यु, तुर्वश, पुरु जैसे आर्यो तथा दास, दस्यु, पणि, यक्षु, शिग्रु आदि अनार्यो की आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, यौद्धिक, धार्मिक आदि क्रियाओं के संयोग से ऋग्वैदिक भौगोलिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है जिसमें आर्यो के मूल निवास स्थान सप्तसैन्धव का स्वरूप, स्थिति, ऋग्वैदिक जलवायु, ऋतुयें, जीव जन्तु तथा वनस्पतियाँ, नदियाँ आदि भौतिक भूगोल के साथ-साथ मानवीय भूगोल से सम्बद्ध आर्थिक भूगोल, राजनैतिक भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल तथा विविध भौगोलिक स्थलों का निरूपण भी प्राप्त होता है।

ऋग्वेदकालीन भौगोलिक अध्ययन

अजय कुमार शुक्ल
शोधछात्र, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ऋग्वैदिक साहित्य समस्त ज्ञानाधारित विषयों का मूल माना जाता है जिसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि आर्य लोग तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों से विधिवत् परिचित थे। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों और मन्त्रों में पृथ्वी, नदी, पर्वत, समुद्रादि प्राकृतिक भूगोल एवं मानवीय क्रिया हेतु अपेक्षित अनेक क्षेत्रों से सम्बन्धित भौगोलिक ज्ञान प्राप्त था जिसके माध्यम से भारतीय विद्वान् भारत तथा निकट के देशों से सम्बन्धित ज्ञान रखते थे।

यद्यपि भारतीय चिरसम्मत भौगोलिक विचारधारा का क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलता है। तथापि **सूर्य सिद्धान्त** में सर्वप्रथम **भूगोल(Bhugola)** शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसके रचयिता ने पृथ्वी के धरातल के विचार को परिभाषित किया। **पद्मपुराण** में भूगोल, खगोल (The Science of Space) और ज्योतिष चक्र (Astrology) के मध्य अन्तर स्पष्ट किया गया है किन्तु भूगोल की विभिन्न शाखाओं का क्रमबद्ध वर्णन **शतपथ ब्राह्मण** में मिलता है।

आद्यवैदिक ग्रन्थों में **सृष्टिरचना (Cosmology)** और **ब्रह्माण्ड विज्ञान** से सम्बन्धित विविध समस्याओं पर विचार किया गया है। यथा कि क्या विश्व के निर्माण के पूर्व कोई आद्य पदार्थ विद्यमान था या ब्रह्माण्ड पूर्व विद्यमान पदार्थ से निर्मित हुआ या क्या वह शून्य से निर्मित हुआ है।

ऐतरेय ब्राह्मण में पृथ्वी के गोलाभ आकृति की सजीव कल्पना की गई है; जिसमें कहा गया है कि सूर्य न तो कभी उदय होता है और न कभी अस्त होता है। तत्कालीन आर्य ग्रहण के प्रति सचेष्ट रहते थे क्योंकि वे ग्रहण के अवसरों पर धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे।

ऋग्वैदिक ऋषियों ने दस दिशाओं तथा अनेक नियंत्रक दस देवताओं का उल्लेख किया है। इन साहित्यों में वायुमण्डल के विषय में लिखा गया है कि वह इतना सघन है कि पक्षियों द्वारा भी पार नहीं किया जा सकता है। ऋग्वेद में पाँच वस्तुओं का वर्णन प्राप्त होता है।

वैदिकवाङ्मय में ऋतु अवलोकन

बिपिन कुमार
शोधछात्र ज्योतिर्विज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक मीमांसा परमार्थ के साथ व्यवहार का, परलोक के साथ इहलोक का, पुरातन के साथ अद्यतन का एवं देश के साथ काल का सांमजस्य मन्त्रों के माध्यम से करती है। वेद का सर्वाधिक श्लाघनीय पक्ष यज्ञ है। यज्ञ की सफलता उचित काल में ही करने से होती है। वेदों का काल निर्धारण ज्योतिष के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसी काल मान की एक इकाई ऋतु है। वैदिक वाङ्मय में षड्ऋतुओं का उल्लेख मिलता है। जैसा कि सामवेद में उल्लिखित है-

वसन्त इन्नुरन्त्यो ग्रीष्म इन्नुरन्त्यों वर्षाण्यनुशरदो।
हेमन्त शिशिरः इन्नु रन्त्यः (सा० वे० ६/४/४२)

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वसन्त ऋतु को संवत्सर का शिर अर्थात् प्रथम ऋतु माना गया है जबकि ऐतरेयब्राह्मणं में पञ्च ऋतुओं का उल्लेख प्राप्त होता है, वहां हेमन्त और शिशिर का एक साथ अन्तर्भाव कर लिया गया है।

ऋग्वैदिक खनिज सम्पदा

अमृता अस्थाना
शोध छात्रा
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

वेद विश्व का ज्ञान कराने वाला शब्द रूपी ब्रह्म है। वेद का अर्थ ज्ञान है। इस कारण यह सभी ज्ञानों का राशिपुंज है। प्राचीनतम ऋग्वेद में छन्दोमयी आर्षवाणी में ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों के प्रति विश्व नियन्ता देवताओं के प्रति भावपूर्ण वन्दना एवं मंगलकामनाएँ व्यक्त की है। साथ ही रम्य प्रकृति के हृदयावर्जक दृश्यों का सुन्दर वर्णन करते हुए धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, एवं भौगोलिक गूढ़ तत्त्वों का भी उद्घाटन किया है। ऋग्वैदिक भौमिक संरचना के अन्तर्गत खनिज सम्पदा का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। खनिज उपज भू-गर्भ में सन्निहित होने के कारण सामान्यतया अप्रत्यक्ष है, जो विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति एवं विकास हेतु आवश्यक है। ऋग्वेद में प्राप्त संदर्भो के आधार पर मैनें तत्कालीन बहुमूल्य खनिज-सम्पदाओं का संकेत अपने इस शोध पत्र के माध्यम से जन-2 के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

वैदिक वाङ्मय में भूगोल

विष्णु प्रकाश त्रिपाठी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर वि0वि0,गोरखपुर

भूगोल के प्रति मनुष्य की चेतना सभ्यता एवं संस्कृति के उदय के साथ जागृत हो गई। भारत में वैदिक काल से ही इस प्रकार के चिन्तन के प्रमाण वेद (संहिता), ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् रामायण, महाभारत तथा विशेष रूप से पुराणों में बिखरे पड़े हैं। ऋग्वेद की ऋचाओं में सृष्टि के पूर्व की स्थिति, सृष्टि रचना एवं पृथ्वी के निर्माणकारी मौलिक तथ्यों के अतिरिक्त पवन, बादल, वर्षा के कारण, सूर्य चन्द्र एवं ग्रहों की गतियों, ऋतु परिवर्तन, दिन रात, ग्रहण, दिशाओं का विवरण, पर्वतों एवं नदियों का उल्लेख है। ऋग्वेद का पुरुष सूक्त (10-90) परमपुरुष के अन्य सभी उपादानों का कारण सिद्ध करता है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में अथर्वा ऋषि ने मातृरूपिणी भूमि की समग्र पार्थिव पदार्थों की जननी एवं पोषिका के रूप में महिमा उद्घोषित की है।

वेदों एवं आरण्यकों में पृथ्वी की गोलाभ आकृति का वर्णन किया गया है जो यथार्थ से

ंल खाता है। ऋग्वेद में सूय एव चन्द्र ग्रहण की स्थितियों का वर्णन किया गया है कि पृथ्वी अन्तरिक्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है तथा चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी व चन्द्रमा के परिक्रमण में जब चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच आता है तब सूर्य ग्रहण और जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्र के बीच आ जाती है तो चन्द्र ग्रहण होता है। सौरमण्डल के ग्रह एवं उपग्रह गुरुत्वाकर्षण शक्ति के द्वारा अपनी निश्चित कक्षा में भ्रमण करते रहते हैं।

अथर्ववेद के तीसरे अध्याय का 17 वां सूक्त 'कृषि सूक्त' है जिससे कृषि से सम्बन्धित अनेक उपयोगी बातों का ज्ञान होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में यव (जौ) व्रीहि (धान) गोधूम (गेहूँ) मुद्ग (मूंग) माष (उड़द) इक्षु)ईख) आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में ही भारत के प्रादेशिक भूगोल से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री मिलती है।

वैदिक साहित्य में गंगा की अवधारणा

डॉ. दीप शिखा
देहरादून

वैदिक काव्य में मानव प्रकृति जीवन के उल्लासमय प्राण तत्व से स्फुरित दिखाई देता है। प्रकृति में सर्वत्र मानवीय जीवन की कल्पना ने प्रकृति को देवत्व प्रदान किया है। वैदिक साहित्य में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देवता रूप में प्रतिपादित किया गया है जैसे इन्द्र, वरुण, उषा, पवन पृथ्वी, रूद्रादि देवता। इन सब रूपों के समान ही देवत्व रूप गंगा का भी सुनदर चित्रण प्राप्त होता है। भगवती गंगा के सम्बन्ध में तो वैदिक वाङ्मय में अनेक ऐसे मंत्र पाये जाते हैं, जिनमें गंगा की लोकोत्तर महिमा का विशद-वर्णन विद्यमान है। वेदों में गंगा का नाम सब नदियों से पहले लिया जाता है यथा इमं में गंगे! यमुने! सरस्वती! शतुद्रि! स्तोमं सन्वत परुष्ण्या!''

इस प्रकार वेदों में गंगा की विभिन्न रूप से प्रशंसा, स्तुति की गई है। गंगा जलरूप की, गंगा का ध्यान, गंगा की महिमा आदि के विषय में वेदों में बहुत वर्णन प्राप्त होते है।

भारतीय संस्कृति में गायत्री गीता एवं गाय समान पावनी भगवती भागरथी का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए वेद, शास्त्र तथा पुराणादि में इसकी महिमा का विस्तार पूर्वक उल्लेख हुआ है। हिन्दुओं के मानस पटल में सुर सरिता के प्रति अगाध श्रद्धा एवं विलक्षण भक्ति भावना परिलक्षित होती है। इसलिए देव जाह्नवी आर्य संस्कृति की प्रगाढ़ आस्था एवं अटल विश्वास का केन्द्र बिन्दु है। सृष्टि का प्रारम्भ जब से माना जाता है, तभी से वेदों का भी माना जाता है और उसमें गंगा की महिमा का वर्णन जिस प्रकार से किया गया है उसके मुख्य बिन्दुओं को प्रकाश में लाना ही प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है।

Geography of Uttaranchal in Vedas

Meena Chauhan
R. S., Deptt. of Geography
Govt. P.G. College, Rishikesh

The Research Paper aim is to give a geographical view on the pilgrim center, lakes, river, etc. of U.A, mention in the Vedic Literature.

Uttaranchal is a divine land situated in the central Himalaya with its most beautiful mountain ranges and dense forest. The whole state of Uttaranchal is considered one of the holiest part of the country because of the presence of sanctuaries of Badrinath, kedarnath, Gangotri and Yamnotri lying in the higher Himalayas and Rishikesh and Haridwar at its foothills, it is therefore also called as "Dev Bhumi" and "Rishi Bhumi".

Description of the holy rivers Ganga, Yamuna is found in Vedas. These rivers have religious importance. The holy water of the conflucece of the two holy rivers is supposed most sacred in Hindu culture. The main confluence point is known as 'Prayagas'. The five Prayagas are Sonprayagas (at the confluence of Alaknanda with Mandakini) Karanpraygas (at the conflucnce of Alakhanda with Pindir), Rudrapyagas (at the confluence of Alaknada with Mandakini), Devprayag (at the confluence of Alaknanda with Bhagirathi) down stream to Devprayag, the river is known as the Ganga or Ganges. "Panch Badri and Panch Kedar are also religious nucleus devoted to lord Vishnu and Lord Shiva respectively. Rishikesh and Haridwar (Door to Badri & Door Kedar) are the attractive religious centres located along the bank of Ganga in the Foothill Zone. Lakes of UA (Bhimtal, Sat tal, Hemkund, Divri Tal, Dodi tal, Roop Kund etc.)

In Vedas each and every elements of nature is given respect because of this Nature is established in the form of Goddess.

मनोविज्ञानम्

ऋग्वेदे-मनोविज्ञानम्

डॉ० नागेन्द्रनाथ झा:
वरिष्ठ व्याख्याता-शिक्षा-विभाग:
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्, श्री रणवीर-परिसर:, जम्मू

न वेदशास्त्रादन्य तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निःसृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात् सनातनात्।।

अर्थात् वेदशास्त्रात् भिन्नं कोऽपि शास्त्रमद्यपर्यन्तं न प्राप्यते। सर्वेषाम् शास्त्राणाम् निष्पत्ति सनातनवेदशास्त्रादेव अभवन्। वेदाः न केवलं सर्वाषां विद्यानां कृते अपितु वर्तमान भूत भविष्यत् कालत्रयाणां कृतेऽपि उपयुक्तज्ञानकोशरूपेण मन्यते विद्वांसा: वेदेषु यादृशं सूक्ष्मं ज्ञानम् एवञ्च अनिन्द्रियेण गोचरं ज्ञानमस्ति न तादृशं ज्ञानं अन्यत्र प्राप्यते। न एतादृशा विषया: ये वेदेषु न सन्ति। यतोहि जीवविज्ञानम्, सृष्टिविज्ञानम्, भूगर्भ विज्ञानम्, सामाजिक विज्ञानम् यान्त्रिकम् मनोविज्ञानम् वा।

मनोविज्ञानं तु वास्तविक रूपेण मनसि जायमानानां विचाराणां विज्ञानमस्ति। मनोविज्ञानस्य सम्बन्ध मूलत: दर्शनशास्त्रेण अस्ति परं शिक्षाया: परिवर्तितस्वरूपेण मनोविज्ञानं न केवलं मनस: विज्ञान अपितु आत्माया: विज्ञानम्, चेतनाया: विज्ञानम्, बुद्धेर्विज्ञानम् वा इत्यादिषु अनेकेषु अर्थेषु स्वरूपेषु वा प्रयुक्त:।

ऋग्वेदिषु अर्थेषु स्वरूपेषु वा प्रयुक्त:।

ऋग्वेददशममण्डले अष्टपञ्चाशताध्याये दशममन्त्रे वर्णितम् यत्-

यत् ते विश्वमिदं जगत् मनोजगाम् दूरकम्।
तत् त आवर्त्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।।

किमधिकं ऋग्वेदे प्रसिद्धगायत्रीमन्त्रे तु मनोविज्ञानस्य प्राचुर्यता दृश्यतैव। विद्वज्जना: नोवैज्ञानिक वा मन्यन्ते यत् गायत्री मन्त्रजापेन' एकाग्रताऽयाति तथा च प्राणशक्ते: बुद्धेर्वा वृद्धिर्भवति।

ऋग्वेदाष्टमण्डलाष्टादशाध्यस्य षष्ठम् वं सप्तमम् मन्त्रे बुद्धे: प्रशंसा विहिता।

वेदे बाल मनोविज्ञानम्

डॉ० सुधा बाजपेयी
रीडर- संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

"मनोविज्ञान का अर्थ है मन का विज्ञान" मन को अनुशासित रखने वाला शास्त्र। मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों की पुस्तकों की बहुलता है। तत्पश्चात्, ब्रिटिश एवं अन्य देशों के मनोवैज्ञानिकों का स्थान आता है, जिन्होंने अपने कार्यों से इसे प्रभावित किया किन्तु भारतीय मनोवैज्ञानिकों का भी इस क्षेत्र में में पर्याप्त योगदान है। पुरातन समय में

भारतीय मनोविज्ञान की झलक ऋग्वेद तथा उपनिषदों प्राप्त होती है। उस समय व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों जैसे आत्मा, मन इन्द्रियों एवं बुद्धि आदि के विषय में कुछ उत्तम चर्चाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

जिस बाल मनोविज्ञान की महत्ता का अनुभव आज किया जा रहा है। उसका सूक्ष्म विश्लेषण एवं उन पर आधारित शिक्षा पद्धति का विकास संस्कृत मनीषियों ने सहस्त्रों वर्ष पूर्व ही कर लिया था।

यजुर्वेद में एक स्थान पर ऋषि कामना करता है:-

मनस्तऽ आ प्यायतां वाक्तऽआप्यायतां
प्राणस्तऽ आप्यायतां चक्षुस्तऽ आप्यायतां
श्रीत्रं तऽआप्यायताम् आ प्यायतां। यत्ते क्रूरं यदास्थितं
तत्तऽ आप्यायतां निष्ट्यायताम् तत्ते शुध्यतु
शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः।।[१]

अर्थात् हे प्रिय बालक! तेरा मन सुविकसित हो। तेरी वाणी सुविकसित हो। तेरा प्राण सुविकसित हो। तेरा नेत्र सुविकसित हो। तेरा श्रोत्र सुविकसित हो। तेरे स्वभाव से क्रूरता बाहर निकल जाए और तू शुद्ध और पवित्र हो जाए। तेरा धैर्य सुविकसित हो। दिन और रात्रि तुझे शान्ति प्रदान करें। माता-पिता तुझे सदा सुरक्षा प्रदान करते रहें।

1. यजुर्वेद 6/15

वेदों में मनोविज्ञान

डॉ० कालिन्दी पाठक
प्राध्यापिंका, संस्कृत विभाग
सरदार वल्लभभाई विनयन महाविद्यालय, अहमदाबाद

वेदों पूर्ण ज्ञान के पर्याय है। विश्व में कोई भी विद्या, कोई भी विज्ञान कोई भी विचार, ऐसा नहीं है कि जो वेदों में न पाया जाता हो।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में अन्य मण्डलों की अपेक्षा नवीनतम विचार प्राप्त होते हैं। वहाँ श्रद्धा, मन्यु जैसे अमूर्त भावों की देवतारूप में स्तुति की गई है। श्रद्धासूक्त (10-151 ऋग्वेद संहिता) में भले ही 'श्रद्धा' नाम के अमूर्त भाव की 'श्रद्धा' देवी के रूप में स्तुति की गई है। मगर सार यह है कि श्रद्धा सहित ही सब कार्य करने चाहिए। श्रद्धा से कार्य करने से ही मनुष भाग्यवान, एश्वर्यवान हो सकता है। आधुनिक रूप से देखें तो मनोविज्ञान ने सफलता के लिए (श्रद्धा) आत्मविश्वास. और एकाग्रता को बहुत जरूरी माना है।

दसवें मण्डल में 'संज्ञानसूक्त' (10-111 ऋग्वेद संहिता) में भी समान मति, समान वाणी, और साथ में ही आगे बढने की बात की गई है। उपनिषदों में कईबार शान्तिपाठों में भी एक दूसरों का द्वेष किये बिना साथ रहकर आगे बढने की भावना व्यक्त की गई है।

मनोवैज्ञानिक रूप से यह सब सद् विचार व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत जरूरी हैं। मनोविज्ञान वैदिक ऋषि के लिए अज्ञात विषय नहीं था। वैदिक ऋषि भी इस विषय के परम ज्ञाता थे। वेदों में भी ऐसी कई बातें की गई है जो मनोवैज्ञानिकरूप से तथ्यपूर्ण हैं।

वेदों में मानसिक चिकित्सा

डॉ० (श्रीमती) पद्मिनी नातू
रीडर संस्कृत विभाग
नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

जब नाना प्रकार की व्याधियां शरीर को पीड़ित करती हैं तो शरीर से पहले मन व्यथित होता है। स्वास्थ्य के लिए बाह्य चिकित्सा के साथ-साथ आत्मबल और मनोबल भी अति आवश्यक है। इसका स्पष्ट प्रमाण वेदों में हमें मिलता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में मनोबल के माध्यम से अनेक रोग दूर होते बताए गये हैं। गीता में भी मन के स्वास्थ्य के लिए वर्णित उपायों से तत्कालीन मान्यता स्पष्ट है - कि मानसिक स्वास्थ्य शरीर के स्वास्थ्य का ही दूसरा पहलू है। सुश्रुत संहिता में तो किसी भी रोग की चिकित्सा से पहले रोगी के मन को स्वस्थ रखने का निर्देश है। (सु0सू0अ0 19.7.8)

ऋग्वेद में निद्रा में उन्मत्त कर देने वाले उन्माद रोग के एक रोगी का उल्लेख है। (10/162/6) वाजसनेयि संहिता में अपामार्ग औषधि के संदर्भ में दुःखस्वप्ननाशन और पाप निवारण की प्रार्थना वनस्पति से की गई है। (वा0सं0 35/11)

अपाधमपकिल्विषम् अपकृत्यामपोरपः।
अपामार्ग! त्वमस्मदप दुष्वप्न्यम् सुव॥

वाजसनेयि संहिता में जल को मानसिक एवं ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है।

मनो मे तर्पयत वाचं मे तपर्यत।

मानसिक रोगों में उन्माद रोग के परिहार के लिए-

"राष्ट्रभृन्मन्त्राणां काम्यप्रयोगाभिधानम्"

में एक मंत्र आया है जिसमें उन्माद के कारण की ओर संकेत किया गया है कि जब कोई व्यक्ति उन्माद रोग से पीड़ित होता है तो उसमें गन्धर्व और अप्सरस् कारणीभूत होते हैं। इन मंत्रों में उन्माद व्याधि को दूर करने के लिए स्वाहा शब्द से होम करने का निर्देश है।

य उन्माद्येतस्मै होतव्या गन्धर्वाह्यरसो वा एतमुन्मादयन्ति।
य उन्माद्यत्येते खलु वै गन्धर्वाह्यरसो वा
यद्राष्ट्रभृतस्तस्मै स्वाहा ताभ्यः स्वाहेति॥

(तै0सं0 3/4, 8/4)

वेदों में मनोविज्ञान

नीतू सिंह
शोधार्थी
विवेक नगर, सुल्तानपुर

वर्तमान समय में मनोविज्ञान एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विज्ञान है। इसे मनोविज्ञान या साइकोलॉजी कहा जाता है। साइकोलॉजी शब्द साइको (ग्रीक साइको स्प्रिट माइन्ड आत्मा, मन) और लॉजी (ग्रीक लॉगिया विज्ञान) शब्दों के मेल से बना है इसका अर्थ है, मन का विज्ञान या मन की विभिन्न स्थितियों का विज्ञान मन के समस्त क्रिया-कलाप का वैज्ञानिक अध्ययन इसका विषय है।

वेदों में मनोविज्ञान की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है, उसका कुछ विकसित रूप ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में मन का शस्त्रीय रूप प्रस्तुत किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मन को ब्रह्म कहा गया है।[1] वह सर्व शक्तिमान् है और परमात्मा का स्वरूप है, अतः ब्रह्म है। मन सृष्टि का कर्ता है, अतः उसे ब्रह्मा कहा गया है।[2]

अथर्व वेद के निम्नलिखित मंत्र में सूत्र रूप में मनोविज्ञान के सभी विषयों का उल्लेख किया गया है।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।[3]

इसमें 'मनसे' के द्वारा संवेदना और प्रेरणा का ग्रहण है। 'चेतसे' के द्वारा चेतना और चिन्तन अभिप्रेत है। 'धिये' के द्वारा ध्यान या अवधान अभिप्रेत है। 'आकूतये' के द्वारा अनुभूति और संवेग का ग्रहण है। 'चित्तये के द्वारा चित्त के धर्म का स्मरण ओर तदभावरूव में विस्मरण का ग्रहण है। 'मत्यै' के द्वारा बुद्धि अभिप्रेत है। 'श्रुताय' के द्वारा श्रवण, पठन एवं शिक्षण का ग्रहण है। 'चक्षसे' के द्वारा चक्षु कार्य दर्शन या प्रत्यक्षीकरण अभिप्रेत है।

यजुर्वेद के 34 वें अध्याय में 'तन्मे' मनः शिवसंकल्पमस्तु वाले 6 मंत्रों में मन के सभी महत्त्वपूर्ण गुणों का उल्लेख हैं ऋग्वेद में मन के दो गुणों का उल्लेख है। मन ज्ञान और कर्म का साधन हैं अतः उसे दक्ष अर्थात् ज्ञानयुक्त और क्रतु अर्थात् क्रियाशील कहा गया है।

भद्रं नो वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदेरणन् गावो न यवसे विवक्षसे।।[4]

सन्दर्भ :-

1. मनो ब्रह्म। गोपथ, 1/2/11
2. मनो ब्रह्मा। गोपथ, 1/2/11
3. अथर्व. 6/41/1
4. ऋग् 10/25/1

वेदों में मनस् की अवधारणा

डा० सुधा वाजपेई
प्रवक्ता
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

मनोविज्ञान में मन को जीवन का एक अनिवार्य तत्व स्वीकार किया गया है। मन के द्वारा ही समस्त इन्द्रियां (कर्मेन्द्रियां एवं ज्ञानेन्द्रियां) अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं। इसलिए भारतीय दर्शन में मन को उभयेन्द्रिय माना गया है। मन के द्वारा ही अप्रमेय एवं ध्रुव सत्य का दर्शन होता है-

मनसैवानुद्रष्टव्यमेदप्रमेयं ध्रुवम्।

सब कहते हैं कि मन अत्यन्त चंचल वेगवान है। परन्तु मन के वेग के विषयों में अभी तक निश्चित रूप से विचार नहीं किया जा सकता है। बैलगाड़ी, घोड़ा, रेलगाड़ी, विमान, वायुयान, चन्द्रमा, सूर्य आदि वेगवान पदार्थ हैं। वायु, प्रकाश और विद्युत् का भी वेग अत्यधिक है। मन के अतिरिक्त अन्य प्रत्यक्ष दृश्य पदार्थो से अदृश्य पदार्थो तक सबकी गति इस समय ज्ञात की जा चुकी है। मन के अन्दर वेग है और वह एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकता है, इसका भी बहुत थोड़े लोगों को ज्ञान है। वेग दो प्रकार का होता है- एक अपने ही अन्दर की गति और दूसरी अन्य स्थान में जाने की गति। यह आन्तरिक गति इतनी अधिक है कि इस गति के कारण मन को स्थिर करना भी अत्यन्त दुष्कर हो गया है। योगाभ्यास द्वारा प्रबल निश्चयपूर्वक बड़े प्रयत्नों के साथ इसको रोका जा सकता है। किसी भारी -भरकम मोटर गाड़ी को सुगमतापूर्वक रोका जा सकता है। किन्तु मन की आन्तरिक गति का विरोध करना बहुत ही कठिन कार्य है। अन्य इन्द्रियों की शक्ति गति की अपेक्षा मन अत्यधिक गतिमान है। ऋग्वेद में भी मन की गति का वर्णन करने वाले मंत्र वर्णित हैं:-

यत् ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
यत् ते परा पारवतो मनो जगाम मनो दूरकम्।।

(ऋग्वेद १०/५८-१, २,४,५,९,१०,११)

यजुर्वेद के 34 वें अध्याय के शिवसंकल्पसूक्त में मन के कार्यों का प्रतिपादन है। मन जाग्रदवस्था में क्षणमात्र में अति दूर गमन कर सकता है तथा दूसरे ही क्षण प्रत्यागमन भी कर सकता है। दूरगामी शक्तियों में सर्वशक्तिमान ही है। मन के द्वारा ही भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् सब कुछ सम्यक् रूपेण ज्ञात किया जाता है। तथा मन के द्वारा ही सभी प्रकार के यज्ञ आदि सम्पन्न किये जाते हैं। मन ही संप्तहोता से युक्त यज्ञ का विस्तार भी करता है। जिस प्रकार रथ की नाभि में तीलियां प्रतिष्ठित होती हैं उसी प्रकार ऋक्, यजुष् एवं साम मन के अन्तर्गत ही प्रतिष्ठित होते हैं। जिस प्रकार चतुर सारथि लगाम के द्वारा घोड़ों को नियंत्रित करता है उसी प्रकार मन मनुष्यों को संचालित करता है।

इस प्रकार चारों वेदों में मन की शक्तियों का वर्णन करने वाले अनेक मन्त्र हैं।

Prospects of Psychology in socio-politico cultural, socio-economic as well as sustainable development

Dusyant Singh
G.K.U., Haridwar

No doubt all the Animals and human beings have a sort of inherent properties of behavioural analysis which Co-evolve with the mental faculty of man. The necessity to know the causes and effects of behavioural uncertainity gave the birth to an applied decipline -the PsYchology. dealing with progressive development and assessment of mental faculty and qualities.

As a discipline psychology has a background of hundred of years old but its diversification is still continued. The conventional applicability of psychology is not in known Viz-personality assessment, personality development, IQ assessment and improvement, Psychotherapy and so on. But in this paper emphasis has been given to psychology and it correlation with Social, political, cultural, economic and sustainable development.

This paper also speak about that how the various disciplines of psychology are correlated and inter-dependence and how their correlation and interdependence play a crucial role in socio-poltico-cultural as well as sustainable development. Further the roles of psychologists. Psychotherapist and psYchoanalyst in multidimensional development, Positive social transformations have also been emphasized.

सूत्रग्रन्थः

कात्यायनशुल्बसूत्रे दिक्साधनप्रयोगः

डॉ० बृजेशकुमारशुक्लः
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ

श्रौतयागपरम्परायां यथा श्रौतसूत्राणां महत्त्वमस्ति तथैव शुल्बसूत्राणामपि महत्त्वपूर्णस्थानं वर्ततेतराम्। शुल्बसूत्रैर्विना वैदिकयज्ञसम्पादने दिग्ज्ञानमुत वेदिग्ज्ञानमुत वेदिनिर्माणं चितिनिर्माणं च भवितुं न शक्यते। अतएव वेदस्य प्रतिशाखं शुल्बसूत्राणि प्राप्यन्ते। साम्प्रतं कात्यायनबौधायनाऽऽपस्तम्बशुल्बसूत्राणि त्रीण्येतानि सुलभतया दरीदृश्यन्ते। अन्यानि बाधूलमैत्रायणवराहमानवादीनि शुल्बसूत्राण्यपि प्राय उपलभ्यन्ते एतेषु सर्वेषु कात्यायनशुल्बसूत्रस्य प्रामुख्यमङ्गीक्रियते विद्वदिभ्: सर्वप्राचीनत्वाद् विषयस्य च गम्भीरतया निर्दिष्टत्वाच्च। कात्यायनशुल्बसूत्रे दिक्साधनविधिनिर्गदितो यथा ज्यौतिषस्य सिद्धान्तग्रन्थेषु शङ्कुमाध्यमेन दिक्ज्ञानं समुल्लिखितं वर्तते। अत्र प्राच्यादिदिङ्मण्डलस्य परिज्ञानाय शङ्कुप्रयोगो विहितः। यथा प्राचींदिशां ज्ञातुं कात्यायनेन प्रोक्तम्-

"समे शङ्कुं निखाय शङ्कुसम्मितया रज्ज्वा मण्डलं परिलिख्य यत्र लेखयो शङ्क्वग्रच्छाया निपतति तत्र शङ्कू निहन्ति सा प्राची" (कात्यायन शुल्बसूत्रे १/२)

समतलायां भूमौ शङ्कुं भूमिमध्ये प्रवेशयित्वा, शङ्कुपरिमाणया रज्ज्वा शङ्कुं केन्द्रीकृत्य वृत्तं परिलिखेत्। यत्र शङ्क्वग्रच्छाया निपतति, तत्र शङ्कुं निहन्ति सा प्राची दिशा भवति। एवमेव प्रतीचीयाम्योत्तराऽऽशाः परिज्ञायन्ते। रात्रौ च नक्षत्रवेधेन प्राचीदिक् साधनं कात्यायनशुल्बसूत्रे समुल्लिखितं वर्तते

कृत्तिका श्रवणः पुष्पश्चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राच्या दिशोरूपं युगमात्रोदिते पुरः॥ (कात्यायनशुल्बसूत्रे ७/३५)

दिक्साधनकर्त्ता गणितादिना कृत्तिकाश्रवणपुष्य नक्षत्राणामथ च चित्रास्वात्योरूदयं निर्णाय नलिकाबेधेन सूत्रद्वारा प्राच्यादिदिक्साधनं कुर्यादिति विस्तरतया शोधपत्रे समाम्नातं भविष्यति। शुल्बसूत्रस्यैते विषयाः परिवर्त्तिभिः सिद्धान्तज्योतिर्विद्भिः स्वकीयेषु ग्रन्थेषु बहुधा विस्तृतरूपेण प्रपञ्चिताः। वैदिककाले नक्षत्रादीनां वेधो भवति स्मेति शुलबसूत्रे एतस्मिन् सङ्केतितत्वादेतज्ज्ञातुं शक्यते यद् वैदिका नक्षत्रादिवेधकार्येषु नितरां पारङ्गता आसन्निति।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतीक विधान

डॉ० बलवीर आचार्य
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण वेद मन्त्रों की व्यपख्या के लिये लगभग 3500 ईस्वी पूर्व हुआ था। ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः (तैत्तिरीय संहिता) भट्ट भास्कर भाष्य) यही मत महर्षि दयानन्द का है-'ब्राह्मणां वेदानाभिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि'' (अनुभ्रमोच्छेदन पृ० 6) वेद मन्त्रों के प्रतीकात्मक वर्णन को ब्राह्मण ग्रंन्थों में स्पष्ट करना असंभव है। पाश्चात्य एवं तदुनसर्ता भारतीय विद्वानों ने प्रतीकात्मकता के ज्ञान के अभाव में अनेक मिथ्या कल्पनाएं अपने वेद भाष्य में की है। इसका खंडन महर्षि दयानन्द ने ब्राह्मण ग्रंथों के प्रमाण से युक्तिपूर्वक किया है।

प्रतीक शब्द का भाव है-

प्रत्येति योऽर्थं प्रतितीकते वा, प्रविष्टतेऽर्थ प्रतिमार्गतोवा।।
प्रत्यायते वा विपुलार्थभावो, नानार्थजुष्टं भवति प्रतीकम्।।

अर्थात् प्रतीक शब्द विभिन्न अर्थों का बोधक है। इससे इष्ट अर्थ का ज्ञान हाता है। अनेकार्थक भावों को स्पष्ट करता है। हरिवंश पुराण में प्रतीक शब्द के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''विशिष्ट शब्दार्थ भावानुबन्धसम्बन्धसन्दोहः प्रतीकम्'' (अध्याय 10 श्लोक 187 बल्लभाचार्य की टीका) प्रतीक के माध्यम से गूढ शब्दों का विश्लेषण करके अभीष्टार्थ स्पष्ट किया जाता है। यथा

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आविवेश।।

इस मन्त्र का वाच्यार्थ हास्यासपद के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता। परन्तु प्रतीकात्मक शैली के आधार पर इसका बहुत ही मनोहारी वर्णन पंतजलि ने महाभाष्य में किया है। इसके अतिरिक्त यज्ञपरक एवं सूर्यपरक व्याख्या भी अनेक मनीषियों ने प्रतीकात्मक शैली से की है।

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में वर्णित वृत्रासुर कथा की ऐतिहासिकता का निराकरण करते हुए उसे प्रतीकात्मक बताया है 'तस्मादाहुः नैतदस्ति देवासुर युद्धमिदम्। उपमार्थवर्णनमिदं प्रतीकमात्रम् नैदत् वास्तविकवृत्रासुरेन्द्रयोः।

इस प्रकार वेद में देवासुर संग्राम की कल्पना ही निराधार सिद्ध हो गयी। इसी प्रसंग में कतिपय ऐतिहासिक प्रतीत होने वाले नाम पदों की प्रतीकात्मक व्याख्या में अर्थ सौन्दर्य की छटा

भी अवलोकनीय है

देवलोको वा इन्द्रः। कौ0ब्रा0 16.8

मन ऐवेन्द्रः शत0 ब्रा0 12.9.1.13

प्राण इन्द्रः शत0 ब्रा0 6.1.2.28

प्रजापतिर्वै वशिष्ठः। कौ0ब्रा0 25.2.26.15

प्राणो वै वशिष्ठः। शत0 ब्रा0 8.1.1.6

मनो वै भारद्वाज ऋषिः। शत0 ब्रा08.1.1.9

चक्षुर्वै जमदग्निः। शत0 ब्रा08.1.2.3

श्रोत्रं वै विश्वामित्रः। शत0 ब्रा0 8.1.2.6

वाग्वै विश्वकर्मा। शत0 ब्रा0 8.1.2.9

प्राणो वा अङ्गिरा। शत0 ब्रा0 6.1.2.24

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रंथों के प्रतीकात्मक अर्थ को हृदयङ्गम किये बिना वेदोदधि का अवगाहन असंभव है।

धर्मसूत्रों में प्रतिपादित सामाजिक न्याय

डॉ० टी० केशव नारायण वेदालंकार
प्रोफसेर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

वैदिक समाज में धर्म के स्वरूप का आधार, एवं स्वतः प्रमाण, वेद ही माना गया है। वेद को ही आधार मानकर मानव समाज की सामाजिक व्यवस्था चलती थी। किन्तु, परवर्तिकाल में वेदप्रतिपादित आचारसंहिता का स्वरूप धर्मसूत्रों में स्पष्टतर प्रतिपादक हुआ है। तत्पश्चात् कल्प के अंगभूत इन धर्मसूत्रों का विषय विभिन्न स्मृतियों में वर्णित है। धर्म सूत्र एवं स्मृतियों का सम्मिलित नाम 'धर्मशास्त्र' भी प्रचलित है।

धर्मसूत्र एवं स्मृतियों मे धर्मसूत्र प्राचीन हैं, एवं स्मृतियाँ आर्वाचीन हैं। ये धर्मसूत्र विविध कालों एवं ऋषियों द्वारा रचित हैं। इन में गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, वसिष्ठ, एवं शङ्खलिखित आदि धर्मसूत्र प्रसिद्ध हैं। धर्मसूत्र ही तत्कालीन संविधान माने जाते थे। इनका न केवल भारतीय संस्कृति के निर्माण में, अपितु, सामाजिक परिणामों एवं विपरिणामों में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः इन धर्मसूत्रों में सामाजिक न्याय का सन्तुलन कहाँ तक बना हुआ है, इसका विश्लेषण ही इस लेख का विषय है।

गृह्यसूत्रों के कतिपय विवेच्य स्थल

डॉ. वेदपाल
रीडर- संस्कृत
जनता वैदिक कालेज, बडौत

अनादिनिधना दिव्या वाक् वेद के सम्यक् परिज्ञान के लिए निर्मित वाङ्मय को वेदाङ्ग नाम से अभिहित किया गया है। विषय विभाग की दृष्टि से इन्हें शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष इन छः भागों में विभक्त किया गया है। वेदविहित कर्मों की क्रमपूर्वक व्यवस्था करने वाला शास्त्र कल्प है। श्रौत, गृह्य, शुल्व एवं धर्म यह चतुर्विध सूत्र कल्पनान्तर्गत हैं।

अग्न्याधान आदि हविः एवं धर्म अग्निष्टोम आदि सोमयागों का विवेचन श्रौतसूत्रों का प्रमुख प्रतिपाद्य है। पञ्चमहायज्ञ, उपनयन, विवाह आदि कर्मों के विधायक ग्रन्थ गृह्यसूत्र नाम से परिगृहीत होते हैं। शुल्व सूत्रों में वेदिनिर्माण आदि का वर्णन है। धर्मसूत्र समाज एवं राजनीति के परिचायक/ प्रतिपादक हैं।

गृह्य/ स्मार्त अग्नि में सम्पाद्यकर्म गृह्यकर्म कहे गए हैं। प्रायशः सभीकर्म समन्त्रक एवं यज्ञपूर्वक किए जाते हैं। यज्ञ के लिए समग्रवैदिक वाङ्मय (निघण्टु से संहिता पर्यन्त) में अध्वर' पद उपलब्ध होता है। किन्तु उपलब्ध गृह्यसूत्रकार कई स्थलों पर पशुहिंसा का समर्थन ही नहीं, अपितु विधान करते दिखाई देते हैं। तद्यथा-

गृहस्थाश्रम का आधार विवाह है। विवाह में अर्घ/ मधुवर्क विवि महत्त्वपूर्ण है। पारस्कर गृह्यसूत्र में - 'मधुपर्कं दधिमधुघृतमपिहितं कांस्ये कांस्येन' 1/3/5 के पश्चात्- ' न त्वेवामांसोऽर्घः स्यात्'' 29 एवं कौषीतक गृह्यसूत्र ''न त्वेवामांसोऽर्घस्स्यादधियज्ञमधिविवाहम्'' 1/11 तथा वाराहगृह्यसूत्र 'पश्वङ्गं पायसं वा भोजयेत्' 11/22 विशेषण विवेच्य हैं।

इसी प्रकार अन्नप्राशन संस्कार में षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्' इस अधिकारसूत्र के अनन्तर आजमन्नाद्यकामस्य। तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामस्य। मात्स्यं जवन कामस्ये कौषी. 1/19/1-4 यह तीन सूत्र अधिकार सूत्र से विपरीत तथा अन्नप्राशन से विरुद्धार्थक होने के कारण विवेच्य हैं। पारस्कर में भी 1/19/7-13 मांस विधायक होने के विवेच्य हैं। इसी सन्दर्भ में आप गृ. 6/16/1 2, वाराह गृह्य 3/12 भी विवेच्य हैं। प्रायः सभी गृह्यसूत्रों में अष्टकात्रय का वर्णन उपलब्ध है। इनमें मध्यमा अष्टका वपाहोम के कारण विवेच्य है। बैखानसगृह्यसूत्र में देवावाहन 1/13, विष्णु का मूर्तीकरण 4/9-10 आदि प्रसङ्ग विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

इस प्रकार गृह्यसूत्रों के प्रमुख प्रतिपाद्य गृह्याग्नि में सम्पादित यज्ञों एवं संस्कारों में प्रसङ्गविरुद्ध उक्त तथा एतादृश अन्य अनेंक स्थल हैं, जो वेद के उपकारक तो हैं ही नहीं, अपितु वेदवर्णित यज्ञ के अध्वर आदि पर्याय नामों से विपरीतार्थ होने के कारण विशेषेण विवेच्य हैं।

कल्प साहित्य में विविध यज्ञ

डॉ० गीतांजलि तिवारी
प्रवक्ता
इमामबाड़ा गर्ल्स पी0जी0 कॉलेज, गोरखपुर

वेदांग साहित्य में कल्प का स्थान नितान्त महत्वपूर्ण है। विपुल वेदांग साहित्य में कल्प दूसरा स्थान है। कल्प की प्रयोजनीयता का अनुभव तब हुआ, जब शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रंथों में यज्ञ यज्ञादि के कर्मकाण्डीय व्यवस्था में विस्तार होने से उसके व्यवहार में कठिनता की अनुभूति होने लगी। उसकी पूर्ति के लिए कल्पसूत्रों की प्रतिशाखा में रचना हुई जिन यज्ञ यज्ञादि विधानों का विवाह-उपनयन आदि कर्मों का महत्वपूर्ण प्रतिपादन वैदिक-ग्रंथों में किया गया है, उन सूत्र-ग्रन्थों का नाम 'कल्प' है।

देवता को दृष्टि कर द्रव्य का अग्नि में त्याग याग कहलाता है। यज्ञ का शाब्दिक अर्थ है- पूजा करना अथवा यजन करना। जहां भिन्न-भिन्न देवताओं के लिये भिन्न-भिन्न हवियों की आहुतियाँ अग्नि में की जाती हैं वे ही यज्ञ अथवा याग कहलाते हैं। महर्षि कात्यायन के अनुसार 'द्रव्य देवता त्याग: याग:'- द्रव्य, देवता और त्याग ये तीन यज्ञ के लक्षण हैं।

बाह्य रूप से देखने पर यज्ञ तो केवल किसी देवताविशेष के लिये द्रव्य का अग्नि प्रक्षेप है परन्तु यह विलक्षण रहस्य से संवलित हैं। जिस कर्म से देह शुद्धि, इन्द्रिय शुद्धि, अहंकार शुद्धि और चित्त शुद्धि होती है जिस कर्म का फल स्वार्थ नहीं परार्थ होता है जिसकर्म से नया आवरण नहीं बनता, प्रत्युत पहले का आवरण क्षीण हो जाता है। जो मार्ग जीव को क्रमश: कल्याण के मार्ग में अग्रसर होने में सहायक होता है। और अन्त में महाज्ञान तक की प्राप्ति कराता है- वही यज्ञ है- गीता के अनुसार-निष्काम भाव से किया गया फलाकांक्षा से रहित योगस्थ कर्म या स्वभाव सिद्ध कर्म ही यज्ञ कहलाता है।

वैदिक यज्ञों में पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ भेद से यज्ञों के तीन प्रकार दिखाकर प्रत्येक के सात-सात भेद करके 21 प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है।

भिन्नाकारी वेदियों का तार्किक विवेचन

डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार
रीडर
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,कुरुक्षेत्र

वेदाङ्गों के अन्तर्गत कल्पसूत्रों को वैदिक कर्मो का साङ्गोंपाङ्ग विवेचन करने वाला। या यज्ञविधियों का प्रतिपादक साहित्य माना जात है। कल्पसूत्रों में शुल्बसूत्र गणितीय आधार लिए हुए है। ये ग्रन्थ प्राचीन भारत में ज्यामिति की समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है। इन ग्रन्थों में पैथागोरस आदि के प्रमेयों की स्पष्ट झलक मिलती है। शुल्बसूत्र विभिन्न प्रकार की यज्ञोवेदियों के निर्माण की गणितीय रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

प्राचीन भारत में 'यज्ञ' को लेकर व्यापक लेखन हुआ है। ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकग्रन्थों और कल्प साहित्य में यज्ञों के प्रकार, प्रक्रिया, अधिकारी, प्रयुज्य-सामग्री, अवधि, प्रविधि और प्राप्ति से सम्बंधित अनेक रोचक सन्दर्भ और घोषणाएं प्राप्त होती है। कहना कठिन है कि यज्ञविषयक यह लेखन शोधपूर्ण वैज्ञानिक आधार लिए हुए है या नितान्त कल्पनाप्रसूत है। पर इतना अवश्य है कि इन ग्रन्थों में उपलब्ध कर्मकाण्ड सम्बन्धी सभी घोषणाएं सत्यसिद्ध हो रही होती तो इन जटिल यज्ञ-यागों का प्रचलन समाप्तप्रायः न होता।

शुल्बसूत्रों की भी यही स्थिति है। वेदीनिर्माण के सन्दर्भ में जहाँ इन ग्रन्थों का धवलतम गणितीय पक्ष उजागर होता है। वहीं वेदियों के आकारों की विभिन्नता का हेतु निरुपित करते समय शुल्बसूत्रकार अतार्किक दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन साहित्य में यज्ञ से स्वर्ग प्राप्त करवाने के आश्वासनों की लम्बी श्रृंखला है। कल्पकार स्वर्ग के साथ-साथ अनेक प्रकार के उद्देश्य आकार -विशेष की वेदियों के निर्माण (चितिचयन) द्वारा सम्पन्न करवा रहे है। आपस्तंब शुल्बसूत्र में बहुलता से इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। आपस्तंब शुल्बसूत्रकार द्वेषभाव (शत्रुभाव) रखने वाले जन्म चुके और अजन्में बन्धु-बान्धवों के नाश हेतु प्रउगचिति[3],उभयतः प्रउगचिति[4] या रथचक्रचिति[5] में से किसी एक चिति के निर्माण, अत्यधिक अन्न-प्राप्ति हेतु द्रोणचिति[6], प्रचुर पशुधन की प्राप्ति हेतु समूह्य पद्धति से चिति निर्माण[7], ग्रामप्राप्ति की कामनापूर्ति हेतु परिचाय्य या उपाचाय्य पद्धति[8] से चिति निर्माण, तथा पितृलोक में अभिवृद्धि के अभिप्सु को श्मशान-चिति[9] के निर्माण का परामर्श देते हैं। इसी प्रकार स्वर्गलोक की प्राप्ति के इच्छुकों को आपस्तम्बकार पक्षी के आकार की वेदी के निर्माण का सुझाव देते है। इनमें श्येन, कंक एवं अलज पक्षियों को आपस्तबकार ने चिह्नित किया है।[10]

इस सन्दर्भ में विचाणीय यह है कि उद्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में वेंदियों के विभिन्न आकारों की क्या भूमिका है? वेदी के आकार का चयन यज्ञ की विशालता, अग्नि के सम्यक् प्रजज्वलन

तथा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की दृष्टि से किया जाना तो युक्तियुक्त है लेकिन बन्धु बान्धवों के नाश तथा अन्न धन स्वार्गादि की प्राप्ति में वेदियों के आकार विषेश की भूमिका का निर्धारण न केवल बुद्धिविवेकशीलता से परे है अपितु हास्यास्पद भी है। साधारण वेदियों के इन विभिन्न आकारों के प्रचलन का एक प्रमुख कारण यज्ञों में आकर्षण उत्पन्न करना रहा हो। वस्तुत:' वास्तुकला की दृष्टि से कल्पसूत्रों का वेदीविषयक रेखांकन गौरवपूर्ण है। परन्तु इन विभिन्न आकारों की वेदियों का आपस्तम्बकार द्वारा घोषित उद्देश्य अवैज्ञानिक और अतार्किक है।

सन्दर्भ

1. ऋक्प्रातिशाख्य टीका (विष्णुमित्र), वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्।
2. सायण, कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र व्युत्पत्ते:।
3. आपस्तंब शुल्बसूत्र 1,2,7 प्रउगं चिन्वीत भातृव्यवानिति विज्ञायते।
4. वही ,,12/12, अभयत: प्रउगं चिन्वीत य कामयेत प्रजातान् भतृव्यान्नुदेय प्रतिजनिष्यमाणानिति विज्ञायते।।
5. वही ,, 12/16 रथचक्रचितं चिन्वीत भ्रातृव्यवानिति विज्ञायते।
6. वही. 13/6 द्रोणचितं चिन्वीत अन्न काम इति विज्ञायते।
7. वही ,, 14/1 समूह्यं चिन्वीत पशुकाम इति विज्ञायते।
8. वही ,, 14/5, परिचाय्यं चिन्वीत ग्रामकाम इति विज्ञायते।
   14/7 उपचाय्यं चिन्वात ग्रामकाम इति विज्ञायते।
9. वही ,, 14/9, श्मशानचितं चिन्वीत य: कामयेत पितृलोक, ऋध्नुयामिति विज्ञायते।
10. वही 18.1 श्येनचितं चिन्वीत सुवर्गकाम इति विज्ञायते।
    21/1 कङ्क चिदलजचिदिति श्येनचिता व्याख्यातौ।

वैदिक विवाह में प्रतिज्ञा मन्त्रों की उपादेयता

रश्मि सिंह चौहान
महिला (पी0 जी0)कॉलेज
कानपुर विद्या मन्दिर, कानपुर

"विवाह" उसको कहते है कि जो पूर्ण ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा विद्या बल को प्राप्त तथा सब प्रकार से शुभ गुण कर्म स्वाभावों में तुल्य, परस्पर प्रीतियुक्त होके सन्तानोत्पत्ति और अपने-अपने वर्णाश्रम के अनुकूल उत्तम कर्म करने के लिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध होता है।[1] विवाह उत्तरायण शुक्लपक्ष अर्थात् जिस दिन प्रसन्नता हो, उस दिन विवाह करना चाहिए।[2] वर और वधू का आयु, कुल, वास्तव स्थान, शरीर और स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें। अर्थात् दोनों संज्ञान और विवाह की इच्छा करने वाले हों। स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी एवं अधिक से अधिक दुगुनी होवें।[3] स्त्री व पुरुष विवाह से पहले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा करके अपने समान

गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्यायुक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें, कि जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हो।[5] चाहे मरणपर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे, परन्तु गुणहीन असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर-कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ विवाह करें। कन्या का विवाह दूर देश में होने से हित होता है।[6]

वैदिक विवाह में अनेक अनुष्ठान व क्रियाये की जाती हैं, सभी क्रियाओं का प्रतीकार्थ है, जो उसे भावी जीवन के लिए सन्देश देता है, जैसे मधुपर्क विधि, कन्या प्रतिग्रहण विधि, प्रतिज्ञा विधि, शिलारोहण, सप्तपदी आदि।

---

1 संस्कारविधि-महर्षि दयानन्द सरस्वती-पृ.153 प्रकाशक-रामलाल कपूर ट्रस्ट

2 पारस्कर गृह्यसूत्र - 1/2/1

3 संस्कारविधि-महर्षि दयानन्द सरस्वती-पृ. 156 प्रकाशक-रामलाला कपूर ट्रस्ट

4 यजुर्वेद भाष्य-महर्षि दयानन्द सरस्वती 8/12, 8/31

5 संस्कार विधि - महर्षि दयानन्द सरस्वती-पृ. 161

6 "दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतिति"-निरुक्त-आचार्य यास्क 3/4

7 गृभ्णामि ते सौभत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुगार्हपत्याय देवाः।। ऋग्वेद 10/85/36

धर्मसूत्रों में प्रायश्चित्त विधान

(मनुस्मृति के विशेष संदर्भ में)

वेदप्रकाश
शोधछात्र, संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न रहे। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'। व्यक्ति को प्रसन्नता तब मिलती है जब वह अपने अधिकारों का पूर्णरूप से उपभोग कर सके। जब व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति नही होती है, तब वह अप्रसन्न होकर पाप एवं दुष्कर्मो को करने लगता है। वैदिक साहित्य में इन पाप एवं दुष्कर्मों से छुटकारा पाने के लिए दण्ड एवं प्रायश्चितों का विधान मिलता है। वैदिक काल में जब तक पूर्णरूपेण राजशासन व्यवस्था स्थापित नही हो सकी थी तब समस्त पापों के निवारण के लिए लोग प्रायश्चित्त ही करते थे। इसी कारण ब्राह्मण-ग्रन्थों में सर्वत्र प्रायश्चितों का विधान प्राप्त होता है। विभिन्न मन्त्रों के जप, तप, तथा व्रत इत्यादि को करने से पाप से विमुक्ति प्राप्त होती थी। अनेक प्रकार के पापों के लिए प्रायश्चित्त स्वरूप ऋग्वेद के अघमर्षण-सूक्त के मन्त्रों के जप का विधान भी प्राप्त होता

है। यदि अपराधी स्वयम् अपने अपराध से संतप्त होकर अपराधोत्पन्न पाप से निवृत्त होना चाहता था तो वह धर्मशास्त्रों की शरण लेकर यथोचित कर्म का पालन करता था। पाप कर्म चाहे अनजाने में हुआ हो या फिर जानबूझकर किया गया हो उसका प्रायश्चित करना पड़ता था। विहित कर्म को छोड़कर अविहित कर्म करने वाला एवम् इन्द्रिय-भोग मे लिप्त व्यक्ति प्रायश्चित्त का अधिकारी माना जाता था। पाप की दो प्रकार की शक्तियाँ है, प्रथम शक्ति नरक प्रदान करने वाली और दूसरी समाज में पापी के व्यवहारों को सीमित करने वाली। इसी आधार पर प्रायश्चित भी दो प्रकार के होते है। एक नरक से बचाने वाला और दूसरा आत्म-शुद्धि करने वाला। प्रायश्चित्त-विधान वस्तुतः सामाजिक व्यवस्था थी। समाज से बहिष्कृत एवं सर्वाधिकार से च्युत हो जाने के कारण पापी पाप का प्रायश्चित्त करता था।

प्रस्तुत शोधपत्र में धर्मसूत्रों मे वर्णित प्रायश्चित्त कर्मो का मनुस्मृति के सन्दर्भ में अध्ययन किया जाएगा। धर्मशास्त्र ग्रन्थों में अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान मिलता है।

धर्मसूत्रों में वर्णित ब्राह्मणों के विशेषाधिकार एक आलोचनात्मक अध्ययन

हिमांशु पंडित
शोध छात्र
प्रा0भा0इति0सं0 एवं पुरा0 विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

प्राचीन भारत के किसी भी कालखण्ड में सामाजिक संरचना के सर्वोच्च पद एवं प्रतिष्ठा पर सदैव ही ब्राह्मण आसीन रहे हैं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, यहाँ तक कि न्यायिक आदि कोई भी क्षेत्र हो प्रत्येक स्थान पर ब्राह्मणों को असीमित विशेषाधिकार दिये गए थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र से यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जाता है।

दशवर्षश्च ब्राह्मणः शतर्षश्च क्षत्रियः।
पितापुत्रौ स्म तौ विद्धि तयोस्तु ब्राह्मणः पिता॥

(आपस्तम्ब धर्मसूत्र १/४/१४/२३)

अर्थात् एक सौ वर्षीय क्षत्रिय को एक दस वर्षीय ब्राह्मण का पिता की भाँति सम्मान करना चाहिए। किन्तु यह बात अधिक गौर करने लायक है कि वास्तव में ब्राह्मणों को समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा ये असंख्य विशेषाधिकार और सुविधायें क्यों प्राप्त थीं? सत्य यह है कि ब्राह्मण को यह विशेषाधिकार अनावश्यक नहीं दिये गए थे, अपितु यह उसकी कठोर, त्यागमयी एवं तपस्वी जीवन शैली के प्रत्युत्तर उन्हें मिले थे। पहला तो यह कि ब्राह्मणों का जीवन आदर्श ही

था निर्धनता, सादा जीवन उच्च विचार, धन संचय से दूर रहना, दया, क्षमा, अध्ययन, विनय, शालीनता और सर्वप्रमुख विद्या का मुख्य दायित्व भी समाज में शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान एवं अन्य विद्याओं का संरक्षण तथा संवर्द्धन था और समाज को शिक्षित करने का महती दायित्व भी उन्हीं पर था जिसे वे पूर्ण निष्ठा से निर्वहन करते थे। ब्राह्मणों ने भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कई अन्य परा अपरा विद्याओं का ना सिर्फ विकास किया अपितु उनके सरंक्षण-संवर्द्धन तथा जन जन तक उसकी पहुँच कराने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यही कारण था कि ब्राह्मणों को पृथ्वी का देवता-भूदेव, प्रत्यक्ष देवता जैसी उक्तियों से सम्मानित किया जाता रहा है। उनके वाक्यों को ब्रह्म-वाक्य कहा गया है। ब्राह्मणों को पूर्णरूपेण अवध्य, अबन्ध्य, अदण्ड्य, अबहिष्कार्य, अपरिवाद्य, अपरिहार्य कहा गया है और पुनश्च इसका कारण भी ब्राह्मणों की वही अतुलनीय जीवन शैली थी जिसकी चर्चा उपरोक्त की गई है। हालांकि कुछ सूत्रकारों ने कहीं कहीं ब्राह्मणों को अपराध के लिए कठोर दण्ड की भी व्यवस्था की है।

किन्तु यदि विश्लेषण किया जाए तो सम्भवत: इसका कारण भी यही था कि इतने शिक्षित, संयमी, नियमी और विधि तत्ववेत्ता ब्राह्मणों से किसी अपराध की अपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि ब्राह्मणों के कर्म एवं जीवन शैली अनुकरणीय है और उनसे अपराध होने की स्थिति में समाज पर इसका कुप्रभाव पड़ सकता था। बहरहाल इनमें कोई सन्देह नहीं कि अपने कर्मों के कारण ही ब्राह्मण विशेषाधिकारी रहे है।

Geometrical Structures In Baudhayana Sulbasutra & Apasthambha Sulba Sutra

P.Venkata Chalapathi
Research Scholar, Deptt of Vyakarana
Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati

The stanza *Vedokhilodharmamulam* reminds that Indians have deeply embedded esteem and superlative faith in Vedas. This vedic literature mainly includes Samhitas, Brahmanas, Aranyakas and Upanishads. Subject wise this literature is divided into two parts nemely-*Karmakanda* and *Janakanda*. *Siksa*, *Vyakaranam*, *Chandah*, *Niruktam*, *Joytiam* and *Kalpa* are the six limbs of *Vedapurusha*. *Kalpasutra* and *Jyotisha* are of the paramount importance to understand vedic rituals. It is said that - *Kalpyante- samarthyante yajnayagadi prayogah yatra iti kalpah*. This *kalpasutra* connected to each vedic samhita is further divided into three parts-*Srautasutra*, *Dharmasutra* and *Grhyasutra*. Even though

some consider *Sulbasutra* as a seprate part many consider it as the part of Srautasutra. Of all Srautasutra-s *Baudhayana, Apasthamba Katyayana* and *Manava* are considered to be important. out of these four Baudhayana, Aparthamba and Katyayana deal with the mathematical portion namely Geometry in detail. *Manava* gives inadequate description of Geometry and deals only with Squares and Circles.

Though all the *Srautasutra-s* commonly deal with Geometry, *Baudhayana* and *Apasthamba* are considered to be major works in this regard. Hence my paper deals with the Geometrical structures described in *Baudhayana* and *Apasthamba Strautasutra-s.* Major content of the sutras are-

1. *Baudhayana Strautasutra*-It consists of three parts. The first part deals with geometrical portion required in the construction of various Altars and the distance between sacred fires their shapes the form of different bricks and their numbers and placement of them. Second and third parts deal with the size and shapes of the bricks required for construction of Altars. The first twenty sutras of first chapter give the definition of different measures. The next twenty sutras discuss four different methods of constructing a square.
2. *Apasthamba Srautasutra*-This sutra is divided into six chapters which are sub divided into twenty one khandas. First three khandas deal mainly with Geometrical rules. Remaining portion consists of description of various altars and forms and sizes of bricks required for their construction alogn with the instruction of placement. Here the eighth rule gives the definition of Theorem of Pythagoras in the case of a rectangle.
3. The most important points observed are-
   a) The shapes of altars may differ in shapes but their areas will remain same.
   b) In the constructions of altar there will be five layers and each layer will consist of 200 bricks.
   c) In the cas of three sacred fires only *Garhapatya* will have 5 layers and each layer will consists of 21 bricks.
4. I conclude this abstract with following Units of Measure used while constructing the different altars.

14 anus	-	I tila			
34 tilas-	-	I angula	12 angulas	-	I Pradesa
13 angulas	-	I vitasti	15 angulas	-	I pada
24 angulas	-	I aratni	32 angulas	-	I Janu
36 angulas	-	I samya	86 angulas	-	I yuga
104 angulas	-	I aksha	120 angulas	-	I purusa

व्याकरणम्

वाग्भेदपर्यालोचनम्

डॉ० अयोध्यादास श्रीवैष्णवः
प्रोफेसर, प्राच्यसंस्कृतविभागः
लखनऊ विश्वविद्यालयः, लखनऊ

अनेकेषु वैयाकरणदर्शनप्रतिपाद्यविषयेष्वाचार्याणां मिथोविरुद्धानि मतानि समुपलभन्ते। तेष्वन्यतमं वाग्भेदविषयकं विशिष्टं मतं वरीवर्तते। विषयेऽस्मिन् भर्तृहरिनागेशयोर्मतभेदः सुप्रसिद्धः। एषां भेदानां परावाग्विषयकं तत्त्वमेव कारणस्य प्रकाशकम्। अत एव परममहत्त्वशालिवाक्तत्वविषयको मतभेदः कथमायाति, कथञ्चिच्च तन्मतभेदसमन्वयो भवितुमर्हति न वेति पक्षद्वयं विमृश्यते –

आचार्यभर्तृहरिमतानुसारं वाचस्त्रैविध्यं शब्दशास्त्राभिमतमिति वैयाकरणैः स्वीक्रियते। यथोक्तं वाक्यपदीये ब्रह्मकाण्डे –

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थभेदायाः त्रय्या वाचः परं पदम्।।इति

तत्र भर्तृहरिप्रभतिवैयाकरणानां पश्यन्ती वाक् शैवदार्शनिकाभिमत परावाक्तुल्येति तथ्यमिदं व्याकरणशास्त्रानुरोधिंप्राचीनाकरग्रन्थेषु शैवागमग्रन्थेषु च पश्यन्तीपरेति विवेचनप्रसंगे वर्तते। शैवागमाचार्यः सोमानन्दः शिवदृष्टौ वाक्तत्वविषयकवैयाकरणमतखण्डनप्रसंगे कारिकाद्वये वैयाकरणाभिमतं त्रिधावाक्सिद्धान्तमुक्तवान्। अनेनापि वैयाकरणनिकाये वाचस्त्रैविध्यमिति परिलक्ष्यते। अत एव वर्णादिविभागरहिता संहितक्रमा प्रकाशभूतानपायनी अन्तः सूक्ष्मा पश्यन्तीरूपा वागिति प्रतिपादयन् भर्तृहरिः वाचस्त्रैविध्यमेव स्वीकरोति वाक्यपदीये।

नागेशभट्टास्तु ''चत्वारिवाक्-----------तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति'' इति ऋग्मन्त्रं तत्रत्यं पातञ्जलमहाभाष्यंचाधारीकृत्य वाचस्चातुर्विधत्वं स्वीकुर्वन्ति। कैयटेनापि तत्रत्य प्रदीपटीकायां ''भाष्ये पदजातानि परापश्यन्त्री मध्यमा वैखरी रूपाणि। अत एवाग्रे निपाताश्चेति चकारः संगच्छते'' इत्युक्तम्। एतेन कैयटमतेऽपि वाचश्चातुर्विध्यमायाति। आचार्यपाणिनेगुरुवर्यस्य नन्दिकेश्वरस्य काशिकायामपि वाचस्चतुर्विधत्वपक्षः निर्दिष्टो विद्यते। अत एव नागेशभट्टेनापि वाचश्चातुर्विध्यं वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषायां शब्दसृष्टिप्रक्रियानिरूपणप्रसंगे प्रतिपादितम्। तेन परायाः वाचोऽस्तित्वप्रतिपादनप्रसंगे तत्र युक्तिद्वयी निर्दिष्टा। वाक्यपदीये पदकाण्डे द्रव्यसमुद्देशे परमप्रामाणिकेन वाक्यपदीयस्य प्रकाशव्याख्याकारेण हेलाराजेनापि वाग्भेदविवेचने नागेशाभिमतपक्षस्य समर्थनं विहितम्। पुराणेष्वपि शैवसिद्धान्तमतानां प्रतिपादनावसरे वाचश्चतुष्ट्वं प्रतिपादितं विद्यते। परन्तु शैवसिद्धान्ते चतस्रो वाचः दृष्ट्वा नागेशभट्टानां तदनुयायिनामन्येषाञ्च मतानि न भर्तृमतसिद्धानि।

वस्तुतस्तु वाचस्त्रिविधत्वं चतुर्विधत्वं वेतिपक्षद्वये सर्वतः पर्यालोचनया स्पष्टप्रतिपत्तये चतुष्टयी वागिति पक्ष एव ज्यायानिति। वाचस्त्रित्ववादिनः पश्यन्त्याः वाचः स्थूलसूक्ष्मरूपेण तस्याः द्वित्वं

स्वीकुर्वन्ति। प्रकारान्तरेण तेषां मतेऽपि वाचस्चतुष्ट्वमायात्येव। अत एव स्पष्टप्रतिपत्तये एकमपरमपि भेदं परावाग्रूपमुरीकृत्य तस्या: वाच: भेदचतुष्टयेऽपि न कापि विप्रतिपत्ति: प्रेक्षावताम्।

नेदमत्रविस्मार्य यत् ''त्रय्या: वाच:'' इत्यंशेन इदं प्रतीयते यत् त्रिस्रषु वाक्षु प्रकृतिप्रत्ययतत्तदर्थविभागान्वाख्यानपुरस्सरं ज्ञानं योगिन: कुर्वन्ति। सामान्यजनास्तु मध्यमावैखर्योश्च तादृशं बोधमवगमयन्ति। किन्तु चरमवाक्तत्वे परारूपे शब्दब्रह्मणि भेदं न कोऽपि कर्तुं क्षम:। अत एव भेदबुद्धिमादाय ''त्रय्या वाच:'' इत्युक्तम्। परातत्त्वं येऽवगमयन्ति ते ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' इति श्रुत्युनेरोधेन सर्वथा भेदमपहायैव तद्रूपतामवगमयन्तीति तत्वम्।

व्याकरणस्य दर्शनशास्त्रत्वम्

डॉ० भोला झा:
प्राचार्य:
श्रीभगवानदास केन्द्रीयसंस्कृतमहाविद्यालय:, हरिद्वारम्

व्याकरणं प्रधानवेदाङ्गम् :- भगवतो वेदपुरुषस्य सन्ति षड़ङ्गानि 1. व्याकरणम् 2. शिक्षा, 3. निरुक्तम्, 4. कल्प:, 5. ज्योतिषम्, 6. छन्द:।

तेषु व्याकरणं मुखमिव प्रधानम्। ''मुखं व्याकरणं स्मृतम्'' इति हि शिक्षा वचनम्। अस्य प्राधान्यं च पद-पदार्थ- बोधकत्वात्। अत एवास्य सर्वशास्त्राणामुपकारकत्वम्,'' काणादं पाणिनीयं च सर्वशास्त्रोपकारकम्'' इति वचनात्।

व्याकरणस्य प्रयोजनम् :- शब्दसाधुत्वज्ञानं व्याकरणस्य साक्षात् प्रथमं प्रयोजनम् 'व्याकरण' पदस्य व्युत्पत्त्या तथैवार्थलाभोत्। व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा '' अनेनेति हि तस्य व्युत्पति: । भगवता पतञ्जलिना च ''अथ शब्दानुशासनम्'' इति वाक्येन महाभाष्यग्रन्थारम्भणात्। शब्दानाम्! साधुशब्दानाम्! अनुशासनम्, अपशब्देभ्यो विविच्य निर्वचनमनेनेति 'शबदानुशासन' पद व्युत्पत्ति:। तस्य साधुशब्दज्ञानप्रयोजनस्य प्रयोजनानितुप्रतिपादितानि '' रक्षोहागमलध्वसन्देहा: प्रयोजनम्'' इति वचनात्। तेन च व्याकरणस्य साधुशब्दज्ञानपूर्वकप्रयागद्वारा धर्मार्जनपूर्वकम् ऐहिकामुष्मिकाभ्युदयहेतुत्वं बोध्यते।

व्याकरणस्य नि:श्रेयससाधनतया दर्शनत्वम्:- दृश्यते=साक्षात्क्रियते आत्माऽनेनेति व्युत्पत्त्या आत्मसाक्षात्काररूपानि:श्रेयससाधनानि शास्त्राणिं 'दर्शन' पदभाञ्जि भवन्ति। तानि च दर्शनानि सन्ति-वेदान्त-साङ्ख्य-योग-न्याय-वैशेषिक-मीमांसादीनि। तेष्वेव एकं वरीवर्ति व्याकरणं नाम दर्शनम्। एतच्च व्याकरणस्य दर्शनत्वं भगवता भाष्यकृता व्याकरणप्रयोजनस्य साधुशब्दज्ञानस्यानुषङ्गिक - प्रयोजननिरुपणावसरे चतुरो मन्मानुद्धृत्य तेषां व्यवस्थाभि: सुस्थिरीकृतम्।

संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणोपायाः

डॉ० ओमप्रकाश भट्टः
प्राचार्यः
श्री रामानुज श्री वैष्णव संस्कृत महा0, हरिद्वार

मानवीय वाङ्मय स्वरूपस्य सर्वप्रथमे सोपाने ऋग्वेद रचना प्रसङ्गे व्याकरणस्य स्वरूपं "चत्वारिशृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः ....। (ऋग्वेद 4/58/06) इत्यादि मन्त्रेण प्रदर्शितमस्ति। एतत् 'शब्द ब्रह्मेति कृत्वा जिज्ञासु सिसाधयिसुभिर्मन्यते। संस्कृत व्याकणस्य विशिष्टानु सन्धातारस्तु निश्चप्रचं भारतीया एव सन्ति। किञ्चास्यानुपममहत्ता प्रचारकास्तु वैदेशिका विद्वांस एव। लैटिन ग्रीकादि श्रेण्यभाषास्वपि संस्कृत व्याकरणस्य श्रैष्ठ्यं प्रतिपादितम्।

एतत्तु सर्वैरपि भाषाविज्ञानपण्डितैः सनिर्वादमङ्गीकृतं यत् वागर्थ स्वरूपस्य सूक्ष्मावगमने संस्कृत व्याकरणं यादृक् साधनं भवति तादृक् नेतरं व्याकरणम् इति कृत्वैवामेरिकायाः टैक्सास विश्वविद्यालयेऽन्ताराष्ट्रिय भाषार्थ बोधावगमन प्रसङ्गे संस्कृतस्य साधनत्वं गणकयन्त्राय स्वीक्रियते। ऐन्द्रचान्द्रादिव्याकरणमारभ्य त्रिमुनि व्याकरणपर्यन्तं, तस्यापि नागेश भट्ट प्रभृत्याधुनिक व्याकृत विश्लेषण पर्यन्तं वृहदस्त्यस्मिन् विषये परिचर्चयितुम्।

वस्तुत एतत्तु समीचीनमेव प्रतिभाति यदस्यां कम्प्यूटरकालकवलितायां लोकजीवनारस्थायाम् उपर्युक्त प्रकारक व्याकरण समुद्रमन्थनन्तु सुदुसहमेव। एतावता विचारणीयमेवेतद् यदस्माकं संस्कृतभाषा व्याकरणस्य विकृतिनिरसनपूर्विका प्रकृतिरक्षा कैस्कैरूपायैः कर्तुं शक्यते? तदत्रास्माकं मतमस्ति यद् यतो संस्कृत व्याकरणं यथैव दर्शनं तथैव शास्त्रमपिभवति। अतोऽत्र दर्शनविषयक व्याकरणं. शास्त्रविषयक व्याकरणात् पृथक परिभाषणीयम् । तत्त्वैज्ञैः देशकालपरिस्थिति विशेषज्ञैर्विद्वद्भिः परीक्षार्थिजनानां कृते व्याकरणबोधाय सरलः कश्चनोपायोऽनुसन्धातव्यः, येनास्माकं छात्राणामपि प्रस्थानत्रय्यां, वाल्मीकिरामायणे, महाभारतादिषुः च गतिः स्यात्। दर्शनात्मकं व्याकरणन्तु विशिष्टानामेवाध्येतृणां कृते सुरक्षितं स्यात्। अत्र भूत-भविष्यद् वर्तमान-संस्कृत स्वरूप विश्लेषका एव प्रमाणं स्युः। विषय एषः शोधपत्रे विशदीकृतं वर्त्तते।

व्याकरणशास्त्रे स्फोटवादः

डॉ. भारतनन्दन चौबे
व्याकरणप्राध्यापकः
ऋषि संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वारम्

वैयाकरण नये स्फोटादेव जगतः प्रक्रिया विवर्तते। शाब्दबोधेऽर्थोपिस्थिति द्वारा वृत्तिमत्पदस्यैव हेतुत्वेन स्फोटात्मक शब्दस्यैव वृत्तिमत्वं नैव ध्वनेरिति विवेचयितुं स्फोटान् निरूपयति श्री नागेशः। 'स्फुटन्ति अर्था यस्मादिति स्फोटः' स्फुट विकसने इत्यस्माद्धतो 'अकर्तरिच कारके संज्ञायाम्' इति सूत्रेण घञ् प्रत्यये सति 'स्फोट' इत्यस्य सिद्धि जायते, सोऽयं विकसार्थः स्फोटः वर्ण पद वाक्य भेदेन प्रथमं त्रिधा अर्थात् वर्णस्फोटः, पदस्फोटः, वाक्यस्फोट इति। तत्रापि जाति व्यक्तिभेदेनं पुनः षोढाः अर्थात् वर्णजातिस्फोटः, वर्णव्यक्तिस्फोटः, पद जातिस्फोटः, पद व्यक्तिस्फोटः अखण्डपदस्फोटः, अखण्डवाक्यस्फोटश्चेति सङ्कलनयाऽष्टौ स्फोटाः।

तत्र वर्णा एव वाचका इति बोधनार्थो वर्णस्फोटः प्रथमः। पदमेव वाचकमिति बोधनार्थः पद स्फोटो द्वितीयः, वाक्यमेव वाचकमिति बोधनार्थो वाक्यस्फोटस्तृतीयः। तत्राखण्डमेव पदं स्फोटोऽस्ति न तु वर्णारब्धमिति बोधनार्थोऽखण्डपदस्फोटः। एवं वर्णैः पदैर्वारब्धं वाक्यं न स्फोटः किन्तु तदन्यदेवेति अखण्डवाक्यस्फोटोऽष्टम इति। अयं हि विकसनार्थः स्फोटः शब्दो ब्रह्माभिन्नो ब्रह्मसहोदरो वा, यथा च चतुरशीति लक्ष संख्यया मिथो विलक्षणानां सुर नर पुश कीट मशक द्रुमादि स्थावर जङ्गमानां ब्रह्मणो विकास एवं वुभुत्सितानां घट पटद्यर्थानामपि शब्दादेव विकासो जायते इति ब्रह्मवदयंस्फोट शब्दोऽस्ति।

नैयायिका वैश्वरीध्वनीनामेव वाचकत्वं प्रतिपादयन्ति शब्दानामनित्यवञ्च निरुपर्यन्ति। मीमांसकाः शब्दानां नित्यत्वं स्वीकुर्वन्तोऽपि ध्वनिरूपत्वमेव तेषां साधयन्ति, किन्तु वैयाकरणा ध्वनिव्यतिरिक्तं स्फोटात्मकमेव शब्दं स्वीकुर्वन्ति इति।

पाणिनीयं व्याकरणं सङ्गणकविज्ञानञ्च

डॉ. सुरेन्द्र कुमारः
रीडर, संस्कृत विभागः
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालयः, रोहतकम्

शोधपत्रमिदं सर्वेक्षणात्मकमस्ति। पाणिनीयं व्याकरणं सङ्गणकायोपयोगीति प्रायशः श्रूयते, परं ये सङ्गकणप्रणाल्याः पाणिनीयव्याकरणाच्चानभिज्ञाः सन्ति ते न जानन्ति यत्कथं पाणिनीयं व्याकरणं सङ्गणकविज्ञान उपयोगित्वमर्हति। शोधपत्रेऽस्मिन् पाणिनीयव्याकरणस्य सङ्गणकायोपयोगिता कंन वैशिष्ट्येनास्ति। विषयेऽस्मिन्नधुनापर्यन्तं कुत्र कुत्र कानि कानि शोधकार्याणि अभवन्? सम्प्रति कानिशोधकार्याणि प्रचलन्ति? कस्यापि नवीनशोधकार्यस्यात्रावकाशोऽस्ति न वेत्यादीनां प्रश्नानां सोत्तरं सर्वेक्षणं कृतमस्ति।

भर्तृहरिमते स्फोटस्वरूपम्

डॉ० कामदेव झा:
प्राचार्य:
डी. ए. वी. कॉलेज, अम्बाला

स्फोटतत्त्वं शाब्दिकानां प्रतिपाद्यविषयेषु मुख्यत्वेन विराजते। रत्नस्वरूपं स्फोटतत्त्वमिदं शाब्दिकानां हस्तगतं कदा सञ्जातमिति सम्यग् न ज्ञायते। यद्यपि हरिवंशस्य (16/52) भविष्यपर्वण्यक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रय इत्यनेन प्रतिपादितमस्ति। गीतायामप्यत्र (10/33) अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य चेति। अवङ् स्फोटायनस्य सूत्रमिदमाश्रित्य पदमञ्जरीकारहदत्तनागेशभट्टयोर्मते स्फोटायनः ऋषिरेव स्फोटस्य प्रथमः प्रतिपादक इति। यद्यपि स्फोटस्यास्य प्रथमः महाभाष्ये। (1/1/70) स्फोटः शब्दः, ध्वनि शब्दगुण इत्यनेन संदृश्यते। स्फोट स्फुट् (विकासे) धातुना निष्पन्नो भवतीति। स्फोटस्य व्युत्पत्तिप्रसङ्गे नागेशस्तु स्फुटति प्रकाशतेऽर्थोऽस्मादिति स्फोटः इतिप्रतिपादयति। इत्यनेनावबोध्यते यत् स्फोटोऽयं अर्थप्रकाशकः। ध्वनिना प्रकाश्यते स्फोटः। अतः ध्वनि प्रकाशक अभिव्यञ्जको वेति। स्फोटस्तु प्रकाश्य अभिव्यङ्ग्यो वेति भावः। ध्वनिस्तु द्विविध प्राकृतो वैकृतश्च। प्रकृतौ भवः प्राकृतः। ततः परं ततिरूपेण यः नादः श्रूयते स वैकृत इति। सफोटः प्राकृतध्वनिना प्रकाश्यते। अतः नित्योऽयं स्फोटः भूत्वाऽपि प्राकृतस्य ध्वनेः कालः स्फोटस्येत्युपचर्यत इति भावः। भर्तृहरिणा सङ्ग्रहकारस्य मतमुद्धृत्य स्वोपज्ञवृतौ प्रत्यपादि यत् कथमत्र प्राकृतध्वनिना स्फोटः प्रकाश्यते। यथोक्तं तत्र

स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते।
वृत्तिभेदे निमित्तत्व वैकृतः प्रतिपद्यते॥ (स्वोपज्ञवृतौ वा.पा. १७६)

एतदप्यत्रावधेयं यत् स्फोटस्य ग्रहणे प्राकृतो ध्वनिः व्यञ्जकः समुद्घोषितः, परं नागेशभट्टेन परमलघुमञ्जूषायां (पृ.सं. 97) मध्यमा वाक् स्फोटयाभिव्यञ्जकरूपेण समृतेति चिन्तनीयमस्ति।

भर्तृहरिणा प्रत्यपादि यत् सावयवधर्मत्वात् नैवास्ति ध्वनौ किलार्थप्रकाशनसामर्थ्यमिति अतएव ध्वनिः केवलं स्फोटं प्रकटयति। ततः स्फोटादेवार्थवगतिरिति भावः। इत्यनेनावगम्यते यदर्थावबोधकत्वं स्फोटत्वामिति स्फोटऽयं शब्दार्थयोः संयोजक इति। भर्तृहरे रुद्घोषो ऽयंविद्यते यत् स्फोटऽयमनवयवः, परं नादस्य क्रमजन्मत्वादक्रमोऽयं स्फोटः सक्रम इव प्रतिभाति। दीपप्रभा यथा दूरादेवालोक्यते न तु दीपः, तथैव स्फोटनादयोरपि। यथा चन्द्रः तोयक्रियावशाद् स्पन्दमान इव प्रतिभाति तथैव स्फोटनादयोरपि। श्रीशेषकृष्णोऽपि स्फोट[illegible]निरूपणे प्रकारान्तरेण प्रतिपादयति

यथामणिकृपाणादौ मुखमेकमनेकधा।
तथैव ध्वनिषु स्फोटः एक एव विभिद्यते॥ (स्फोट तत्त्व निरूपणम्)

वैयाकरण शास्त्रे स्फोटवादः

बलदेव प्रसाद चमोली
व्याकरणप्राध्यापकः, ऋषिकुल विद्यापीठं
संस्कृत महाविद्यालयः, हरिद्वारम्

स्फोट शब्दो नित्य ब्रह्मपर्यायो व्यापकश्च, स्फोटवाद विषयमादाय सन्त्यनेकं ग्रन्थाः प्रणीताः सन्ति पुरा महर्षिभिः। स्फोटवाद विषये स्फोटायनव्याडि-पाणिनि यास्क प्रभृतीनां सूत्राणि महदुपकुर्वन्ति, शब्द नित्यत्ववादाचार्यस्फोटायनव्याडिं भगवता पाणिनिपापि "अवङ्स्फोटायनस्येति" सूत्रं मादरं स्मर्यते। तत्र कोऽसौ स्फोट इत्यपेक्षायामुच्यते – स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटः, स्फुट्यतेऽभिव्यज्यते वर्णैरिति स्फोटो वा। सार्थक शब्दस्य हि द्वौ पक्षौ ध्वनिः स्फोटश्च, स्फोटः अर्थवोधकशब्दो वैयाकरण सिद्धान्तघटकी भूतः, सम्प्रति समुपलभ्यमानेषु व्याकरणदार्शनिक ग्रन्थेषु स्फोट वाद विषयको विचार एवं दृष्यते स्फोटोऽयनं परायणं यस्य सः स्फोटायनः प्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्यः। ये त्वौकारं पठन्ति, ते नडादिषु अश्वादिषु वा पाठं मन्यन्ते। काशिका 6/1/123।

वर्णपदवाक्य भेदेन स स्फोटस्त्रिधा भवति तत्र त्रिविधेष्वपि स्फोटेषु मध्ये जाति व्यक्ति भेदेन पुनः षट् प्रकारको भवति। पदवाक्याश्रयेण पुनः स्फोटस्य द्वौ भेदोऽखण्डपदस्फोटः अखण्डः समष्ट्या गृहीतोऽविभक्तः पदव्यक्तिजन्य स्फोटः। अखण्ड वाक्य स्फोटः अखण्डोऽविभक्तः वाक्य स्फोटः वाक्यव्यक्तिजन्यस्फोटः, सर्वेषामेकत्र मणनाया अष्टौ स्फोटाः आमनन्ति विद्वद्भिः। तत्र वाक्य स्फोटो मुख्यस्तस्यैव लोके अर्थवोधकत्वात् तेनैवार्थसमाप्तेश्चेति।

वस्तुतस्तु स्फोटात्मकं तत्वमेकं सद् वर्णपदवाक्यध्वनिभिरुषितं वर्णपदादिभेदेन विभक्तं सक्रमञ्च दृष्यते। यथा वाक्यपदीये–

यदेकं प्रक्रियाभेदैर्वहुधा प्रविभज्यते।
तद् व्याकरणमागम्य परं ब्रह्माधिगम्यते।।

शास्त्र प्रक्रिया निर्वाहको वर्णस्फोटः, वर्णस्फोट वाक्यपदीये–

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

प्रतिवाक्ये सङ्केतग्रहासम्भवात् वाक्यान्वाख्यानस्य लघुपायेनाशक्यत्वाच्च कल्पनया पदानि प्रविभज्य पदे प्रकृतिप्रत्यय भागान् प्रविभज्य कल्पिताभ्यामन्वयव्यतिरेकाभ्यां तद्तदर्थ विभागं शास्त्रमात्र विषयं परिकल्पयन्तिस्माचार्याः। शब्दशास्त्रे स्फोटाख्य शब्दो शब्दब्रह्ममूलकत्मुक्तम्।

व्याकरणशास्त्र में वाक्यतत्त्व एवं स्फोट

डॉ० विक्रम कुमार
प्रोफेसर-संस्कृत विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

वैयाकरणों और दार्शनिकों ने शब्दार्थ के विषय में बहुविध विचार करके अपनी अपनी मति के अनुसार नानविध मतों की प्रस्थापना की है। वस्तुतः शब्दार्थ विषय व्याकरणशास्त्रीय होने से तथा व्याकरण शास्त्र की प्रतिष्ठा वैदिक वागदर्शन पर आधारित होने से यह विषय गहन तो है ही जटिल सा भी प्रतीत होता है। जैसे दर्शनशास्त्र में शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा आदि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन हुआ है। उसी प्रकार व्याकरण शास्त्र में भी वाक्तत्त्व का विवेचन अतिगहन रूप में मिलता है।

वाक् के चार भेद स्थूल (वैखरी) सूक्ष्म (मध्यमा) सूक्ष्मतर (पश्यन्ती) एवं सूक्ष्मतम (परा) माने गए हैं। वाक्तत्त्व के ये भेद संकेत करते हैं कि जब कभी भी व्याकरणशास्त्र की प्रवृत्ति हुई होगी वह भाषाविषयक एक दार्शनिक पृष्ठभूमि को साथ लेकर ही हुई है। पाणिनि, काल्यायन, पतंजलि, भर्तृहरि, नागेश भट्ट या कौण्डभट्ट आदि इस दार्शनिक प्रभाव से अछूते नहीं रहें।

शब्द स्वरूप, अर्थ स्वरूप एवं शब्दार्थ सम्बन्ध को अच्छी तरह से हृदयंगम करने के लिए वैयाकरणों के अभिमत का अन्य मतों के साथ उनके साम्य व वैषम्य की पृष्ठभूमि में विवेचन अत्यावश्यक है। न्याय वैशेषिकमत, सांख्यमत, मीमांसकमत, बौद्धमत, जैनमत, आदि विभिन्न मतों के द्वारा मान्य शब्द स्वरूप के विषय का परिज्ञान करते हुए वैयाकरणमत शब्दस्वरूप का व्याख्यान इस शोधपत्र में किया गया है। वैयाकरणों की अपनी एक पृथक् मान्यता है। वे वाचक शब्द को उच्चार्यमाण एवं श्रूयमाण गकार आदि वर्ण ध्वनियों से अतिरिक्त, तत्त्वतः एक निष्क्रम एवं निरवयव सत्ता मानते हैं और उसे 'स्फोट' नाम से अभिहित करते हैं। उनके मत में अर्थ का बोधक भाषा शब्द क्रम भावी वर्णों से अतिरिक्त एक निष्क्रम और विभाग सत्ता है। परन्तु स्वतः क्रम और विभाग से रहित होते हुए भी क्रमवान् ध्वनियों से अभिव्यक्त होने के कारण वह क्रमवान् और भागयुक्त जैसा लगता है। उसके ये ध्वनिकृत विभाग और क्रम औपधिक हैं, वास्तविक नहीं है।

इसी प्रकार अर्थस्वरूप एवं शब्दार्थ सम्बन्ध के विषय में भी अन्यमतों के साथ समीक्षा करते हुए वैयाकरण मत का प्रतिपादन इस शोधपत्र में किया गया है।

ऋग्वेद का वाक्सूक्त तथा आधुनिक भाषा-चिन्तन

डॉ० नीरजा टण्डन
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग परिसर
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,नैनीताल

भाषा की प्रकृति, उसके स्वरूप, उसके वैशिष्ट्य आदि के सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन की सुदीर्घ परम्परा है। भारतीय चिन्तन परम्परा में वेदान्त मीमांसा, न्याय वैशेषिक, सांख्य योग आदि दार्शनिक सम्प्रदायों , बौद्ध एवं जैन चिन्तन, व्याकरणशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि सिद्धांतों द्वारा भाषा के विविध पक्षों पर गहनतर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन विश्लेषण मनन किया जाता रहा है और इसी तरह पाश्चात्य चिन्तन के क्षेत्र में भी विस्तार पूर्वक भाषा के विविध पक्षों पर विचार होता रहा है। विशेषरूप से संरचनावाद उत्तरसंरचनावाद, रुसी रूपवाद, शैलीविज्ञान, विरचनवाद, उत्तरआधुकनितावाद आदि प्राचीन एवं नवीन सिद्धातों में भाषा के वैशिष्ट्य पर चिन्तन होता रहा है। पश्चिम में 'न्यू टेस्टामेन्ट' में कहा गया है

In the beginning was the word, and the word was with God, and the word was God,

तो हमारा भारतीय वाङ्मय भी 'शब्द' को ब्रह्म की संज्ञा देकर वारम्वार यह उद्घोषणा करता है

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्त्तते।
इदमन्धतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्
यदि शब्दाह्ययं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।

ध्यातव्य है कि विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में 'वाक्' की स्तुति बड़े आदर के साथ की गई है। ऋग्वेद के 'वाक्सूक्त' की आठ ऋचाओं में भाषा की सर्वव्यापकता, उसके वैशिष्ट्य की बहुत सुन्दर व्याख्या की गई है और यह बात स्वीकार की गई है-

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव॥

वस्तुतः यह 'वाक्' वायु की तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है इस सन्दर्भ में आज जो चिन्तन किया जा रहा है, उसके सूत्र वैदिक ऋचाओं से ही मिलने लगते हैं। इन्हीं सूत्रों की आज के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करना मेरे इस शोध लेख का लक्ष्य है।

संस्कृत व्याकरण में स्फोट सिद्धान्त

डॉ० (श्रीमती) कृष्णा आचार्य
रीडर, संस्कृत-विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

अनेक संस्कृत वैय्याकरणों ने स्फोट के स्वरूप पर विचार व्यक्त किये हैं। स्फोट का संबंध शब्दार्थ बोध से है। ''स्फुटत्यर्थोऽनेनस: स्फोट: वक्ता की बुद्धि में मध्यमा वाक् के रूप में अव्यक्त शब्दमय ज्ञान रहता है। यह अव्यक्त शब्द ध्वनियों के माध्यम से प्रकट होता है। सामान्य व्यवहार में ध्वनियाँ ही शब्द कहलाती हैं। ध्वनियां वृद्धि, क्रमवत्ता और कालभेद से युक्त रहती हैं। ध्वनियों के श्रवण के पश्चात् जो ज्ञान होता है। उसमें ध्वनियों और उनके वृद्धि ह्रास आदि का सर्वथा अभाव रहता है। ध्वनि उत्पत्ति से पूर्व तथा ध्वनि उत्पत्ति के बाद अव्यक्त तत्त्व को ही स्फोट माना जाता है। यह वक्ता और श्रोता दोनों की बुद्धि में रहता है। इसकी दो प्रकार की शक्तियां हैं 1 श्रुति शक्ति 2 अर्थ शक्ति। अपनी दोनों शक्तियों के कारण यह उच्चरित ध्वनि समूह का निमित्त और अर्थबोध का कारण बनाता है। 'अविभक्तो विभक्तेभ्यो जायतेऽर्थस्य वाचक:।'

शब्दस्यार्थरूपात्मा सम्भेदमुपगच्छति।।

श्रोता एवं वक्ता में यह भिन्न भिन्न प्रतीत होता है किन्तु तात्विक दृष्टि से एक ही है।

आत्मभेस्तयो: के चिदस्तीत्याहु: पुराणगा:।
बुद्धिभेदादर्भिन्नस्य भेदमेके प्रचक्षते (वाक्यप्रदीयम् 1-45)

इस विषय में कतिपय चिन्तकों का यह विचार है कि ''वाक्यपदीय में वर्णोच्चारण के समय कण्ठतालव्यादि अभिघातजन्य स्फोट (धमाके) को ही स्फोट माना है। स्फोट के प्रथम क्षण में ही वर्ण या शब्द को आत्मस्वरूप लाभ हो जाता है। इस पर कालवृत्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ध्वनियों को सुनकर ही यह मालूम होता है कि स्फोट हुआ है। अत: ध्वनियाँ स्फोट की व्यंजक होती हैं।

स्फोट के आठ भेद स्वीकार किये गए है। 1. वर्णस्फोट 2 पद स्फोट 3 वाक्यस्फोट 4 अखण्डपद स्फोट 5 अखण्ड वाक्य स्फोट 6 वर्ण जाति स्फोट 7 पद जाति स्फोट 8 वाक्य जाति स्फोट।

स्फोट ध्वनियों से व्यञ्जित होता है। ध्वनि के दो भेद हैं। प्राकृत ध्वनि और वैकृतध्वनि।

ध्वनि: स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिरस्तु खलु लक्ष्यते अल्पो महॉश्च केषांचिदुभयं तत्स्वभावत:।
शब्दस्य ग्रहणे हेतु: प्राकृतो ध्वनिरिष्यते। स्थिति भेदे निमितत्त्वं वैकृत: प्रतिपद्यते।।

व्याकरण शास्त्र में स्फोटवाद

डॉ० रामप्रकाश वर्णी
रीडर एवं अध्यक्ष संस्कृत - विभाग
लोक राष्ट्रीय महाविद्यालय, जसराना, फिरोजाबाद

वैयाकरणों की दृष्टि में 'स्फोट' या शब्द नित्य अखण्ड एवं अविभाज्य है। नागेशभट्ट ने इसे ''मध्यमानादोऽर्थवाचक स्फोटात्मकशब्दव्यञ्जक:'' (परमलघुमञ्जूषा) कहकर मध्यमानाद के द्वारा प्रथमत: अभिव्यक्त स्वीकार किया है। यह वर्णों से पृथक् रहकर अर्थ का बोध कराता है। वर्णों से अभिव्यक्त होना तथा अर्थ का ज्ञान कराना इन दो दृष्टियों के कारण स्फोट की व्युत्पत्ति निम्नाङ्कित दो प्रकार से की जाती है।

1. 'स्फुटति अभिव्यंज्यते वर्णैरिति स्फोट:।'
2. 'स्फुटति विकसति प्रकाशते अथोऽनेनेति स्फोट:।'

कैयट प्रभृति विद्वान् इसे अर्थ का वाचक मानते हैं। कुछ विद्वान् इसे अर्थ का वाचक न मानकर केवल अर्थाभिव्यञ्जक या प्रकाशक ही मानते हैं। तदनुसार मुख्य वाचकत्व ''अखण्ड वर्ण संघात'' में ही होता है। 'स्फोट प्राकृत ध्वनि' से गृहीत होता है। तथा द्रुतादि सभी वृत्तियों के मूल में विद्यमान रहता है। वृत्तिगत वैविध्य करणाभिघात रूप प्रयत्न के बैषम्य से होता है। इस स्फोट का चित्त में जिस क्रम से संस्कार होता है उसी क्रम से व्यञ्जक ध्वनियों के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति होती है।

यद्यपि यह स्फोट एक 'अखण्ड, निरवयव, और निष्क्रम है' तथापि क्योंकि यह 'वर्ण, पद' और 'वाक्य' की 'प्राकृतध्वनि' से व्यक्त होता है, इसलिए इस एक स्फोट के भी वर्णादिभेद से आठ (8) भेद हो जाते हैं। स्फोट और ध्वनि में एक मौलिक अन्तर यह है कि ध्वनि, व्यञ्जक होती है और स्फोट व्यंग्य होता है। स्फोट नित्य एक अखण्ड एवं निरंश होता है। जबकि ध्वनियँ 'अनित्य' और अनेक होती हैं। इसमें जो कत्व आदि की प्रतीति होती है। वह वास्तविकी न हांकर औपाधिक ही होती है।

संस्कृत वैय्याकरण परम्परा

डॉ० (श्रीमती) अर्चना श्रीवास्तव
प्राचार्या
ग्राम्याञ्चल महाविद्यालय, छेदरगढ़, बाराबंकी

संस्कृत भाषा में व्याकरण का स्थान सर्वोपरि है, संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन के लिये व्याकरण का पूर्व ज्ञान होना अपरिहार्य है। व्याकरण को हम शब्दानुशासन भी कहते हैं। व्याकरण द्वारा नियोजित यह शब्द ही क्रमिक रूप से अनुशासित होकर वाक्य के भावार्थ और कला पक्ष को पाठक के अन्तर्मन में उतार देते हैं। (अनुशिष्यन्ते अपशब्देभ्यो विविच्य कथ्यते साधुशब्दा अनेनेत्यनुशासनं नाम) व्याकरण को वेदों का मुख कहा गया है, जिस प्रकार अन्धा व्यक्ति किसी भी अज्ञात स्थल में प्रवेश नही कर सकता ठीक वैसे ही व्याकरण से शून्य व्यक्ति शास्त्रान्तर में कदाचित प्रवेश नही पा सकता। कहा भी है -

बिना व्याकरणेनान्धः बधिरः कोषविवर्जितः।
छन्दःशास्त्रं बिना पंगुः मूकस्तर्कविवर्जितः॥

संक्षेप में व्याकरण ही शब्दों के साधुत्व का बोधक है, यह साधुत्व ही वाङ्गमय को उत्कृष्टता प्रदान करता है। कहा भी है

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत सकलः शकलः सकृच्छच्कृत्॥

व्याकरण के प्रारम्भिक आचार्यः-

प्राचीनता की दृष्टि से व्याकरण ऐन्द्रतंत्र सबसे प्राचीन है, महाभाष्य में यह वर्णित है कि देव गुरु इन्द्र को सबसे पहले व्याकरण की शिक्षा दी गई थी।

"बृहस्पतिरिन्द्राय..............शब्द नारायणं प्रोवाच" ....कहकर बोपदेव ने भी इसका समर्थन किया है, इन्द्र से प्रारम्भ हुई इस वैय्याकरण परम्परा में इन्द्र से पाणिनि तक अनेक आचार्य हुए हैं जिनमें निम्न लिखित प्रमुख हैं:-

आपिशलि, काश्यप, मार्ग, गालब, भारद्वाज, शोकटायन और शाकल्य आदि, परन्तु इनमें से किसी भी आचार्य का व्याकरण पूर्णतः उपलब्ध नही है, पूर्णता की दृष्टि से महर्षि पाणिनि का पहला स्थान है।

महर्षि पाणिनिः-

महर्षि पाणिनि के जीवन वृत्त के विषय में स्पष्टतया कुछ भी कहना कठिन है। महाभाष्य से पता चलता है, कि आप की माता का नाम दाक्षी था। गणतंत्र महोदधि के अनुसार पाणिनि का जन्म स्थान शालापुर नामक ग्राम माना जाता है। आप का समय लगभग 2800 वि0पू0 माना जाता है। आपने अष्आध्यायी सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ, लिंगानुशासन आदि की रचना की है, व्याकरण के विस्तृत क्षेत्र में अष्टाध्यायी अप्रतिम है।

कात्यायन :-

ये पाणिनि के समकालीन थे और व्याकरण के क्षेत्र में वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध है, आपने अष्टाध्यायी के 1500 सूत्रों पर 400 वार्तिकों की रचना की है।

पतंजलिः-

इनका समय 200 ईसापूर्व तथा पहली ईसवी सदी के मध्य का है, आपने महाभाष्य की रचना की है। जिसमें व्याकरण के सिद्धान्तों को सूक्ष्मता से उल्लिखित किया गया है।

अष्टाध्यायी के व्याख्याकारः-

अष्टाध्यायी पर जिन आचार्यों ने टीकाएं की हैं उनमें कुणि, व्याडि आदि प्रमुख हैं। पंडित जयादित्य ने काशिका वृत्ति लिखी है। कालान्तर में पंडित राम चन्द्राचार्य ने प्रक्रिया कौमुदी लिखी है। इसके बाद भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमदी नामक ग्रन्थ लिखा। यह सिद्धान्त कौमुदी व्याकरण के क्षेत्र में अत्यन्त विख्यात हुई।

आचार्य वरद्राज :-

आप दक्षिणात्य ब्राह्मण थे इनके पिता श्री दुर्गा तनय थे, तथा श्री भट्टोजि दीक्षित से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था, उन्ही की प्रेरणा से आपने लधुसिद्धान्त कौमुदी की रचना की थी।

संक्षेप में, वैय्याकरण आचार्यों की यह परम्परा संस्कृत वाङ्मय से अक्षुण्णा बनी हुई है, इस परम्परा के प्रत्येक व्याकरण साधक पर विस्तृत रूप से शोध संक्षिप्तिका प्रस्तुत की जा सकती है।

सामवेद के आग्नेय पर्व में समास-विवेचन

डॉ० सुधा सिसोदिया
रीडर एवं अध्यक्षा, संस्कृत विभाग
गिन्नी देवी मोदी कन्या स्ना0 महा0, मोदीनगर

समर्थ अर्थों वाले अनेक पदों को एक पद बनाने की प्रवृत्ति समास है। वेद में अधिकांशतः दो पदों के समास हैं। समास का पूर्वपद प्रातिपादक होता है और विभक्ति उत्तरपद के अनुरूप रहती है। समस्तपद का एक ही मुख्य स्वर होता है, इसके अपवाद भी हैं।

द्वन्द्व समास- द्वन्द्व दो विशेष्यों या विशेषणों से बनता है। समस्त पद का लिङ्ग उत्तरपद के अनुरूप होता है। आग्नेय पर्व में दोनों पदों के साथ द्विवचन की विभक्ति है तथा दोनों का पृथक् उदात्त स्वर है इडामग्ने इडाम् अग्नि-इडामग्ने। किन्हीं स्थानों पर दोनों में नपुसंकलिङ्ग है कविमग्निम् कविम् अग्निम् कविमग्ने (1/32/12)।

द्विरुक्त समास-एक पद का दो बार उच्चारण द्विरुक्त समास है। द्विरुच्चारित शब्द साधारणतः

विशेष है। आम्रेडित संज्ञक उत्तरपद में कभी नहीं होता। दिवेदिवे दिवेऽदिवे प्रतिदिवसम् (1/14/4) आग्नेय पर्व में नाम, आख्यात, उपसर्ग, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय के द्विरुक्त रूप हैं यज्ञायज्ञा यज्ञाऽयज्ञा प्रतियज्ञा (1/35/1)।

बहुव्रीहि समास- अन्य पदार्थ गम्य होने पर अनेक सुबन्तो के परस्पर समास को बहुव्रीहि कहते हैं। आग्नेय पर्व में कभी दोनों पदों की समान विभक्ति है और कभी भिन्न वाजपतिः वाजः पतिः अमृतः अन्नः यस्य सः तादृशः। (1/30/10) वैश्वानरः वैश्वानरः विश्वे सर्वे नरः कर्मनेतारोऽध्वर्यर्य्यादयो यस्य स विश्वानरो यज्ञः (1/67/5)।

मध्यमपदलोपी- दृशीकम् दर्शने अवलोकने साधकःतम् (1/15/5) आग्नेय पर्व में जिन बहुव्रीहि का लोप है। कुछ में पूर्वपद में संघ या स शब्द सह व समान अर्थ में प्रयुक्त हैं सवाधः सऽबाधः बधारहिता (1/70/8) कुछ में निषेधवाचक अत्यय 'न' को 'अ' आदेश प्राप्त है अमर्त्य मर्त्यरहितः। (1/40/6)

अव्ययीभाव समास- इसमें पहला पद अव्यय की प्रधानता है, वाक्य में इसका प्रयोग अव्यय की भांति होता है अनुमातरं अनुऽमातरम् अनुकूलमातरम् अनुगतामातरम् वा (1/51/7) प्रतिकं प्रतिऽकम् प्रतिदर्शनं प्रत्यक्तं वा (1/70/8)।

शत्रन्तप्रधान समास इसमें पूर्वपद में सकर्मक धातु का शत्रन्त रूप है तथा उत्तरपद में कर्म वाचक पद है वृत्रहन्तमं वृत्रहन् तमप् तम् एनपापविनाशकम् (1/89/9)

तत्पुरुष समास-इसमें पूर्वपद संज्ञा या विशेषण होता है, जो उत्तरपद के भाव को निर्धारित करता है

द्वितीया द्युम्नमाभर- तत् द्युम्नम् आभर (1/113/7)

तृतीया सयावभिः सऽयावभिः - यातेन सह तैः (1/50/6) चतुर्थी हव्यदातये हव्येदातये स्तुतः तस्मै (1/1/1) पच्चमी-हस्तच्युतम् हस्ताभ्याम् च्युतम् (1/72/10)

षष्ठी- विश्पतिः - विश्वेषांपतिः, प्राणिप्रजायाः पतिः (1/39/5) सप्तमी तन्वे तन्वें तनौ आत्मानि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम् (1/65/3)

अलुक् समास- इसमें समास के पूर्वपद की विभक्ति का लोप हो जाता है और उनका प्रातिपदिकांश ही शेष रहता है, किन्तु आग्नेय पर्व में अपवाद भी हैं, जिनमें पूर्वपद की विभक्ति का लोप नहीं हुआ है। द्वितीया-हव्यान्यक्रमीत हव्यानिऽक्रमीत-हव्यानि स्तुतीन् पर्यक्रमीत् (1/30/10) तृतीया- देवेभिर्मानुषे-देभिः मानुषे (1/2/2) चतुर्थी-भरास्मम्यमूतये आभर अस्मम्यम् उतये रक्षसे (1/10/10) पंचमी-परमाच्चिछत् परमात् स्थानात् चित् (1/8/8) षष्ठी दैवोदासः

दैवोऽदास दिवोदास: दिव दास: (1/51/7) सप्तमी दूरेदृशं दूरेऽदृशं दूरेदृशम्।

एकदेशिसमास-अवयव और अवयवीवाचक पदों के समास को **एकदेशिसमास** कहते हैं अधज्मो अधऽज्मो अधज्म:- पार्थिवेषु पदार्थेषु विद्यमान (1/52/8) **उपपद समास** उत्तरपद के पूर्व में रहने पर उत्तरवर्ती कृदन्त शब्द के साथ समास उपपद है हविष्कृत: दृविषऽकृत हविषयाकृत: सम्पन्न: (1/13/3) कुछ उदाहरणों में पूर्वपद विभक्ति का लोप नहीं है घुम्नमाभर, चतसृभिर्वसो, वायोरनीके, दूरेदृशं।

कर्मधारय समास-यह विशेषण व विशेष्य का होता है चारुमध्वरं सर्वाङ्गसुन्दरम् अध्वरं यज्ञम् (1/16/6), आग्नेय पर्व में कहीं उपमान और उपमेय का और कहीं उपमान व साधारण धर्म का समास है समुद्रवाससम् समुद्रसदृश: वाससम्, महिषीत महिषी भूमे: इव।

द्विगु समास-जिस कर्मधारय में पूर्वपद संख्यावाची है, वह द्विगु है सहस्रपोषिणम् सहस्रासंख्याभि: पोषिणं तं (1/54/4)

नञ समास- आग्नेय पर्व में निषेधवाच अव्यय 'न' पूर्वपद में नञ् है अदर्शि दर्शनरहित: सर्वज्ञ: (1/56/3) प्रादि समास आग्नेय पर्व में प्र, परा, अप्, सम् आदि उपसर्गो व निपातों के साथ समास हैं प्रनिनीषति ग्रणिनीषति प्रकर्षेण प्रणयनं इर्षति आकांक्षति (1/58/4) संवेशनस्तन्वे समऽवेशन: ऽतत्त्वे सम्यक् वेशन: प्रविष्ट: समागमकर्ता त्वं तन्वे तनौ आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्मा शरीरम्। निदधे निऽदधे-मननशील: आत्मनि धारयति (1/54/10)।

इस प्रकार सामवेद के पूर्वार्चिक भाग के आग्नेय पर्व में उपलब्ध द्वन्द्व, द्विरुक्त, बहुब्रीहि, मध्यमपदलोपी, अव्ययीभाव, शत्रन्त प्रधान समास, तत्पुरुष समास, अलुक् समास, एकदेशि समास, उपपद समास, कर्मधारय, द्विगु, नञ्, आदि समासों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

श्री महादेव भट्टाचार्य विरचित 'उपसर्गवर्गः' का व्याकरणशास्त्र में योगदान

डॉ. रीता तिवारी
संस्कृत प्रवक्ता
ए.पी.एन.पी.जी. कालेज, बस्ती

उपसर्गवर्गः एक ग्रन्थ है। इसकी रचना श्री महादेव भट्टाचार्य द्वारा 1843 में की गयी थी। इस ग्रन्थ का अन्तिम श्लोक इसका प्रमाण है-

गुणाश्च वेदाश्च ततो महेभाः
कलानिधिश्चेति च वत्सरङ्काः।
कृष्णः शुचिः श्रीक्षितिजलस्तदानीं
पूर्तिं प्रलेभे ह्युपसर्गवर्गः॥ (उपसर्गवर्ग १६५)

उपसर्गवर्गः व्याकरणशास्त्र में अपने आप में एक अनूठा ग्रन्थ है। यह उपसर्ग सहित शब्दों का एक कोष है। प्रो. अमरनाथ पाण्डेय जी ने आर्षमुद्राशाला विशाखापट्टण से 1913 में प्रकाशित संस्करण तथा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में सुरक्षित एक पाण्डुलिपि की सहायता से किया है। तथा इसका शुद्ध संस्करण 1968 में प्रकाशित किया।

आर्षमुद्राशाला से प्रकाशित इस ग्रन्थ में दो श्लोक खण्डित थे तथा अनेक स्थलों पर पाठ भ्रष्ट थे। डॉ. पाण्डेय ने वाराणसेय संस्कृत वि.वि. में उपलब्ध पाण्डुलिपि की सहायता से उन खण्डित श्लोकों को पूर्ण किया तथा भ्रष्ट पाठों को भी शुद्ध किया।

इस ग्रन्थ में कुछ ऐसे शब्द है, जैसे 'उद्दोह' जिसका अर्थ अन्य कोशों में देखने को नहीं मिलता है। **(द्रष्टव्य, उपसर्गवर्गः भूमिका, सम्पादक- डॉ. अमरनाथ पाण्डेय)** किन्तु इस ग्रन्थ में इसका अर्थ जलाशय से जल निकालना यह मिलता है। इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे हैं जो सामान्य से विशिष्ट अर्थ रखते हैं। जैसे अतिचार, अधिकार, अनुकर्ष, अनुकल्प, अपघात, अपासन, आतर, निपान, निर्याणम्, इत्यादि विशिष्ट शब्दों के अर्थ दिये गए है।

संस्कृत व्याकरण की वैज्ञानिकता

डॉ० भीमसिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

संस्कृत वाङ्मय में पाणिनीय अष्टध्यायी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सूचिन्तित एवं परिष्कृत शैली में लिखी गई है भारतीय पठन-पाठन परमपरा में पारिणीन की इस सविशेष कृति अष्टध्यायी का इतना प्रभाव रहा है कि संस्कृत व्याकरण का अभिप्राय साधारण जन के लिए प्राय: पाणिनि व्याकरण ही होताहै। संस्कृत भाषा को नियन्त्रित करने क लिए, उसमें आयाचिते परिवर्तनों का रोकने के लिए आचार्य पाणिनी ने अष्टाधायी में जिस वैज्ञानिक विधि का उपयोग किया है, वह अष्टाधायी का प्रत्येक प्रतिष्णात सूत्र सजीव एवं सुव्यवस्स्थित है। व्याकरणशास्त्र में अपेक्षित लघुता और व्यापवकता को लाने के लिए पाणिनिय ने अनेक वैज्ञानिक उपायों का आश्रयण किया है। तदनुसार सर्वप्रामि प्रत्याहारसूत्र ही ध्वनिविज्ञान का आदर्श नमूना हैं। सामानय विशेष विधि के प्रयोग ने तो इस शास्त्र को और भी अधिक प्रशस्य बना दिया है। ज्ञापक विधि तो इस शास्त्र का प्राणभूतत्त्व है। इसी तरह भाषिक प्रयोगं को संक्षिप्त रीति से अन्वाख्यान करने के लिए अष्टाध्यायी में निपातन शैली और विधि शैली की प्रर्याप्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अनुवृत्ति के ज्ञान के बिना तो अष्टाध्यायी के मर्म को समझा ही नहीं जा सकता।

पाणिनि के सूत्रों के विषय में पतञ्जील कहते हैं ''इहेङ्गितेन चेष्टितेन निमिषितेन महता वा सूत्रीनबन्धननाचार्याणामीभ प्रायो लक्ष्यते''। इस दृष्टि से आचार्य पाणिनि ने अपने सूत्रों में यथाप्रसङ्ग कुछ ऐसे अवकाश भी छोड़ दिए हैं जो उत्तरवर्ती व्याख्याकारपोक्त योगविभाग अथवा अभीष्ट सन्धिच्छेद आदि उपायों के वैज्ञानिक उपादान रहे हैं। पाणिनीय अनुबन्धयोजना शास्त्र में कैसे कैसे रहस्यों को समाहित नहीं है। आचार्य पाणिनि के कारक, समास स्त्रीलिङ्ग इत्यादि से सम्बन्धित सभी सूत्रों में एक प्रकरणवद्धता है जो सर्वथा वैज्ञानिक हैं इस दृष्टि से उनके द्वारा अपनाइ गई अधिकारयोजना सर्वथा अद्वितीय है। इस अधिकार योजना के रहस्य को समझे बिना ''पूर्वत्रासिद्धम्'' ''असिद्धवदत्राभात्'' विप्रतिषेधे परं कार्यम्'' '' आकडारा कर्मधारये'' इत्यादि सूत्रों की वैज्ञानिकता कथमपि अनुभूत नहीं हो सकती।

सूत्रों के बाध्य बाधक भाव को समझाने के लिए परिभाषाओं की भूमिका को कौन नहीं जानता? अतिदेश सूत्रों की भी अष्टाध्यायी में क्या वैज्ञानिक भूमिका है इसे वैयाकरण ही जानतें हैं। बाहुलक विधि तो वैज्ञानिकता की पराकाष्ठा है जिस के विषय में नागेश का कहना है कि यदि आचार्य पाणिनि इस विधि को न अपनाते तो अल्प यत्न में अधिक से अधिक शब्द राशि को शास्त्रानुमोदित करने का काम स्वयं ब्रह्म के द्वारा भी दुलपपाद था। आचार्य पाणिनि की वैज्ञानिकता इस दृष्टि से भी प्रशंसनीय है कि इन्होंने लोक के समान वेद को भी भाषागत दृष्टि से एक ही

रचनाप्रक्रिया का अङ्ग घोषित किया। इसलिए भाष्यकार ने 'अथ शब्दानुशासनम् सूत्र की व्यापकता करते हुए कहा ''केषां शब्दनाम्? लौकिकानां वैदिकानां च।'' ऐसी स्थिति में स्वरभेद से होने वाले अर्थभेद को समझने के लिए पाणिनीय स्वरप्रक्रिया का स्वाध्याय नितान्त अनुपेक्षणीय हैं संगणक की दृष्टि से भी अष्टाध्यायी दिशानिर्देश कर सकती है, क्योंकि आचार्य पाणिनि ने प्रयोगों को व्याख्यात करने के लिए जो Progssaming उपस्थापित की है, आज के कम्प्यूटर के लिए वह अच्छा उदाहरण हो सकती है। इस तरह संक्षेप में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आचार्य पाणिनि एक साक्षात् ह्यूमन कम्प्यूटर थे तथा अष्टाध्यायी उनकी इस वैज्ञानिकता जिज्ञासा की क्रीडास्थली।

संस्कृत वैयाकरण परम्परा

डॉ० विजय कुमार
वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सोनीपत, हरियाणा

'परम्परा' का शब्दार्थ है एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। यह अतीत का समानार्थक नहीं है। परम्परा एक जीवंत प्रक्रिया है जो अपने परिवेश के संग्रह और त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर क्रियाशील रहती है। कभी-कभी इसे गलत ढंग से अतीत के सभी आचार विचारों का बोधक मान लिया जाता है।

परम्परा से समूचा अतीत नहीं प्राप्त होता अपितु उसका निरंतर निखरता छँटता बदलता रूप प्राप्त होता है। इसी के आधार पर आगे की जीवन -पद्धति को रूप दिया जाता है। जैसे भाषा, हमें परम्परा से प्राप्त हुई है। वह वैदिक युग, अपभ्रंश युग के काल प्रवाह में बहती हुई समकालीन संदर्भ से निखरती हुई, अनावश्यक बातों की छटनी करती हुई, नये उपादानों से बढ़ती और बदलती हुई पीढ़ी को प्राप्त हुई है। अतः वह अतीत से एकदम असम्पृक्त नहीं हैं परम्परा से प्राप्त भाषा अतीत के किसी भी बिन्दु की हू ब हू भाषा नहीं है।

इस प्रकार परम्परा का अर्थ विशुद्ध अतीत नहीं है, बल्कि एक निरंतर गतिशील जीवंत प्रक्रिया है। उसमें जो कुछ मिलता है उस पर वह खड़े होकर आगे के लिए कदम उठाया जाता है।

वेद को नित्य एवं अपौरुषेय मानने वाले वैदिक वाङ्मय के पारखी अधिकांश प्राचीन अर्वाचीन भारतीय आचार्यों के अनुसार अन्यान्य शास्त्रों के समान ही व्याकरण व्याकरण शास्त्र का भी मूल वेद ही है। वस्तुतः जो तपोनिधि, ब्रह्मज्ञानी ऋषि, वेद के दिव्य मंत्रों के द्रष्टा थे, वे ही व्याकरण शास्त्र के भी आदि प्रवक्ता थे। उन्हीं के द्वारा शिक्षा, पदपाठ, प्रातिशाख्य, निरुक्त एवं अन्यान्य व्याकरणों की रचना हुई। इस आधार पर कहा जा सकता है कि संसार में जितना ज्ञान

प्रवृत्त हुआ उसका आदि मूल वेद है। इसीलिए मनु ने 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहकर उसका परिचय दिया है। यह कथन कल्पना न होकर सहस्त्राब्दियों से प्रमाणित अखंडनीय तथ्य है। अतः जो सभी शास्त्रों का आदि मूल है, उसे ही व्याकरण शास्त्र का भी मूल मानना उचित है।

यास्कीय निरुक्त में अनेक पूर्ववर्ती वैयाकरणों का उल्लेख हुआ है। शाकटायन व्याकरण के पूर्व रचा जा चुका था। पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी दस पूर्ववर्ती वैयाकरणों का उल्लेख हुआ है।

वस्तुतः भाषा के संबंध में चिंतन मनन का प्रारम्भ वैदिक मंत्रों के रचना काल में ही प्रारम्भ हो गया था। और संहिता तथा ब्राह्मण काल तक आते आते चिंतन की वह परम्परा प्रौढ़ हो चुकी थी।

यास्क के समय तक अनेक निरुक्तों एवं व्याकरणों की रचना हो चुकी थी तथा यास्क और पणिनि के बीच भी अनेक श्रेष्ठ वैयाकरण हुए थे।

अष्टाधायी में अनुल्लिखित - ब्रह्मा, शिव, बृहस्पति, वायु, भारद्वाज, भागुरि, पौष्करसादि, चारायण, शाककृत्स्न, शन्तनु, वैयाध्रपद्य, माध्यन्दिनी, रौढ़ि, शौनकि, गौतम और व्याडि नामक 17 वैयाकरणों के अस्तित्व के स्पष्ट प्रमाण प्राचीन ग्रंथों के उपलब्ध होते हैं।

इसी प्रकार पाणिनि की अष्टाध्यायी में आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मन, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन, नामक दस वैयाकरणों का उल्लेख हुआ है।

प्रमाणभूत मांगलिक आचार्य पाणिनि संसार के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण के रूप में विख्यात हैं। उनके सर्वातिशायी महत्त्व का सबसे बड़ा प्रमाण है कि वार्तिककार कात्यायन एवं महाभाष्यकार पंतजलि जैसे लोकविश्रुत आचार्यों ने अपने अपने ग्रंथ के अंत में पाणिनि के प्रति श्रद्धातिरेक से उनके लिए, 'भगवन्' पद का प्रयोग किया है।

वैयाकरण-मत में स्फोट

डॉ० अरविन्द कुमार
रीडर-संस्कृत विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

'स्फुटति अर्थोऽस्मात् इति स्फोटः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर वैयाकरण वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थ के प्रतिपादक वाचक, लक्षणिक और व्यञ्जक शब्दों को अथवा उनमें रहने वाली जाति को 'स्फोट' कहते है। 'स्फोट' शब्द केवल यौगिक न होकर 'पङ्कज' आदि शब्दों के समान योगरूढ़ है। उसे केवल यौगिक मानने पर चेष्टा को भी स्फोट मानना पड़ेगा। क्योंकि उससे (चेष्टा से) भी व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है।

स्फोट के आठ भेद स्वीकार किये गए है। जिनमें से पांच व्यक्तिस्फांट हैं तथा तीन

जातिस्फोट। वर्णव्यक्तिस्फोट, सखण्डपदव्यक्तिस्फोट को 'व्यक्तिस्फोट' और वर्णजातिस्फोट, पादजातिस्फोट को 'जातिस्फोट' के अन्तर्गत माना गया है। इन सबमें वाक्य 'वाक्योस्फोट' (वाक्यजातिस्फोट) को ही वास्तविक स्फोट माना गया है। अन्य स्फोटों की, वाक्यस्फोट में रहने वाली अर्थवाचकता का बोध कराने के लिए, उपाय के रूप में कल्पना की गई है। वाक्यस्फोट को वास्तविक स्फोट मानने का कारण यह है कि लौकिक व्यवहार में वाक्य से ही अर्थ का निराङ्क्ष बोध होता है। भत्दृष्टि आदि वैयाकरण अखण्ड वाक्य (वाक्यजातिस्फोट) को ही वास्तविक स्फोट मानते हैं। परन्तु कतिपय वैयाकरण पदस्फोट को ही सत्य मानते हैं।

नागेश ने वाणी के चार भेदों परा, पश्यन्ती, मध्यत । और वैखरी का उल्लेख करते हुए कहा है कि हृदयप्रदेश में रहने वाली तथा विभिन्न अर्थो की वाचिका मध्यता वाणी ही 'स्फोट' है। वह इतनी सूक्ष्म होती है कि वक्ता से भिन्न मनुष्य अपने श्रेत्रेनिद्रय से उसे सुन नहीं सकता। मध्यमा वाणी का ग्रहण मानस जय आदि के समय केवल वक्ता की बुद्धि ही कर सकती है। हृदयप्रदेश से मुख तक आती हुई और मुख के अर्ध्व भाग से टकराते हुए वायु से मूर्धा को आहत करके तथा वहाँ से वापस लौटकर उच्चारणस्थानों में अभिव्यक्त होने पर उसे 'वैरवी' वाक् कहा जाता है। जिसे वक्ता से भिन्न मनुष्य भी अपने श्रोत्रों से सुन सकते हैं। उल्लेखनीय है कि माध्यम नाद अर्थवाचक शब्द (स्फोट) को अभिव्यक्त करता है जिसे केवल वक्ता की बुद्धि ही ग्रहण कर सकती है। वैशारी नाद रूप ध्वनि को वक्ता से भिन्न मनुष्यों द्वारा भी सुना जा सकता है, किन्तु उसके अभिव्यक्त होने से पूर्व ही मध्यमा नाद के द्वारा अर्थवाचक स्फोट वक्ता की बुद्धि में अभिव्यक्त हो जाता है। अत: वक्ता की दृष्टि से वैखरी नाद भेरी आदि के नाद की तुलना में सूक्षम होता है और वही वक्ता नाद अपने कानों को बन्द करने पर अथवा जप आदि के समय सुक्ष्मतर वायु व्यक्त होता है और स्फोट को अभिव्यक्त करता है। मध्यमा नाद से व्यक्त होने वाला यह स्फोट रूप शब्द ब्रह्मस्वरूप तथा नित्य है।

संस्कृत व्याकरणस्य सरलीकरणोपायाः

रोशनलाल गौड
अध्यापक
निर्मल संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

व्यावहारिक रूप में संस्कृत भाषा के दो रूप हैं (1) वैदिक संस्कृत (2) लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत परम्परा यथातथ रूप में मान्यता प्राप्त है किन्तु लौकिक संस्कृत व्याकरण देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार विशेष तथा सामान्य शब्दों का परिष्कार करके निर्मित की गयी है। इसके निर्माण में जो सर्वोच्च मनीषी हैं उनका नाम है पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि। इन

तीन मुनियों ने भाषा शास्त्र तथा भाषा विज्ञान को आलोडित करके जो नियम खोज निकाले उसी को त्रिमुनि व्याकरण कहा जाता है। यह व्याकरण पाणिनि के पश्चात् अर्थात् ईशा से 28 सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया। इसके अतिरिक्त 7 प्रकार के व्याकरण और भी है। वर्तमान युग में संस्कृत भाषा पर त्रिमुनि व्याकरण का अनुशासन है। इसीलिए इस व्याकरण को ‘शब्दानुशासन’ भी कहा जाता है। शब्दानुशासन का मूल पाणिनि के अष्टाध्यायी रचना को माना जाता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी को आश्रय मानकर शब्द शास्त्र के अनुसंधाताओं ने एक विशाल भण्डार निर्मित कर डाला है। जिसके अध्ययन के लिए पंचतन्त्रकार विष्णु शर्मा के शब्दों में बारह वर्ष अपेक्षित हैं। ‘‘देव द्वादशभिर्वर्षैः व्याकरणं श्रूयते’’।

वस्तुतः आज के इस कम्प्यूटर के युग में जबकि कठिन से कठिन या वक्रता से वक्रतापूर्ण पहेलियां भी कम्प्यूटर के माध्यम से कुछ ही क्षणों में जन सामान्य के सामने प्रस्तुत की जा सकती हैं उस युग में अचीकमत्, चर्करी, अजर्घा समझने के लिए व्याकरण विद्यार्थी को अपने उस रमणीय कैशोर्य्य अवस्था का बहुत बड़ा भाग लगाना पड़ता है। इस स्थिति में एक जिज्ञासु व्यक्ति संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान विज्ञान के सूक्ष्म तत्वों को समझने के लिए कब समय निकाल पायेगा।

आज संस्कृत व्याकरण के विद्यार्थी को शब्दरूपावली, धातुरूपावली, समासचक्र, अष्टाध्यायी, लघुकौंमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, प्रौढमनोरमा, परमलघुमंजूषा, लघुशब्देन्दुशेखर, वाक्यपदीयम्, महाभाष्य आदि ग्रन्थों में ही सारा जीवन लगा देना पड़ता है।

उपर्युक्त से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि आज के संस्कृत विद्यार्थी के लिए संस्कृत व्याकरण का समुद्र मन्थन करके कुछ प्रकाशमान रत्न दिये जाने चाहिए।

शास्त्र-परम्परा में स्फोट-तत्व का स्वरूप

नन्दलाल चौरसिया
शोध छात्र-संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

स्फोट शब्द की शाब्दिक व्युत्पत्ति है- ‘स्फुट्यते व्यज्यते वर्णैः या ‘स्फुटत्यर्थोऽस्मात्’’। इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्फोट अर्थ का प्रकाशक होता है। पाणिनि ने स्फोट को इस प्रकार परिभाषित किया है- ‘वर्णातिरिक्तो वर्णाभिव्यङ्ग.योऽर्थप्रत्यायको नित्यः स्फोटः’। स्फोट की चर्चा अनादि काल से होती चली आ रही है, किन्तु उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार नामतः ‘स्फोट’ शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग महाभारत में हुआ है- ‘वायुस्फोटाः सनिर्घाताः’। आचार्य पाणिनि के द्वारा अपने पूर्ववर्ती आचार्यों में ‘स्फोटायन’ नामक वैयाकरण के नामोल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि स्फोट का प्रयोग करने से ही इनका नाम स्फोटायन पड़ा होगा। पाणिनि के पश्चात् महाभाष्यकार पतञ्जलि और

वार्तिककार कात्यायन ने भी स्फोट को अपने विचार का विषय बनाया है। स्फोट के व्युत्पत्तिपरक पक्ष का ही इन विद्वानों के द्वारा प्रकाशन हो पाया है। स्फोट के दार्शनिक पक्ष की उपस्थापना सर्वप्रथम वाक्यपदीयकार श्री भर्तृहरि ने की। भर्तृहरि ने स्फोट को शब्द की सामान्य श्रेणी से उठाकर 'शब्द ब्रह्म' जैसे महनीय पद पर बैठा दिया।

स्फोट का सम्बन्ध शब्द से होने के कारण शास्त्रों में सर्वत्र यह विचार का विषय रहा है, किन्तु व्याकरण, न्याय, मीमांसा और काव्यशास्त्र में इसका विशद विवेचन हुआ है।

अर्थचिन्तन पराम्परा में स्फोट

डॉ० सुमन कुमारी
प्रवक्त्री -संस्कृत विभाग
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

शब्दार्थ चिन्तन भारतीय साहित्य का समृद्धतम गौरवशाली पक्ष है। दार्शनिक और वैज्ञानिक आधार भूमि पर विकसित इसी चिन्तन के कारण शब्द की पहचान 'ब्रह्म' के रुप में की गई है। दण्डी ने जगत् के प्रकाशमान होने का श्रेय शब्द को दिया है। अर्थ, शब्द का प्राणतत्त्व है। अर्थतत्त्व से अनभिज्ञ केवल शब्दवेक्ता मनुष्य को यास्क ने भारवाही गधे के समतुल्य माना है। अर्थ क्षेपकता से जुड़े विभिन्न पक्षों पर अनेक दार्शनिक आचार्यो के साथ-साथ मुख्यत: व्याकरण और काव्य शास्त्र के मनीषियों ने विशेष चिन्तन किया है। अर्थचिन्तन की वैयाकरणिक परम्परा में यद्यपि मुनि पतञ्जलि मूर्धन्य हैं, लेकिन एतद् विषयक चिन्तन को व्यवस्थित रूप देने का श्रेय भर्तृहरि को प्राप्त है।

वैयाकरणों के अर्थ चिन्त न से जुड़े प्रसिद्ध सिद्धान्त स्फोटवाद का समुन्नत विवेचन आचार्य भर्तृहरि के वाक्यवदीय उपलब्ध है। स्फोट की दो भिन्न निरुक्तियों में से एक के अनुसार स्फोट वह है जिससे अर्थ प्रकाशित होता है, और दूसरी के अनुसार स्फोट वह तत्व है जो वर्णो से अभिव्यक्त होता है। वैयाकरणों ने स्फोट के आठ भेदों की पहचान की है। किन्तु भर्तृहरि ने अर्थज्ञान में अखण्डवाक्स्फोट की ही प्रधानता मानी है। उनके अनुसार वाक्य का अर्थ अविभाज्य होता है। मुनि पतञ्जलि स्फोट को ध्वनि से इतर घोषित करते हैं। उनके मत में नित्य वर्ण स्फोट है और उच्चरित वर्ण ध्वनि उत्तरवर्ती वैयाकरणों ने इस सिद्धान्त को और परिष्कृत करते हुए अभिमत प्रकट किया है कि शब्द या वाक्य में निहित अर्थ जो वक्ता के मस्तिष्क में विद्यमान रहता है, स्फोट है और स्फोट तत्त्व को प्रकाशित करने वाला उच्चरित पद या वाक्य ध्वनि है।

इन वर्णात्मक ध्वनियों की व्राक्यार्थबोधन की एक ही विशिष्ट प्रक्रिया है। सभी ध्वनियाँ एक ही काल में तो अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। पूर्व उच्चरित ध्वनि अपना संस्कार छोड़ती

जाती है। और उत्तरवर्ती ध्वनि स्फोट को और स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। स्फोट का स्पष्ट एवं सम्पूर्ण प्रकाश पूर्ववर्ण के संस्कारों से युक्त अन्तिम वर्ण द्वारा ही होता है। इस प्रकार अखण्ड स्फोट के प्रकाशन में पद या वाक्य के प्रत्येक वर्ण का अवदान होता है।

संस्कृत व्याकरणस्य सरलीकरणोपायाः

श्रीवत्स कुमार विद्यालंकार
प्राध्यापक
धरणीधर स्वशासी महाविद्यालय, उड़ीसा

संस्कृत भाषा का महत्त्व :-

भारतीय संस्कृति संस्कृत पर ही अवलम्बित है। यह संस्कृत ही भारत की आत्मा है। अतः संस्कृत और संस्कृति को जीवित रखने के लिए संस्कृत व्याकरण को सुबोध बनाने का प्रयत्न तद्विदों को करना चाहिए। मेरे विचार से उसके लिए निम्नलिखित बातें होनी चाहिए

1. सर्वप्रथम त्रिमुनिव्याकरण को मिलाकर उसका सारसंकलन एक ही पुस्तक में कराया जाए।
2. यथासंभव वैयाकरणिक शब्दावली का कम से कम प्रयोग कर सर्वसाधारण की बोधगम्य भाषा में व्याकरण लिखा जाए।
3. यह व्याकरण प्रकरण क्रम से लिखा जाये, जैसे कि सिद्धान्त कौमुदी। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने भी उसी पद्धति पर लिखकर उसकी सरलता को स्वीकृत दी है।
4. इसमें दुर्वोध्य उदाहरणों के स्थान पर यथासंभव सरल और आधुनिक उदाहरण दिये जायें।
5. सूत्रार्थ के बाद दिये गए उदाहरण में सूत्रार्थ को संगमित कर दिखाया जाए जिससे कि बिना किसी भी सहायता के समझने में सुकर हो।
6. इसमें दिये गए उदाहरण संस्कृत के साहित्यिक ग्रन्थों या लोक व्यवहार से लिये जाये जिससे कि सुवोध्य हो।
7. सन्धि और समास जहाँ अनिवार्य हों वहाँ उनका प्रयोग न किया जाए इससे प्रगृह्य संज्ञा का लोप और विसर्ग सन्धि का ह्रास हो जायेगा। क्योंकि व्यवहार काल में प्रकृति भाव की कोई उपलब्धि नहीं होती।
8. सर्वसाधारण छात्रों के लिये सिद्धि सूत्रों को हटाया जाए।
9. लृट् और लुट् दोनों के लिए लृट् लकार का व्यवहार स्वीकार किया जाए इसी तरह लङ् और लुङ् के लिए लङ् लकार का व्यापक प्रयोग हो।
10. पुनः पुनः या अतिशय अर्थ में जब यङन्त का प्रयोग होता है तब उसी अर्थ के लिए यङ् लुक्

प्रक्रिया की क्या आवश्यकता है। इस तरह के अन्य अनावश्यक विलष्ट प्रयोंगों को हटाया जाए। जो केवल व्याकरण में पाण्डित्य के लिए पढ़ना चाहें, वे चाहें आर्ष विधि से पढ़े या अनार्ष विधि से, उनसे हमारा कोई मतान्तर नहीं है पर आवश्यकता के अनुसार सूत्रों का सरलीकरण और नूतन सूत्रों का निर्माण भी किया जाए।

व्याकरण में स्फोटवाद

स्मृति पाण्डेय
शोध छात्रा
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

स्फोटवाद व्याकरण दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। 'स्फुटति अर्थः यस्मात् इति स्फोटः' अर्थात् जिसमें अर्थ का प्रकाशन हो वह स्फोट है। स्फोट शब्द का ही एक पर्याय है। शब्द को स्फोट की संज्ञा सर्वप्रथम एक ओंशिन नामक वैयाकरण ने की थी। 'अवङ्स्फोटायनस्य' इस सूत्र से यह ज्ञात होता है कि स्फोट का प्रतिपादन स्फोटायन ने ही किया। स्फोटायन का एक नाम 'काक्षीवान्' मिलता है। अनुमान है कि पहले इनका नाम 'काक्षीवान्' रहा होगा और स्फोटत्व की उपज्ञातृता के कारण स्फोटायन नाम पड़ा होगा।

गर्ग संहिता में अभिधा शक्ति के अर्थ में स्फोट शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार 'व्याकरण में स्फोटवाद' इस शोध पत्र के माध्यम से मैं व्याकरण दर्शन के एक अति महत्वपूर्ण सिद्धान्त 'स्फोटवाद' को बताने का प्रयास करूँगी।

वैदिक संस्कृत व्याकरण शास्त्र की वैज्ञानिकता

संजूलता वर्मा
शोधछात्रा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विज्ञान के युग में वेदों का विभिन्न विज्ञानों की दृष्टि से अनुशीलन स्वाभाविक ही है। विज्ञान के अनुसार महाविस्फोट के पश्चात् द्रव्य में जो मण्डलाकार प्रसार आदि काल में प्रारम्भ हुआ वह आज भी जारी है। इसे हम गैलेक्सियों के प्रसार के रूप में जानते हैं। इस प्रसार के कारण तापमान में गिरावट आती है और कुछ काल बाद परमाणु रचना प्रारम्भ हो जाती है। ऋग्वेद में इसे 'अर्धगर्भास्थिति' कहा गया है। वह परमाणु अवस्था नाभिकीय और अणु अंवस्था की मध्यगामिनी है। ऋग्वेद के अनुसार वह सप्तवर्गी अवस्था है। ऋग्वेद में सप्तवर्गी परमाणु को 'सप्तसिन्धु' कहा गया है।

वेद में कुछ ऐसा भी विज्ञान है, जिसका ज्ञान आधुनिक विज्ञान में नहीं है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृष्टि का आरम्भ एक महाविस्फोट से होता है। वैज्ञानिक भाषा में इसे 'बिग बैंग सिद्धान्त' कहते हैं। इस महाविस्फोट का सिद्धान्त वेद में भी है। इस महाविस्फोट के पूर्व की परिस्थितियों का ज्ञान, जिनके कारण महाविस्फोट हुआ था, आधुनिक विज्ञान में न ही। किन्तु वेद के अनुसार यह विस्फोट इन्द्र के द्वारा वज्र संचालन के कारण हुआ था। इन्द्र का यह कृत्य ऊर्जाओं के नियोजित संघर्षण का द्योतक है। वेद की यह परिकल्पना आधुनिक विज्ञान में अज्ञात है।

इस प्रकार मैने अपने पत्र में वैदिक संस्कृत व्याकरण की वैज्ञानिकता पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है।

संस्कृत वैयाकरण परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का स्थान

युद्धवीर सिंह
शोधछात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मुखं व्याकरणं स्मृतम्, व्याकरणमूलं सर्वविद्यानाम्, प्रथमे हि विद्वांसः वैयाकरणाः इत्यादि कथनों से संस्कृत वाङ्मय में व्याकरण और वैयाकरणों का स्थान प्रमुख माना गया है। व्याकरणशास्त्र के विकासक्रम में आचार्यों की एक सुदीर्धकालीन परम्परा रही है। इस परम्परा में पाणिनि का विशेष स्थान है, जिन्होंने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों का आलोडन कर सर्वाङ्गपूर्ण अष्टाध्यायी नामक ग्रन्थ की रचना की। कात्यायन ने इसे और भी परिपूर्ण करने के लिए वार्तिकों की रचना की। इसी परम्परा में पतञ्जलि ने सूत्रों तथा कात्यायन की वार्तिकों को आधार बनाकर सर्वातिशायी व्याकरण महाभाष्य की रचना की। इस प्रकार पाणिनि, कात्तयायन और पतञजलि इस त्रिमुनि में संस्कृत व्याकरण का क्रमिक विकास देखने को मिलता है।

अट्ठाहरवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय ने अष्टाध्यायी क्रम पर महाभाष्य की सिद्धान्तसुधानिधि नामक सर्वातिशायी व्याख्या लिखी। यह व्याख्या महाभाष्य की गम्भीर ग्रन्थियों का समाधान करती है तथा तत्तद् विषयों से सम्बन्धित साहित्य, न्याय, मीमांसा, वेदान्त आदि शास्त्रों पर भी विविध चिन्तन प्रस्तुत करती है। व्याकरण सम्बन्धी विचार विमर्श में भट्टोजिदीक्षित ने जिस नव्यन्याय शैली के प्रयोग का सूत्रपात किया था आचार्य विश्वेश्वर ने इस व्याख्या में उस शैली का बहुत विस्तार किया। इसके अतिरिक्त आचार्यवर ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का अन्धानुकरण न करते हुए अपना स्वतन्त्र मत स्थापित करने में मौलिकता दिखाई

जिसके प्रभाव से परवर्ती आचार्य अस्पृष्ट नहीं रह सके। संक्षेप में कहा जाए तो आचार्य विश्वेश्वर के व्याकरणसिद्धान्तसुधानिधि ग्रन्थ का अध्ययन किये बिना पाणिनीय व्याकरण की परम्परा के विकासक्रम को ठीक से नहीं समझा जा सकता।

अष्टाध्यायी के पठन-पाठन में बाधक जैन एवं बौद्ध धर्म

अभिमन्यु
शोध छात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

यद्यपि व्याकरण का पठन पाठन भाषा के उद्‌गम के साथ से चला आ रहा है, किन्तु ई. पू. 5वीं शताब्दी के मध्य हुए आचार्य पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती समस्त व्याकरण ग्रन्थों का सार तत्व का उपादान करते हुए तथा उनकी कमियों को दूर करते हुए, अपने समय में प्रचलित भाषा सम्बन्धी समस्त व्याकरणिक नियमों को लगभग 4000 सूत्रों में आबद्ध करते हुए एक सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया।

जिसकी परिणति अष्टाध्यायी के रूप में विद्यमान है। समय-समय पर समाज में होने वाले परिवर्तनों से न केवल समाज ही प्रवाहित हुआ बल्कि साहित्य भी उनके प्रभाव से अछूता नही रहा। इसी श्रृंखला में जैन एवं बौद्ध धर्मों के प्रादुर्भाव से समाज में जनसामान्य को वैदिक कर्मकाण्डों की जटिलता से मुक्ति मिली, निम्न वर्ग के लिए भी जीवन यापन के लिए ससम्मान तरीके उपलब्ध हुए और अहिंसा को बढावा मिला, वहीं नास्तिकता के प्रचार--प्रसार के कारण वेदों के अध्ययन-अध्यापन की घोरतम अपेक्षा हुई। फलस्वरूप व्याकरण का पठन-पाठन केवल लौकिक प्रयोगों तक ही सिमित होने लगा। जहाँ पाणिनि को वैदिक प्रयोगों के लिए अनेकत्र 'बहुलं छन्दसि' और 'मन्त्रे' का पाठ करना पड़ा, वहीं जैन एवं बौद्ध वैयाकरणों ने-'अर्हम्' और 'स्यात् सिद्धम्' से अपने ग्रन्थों में आये हुए प्राचीन प्रयोगों को निष्पन्न मान लिये। तदनन्तर प्रक्रियानुसारी व्याकरण ग्रन्थ बनाने की प्रवृत्ति जोर पकड़ने लगी, जिन्हें आदर्श मानकर धर्मकीर्ति, भट्टोजिदीक्षित प्रभृति वैयाकरणों की दृष्टि भी लक्षण प्रधान न होकर लक्ष्यैक प्रधान हो गई। इनमें से कुछ प्रक्रिया ग्रन्थ तो बिल्कुल ही लोकप्रिय नही हुए तथा कुछ इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि उन्होंने अपने मूल उत्स (अष्टाध्यापी) को ही नेपथ्य में कर दिया। मेरी दृष्टि से इनके मूल में जैन एंव बौद्ध धर्मों का विकास ही है।

Vyakarana: A Journey from Vedanga to Darsana.

Dr. (Mrs.) Bhagyalata Pataskar
Director, Vaidika Samsodhana
Mandala, Pune

The Taitiriya Samhita (6.1.4) gives the story of the vyakarana he splitting or analysing of vak, Accordingly the vak came into being with the purpose of making contineous utterance understandable. It was Indra, who did it. The actual first grammatical attempt we find in the form of padapatha, which splits the samhita into padas.

The aim of the padapatha is to ensure the text and thereby to supply the clue to understand the meaning. Thus this historically first attempt of grammar was anga i:e subordinate to the Vedas. It was also taken as the means to protect the Vedas, as it is stated by Patanjali, in the Paspasahnika.

ज्योतिष्

अथर्ववेद का मानव जीवन पर प्रभाव

डॉ. भारतभूषण मिश्र
वरि0 व्याख्याता-ज्यौतिष् विभाग
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, शास्त्रीनगर, जम्मू

अथर्ववेद की महनीयता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि इस वेद को अथर्वाङ्गिरसवेद, क्षत्रवेद, भृग्वंगिरसदेव, ब्रह्मवेद, भैषज्यवेद, इत्यादि अभिधानों से भी जाना जाता है, जिससे स्पष्ट है कि भारतीय समाज को उपदेशित करने वाली विविध विद्याएं अथर्ववेद में अनस्यूत हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के सोलह कलाओं के विवरण, चिकित्सा, गृहनिर्माण, शस्त्रास्त्रनिर्माण, ब्रह्मनिरूपण, मंत्रवाद या जादू टोना की अवधारणा, ज्यौतिष, आयुर्वेद, भू कृषि विज्ञान के साथ साथ जप, तप, होम, यज्ञ, जैसे आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण अथर्ववेद में द्रष्टव्य है। अथर्ववेद में वर्णित ज्यौतिष सम्बन्धी विवरण, यथा-आयु, विवाह, आरोग्यविवेचन, बलावल वर्णन, निःसंदेह गृहस्थ जीवन को अवश्यमेव प्रभावित करते हैं।

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्व. 12/1/12) रूप में राष्ट्रभक्ति को जगाने वाले तथ्यों का विशिष्ट विवरण अथर्ववेद की अपनी विशेषता है। आज का मानव जिन पिपाशाओं से आक्रान्त है, उन सभी का शमन अथर्ववेद करता दिखता है। पूर्वजों के प्रति सम्मान, राजा के कर्त्तव्य, अर्थार्जन, कामार्जन, एवं यशार्जन की प्रवृत्तियाँ अथर्ववेद में वर्णित मिलती हैं। अतएव यह माना जा सकता हैं कि उस काल में मानव जीवन के लिए यदि सबसे अधिक प्रभावी वेद है, तो वह अथर्ववेद ही है, क्योंकि आज का मानव सर्वतोभावेन अपना उत्कर्ष चाहता है, और वह भी सुगम मार्ग द्वारा। उद्देश्य प्राप्ति हेतु तांत्रिको ज्यौतिषियों, डाक्टरों इत्यादि सभी की मदद लेने में परहेज नहीं करता। एजर्टन महोदय ने, (Philosophy in Atharvaved) में ठीक ही कहा था कि अथर्ववेद के ऋषियों के चिन्तन का मूल उद्देश्य वस्तुओं की गहरी और भीतरी सच्चाई के ज्ञान के द्वारा व्यावहारिक जीवन को समृद्ध बनाना था। वे रहस्यान्वेषण से यह आशा करते थे कि अपने जीवन में वे उनका सफल प्रयोग कर सकेंगे। वास्तव में अथर्ववेद में उपहित विषयवस्तु का कर्मकाण्ड के क्षेत्र में मानव का उतना पदार्पण करवाना नहीं है, जितना जीवन के उचित-अनुचित, ऊँच नीच जन- विश्वासों, और प्रवृत्तियों को प्रकट करने में है।

इस दृष्टि से मानव के साथ-साथ शास्त्रकारों, इतिहासकारों, तथा पौरोहित्य कर्म सम्पादकों के लिए यह वेद ऋग्वेदादि अन्य तीनों वेदों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पुराण, इतिहास गाथा आदि का सर्वाङ्ग विवेचन भी सर्वप्रथम इसी वेद में उल्लिखित मिलता है। साथ ही लौकिक एवं वैदिक आदि अनेक परम्पराओं का पल्लवन भी यही वेद करता है, जो अत्यधिक प्राचीन हैं, एवं आज भी भारतीय जन जीवन के मध्य विद्यमान हैं।

बीस कोण्डों में संवलित, तथा, नौ शाखाओं से मण्डित अथर्ववेद के एक मात्र ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण में वर्णित वेदान्तीय विद्याएं मानव जीवन को विविध क्षेत्रों में उपदेशित करती दिखती है। सृष्टि सम्बन्धी विषयवस्तु का परिज्ञान भी अथर्ववेद करता दिखता है, जहाँ इस वेद (12/1/1) की मान्यता है कि तप, यज्ञ, ऋत् तथा ब्रह्म ये चार विश्व के आधार स्तम्भ हैं। गद्य पद्य मिश्रित विधा में संवलित अथर्ववेद के गृह्यसूत्रों का भी मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें विहित विषयवस्तु के पारण से एक मानव संस्कारित मानव अवश्य बन सकता है- क्योंकि वैदिक आर्यो के सामान्य जीवन शैली का भरपूर चित्रण इनमें विवर्णित है। यह वेद, आर्यजनों को भक्त पूजक, एवं पवित्र यज्ञ अनुष्ठाता के रूप में ही प्रस्तुत नहीं करता, अपितु उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का भी चित्रण करता है, जो भीरू हैं, लोभी हैं, दानवी प्रवृत्तियों से मंडित हैं एवं वासना तथा अभिचारों के पुजारी हैं। नि:संदेह मानव के उदात्त एवं अनुदात्त, उचित एवं अनुचित, दोनों पक्षों का सहज विवेचन अथर्ववेद में वर्णित मिलता है, जिससे सामान्य व्यक्ति भी अपना उचित अनुचित एवं शुभ अशुभ जानकर, अपनी जीवनचर्या एवं जीवनविधा का निरूपण कर पाने में सर्वथा समर्थ हो सकता है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में विवेचित है।

ज्योतिष वेदांग का महत्त्व

डॉ. भगवानदास शास्त्री
प्रवक्ता ज्योतिषविज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेद भारत वर्ष की अमूल्य निधि है। जिसे सम्पूर्ण विश्व प्राचीन ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करता है। वेद के षअंग है जिसे व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, और छन्द शास्त्र कहा जाता है। छः वेदांगों में ज्योतिष वेदांग का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसे वेद पुरुष का चक्षु कहा गया है।

ज्योतिषामायनं चक्षुः पा.शि.

वेद की उपयोगिता यज्ञ सम्पादन में है। यज्ञ करने के लिए उपयुक्त समय का ज्ञान होना आवश्यक है। विशिष्ट यज्ञ विशिष्ट काल की अपेक्षा रखता है। काल के ज्ञान के लिए ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है। ज्योतिष के ज्ञान बिना किसी भी यज्ञ करने का ठीक समय नहीं जाना जा सकता। इस प्रकार ज्योतिष के ज्ञान के बिना सभी यज्ञ अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं।

अतः यज्ञ आदि शुभ कार्यों को करने के लिए ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य ही है। वेदांग ज्योतिष के अनुसार

''यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्'' (वे. यजु. ज्यो.)

ज्योतिष वेदांग गणना पर आधारित है। उचित काल ज्ञान के लिए ग्रहनक्षत्र आदि भौतिक दशा को ध्यान में रखा जाता है। यह सब गणित पर आधारित है। ज्योतिष वेदांग का प्रादुर्भाव वैदिक काल से ही हुआ। सूर्यग्रहण और आकाश मण्डल का ज्ञान भी हमें ज्योतिष से ही होता है। ब्राह्म, दिव्य पित्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र, तथा नक्षत्र ये नव प्रकार के काल का ज्ञान ज्योतिष से ही होता है।

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरञ्च सावनं चान्द्रमार्क्ष मानानि वै नव।। सू.सि.मा. १४।

मनुष्य के समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सवतिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है। यदि मानव समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव सामाजिक त्यौहार महापुरुषों के जन्मदिन अपनी प्राचीन गौरव गाथा का इतिहास का ठीक ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथासमय सम्पन्न किया जा सकेगा।

शिक्षित या सभ्य समाज की तो बात क्या भारतीय अनपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी जयोतिष ज्ञान से परिचित है। वह भली-भांति जानता है किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है। अत: कब बोना चाहिये जिससे फसल अच्छी हो यदि कृषक ज्योतिष शास्त्र के उपयोगी तत्त्वों को न जानता तो उसका अधिकांश श्रम निष्फल हो जाता है।

ज्योतिष के बिना हमारे श्रौत और स्मार्तकर्म सिद्ध नहीं होते इसीलिये ब्राह्म ने पूर्वकाल में इस की रचना की।

विनैतदखिलश्रौतस्मार्तकर्म न सिद्ध्यति।
तस्माजगध्पितयेद ब्राह्मण रचितं पुरा।। (ना.)

वैदिक परिप्रेक्ष्य में वार समीक्षण

अनिल कुमार पोरवाल
रिसर्च फेलो, ज्योतिर्विज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ भी श्रेय, प्रेय, हेय, उपादेय आदि है, सब कुछ वेद में ही स्थित है। इसी वैदिक अवधारणा में वार परिकल्पना भी समाहित है।

वैदिक ज्योतिष में वारों का नाम है-वार शब्द का अर्थ सप्ताह के प्रत्येक दिन से है जिसका नाम उस दिन के स्वामी ग्रह के नाम पर रखा गया है। संस्कृत व्याकरण में धातु से

'धञ्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न वार शब्द समूह अथवा क्रमशः का सूचक है। ये सात वार वैदिक साहित्य में यद्यपि अक्षरशः उल्लिखित नहीं है, परन्तु इनका संकेतन प्राप्त होता है, जैसा कि याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लिखित है

रवि सोमस्तथा भौमो बुधो गीष्पतिरेव च।
शुक्रः शनैश्चरश्चैव वाराः सप्त प्रकीर्तिताः।।

वेदों में वार शब्द के लिए वासर शब्द प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद 8/6/30 में वासर शब्द का प्रयोग वार अर्थ में किया गया है, जैसा कि लब्ध प्रतिष्ठित वैदिक विद्वान् आचार्य सायण ने स्वीकार किया है

आदि प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवा।

वेदों में ज्योतिष

डॉ० सुदेश कुमार शर्मा
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

ज्योतिष शास्त्र का अस्तित्व हम वेदों तथा साहित्य में सर्वत्र पाते हैं। वेदों में सूर्य, चन्द्रमा और अन्य कतिपय नक्षत्रों के लिए देवत्व रूप में स्तुतिपरक ऋचाएँ गायी गयी हैं। वैदिक यज्ञों की विधियाँ सम्पन्न करने के लिए ऋतु, अयन, दिनमान एवं लग्नादि के शुभाशुभ के लिए ब्राह्मण युग में ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य समझा जाने लगा और ज्योतिष की इसी अनिवार्य आवश्यकता के कारण आगे चलकर षड् वेदांगों में इसे स्वतन्त्र स्थान मिला।

वेद की प्रवृति यज्ञ सम्पादन के लिए है और यज्ञ का विधान, विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है जैसे-तैत्तिरीय-शतपथब्राह्मण का कथन है कि कृतिका में अग्नि का आधान फाल्गुनी पूर्णमास में दीक्षा इत्यादि विहित है। इस प्रकार नक्षत्र तिथि वार मास संवत्सर इत्यादि की जानकारी वैदिक कर्मकाण्ड के लिए आवश्यक है अतः इनके ज्ञान के लिए ज्योतिष के अवगाहन जरूरी है, क्योंकि जो व्यक्ति ज्योतिष को भली भाँति जानता है वही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता है :-

वेदा हि यथार्थमभि प्रवृताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः ।
तस्मादिदं काल विधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ॥

यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र को ''वेदपुरुष'' को नेत्र स्वीकार किया गया है :-

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

आचार्य ''लगध'' रचित वेद अंग ज्योतिष के दो प्रतिनिधिग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जिनका सम्बन्ध ऋग्वेद व यजुर्वेद से है। इनमें ऋग्वेद से सम्बन्धित ''आर्चज्योतिष'' (362 श्लोक) तथा यजुर्वेद से सम्बन्धित ''याजुस ज्योतिष''(432 श्लोक) है। इन दोनों ग्रन्थों के श्लोक क्लिष्ट और सारगर्भित है जो कि आज भी विद्वानों के लिए रहस्य के विषय बने हुए है।

वैदिक समाज में सूर्य की उपस्थिति

राजेश शर्मा
शोधछात्र, संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

यो देवभ्यः आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

अर्थात् जो भगवान् सूर्य पृथिव्यादि लोको के लिए तपते हैं, जो सब देवों में पुरोहित हैं, जो प्रवर्तक के समान प्रकाशक हैं, जो उन सभी देवों से पहले उत्पन्न हुए उन ब्रह्मस्वरूप भगवान् सूर्य नारायण को सर्वप्रथम बारम्बार नमस्कार।

वैदिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् आते हैं, एवं सभी विद्याओं में सूर्य की उपस्थिति विस्तार रूप से देखने को मिलती है। यथा ऋग्वेद में ''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'' अर्थात् सूर्य न केवल मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पंतग आदि जङ्गम जीवों के प्राणात्मा हैं, अपितु वृक्ष, लता, गुल्म, औषधि आदि अचल-अन्तः संज्ञ जीवधारियों के भी प्राणात्मा हैं। एवं यजुर्वेद (36/24) में भगवान् सूर्य नारायण को अन्धकार, राक्षसों, दुःखों और रोगों का नाश करने के साथ-साथ नेत्र ज्योति की वृद्धि वाला एवं आयुवर्धक भी कहा है।

''तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्॥''

शतपथ ब्राह्मण (12/2/6/10) में तो ''सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः'' रूप में सूर्य का असहायरूपेण विचरना मिलता है एवं सूर्योपनिषद् के अनुसार सूर्य सम्पूर्ण विश्व की आत्मा है तथा समस्त प्राणियों की उत्पत्ति एवं रक्षा में भी सहायक हैं। यथा-

''सूर्याय भवन्ति भूतानि, सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च''॥ सूर्योप० (२/४)

वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों के अतिरिक्त वेदांगों में सूर्य को कालचक्र का प्रणेता, दिन, रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदि का विभाग कर्ता भी कहा है। सम्पूर्ण विवरण शोधपत्र में दृष्टव्य होगा।

वैदिक साहित्य में चन्द्र की अवधारणा

धर्मपाल
शोध छात्र संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

वेदाङ्गों के महनीय अङ्ग ज्योतिष में चन्द्र की स्थिति अत्यन्त महनीय मानी जाती है। क्योंकि यह मन को प्रभावित करने वाला ग्रह है। चन्द्र का विविरण वैदिक साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। ऋग्वेद में चन्द्रलोक की उपस्थिति भी स्वीकार की गई है जैसा कि

सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवी चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋग्वेद १०/३)

इससे स्पस्ट है कि चन्द्रमा को वैदिक साहित्य में महनीय स्थान मिला था अथर्ववेद (6/80/1) में भी चन्द्र के विषय में वर्णन मिलता है कि यह आकाश चलता है और सभी भूतों को प्रभावित करता है। चन्द्र का सम्बन्ध शृङ्गार रस से भी वैदिक ऋषियों ने स्वीकारा है और माना है कि चन्द्र ही मनुष्य की आयु का संवर्धन करता है। जैसा कि ऋग्वेद (10/85/19) एवं अथर्ववेद (7/81/2) में वर्णन भी मिलता है।

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नं केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन प्र चन्द्रमास्तिरसे दीर्घमायुः॥

“चन्द्रमा मनसो जातः” रूप में ऋषियो ने चन्द्र की उत्पत्ति भगवान् के मन से मानी है। और प्रश्नोपनिषद (1/5) में भी वर्णन मिलता है कि सूर्य इस जगत् के प्राण है और चन्द्रमा अन्न चन्द्रमा से पौधें एवं औषधियों का पल्लवन होता है। शायद इसीलिए चन्द्रमा को औषधिपति भी माना जाता है। जातक की जन्मकुण्डली में भी उदयस्थ चन्द्रमा उत्तम माना जाता है जबकि अस्त चन्द्रमा अशुभ। विवाह संस्कार एवं अन्य धर्म कार्य के आयोजन या यात्राकाल में सम्मुख चन्द्रमा या दक्षिण चन्द्र प्रशस्त माना जाता है। ब्राह्मण साहित्य में चन्द्र को इडावत्सर रूप में स्थान मिला है जबकि पौराणिक साहित्य में चन्द्र को 16 कलह सम्पन्न स्वीकार किया गया है। भगवान हैं। भगवत् गीता (10/21) में “नक्षत्राणामहं शशि” आदि विवरण से भी स्पष्ट है कि चन्द्र को महनीय स्थान वैदिक वाङ्मय में प्राप्त ही था। अनन्तर में भी उसे समादर रूप मिला। सम्पूर्ण विवरण शोध पत्र में द्रष्टव्य है।

वेदाङ्गों में ज्योतिष की अवधारणा

कृष्णा दूबे
शोध छात्रा संस्कृत विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

मानव सभ्यता के मूलस्रोत वेद के स्वरूप को जानने के लिये हमें वेदाङ्गों का सहारा लेना पड़ता है। वेदाङ्गों की उत्पत्ति उपनिषत्काल में ही हो गई थी। इन वेदाङ्गों के नाम तथा क्रम का सर्वप्रथम उल्लेख मुण्डकोपनिषद् 1/15 में मिलता है।

1. शिक्षा 2. कल्प 3. व्याकरण 4. निरुक्त 5. छन्द 6. ज्योतिष

वैदिक साहित्य से प्रचुर मात्रा में प्राप्त खगोल विषयक तथ्यों से ज्ञात होता है वेदों का कर्मकाण्डीय ज्ञान हमें ज्योतिष वेदाङ्ग से होता है। ज्योतिष को वेद पुरुष का चक्षु कहा गया है- **ज्योतिषामयनं चक्षुः।**

वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के लिये है और यज्ञ विशिष्ट समय की अपेक्षा रखता है

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः, कालाभिपूर्वाः विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं, यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥

(लगध ज्योतिष)

वैदिक यागों में नक्षत्र, तिथि, वार, मास, पक्ष, संवत्सर का अत्यन्त सूक्ष्म विधान है, जिसका विवरण ज्योतिष शास्त्र के आदिम तथा प्राचीन स्वतंत्र लक्षण ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष से प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का सम्बन्ध ऋग्वेद तथा यजुर्वेद से है। आर्चज्योतिष में 362 श्लोक तथा याजुष् ज्योतिष में 432 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की रचना का श्रेय आचार्य लगध को दिया जाता है, जैसा कि आर्च ज्योतिष में कहा गया है- ''कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः''। ज्योतिष में नक्षत्रों का प्राधान्य होने से ज्योतिष वेदाङ्ग को नक्षत्रविद्या के नाम से भी अभिहित किया गया है। जिसका प्रामाण्य छान्दोग्योपनिषद् में मिलता है।

शनि स्वभाव निरूपण

विजेन्द्र कुमार
शोधछात्र संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

शनि गगन मण्डल का सर्वाधिक सुन्दर ग्रह माना जाता है। इसके चारों ओर तीन चौड़ और गोलाकार चक्र हैं जो वलय कङ्कण जैसे प्रतीत होते हैं, जो एक दूसरे से अलग रहते हुए घूमा करते हैं। शनि देव अपने इन वलय कङ्कणों के साथ ही आकाश मण्डल में भ्रमण करते हैं। अन्य किसी

भी ग्रह के साथ ऐसे गोलाकार वलय नहीं है। दूर यन्त्र की सहायता से देखे जाने पर यह अति सुन्दर दिखायी पड़ता है। किन्तु सूर्यास्त के अनन्तर यह घोड़े समय तक ही दिखाई पड़ता है, यह ग्रह अधिक चमकीला नहीं है, परन्तु गगन मण्डल की ओर देखने पर यह अपनी चमक तथा नीली आभा के कारण देखने वाले के मन को अपनी ओर सहज ही आकर्षित करता है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा बहुत हल्का तथा बृहस्पति की तुलना में अधिक ठण्डा है। शनि को काल पुरुष का दुःख माना है। नव ग्रहों में इसे 'सेवक' का स्थान प्राप्त है। इसे एक राशि का भ्रमण करने में 19 माह तथा, द्वादश राशियों का भ्रमण करने में 19 वर्ष का समय लगता है। इसका स्वभाव दारुण, तीक्ष्ण, शरीर लम्बा व पतला, स्थूल दांत, रुक्ष केश, वाक् एवं कफ प्रकृति, तमोगुणी, कृष्ण वर्ण, आलसरूप युक्त, नपुंसक, पश्चिमदिशा का स्वामी, वायु तत्व प्रधान, रत्न नीलम है। रात्रि में जन्म होने पर इसको मातृ एवं पितृ कारक माना जाता है। इसका स्नायु पिंडली, घुटने, पसली, अस्थि केश तथा नखादि पर आधिपत्य स्वीकार किया गया है। लोहा, नीलम, काले वस्त्र, सीसा, तेल, नाग, उड़द, तिल, नमक तथा कृष्ण वर्ण की वस्तुओं का अधिपति माना जाता है। जिस स्थान या भाव में यह ग्रह रहता है, उस भाव के प्रभाव को प्रभावित करता है। दैवज्ञ लोग इस ग्रह की शान्ति के लिए नीलम नामक रत्न तथा शनि जप की मन्त्रणा मानव जन को देते हैं। जिसका विस्तार से विवेचन शोध पत्र में यथा स्थान किया गया है।

मानवीयमूल्यम्

वेदों में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों की आधुनिक सन्दर्भों में उपयोगिता

डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी
प्रवक्ता संस्कृत
काशी नरेश राज0 स्नात0 महाविद्यालय, भदोही

इण्डिया टुडे पत्रिका स्वतंत्रता दिवस विशेषांक दिनांक 23 अगस्त 2004 में "57 उपाय भारत को बेहतर बनाने के" सम्बन्ध में समस्याएं और समाधान दोनों ही प्रकाशित किए थे। इन पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर कम से कम 11 बिन्दु ऐसे प्राप्त हुए, जो मानवीय गुणों के विकास और उनकी आवश्यकता पर बल देते हैं। ये 11 बिन्दु हैं बुढ़ापे का सहारा की समस्या, सबके लिए स्वास्थ्य, अतीत को मिले सम्मान, शान्ति मार्च, नेक काम मे मदद, आस्था के संरक्षक बनें, गोद ले गांवों को, महिलाओं को सम्मान, दर्द का एहसास करें और समाज सेवा में भाग लें, भोजन में जहर अच्छा खायें और मिलावटी पदार्थो से दूर रहें, फौरन सेवा की आवश्यकता। इन मानवीय गुणों के ह्रास के कारण आज मनुष्य का पतन होता जा रहा है। मनुष्य भी एक भौतिक युग की मशीन बन गया है। मनुष्य समाज एवं परिवार से कटता जा रहा है। मनुष्य के अन्दर मानवीय संवेदना में ह्रास हुआ है। यदि इनके कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि कारणों का मूल है अपनी संस्कृति और संस्कृत भाषा से विमुख होना। आज हम अपनी इस आधारशिला से अलग हो रहे हैं, जिसे हमारे पूर्वजों ने प्राचीन ऋषियों महर्षियों से लेकर तैयार किया था और विश्व को ज्ञान का प्रकाश दिया था।

वेद भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ हैं। वेदों से ही उदात्त आदर्शों का ज्ञान होता है। वेदों ने ही विश्व संस्कृति और विश्व सभ्यता को पल्लवित और पुष्पित किया है। वेदों की ज्योति विश्व बन्धुत्व, विश्वकल्याण और विश्वसमृद्धि की प्रेरक है। सांस्कृतिक जीवन के चार स्तम्भ माने जाते हैं। आचार, धर्म, नैतिकता और व्यवहार। आचार के अन्तर्गत सदाचार, संयम, अनुशासन, सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान और उद्योग को प्रमुख स्थान दिया गया है। धर्म आध्यात्मिक शुद्धि का आधार हैं। नैतिकता नैतिक जीवन के विकास की शिक्षा देती है। व्यवहार में लोक जीवन के लिए अपनाने योग्य गुणों का समावेश है। वेदों में इनका विस्तृत विवेचन और ऋषियों का मार्गदर्शन है। मनुष्य के कर्तव्य और अकर्तव्य का मार्गदर्शन है। वेद अंधकार से प्रकाश की ओर अवनति से उन्नति की ओर और संकोच से विकास की ओर ले जाने का मार्ग दर्शन कराने में समर्थ हैं।

भारत को महान् बनाने के लिए, विश्व का मार्गदर्शन राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए वेदों में प्रतिपादित उन ऋषियों के मार्गदर्शक सिद्धान्तों को हमें पुनः अपनाना होगा। जिन्हें विस्मृत करने के कारण आज मानवीय संवेदनाओं में ह्रास हुआ है। प्रस्तुत शोध-पत्र का यही प्रतिपाद्य है। शोध पत्र के माध्यम से वेदों में वर्णित मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने का एक प्रयास किया गया है।

वैदिक मूल्यों की राष्ट्र के स्वरूप एवं विकास में उपयोगिता एवं प्रासंगिकता

डॉ० मीरा मोदी
प्राध्यापिका
देवसमाज कॉलेज फॉर विमैन, चंडीगढ़

आज के युग में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, राजनैतिक अस्थिरता, रिश्वतखोरी तथा सामाजिक विषमताएं आदि अनेक समस्याएं वर्तमान समय में हमारे समक्ष है। पद एवं प्रतिस्पर्धा में डूबे हुए राजनीतिज्ञ उन्मत्त एवं कर्त्तव्यविमुख हो रहे हैं। उन्हें न वैयक्तिक पतन की चिन्ता है और न देश की प्रगति की। आज सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित राष्ट्र, योग्य प्रशासक, सुशिक्षित एवं निर्लोभी मंत्रीगण और राष्ट्रीयता की भावना प्रायः लुप्त हो गई है। यह अत्यन्त चिन्ता का विषय है। इस राजनैतिक अस्थिरता, दुष्प्रवृत्तियों एवं दोषों के निवारण हेतु वैदिक मूल्यों की क्या भूमिका हो सकती है, यही इस विषय का प्रतिपाद्य है।

भूमिका में सर्वप्रथम राष्ट्र शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ को स्पष्ट करते हुए वेदों में राष्ट्र शब्द की क्या महत्ता है इसका प्रतिपादन किया गया है। राष्ट्र शब्द का प्रारम्भिक प्रयोग हमें ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। राष्ट्र को अपनी जन्मभूमि को माता मानने की भावना भी हमें सर्वप्रथम वेदों में ही दृष्टिगोचर होती है। यहाँ राष्ट्र की न केवल परिकल्पना की चर्चा है बल्कि उसके आधारभूत तत्व, उपयोगिता महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है।

मनु ने भी राष्ट्र के स्वरूप को मानते हुए राष्ट्र को सप्त अंगों से युक्त माना है स्वामी, अमात्य, सुहृद्, पुर, राष्ट्र, कोश और दण्ड। इन सात अंगों की उत्तमता एवं विशुद्धता पर ही राष्ट्र की उत्कृष्टता मानी है। इन अंगों में यदि एक अंग भी विकारयुक्त हो जाए तो सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वरूप एवं विकास भी विकृत अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

मनु ने राजा, सचिवों, गुप्तचरों, उच्चस्थ पदाधिकारियों आदि के गुणों एवं कर्तव्यों पर विशेष बल दिया है, ऐसे गुणी, निर्लोभी, कर्तव्यनिष्ठ लोगों के हाथ में यदि सत्ता हो तो निश्चित रूपेण राष्ट्र उन्नति ही करेगा। मनु द्वारा निर्दिष्ट कोश नियमन, सुचारु दण्ड व्यवस्था, प्रजा रक्षण वस्तुतः आज के युग में ऐसे मंत्रियों के लिए दिशा निर्देश है, शिक्षा है जिनकी दृष्टि में प्रजा के हित के स्थान पर अपना कोष भरना ही उद्देश्य प्रतीत होता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि वेदों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित राजनीति सम्बन्धी विचार आधुनिक युग में अत्यन्त प्रासंगिक एवं उपादेय हैं।

वैदिक संस्कृति में मानवाधिकारों की अवधारणा

डॉ० अरुण कुमार दीक्षित
प्रवक्ता विधि विभाग
डा0 भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
आगरा

डॉ० (श्रीमती) सोना दीक्षित
प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र
जे0डी0वी0एम0पी0जी0कालेज
कानपुर

वैदिक संस्कृति में न्याय, समानता, बन्धुत्व आदि ऐसे मानवीय मूल्यों का समावेश किया है जो मानवाधिकार के प्राण हैं। वैदिक संस्कृति की विशेषता यह है कि इसमें चरित्र निबन्ध के माध्यम से मानवाधिकार की प्रतिष्ठा की गयी है। विश्व से सभी धर्मों का आधार मानवतावादी है, जिसमें अन्तर्वस्तु में भेद होने के बावजूद मानव अधिकारों का समर्थन करते हैं। वेदकाल के धर्म भी मानवाधिकार संरक्षण करते थे। वेद का अर्थ है विश्वात्मज्ञान। वेदों का लक्ष्य मानव जीवन और विश्व जीवन की रचना की व्याख्या करना और उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए जीवन मूल्यों को प्रतिपादित करना है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में ऋषि उद्घोषित करता है, ''प्रति गृम्णीत मानवं सुमेधस:'' प्रत्येक मानव के प्रति देव बुद्धि का विकास करने के लिये शिक्षा चाहिए अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व को महिमान्वित करना और पूर्णता की ओर ले जाना है। वेद प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा के अधिकार की मान्यता देते थे। वैदिक संस्कृति में परिवार के संरक्षण व सहायता का अधिकार समाहित है। अथर्ववेद के 14 वें काण्ड के रय सूक्त के पांचवें मन्त्र में विवाह योग्य आयु के सम्बन्ध में परिवार में संरक्षण का उल्लेख किया गया है।

''सुमीत: आगन, हृत्सुकामा: अरसंत वाजिनीवसू और मिथुना शुभस्पती गोपा अभूत'' अथर्ववेद में परिवार के सम्बन्ध में कहा गया

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्च: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मानव को प्राण का अन्तर्निहित अधिकार था। इस अधिकार की विधि द्वारा रक्षा की जाती थी। ऋग्वेद में राजा को 'गोपजनस्य' (प्रजा का रक्षक) कहा गया है। राजा प्रजा के प्राणों की रक्षा करता था, वे देखभाल करता था। प्रत्येक मानव को जीने का अधिकार था।

वैदिक संस्कृति समाजवाद 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही रूपान्तरण है, समानता और सर्वकल्याण भावना वैदिक समाजवाद के मूल तत्व हैं। ऋग्वेद में कहा गया है :

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

अथर्ववेद में कहा गया है "सामाजिक एकता के लिए एक सा न्याय, एक सा भोजन तथा मनोविनोद आदि भी आचरणीय बताए गए हैं।

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मनुष्य को सम्पत्ति का अधिकार था। सामाजिक इकाई के रूप में मनुष्य के लिये सम्पत्ति का बहुत बड़ा महत्व है। ऋग्वेद में कहा गया है

इन्द्रो असभ्यं शिक्षतु विभजा भूरि ते वसु।
भक्षीय तव राधसः।

ऋग्वेद की ऋचाओं में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिए काम का अधिकार प्राप्त था। ऋग्वेद की ऋचा 9/112/1 में उल्लेख किया गया है कि हर ग्राम में बढ़ई, लोहार तथा कुम्हार होता था, विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों के करने की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति को थी। यजुर्वेद के पुरुमेध सूक्तों में किसान, चरवाहे, गड़रिये, मधुए, रथकार, नापित, धोबी, लकड़हारे, कुम्हार, लोहार, रंगरेज, सुनार, रस्सी टोकरी बनाने वाले आदि का उल्लेख मिलता है।

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक मनुष्य को अपनी इच्छानुसार श्रमिक संघ बनाने और उसमें सम्मिलित होने का अधिकार होता था। ऋग्वेद में कहा गया है

ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्त्र स्थूण आसाते।

वैदिक संस्कृति में प्रत्येक व्यक्ति को सांस्कृतिक जीवन व मनोरंजन में भाग लेने का व साहित्यिक या कलात्मक कृति के परिणामस्वरूप होने वाले नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण से लाभ प्राप्त करने का अधिकार था। वैदिक संस्कृति में सभी व्यक्तियों को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देव' शब्द की परिभाषा व्यापक थी। यजुर्वेद की लगभग सारी स्तुतियां तथा क्रियाएं भौतिक सुख प्राप्ति विषयक ही है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में सात ऋषियों द्वारा तप करने का उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतंत्रता थी वो यज्ञ करे या पूजा या कोई और कर्मकाण्ड करे।

ऋग्वेद के समय प्रत्येक मनुष्य भेदभावरहित दृष्टिकोण से मिलजुल कर कृषिकर्म, व्यवसाय तथा धार्मिक अनुष्ठान करते थे। वैदिक संस्कृति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। च्यवन ऋषि ब्राह्मण थे तथापि उन्होंने क्षत्रिय वर्ण की कन्या सुकन्या से विवाह किया था। वैदिक संस्कृति में किसी भी व्यक्ति को यन्त्रणा नहीं दी जाती थी उसके साथ क्रूर अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जाता था। यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है :

हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।

वेदमाता गायत्रीः बुद्धिशोधन से आत्मबोधन तक

डॉ० श्वेता शर्मा
प्रवक्ता
फतेहचन्द महिला महाविद्यालय, हिसार

इस लघु शोध पत्र में, वेदों का सर्वाधिक प्रिय तथा प्रचलित गायत्रीमन्त्र के अर्थ-तात्पर्य का व्यवस्थित ब्योरा देने का प्रयास किया गया है और साथ ही इस बात पर विनम्र रोष भी प्रकट किया गया है। कि गायत्री भक्त लोग मन्त्रोक्त आदेशों की परवाह न करते हुए मात्र मन्त्रपाठ में जुटे रहते हैं।

इस पत्र को विषय वैशद्य के लिए आठ भागों में विभाजित किया गया है :

1. गायत्री गरीयसी	गायत्री मन्त्र में वेदादिक समस्त अध्यात्म-शास्त्रों का सार संगृहीत है। उसकी अधिकाधिक प्रशंसा भी सूर्य को दीपक दिखाने जैसी, अति तुच्छ ही सिद्ध होती है।
2. अज्ञात - ज्ञापक वेद	कई एक आध्यात्मिक विषय, विशेष कर, ब्रह्म, परमात्मा, जीवात्मा आदि ऐसे अनबूझ विषय हैं, जिनका समाधान किसी के भी पास नहीं हैं, लेकिन अज्ञात-ज्ञापक वेदों के पास है।
3. गायत्री-गौरव	लोक वेदादिकों में गायत्री की नरुक्ति तथा भरपूरप्रियता आदि इसके गौरव-गान के द्योतक हैं।
4. गायत्री-वेद का वेद्यार्थ	गायत्री अपने-आप में ही एक छोटा सा वेद है। इसका वेद्यार्थ ब्रह्मात्मावबोध है। अपनी देह में ही आत्मध्यान करने से बुद्धि वृत्तियां सुधरती हैं तथा वृत्ति सुधार से आत्मध्यान, आत्मबोध के दूरगामी फल देने लगता है।
5. गायत्री-गन्तव्य	गायत्री का गन्तव्य, बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर, अपने प्रियतम आत्मा के आनन्ददायक दर्शन करना है।
6. गायत्री-ज्ञान से आत्मोपलब्धि	स्वयं गायत्री की तथा अनेकानेक अन्य शास्त्रों सी साक्षी से सुझाया गया है कि गायत्री का तात्पर्य आत्मज्ञान में है, न कि जपादिक में।
7. गायत्री-बोध्य आत्मबोध	गायत्री का सर्वान्तिम लक्ष्य आत्मबोध में पर्यवसित होता है।
8. निष्कर्ष	गायत्री विद्या वस्तुतः आत्मविद्या अथवा ब्रह्मविद्या ही है और ब्रह्मविद्या के लिए कुछ भी असंभव नहीं हुआ करता है। अतः गायत्री के लिए कही गई अतिशयोक्तियां भी सत्योक्तियां ही बन गई है।

ETHICAL CONCEPTS IN THE VEDAS

Prof. Shashiprabha Kumar
Chairperson, Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University, New Delhi

Vedas are held to be the oldest and the most authentic literary sources of Indian thought in general and philosophical thought in particular. Although Vedas are not the books on philosophy as such, hence it will be futile to expect any proper ethical theory therein, yet even a cursory glance at the Vedic verses reveals many valuable pionts which provide a strong foundation for some basic ethical concepts in Indian philosophical thought. The present paper is a modest attempt towards highlighting certain significant ideas of Vedic philosophy from this point of view.

Vedas exhibit a definite outlook towards life, according to which a human being is born mortal but he can and should strive for immortality. A person's mortality refers to his body and its limited earthly existence only, while his soul is immortal.

According to Vedic philosophy, the germane form of all ethical concepts is rooted in the source of goodwill, i.e., sivasankalpa. Not only the knowledge of good as an idea or the performance of good as an action is important, but also the mental bent, intention or will should be pure, only then can one follow the path of righteousness and truthfulness. Hence, there are repated Vedic prayers for the purity of intention.

The basic principle of morality is referred to as rta or righteousness in the Vedas. The sprit of rta pervadas and guides the cosmos from within. Whatever is, is subject to the law of rta as the essential and universal ground of order. The Vedic notion of rta finds its manifestation in the moral principle of the individual, i.e., satya. Rta and satya are the twin aspects of the same principle. The Vedic view of morality is simply extraordinary in the sense that it not only talks of right and wrong, good and evil but and also paves the path for rising above this relative plane and reaching out to the Absolute.

To sum up, above glimpses of ethical concepts in Vedas are only suggestive but sufficient to prove that the Indian mind, since very ancient times, has mainly been axiological and subsidiarily cosmological and epistemological. Therefore, the Vedic prayers for noble ideals should not be taken as mere individual aspirations or spiritual inspirations, they are rather a happy evidence of a holistic and harmonious philosophy of life.

Indian Ethics on Environment

Gokulendra Narayan Deva Goswami
K.K.H.Govt. Sanskrit College
Guwahati, Assam.

Now the whole world is crying for a clean, green and healthy environment, and for that purpose there are several Treaties held in different times on different Environment issues, like the Stockholm Conference, the Montreal Protocol, the Kyoto protocol etc. There is an Environmtal Awareness growing on all over the world. In the our Country (BHARATAVARSA) Environmental Education and Awareness are the sole parts of our Vedic literature. Now Environmental Education is included in all Degree classes as a compulsory subject in our country. There are some objectives and ethics behind this Environmental Education.If we go trough our Vedic literature then it would be clear that our Country was always advaneed and highly conscious regarding a clean and green environment, Moreover, our scriptures (specially the Dharmsastras) play some roles in this respect.

A humble attempt has been made here to throw a light on this aspects.

विविधा:

वेदेषु विमानविज्ञानम्

डॉ० बुद्धदेव शर्मा
सम्पादकः
'वाक्' संस्कृतपाक्षिकम्, देहरादूनम्

विश्वे सर्वपुरातनाः ग्रन्था वेदा इति स्वीक्रियन्ते एव प्रायः सर्वैः वैश्विकैः विद्वद्वरेण्यैः। भारतीयार्याणां यत्किमपि ज्ञानविज्ञानं वर्तते तस्य सर्वस्य दर्शनं वेदेषु कर्तुं शक्यते। आध्यात्मिकचिन्तनाद् आरभ्य सासारिकं चिन्तनं यावत् सर्वं तत्र प्राप्यते। आत्मतत्त्वदर्शिनः महर्षयः आधुनिकशब्दावल्यां वैज्ञानिकाः एव वक्तुं शक्यन्ते। वेदस्य षट्सु अङ्गेषु ज्योतिषम् अपि एकम् अस्ति यस्य विषये उक्तम् ''प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।''

ज्योतिषस्य आविष्कारः अन्तरिक्षस्थितानां ज्योतिपुञ्जानां निरीक्षण परीक्षण अध्यनाय तेषां च ज्ञातुम् अभवत्। ज्योतिषे अन्तरिक्षविज्ञानस्य सर्वे एव विभागाः आगच्छन्ति। डॉ0 नेमिचन्द्रशास्त्री कथयति यत् अद्यतः न्यूनातिन्यूनं 28000 वर्षेभ्यः पूर्वं भारतीयाः अन्तरिक्षविज्ञानस्य ज्योतिषस्य च अध्ययनं चक्रुः। ते आकाशे भासमानानां नक्षत्रपुञ्ज राशिपुञ्ज आकाशगंगा नीहारिकादीनां नामरूपवर्णाकृतीनां सुविज्ञाः आसन्। ज्योतिषस्य सिद्धान्त संहिता होराख्येषु त्रिषु विभागेषु विविधाः ग्रन्थाः रचिता सन्ति। अत्र कालगणनायाः वैज्ञानिकी व्यवस्था कृता वर्तते।

वेदस्य अनेकेषु मन्त्रेषु **अन्तरिक्षयात्राया** उल्लेख वर्तते। विमानस्य कृते तत्र दिव्यरथः, अन्तरिक्षप्रुत्, अन्तरिक्षप्रुट् चेति शब्दानां प्रयोग उपलभ्यते। यथा नौमिः अन्तरिक्षप्रुदूभि अपोदकाभिः। (ऋग्. 1.116.3)

अन्तरिक्षमार्गस्य कृते तत्र देवयानशब्दः प्राप्यते। उक्तं यत् द्यावापृथिव्योः मध्ये बहवः देवयानाः सन्ति तैः व्यापारार्थं यात्रां कृत्वा धनार्जनं कुर्यात्।

''ये पन्थानो बहवो देवयानो
अन्तराद्यापृथिवी संचरन्ति। (अथर्व. ३.१५.२)

विमानरचननायाः उल्लेख अपि ऋग्वेदे प्राप्यते। तत्र आसनत्रयान्वितस्य त्रिकोणरथस्य विमानस्य वर्णनं प्राप्यते यथा ''त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्काम्॥''

अन्यस्मिन् एकस्मिन् मन्त्रे **सर्वलोकगामिनः सप्तचक्रस्य बहुविशालस्य सर्वदिक्षुवृतस्य पञ्चयन्त्रयुतस्य सङ्केतगामिनः दिव्यरथस्य वर्णनम्** उपलभ्यते

''सोमा पूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।
विषुवृतं मनसा युज्यमानं पञ्चरश्मिम्॥''(ऋग्. २.४०.३)

वैदिकगर्भविज्ञानम्

डॉ० निरञ्जन मिश्रः
व्याख्याता, साहित्यविभागः
श्रीभगवानदास संस्कृतमहाविद्यालयः, हरिद्वारम्

सरलज्ञानविज्ञानभण्डागारोऽयं वेदः' कथ्यतेऽस्मिन्नास्ति शङ्काऽवकाशः। वैदिकपाथोनिधि मन्थनादुत्पन्नामृतपानेनैवामृतत्वं यास्यति जगदेतदिति निश्चप्रचम्। वैज्ञानिकेऽस्मिन् युगे वैदिकतत्त्वानामाधारमनङ्गीकुर्वभिरपि वैज्ञानिकैरवश्यमेव स्वीकार्यं वैज्ञानिकत्वं वेदानाम्। अस्माकं प्राचीनैः सकलतत्त्वविवेचनपटुभिराचार्यैर्जीवनस्यामूल्यतत्त्वानां प्रयोगेन प्रामाणिकत्वं संस्थाप्य वेदविरोधिपक्षेभ्यः गोपायितुं सूत्रात्मकरीत्या ग्रथितम्। स एव ज्ञानगारो वेदरूपेणास्माकं पुरतो वर्तते।

अस्मिन शोधपत्रे गर्भविज्ञानमादाय पूर्वतनऋषीनां तत्त्वचिन्तनं प्रस्तूयते। गर्भविषयविविधपक्षानां समुचितज्ञानमासीत् वैदिककाले। यथा गर्भः किम्? गर्भधारणायाधारचिन्तनम्, गर्भरक्षणं पोषणम्, गर्भस्थान-समयविषयकचिन्तनम्, गर्भक्षरणनिरोधोपायः, गर्भवृद्धिचिन्तनम्, इत्यादयः। एतेषां समेषां तत्त्वानां विशदविवेचनं शोधप्रबन्धेऽस्मिन् प्रस्तोष्यते। दिग्दर्शनार्थमत्रावलोकनीयम् यत् को नाम गर्भः इति विषये अथर्वसंहितायाम्

पुंसि वै रेतो भवति तत् स्त्रियामनुपि(षि) च्यते।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् प्रजापतिरब्रबीत।।

तत्रैवास्य वैशिट्यमित्थं प्रस्तुतं वर्तते यत्-

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुसंवनं कृतम्।
तद् वै पुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि।।

गर्भरक्षणाय तत्रैव प्राथ्यते यत्-

गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वती।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रज।। इत्यादि

एवम्प्रकारेण गर्भविषयकसमग्रचिन्तनमस्य शोधस्य विषयो वर्तते।

वेदेषु दूर्वायाः महत्त्वम्

डॉ० श्वेता बिश्नोई
सुखदेई स्मारक महाविद्यालय
रतूपुरा, मुरादाबाद

सर्वज्ञानमयो हि सः वेदः। वेदाः अमङ्गलनाशं, शुद्धिकरणं, पुष्टिकर्म रोगशमनञ्च पुरस्सरं नानाविधोपायान् व्याख्यापयन्ति येषु दूर्वा सुप्रसिद्धा एव। इमामेव दूर्वामाश्रित्य वैदिकसाहित्यपरिप्रेक्ष्ये दूर्वायाः महत्त्वमत्र प्रतिपाद्यते।

'दुर्व' धातो' अच् टाप च प्रत्यये कृते कृतदीर्धे 'दूर्वा' शब्दो निष्पद्यते। लोकविश्रुतेयं शतपर्वा, शतमूला, अधद्विष्टा प्रभृतिभिः नामभिरपि प्रथिता। इयं सम्पूर्णेऽपि भारतवर्षे उपलभ्यते। तृणप्रजातिसम्बद्धेयं दूर्वा ऋग्वेदे[1] परकालीनवाङ्मये चापि बहुशो वर्ण्यते। यजुर्वेद इमां देवतारूपेण निर्दिशति

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि
एव नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥ (यजुर्वेदः १३/२०)

अमङ्गलनाशिनीयं स्वस्तिकर्मणि प्रयुज्यते।[2] स्नानविधौ अधमर्षणजये अप्यस्याः प्रयोगो निर्दिष्टः।[3] कीदृशीय प्रयोगार्हा, इदमपि वर्णनं वैदिकवाङ्मये उपलभ्यते यदियम् अछिद्रा, अस्फाटिता, अवक्रा, दीर्धपर्वा, सुमध्यमा च स्यात्।[4]

सम्प्रतीयम् आयुर्वेदग्रन्थेषु वर्णिता दृश्यते अद्यापि च 'दूर्वा' इत्यभिधानेनैव अभिज्ञायते। इयं रक्तपित्त कफ-पित्त तृषा अरोचक दाह मूर्च्छा ग्रह भूत विसर्पादिरोगाणां नाशिनी वर्तते।[5] अद्यत्वे अनिद्रारोगो महती समस्या वर्तते यन्निवारणाय दूर्वा प्रमुखौषधि विद्यते। अनिद्ररोगशमनाय 'आरात्रिमक्' विधाने दूर्वा प्रयुज्यते।[6] अस्याः प्रयोगेण आयुः वर्धते इति श्रुतिषु प्रतिपादितम्।[7] तिलैः, त्रिमधुरैः तण्डुलैश्च सह यज्ञाग्नौ हुतेयं विविधव्याधीः शमयति।[8] आयुर्वेदज्ञैरियं कर्कट (कैंसर) रोगनिवारणाय प्रयुज्यते। ब्राह्मणग्रन्थेषु दूर्वा सोमलतायाः प्रतिनिधित्वेनापि उपज्युज्यते। तुल्यगुणस्यैव प्रतिनिधि व्यवस्थता अस्यामपि सोम लतायाः अनेके गुणाः विद्यन्ते इति ऊह्यते।

एवं वेदेषु दूर्वा मङ्गलसाधिनी, रोगशमनी, पूतिकारिणी च वर्तते।

सन्दर्भा :-

1. ऋग्वेदः 10/16/13, 10/134/5, 10/142/8
2. अथर्व परिशिष्ट 4/1/16
3. तदेव 42/1/7
4. तदेव 21/2-3
5. राजनिघण्टु
6. अथर्व परिशिष्ट 7/1/5-6
7. तदेव 25/5/5, 36/4/2
8. तदेव 36/19/1

संस्कृतवैयाकरणपरम्परा में आचार्य भिक्षाराम का स्थान

प्रो० श्रीकृष्ण शर्मा
निदेशक, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

संस्कृत व्याकरण शास्त्र की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। महाभाष्यकार पतंजलि ने ऋग्वेद की पांच ऋतुओं की व्याकरणपरक व्याख्या प्रस्तुत करके यह दर्शाया है। कि संहिताकाल में ही व्याकरणविषयक चिन्तन की रुचि के बीज अंकुरित हो चुके थे। वैदिक मन्त्रों के पदपाठ में प्रकृति प्रत्यय, धातु, उपसर्ग और समासघटक पूर्वोतर पदों का विभाजन दिखलाना व्याकरणप्रक्रिया का परिष्कृत रुप कहा जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण ,महाभारत आदि में शब्दानुशासन के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग उपलब्ध होता है। पाणिनीय सम्प्रदाय के व्याकरण ग्रन्थों में इस बात का उल्लेख है कि बृहस्पति आदि आचार्यों ने अपनी अपनी शैली में शब्दनुशासन का प्रवचन किया था। शाकटायन आदि आचार्यो ने सफल शब्दराशि को धातुज सिद्ध करने का दावा किया था। तत्पश्चात् आचार्य पाणिनि ने प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों का अनुशीलन करके अपने शब्दानुशासन का प्रणयन किया। यद्यपि पाणिनीय अष्टाध्यायी की वैज्ञानिक एवं परिष्कृत प्रतिपादन शैली के समक्ष पूर्ववर्ती व्याकरणग्रन्थ प्रायः लुप्त हो गए। तथा परवर्ती ग्रन्थ भी इतने समृद्ध नहीं हो सके, तथापि व्याकरण ग्रन्थों के प्रणयन की परम्परा अविच्छिन्न संस्कृतव्याकरण का प्रवचन किया था। पाणिनि के बाद भी लगभग बीस विद्वानों ने संस्कृत व्याकरण ग्रन्थों की रचना की।

संस्कृत वैयाकरणों की इस सुदीर्घ परम्परा में कुरुक्षेत्र भूमि के अन्तर्गत बारणा गाँव के निवासी आचार्य भिक्षाराम ने शब्दज्योत्स्ना नामक ग्रन्थ लिखकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया है। प्रस्तुत शोधपत्र में शब्दज्योत्स्ना का समीक्षात्मक परिचय दिया जाना अभीष्ट है।

वैदिक समाज में नारी

डॉ० अरुणा शर्मा
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

नारी समाज का एक अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। भारतीय संस्कृति में नारी को देवरूपा, शक्तिरूपा माना जाता रहा है। नारी पुत्री के रूप में, भगिनी के रूप में, पत्नी के रूप में और मातृरूप में सदा मानव का हितचिन्तन और पोषण करती रही है। खेद का विषय है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' का उद्घोष करने वाली सामाजिक व्यवस्था में आज नारी शोषण, हिंसा, बलात्कार और अभद्रता का शिकार हो कर निरन्तर उपेक्षित हो रही है। किन्तु परिस्थितियाँ

आरम्भ से इतनी शोचनीय नहीं थी। वैदिक युग में नारी का अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान था। दुहिता, पत्नी तथा माता के रूप में वह सर्वथा पूज्या थी। ऋग्वेदीय युग में पत्नी को पति का अर्द्धांग माना जाता था। वैदिक काल में स्त्रियों को अपने पति के साथ सभी प्रकार के यज्ञ और धार्मिक कृत्य करने का महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त था। लोक में कन्याएं उतनी ही प्रिय थी, जितने पुत्र। वैदिक वाङ्मय में योग्य और विदुषी कन्या प्राप्त करने के लिए विशेष प्रकार के अवसरों में कोई अन्तर नहीं था। उन्हें पुत्रों के समान ही अध्यनन और शिक्षाप्राप्ति का अवसर सुलभ था और युवावस्था में पदार्पण करने पर ही उनका विवाह होता था। पति के घर मेंनापरी गृहसेविका नहीं, अपितु गृहस्वामिनी होती थी। ऋग्वेद से संकेत मिलता है कि पैतृक सम्पत्ति में भी कन्या का अधिकार प्राप्त था।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में प्राप्त उल्लेखों से यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज में नारी का अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान था। स्त्री पुरुष की यह योगिनी थी और समाज में आत्मविकास के पथ पर अग्रसर होती हुई एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में सांस्कृतिक विकास द्वारा समाजकल्याण और राष्ट्रसेवा की दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित करती थी।

भर्तृहरि को अभिमत व्याकरणाध्ययन के प्रयोजन

डॉ० ब्रह्मदेव
रीडर, संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

किसी भी भाषा के गम्भीर ज्ञान के लिए उसके व्याकरण का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। संस्कृत जैसी भाषा, जो इस समय लोकाचार की भाषा नहीं, के ज्ञान के लिए व्याकरण और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। वस्तुतः सत्य का समीहन ही मुख्य उद्देश्य है **असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते** (वाक्यपदीय 2.238)। शब्दविद्या का प्रकाशन व्याकरण में निहित है। तात्त्विक, निर्भ्रान्त ज्ञान व्याकरण के बिना सम्भव नहीं। जैसा कि भर्तृहरि कहते हैं-**तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते** (वाक्यपदीय 1.13)। भर्तृहरि के अनुसार तो व्याकरण अपवर्ग का द्वार है। वाणी के मलों का चिकित्सक है और समस्त विद्याओं का मूल होने से विद्याओं का शिरोभूषण भी है। संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो शब्द के अभाव में सम्भव हो। सब उसी से सम्पृक्त हो अवभासित होता है। अतः शब्दब्रह्म को जानने के लिए प्रथम व्याकरण को जानिये और तद्द्वारा मोक्षरूप चतुर्थ पुरुषार्थ का अधिगम यथाशीघ्र सम्भव है। इस लेख में भर्तृहरि के इन्हीं मन्तव्यों का समायोजन किया गया है।

ऋग्वेद में अलङ्कार-योजना

डॉ० कपिल देव शुक्ल
आचार्य, संस्कृत विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर वि.वि., गोरखपुर

वैदिक ऋषि अपने हृदयगत भावों की अभिव्यंजना थोड़े से सुबोध शब्दों के माध्यम से कर देता हैं वह कभी भावसंवेग की तीव्रता की अभिव्यक्ति हेतु जानबूझकर काव्यसौन्दर्य के अभिवर्द्धक तत्त्वों के प्रति अभिनिवेशित नहीं होता, अपितु सहज सरल भावाभिव्यक्ति के समय में स्वतः उसके वाग्विन्यास में उपस्थित हो जाते हैं। ऋग्वेदीय सूक्तों में देवताओं की यज्ञ में उपस्थिति, मित्रवत् सांसारिक सौख्यसम्पादन एवं आध्यात्मिक दृष्टि के उन्मेष के लिए विभिन्न प्रकार के छन्दों में स्तुति की गयी है। उनके रूपों के नानातत्त्वों का वर्णन कविकला का विलास है। सुहृत्कामना में कोमल भावों तथा हृदयस्पर्शी संवेगों की मधुर अभिव्यञ्जना है। काव्यगत गुणों का प्राकट्य आकस्मिक नहीं अपितु तन्मयता एवं अनन्यता से संवलित भावपेशलता की सहज अभिव्यक्ति में स्वतः स्फूर्त हो जाता है। उषा के सूक्तों में सौन्दर्य की सुकुमार भावना का अतिरेक, इन्द्रसूक्तों में वीरता एवं तेजस्विता का मधुर मिलन, अग्नि के वर्णन में स्वभावोक्ति का कथन तथा वरुण के सूक्तों में हृत्तन्त्री की सुकोमल झंकार का निरूपण ऋषि के भाववैविध्य का सफल निदर्शन है। हृदयवृत्तियों की मार्मिक अभिव्यक्ति वसिष्ठ के वरुण सूक्त में विद्यमान है, यथा

उत स्वता तन्वा संवदे तत् कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं में हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृलीकं सुमना अभि ख्यम्।। (ऋ०७/८६/२)

ऋषि अनन्यता की स्थिति में पहुँचकर पूर्ण तन्मयता के साथ अपने आराध्य वरुण के साहचर्य एवं दयाप्राप्ति की कामना करता है। विद्वन्मीमांसा से अवबोधित ऋषि का हृदय अपने पूर्वजों तथा स्वयं के द्वारा किये गये पापों की रस्सी से अवमुक्ति के लिए तड़प उठता है, यथा

अव द्रुग्धानि पित्र्या नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्।। (ऋ ०७/८६/५)

एतादृश दीनता, नम्रम्ता, अपराधस्वीकृति एवं आत्मसमर्पण आदि हृदयगत भावों का भव्य गुम्फन अन्यत्र दुर्लभ है।

व्याख्या के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द का अवदान

डॉ० शारदा वर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत विभाग
वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय, बहादुरगढ़

महर्षि दयानन्द से पूर्व भी आचार्य स्कन्द तथा सायण आदि के वेदभाष्य विद्यमान थे। पुनरपि महर्षि दयानन्द को वेदभाष्य करने की क्या आवश्यकता अनुभव हुई इसका उल्लेख स्वयं महर्षि इस प्रकार करते हैं।

आर्यणां मुन्यृषीणं या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते नु नान्यथा॥

ऋग्वेद के भाष्यों में आचार्य सायण का भाष्य तथा शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यों में महीधर तथा उबट के भाष्य उस समय सुप्रतिष्ठित थे। स्वामी जी ने उन भाष्यों को दोषपूर्ण इसलिए कहा है कि वे भाष्य वेद के वास्तविक अर्थ के प्रतिपादक न थे। उन भाष्यकारों ने अनादि निधन वाक् वेद में राजाओं ऋषियों आदि के इतिहास का प्रतिपादन किया तथा वे प्रायः यज्ञिक् अर्थो तक ही सीमत रहे। इसके अतिरिक्त महीधर तथा उत्वट के भाष्यों में तो अश्लीलता आदि दोष भी विद्यमान थे। महर्षि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में निरुक्त को आधार बनाया है। निरुक्त निर्वचन प्रधान ग्रन्थ है निर्वचन के आधार पर यास्क ने एक ही शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। यास्क वैदिक शब्दों को रुढ़ न मानकर यौगिक तथा योगरूढ़ मानते हैं। इसीलिए वे अनेकार्थक वाचक हैं स्वामी दयानन्द ने भी अपने वेद भाष्य में यही मार्ग अपनाया है इसीलिए उन्होंने वसिष्ठ विश्वामत्र आदि शब्दों के यौगिक तथा योगरुढ अर्थ करके वेद में इतिहास पक्ष को सर्वथा समाप्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त स्वामी जी के भाष्य की यह विशेषता है कि उन्होंने मन्त्रों के व्यवहारिक जीवनोपयोगी तथा वैज्ञानिक अर्थ किये है स्वामी जी वेद को सभी सत्य विद्याओं की पुस्तक मानते है। इसी दृष्टि से उन्होनें अपना भाष्य किया है। स्वामी जी ने ही सर्वप्रथम हिन्दी में केवल संस्कृत में थे। स्वामी जी ने ही सर्व प्रथम हिन्दी में अपना भाष्य करके उसे लोकोपयोगी बनाया। स्वामी जी के भाष्य के कारण ही आम जनता को भी वेद भाष्य सुलभ हो सके।

शिक्षा विषयकाः ग्रन्थाः

डॉ० सतीश कुमारी
प्राचार्या
ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

शिक्षा एक वेदाङ्ग है। वैदिक साहित्य में छः वेदाङ्ग हैं। सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में जिनका कथन है

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योतिषं तथा
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥

शिक्षा व्याकरण छन्द निरुक्त ज्योतिष कल्प ये वेद के छः अङ्ग कहे गये हैं। इन अङ्गों के सम्यक् ज्ञान से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद आदि वेदों का वास्तविक स्वरूप जाना जा सकता है अतः वेदार्थ को जानने में ये अत्यन्त उपयोगी तत्त्व हैं। इन तत्त्वों की महत्ता को देखते हुए पाणिनीय शिक्षा में इन्हें वेद पुरूष के छः अङ्ग ही कह दिया

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठयते,
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्,
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥ (पाणिनीय शिक्षा ४१-४१)

श्रुति परम्परा को सुरक्षित रखने में शिक्षा वेदाङ्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रातिशाख्यकार महर्षि शौनक जी ने इसके महत्त्व को समझा और कहा

सुबहुज्ञोऽपि यो भूत्वा शिक्षा चेन्नाधिगच्छति।
न राजते सभायां स शैक्षिकस्य समीपतः॥

शुद्धोच्चारण में पारङ्गत होने पर ही शिष्य श्रुति का अधिकारी बनता है और विद्वानों की सभा में सम्मान प्राप्त करता है। अन्यथा सुबहुज्ञ अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होने पर भी ध्वनि शास्त्रवेत्ता विद्वानों के मध्य टिक नहीं पाता। शिक्षा शास्त्र के अध्ययन और अभ्यास से शुद्धोच्चारण निष्णात शिष्य ही वेद परम्परा की रक्षा कर सकता है।

यद्यपि शिक्षा शास्त्र भी अन्य शास्त्रों के समान कालभेद स्थानभेद वक्ताभेद आदि कारणों से अपवादों से मुक्त नहीं है। फिर भी यह आर्षशास्त्र स्वयं सम्पूर्ण एवं अनिन्द्य शास्त्र हैं। शिक्षा शास्त्र की सहायता से अकारादि के शुद्धोच्चारण का अभ्यास करके कोई भी वेदों में कोई भी साधु पुरुष धर्म का प्रतिपादन कर सकता है जो वेदों में निहित है अतः यह शिक्षा वेदाङ्ग अत्यन्त उपस्कर हैं।

वेदों में धन की अवधारणा

डॉ० गणेशदत्त शर्मा
पूर्व प्राचार्य,
लाजपतराय स्नातकोत्तर महविद्यालय, साहिबाबाद

धन के विषय में वैदिक अवधारणा अत्यन्त व्यापक एवं सर्वहितकारिणी हैं। वेदों में धन के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे नितान्त सार्थक हैं और उनके द्वारा अर्थशास्त्र के मूल सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरणार्थ धन शब्द को ही लें धारण पोषण अर्थ वाली ''धा'' धातु से उत्पन्न धन शब्द का अर्थ है ''जो सबको धारण करता है और सबका पोषण करता है।'' इस दृष्टि से अन्नादि खाद्य पदार्थ तथा वस्त्र, भूमि, भवन आदि सभी वस्तुएं धन हैं, जिसके द्वारा सभी का धारण पोषण होता है। इसी भाँति ''अर्यते गम्यते प्राप्यते इति अर्थ:'' इस निर्वचन के अनुसार स्वयं अर्थ शब्द ही अपने में सार्थक है। अर्थ शब्द प्रयोजनवाची है, क्योंकि सांसारिक दृष्टि से अर्थ ही सबका प्रयोजन है। साथ ही जीवन के सभी प्रयोजन व मानव की आवश्यकताएं अर्थ द्वारा ही सिद्ध होती हैं। इसी भाँति वैदिक सूक्तों में प्रयुक्त द्रविणम्, वित्तम्, वसु:, राध:, रयि, लक्ष्मी आदि सभी शब्द व्यापक अर्थों में अपनी सार्थकता रखते हैं। विशेष बात यह है कि वेद के ''वयं स्याम पतयो रयीणाम्'' इत्यादि मन्त्रों में धन के लिए की गई कामनाएं प्राय: बहुवचन में हैं।

वैदिक प्रकृति तत्त्व एवं हिन्दी साहित्य

डॉ० सुचित्रा मलिक
हिन्दी विभाग, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

वेदकालीन आर्यो का जीवन मानव सभ्यता का शैशवकाल रहा है। आर्य जाति ने अपने विकास के इस चरण में जो पहली गवेषणा की वह प्रकृति तत्त्व की है। प्रकृति की असीम शक्ति सामर्थ्य और सौन्दर्य की अनुपम छवि ने वैदिक साहित्य को लबा लब किया है। वैदिक आर्यो ने प्रकृति की कहीं तो पंचतत्त्वों के रूप में अभ्यर्थना की औसर कहीं उसके आकर्षक रमणीक रूप को देख हर्षातिरेक में स्वयं को झुका दिया। ज्ञान और आराधना की खोज में कुछ ऐसे तत्त्व वैदिक आर्यो के मानस पटल पर छाये कि वे बार बार अनेक ऋषियों और ऋषिकाओं के शब्दों में पुनरावृत्ति पाते रहे। वे तत्त्व थे अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश।

इन पाँचों तत्वों का प्राकृतिक और आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार का मत था। इसके अतिरिक्त वैदिक भाषा व मंत्रों में नदी, समुद्र, पर्वत, मेघ (इन्द्र) व ऋतुएं भी हैं। जो यहाँ वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त हैं। ये बीज शब्द हैं जो आज तक भारतीय साहित्य में जमे हुए हैं। हम इनमे दामन बचाकर नहीं निकल सकते। प्रकृति का चित्रण जहाँ जहाँ भी होगा वहीं वहीं ये बीज शब्द पल्लवित होंगे। प्रसाद हो पंत हो, या कोई भी। हिन्दी साहित्य का सन्दर्भ लें तो कामायनीकार ने चिन्ता सर्ग का पहला छन्द पर्वत और जल को लेकर ही उतारा है

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस पर वेदों का प्रभाव

डॉ० मिथिलेश कुमार
विभागाध्यक्ष संस्कृत
एस0जी0जी0एस0 कॉलेज,पटना सिटी

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम् इस मनुप्रोक्त वचनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि निखिल धर्मोका मूल वेद है। वेद शब्द 'विद ज्ञाने' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है प्रकृष्ट ज्ञान। वेद ज्ञान तथा विज्ञान का अनादि भण्डार है। भारतीय धर्म एवं दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का उद्गम स्थल वेद ही है। वेद भारतीय संस्कृति का प्राण है। यह भी सत्य है कि वेद मन्त्र नितान्त ही गूढार्थक है, इसलिये उनके अर्थ प्रकाश के लिये हमारे क्रान्तदर्शी ऋषि महर्षियों ने अनेक स्मृतियों, दर्शनों, धर्मसूत्रों तथा पुराणादि ग्रन्थों की रचना करके उनका उपबृंहण किया है। यही कारण है कि भारतीय धर्म में जो जीवन्त-शक्ति दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण भी वेद ही है इसलिये कहा जाता है कि जिस ज्ञान विज्ञान के कारण किसी समय भारत सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त हुआ था जिस परम तत्व का साक्षात्कार करके तत्वदर्शी ऋषियों ने सब कुछ पाया था, जिसके प्रभाव से विश्व में सुख समृद्धि तथा शक्ति की स्थापना की थी और इस पुण्यभूमि आर्यावर्त देश को 'स्वर्गादपि गरीयसी' बनाया था, वह सारी सम्पदा वेद में ही संनिहित है। वेद अपौरुषेय एवं ईश्वरीय ज्ञान तथा समस्त विद्याओं का मूल स्रोत है।

तुलसी जी ने रामचरित मानस के प्रथम अध्याय में वेदों की बंदना करते हए कहा है

वेदऊँ चारिउ वेद भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुवर बिसद जसु।।

अर्थात् मैं चारों वेदों की बंदना करता हूँ, जो संसार समुद्र के पार होने के लिए जहाज के समान है। जिन्हें रघुनाथ जी का निर्मल यश वर्णन करते स्वप्न में भी पश्चाताप नहीं होता।

वेदार्थ ही रामायण के रूप में प्रकट हुआ। तुलसीदास जी अपने को शोक समुद्र से पार होने के लिए कहते हैं-

निज संदेह मोह भ्रम हरनी।
करऊँ कथा भव सरिता तरनी।।

संयम नियम का पालन करते हए वेद सर्वथा ईश्वरोपासना पर बल देता है।

रामचरित मानसकार ने भी अपने ग्रंथ में संयम -नियम पालन पर बल देते हुए कहा है

- सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रति इस वेद बखाना।। (रामचरितमानस 1/37/14) भक्तों के लिए मन का निग्रह यम नियम ही फूल है ज्ञान फल है और प्रभु के चरणों में प्रेम ही इस ज्ञान रूपी फल का रस है। (गोस्वामी तुलसीदास जी वेदों के एक प्रतिष्ठित विद्वान् थे। इनकी

रचना विश्व में झोपड़ी से लेकर महलों तक में समान रूप से पायी जाती है। तुलसी दास कहते हैं कि वेदों के अध्ययनाध्यापन से जो लोगों को फल प्राप्त होता है। वही कल तुलसी के रामचरितमानस आदि ग्रन्थों के पाठ से प्राप्त होता है। साहित्य के अध्ययन एवं आचरण से अध्येता को लोक सूयश एवं परलोक में सदगति की प्राप्ति अवश्य होगी। ऐसा हम पाठकों को हृदय से विश्वास है।

इस प्रकार अत्यन्त संक्षेप में वेदसारभूत तुलसीदास ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। संक्षेप में ही मानस पर वेदों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। विस्तृत चर्चा पूर्णलेख में की जायेगी। भाषा सरल एवं बोधगम्य है।

ऋग्वैदिक उपनिषदों का संक्षिप्त अनुशीलन

प्रो० मु० इसराइल खाँ
कविनगर, गाजियाबाद

प्रत्येक वेद के अपने-अपने उपनिषद् हैं। उपनिषदों में प्रायः आत्मा एवं परमात्मा सम्बन्धी विषयों का सारगर्भित विवेचन है, परन्तु उनमें प्रकारान्तर से अन्य विषय वर्णित हैं। उन में कथाओं, कहानियों, आख्यायिकाओं आदि के माध्यम से पाठक में रुचि उत्पन्न कर दर्शन के दुरूह विषयों को समझाने का प्रयास किया गया है। ऋग्वेद के दो उपनिषद् ऐत्तरेय एवं कौषीतकि उपनिषद् हैं। प्रकृत शोध लेख में दोनों उपनिषदों के वर्ण्य विषय पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया गया है तथा इन दोनों के दार्शनिक विषय का एक तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ अन्य विषयों को भी लिया गया है। उदाहरण के रूप में प्राण एक तत्व है, जिस का सम्बन्ध आत्मा से है। ऐत्तरेय उपनिषद् के तृतीय अध्याय में हृदय, आभास, चेतना, कला एवं विज्ञानों का ज्ञान, बुद्धि, दृष्टि, विचार, विद्या, जीवन-प्रवृत्त्ति, आदि के द्वितीय अध्याय में प्राण का ब्रह्म से तादात्म्य प्रस्तुत किया गया है। इसके एक संदर्भ के अनुसार प्राण ब्रह्म है। संदेशवाहक के रूप में मन, प्रतिहारी रूप में श्रोत्र तथा सेवक के रूप में वाणी प्राण की सेवा करती है। कोषीतकि-उपनिषद् में दैवः परिमरः का वर्णन ऐहिक सिद्धान्त तथा आत्मा सम्बन्धी विवरण के सन्दर्भ में बड़ा रोचक है। इन दोनों उपनिषदों में औपनिषदिक शिक्षा के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है तथा अमरता की शिक्षा दी गई है।

वेदों का सर्वविद्यामयत्व

प्रो० भवानीलाल भारतीय
जोधपुर, राजस्थान

मनु का वेदों को सर्वज्ञानमय बताना पितृदेवमनुष्याणां, चातुर्वर्ण्य सेनापत्यं च राज्यं च आदि श्लोक वेदों में परा अपरा विद्याओं की विद्यमानता। **वेदों के प्रतिपाद्य विषय** - दयानन्द के मतानुसार विज्ञान, कर्म, उपासना, ज्ञान, तत्रापि ईश्वरानुभवो मुख्याऽस्ति।

वैदिक अध्यात्म विधाएं - 1. ईश्वर 2. जीव 3. प्रकृति का निरूपण, वैदिक सृष्टि विद्या पुरुष सूक्त, नासदीय सूक्त आदि।

वैदिक समाज व्यवस्था - व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र तथा निखिल मानव समुदाय को उद्बोधन।

वैदिक राजनीति और राष्ट्र संचालन - राज प्रजाधर्म तथा अथर्ववेदोक्त पृथिवी सूक्त।

वैदिक युद्ध विद्या - शास्त्रास्त्र विद्या, सेनापतियों के कर्तव्य भूगोल एवं खगोल विद्याओं के संदर्भ।

अन्य विधाएं - गणित, आयुर्वेद, चिकित्सा, मनोविज्ञान, काम विज्ञान, अर्थ शास्त्र आदि।

उपसंहार- अथर्ववेद का वैशिष्ट्य निरूपण।

वैदिक गौ-रक्षण की वर्तमान में उपेक्षा

डॉ० प्रतिभा शुक्ला
व. प्रवक्ता, संस्कृत
हिन्दू कन्या महाविद्यालय, सोनीपत

वैदिक वाङ्.मय में गौ को अत्यन्त पूज्य भावना से देखा गया है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में गाय से रहित घर की कल्पना भी नहीं है। उनके अनुसार घर ऐसा होना चाहिए जिसके चारों ओर गायें घूमती हों। (ऋ0 6,67,11) वर्तमान में सांस्कृतिक एवं आर्थिक विसंगतियों से जूझता हुआ भारत कभी वैभव सम्पन्न था। यह सर्वविदित है। अतीत में आर्थिक सम्पन्नता का मुख्य कारण यहाँ का गौपालन रहा। यहां की धनाढ्य शत एवं सहस्र संख्या में गायों का पालन करते थे। गायों से प्राप्त होने वाला उत्पाद दूध, दही घी आदि का आयात निर्यात परस्पर पड़ौसी राज्य किया करते थे। अथर्ववेद में 'गावो भगो' (अथर्व. 4, 2,1 5) कहकर गायों को ऐश्वर्य बताया गया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में प्रमाणों द्वारा गौ की उपयोगिता को सिद्ध किया है। वेद में गौ को अहन्या कहा गया है। गौ वध भारत के लिए अभिशाप है। दुर्भाग्य की बात है कि स्वाधीनता के बाद नये नये बूचड़खानों का निर्माण होता जा रहा है। गर्भवती

गायों का वध करके गर्भस्थ बछड़े के चर्म से बना सामान विदेशों तक में निर्यात किया जाता है। हमारा संकल्प है कि भारत से गौमांस और उसके शिशु बछड़ों के चर्म का निर्यात नहीं होना चाहिए। निर्यात होगा उसके दूध, दही और घी से बनी वस्तुओं का। निर्यात होगा तो गोबर से बनी खाद का। गौ-रक्षण हम सबका परम दायित्व है।

ऋग्वेद में कर्म का महत्व

डॉ (श्रीमती) गीता परिहार
रीडर-संस्कृत विभाग
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद

भारतीय धर्म, सभ्यता, भाषा, साहित्य तथा समस्त कलाओं और आधुनिक विज्ञान के उत्स भारतीय वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य माना जाता है। यह क्रान्तद्रष्टा ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा की पावन परिणति है। वैदिक साहित्य में भी ऋग्वेद संहिता प्राचीनतम तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद की महत्ता को डॉ0 राधाकृष्णनन् ने अपने ग्रन्थ 'इण्डियन फिलॉसफी' में इस प्रकार प्रतिपादित किया है- 'किसी भी भारतीय विचारधारा की सही जानकारी के लिये ऋग्वेद के सूक्तों का अध्ययन अनिवार्य है।' ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषियों ने 'कर्म' को अत्यधिक महत्व दिया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने देवताओं के लिए भी कर्म द्वारा ही उच्च पद पर प्रतिष्ठित होने की बात कही है। 'इन्द्र' के विषय में कहा गया है-

यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतोऽभूत-ऋग्वेद ३/३६/१

ऋग्वेद में 'सुकर्म', 'अकर्म' दोनों के लिए 'कर्म' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। कतिपय स्थलों पर 'कर्म' के अर्थ में 'क्रतु' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। यह क्रतु शब्द 'यज्ञ' का वाचक माना गया है। ऋग्वेद में कर्म न करने वाले (अकर्मण्य) की निन्दा तथा दुष्कर्म करने वाले के प्रति घृणा का भाव व्यक्त किया गया है। एक मन्त्र में अग्नि देवता को सम्बोधित करते हुए ऋषि कहता है-

"त्वं तं देव जिह्वया परिबाधस्व दुष्कृतम् मर्ता यो नो जिघांसति। (ऋग्वेद ६/१६/२)

अर्थात् हे देव, उस दुष्कृत को अपनी जिह्वा (लपटों) द्वारा हमसे दूरकर दो मरणधर्मा हमें मारना चाहता है।

ऋग्वेद यह निर्देश देता है कि अच्छे कर्म (सुकृत) ही लोककल्याण का आधार होते हैं। पुण्य कर्म (सुकृत) करने से मनुष्य समृद्धि लाभ करता है, देवता उसे अन्न, वस्त्र, धन तथा उत्तम सन्तानादि प्रदान करते हैं। कर्मफल की प्राप्ति के विषय में ऋग्वेद की यह मान्यता है कि उनकी प्राप्ति इहलोक अथवा परलोक में अवश्यम्भावी है।

आथर्वणिक मधुविद्या

डॉ० दीनदयाल वेदालंकार
धर्मशास्त्र वैदिक कर्मकाण्ड एवं
ज्योतिष विभाग, गुरुकुल कांगड़ी वि0वि0, हरिद्वार

अथर्ववेद अनेक प्रकार की विद्याओं का आगार है। इसमें अध्यात्म विद्या से लेकर सामाजिक प्राणियों की सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करने से सम्बन्धित सब तरह की विद्याओं का प्रकाशन है। इस लेख में मधु विद्या नामक अन्यतम दृष्टिकोण वाली विद्या का प्रतिपादन अभीष्ट है।

अथर्ववेदीय प्रथमकाण्डस्थ चौंतीसवाँ सूक्त मुख्यरूप से इस विद्या को प्रकट करता है। इस सूक्त के ऋषि अथर्वा हैं तथा देवता मधुवल्ली है। इस सूक्त के ऋषि ने सम्भवतः मुधवल्ली पर अपनी चिन्तना दृष्टि केन्द्रित कर के यह ज्ञान प्राप्त किया है।

मधुविद्या का उपदेश जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुख शान्ति लाने में पूर्ण समर्थ है। इस विद्या की मूल दृष्टि जगत् को मधुमय व प्रीतियुक्त दृष्टि से देखने जानने एवं व्यवहार में लाने से अभिप्रेत है। इस विद्या से सम्बन्धित अनेक मंत्र अन्य वेदों में भी उपलब्ध होते हैं।

वास्तव में मधुविद्या हमारे जीवन को ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार को मधुमय करने में समर्थ है। जो इस विद्या को जीवन में लाने वाले स्वयं मधुरयुक्त होकर, मधुरता का संग्रह कर्ता होकर मधुर लोकों को जीत लेता है।

मधुमान्भवति मधुमदस्याहार्यं भवति।
मधुमतो लोकान्जयति य एवं वेद।। अथर्ववेद ९/१/२३

वैदिक वाङ्मय में संगीतिक वाद्यों का चिन्तन

डॉ० निशा पाठक
प्रवक्ता संगीत (वादन)
कानपुर विद्या मंदिर महिला (पी0जी0) कॉलेज, कानपुर

वैदिक काल में गीत वाद्य तथा नृत्य संगीत की तीनों विधाओं का प्रचलन था। ऋग्वेद के शाखायन ब्राह्मण के अनुसार इन तीनों शिल्पों का प्रयोग प्रायः अभिन्न साहचर्य के रूप में प्राप्त होता है - ''त्रिवृद्धैः शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति''। किन्तु वैदिक युगीन संगीत में जितना विकास और महत्व गान विधा के अन्तर्गत सामगान को मिला उतना वाद्यों को नहीं। सामगान की परंपरा

बड़ी विशाल थी। यजुर्वेद की तैन्तिरीय संहिता में कहा गया है "अयज्ञोवा एष: योऽसामा"। ऐसा प्रतीत होता है कि वाद्यों का प्रयोग सामगान की संगति के लिए ही होता था। वाद्यों से सम्बन्धित जो कुछ सामग्री हमें वैदिक वाङ्मय से प्राप्त होती है उसके आधार पर उस काल के वाद्यों की तुलनात्मक स्थिति के अध्ययन का प्रयास करेंगे।

संगीतात्मक ध्वनि एवं गति को प्रकट करने के उपकरण को वाद्य कहा जाता है। इस दृष्टि से प्राचीन काल में मानव कंठ भी वाद्य माना गया है किन्तु यहाँ हम मनुष्य निर्मित वैदिक कालीन चतुर्विध वाद्यों तत्, सुषिर, धन और अवनद्ध वाद्यों की चर्चा करेंगे। चतुर्विध वाद्यों में आकाश तत्व प्रधान तत् वाद्य, वायु तत्व प्रधान सुषिर वाद्य, जल तत्व प्रधान अवनद्ध वाद्य और पृथ्वी तत्व प्रधान धन वाद्य माना गया है। इनमें तत् और सुषिर वाद्य मुख्यत: स्वर वाद्य तथा अवनद्ध एवं धन वाद्य लय ताल वाद्य है।

तार द्वारा स्वरोत्पत्ति वाले वाद्यों (तत् वाद्यों) में वीणा वाद्य का विशेष महत्व था। ऋग्वेद में वीणा शब्द का प्रयोग नहीं मिलता किन्तु इसी अर्थ में शततंत्री 'बाण' का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ "धमन्तो वाणं मरुत: सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे" (ऋ0 1/85/10)। आपस्तंब श्रौत सूत्र में 'बाण' वाद्य की संपूर्ण रचना तथा आकार प्रकार का उल्लेख है "औदुम्बरस्य वीणादण्डस्य दशदशातिमतिथान्येकैकस्मिन्नति मथिते मौजान्स्तन्तून्प्रवयन्ति स: वाण: शततन्तु:"। यजु: संहिता में सर्व प्रथम वीणा शब्द का प्रयोग हुआ तथा ब्राह्मण उपनिषद् तथा सूत्रकाल तक वीणा के विशिष्ट प्रकारों का उल्लेख हुआ है। सूत्र वाङ्मय के अनुसार यजमान की पत्नियां उपगान के साथ विविध वीणाओं के द्वारा "उपवादन" भी किया करती थीं। हिरण्यकेशीश्रौतसूत्र (16/6 21) के अनुसार "उपगायन्ति पत्न्योऽपाघाटलिका स्तालुकवीणा: काण्डवीणा पिच्छोला अलावु कपिशीष्णींति"। बौधायन सूत्र (16/21) के अनुसार "आघाटीभि: पिच्छोलाभि: कर्कटीकाभिरित्युदातारं पत्न्य: पर्युपविशन्ति"। सभी तत् वाद्यों में स्वरोत्पत्ति का एक ही सिद्धान्त होता था, प्रत्येक स्वर के लिए तार की व्यवस्था। वीणाओं के भिन्न भिन्न नाम उनकी बाह्य आकृति तथा तार वाद्यों की संख्या पर निर्भर थी तथा स्वरोत्पत्ति की प्रक्रिया में तारों को उंगलियों से, नखों से अथवा कोण से बजाया जाता था।

अवनद्ध (चर्मआच्छादित) वाद्यों में दुन्दभि एवं भूमिदुन्दुभि का सामगान में ताल संगति के लिए विशेष महत्व था। दुन्दुभि अपनी ध्वनि मात्र से विपक्षी को पराजित करती थी ऐसा भाव ऋग्वेद के मंत्रों में पाया

"स दुन्दुभे सूजरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून। ऋ. ०६ /४७/२९

इसी प्रकार दुन्दमि का घोष समस्त दिशाओं में परिव्याप्त होने की बात अथर्ववेद में उल्लिखित है

"ज्याघोषा दुन्दुभयोऽभिक्रोशन्तु या दिश:" (अथर्व० ५/२१/९)।

भू-प्रष्ठ पर बनाई गई दुन्दुभि के लिए भूमि दुन्दुभि संज्ञा है। भाष्यकार भट्ट भाष्कर के शब्दों में ''चर्मण आच्छादितमुखं भूगर्भम्''। यजुर्वेद के सूत्रवाङ्मय में इसकी निर्माण विधि सविस्तार उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त आडम्बर, गर्गर, द्रव्य, केतुमत, विश्वगोत्य नामक अवनद्ध वाद्यों का भी जगह जगह उल्लेख मिलता है।

घन (आघात वाले) वर्ग के वाद्यों के संबंध में कोई उल्लेख वेदों में नहीं मिलता। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय धन वाद्यों का प्रचार केवल जन जीवन तक ही सीमित रहा होगा।

वैदिक युगीन सुषिर (छिद्र वाले) वाद्यों में नाली (नाड़ी), बाकुर, तूणव, वाणिची, वेणु, वंश, माराधुनी आदि के नाम वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद (10/135/7) में नाड़ी (नाली) नामक वाद्य का उल्लेख मिलता है जिस पर सायण का भाष्य इस प्रकार है इयं नाली: वाद्यविशेषो वेणुः धम्यते वाद्यते।'' धम्यते का अर्थ है इसे फूँक कर बजाया जाता है। वैदिक स्वर (यम) क्रमशः क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य थे इनका क्रम अवरोही था। यह अवरोही क्रम संभवतया वेणु की संगति के कारण आया। सामगान के समय वेणु ही ऐसा वाद्य था जिसके स्वर स्थिर थे अतएव उसी से वीणा मिलाई जाती थी तथा उसी को आधार मानकर यह स्वर क्रम स्वीकार कर लिया गया।

वैदिक साहित्य में वर्णित व्यवस्था एवं गतिशीलता

डॉ० रवि प्रकाश
वरिष्ठ प्रवक्ता, समाज शास्त्र विभाग
राजकीय स्ना0महाविद्यालय, ऋषिकेश

पाश्चात्य समाज व्यवस्था के अन्तर्गत दो बड़े प्रतिमान वैयक्तिक स्वातंत्र्यवाद व कम्यूनिज्म प्रचलित हैं, परन्तु भारतीय सामाजिक संगठन एवं सामाजिक व्यवस्था, पाश्चात्य समाज से बिल्कुल भिन्न है जिसका विवेचन पाश्चात्य प्रतिमानों के आधार पर नहीं किया जा सकता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था विशुद्ध रूप से वैदिक साहित्य पर आधारित है। जिसकी प्रमुख विशेषता में वर्ण व्यवस्था, कर्म का सिद्धांत, आश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार, धर्म की प्रधानता, पुरुषार्थ एवं अध्यात्म की प्रधानता सम्मिलित है।

भारतीय सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था में लोक कल्याण, मानवीय गुणों के विकास एवं समन्वय की भावना को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। ऋग्वैदिक काल से ही सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई के रूप में संयुक्त परिवार को स्वीकार किया गया। व्यक्ति के जीवन की

रचना इस प्रकार की गयी कि व्यक्ति व समाज में अन्योन्याश्रितता या पूरकता का भाव विकसित हो। पुरुषार्थ के अन्तर्गत मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य बताते हुए धर्म, अर्थ एवं काम की चर्चा इसके साधनों के रूप में की गई है। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था एवं संगठन को बनाये रखने के लिए समाज का प्रकार्यात्मक आधार पर चार वर्गों में विभाजन किया गया। ऋग्वेद के दशम मंडल के पुरुष सूक्त के अनुसार

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यःकृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्याम् शूद्रोऽजायत॥ ऋ०१०.९०.१२

अर्थात् चारों वर्ण विराट् पुरुष रूपी परमात्मा के शरीर के विभिन्न अंगों के समान हैं। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग अपने-अपने कार्यों का संपादन करते हुए एक शरीर का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत चारों वर्ण एक ही सामाजिक संगठन का निर्माण करते हैं।

ऋग्वेद में अङ्गिरस्

डॉ० किरण कुमारी
बरेली

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। वेदों की दृढ़ आधारशिला पर ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विशाल भवन आधारित है। वेद परमात्मा के निःश्वास से उद्भुत होने के कारण प्रमाण है। वेदों का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय देवता है। वेदों के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए वैदिक देवताओं को समझना नितान्त आवश्यक है। हिन्दू धर्म की नींव भी इन्हीं देवताओं के प्रति आस्था पर आधारित है।

वैदिक काल में मुख्यतः तीन प्रकार के देवों की स्तुतियाँ की गयी हैं प्रथम वे देव हैं जिनकी स्तुति एकलरूप में की गयी है, यथा-इन्द्र, अग्नि, मरुत्, रुद्रादि। द्वितीय वे देव हैं जिनकी युग्म रूप में उपासना की गयी है, यथा-इन्द्राग्नि, मित्रावरुण, अग्निमरुत् आदि। इनके अतिरिक्त कुछ देवताओं की स्तुति समूह रूप में की गयी है, जिनमें अंगिरस अपने वैशिष्ट्य के कारण अप्रतिम स्थान रखते हैं। अङ्गिरसादि पुरोहित के रूप में भी स्तुत हैं। कुछ विद्वानों ने इन्हें अर्द्धपौराणिक देव की श्रेणी में रखा है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के बासठवें सूक्त में अङ्गिरसों की एक समूह के रूप में प्रशस्ति है।

अङ्गिरसादि आकाश के पुत्र हैं। एक अङ्गिरस् को अन्य सभी अङ्गिरसों का पूर्वज मानकर

इन्हें अङ्गिरस् पुत्र की संज्ञा दी गयी है। सम्भवत: यही कारण है कि ऋषियों ने इन्हें 'हमारे पूर्व पिता' कहकर सम्बोधित किया है। ऋग्वेद में अङ्गिरसों के देव, ऋषि और पितृ आदि विविध स्वरूप के दर्शन होते हैं। अङ्गिरसों को देवोचित गुणों से युक्त करते हुए मुख्यत: इन्द्र, अग्नि, यम, बृहस्पति आदि देवों के साथ सम्बद्ध किया गया है। ऋषि रूप में अङ्गिरा विभिन्न यज्ञों का सम्पादन कर देवो को हर्षित करते हुए उनकी मित्रता प्राप्त करते हैं। पितरों के रूप में उन्हें अथर्वन्, भृगु, नवग्ना, दशग्वा आदि के साथ विशेषत: सम्बद्ध किया गया है। ऋग्वेदानुक्रमणी में प्राप्त परम्परानुसार अङ्गिरसों को निश्चित रूप में एक पुरोहित परिवार का सदस्य माना गया होगा क्योंकि नवम मण्डल के सृजन का श्रेय इसी परिवार के सदस्यों को दिया गया है। अङ्गिरसों को मुख्यत: देवताओं और मनुष्यों के बीच स्थित उच्चतर जाति माना जा सकता है जो उस अग्नि के सेवक थे जिन्हें आकाश और पृथिवी के बीच का दूत कहा गया है।

इन्हीं अङ्गिरस् के स्वरूप, विकास एवं महत्व को ऋग्वैदिक दृष्टि से प्रस्तुत करने की योजना मेरे इस शोध पत्र का विषय है।

वेदों में वेदमाता गायत्री मंत्र एवं गायत्री छन्द का माहात्म्य

डॉ० शील निगम
रीडर संस्कृत विभाग
डी.जी. कालेज, कानपुर

वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान के चार भेद हैं ऋक् यजु:, साम और अथर्व। वेद ऋषियों के तप:पूत अनुभूति के प्रकाश पुंज हैं। किसी भी प्राणी की सूक्ष्म एवं स्थूल, आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि उसकी समस्त चेतना इन्हीं चार क्षेत्रों के अन्तर्गत प्रवाहित हो रही है। 1. ऋक् कल्याण माधुर्य 2. यजु: पौरुष या मोक्ष 3. साम मनोरंजन, संगीत 4. अथर्व धन संग्रह कहा जाता है। ब्रह्मा को चतुर्मुख इसीलिये कहा जाता है कि वे चार प्रकार की ज्ञान धाराओं का निष्क्रमण कर रहे हैं।

सृष्टि उत्पन्न करने का विचार आते ही ब्रह्मा में एक स्फुरणा उत्पन्न हुई जिसका नाम शक्ति है। शक्ति के द्वारा दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई, एक जड़ दूसरी चैतन्य, सृष्टि का संचालन करने वली शक्ति सावित्री अथवा गायत्री है। यह चारों प्रकार के ज्ञान अथवा चारों वेद उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं जिसे शास्त्रकारों ने गायत्री नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार चारों वेदों की माता होने के कारण इन्हें वेदमाता गायत्री के नाम से अभिहित

किया जाता है। ज्ञान विज्ञान का मूल स्रोत होने के कारण ही गायत्री वेदमाता कहलाई। वेदों में निहित समस्त ज्ञान बीज रूप में गायत्री में ही निहित है। सद्बुद्धि की प्रेरक होने के कारण गायत्री महाशक्ति को ऋतम्भरा प्रज्ञा भी कहा जाता है। विवेक और श्रद्धा का संगम ऋतम्भरा तथा विवेक श्रद्धा से युक्त प्रज्ञा, तथा सम्यक्, विचारभाव से युक्त दिव्य प्रवाह ही युगशक्ति गायत्री है।

सामी देवताओं में वैदिक इळः

डॉ० असहाब अली
संस्कृत विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर वि0वि0, गोरखपुर

ईश्वर ने इस विश्व की संरचना की और इसको अगणित चराचर की संगमस्थली बनाया। असंख्य सजीव प्राणि समूह में मानव सर्वोत्तम प्राणी (अशरफुलमखलूकात) है। मानव का अन्य प्राणियों से विभेदक तत्वों में धर्म सर्वोपरि है। मानव ने विकास द्वारा न तो वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया और न ही भाषा एवं धर्मकर्म को अपितु ईश्वर ने प्रथम मानव को इसी आकार प्रकार, सुसंस्कृत भाषा, धर्म-कर्म एवं सदाचार युक्त ही उत्पन्न किया। संसार के अन्याय भूभागों में ईश्वर ने धर्म प्रतिष्ठा के निमित्त अनेक ऋषि, अवतार, देवदूत, नबी एवं रसूल भेजे। ईश्वर द्वारा प्रेषित ऐसे पुरुषोत्तम, मानव समुदाय को धर्म, आचार-विचार एवं सन्मार्ग की शिक्षा देते थे। यह संसार का कर्ता एक ही ईश्वर है, इसलिये संसार के अन्याय धर्मों में समानतायें प्राप्त होना आश्चर्य की बात नहीं।

भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत से ग्रेट ब्रिटेन तक बोली जाने वाली भाषायें (भारोपीय) एक मूल की हैं। अत: इस भाषा क्षेत्र में पल्लवित धर्मों में तात्विक समानतायें प्राप्त होना अवश्यंभावी है। इसीलिये वैदिक देवता द्यौस् ग्रीक में ज्यूस के रूप में प्राप्त होते हैं। वैदिक वरूण अवेस्ता में अहुर हैं और वैदिक देवता मित्र, अवेस्ता में मिथ्र। वैदिक आदित्यों की परम्परा में अवेस्ता और बेविलोनियां तक ही नहीं अपितु यहूदियों और इस्लाम में भी प्राप्त होता है। एशिया के मध्य पूर्व भाग में सामी धर्मों का क्रीड़ा स्थली है जिसमें ईराक से पश्चिम का सारा प्रदेश आता है। उनमें प्राचीन बेविलोनिया का धर्म, भूमध्य सागर के तट पर फिनिशियों का धर्म, यहूदी एवं इस्लाम धर्म आदि आते हैं। इस क्षेत्र की भाषा परिवार भी सामी है और भारोपीय से अलग। इन क्षेत्रों में वैदिक इलः की उपस्थिति आश्चर्यजनक लगती है।

ऋग्वेद में इळः पद आप्री सूक्तों के अतिरिक्त नौ बार प्रयुक्त है। इसकी व्युत्पत्ति ईड् स्तुतौ से है। अत: इळः का अर्थ पूज्य स्तुति के योग्य है। इस पद का प्रयोग प्राय: अग्नि के ही स्तुतिपरक मंत्रों में है। केवल एक बार पूषा के और एक बार आप: के विशेषणके रूप में प्रयुक्त

है। वैदिक देव मण्डल में इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखलाई देता। परन्तु प्राचीन बेबीलोनियन धर्म के अनेक देवताओं में ईलू (अना) महान् देवता था जो इळः का ही प्रतिरूप है। लगभग दूसरी सहस्राब्दी ई0पू0 बेबिलोनिया के उर नगर के निवासी अब्राहम इब्राहीम अलै. ने इसी महानतम देव की पूजा की ओर लोगों को उन्मुख किया। फिनिशियों में भी इळः देवता की उपस्थिति मिलती है। यहाँ यह एल के रूप में प्रयुक्त है। एल-बारिक, एलहनान, एल रोम आदि प्रयोग इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार यहूदियों ने इस देवता इळः (ईलू) को अपने आदि पूर्वज इब्राहिम अलै0 से ही प्राप्त किया और उसको सर्वोच्च सत्ता (इलोहिम) के रूप में ग्रहण किया। यह इळः आगे बढ़कर अरब-भूभाग में अल्लाह के रूप में (अल् इळः) परिवर्तित हो गया। इस प्रकार वैदिक इळः को हम अनेक सामी धर्मों में प्रतिष्ठित पाते हैं।

वृद्धों व नयी पीढ़ी के मध्य समायोजन में वेदों की प्रासंगिकता

अखिलेश कुमार शुक्ल
वरि0 प्रवक्ता
राज0 स्नात0 महाविद्यालय, कोटद्वार

19 वीं शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी औद्योगिक क्रान्ति यह क्रान्ति मुख्य रूप से आर्थिक जगत् के उत्पादन के तौर-तरीकों के बदलाव से जुड़ी हुई थी। 'लेकिन इस क्रान्ति के दूरगामी प्रभाव हमें सामाजिक जगत् के हर पहलू पर दिखाई दिये। संक्षेप में, औद्योगिक क्रान्ति से तत्कालीन समाज का सामाजिक रूपान्तरण हो गया। सरल सैनिक समाजों की जगह पर जटिल औद्योगिक राष्ट्र राज्यों का उद्भव हुआ।

ऐसा ही कुछ 20 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक व 21 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भी हुआ है। कम्प्यूटर जनित सूचना प्रौद्योगिकी की क्रान्ति ने वर्तमान समाज के रूपान्तरण की प्रक्रिया से अब समाज में सच्चेतना (awearness) का स्तर बढ़ा है। इस संचेतना से वृद्धों के ऊपर पड़े सामाजिक प्रभावों को जानना सामयिक है। वृद्ध किसी भी समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दुनिया के हर समाज में वृद्धों से जुड़े कुछ मूल्य होते हैं। उन्हें भी सामाजिक परिस्थिति में कोई न कोई स्थान दिया जाता है। भारतीय संस्कृति जीवेम शरदः शतम् की आवधारणा पर आधारित है। इस अवधारणा का मूर्त रूप हमें आश्रम चतुष्टय में दिखाई पड़ता है। जहाँ पर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ संन्यास, आश्रम की परिकल्पना की गयी है, अर्थात् हर आयु वर्ग के लिये प्रस्थिति और भूमिका का निर्धारण किया गया है। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम 50 वर्ष से ऊपर की अवस्था में व्यक्ति की प्रस्थिति और भूमिका को निर्धारित करते हैं।

वेदाङ्ग साहित्ये विविधा: विद्या:

अनीता विश्वकर्मा
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक साहित्य का यह विभाग वेदों से घनिष्ठ संबंध रखने के कारण ही वेदाङ्ग कहलाता हैं। मंत्र संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद कहा जाता है और उनके अध्ययन सहायक शास्त्र शिक्षा, निरुक्त, कल्प, व्याकरण, छन्दस् और ज्योतिष को वेदाङ्ग कहा जाता है।

वेद का मूल पाठ अत्यंत पवित्र है। उसमें उच्चारण की शुद्धता बनी रहे, उसमें परिवर्तन न हो और वेद मंत्रों के अर्थ का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाये इसके लिए वेदाङ्ग साहित्य का अविर्भाव हुआ है।

१- **शिक्षा-**

वैदिक मंत्रों के शुद्धातिशुद्ध उच्चारण का ज्ञान शिक्षा के माध्यम से होता है। ध्वनि के आरोह अवरोह उच्चारण की शुद्धता , उच्चारण की कालावधि शिक्षा शास्त्र के मुख्य विषय है। वर्ण्य विषयों में वर्ण, स्वर मात्रा, बल, साम, संतान में छ: विषय भी शिक्षा के ही अंग हैं।

२. **कल्पसूत्र या सूत्रग्रंथ - 'कल्पो वेद विहितानां कर्माणामनुपूर्व्येण कल्पना शास्त्र'** अर्थात् कल्प वेद प्रतिपादित कर्मो का भली -भांति विचार प्रस्तुत करने वाला शास्त्र है। **"कल्पयन्ते समर्थ्यन्ते यज्ञ यागादि प्रयोगाः यत्र इतिकल्पः"** इसके पवित्र भाग हैं- क. श्रौत सूत्र, ख. धर्म सूत्र, ग. गृह्य सूत्र, घ. शुल्वसूत्र।

वेदों में अहिंसा का स्वरूप

श्रीमती राजलक्ष्मी
बागपत

अनन्ता वै वेदा:। अर्थात् वेद अनन्त ज्ञान राशि है। सभी सत्य विद्याओं का मूल है। वेद जहाँ तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान कराते हैं, वही कर्म और उपासना के उपदेश से मनुष्य को उसके परम लक्ष्य मुक्ति तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्य:पन्था विद्यतेऽयनाय:। यजु0 ।। के अनुसार उस परमपुरुष के सम्यक् ज्ञान से ही मनुष्य मृत्यु का अतिक्रमण करता है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। वेद के इस सूत्र को दृष्टिगत करके महर्षि पतञ्जलि ने अष्टांग योग अर्थात् पुरुष विशेष के साक्षाम्कार का विशद वर्णन योगदर्शन में किया गया है। अष्टांग योग विद्या के प्रथम अंग 'यम' और वहाँ भी मात्र अहिंसा पर ही यदि विचार करें तो वेदों में अहिंसा के स्वरूप पर पर्याप्त वर्णन मिलता है। जब मनुष्य काम, क्रोध लोभ, मोह,

ईर्ष्या द्वेष, अहंकार आदि विविध दोषों के वशीभूत होकर अन्य प्राणियों को कष्ट देता है तो वह हिंसा कहलाती है। जबकि अंहिसा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोह: (व्यास) सब प्रकार से, सदैव सभी प्राणियों से वैर त्याग देना अहिंसा कहलाता है।

वेद मनुष्य को अहिंसा का उपदेश देता हुआ कहता है ''मा स्रेधत सोमिन: न स्रेधन्तं रयिनर्शत् अर्थात् किसी की हिंसा मत करो, क्योंकि हिंसा वृत्ति वाला व्यक्ति कभी भी मोक्ष रूपी अनुपम सम्पदा को प्राप्त नहीं कर सकता। वेद जहाँ हिंसा का निषेध करते हैं, वहीं दुष्टों को दण्ड देने का विधानं करते हैं। वेद मंत्र कहता है यदि नो गां हिसि ....। यदि कोई गौ, अश्व या प्रिय पुरुष को मारता है तो उसे सीसे की गोली से बींध देना चाहिए। वेद में दुष्टों के लिए दण्ड का विधान अहिंसा के परमोत्तम सिद्धान्त की रक्षा के लिए है। इसलिए वेद में शत्रुनाशक पुरुषों को मित्र सखा कहा गया है।

वैदिक देवता मरुत् एवं वैश्विक प्रभाव

क्षमा शुक्ला
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वेद भारतीय संस्कृति के मूल हैं। हमारी सम्पूर्ण सांस्कृतिक परम्परायें इन्हीं चारों वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) पर आधारित हैं। इन वेदों में वर्णित देवताओं का भी हमारे वर्तमान जीवन में उतना ही महत्त्व है जितना कि वैदिक काल में था मरुत् एक महत्त्वपूर्ण देवता हैं। मरुत् देवता का जितना महत्त्व वैदिक दृष्टि से है उतना ही सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भी है। न केवल वर्तमान अपितु भविष्य में भी मरुत् देवता के बिना मानव जीवन की कल्पना असंभव है।

मरुत देव गण हैं। वेदों में इनकी संख्या 49 बतायी गयी है। मरुत्गण अन्तरिक्ष स्थानीय देवता कहे जाते हैं। मरुत् से तात्पर्य है – आँधी तूफान करने वाली वायु। ऋग्वेद में मरुतों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे अग्नि, इन्द्र, सोम के पश्चात् सर्वाधिक वरेण्य देव हैं। मरुत् स्वयं किसी से द्रोह नहीं करते तथा सभी विशाल स्थानों को जानते हैं। ये बलवान होने के कारण अजेय हैं। बड़े उग्र, शूरवीर और तेजस्वी होने के कारण सूर्य के समान चमकते रहते हैं। अथर्ववेद में मरुत् से प्रार्थना की गयी है कि वे यज्ञ में याजकों को सुख-सौविध्य प्रदान करें। वे स्तोता का अपमान करने वालों और याज्ञिक कार्यों की निन्दा करने वालों को अपने तापकारी वस्त्रों से बाधित करते हैं। उनकी सहचरी द्यौ भी ब्रह्मद्वेषियों को तपाती है। अन्य देवों के साहचर्य में वे तृषापीड़ित रोगी को प्राणदान करते एवं ऊज (बल) भी प्रदान करते हैं। वे उग्र हैं और कठिन संग्राम में अपने लोगों का साथ देते हैं तथा उनके शत्रुओं को पराजित एवं मर्दित करते हैं। इस कार्य में इन्द्र, मरुत् और अग्नि मिलकर सक्रिय होते हैं। यदि इन्द्र सेना को मोहित करते हैं तो मरुत् उन पर ओज से प्रहार

करते हैं और अग्नि उनके नेत्र हर लेती है।

वर्तमान काल में मरुत् देवता मात्र वैदिक देवता न रहकर मानव के प्रत्येक कार्यकलाप को प्रभावित करते हुये उनके दैनिक जीवन का अंग बने हुये हैं। मरुत् देवता भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व में महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। इस दृष्टि से वह पर्यावरण, वर्षा, जलवायु आदि को प्रभावित करते हुये विश्व के कण-कण में व्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त औषधि के रूप में तथा प्राण वायु आक्सीजन भी मरुत् देवता का प्रतिरूप है जिसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना असम्भव है। इस प्रकार वैदिक देवता मरुत् की भौगोलिक व मानवीय महत्ता को दिखाने का यहाँ पर एक प्रयास किया जा रहा है।

वैदिक वाङ्मय में 'संहिता' शब्द का अभिप्राय एवं संहिताओं का विभाजन

सुरुचि पारीक
शोध-छात्रा
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली

'संहिता' शब्द का अर्थ हैं संघ, संयोजन, संचय, सम्मिश्रण, संग्रह, समूह है। इसी के आधार पर ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इसके पारिभाषित अर्थ भी हैं। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' (प्रथम वल्ली, तृतीय अनुवाक) में भी 'संहिता' और 'महासंहिता' शब्दों का प्रयोग है जो सम्भवतः 'संधि' के अर्थ में है। वैदिक वाङ्मय में 'संहिता' शब्द क्रमबद्ध मन्त्र-पाठ के अर्थ में सामान्य रूप से व्यवहृत होता है।

एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि 'शाखा' और 'संहिता' शब्द भिन्नार्थक हैं। एक वेद की बहुत-सी शाखाएं होने पर भी उनकी मूल संहिता एक मानी जाती है। संहिताएँ कालान्तर में पाँच मानी गयी है।

1. ऋग्वेद संहिता
2. शुक्ल यजुर्वेद संहिता
3. कृष्ण यजुर्वेद संहिता
4. सामवेद संहिता
5. अथर्ववेद संहिता

वेदों की मिथकीय कथाओं का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

दीपमाला
शोध छात्रा
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऋषिकेश

हमारे देश की अमूल्य धारोहर, हमारी संस्कृति के जन्मदाता तथा हमारे दैनिक क्रिया कलापों की प्रेरणा, हमारे वेद ही हैं। सम्पूर्ण विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थों की संज्ञा हमारे वेदों को ही प्रदान की गयी है।

वेदों के भीतर असीम ज्ञान सागर प्रवाहमान है, क्योंकि वेदों को परमपिमा परमात्मा द्वारा रचित माना गया है। वेद कहीं पर हमें प्रकृति को ईश्वर स्वरूप मानकर आराधना की प्रेरणा देते हैं तो कहीं पर ईश्वर के अलौकिक स्वरूप की व्याख्या करते हैं। वेदों से जहां एक ओर अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है तो वहीं दूसरी ओर संगीत का सुरीला ज्ञान भी प्राप्त होता है।

भारत में मिथकीय परंपरा का शुभारम्भ भी 'ऋग्वेद' से ही माना गया है। वेदों के असीम ज्ञान से भारतीय साहित्य भी अछूता नहीं रहा है, वरन् समय-समय पर भारतीय साहित्यकारों ने वेदों से प्रेरित होकर अपने साहित्य की रचना की है। वेदों रचित मिथकीय कथाओं अथवा आख्यानों को ही साहित्यकारों ने अपनी रचना का मुख्य आधार बनाया है, इसमें सृष्टि उत्पत्ति का मिथक, मनु-श्रद्धा का मिथक तथा उर्वशी पुरूरवा का मिथक प्रचलित है।

अंत में हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर वेद मनुष्य के जीवन में प्रकाशपुंज का कार्य करते हैं तथा इनके नियमित अध्ययन तथा मार्ग दर्शन से व्यक्ति अपने जीवन को सार्थकता प्रदान कर सकता हैं इसलिए हमारे देश के श्रेष्ठ विद्वानों ने भी वेदों को ही सर्वोपरि माना है तथा वेदों की ओर अग्रसर होने का संदेश दिया है।

वेदों में जिन आख्यानो को दर्शाया गया है उन कथाओं तथा उनके हिन्दी साहित्य पर प्रभाव को मैं दर्शाना चाहूँगी। शोध पत्र के अन्तर्गत इस विषय का विस्तृत अध्ययन किया जायेगा।

वेद की अतुलनीय महिमा

शालिनी पाण्डेय
शोध छात्रा
गुरूकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार

वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रसाद जिस दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित है, वह वेद ही हैं। सम्पूर्ण धर्म कर्म का मूल तथा यथार्थ कर्तव्य धर्म की जिज्ञासा का समाधान वेद है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** धर्म जिज्ञासमानानां

प्रमाणं परमं श्रुतिः (मनु० २.६, १३) जैसे शास्त्रवचन इसी रहस्य का उद्घाटन करते हैं। वस्तुतः वेद शाश्वत यथार्थ ज्ञान राशि के समुच्चय हैं, जिसे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपने प्रातिभ चक्षु से देखा है- अनुभव किया है।

वेद स्वयं इनके बारे में कहता है- सत्यश्रुतः कवयः (ऋ0 5.57.8) अर्थात् ''दिव्य शाश्वत सत्य का श्रवण करने वाले द्रष्टा महापुरुष''।

इसी आधार पर वेदों को श्रुति कहा गया है। यदि श्रुति का भावात्मक अर्थ कहें, तो वह है स्वयं साक्षात्कार किये गए ज्ञान का भाण्डागार। समस्त धर्मों के मूल के रूप में माने जानेवाले देवसंस्कृति के रत्न वेद हमारे समक्ष ज्ञान के एक पवित्र कोष के रूप में आते हैं।

वैदिक संहिताओं में वर्णित आचार दर्शन की वर्तमान प्रासङ्गिता

डॉ० सुनीता केशरी

कानपुर

दर्शन का अर्थ है दृष्टि। यही दर्शन एक शास्त्र के रुप में भी लोक प्रिय है। दर्शन शास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक कार्य किसी न किसी कारण से अवश्य युक्त होता है। वैदिक संहिताओं में अनेक स्थानों पर आचार में प्रवृत्त होने के लिए अनेक निर्देश और परामर्श दिये गये हैं और प्रत्येक कार्य को सताय के साथ जोड़ कर, उस सदाचरण से जीवन में क्या लाभ हो सकते हैं। इसको स्पष्ट निर्देशित किया गया है।

वेदों में ऋत, सत्य, तप, सौमनस्य, सौहार्द, कल्याण की भावना, शुभ कर्मों को करने की प्रेरणा व अनिवार्यता, यश लाभ और सुख के लिये दान कीर अनिवार्यता पाप और दुष्कर्म की निन्दा, या और उपासना के द्वारा ऐहलैकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति पर बल दिया गया है।

वास्तव में वेद शिक्षायें उदात्त और महान हैं ये केवल आध्यात्मिक ज्ञान के ही स्त्रोत नहीं है अपितु जीवन के प्रत्येक अंग में सम्पूर्णता लाते हैं। इनके उपदेश हमें न केवल पतन के गर्त में गिरने से बचाते है अपितु उन्नति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी प्रदान करते हैं। वेद ज्ञान मानता है कि आचार क्षणिक सुख का हेतु उतना अधिक नहीं है जितना सम्पूर्ण जीवन को एक ठोस आधार देने का है।

वैदिक संहिताओं में वर्णित आचार दर्शन की झांकी नेत्र निमीलित करके देखा जाय तो हृदय आह्लादित हो उठता है। जिसका महत्त्व वर्तमान के भौतिक-वादी दुःख से युक्त समाज में सहज ही प्रासङ्गिक हो उठा है। जिससे एक बार फिर से उसी प्रकार का जन जीवन स्थापित हो, जिसमें भ्रष्टाचार व अनाचार को कोई भी स्थान न मिले और जिसमें सम्पूर्ण विश्व की एक घोसले के रूप में कल्पना हो।

वेदों में योग का स्वरूप

डॉ० रघुबीर वेदालंकार
संस्कृत विभाग- रामजस कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ० (श्रीमती) सुनीता
प्रोजेक्ट फैलो वेद
संस्कृत विभाग- रामजस कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

योग शब्द का शाब्दिक अर्थ है - दो वस्तुओं या तत्त्वों का जोड़ना। परन्तु दार्शनिक क्षेत्र में योग शब्द का अर्थ एकाग्र होना, समाहित होना आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना।

मन की प्रवत्तियों को संयम योग के लिए अनिवार्य है। योगाभ्यास तथा योग द्वारा प्राप्त विवेक ख्याति के लिए प्रार्थना की गई है कि परमात्मा की कृपा से हमें योग सिद्धि होकर विवेक ख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो और वहीं ईश्वर अणिमा आदि सिद्धियां हमारी तरफ आवें।[1] पतंजलि ने भी चित्तंवृतियों के निरोध को योग माना है।[2] धन के लोभ और भौतिक सुख शान्ति की चाह ने मानव जीवन को असंतुलित कर दिया है। ऐसे समय में योग का परम सन्तुलन का सेतु बन सकता है। क्योंकि प्रत्येक स्थिति में मानव जीवन में समत्व लाना ही योग का परम उद्देश्य है।[3] और समत्व ही स्वस्थ जीवन का आधार है। भारतीय दर्शनों का लक्ष्य प्राणियो को विविध दु:खों से छुटकारा दिलाना ही रहा।[4] योग द्वारा संसारिक संघर्षो से व्यस्थित मनुष्य अन्तर्मुखी होकर आत्मा के निकट बैठता है तो उसे आत्मिक शान्ति का अनुभव होता है। आत्मिक शान्ति हि जीवन का परम उद्देश्य है।

वेदों में योग का स्वरूप वर्णित करना ही प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य है।

1- साम0 301/201/31, अथर्व0 20/69/1/, ऋ0 1/5/3

2- योगश्चित्तवृत्ति निरोध:। पा0 यो0 सू0 1/2

3- सूत्वं योग उच्यते। गीता 2/48

4- दु:खत्रयाभिताज्जासातदभिघाके हेतै .....। सांख्यकारिका 10

‘ऋत’ का मानवजीवन में सार्वकालिक महत्त्व

डॉ० मन्जू त्रिपाठी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऋग्वेद में ‘ऋत’ शब्द की धारणा प्राप्त होती है। ‘ऋत’ शब्द ‘ऋ’ गतौ धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका मूल अर्थ है-

‘वह जो हो चुका है, अथवा जो अनन्त काल से अपने मार्ग में चलता रहा है। प्रकृति में सर्वत्र एक अखण्ड नियम व्याप्त है और उसका प्रत्येक कार्य एक क्रम एवं नियम के अनुसार होता है। ‘ऋत’ एक ऐसा नियम है जो स्वतः गतिमान और सर्वत्र वर्तमान है। उदाहरणार्थ-सूर्य का पूर्व दिशा में नियमित रूप से उदय होना और पश्चिम दिशा में अस्त होना ही शाश्वत नियम है। सम्पूर्ण प्रकृति पर इसका आधिपत्य है।

ऋग्वेद में ऋत के तीन क्षेत्र हैं सृष्टि व्यवस्था, याज्ञिक व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था। सृष्टि व्यवस्था के रूप में ऋत सृष्टि के निर्माण व संचालन का आधार है और उर्जा के निर्माण व संचालन का आधार है और उर्जा रूपान्तरण के लिए यज्ञ में ऋत् याज्ञिक व्यवस्था के रूप में विद्यमान् है। सृष्टि का एक अंग होने के कारण मानव का आचार व्यवहार भी ‘ऋत’ से नियमित और संचालित होता है।

ऋग्वेद की ऋचाओं के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ‘ऋत’ विश्व की शाश्वत नैतिक व्यवस्था है। उत्तम कर्म करने वाले ‘ऋत’ का ही अनुगमन करते हैं। ‘ऋत’ अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्ग से चलने के कारण उत्तम पुरुष प्रशंसा को प्राप्त करते हैं। ऋत इस बात को पोषित करता है कि उत्तम कर्म का उत्तम फल और निकृष्ट कर्म का निकृष्ट फल प्राप्त होता है। ‘ऋत’ समस्त भौतिक सुख एवं समृद्धियों का साधन है तथा इसके आचरण से विघ्न एवं दुःखों का नाश हो जाता है। मानव जीवन का निर्माण ‘ऋत’ के कारण ही सम्भव हो सका है। वैदिक ऋचाओं में नैतिकता के क्षेत्र में ‘वरूण’ की विशेष रूप से प्रतिष्ठा है, अतएव ‘अनृत’ से पार होने के लिए उनसे प्रार्थनायें भी उपलब्ध हैं।

वैदिक यज्ञों की वर्तमान में उपादेयता

डॉ० आशारानी पाण्डेय
रीडर संस्कृत विभाग
डी0एस0एन0 महाविद्यालय, उन्नाव

वेद संतृप्त और दुखी मानव जाति को कल्याण मार्ग बताने वाला प्रकाश स्तंम्भ है। आज हमारा वायुमण्डल पूर्ण रूपेण दूषित हो चुका है। बारूद, तेजस्वीपदार्थ तथा रेडियोधर्मी पदार्थ हवा में एकत्रित होकर सम्पूर्ण वायु मण्डल को दूषित किये हुए है। प्रत्येक दिन वायुमण्डल में हजारों टन खतरनाक गैसें एकत्रित हो रही हैं। इस सब से सूर्य के प्रकाश और उर्जा को क्षति पहुँच रही है जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत घातक है। हमारे तत्वदर्शी ऋषिगण सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक भी थे जिन्होंने सृष्टि की प्रत्येक क्रिया का वैज्ञानिक दृष्टि से पर्यवेक्षण किया। इन ऋषिगणों ने प्रकृति में निरन्तर सम्पद्यमान मानवकृत विकारों को दूर करने हेतु यज्ञ की स्थापना की तथा विकार की मात्रा को दृष्टिपथ में रखते हुए उन्होंने यज्ञ की मात्राओं को भी निश्चित कर लिया। फलत: दैनिक, पाक्षिक, मासिक, चार्तुमासिक, षणमासिक, वार्षिक इत्यादि यज्ञों का समायोजन कर लिया।

यज्ञ भारतीय संस्कृति का प्राण है। जिस कर्म से देहशुद्धि, मानसिकशुद्धि एवं अहंकारशुद्धि होती है तथा जिस कर्म फल का स्वार्थ नहीं परार्थ होता है, जिस कर्म से नया आवरण नहीं बनता प्रत्युत पहले के पर्यावरण में सुधार होता है वही यज्ञ होता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार "यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म"। इतना ही नही "अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि: कह कर यर्जुवेद भी यज्ञ की महत्ता को प्रतिष्ठिापित करता है।

यज्ञ मनुष्यों के न केवल बाह्य पर्यावरण को शुद्ध करते हैं , अपितु उनकी आन्तरिक शुद्धि भी किया करते हैं। जिसका सम्बद्ध उसके नैतिक आचरण से रहता है। मनुष्य के शरीर और अन्त: करण की शुद्धि, पवित्रता, निरोगता, आत्मबल की शुद्धि एवं पुष्टि भी यज्ञानुष्ठान से हुआ करती है। समाज में शान्ति सद्भाव और सुख की अभिवृद्धि में भी ये यज्ञ उपकारक हुआ करते हैं।

वैदिक विज्ञान की दृष्टि में "यज्ञ प्रक्रिया" सर्वथा वैज्ञानिक कर्म है। यज्ञ मानव अस्तित्व के संरक्षण तथा विश्व पर्यावरण सुरक्षा दोनों के लिये परामावश्यक है, किन्तु खेद है कि भारत वर्ष में जो इस विद्या का मूल उद्गमस्थल है, इस वैज्ञानिक प्रक्रिया की पूर्णतया उपेक्षा की जा रही है, जो "दीपक तले अंधेरा" वाली कहावत को पूर्णतया चरितार्थ कर हमारी यह दुर्दशा हो रही है अत: स्वर्ग-संपदाओं की अधिष्ठात्री अग्निहोत्र की परंपरा को पुन: प्रतिष्ठापित किया जाना चाहिए।

वेद की दृष्टि में-राष्ट्र-संकल्पना

डॉ० चन्द्रकान्त गर्जे
शिवाजी नगर, पुणे

वेद सृष्टि विद्या का दूसरा नाम है इन विद्याओं का अपरिमित विस्तार है। वेद विद्याओं का अपरिमित विस्तार मनुष्य जीवन के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने वाला है। मानवीय जीवन से सम्बन्धित धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सिद्धांतों और विश्वासों का आविर्भाव वेदों में देखने को मिलता है। इस दृष्टि से वेद भारतीय जीवन के मुक्त उत्स हैं।

सृष्टि के प्रारम्भ में, जब कभी मनुष्य हुआ, वह समय उसकी प्रथम अवस्था का रहा। कालचक्र की गति ने मनुष्य समूह में परिवर्तित कर दिया। मनुष्य परिवार, समूह से ग्राम, प्रान्त और राष्ट्र तक पहुँच गया। इसके बाद का क्रम है अनेक राष्ट्रों का संघ या विश्व संघटन। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** यह वैदिक चिन्तन है। यह प्रक्रिया क्षण में हुई, यह मानना कठिन है, आवश्यक समय जरूर लगा। समय के चक्र में ऋषियों का चिन्तन का क्रम भी विकसित हुआ यह निश्चित मात्र। अथर्ववेद की ऋचा कहती है

'भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुप निषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।। (अथर्व-११/५/१)

वैदिक आत्मज्ञानी ऋषिमुनियों ने मनुष्य जीवन के कल्याण के लिए अपने सम्मुख ध्येय को रखा, तप किया, दीक्षित हुए जिसके परिणाम स्वरूप राष्ट्र संकल्पना साकार हुई, जिसमें ओज, बल और प्राण है। 'राट' इस शब्द से राष्ट्र शब्द बना। ब्राह्मण संहिताओं में राष्ट्र संकल्पना अधिक स्पष्ट हुई है 'सार्वभौम 'राजा के अधीन जितनी भूमि है वह राष्ट्र कहलाता है (तैतरिय संहिता (7.5.12. 1)। उत्तम राष्ट्र की संकल्पना और अधिक स्पष्ट होती है इस सम्बन्ध में अथर्ववेद कहते हैं पृथिवी, जन, संस्कृति मिलकर राष्ट्र बनता है। तेज और बल राष्ट्र भावना को पुष्ट करते हैं। (अथर्व 12-3-10)

राजधर्म का स्वरूप - अथर्ववेद के आधार पर

डॉ० रमा शर्मा
वरि0 हिन्दी अनुवादक
श्रेत्रीय अनुसन्धान प्रयोगशाला, जम्मू

भारतीय संस्कृति में राजा की शक्ति, राजा के कर्तव्य का निर्देश करने में तत्परता देखी जाती है। 'राजा शब्द' प्रजा का अनुरंजन करने वाला राजा होता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि राज शब्द की सार्थकता या उपयोगिता उसी राज की है जिसका प्रजानुरंजक रूप होता है प्रजा के प्रति राजा की और राजा के प्रति प्रजा की अनुरक्ति स्वभाविक है। प्रजा को संतानवत देखने की

मान्यता भारतीय संस्कृति में सर्वोपरि रही है। मौर्य राजा अशोक के अभिलेखों में सर्वत्र प्रजा के प्रति वात्सल्य भाव ठीक उसी प्रकार दिखाया गया है जैसाकि किसी पिता का अपनी संतान के प्रति रहता है। वैदिक साहित्य, धर्म शास्त्र, नीतिशास्त्र सभी राजा के अधिकार की चर्चा करने से पूर्व उसके प्रजा के प्रति कर्तव्यपरायणता के निर्देश में प्रमुख रूपेण वाचाल हुए है। चारों वेद राजा के कर्तव्य को राजधर्म के रूप में स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। अथर्ववेद में राजधर्म से संबद्ध सामग्री प्रचुररूपेण उपलब्ध होती है।

वेदों का ज्ञानरूपी प्रकाश मनुष्य को अपनी बुद्धि द्वारा सत्य असत्य, कर्तव्य अकर्तव्य के ज्ञान से सुखमय बनाता है। राज्य की शासनव्यवस्था, सैन्य संचालन तथा न्याय व्यवस्था वेदवित् ही कर सकता है। 'सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति।' (मनुस्मृति 10/17) अथर्ववेद, राजधर्म को इस प्रकार इंगित करता है।

अग्नि के समान तेजस्वी राजा दुःखमयी चापलूसों, डाकुओं और चोरों को अधीन करता है। शत्रु उसके प्रताप की प्रशंसा करते है।

प्रतापी राजा प्रजा का दिया हुआ 'कर' लेकर दुष्टों को दण्ड देता है, उससे प्रजा सदा आनंदयुक्त रहती है।

अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान वेगवान् महाप्रतापी राजा से दुःखदायी, स्वार्थी, चापलूस लोग अपने किए गए कर्मों का दण्ड पाकर विलाप करते हैं तब राज्य में शांति आती है।

जब अग्नि के समान तेजस्वी और वायु (इन्द्र) के समान वेदवान् महाप्रतापी राजा उपद्रवियों को पकड़ता है और देश से निकालता है तब उपद्रवी लोग उसके शरणागत होते हैं।

राजा को चाहिए के अपने राज्य में विद्या का प्रचार करे, सब प्रजा पर दृष्टि रखे। उपद्रवियों को सदा अधीन रखे ताकि वे लोग उसकी आज्ञा को सर्वदा मानते रहें।

वेदों में पर्यावरण चिन्तन

तारादत्त अवस्थी

प्रवक्ता, साहित्य

ऋषि संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

वेद ज्ञान की दिव्य ज्योति हैं, जहां से विविध विद्याओं की निर्झरणी प्रवाहित होती हैं वेदों में पर्यावरण चिन्तन की अजस्र धारा परिलक्षित होती है। मानव इतिहास की प्रथम संस्कृति वैदिक संस्कृति ने पर्यावरण उन्नयन को अपने विकास का आधार बनाया है। वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पर्यावरण संरक्षण के लिए हमारे ऋषि मुनि सर्वदा चिन्तनशील रहे हैं।

पर्यावरण संरक्षण हेतु सजग रहना मानव मात्र का सर्वोच्च दायित्व है। पर्यावरण का अर्थ है

चारों ओर से आच्छादन करता। पर्यावरण एक आवरण है जो जीव जगत को चारों ओर से आवृत किये रहता है। ''परित: आवृणोति जीव जगदिति पर्यावरणम्'' पृथ्वी,जल,वायु,तेज, आकाश आदि पर्यावरण के प्रमुख घटकों का आश्रय लेकर ही सभी प्राणी जीवित रहते हैं। अत: इन सबका संरक्षण संवर्द्धन अत्यन्त आवश्यक है।

आर्षज्ञान का यह संदेश अत्यंन्त महत्त्वपूर्ण एवं मानवजाति के लिये विचारणीय है–

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः॥

(अथर्व० १९/९/२)

अर्थात् मानव अपने कार्य इस प्रकार सम्पदित करे एवं नीति इस प्रकार निर्धारित करे कि जिससे पर्यावरण के भूतकालिक, वर्तमानकालिक और भविष्ककालिक रूप कल्याणप्रद हों। इन्हीं कल्याणप्रद शब्दरत्नों का समुल्लेख शोध पत्र में प्रस्तुत किया जयेगा।

ऋग्वेद का प्रथम ऋषि मधुच्छन्दा

कुलदीप शुक्ल
लखनऊ वि0 वि0, लखनऊ

भारत की पावन साहित्यिक परम्परा वेदों से ही प्रारम्भ होती है, आज वेद विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है। जो कि अक्षय ज्ञान का भण्डार है; तथा अनेक प्रकार के मंत्रों का संकलन है। इन मन्त्रों का आविष्कार करने वालो को मन्त्रदृष्टा कहते है भारतीय परम्परा के अनुसार ऋषिगण ही मन्त्रदृष्टा थे, इन ऋषियों को तप करते समय असन्तोष, भय, दुख, सुख और शोक के कारण देवेच्छा से मन्त्रों के दर्शन प्राप्त हुए। मन्त्रों में किसी न किसी देवता की स्तुति, प्रशंसा, संशय, निन्दा, स्पृहा, आशी:, परिवेदना, प्रश्न, याचना, दम्भ, प्रेष या प्रवह्निका मिलती है।

जब आप वेदों की शरण में जाते हैं, तो सर्व वेदों की उत्पत्ति के विषय में एक कौतूहल उत्पन्न होता है, कि कौन है वह? जिसने इस अक्षय ज्ञान राशि का निर्माण किया है। किसने इस पवित्र साहित्यिक परम्परा की भारत में नींव डाली? पूर्व में उक्त है कि 'वेद' में अग्रणीं 'ऋग्वेद' को खोलते ही, प्रथम सूक्त में जो ऋषि सामने आता है वह ही मन्त्रों का प्रथम दृष्टा है, उसे ही हम 'मधुच्छन्दा' के नाम से जानते हैं।

अत: वेदों में अग्रणी ऋग्वेद का प्रथम ऋषि ही श्रुतियों का सर्जन कर्ता है, जिसे मनीषीगण एवं विद्वन्मण्डल ने 'मधुच्छन्दा' के नाम से विख्यात किया है।

ज्योतिष शास्त्र वास्तुविद्या के परिप्रेक्ष्य में

दीपाली मित्तल
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम साहित्य जो ज्ञान, विज्ञान, साहित्य कला, सौन्दर्य एवं दर्शन आदि से परिपूर्ण है, वह भारतीय संस्कृति के वैदिक दर्शन वाङ्मय के रूप में ही हमारे समक्ष उपलब्ध होता है। ज्ञान की पराकाष्ठा जो वेदों में अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद प्राप्त होती है वह अनिर्वचनीय ही है। वेद अर्थ की गम्भीरता एव दुरूहता से भी युक्त है। अतः इस तथ्य के समाधान के लिए वेदाङ्ग साहित्य का उद्भव एवं विकास हुआ। वेदाङ्ग के अन्तर्गत शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिषशास्त्र है। ज्योतिषशास्त्र को वेदभगवान् का चक्षु कहा गया है। क्योंकि यज्ञ आदि समस्त क्रियाएं काल, ऋतु, मास, अयन आदि के आधार पर ही सम्पन्न होती है। इस दृष्टि से ज्योतिष कालविधायक शास्त्र भी है–

> **''वेद हि यज्ञार्थभिप्रवृत्ताः कलासनुपूत्या विहिताश्च यज्ञाः।**
> **तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्।।''**[3]

ज्योतिषशास्त्र केवल मात्र फल या कथन करने वाला शास्त्र नहीं है अपितु इसके गहन अध्ययन एवं चिन्तन के द्वारा हमारे समक्ष अनेक विज्ञान से युक्त विषय तथा वनस्पति के द्वारा हमारे मौसम विज्ञान, औषध एवं रसायन विज्ञान तथा वास्तुविद्या जैसे आधुनिक विषय उपलब्ध होते हैं। इन समस्त भौतिक एवं लौकिक ज्ञान कला के क्षेत्र में भी ज्योतिषशास्त्र के आधार समुद्र में कतिपय रोचक वर्णन एवं विवरण दिए गए है। इसी श्रृंखला में वास्तुविद्या का अध्ययन ज्योतिष में अनेक प्रकार से वर्णित किया गया है। यह विषय ज्योतिष के संहिता स्कन्ध में विशेष रूप से प्राप्त है। तथा उसके अन्तर्गत वास्तु भूमि परिक्षण गृह परिभाषा, वनस्पति व्यवस्था द्वारा ज्योति तथा स्वाद एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र आदि वर्णों के अनुसार शुभाशुभ भूमि का कथन एवं वर्णन मिलता है। वस्तुतः यह एक रोचक विषय है तथा आधुनिक प्रंसङ्ग में भी इसका अध्ययन नितान्त रूप से उपयोगी एवं व्यवहारिक सिद्ध होता है।

ईशोपनिषद्यात्मविज्ञानम्

डॉ० माधवी त्रिपाठी
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वम् .... से वेदान्त ने कर्मव्यथितचित्त जीव को उद्बुद्ध करते हुए उसे सर्व नियामक आत्मस्वरूप घोषित किया। इस अनवरत रूपेण तीव्रतया गतिशील एवं क्रियाशील सृष्टि का सूक्ष्म एवं गम्भीर चिंतन करने पर बुद्धि सर्वप्रथम उस तत्व को समझने के लिए व्यग्र होती है, जिससे यह बृहत् जगच्चक्र संचालित एवं शासित होता है।

शुक्ल यजुर्वेद के उन्तालीस अध्यायों तक विस्तृत रूप से कर्मकाण्ड का गहन विश्लेषण करते करते अत्यन्त अधीर होकर जीवात्मा ने जब कर्म तथा कर्त्ता दोनों के ही मूल तथा नियामक तत्व की ओर दृष्टिपात किया तो वह अत्यन्त आश्चर्यमय आलोक से आलोकित हो उठा और इसी प्रकाश में प्रशस्त हो चला परम कल्याणकारी एवं मोहान्धविनाशकारी आत्मविज्ञान का पंथ।

अहो महान् आश्चर्य है! जीव अत्यन्त प्रफुल्ल तथा चकित है कि जिस सृष्टि नियामक तत्व को वह बाह्य जगत् में खोज रहा था वह तत्व तो स्वयं ही है। वह निगम्य नहीं नियामक है, शासित नहीं अपितु शासक है। वह ही ''ईश'' है और ''ईश'' से ही यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त है।

वेदों में विविध विद्यायें-आचार शास्त्र

(मुख्यत: गुरु जम्भेश्वर के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ० शिवानी विद्यालंकार
भारतीयम् ज्ञानलोक
कनखल, हरिद्वार

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। ऋषिदयानन्द ने इस उद्घोष के साथ वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म कहा है। और मनु ने तो इससे भी बढ़कर कहा है-
''योऽनधीत्य द्विजो वेदं अन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वं आशु गच्छति सान्वय:।।2/168''
अर्थात् जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर अन्यशास्त्रों में श्रम करता है वह सपरिवार शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार ऋषिदयानन्द ने मुन को ही सम्पुष्ट किया है। भारतीयों का सम्पूर्ण साहित्य चाहे वह विज्ञान हो या आयुर्वेद, काव्यग्रन्थ हो या अध्यात्म सभी वेदों के प्रशंसा वाक्यों से भरे पड़े हैं। हमारा उद्देश्य यहाँ उनकी चर्चा करना नहीं है।

महाभारत युद्ध के उपरान्त जब वेदों का पठन-पाठन समाप्त हो गया और ऋषि परम्परा समाप्त हो गई, वर्णाश्रम धर्म अपने मूल स्वरूप से विकृत होकर कर्म पर आधारित न होकर जन्म

पर आधारित हो गया था जिसके अनेक उदाहरण हमें महाभारत में उपलब्ध होते हैं। शूद्र वर्ण में उत्पन्न कोई व्यक्ति विद्वान् या सदाचार युक्त होने पर भी श्रद्धा का पात्र नहीं था और अनपढ़ मूर्ख परन्तु ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने से समाज में पूज्य था। इन नाना प्रकार के दोषों के आ जाने पर आचार तो सर्वथा समाप्त ही हो गया था। उस आचारहीनता का परिणाम नाना प्रकार के दोषों के माध्यम से समाज में दिखाई देने लगा। चार्वाक, जैन, नाथ, आदि बहुत से सम्प्रदाय उत्पन्न हुए जिनमें कबीर, दादू, नानक, आदि बहुत से नाम लिए जा सकते हैं। इनके अनुयायियों ने पृथक् पंथ के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिये। इसी प्रकार राजस्थान के नागौर मण्डल से लगभग 40 45 किलोमीटर दूर उत्तर की ओर पीपासर नामक गांव में रोलो जी पंवार नाम का कोई व्यक्ति था उस रोलो जी का पौत्र और लोहट जी के पुत्र जम्भेश्वर हुए। विश्नोई वंश परम्परा आदि विष्णु से प्रारम्भ कर गुरु जम्भेश्वर तक उपलब्ध होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि अनेकों सुधारकों में गुरु जम्भेश्वर के विचार और चिन्तन वेदों के अधिक निकट है उन्होंने वेद मंत्रों को पढ़ने और समझने में असमर्थ मानवों के लिए उनकी अपनी भाषा में वेद का उपदेश दिया। वह वस्तुतः प्राचीन पद्धति का वेदभाष्य ही कहा जा सकता है। इसलिए विश्नोई सम्प्रदाय तो जम्भवाणी को 'पंचम वेद' की प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं।

वैदिक वाङ्मय में विधि-निषेध
(सायण तथा दयानन्द की दृष्टि में)

बृजेश गौतम
राजकीय व.मा. विद्यालय,
हस्तसाल, नई दिल्ली

विधि- निषेध मानव अस्तित्व की मौलिकता है। मानव अस्तित्व की सार्वंगीणता को परिवेष्टित करते हुए विश्व के विविध समाजों के मनीषियों ने अनेक प्रकार के विधि निषेधों का विधान किया है। विधि-निषेध का ही रूपान्तरण पाप-पुण्य के रूप में करने की आवधारणा है। औचित्य के मापदण्ड से विधि-निषेधों को कुछ क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, मुख्यतः आध्यात्मिक, मानसिक, चिकित्सकीय, पर्यावरणीय, पारम्परिक आचार सम्बन्धी, राजधर्म एवं सामाजिक-पारिवारिक आदि।

वेद एवं अन्य समस्त शास्त्र विधि-निषेध परक हैं। भाष्यकारों ने अनेक दृष्टियों को ध्यान में रखकर वैदिक वाङ्मय की व्याख्याएं की हैं। विहित्त कर्म का न किया जाना व निषिद्ध कर्म का किया जना त्याज्य है।

समस्त विधि- निषेध मुख्य रूप से शाश्वत व तात्कालिक सामाजिक आवश्यता के अनुरूप निर्दिष्ट किए गए है। वैदिक (संहिता भाग में) विधि-निषेध स्वरूपत: होते है तथा संहितेतर वैदिक वाङ्मय में उभयविध विधि निषेध उपलब्ध होते हैं। वैदिक विधि-निषेध मुख्यरूप से काव्यात्मक शैली में लक्षणात्मक व व्यंञ्जनात्मक विधाओं के द्वारा उपदेश के रूप में हैं। उदाहरणत: (प्रमाण रूप में):-

१. आध्यात्मिक - नानसिक विधि निषेध-

1. पराेऽपेहि मनस्पाप किमस्तानि शंससि। (अथर्व. 5.45.1)
2. अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम पश्चर। (ऋ 10/164/1)
3. विश्वानि देव सवित दुरितानि परा सुव। यद् भद्रन्तन्न आ सुव।। (यजु. 30/3)

२. चिकित्सकीय -

1. यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ (अथर्व. 1.8.4)।
2. अक्षौ विविध्य हृदयं निविध्य (अथर्व. 5/29/4)।
3. मुञ्च शीर्षक्त्या उत्तकाश एनम् (अथर्व. 1/12/3)।

३. पर्यावरणीय -

1. वात् आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। (ऋ. 10/186/1)
2. मधुमान्नो वनस्पति धुममान् अस्तु सूर्य।। (यजुर्वेद 13/29)

४. सामाजिक -

1. संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनासि जानताम् (ऋग्वेद 10/19/12)
2. अनुव्रत: पितु: पुत्रों मात्रा भवतु संमना (अथर्व 3/30/2)
3. मा भ्रता भ्रातरं द्विक्षन् (अथर्व. 3/30/3)

५. वृत्तिसम्बन्धी -

1. अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व (ऋ. 10/34/13)

६. राजधर्मसम्बन्धी

1. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे (ऋ. 2/23/1)
2. त्रीणि राजाना विदथे पुरुणि। (ऋ. 3/38/6)
3. सभा च मा सामितिश्चावताम्। (अर्थ.7/12/1)

व्याकरण विद्या का मूल आधार वेद

डॉ० निष्ठा विद्यालंकार
आर्य समाज गोविन्दनगर, कानपुर

व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते (निष्पाद्यन्ते) शब्दाः (प्रकृति प्रत्यय विभाग कल्पनया) अनेन इति व्याकरणम् (वि. आ कृ· ल्युट) अर्थात् जिसमें साधु (शुद्ध) शब्दों का व्युत्पादन (निर्माण तथा ज्ञान) किया जाये उसे व्याकरण कहते हैं। सर्वप्रथम व्या·कृ का व्याकरण, विवेचन या विश्लेषण अर्थ में प्रयोग यजुर्वेद में प्राप्त होता है।

हष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्ययानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छद्व्यां सत्ये प्रजापतिः।। (यजु० १९-७७)

इसमें व्याकरण प्रजापति अर्थात् परमात्मा को माना गया है। उसने ही सर्वप्रथम सत्य और अनृत का व्याकरण (विवेचन, विश्लेषण) किया। तात्त्विक दृष्टि के द्वारा उसने सत्य में श्रद्धा (ग्राह्यता) और असत्य या अनृत में अश्रद्धा (त्याज्यता या हेयता) रखी। यही सत्य और असत्य का विश्लेषण बाद में प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होकर व्याकरण बना। यही प्रकृति और प्रत्यय क विश्लेषण। प्रकृति (प्राकृतिक तत्त्व, धातु का अंश या स्थूल तत्त्व) और प्रत्यय (ज्ञान सूक्ष्म तत्त्व) का दार्शनिक विवेचन होकर व्याकरण दर्शन को जन्म देता है। इसमें शब्द, वाक्य और पद का तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। व्याकरण के मुख्यंतः तीन भाग है। (1) वर्ण विभाग (Orthography) जिसमें अक्षरों के आकार और उच्चारण का विधान (Etymology) में शब्दों के भेद, रुप का ज्ञान होता है, (3) वाक्य विभाग (Syntax) में वाक्यों के भेद रूप आदि का बोध होता है।

वेदांग के अन्तर्गत शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दः छः अंग है। वेदों के अविर्भाव के बाद इसकी रक्षा व मन्त्रों के शब्द के शुद्ध उच्चारण अर्थ तथा विनियोग आदि के लिए ही इन छः अंगों की उत्पत्ति की गई।

व्याकरण अध्ययन इनमें मुख्य हैं। महर्षि पतञ्जलि ने व्याकरण के पॉच उद्देश्यों में सर्वप्रथम वेदों की रक्षा करना प्रतिपादित किया था।

रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्। (महाभाष्य नवा० - ९)

हमें वेदों से ही सर्वप्रथम व्याकराण का ज्ञात प्राप्त होता है। ऋग्वेद का एम मन्त्र है

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीषे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति, महोदेवो मर्त्यां आविवेश।। (ऋग्वेद ४/५८/३)

महर्षि पंतञ्जलि ने महाभाष्य में इसका व्याकरण परक अर्थ किया है। शब्द (व्याकरण रुपी) वृषभ के चार सींग है-

नाम आख्यात (क्रिया), उपसर्ग निपात। इसके तीन पैर है-तीन काल आर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य। इसके दो सिर हैं- शब्द के दो स्वरुप नित्य और कार्य अर्थात् व्यंग्य और व्यञ्जक इसके साम हाथ है प्रथमा आदि सात विभक्तियाँ है। यह तीन स्थानों पर बंधा हुआ है। उरस, कण्ठ और सिर।

दाम्पत्य-जीवन की आदर्श संस्कृति-वेद

डॉ० अक्षयवर नाथ तिवारी
रीडर- संस्कृत विभाग
रणवीर रणंजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुल्तानपुर

हमारी संस्कृति का उद्‌गम वेद है। मनु के अनुसार वेद को मम्पूर्ण धर्म का मूल स्वीकार किया गया है।[1] यह वेद निश्चित रूप से ऋषियों की तपस्या की प्रस्तुत आदर्श परिणति है। प्राचीन भारतीय मान्यताओं और परंपराओं के अनुसार वेद परम कारूणिक परमेश्वर द्वारा निःश्वसित ज्ञान[2] की उत्तम राशि है।

हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद जीवन को सुखमय और समृद्धिशाली बनाने के लिए अनेकानेक उपायों को प्रस्तुत करते हैं। दाम्पत्य जीवन को आदर्शरूप प्रदान करने में हमारी वैदिक संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ऋग्वेद के अन्तर्गत विवाह के आदर्श और वैवाहिक विधि का बहुत हृदयस्पर्शी और मनोहर वर्णन किया गया है। दाम्पत्य जीवन में पति और पत्नी के आचार विचार की महत्त्वपूर्ण भूमिका हुआ करती है। संसार रूपी अग्नि से सन्तप्त मनुष्यों के लिए विश्राम स्थल के रूप में दाम्पत्य जीवन को महत्वपूर्ण रूप से बताया गया है। यथा :

संसारानलतप्तानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च॥ समयोचितपद्यरत्न मालिका

दाम्पत्य जीवन में सहज रूप में सुखानुभूति पृथिवी पर स्वर्गसुखोपलब्धि के समान है। दाम्पत्य जीवन में पति और पत्नी की पारस्परिक मधुर वाणी का सर्वाधिक रूप में योगदान रहता है। यथा वेद में इसी आशय को दृष्टि में रखते हुए अनेकविध शुभ कामनायें की गई हैं।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान्। अथर्व० ०३.३०.०२

सभी मङ्गलकामी पति के लिए कहा गया है कि वह पत्नी का पाणिग्रहण सौभाग्य के लिए करें। पति अपनी पत्नी को धर्मपूर्वक स्वीकार करे। इसी के साथ पत्नी के लिए भी सत्परामर्श दिया गया है कि पत्नी भी पति को धर्मपूर्वक ग्रहण करे।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥ अथर्व०, १४/०१/५१

विवाह के समय सोम ने सूर्या से अपने द्वारा पाणिग्रहण करने का लक्ष्य वृद्धावस्था तक अपने साथ रहने के लिए किया है।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः॥ ऋग्वेद,१०/८५/३५

सन्दर्भ :-

[1] मनुस्मति 02/06 वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।

[2] तैत्तिरीय आरण्यक, सारण भाष्य, 04/01/01

विवाह-संस्कार वैदिक काल से प्रचलित है

डॉ० डी०पी० श्रीवास्तव
अध्यक्ष, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग
बी0डी0इवनींग कॉलेज, पटना

'वि' उपसर्गपूर्वक 'वह' धातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'विवाह' शब्द की निष्पत्ति हुई है। 'विवाह' का अर्थ है विशिष्ट वहन। अन्य की कन्या को आत्मीय बनाते हुए उसमें संस्कार का आधान है विशिष्ट वहन। अन्य की वस्तु को आत्मीय बनाना प्रतिग्रह के बिना सम्भव नहीं और प्रतिग्रह दान के बिना नहीं बन सकता। अत: सिद्ध हुआ कि कन्या के पिता द्वारा पाणि ग्रहण, होम आदि संस्कारों से संस्कृत (संस्कार सम्पन्न) करना ही 'विवाह' है। इस प्रकार विवाह में दान, प्रतिग्रह (दान स्वीकार), पाणि ग्रहण तथा होम ये चार कर्म प्रधान है, शेष सब वर के कृत्य हैं।

विवाह कृत्य जैसे स्त्री में भार्यात्वका सम्पादन करता है, वैसे ही पुरुष में पतित्व का भी वह सम्पादक है। अत: यह स्त्री और पुरुष दोनों का संस्कार है, केवल स्त्री का ही या केवल पुरुष का ही संस्कार नहीं है। जैसे उपनयन संस्कार बालक में अध्ययन की योग्यता का सम्पादक है, वैसे ही विवाह स्त्री-पुरुष दोनों में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, पाकयज्ञ आदि श्रौत और स्मार्त कार्मानुष्ठान की योग्यता का सम्पादक है। अविवाहित स्त्री अथवा अविवाहित पुरुष का किसी भी श्रौत या स्मार्त कर्म के अनुष्ठान में अधिकार नहीं है। इसलिये विवाह स्त्री के लिये ही नित्य संस्कार है, किन्तु पुरुष का वह काम्य यानी ऐच्छिक है ऐसा मानना निर्मूल है। क्योंकि विवाह के स्त्री संस्कार होने में जो युक्तियाँ है, वे पुरूष संस्कार होने में भी समान है। अतएव गौतम आदि ने 'अष्टचत्वारिंशत्संस्कारै: संस्कृत:' (48 संस्कारों से संस्कृत) इस प्रकार आरम्भ करके उन (संस्कारों) में विवाह की भी 'सहधर्मचारिणीसंयोग:' (धर्मपत्नी का संयोग) यों पुरूष संस्कारों में गणना की है। इसलिये जैसे अगनयाधान, अग्रिहोत्र आदि नित्य (अवश्य अनुष्ठेय) हैं तथा स्त्री एवं पुरुष दोनों के संस्कार हैं, वैसे ही विवाह भी नित्य एवं स्त्री-पुरूष दोनों का संस्कार है। किन्तु द्वितीय आदि विवाह पुरूष का ऐच्छिक है, स्त्री का तो वह होता ही नहीं।

वैदिककालीन आदर्श परिवार एवं संस्कृति

कमलापति शास्त्री
प्राचार्य, ऋषिकुल विद्यापीठ ब्रह्मचर्याश्रम
संस्कृत महाविद्यालय, हरिद्वार

वेद हमारे ज्ञान के सागर हैं जिसमें श्रेष्ठ समाज की परिकल्पना निहित है। उसी श्रेष्ठ समाज का लघुरूप आदर्श परिवार है, परिवार शब्द संस्कृत के ''परि'' उपसर्ग वृ आवरणे धातु और घञ् प्रत्यय के संयोग से सिद्ध होता है। सर्वप्रथम व्यक्ति अपने को माता पिता के बीच में पाता है। यहाँ से परिवार शुरु होता है उसके भाई बहिन, पति पत्नि, चाचा चाची आदि के द्वारा परिवार का आकार बढना शुरू होता है। युवा होने पर उसका विवाह होता है और प्रथम बार एक अन्य परिवार से पत्नी के रूप में एक नये सदस्य का अपने परिवार में आगमन होता है, इससे जहाँ अपने परिवार के आकार में वृद्धि होती है, वहीं परिवारेतर अन्य सम्बन्धों का विकास होता है। यही क्रम मानव जीवन को प्रवाहमान रखता है। यह पारिवारिक जीवन कैसे सुखमय होगा इसके लिए अथर्ववेद में ऋषि कहते है कि

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चो सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
(अथर्ववेद-३.३०.१-२)

पति-पत्नी और दाम्पत्य-जीवन (प्रमुख धर्मसूत्रों के सन्दर्भ में)

राहुल
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समस्त आचार्यों ने समाज की सबसे छोटी इकाई के रूप में परिवार को चिह्नित किया है। इस परिवार के अन्तर्गत विद्यमान अन्य सदस्यों के अनुरूप पति और पत्नी का स्थान सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण माना जाता है। ब्रह्मचर्य अवस्था में या पाणिग्रहण संस्कार के पूर्व जिस पुरुष और स्त्री को बालक और कन्या के रूप में सम्बोधित किया जाता है वही पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात् गृहस्थावस्था में पति और पत्नी के रूप में स्वीकार किये जाते हैं और उनका यह जीवन दाम्पत्य-जीवन के रूप में माना जाता है। समाज में इस व्यवस्था की महत्ता के कारण प्राचीन काल से ही संस्कृत - साहित्य के प्रत्येक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में इस विषय पर अर्थात् उसके स्वरूप आदि पर विस्तृत चर्चा की है।

संस्कृत साहित्य के अन्य क्षेत्रों के अनुरूप धर्मसूत्रों में स्थित गौतम-धर्मसूत्र, बौधायन-

धर्मसूत्र और आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पति पत्नी और उनके दाम्पत्य जीवन के विषय में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। जिसके अन्तर्गत पति को अपने दाम्पत्य जीवन में पत्नी और समाज के प्रति कैसा आचरण करना चाहिए तथा पत्नी को समाज और पति के साथ कैसा आचरण करना चाहिए इत्यादि विषयों का उल्लेख है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में त्रिविध धर्मसूत्रों के आधार पर पति पत्नी और उनके दाम्पत्य जीवन पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए तत्कालीन समाज के इस पक्ष की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है।

विवाह के प्रकार और रिवाजों पर वर्ण का प्रभाव

अनीता शर्मा
शोध छात्रा, इतिहास विभाग,
बरेली कॉलेज, बरेली

धर्म शास्त्रों के अनुसार वैध विवाह के लिए वर और वधू का समान वर्ण होना चाहिए। स्वीकृत और अस्वीकृत विवाहों, तलाक के रिवाज, विधवा पुनर्विवाह, नियमों, बहुविवाह और एकविवाह की प्रथाओं पर वर्ण का कोई असर नहीं हुआ। अन्तर्जातीय विवाह के लिए धर्मशास्त्रों की अनुमति व्यवहार में दो उच्चतर वर्णों तक ही सीमित थी।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के एक परिच्छेद पर टीका करते हुए आसुर विवाह का संबंध धन से है इसलिए यह वैश्यों के लिए निर्धारित है। प्राचीन काल में विवाह कई प्रकार के होते थे। लेकिन बोधायन ने इस विवाह को वैश्यों और शूद्रों के लिए निर्धारित किया है। आसुर और पैशाच, सामान्यतः वैश्यों और शूद्रों के लिए अनुशासित हैं। आसुर विवाह में स्त्री का महत्व पूर्णस्थान था। प्राचीन समाज में दो निचले वर्णों के रूप में शामिल की गई जनजातियों में प्रचलित विवाह के रिवाजों को मान्य बनाने के लिए अनेक नियम बनाये गये। राक्षस और गांधर्व दोनों वर्णों तक सीमित नहीं थे।

भास की रचनाओं में गांधर्व विवाह के अन्तर्गत क्षत्रिय ही पाए जाते हैं। कथासरित्सागर में प्रेमविवाह की सात कथाएं है- इसमें दो कथाओं में ब्राह्मण चार कथाओं में राजकुमार और एक कथा में चोर के रूप में वरो का उल्लेख मिलता है। गांधर्व का अर्थ है पुनर्विवाह''।

विवाह के स्वीकृत प्रकार प्रायः पहले दोनों वर्णों विशेषकर ब्राह्मणों के लिए निर्धारित थे।

वेदों में सैन्यविज्ञान

डॉ० विनोद कुमार गुप्त
राजकीय स्नात. महाविद्यालय, नई टिहरी

अलोकसामान्यप्रतिभा का परिणाम होने के कारण अपौरुषेय कृति के रूप में विश्वविश्रुत वेद अपने गर्भ में सूत्र रूप में ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों को अन्तर्निहित किये हुए हैं। ज्ञान विज्ञान के अनेक क्षेत्र, जो आज अत्यधिक अपव्ययी सिद्ध हो रहे हैं, उन पर हमारे वैदिक ऋषियों ने बड़ी सहज दृष्टि से विचार किया है। उन्हीं विषयों में एक महत्त्वपूर्ण विषय है सैन्यविज्ञान। सैन्यविज्ञान के अन्तर्गत सेना का चयन, सेना की योग्यता, सेना का प्रशिक्षण, सेना की नियुक्ति, सैनिकों के वेष, सेना के अङ्ग, अस्त्र-शस्त्र, युद्धविभाग, युद्धनीति, कवच आदि के विषय में वैदिक ऋषियों ने स्पष्टत: सङ्केत किये हैं। ऋग्वेद 2/35/3 में वायु एवं सूर्य के माध्यम से बताया गया है कि ऊँचे-नीचे मार्ग को तय करते हुये शत्रुओं को जीतकर सतत रूप से प्रजाजनों की रक्षा करें। वायुसेना, जलसेना एवं स्थलसेना के रूप में सेना के तीन विभाग किये गए हैं। वैदिक संहिता में पदाति, अश्वारोही एवं रथारोही ये तीन अङ्ग थलसेना के प्राप्त होते हैं।

युद्ध के अवसर में किस तरह की नीति अपनायी जाए जिससे अपना नुकसान कम करते हुये शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति की ओर सेना उन्मुख हो एवं अस्त्र-शस्त्रों के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है कि एक ऐसा अस्त्र जिससे सैकड़ों व्यक्तियों का वध एक साथ हो जाता है। युद्ध के समय किस प्रकार सैनिक संगठन करना चाहिये यथा सैनिकों के लिये अन्न, जल, वस्त्र आदि का प्रबन्ध करना आदि इन सब बिन्दुओं पर वैदिक संहिताओं में स्पष्टता के साथ दृष्टिपात किया गया है। सेना के चयन में यह निर्देश किया गया है कि व्यक्ति को जलाभिषेक कराने के पश्चात् ही उसे सेना में नियुक्ति दी जाए।

अत: प्रकृत शोध-पत्र में उक्त बिन्दुओं पर यथाशक्य विश्लेषण का अल्पप्रयास किया गया है।

वेदों में अपराध निरोध के उपाय

डॉ० स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती
अध्यक्ष, पातञ्जल योगधाम
आर्यनगर, हरिद्वार

यह सर्वमान्य मान्यता है कि वेदों में मानवीय जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान उपलब्ध है'। इस मान्यता के अनुसार ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का यह कथन सत्यता की कसौटी पर पूरा उतरता है कि वेद सब सत्य विद्याओं का का पुस्तक है'। इस निर्णीतसिद्धान्त के आधार पर हम इस प्रस्ताव में अपराधों के निरोध विषयक उपायों पर

विवेचन करेंगे, क्योंकि निखिल संसार के अखिल मानवों की वर्तमान में सर्वतोगम्भीर समस्या है कि आतंकवाद और अपराध की मनोवृत्ति क्यों बढ रही है? इसके मूल कारण क्या हैं? साथ ही अपराधीकरण की समस्याओं का निराकरण क्या है?

अपराध निरोध के उपायः-

वैसे केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारें उक्त अपराधीकरण की समस्याओं के निरोध हेतु दण्ड व्यवस्था, जेल, फांसी तथा अर्थदण्ड की घोषणा करती रहती है। पुनरपि उक्त अपराधों पर नियन्त्रण नहीं हो पा रहा है। अतः हम यहाँ ईश्वरीय ज्ञान के आगार समस्त समस्याओं की समाधाता वेदमाता से अपने क्लेशों की निवृत्ति के उपाय जानने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अहिंसा का व्यवहार में पालन :-

हिंसा की दुर्भावना को अहिंसा वृत्ति से जीता जा सकता है। अतः वेद के अन्दर अहिंसावृत्ति को ही आचरण की श्रेष्ठता का आधार माना जाये, तो वृत्ति का निरोध सम्भव है। वेद मन्त्र में कहा है कि हे 'विद्वान् गुरुजन! हम कभी हिंसा नहीं करते। किसी प्राणी का धात, कटुवचन, तथा जड़ संसाधनों की तोड़-फोड़ भी नहीं करते, न परस्पर कलह क्लेश का वातावरण बनाते है। आपस में पक्ष विपक्ष का भाव न रखते हुए परस्पर प्रेम से मिलकर सहयोग किया करते हैं। सदैव श्रेष्ठ कार्यों में ही अपनी शक्ति तथा समय का सदुपयोग करते हैं।

सत्याचरण की प्रेरणा :-

सत्याचरण से मनुष्य समृद्धि को प्राप्त करता है, इस विषय में वेदोपदेश है हे वरुण ! तुम्हारे वे पाश जो सात-सात करके तीन प्रकार से फैले हुए हैं, दुष्टों का नाश करते हुए स्थित हैं, वे सब मिथ्यावादी को छिन्न-भिन्न करें और सत्यावादियों का धन-वैभव शाक्ति आदि से और समृद्ध करें'।

चौर कर्म की निन्दा एवं विधान :-

यजुर्वेद कर्मों का विवेचन करने वाला वेद है। जिसमें उपदेश है कि दिल से पर पदार्थो का अपहरण करने वालों, कपट का व्यवहार करने वालों को राजपुरुष दण्ड देवें। साथ ही ऐसे पापी जनों को दण्ड देने वाले या अपघात (फांसी) करने वालों का यथायोग्य सत्कार करें।

इसी, प्रकार ब्रह्मचर्य प्रेमी आचार्य, राज्यकर्मचारी एवं प्रशासक हों। उन्हें सम्मानित किया जाए। वेद में 'शतहस्त समाहार सहस्रहस्त सकिर' मन्त्रांश के द्वारा दान अपरिग्रह के पालन का संकेत है। इसी भांति 'अक्षैर्मा दीव्य' मन्त्र में जुए का निषेध' है। अतः वेद में आगत अनेक सफल उपायों का प्रयोग प्रशासन में करना आवश्यक है।

वेदों में शान्ति भावना

हरेन्द्र नारायण देव गोस्वामी
द्विपरसत्रीय गोस्वामी,
नलबारी, असम

शान्ति मन की धीर स्थिर चिन्तामुक्त अवस्थायें है। इसे मन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता हैं। हमारा मन का दस इन्द्रियों के साथ सम्पर्क है। इसलिए हमारे इन्द्रियों के विषय (Object) के साथ ईप्सित सम्बन्ध होने पर ही मन ठीक रहता है। इसलिए वैदिक ऋषिगण ने विषय इन्द्रिय के संयांग पर अधिक ध्यान दिया हैं।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवां सस्तनुभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

सभी उपनिषदों की शुरुवात शान्ति मंत्र पाठ के जरिए हुई हैं तथा उनकी समाप्ति भी उस निर्धारित शान्तिपाठ मन्त्र के जरिए हुई है। कहा जा सकता हैं की वेद के उपनिषदों में शान्ति को मूल विषय के रूप में लिया गया हैं। काम-क्रोध, लोभ-मोह-मद-मात्सर्य ये छह रिपु हमें शोषण करते आये हैं। शान्ति की स्थापना के लिए ये छः रिपु को पूरी तरह से विसर्जन देना होगा, जब तक लोग इस रिपु के काबू में रहते हैं, तब तक उन्हें पारमार्थिक शान्ति नहीं मिलती है।

भारतीयशास्त्रेषु सृष्टि-प्रलयविज्ञानम्

डॉ० शिवशंकर मिश्रः
उपकुलसचिवः
उत्तरांचलसंस्कृतविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्

समग्रभारतीयशास्त्रवाङ्मये जगत्सृष्टिविषयं प्रलयविषयञ्चाधिकृत्य भूयांसो विचाराः दरीदृश्यन्ते। सन्ति वहव्यो विप्रतिपत्तयः। तत्रातिप्राकृताः चार्वाकाः पृथिव्यप्तेजोवायुमूर्तैः चतुर्विध पदार्थैः जगत्सृष्टि इति प्रतिपादयन्ति। एभ्यः चतुर्मूर्तेभ्यो न केवलमचेतनपदार्थोत्पन्तिरपितु एतेषां मिथः मिश्रणेन चैतन्यमपि उत्पद्यते तेभ्यश्चैतन्यमिति वार्हस्पत्यसूत्रनिर्देशात्। जड़भूत विकारेषु चैतन्यं यत्तुदृश्यते। ताम्बूलपूगचूणार्नां योगाद्राग इवोत्थितम्। (सा0सि0 2/7) जैनदर्शने जीवपुद्गलप्रभृति षट्द्रव्यैर्विनिर्मितमिदं जगत्। एतानि द्रव्याणि नोत्पन्नानि न वा विनश्यन्ति,

एभ्योऽनाद्यनन्त द्रव्येभ्यो विनिर्मितोऽयं लोकः अविनश्यन् स्वसञ्चालितः। बौद्धानान्नये निखिलमिदं जगत् पञ्चस्कन्धप्रवाहमात्रम्। रुपवेदनासंज्ञासंसारविज्ञानाख्याः पञ्चस्कन्धाः निरन्तरं परिवर्तनशीलत्वेन प्रतिक्षणमुत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च। वस्तुतः बौद्धदर्शने अनित्यावाद क्षणभंगवाद अर्थक्रियाकारितत्व प्रतीत्यसमुत्पादादंयः सिद्धान्ताः सृष्टिप्रक्रियाश्रयभूतास्सन्ति। सांख्य योगदर्शने प्रकृतिपुरुपयोः मिथः संयोगेन जायते जगत्सृष्टिः। तयोर्विभागेन विलयः।

वस्तुतः सृष्टिविषयकं प्रलयविषयकञ्च यद् गभीरं ज्ञानमष्माकं वैदिक वाङ्मये, पुराणप्रसंगे, दर्शनेषु च निगूहितं सूत्ररुपेणोपस्थापितं तत्सर्वं तथ्यभूतं प्रसंगमहं विस्तृतशोधपत्रे यथाशास्त्रं समुपस्थापयिष्यामीति शम।

वैदिक ऋषियों की कवि मेधा

नेहा मल्होत्रा

लखनऊ

वेदों में मनीषियों ने ज्ञान और कर्म के दार्शनिक विवेचन पर काव्यत्व का सुन्दर प्रलेप चढ़ा दिया है। ऋग्वेद के आख्यान अपनी काव्यात्मक विशेषता के कारण गौरवपूर्ण हो चुके हैं। 'उषा सूक्त' काव्य कला का अन्यतम उत्कृष्ट रूप है, जहाँ उषा को मानवी के रूप में चित्रित करके कला का प्रदर्शन किया है।

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देवकियक्षमाणम्
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षासिं कृणुषे विभाति।

अतः वैदिक ऋषियों की कवि मेधा वैदिक काव्य की उपजीव्यता का पूर्णतः उद्घाटित करती है।

वेदों में आयुर्वेद के मूल-तत्व

आकाश

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैदिक काल से ही आयुर्वेद का उदय और उसकी समृद्धि प्रकट होती है। एव वैदिक वाङ्मय में निःसृत आयुर्वेद गंगा अपने गम्भीर धारा प्रवाह के साथ परवर्ती आचार्यों के विचार स्रोतों की आत्मसात् कर अनेक देशों को आप्लावित करती हुई सुदीर्घ काल से जन जीवन में व्याप्त है।

अथर्ववेद मुख्यरूपेण आयुर्वेद का उपजीव्य वेद है। चरक, सुश्रुत एवं काश्यप आदि आयुर्वेदीय संहिताएं आयुर्वेद का अथर्ववेद से घनिष्ठ सम्बन्ध मानती है। अथर्ववेद में अन्य वेदों

की अपेक्षा रोगों की चिकित्सा का विस्तार से वर्णन है। और भेषज के द्वारा अमृतत्त्व की प्राप्ति का विधान है, अमृतत्त्व ही ब्रह्मपद है। अतः उसे ब्रह्मपद की संज्ञा दी जाती है। ''यद् भेषजं तदमृतं तदमृतं तद् ब्रह्म।'' गोपथ ब्रा0 1/3/4

१- ''इह यलु आयुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य। सु०यू० १/६

वेदों में आयुर्वेद की अवधारणा

डॉ० जगदम्बा प्रसाद चमोली
पाण्डुलिपि सर्वेक्षक, संस्कृत-विभाग
हे0न0ब0 गढ़वाल वि0वि0, पौड़ी परिसर, पौड़ी

वेद मानव की सभ्यताओं के स्रोत हैं, जिनमें सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान एवं विद्याएं निहित हैं। वेद ज्ञान से ही मनुष्य में जीने-सीखने की कलाएं प्रकट हुई हैं। ऋषियों ने स्वास्थ लाभ के लिये चिकित्सा विज्ञान 'आयुर्वेद' का चिन्तन किया जिसमें **''पश्येम शरदः शतंजीवेम शरदः शतंश्रृणुयाम शरदः''** की कामना की। परवर्ति कवियों में भी महाकवि कालिदास ने ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' कहा है। स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ एवं समृद्धशाली जीवन की निधि है। वैदिक कालीन जनसमुदाय अपने स्वास्थ के प्रति सचेत था, और वेद के आलोक में निरोगमय सुदीर्घ जीवन यापन करता था।

यद्यपि हमारे चारों वेदों में ही स्वस्थ जीवन की कामना करने वाले बहुपयोगी मंत्रों का प्रणयन किया गया है किन्तु अर्थवेद चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट स्थान पर विराजित है।

आयुर्वेद में स्वास्थ को सम्यक् बनाने के लिये अनेक उपायों का प्रणयन किया गया है जैसे चरक संहिता में कहा गया है-

त्रयः उपस्तम्भाः शरीरस्य आहारः स्वप्नों ब्रह्मचर्यमिति (सू०११/३२)

अर्थात् शरीररुपी भवन को स्थिर रखने के लिए आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीन आधार स्तम्भ है।

वैदिक व्यक्तित्व के प्रतिमान

देवेन्द्र कुमार
दतावली, अलीगढ़

वेद ज्ञान का पर्याय है जो अपनी दिव्यता से समस्त जगत् में ज्ञान-विज्ञान प्रवाहित कर रहे हैं। ये ज्ञान के ऐसे महासागर हैं, जिसमें किसी भी क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान पिपासु अपनी ज्ञान पिपासा शान्त करते हैं। वैदिक साहित्य में धर्म, दर्शन संङ्गीत, कला लोकाचरण आदि मानव जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक उत्थान के लिए आदर्शों को प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति देव तो नहीं बन सकता किन्तु उक्त साहित्य के मानवजीवनोपयोगी आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् करता है, तो देवतुल्य बन सकता है।

वैदिक साहित्य में बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व को विकसित करने के लिये श्रेष्ठ उपदेशों का वर्णन किया गया है जिससे व्यक्ति अपने को सुखमय व्यतीत करते हुये परमगति को प्राप्त कर सकता है।

वेदों की महिमा

नवदीप गुप्ता
अमृतसर

वेद शब्द ब्रह्म का मूर्त स्वरूप है, इसलिये सभी शास्त्रों में 'वेद' शब्द का अर्थ 'ब्रह्म' प्रसिद्ध है, जो लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद है, ऐसे ग्रन्थ को 'वेद' कहते हैं। शाब्दिक (विद्या) विधा से विश्लेषण करने पर 'वेद' शब्द की निष्पति 'विद-ज्ञाने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर होती है। 'वेद' शब्द का अन्य अर्थ विचार भी है। तदनुसार लौकिक या पारलौकिक कोई भी नया विचार सम्भव नहीं हो सकता, जो कि वेद में प्रथमतः न किया हो। 'वेद' धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थों के प्रतिपादक हैं। वेद की समस्त शिक्षायें सार्वभौम हैं।

वेद ज्ञान विज्ञान के सागर हैं। उनका अक्षर-अक्षर सत्य है वेद ही भाव पशु के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये- ये वेदों से ही हमें पता चलता है। वेदों के प्रति पूर्ण निष्ठा रखकर उनके बताये गये मार्ग पर चलकर ही मानव-जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है। वेद-दुर्लभ मनुष्य-शरीर का प्रयोजन सकल दुःख निवृत्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति है। भक्ति-मुक्ति और शाश्वत शान्ति तथा अखण्ड आनन्द को प्राप्ति के प्रमुख तीन मार्ग भक्ति की गंगा, कर्म की यमुना और ज्ञान की सरस्वती का उद्‌गम एवं आधार-स्थान वेदों को ही माना जाता है, जिसका वर्णन मैं अपने शोध पत्र में करूंगा।

वेदार्थस्य विविधाः प्रक्रियाः महर्षिदयानन्दस्य मन्तव्यम्

डॉ० सुधीरकुमार आर्यः
प्रवक्ता एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
राजकीय-महाविद्यालयः, लोहारू, हरियाणा

वेदमन्त्रेपु प्रयुक्ताः शब्दा बहुलार्थवाचका- सन्ति। ते विभिन्न-क्षेत्रेपु विभिन्नानर्थान् प्रकटयन्ति। तद्यथा इन्द्रः- विराड्ब्रह्माण्डे परमेश्वरः, शरीरे-ज़ीवात्मा, प्राणः, मनश्च, भौतिकसंसारे सूर्यः, वायुः, विद्युच्च, राजनीत्याम् राजा, सेनापतिश्च, यज्ञे-यजमानो यज्ञाग्निश्च भवति। एवम् अन्या अपि वैदिकदेवता विज्ञातव्याः।

वेदः स्वयं वदति-मानवशरीरं ब्रह्माण्डस्यैव लघुरूपमस्ति। ब्रह्माण्डस्य सर्वा अपि देवताः शरीरे एव विराजन्ते। तद्यथोक्तम्- "**सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवाश्रिताः**"[1] इति। अत एव ये वेदमन्त्रा ब्राह्यजगद्विषये घटिता भवन्ति, ते शरीरविषयेऽपि साधु घटन्ते।

यास्काचार्यप्रणीते निरुक्तशास्त्रेऽत एव निम्नलिखितानां वेदार्थप्रक्रियाणामुल्लेखः प्राप्यते (1) अधिदैवतप्रक्रिया (2) अध्यात्मप्रक्रिया (3), अधियज्ञप्रक्रिया (4) नैरुक्तप्रक्रिया (5) वैयाकरणप्रक्रिया (6) नैदानप्रक्रिया (7) ऐतिहासिकप्रक्रिया चेति महर्षि दयानन्दस्य।

A Comprehensive Comparison of Center of Symmetry in Group Theory and Vedic Concept of Nabhi

Dr. Piyush Desai
Lecturer, Dept. of Chemistry, Arts,
Science Commerce College, Kholwad,
Kamrej Char Rastra, Surat .

The feminine conceptualiziation of nature occupies very significant place in our ancient Vedic texts. From Vedas down to puranas earth's personification are mediated through the symbol of divine feminine. To build up the argument the paper preambles with the definition of symmetry and symmetry elements in the group theory. Further the paper focuses on the central idea that according to Vedas the earth integral symbol of nature has highest fold of symmetry .The paper starts with

the discussion of symmetry in modern science and coming nearly to the full circle concludes with comparative study of Vedic Nabhi. which projects that there is an almost uncanny similarity between Nabhi in Vedic texts and center of symmetry in group theory of modern science. We can assume that there was something like group theory even in the Vedic age it means they had hepar advanced scientific theories - with different identifications, than that of modern science the matter was almost identical with different names and symbols. And in this paper I have made humble attempt to compare such theory of symmetry.

The Vedic seer Grtsamada

Dr. Indu Deshpande,
(Ex.Lect.)Pune University, Pune

The word Rsi has been derived from the Sanskrit root rs (rsati-6.P.). which means to go, move. This may perhaps from the obsolete rs for drs' (to see) According to Dhatupatha (xxviii.7) Rsi is he who can see beyond the universe (rsati Jnanena pas' yati samsaraparam: iti rsih). English rendering of the world rsi is "the seer".

The Rgvedic rsis were householders, interested in family lives, performers of sacrifices, desirous of progeny and riches, composers of poetry etc.

Grtsamada is the seer of the Rgveda Mandala II. He was born in the family of Angirasas and was son of S'unahotra. Indra came to his rescue when he was captured by the Asuras. Later on, at the behest of Indra he became the son of S'unaka in the family of the Bhrgus and held the name Grtsamada (cf. ya Angirasaga s'aunahotro bhutva Bhargavah S'aunako bhavat sa Grtsamado dvitiyam Mandalam apas'yat I - Anukramani). As also according to Rsyanukramani - "tvam agna iti Grtsamadah S'aunako Bhrgutam gatah S'aunahotrah prakrtya tu yam Angirasa uccyate iti. Tasman mandaldrastra S'anuako Grtsamada iti. (cf. Sayanabhasya on RV. II. I. I.) Four occurances of the word Grtsamada (Rv. I. 9. 8 , II. 4.9.8, 4.1.18) in the R v are in plural (cf. etani wam asvina vardhanani Brahma somam Grtsamada so akran.

The Suktas seen by the Rsi Grtsamada imply his remarkable character. We meet here with the Rsi who is scientific thinker (Rv II.24.4; II.24.5) Rhetorician-tanum tantum samvayanti samici yajnasa pes'ah sudughe payasvati (II 3.6), Social reformer, (II.17.7) Knower of arts (II 3.6), true devotee of God (Rv 13.8.7).

mathematician- a dvabhyam haribhyam Indra yahya caturbhira sad hir huyamanah astabhir das'abhih somapeyamayam sutah sumakha ma mrudhaskah (II.18.4)

From such illustrations the remarkable character of Grtasamada will be explored in this paper as the environment at the time of the Rv. thereby.s

Non-violance vis a vis Holistic Development

Harsh Vardhan
Rishikul Ay. College, Haridwar

Dusyant Singh ,
G.K.U., Haridwar

Non-violance is not a word only but is a highly sensible socio-spritual concept of self refinement. Although near about eighty one types of non-violance have been mentioned in our indigenous literature and any how all types of non- violances have a central theme of betterment of all living being. Historically the value of non-violance lies in its socio-spritual nature but actually it is much more than it The political use of non-violance by Gandhi during the struggle of independence is well known.

In this paper we discussed that how the non-violance ensure the social, economic, political, cultural as well as sustainable development nationally and globally by counteracting the detrimental effects of social, economic, political and cultural violences.

Further it has been emphasized that how non-conventional applicability of non-violance in terms of changing contemporary situation can play a key role in environmental protection and conservation ecology. Besides these the socio-political regulatory uses or non-violance have also been discussed.

Although Anti-violance literarily assumed the measure against the violence negatively but how the Anti-violance, acts as defensive measure which assist the best implementation of non-violance it has also been discussed elaborately.

ROLE OF INTERCULTURAL COMMUNICATION COMPETENCE IN A MULTICULTURAL ENVIRONMENT

Mr. Rakesh Kumar
Laxmi Devi Institute of Engg. Tech., Alwar

We live in a challenging era with increased pressures on our workforce due to globalization and the demands of complex political, social and economic forces. Demands of globalization today continue to increase pressure for the education of global citizens who preserve the variety and vitality of life. The world is shrinking. People of different cultural backgrounds are more interdependent than ever.

The 21 st century confronts ever-shifting social, cultural, and technological challenges. The rapid development in every aspect of the 21 st century requires that we see things through others' eyes and develop a new way of living together. There are many aspects of becoming a global citizen, and one of the most important areas of becoming a global citizen is an awareness and understanding of the variety and relevance of all cultures.

In addition, there is an increasing need for intercultural competence to be able to survive in a networked global society. This global mindset can only result from competent intercommunication among people from diverse cultures. Thus, the need for intercultural communication enhancement across disciplines becomes critical for success in our world.

The need for intercultural communication enhancement, especially intercultural sensitivity, across disciplines becomes critical for future success. In view of various issues pertaining to a theme, this paper focus on the need for intercultural communication, issues/examples in MNCs pertaining to intercultural communication and various strategies/models to resolve the bottlenecks of multicultural communication. The study is based on literature review and secondary data.

The Art of Writing In Ancient India

Krishan Kant 'Vaidik' Kapura

This is ironical that the German scholar, Maxmeuller, who took keen interest in the study of our culture and **Samskrit** literature proponuded a theory, emphatically, that Bhartiyas did not know reading and writing upto to the age of 'Panini'. It is to our utmost surprise and no sensible person can believe that the society which was at the epitome of its civilization could had been deprived of the art of writing. No body could even thought of in the dream of one's dream that the knowledge of Vedas which had poetic beauty and profundity of thought, could be preserved and understood by the illiterates. The knowledge, experience, expertise and philosophy was attained amidst social struggle. The progress of knowledge can be said to be the true image of the social relations and systems prevailing over them. This is a universal truth and the enrichment of Vedic literature and language is the testimony of this doctrine.

The people of this country at that age were not only highly civilized and mastered many arts, artifacts and Shastras and to consider them illiterate is not only a lie of first water but a shame to the person who sits on to preside as a judge.

Maxmeuller interpeted the word 'Shruti' as these were propagated with the tradition of chanting and listening and proved through this interpretation that those people did not know the art of reading and writing in earlier times. This also leads to the thought that writing of script was not prevailent at the age of Brahmans, Aryankas and even upto the age of 'Panini' This also suggests that the contents of these books should also had been spread by the method of 'Shruti:' but the same were never known as 'Shrutis'. This fact proves that Maxmeuller was bent upon to prove his point that Bhartiyas did not know reading and writing. The sanskrit stras which were large in number and scattered in a comprehensive book know as 'Ashtadhyayi (a book comprising eight chapters). This was done 2650 years before the Vikram age. The book Sutrgranth existed much earlier to 'Panini' and has been mentioned by him in his book.

Conservation of water resources in ancient literature

Dr. DS. Malik, P.K. Bharti and Yogesh Shastri
Deptt of Zoology & Environmental Science
Vidyalaya Vibhag, Gurukul Kangri University, Hardwar

According to Rigveda, "Water provides a medium for interaction among different compounds Water is a great nurture for plants as well as for animals. Water helps in conduction of energy. The present paper deals with the basic knowledge of water resources conservation and all the aspects of water with special reference to human benefits and utilization on the basic of literature (ancient history) in India.

छपते-छपते

1.	**डॉ० मनोज कुमार कुर्मी** सहायक पुरातत्त्ववेता, भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, भारत सरकार	वेदों में भूकम्प सम्बन्धी वर्णन एवं उनके पुरातत्त्वीय साक्ष्य
2.	**डॉ० नवलता** रीडर, वी. एस. एस. डी. कॉलेज, कानपुर	वंशानुगता वैदिकी अवधारणा
3.	**Dr. C.L. Prabhakar** Prof.& Direct. world Association for Vedic Studies I.N.C. U.S.A. Indian,Branch, Bangalore.	Rituals and Social Importance from Vedas.
4.	**Dr. (Mrs.) It. Seetarama Lakshmi** Prof. Member world Association for Vedic Studies I.N.C. U.S.A. Indian, Branch Bangalore	Music and its Role in Veda Mantra 5
5.	**श्रीमती सुनीता दुहन** हिसार, हरियाणा	वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में रामायण के आदर्श
6.	**डा० सरिता भार्गव** वरि0 व्याख्यता राजकीय महाविद्यालय, कोटा, राज.	वैदिक शिक्षण पद्धति की वर्तमान सन्दर्भो में प्रासंगिकता
7.	**प्रो. विजया मानसिंग राव पाटिल** उपन्यासक, सांगलि, महाराष्ट्र	ऋग्वेदीय देवी सूक्तेः वर्णनम्
8.	**प्रो. वि. आर. दीक्षित** प्राध्यापक, स्नात. विभाग सि. एल. वै. संस्कृत कॉलेज, धारवाड़	इहामुष्मिक कलसाधनीभूताः खद्रीयमन्त्राः
9.	**श्रीमती रंजन गिरीश चन्द्र अन्धारिया** प्रवक्ता, संस्कृत, भावनगर, गुजरात	वेदों में काव्यतत्व
10.	**Dr. Virendra kumar Alankar** Head/ Ch., Deptt. of Sanskrit, Panjab University, Chandigarh	Nirukti Gata Sari Ravinjnana
11.	**डॉ० रमिन्द्र सिंह** देहरादून	Sanskrit Shabad in Guru. Granth Sahib
12.	**कुलदीप कुमार** शोधछात्र,जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	वेदों में प्राप्तशिक्षा का स्वरूप विवेचन
13.	**दीपशिखा परिहार** शोधछात्रा, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	ऋग्वेदकालीन सामाजिक व्यवस्था एक अनुशीलन
14.	**आरती शर्मा** शोधछात्रा, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	वेदाङ्गो का सामान्य परिदृश्य

15. **डॉ० अरुणेश झा** निदेशक भारतीय सौन्दर्य शोध प्रतिष्ठानम्, हुड्डा, कैथल	भारतीय ज्योतिषशास्त्रे दृष्टि विज्ञानम्
16. **डॉ० राजीव शर्मा** प्रवक्ता, अर्थशास्त्र गुरुकुल काँगड़ी वि0 वि, हरिद्वार	वेदों में अर्थशास्त्र
17. **डॉ. जितेन्द्र** प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, शहीद ऊधम सिंह राजकीय महा., इन्द्री,करनाल	
18. **श्री कृष्ण पाल शास्त्री** शोधछात्र संस्कृत, गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार	
19. **श्री रत्नेश्वर झा** शोधछात्र, संस्कृत गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार	
20. **डॉ. विभा वधवा?** व्याख्याता, श्रीसत्यसांई कालेज फार वीमेन, जयपुर	
21. **डॉ. हेमा भसीन** व्याख्याता श्रीसत्यसांई कालेज फार वीमेन, जयपुर	
22. **पायल पञ्चोली** श्रीसत्यसांई कालेज फार वीमेन, जयपुर	
23. **नेहा अग्रवाल** श्रीसत्यसांई कालेज फार वीमेन, जयपुर	
24. **सविता सचदेवा** श्रीसत्यसांई कालेज फार वीमेन, जयपुर	
25. **विनीता कुमारी** शोधछात्रा छत्रपति शाहू जी महाराज वि.वि., कानपुर	
26. **उन्नति बिरजु भावसागर** प्राध्यापिका, श्रीप्रभुदास ठक्कर आर्टस् एवं कॉमर्स कालेज, अहमदाबाद	
27. **डॉ० वाचस्पति मिश्र** रीडर, संस्कृत विभाग मेरठ कालेज, मेरठा	
28. **राजकुमार छावड़ा** शोधछात्र गुरुकुल कांगड़ी वि.वि., हरिद्वार	